संस्कृत
व्याकरणम्

संस्कृत-व्याकरणम्

[एम० ए० संस्कृत परीक्षा पाठ्यक्रम में निर्धारित]

श्री भट्टोजिदीक्षित प्रणीत **सिद्धान्त कौमुदी** के कारक प्रकरण

तथा

श्री वरदराजाचार्यकृत **लघु कौमुदी** के कृदन्त तद्धित,
समास, सम्पूर्ण तिङन्त एवं तिङन्त प्रक्रिया
स्त्री प्रत्ययादि प्रकरणों सहित

डा० बाबूराम त्रिपाठी

शास्त्री, एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत) पी-एच० डी०
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
सेण्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्राक्कथन

व्याकरण की यह पुस्तक एम० ए० संस्कृत के छात्रों के लाभ की दृष्टि से लिखी गई है। इसमें 'वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी' एवं 'लघु-सिद्धान्त कौमुदी' का वह अंश संकलित किया गया है जो आगरा विश्वविद्यालय के 'एम० ए० संस्कृत' के पाठ्य-क्रम में निर्धारित है। प्रस्तुत पुस्तक में इन संकलित अंशों की सरल हिन्दी भाषा में सोदाहरण व्याख्या की गई है। प्रारम्भ में व्याकरण-शास्त्र का संक्षिप्त परिचय, इसका वैशिष्ट्य, एवं इसमें प्रयुक्त विविध प्रणालियों, पारिभाषिक शब्दों, विशिष्ट नियमों आदि का विवरण दिया गया है।

विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में 'सिद्धान्त कौमुदी' का 'कारक प्रकरण'; 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' के कृदन्त', 'तद्धित', 'समास'; 'स्त्री प्रत्यय' एवं 'तिङन्त तथा तिङन्त प्रक्रिया' भाग निर्धारित हैं। 'तिङन्त प्रक्रिया' शब्द कुछ दिनों तक अस्पष्ट बना रहा, फलतः परीक्षा में सम्पूर्ण तिङन्त एवं ण्यन्तादि प्रक्रिया भाग से भी प्रश्न पूछे जाते रहे। सम्भवतः विद्वानों की यह धारणा रही है कि बिना तिङन्त प्रकरण के ज्ञान के प्रक्रिया भाग समझ में आ ही नहीं सकता, क्योंकि प्रायः वे सभी सूत्र, जो कि सामान्यतः प्रक्रिया भाग में काम करते हैं, तिङन्त प्रकरण के ही हैं, अतः प्रक्रिया भाग के अध्ययन के पूर्व तिङन्त का अध्ययन परमावश्यक है। विद्वानों की यह धारणा सर्वथा ठीक ही है, वस्तुतः प्रक्रिया भाग तिङन्त का परिशिष्ट भाग ही है, बिना तिङन्त का अध्ययन किये ण्यन्तादि प्रक्रिया समझ में नहीं आ सकती, बिना समझे-बूझे रट लेने की बात दूसरी है। इसी बात को और छात्रों की इस महती आवश्यकता को ध्यान में रखकर इस तृतीय संस्करण में मैंने भ्वादि से लेकर चुरादि तक लघुकौमुदी के समस्त प्रकरणों की विस्तृत व्याख्या उसी प्रकार कर दी है जैसे कि अन्य प्रकरणों की है। इसमें भ्वादि आदि गणों की सभी धातुओं के सभी रूपों की सिद्धि-प्रकार को सूत्र निर्देश पूर्वक समझाया गया है, प्रयोगों के पूर्ण सिद्धि-प्रकार के साथ-साथ सभी सूत्रों का अर्थ और उनका उदाहरणों में यथोचित समन्वय भी दिखलाया गया है। जहाँ कहीं आवश्यक समझा गया है वहाँ निर्धारित उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य उदाहरण भी दिये गये हैं।

इसका कारण यह है कि कभी-कभी प्रश्नपत्रों में ऐसे भी उदाहरण, सिद्धि के लिए पूछे जाते हैं जो कि निर्धारित पुस्तक में नहीं होते हैं और यह परीक्षार्थियों के ज्ञान सम्बर्द्धन की दृष्टि से अत्यावश्यक भी है। प्रायः सभी प्रकरणों में यह ध्यान रखा गया है और इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिये गये हैं। 'तिङन्त प्रकरण' के अतिरिक्त कारक आदि अन्य सभी प्रकरणों में प्रायः प्रत्येक उदाहरण की सिद्धि का प्रकार, सूत्र, सूत्रार्थ और उसका समन्वय भी दिखलाया गया है। आवश्यकतानुसार अन्य उदाहरणों द्वारा उनकी पुष्टि भी की गई है।

सूत्रों के अर्थ निर्देश में तथा उसके उदाहरण के साथ समन्वय में भाषा की स्पष्टता एवं सरलता का ध्यान रखा गया है। मूल पाठ के मूलानुवर्ती अनुवाद की अपेक्षा विषय की विशद व्याख्या की ओर ही विशेष ध्यान रखा गया है जिससे कि विषय सरलता से हृदयंगम हो सके। जहाँ कहीं आवश्यक समझा गया है वहाँ पाद टिप्पणी द्वारा विषय को या पारिभाषिक शब्दों को मतान्तर सहित स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार की विस्तृत व्याख्यात्मक पद्धति को अपनाते हुए भी, अनावश्यक विस्तार के संकोचन की दृष्टि से पूर्व प्रयोगों में अपनायी गई प्रक्रिया को प्रायः अग्रिम उदाहरणों में नहीं दुहराया गया है अपितु ऐसे स्थलों पर संकेतों से ही काम लिया गया है। संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक में पाणिनीय व्याकरण की पद्धति को सुरक्षित रखते हुए भी उसे नवीन एवं सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में जो सूत्रों के अर्थ तथा उदाहरणों की सिद्धि का प्रकार आदि हिन्दी भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, वही केवल अपना है, शेष सब कुछ उन ग्रन्थों का ही है जिनसे इन प्रकरणों को अविकलरूप में उद्धृत किया गया है, इनमें भी जो दोष या अशुद्धियाँ रह गई हैं वे लेखक के ही बुद्धि-भ्रम या बुद्धि-दोष के कारण हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में जिन ग्रन्थों या जिन महानुभावों से कुछ सहायता ली गई है उनका यत्र-तत्र संकेत करते हुए भी उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। श्री शिवराम आप्टे, श्रीरामचन्द्र काले, श्री श्रीधरानन्द शास्त्री एवं श्री बाबूराम सक्सेना आदि विद्वान् इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

इस पुस्तक को, इस रूप में, इतने थोड़े समय में तैयार करने का श्रेय वस्तुतः कुमारी मीरा अग्रवाल एम० ए० को ही है जिन्होंने मेरे निर्देशानुसार, अपने शोध कार्य में व्यस्त रहते हुए भी, बड़ी लगन, रुचि एवं परिश्रम से इस कार्य को सम्पन्न किया है। क्योंकि व्याकरण विषय में उनकी अपने अध्ययन काल से ही विशेष अभिरुचि रही है, अतएव इस कार्य में मुझे उनका पूर्ण सहयोग मिल सका है और उन्हें भी अपने अधीन विषय को इस रूप में देखकर प्रसन्नता का ही अनुभव हुआ है। आशा है कि उनकी इस प्रकार की रुचि इस क्षेत्र को और अधिक प्रशस्त कर सकेगी।

इस पुस्तक के प्रकाशन आदि का भार, श्री भोलानाथ जी अग्रवाल, संचालक विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ने ग्रहण किया है, अतः वे भी साधुवाद के भाजन हैं।

'मुद्रण कार्य में अशुद्धियाँ न रह जायँ' इसका पर्याप्त ध्यान रखा गया है, फिर भी त्रुटियाँ रह सकती हैं, अतः पुस्तक में संशोधन आदि के जो सुझाव विद्वज्जन भेजेंगे उनका कृतज्ञता के साथ स्वागत किया जायेगा।

गुरु पूर्णिमा
सं० २०३४ वि०

—बाबूराम त्रिपाठी

संस्कृत व्याकरणस्थ विषय-सूची

विषय	पृष्ठाङ्क

तिङन्त प्रकरणम्

तिङन्त प्रक्रिया

विषय	पृष्ठाङ्क

विषय-प्रवेश

संस्कृत व्याकरण का संक्षिप्त-परिचय

यह सर्वविदित है कि संस्कृत भाषा के सम्यक् अध्ययन के लिए संस्कृत व्याकरण का ज्ञान अनिवार्य है। अनिवार्य इसलिए कि बिना व्याकरण-ज्ञान के संस्कृत भाषा का सुचारु रूप से एवं सफलतापूर्वक अध्ययन हो ही नहीं सकता। व्याकरण ही, संस्कृत के कठिन एवं दुरूह शब्द-स्तोम में प्रवेश करने का एकमात्र साधन है और यही कारण है कि अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत भाषा में व्याकरण का इतना महत्त्व है और इसीलिए प्रायः समस्त संस्कृत परीक्षाओं में संस्कृत साहित्य के साथ-साथ व्याकरण को पृथक् रूप से एवं अनिवार्य रूप में स्थान दिया गया है। इसकी इसी अनिवार्यता एवं उपयोगिता को दृष्टिगत रखकर ही अनेक व्याकरण ग्रन्थों की रचना विविध पद्धतियों में होती रही है और हो रही है।

व्याकरण-शास्त्र का इतिहास अति प्राचीन है "तैत्तिरीय संहिता में ऐन्द्र-व्याकरण को सर्वप्रथम व्याकरण बताया गया है। इसके अतिरिक्त आचार्य पाणिनि के पूर्व अन्य भी कई प्रसिद्ध वैयाकरण हुए हैं, जैसे—आपि शलि, काशकृत्स्न, शाकल्य भागुरि, शाकटायन आदि। स्वयं आचार्य पाणिनि ने इनका उल्लेख किया है। आचार्य पाणिनि के पूर्व इनके द्वारा रचित व्याकरण-ग्रन्थ अवश्य प्रचलित रहे होंगे। पर आचार्य पाणिनि के द्वारा रचित 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ के उदित होने पर इन उक्त वैयाकरणों के ग्रन्थ नाममात्र को ही शेष रह सके, अर्थात् पाणिनि व्याकरण के सर्वोत्तम एवं सर्वातिशायी वैशिष्ट्य के आगे ये ग्रन्थ टिक न सके और इनका अध्ययनाध्यापन प्रायः अवरुद्ध हो गया। यद्यपि पाणिनि व्याकरण की जटिलता की प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ नवीन एवं सरल पद्धति को लेकर लिखे गये, 'कातन्त्र व्याकरण' 'चान्द्र व्याकरण' आदि व्याकरण ग्रन्थ भी प्रकाश में आये, तथापि वे भी पाणिनि व्याकरण के समक्ष अध्ययनाध्यापन में विशेष आदर न पा सके। मध्य युग में अपनी सरल संक्षिप्त; एवं नवीन पद्धति के कारण, यद्यपि "मुग्ध बोध व्याकरण" तथा "सारस्वत व्याकरण" भी प्रचलित हुए, तथापि उन्हें सर्वत्र व्यापक रूप न मिल सका, कुछ ही प्रदेशों में इन्हें स्थान मिला और वे कुछ समय तक चलते रहे, आजकल भी यत्र-तत्र "सारस्वत व्याकरण" को पढ़ने वाले एक दो विद्वान् मिल जाते हैं।

इस प्रकार समय-समय पर प्रचलित हुई भी व्याकरण की अनेक पद्धतियों में पाणिनि व्याकरण का ही स्थान सर्वोपरि माना गया है। इसमें सन्देह नहीं, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, पाणिनि-रचित अष्टाध्यायी एक जटिल एवं अतिदुरूह ग्रन्थ हैं' अतएव इसके प्रकाश में आते ही इस पर टीका ग्रन्थ तथा आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे जाने लगे। इस प्रकार पाणिनि-व्याकरण उत्तरोत्तर विकसित होता गया और आज वह सर्वश्रेष्ठ व्याकरण ग्रन्थ माना जाता है।

वस्तुतः आचार्य पाणिनि—(लगभग ५०० ई० पू०) रचित अष्टाध्यायी-व्याकरण-ग्रन्थ संस्कृत भाषा का एक अनुपम रत्न है। विश्व की किसी भी भाषा का कोई भी व्याकरण ग्रन्थ इसकी समता नहीं कर सकता, अतएव विदेशी विद्वानों ने भी इस व्याकरण ग्रन्थ की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अष्टाध्यायी में जैसा कि इसके नाम से ही विदित है। आठ अध्याय हैं, जो कि चार-चार पदों में विभक्त हैं, इस प्रकार इस ग्रन्थ में लगभग ४००० सूत्र हैं। पाणिनि की शैली, संक्षिप्त, सांकेतित एवं संयत होते हुए भी वैज्ञानिक है। इसमें क्रमशः संज्ञा, समास, विभक्ति, कृदन्त, स्त्री प्रत्यय, तद्धित, तिङन्त आदि शब्दों पर विवेचनात्मक यथा क्रम सूत्र हैं। अष्टाध्यायी के अतिरिक्त पाणिनि शिक्षा, धातु-पाठ, गण-पाठ भी पाणिनि-कृतियाँ हैं। वस्तुतः ''सभी शब्द धातुज होते हैं'' इस सिद्धान्त का प्रतिपादन, पाणिनि से भी पूर्व यास्काचार्य कर चुके थे, आचार्य पाणिनि ने इसी का अनुमोदन करते हुए सर्वप्रथम लगभग २००० धातुओं (मूल शब्दांशों) की उद्भावना की थी। इन्हीं धातुओं को आज व्याकरण ग्रन्थों में दश गणों में विभक्त किया गया है। संक्षिप्तता की दृष्टि से आचार्य पाणिनि ने गण-पाठ की भी रचना की थी। जहाँ उन्होंने अनेक शब्दों के विषय में, उनकी सिद्धि के लिए, कोई एक ही प्रकार (प्रत्यय-विधान आदि) बताना चाहा है, वहाँ उन सभी शब्दों का परिगणन न कर उन सभी शब्दों को एक समूह या गण में रखकर किसी एक शब्द को आदि में रखकर एक 'गण' बना दिया है, जैसे 'प्रज्ञादि, शकन्ध्वादि, गण। इस प्रकार संक्षिप्तता की दृष्टि से पाणिनि का गण-पाठ बड़ा ही उपयोगी है।

पाणिनि के बाद लगभग ३०० ई० पू० में कात्यायन मुनि हुए, जो कि पाणिनि सूत्रों पर 'वार्तिक' लिखने के कारण 'वार्तिककार' नाम से प्रसिद्ध हैं। वार्तिककार वस्तुतः पाणिनि सूत्रों के समालोचक थे, अपनी दृष्टि से जहाँ कहीं भी उन्होंने सूत्रों में कमी देखी वहाँ ही अपना एक नया वार्तिक बना दिया है। यद्यपि इनके उत्तरवर्ती भगवान् पतंजलि ने इनके कितने ही वार्तिकों का खण्डन कर सूत्रों को ही मंडित किया है, फिर भी वार्तिककार की पाणिनि व्याकरण को यह अत्युपयोगी देन है।

भगवान् पतञ्जलि (लगभग २०० ई० पू०) ने पाणिनि व्याकरण पर महाभाष्य लिखा है, जिसमें उन्होंने मुख्य-मुख्य सूत्रों एवं वार्तिकों की व्याख्या एवं विवेचना करते हुए अत्यन्त प्रवाहमयी, सरल, सुबोध एवं अतिरोचक शैली में पाणिनि-

व्याकरण के सूक्ष्म एवं दुर्बोध तत्वों का विश्लेषण किया है। व्याकरण-शास्त्र का यह सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। पतञ्जलि के इस महाभाष्य के साथ ही पाणिनि-व्याकरण का प्रथम युग समाप्त होता है। स्पष्ट है कि इन तीनों ही के द्वारा व्याकरण-शास्त्र का यह उदात्त, प्रशस्त एवं समृद्ध कलेवर प्रस्तुत हुआ है, अतएव व्याकरण-शास्त्र में ये तीनों 'मुनित्रय' के नाम से विख्यात हैं और विवाद-स्थलों में यथोत्तर मुनि का वचन ही प्रमाण माना जाता है।

व्याकरण-शास्त्र के द्वितीय युग को, जो कि लगभग सप्तम शतक से आरम्भ होता है, टीका युग कहा जा सकता है। इस युग में पाणिनि व्याकरण पर अनेक टीका ग्रन्थ लिखे गये हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रथम टीका वामन और जयादित्य की (६६० ई०) अष्टाध्यायी पर 'काशिकावृत्ति' नामक टीका है। भर्तृहरि (६५० ई०) ने अपने वाक्यपदीय नामक ग्रन्थ में पाणिनि व्याकरण का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया है। काशिकावृत्ति पर भी जिनेन्द्र बुद्धि ने 'न्यास' नामक और हरदत्त ने 'पदमञ्जरी' नामक व्याख्यापरक ग्रन्थ लिखे हैं। महाभाष्य पर भी कैयट ने 'प्रदीप' नामक अति उत्तम टीका लिखकर इस ग्रन्थ को और अधिक सरल बना दिया है।

इसके बाद भी टीका युग यद्यपि चलता ही रहा है, पर इस काल में व्याकरण के अध्ययन की पद्धति में कुछ परिवर्तन आ गया है। अब तक तो पाणिनि के सूत्रों के क्रम के अनुसार ही उनकी टीकायें लिखी जाती थीं पर अब विषय विभाग के अनुसार अष्टाध्यायी के सूत्रों को रखकर उनकी वृत्ति, व्याख्या एवं उदाहरण-योजना की जाने लगी थी। कारण, कि इस समय सूत्रों की विवेचना या व्याख्या अथवा समालोचना पर विशेष बल न देकर शब्द सिद्धि की प्रक्रिया पर ही अधिक ध्यान दिया जाने लगा था, अतः विषय विभागानुसार सूत्रों की व्यवस्था करना उपयोगी ही था। इस नई पद्धति को लेकर विमल सरस्वती (१३५० ई०) ने 'रूपमाला' नामक ग्रन्थ की तथा रामचन्द्र (लगभग १५वीं शती) ने 'प्रक्रिया कौमुदी' नामक ग्रन्थों की रचना की थी। पर इस प्रक्रिया युग में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'भट्टोजि दीक्षित' ने लिखा था जो कि आज 'वैयाकरण-सिद्धान्त-कौमुदी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ अपने अपूर्व वैशिष्ट्य के कारण इतना प्रचलित एवं विद्वज्जन-मान्य हुआ कि व्याकरण-शास्त्र के अध्ययन की प्राचीन पद्धति ही लुप्तप्राय हो गई और इसी के साथ ही साथ 'मुग्धबोध' आदि की व्याकरण पद्धति भी। इस सर्वोत्तम ग्रन्थ पर भी अनेक टीकायें लिखी गई हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध टीका 'प्रौढ़ मनोरमा' है। व्याकरण के दार्शनिक विवेचन सम्बन्धी ग्रन्थों में 'वैयाकरण भूषण' उल्लेखनीय है। अष्टाध्यायी पर 'शब्दकौस्तुभ' भी एक उच्चकोटि की रचना है। इस युग को शास्त्रार्थ की ओर ले जाने का सबसे बड़ा श्रेय नागेश भट्ट को है। वास्तव में नागेश एक अद्भुत प्रतिभाशाली विद्वान् थे जिनका अनेक विषयों पर पूर्ण अधिकार था। इन्होंने अनेक मौलिक एवं व्याख्यात्मक ग्रन्थों की रचना की है जिनका

अपना निजी महत्त्व है जैसे--वैयाकरण सिद्धान्त मञ्जूषा, लघुमञ्जूषा, शब्दरत्न, शब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर आदि। 'सिद्धान्त कौमुदी, की सबसे अधिक प्रचलित एवं सुबोध टीका परिव्राजकाचार्य ज्ञानेन्द्र सरस्वती की 'तत्त्वबोधिनी' नाम की टीका है।

'वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी' एक विशाल ग्रन्थ है और वर्षों में अध्येतव्य है। अतः बालकों को व्याकरण-शास्त्र में प्रवेश कराने की दृष्टि से भट्टोजि दीक्षित के शिष्य वरदराजाचार्य ने कुछ अधिक उपयोगी और सरल सूत्रों को लेकर 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' और 'मध्य कौमुदी' नामक ग्रन्थों की रचना की है। ये दोनों ग्रन्थ यद्यपि सिद्धान्त कौमुदी के ही संक्षिप्त रूप हैं, फिर भी थोड़े समय में व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करने में पूर्ण सहायक हैं।

पाणिनीय व्याकरण का वैशिष्ट्य

पाणिनि व्याकरण की अन्य विशेषताओं के साथ-साथ 'संक्षिप्तता' इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। आचार्य पाणिनि का ध्यान सदा संक्षेप की ओर ही रहा है। वे व्याकरण के प्रत्येक नियम को सूत्र रूप में ही अति संक्षिप्त करके प्रस्तुत करना चाहते थे। संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था, अतः उनके के लिए यह कार्य कठिन भी न था। भाषा की ऐसी समाहार शक्ति स्यात् ही कहीं देखने को मिल सके।

इसमें सन्देह नहीं कि इन सभी नियमों को अति संक्षिप्त करने में पाणिनि को अनेक विधियों का आश्रय लेना पड़ा है, जिनमें से कुछ का निर्देश नीचे किया जा रहा है।

(१) प्रत्याहार विधि

प्रत्याहार का प्रथम अक्षर न तो हल होता है और न इत्संज्ञक, पर दूसरा अक्षर अवश्य ही हल् होता है। इन सभी प्रकार के प्रत्याहारों का निर्माण निम्न-लिखित १४ माहेश्वर सूत्रों से होता है।

१. अइउण्, २. ऋलृक्, ३. एओङ्, ४. ऐऔच्, ५. हयवरट्, ६. लण्, ७. ञमङणनम्, ८. झभञ्, ९. घढधष्, १०. जबगडदश्, ११. खफछठथचटतव्, १२. कपय्, १३. शषसर्, १४. हल्।

प्रत्याहार के लिए इन सूत्रों में से किसी सूत्र के प्रथम अक्षर से अन्तिम हल वर्ण तक के बीच के सभी अक्षर तथा वह प्रथम अक्षर भी प्रत्याहार के अन्तर्गत आते हैं, जैसे—अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत 'अइउण्' सूत्र के प्रथम अक्षर 'अ' से लेकर 'ऐऔच्' सूत्र के 'च' वर्ण तक के सभी वर्ण परिगणित किये जायेंगे अर्थात्, 'अच्' प्रत्याहार में "अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ" इतने वर्ण आयेंगे। इसी प्रकार अन्य अक्, अण्, झल्, आदि प्रत्याहार बनेंगे। इन माहेश्वर सूत्रों के आधार पर बनने वाले प्रत्याहारों की कुल संख्या ४२ है, जिसको आगे लिखी तालिका में देखा जा सकता है—

१ अक्	८ अश्	१५ ऐच्	२२ जश्	२९ भष्	३६ रल्
२ अच्	९ इक्	१६ खय्	२३ झय्	३० मय्	३७ वल्
३ अट्	१० इच्	१७ खर्	२४ झर्	३१ यञ्	३८ वश्
४ अण्	११ इण्	१८ ङम्	२५ झल्	३२ यण्	३९ शर्
५ अण्	१२ उक्	१९ चय्	२६ झश्	३३ यम्	४० शल्
६ अम्	१३ एङ्	२० चर्	२७ झष्	३४ यय्	४१ हल्
७ अल्	१४ एच्	२१ छव्	२८ बश्	३५ यर्	४२ हश्

(२) गणपाठ

जहाँ आचार्य पाणिनि को ऐसे अनेक शब्दों का उल्लेख करने की आवश्यकता हुई, जिनमें केवल एक ही नियम-प्रत्यय विधान आदि—काम करता हो, वहाँ उन्होंने उन सभी शब्दों का उल्लेख न कर उन सबका एक 'गण' बनाकर 'गण' के आदि में आने वाले एक ही शब्द को लेकर सूत्र बना दिया है और इस गण पाठ को अन्त में दे दिया है, जैसे—'गर्गादिभ्यो यञ्' सर्वादीनि सर्वनामानि'' आदि। इन सूत्रों में केवल गर्ग और सर्व शब्द पठित हैं, पर वे अपने गण के क्रमशः १०८ और ३५ शब्दों के बोधक हैं।

(३) अनुबन्ध

अष्टाध्यायी में नीचे लिखे वर्णों की इत्संज्ञा की गई है—

१. अन्तिम हल् वर्ण
२. उपदेश में अनुनासिक अच्।
(धातु, आगम, प्रत्यय, आदेश के मूल रूप में स्थित अनुनासिक स्वर)
३. धातु के आदि के ञि टु डु
४. प्रत्यय से पूर्व आने वाले चवर्ग, टवर्ग, षकार
५. तद्धित प्रत्ययों को छोड़कर अन्य प्रत्ययों के आरम्भ में आने वाले ल् श् तथा कवर्ग।

---

१. हलन्त्यम् १।३।३।
२. उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२।
३. आदि ञिटुडवः १।३।५।
४. चुटू १।३।७। तथा षः प्रत्ययस्य १।३।६।
५. लशक्वतद्धिते १।३।८।
धातु सूत्र गणोणादि वाक्य लिङ्गानुशासनम्।
आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥

यद्यपि इन इत्संज्ञक वर्णों का लोप अवश्य हो जाता है, पर इनके कारण कभी-कभी गुण, वृद्धि, आगम, आदेश आदि भी होते हैं।

(४) अनुवृत्ति

पूर्व सूत्रों से उत्तरवर्ती सूत्रों में किसी पद के अनुवर्तन को अनुवृत्ति कहा गया है। सूत्रों के विस्तार को संक्षिप्त करने की दृष्टि से जहाँ कहीं आवश्यक हुआ है, पूर्व सूत्र पठित शब्द का उत्तरवर्त्ती सूत्र में अनुवर्तन कर उसका उस सूत्र के पदों के साथ अन्वय करके सूत्र का अर्थ पूर्ण कर लिया गया है। इस प्रकार पूर्व सूत्र पठित शब्दों को उत्तरवर्ती सूत्रों में दुहराना नहीं पड़ा है। प्रायः यह अनुवृत्ति निकटवर्ती सूत्रों में ही की गई है पर कभी-कभी मण्डूकप्लुति न्याय से दूरवर्ती सूत्रों में भी की गई है।

(५) संज्ञाएँ और परिभाषाएँ

विस्तार कम करने में संज्ञाएँ तथा परिभाषाएँ बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं, इनमें से कुछ तो पाणिनि के पूर्व ही बन चुकी थीं और कुछ स्वयं पाणिनि द्वारा ही निर्मित हुई हैं, उदाहरणार्थ इनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

(१) गुण—अ, ए, ओ की गुण संज्ञा होती है। (अदेङ् गुणः १।१।२।)
(२) वृद्धि—आ, ए, औ की वृद्धि संज्ञा होती है। (वृद्धिरादैच् १।१।१।)
(३) संयोग—दो या दो से अधिक व्यञ्जनों के मेल की संयोग संज्ञा की गई है। (हलोऽनन्तराः संयोगः १।१।७।)
(४) सम्प्रसारण—य् व् र् ल् के स्थान पर आने वाले क्रमशः इ, उ, ऋ, लृ, वर्णों की सम्प्रसारण संज्ञा होती है। (इग्यणः सम्प्रसारणम् १।१।४५।)
(५) लोप—प्रत्यय आदि का अपने स्थान पर न रहना ही प्रकारान्तर से लोप कहा गया है। (अदर्शनं लोपः १।१।६०।)

इसी लोप को स्थान भेद से लुक्, श्लु, लुप् नाम भी दिया गया है। कहीं-कहीं तो प्रत्यय आदि का सम्पूर्ण लोप नहीं होता अपितु उसके किसी एक अनावश्यक अंश का ही लोप होता है।

(६) उपधा

अन्तिम वर्ण से ठीक पहिले वाले वर्ण की उपधा संज्ञा होती है। (अलोऽन्त्यात् पूर्वं उपधा १।१।६५।)

(७) पद

सुप् या तिङ् प्रत्ययों से युक्त शब्द की पद संज्ञा होती है, (सुप्तिङन्तं पदम् १।४।१४।) प्रातिपादिक में लगने वाले प्रत्ययों को सुप् तथा धातु में लगने वाले प्रत्ययों को तिङ् कहते हैं। इसके अतिरिक्त सर्वनाम स्थान को छोड़कर 'सु' से लेकर

'कप्' तक के प्रत्ययों में अन्य प्रत्ययों के जुड़ने पर पूर्व शब्द की भी पद संज्ञा होती है। (स्वादिष्व सर्वनामस्थाने १।४।१७।)

(८) प्रातिपदिक

धातु प्रत्यय और प्रत्ययान्त के अतिरिक्त कोई भी अर्थवान् शब्द प्रातिपदिक कहलाता है। (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५।) इनके अतिरिक्त कृदन्त, तद्धितान्त तथा समासान्त पदों की भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। (कृत्तद्धित समासाश्च १।२।४६।)

(९) सर्वनाम स्थान

पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक शब्दों के आगे आने वाले सु, औ, जस्, अम्, औट, ये (विभक्ति) प्रत्यय सर्वनाम स्थान कहे जाते हैं।

(१०) विभाषा

जहाँ पर विकल्प से किसी विधि के होने और न होने की सम्भावना रहती है, वहाँ विभाषा संज्ञा होती है। (न वेति विभाषा १।१,४४।)

(११) निष्ठा

क्त और क्तवतु प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है। (क्तक्तवतू निष्ठा।१।१।२६।)

(१२) संहिता

वर्णों की अति समीपता की संहिता संज्ञा होती है। (परः सन्निकर्षः संहिता १।४।१०९।)

(१३) प्रगृह्य

ईकारान्त, ऊकारान्त, एकारान्त द्विवचन (सुबन्त अथवा तिङन्त) पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है। (ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११।।)

(१४) सार्वधातुक

तिङ् तथा शित् (जिनमें श् की इत् संज्ञा हो जाती है) प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है (तिङ् शित् सार्वधातुकम् ३।४।११३।) इनके अतिरिक्त शेष प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं। (आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४।)

(१५) भ संज्ञा

यकारादि और स्वरादि प्रत्ययों के जुड़ने पर पूर्व शब्द की पद संज्ञा न होकर 'भ' संज्ञा होती है (यचिभम् १।४।१८।)

(१६) घु संज्ञा

दाप् और दैप् धातुओं को छोड़कर दा और धा स्वरूप वाली धातुओं की घु संज्ञा होती है। (दाधाघ्वदाप् १।१।२०।)

(१७) घ संज्ञा

तरप् और तमप् प्रत्ययों की 'घ' संज्ञा होती है (तरप्तमपौ घः १।१।२३।)

(१८) टि संज्ञा

किसी शब्द के अन्तिम स्वर और यदि उसके बाद कोई व्यञ्जन भी हो तो उस समुदाय की टि संज्ञा होती है। (अचोऽन्त्यादिटि १।१।६४।)

(१९) सवर्ण संज्ञा

जिन वर्णों के तालु आदि उच्चारण स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न समान या एक हों वे सवर्ण संज्ञक होते हैं (तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् १।१।९।)

(२०) सत् संज्ञा

शतृ और शानच् प्रत्ययों की सत् संज्ञा है। (तौ सत् ३।२।१२७।)

(२१) कुछ पारिभाषिक शब्द

संक्षिप्तता की दृष्टि से कुछ पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया गया है–

प्रकृति भाव १—जहाँ वर्णों में कोई प्राप्त विकार नहीं होता और वे अपनी पूर्वस्थिति में ही बने रहते हैं, प्रकृति भाव कहा जाता है, यथा—गो+अयम्=गो अयम्, हरी एतौ।

एकादेश २—जहाँ दो वर्ण मिलकर एक रूप हो जाते हैं, वहाँ एकादेश कहा जाता है। यथा—गुण वृद्धि आदि रूप एकादेश—रमा+ईशः=रमेशः, एक+एव= एकैव, कार्यालयः।

पूर्वरूप ३—जहाँ पूर्व और पर वर्ण के मिलने पर केवल पूर्ववर्ण ही रह जाता है, पर वर्ण नष्ट हो जाता है, यथा—हरे+अयम्=हरेऽयम्।

पररूप ४—जहाँ पर और पूर्व वर्णों के मिलने पर केवल पर वर्ण ही रह जाता है, पूर्व वर्ण नहीं रहता; यथा—प्र+एजते=प्रेजते।

आगम ५—जहाँ पूर्वतः वर्तमान वर्ण तो बना ही रहता है और अन्य वर्ण का भी आगमन हो जाता है, वहाँ 'आगम' कहा जाता है, यह मित्रवत् होता है।

आदेश ६—जहाँ एक वर्ण के स्थान पर दूसरा वर्ण आकर पूर्व वर्ण का नाश कर देता है, वहाँ 'आदेश' कहा जाता है। यह शत्रुवत् होता है।

संक्षिप्तता की इन कुछ विधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य विधियाँ भी हैं, जिनका निर्देश पुस्तक में यथास्थान किया गया है। जैसे– योग विभाग, नियम सूत्र, अपवाद सूत्रादि, पर इस स्थल पर यह भी विचारणीय हो जाता है कि आचार्य पाणिनि ने ऐसी संक्षिप्त विधि क्यों अपनायी और फलतः उनकी अष्टाध्यायी इतनी दुरूह बन गई, इसके सम्भवतः निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

(१) **स्मरण रखने की सुविधा**—विस्तृत व्याख्यात्मक ढंग से कही हुई बात का याद रखना जितना कठिन होता है, सूत्र रूप में कही हुई बात उतनी ही सरल होती है। यदि इन विधियों का उपयोग न किया गया होता तो पाठकों को अधिक शब्द और नियम स्मरण करने पड़ते, फलतः उनके शीघ्र विस्मृत हो जाने की भी सम्भावना रहती। संक्षिप्त नियमों को याद रखने में समय की भी बचत होती है तथा इनकी आवृत्ति करने में भी कम समय लगता है और परिश्रम भी कम होता है।

लेखन सामग्री आदि का अभाव—पाणिनिकाल में लेखन सामग्री तथा मुद्रण यन्त्रादि की भी यही सुविधा न थी जो आज है, अतः अध्ययनाध्यापन प्रायः मौखिक ही चलता था, यह कार्य संक्षेप में ही अधिक सुविधाजनक हो सकता था। दूसरी बात यह भी थी कि इसमें समय, धन, शक्ति आदि की भी बचत थी, इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर यह विधि अपनाई गई होगी।

यद्यपि इस संक्षिप्तता से लाभ तो अवश्य हुआ जैसा कि अभी बताया गया है, पर 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' इस कथन के अनुसार पाणिनि-अष्टाध्यायी में संक्षिप्त नियमों में संक्षेप की अति हो गई जो कि न होनी चाहिए थी, फलतः यह ग्रन्थ इतना दुरूह हो गया कि बिना व्युत्पन्न गुरू की कृपा और सहायता के, यह साधारण पाठकों की पहुँच से बाहर हो गया। पाणिनि व्याकरण के सम्यक् अध्ययन के लिए जहाँ उच्चकोटि के वैयाकरण गुरू की आवश्यकता है। वहाँ पाठक के लिए घोर परिश्रम एवं समय की भी अपेक्षा है, बिना इसके व्याकरण-शास्त्र का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः व्याकरण-शास्त्र के अध्ययन की विधि के विषय में नीचे लिखी कुछ बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए—

पाणिनीय व्याकरण में प्रयुक्त संज्ञाओं, परिभाषाओं, पारिभाषिक शब्दों तथा नियमों का एवं संक्षेप करने वाली प्रणालियों का सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए, तदनन्तर ही इसके अध्ययन में प्रवृत्त होना चाहिए।

इन संक्षिप्तीकरण की विधियों को समझने लिये व्युत्पन्न गुरु की कृपा और सहायता प्राप्त करनी चाहिए।

इस स्थल पर संक्षिप्तीकरण की कुछ ही विधियों की चर्चा मात्र की गई है, पाणिनीय व्याकरण सागर के अन्दर प्रवेश करने पर अनेक ऐसी विधियाँ दृष्टिगत होंगी जो कि बड़ी ही जटिल दुरूह, परिश्रम-साध्य एवं समय-साध्य हैं। यथा स्थान इनका ज्ञान भी परमावश्यक है, जैसे—योग विभाग आदि।

कभी-कभी कुछ ऐसे भी प्रयोग मिलते हैं जिनकी सिद्धि यथोपलब्ध सूत्र नियमों से नहीं हो सकती, कुछ प्रत्यय विधान आदि के विषय में भी यही बात देखी जाती है। ऐसे प्रयोगों के साधन के लिए भगवान् पतञ्जलि ने कई सूत्रों में योग विभाग की विधि का निर्देश किया है अर्थात् एक सूत्र के दो भाग करके शब्द सिद्धि का निर्देश किया है।

कभी-कभी कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनकी सिद्धि यथोपलब्ध नियमों के अनुसार नहीं हो पाती, ऐसे प्रयोगों की सिद्धि प्रायः ज्ञापकों द्वारा की गई है अर्थात् पाणिनि आदि आचार्यों के द्वारा किये गये उस प्रयोग रूप ज्ञापक के आधार पर उस प्रयोग को सिद्ध मान लिया गया है। ऐसे अनेक ज्ञापकों का निर्देश व्याकरण-शास्त्र में मिलता है। इसी प्रकार कुत्रचित् इष्टियों से भी काम लिया गया है। जहाँ कहीं कोई बात पाणिनि सूत्रों के नियमों से प्रकट नहीं हो पाती और वह भाष्यकार को अभीष्ट होती है वहाँ यह बात इसीलिए प्रामाणिक मान ली गई है, क्योंकि वह भाष्यकार को अभीष्ट है। कई स्थलों पर इस प्रकार की भाष्येष्टियाँ भी देखी जाती हैं।

व्याकरण-शास्त्र के अध्येता को इन सब बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। इन तथा इसी प्रकार की व्याकरण-शास्त्र में प्रयुक्त अन्य विधियों एवं पारिभाषिक शब्दों का ध्यान रखकर अध्ययन करने पर इस शास्त्र का अल्प समय में ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पाठक इससे लाभान्वित होंगे, ऐसी आशा है।

अथ कारक प्रकरणम्

हिन्दी में जिन शब्दों के आगे, कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि सम्बन्ध दिखाने के लिये, ने, को, से, के लिये, आदि कारक चिन्ह जोड़े जाते हैं, उन्हें प्रातिपदिक कहते हैं। ये प्रातिपदिक दो प्रकार के होते हैं—

१—अव्युत्पन्न प्रातिपदिक।

२—व्युत्पन्न प्रातिपदिक।

वे सार्थक शब्द जिनका किसी धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त से सम्बन्ध नहीं रहता, अव्युत्पन्न प्रातिपदिक कहे जाते हैं और कृत्प्रत्ययान्त, तद्धित प्रत्ययान्त एवं समास प्रत्ययान्त आदि शब्द व्युत्पन्न प्रातिपदिक कहे जाते हैं। इन सभी प्रकार के प्रातिपदिक शब्दों के आगे विविध कारक सम्बन्धों को प्रकट करने के लिये हिन्दी में ने, को, आदि और संस्कृत में सु, औ, जस्, आदि प्रत्यय जोड़े जाते हैं। इस प्रकार एक ही शब्द के विभिन्न कारकों व बचनों की दृष्टि से कई रूप हो जाते हैं। कर्त्ता कर्म आदि कारकों के ही अर्थ में संस्कृत में प्रथमा द्वितीया आदि विभक्तियों का प्रयोग होता है। विभक्ति शब्द का अर्थ है विभाग अर्थात् कारक सम्बन्धों का विभाग। प्रथमा द्वितीया आदि सात विभक्तियां हैं। इनका प्रयोग किन-किन अर्थों में होता है, यही इस प्रकरण में बतलाया जायेगा।

कारक[1] उस वस्तु को कहा जाता है जिसका अन्वय (सम्बन्ध) साक्षात् अथवा असाक्षात् रूप से, वाक्य की क्रिया से हो, अर्थात् क्रिया के सम्पादन में जिसका उपयोग हो। जैसे, "वन से आकर राम ने सीता के लिए, लंका में रावण को वाण से

---

१. "क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्" क्रिया से जिसका सम्बन्ध हो, उसे कारक कहते हैं। क्रिया का सम्पादन करने वाला कर्त्ता कहलाता है। ऊपर लिखे वाक्य में क्रिया सम्पादक होने से राम, कर्त्ता है। क्रिया का प्रभाव जिस पर पड़ता है वह 'कर्म' कहा जाता है। 'मारना' क्रिया का प्रभाव 'रावण' पर पड़ता है, अतः वह 'कर्म' है। क्रिया के साधन में अत्यधिक सहायक 'करण' कहलाता है, यहाँ 'वाण' करण है। सीता के लिये 'रावण' मारा गया था। अतः 'सीता, सम्प्रदान, 'वन' 'अपादान' लंका में क्रिया पूर्ण हुई थी, अतः लंका अधिकरण कारक है।

मारा था।" इस वाक्य में वन, राम, सीता, लंका, रावण, वाण, इन सभी शब्दों का मारना-क्रिया के सम्पादन में साक्षात् या असाक्षात् रूप से उपयोग है, अतः ये सभी कारक कहे जायेंगे। इस प्रकार क्रिया के सम्पादन में ये छः सम्बन्ध होते हैं। इन्हीं सम्बन्धों को प्रकट करने के लिये कारकों का प्रयोग होता है। और इन्हीं अर्थों में प्रथमा आदि विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं।

क्रिया से जिसका सम्बन्ध नहीं होता उसे कारक नहीं कहा जाता है, जैसे, "राम के भाई ने गोपाल को एक पुस्तक दी।" इस वाक्य में भाई, गोपाल तथा पुस्तक इन शब्दों का तो देना क्रिया के साथ सम्बन्ध है, परन्तु 'राम' का क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः 'राम' को कारक नहीं कहा जा सकता, उसका सम्बन्ध केवल 'भाई' से है, क्रिया से नहीं। इसलिये सम्बन्ध को कारक नहीं कहा जाता। संस्कृत में भी सम्बन्ध मात्र में की जाने वाली षष्ठी विभक्ति कारक विभक्ति नहीं कही जाती, उसका सम्बन्ध किसी अन्य पद से रहता है। अतएव उसे उपपद विभक्ति कहा जाता है, शेष विभक्तियाँ कारक कहलाती हैं। जैसा कि कहा गया है—

कर्त्ता कर्म च करणं, सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे, इत्याहुः कारकाणि षट्॥

इसी प्रकार 'सम्बोधन' भी कारक नहीं होता, क्योंकि उसका भी सम्बन्ध किसी क्रिया के साथ नहीं रहता।

प्रथमा विभक्तिः

प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६ ।।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः, मात्र शब्दस्य प्रत्येकं योगः ।

प्रातिपदिकार्थमात्रे लिंगमात्राधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् ।

उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्री, ज्ञानम् ।

प्रातिपदिकार्थेति — सूत्र में पठित मात्र शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध है । अतः केवल प्रातिपदिक अवस्था में किसी शब्द का नियत अर्थ बताने के लिए, अथवा केवल लिंग मात्र का बोध कराने के लिए, अथवा परिमाण मात्र बताने के लिए, अथवा वचन मात्र बताने के लिये प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है ।

नियतेति —'यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेनोपस्थितिः सोऽत्र प्रातिपदिकार्थो विवक्षित इत्यर्थः ।' अर्थात् जिस प्रातिपदिक के उच्चारण करने पर जिस अर्थ की नियमतः उपस्थिति होती है, उसे ही प्रातिपदिकार्थ कहते हैं, इसी केवल प्रातिपदिकार्थ के बोधनार्थ प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है ।

वस्तुतः प्रातिपदिक का अर्थ है—सार्थक शब्द, जिसे Base या शब्द की Crude form कह सकते हैं । प्रत्येक सार्थक शब्द स्वभावतः अपना कुछ निश्चित अर्थ अवश्य रखता है जो कि प्रातिपदिकार्थ कहलाता है । पर इस नियत अर्थ को भी प्रकट करने के लिये उस सार्थक शब्द (प्रातिपदिक) के आगे प्रथमा विभक्ति का प्रयोग करना पड़ता है । क्योंकि संस्कृत वैयाकरणों की मान्यता के अनुसार कोई भी सार्थक शब्द (प्रातिपदिक) तब तक प्रयोगार्ह नहीं बन सकता, जब तक कि उसके आगे कोई न कोई विभक्ति, प्रत्यय न लगा दिया जाय; अर्थात् कोई सार्थक भी शब्द तब तक अपना अर्थ बोध नहीं करा सकता जब तक कि उसके आगे सुप् या तिङ् प्रत्यय जोड़कर उसे पद न बना लिया जाय । केवल शब्द मात्र का प्रयोग संस्कृत वैयाकरणों की दृष्टि में निरर्थक है, उसका प्रयोग न करना चाहिए, "अपदं न प्रयुञ्जीत" ।

उदाहरणार्थ यदि केवल 'कृष्ण' कहें तो वैयाकरणों की दृष्टि में यह निरर्थक होगा । 'कृष्णः' यही सार्थक प्रयोगार्ह और अर्थ बोधक्षम कहा जायेगा । इसीलिये केवल शब्द का नियत अर्थ बोध कराने के लिये प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है ।

अलिंगा नियतलिंगाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम् ।

अनियतलिंगास्तु लिंगमात्राधिक्यस्य । तटः, तटी, तटम् । परिमाणमात्रे, द्रोणो ब्रीहिः । द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छन्नो ब्रीहिरित्यर्थः । प्रत्यार्थे परि-

---

यही कारण है कि संस्कृत वैयाकरणों ने अव्यय शब्दों में भी विभक्ति कल्पना कर उसका लोप किया है। उच्चैः नीचैः आदि अव्ययों में भी इसी कारण विभक्ति कल्पना कर फिर 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से उसका लोप किया है। अन्यथा अव्यय भी निरर्थक ही होते।

अलिंगा इति—केवल प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति के वे ही उदाहरण हो सकते हैं जो कि अलिंग हों अर्थात् जिनसे किसी विशेष लिङ्ग का बोध न होता हो, जैसे—अव्यय—उच्चैः नीचैः आदि। तथा वे शब्द भी प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति के उदाहरण होते हैं जो नियत (निश्चित) लिङ्ग हों अर्थात् जिनके अर्थ के साथ ही किसी न किसी लिङ्ग का नियत रूप से बोध होता है, जैसे 'कृष्णः' यह शब्द केवल पुल्लिङ्ग है (यद्यपि नीलद्रव्य अर्थ में यह शब्द भी अनियत लिङ्ग है तथापि वासुदेव भगवान् अर्थ में नित्य पुल्लिग होने से नियतलिग है) 'श्रीः' नित्य स्त्रीलिंग तथा 'ज्ञानम्' नित्य नपुंसक लिंग वाची है। इसी प्रकार रामः लक्ष्मीः फलम् आदि शब्द नियत लिंग होने से प्रातिपदिकार्थ मात्र के उदाहरण हैं। "उच्चैः नीचैः" ये दोनों अलिंग अव्यय हैं। इनकी प्रकृति है 'उच्चैस् नीचैस्' (प्रातिपदिक) पर इनके अर्थ ज्ञान के लिए इनके आगे प्रथमा विभक्ति के 'सु' प्रत्यय लगाने पड़ेंगे और फिर उच्चैस्+सु, नीचैस्+सु ऐसी स्थिति होने पर 'सु' प्रत्यय का लोप कर इन को पद बनाया जायेगा। पद बनाने का फल यह होता है कि इनके आगे 'स्' के स्थान में रुत्व विसर्ग हो जाते हैं और तब इनका 'उच्चैः नीचैः' इस रूप में वाक्य में प्रयोग होता है। 'कृष्णः श्रीः ज्ञानम्' नियत लिंग के उदाहरण हैं, क्योंकि इनसे अपने लिंग का बोध नियत रूप से होता है, अतः इनके अर्थ बोधनार्थ इनके आगे प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

अनियतलिंगास्तु इति—प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिंगमात्र का बोध कराने के लिये भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। इसके उदाहरण वे शब्द हैं जो कि अनियत लिंग हैं। अर्थात् जिन शब्दों का कोई विशेष लिंग निश्चित नहीं है, जैसे तटः, तटी, तटम् अर्थात् तट शब्द का प्रयोग अनियमित रूप से तीनों लिंगों में हो सकता है। 'लिंगमात्राधिक्यस्य' का तात्पर्य है कि ऐसे अनियतलिंग शब्दों से प्रातिपदिक के अर्थ के बिना केवल लिंगमात्र की प्रतीति तो हो नहीं सकती। अतः लिंग मात्र का अर्थ 'लिंग मात्र का अधिक बोध कराना' समझना चाहिए। अतः 'तटः, तटी, तटम्' ये शब्द अपना नियत अर्थ 'किनारा' का बोध कराने के साथ-साथ पुल्लिङ्ग आदि अधिक अर्थ का भी बोध कराते हैं। यदि सूत्र में लिङ्ग मात्र के अर्थ के अधिक बोध कराने के लिए 'लिङ्ग' शब्द का प्रयोग न किया गया होता, तब तो ऐसे शब्दों से केवल प्रातिपदिक (तट) का ही 'किनारा' यह अर्थ बोधित होता क्योंकि

माणे प्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम्। प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन व्रीहौ विशेषणमिति विवेकः।

वचनं संख्या। एकः द्वौ बहवः। इहोक्तार्थत्वाद्विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्।

ये शब्द तो अनियत लिंग हैं। इनका नियत लिंग एक तो हो नहीं सकता। अतः केवल अधिक लिंग का बोध कराने के लिए इनसे प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

परिमाणमात्र इति—इसी प्रकार उक्त रीति से परिमाण मात्र अधिक अर्थ बोधन के लिए भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है जैसे "द्रोणो व्रीहिः"। यहाँ द्रोण का अर्थ है, द्रोण परिमाण। द्रोण एक-विशेष तौल का नाम है जो कि एक सेर के बराबर होता है, अतः 'द्रोणो व्रीहि' का अर्थ है—एक सेर बराबर तौल से तुला हुआ चावल। यहाँ द्रोण शब्द के आगे प्रयुक्त प्रथमा विभक्ति सामान्य परिमाण (तौल) अर्थ बोधन के लिए है। द्रोण शब्द का प्रातिपदिकार्थ तो परिमाण विशेष (एक सेर) है। अतएव यहाँ द्रोण (प्रकृति) का अर्थ (परिमाण विशेष), प्रथमा विभक्ति के 'सु' प्रत्यय का अर्थ (सामान्य परिमाण) के साथ अभेद सम्बन्ध से अन्वित होकर फिर व्रीहि के साथ परिच्छेद्य परिच्छेदक भाव सम्बन्ध से अन्वय प्राप्त करता है और तब 'द्रोणो व्रीहिः' का अर्थ होता है—द्रोण रूप परिमाण विशेष से तुला हुआ चावल। तात्पर्य यह कि यहाँ पहिले द्रोण विशेष (प्रकृत्यर्थ) और परिमाण सामान्य (प्रत्ययार्थ) का अभेदान्वय होता है, तदनन्तर द्रोण रूप परिमाण का व्रीहि के साथ परिच्छेद्य परिच्छेदक भाव से अन्वय होता है। इस प्रकार यहाँ सामान्य परिमाण रूप अधिक परिमाण बोधनार्थ प्रथमा विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

वचन मिति—इसी प्रकार वचन (संख्या) मात्र अर्थ को बोध कराने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे, एकः द्वौ बहवः। यहाँ संख्या मात्र बोधनार्थ प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। यदि सूत्र में (वचन) शब्द का ग्रहण न करते तो इन शब्दों के आगे प्रथमा विभक्ति नहीं आ सकती थी। क्योंकि क्रमशः एकत्व द्वित्व बहुत्व जो इन शब्दों का नियत अर्थ है जिसके बोधनार्थ प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है वह तो इन शब्दों का ही अर्थ है, और जब इन शब्दों से ही संख्या अर्थ, प्रकट हो जाता है तो फिर "उक्तार्थानाम प्रयोगः" (उक्त अर्थों का पुनः प्रयोग नहीं होता) इस न्याय से प्रथमा विभक्ति का प्रयोग नहीं होना चाहिए था। इसलिए सूत्र में 'वचन' शब्द का ग्रहण लिया गया है, जिससे कि संख्यावाचक शब्दों के आगे भी प्रथमा विभक्ति आ सके।[1]

---

१. यद्यपि वैयाकरणों के "पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः" इस वचन के अनुसार जाति, व्यक्ति, लिंग, वचन और कारक ये पांच अर्थ प्रातिपदिक के होते हैं। तथापि यहाँ प्रातिपदिकार्थ से जाति व व्यक्ति का ही ग्रहण है, क्योंकि सूत्र में लिंग व संख्या अर्थ में प्रथमा विभक्ति का पृथक् विधान किया गया है। अतः यहाँ प्रातिपदिकार्थ से केवल जाति व व्यक्ति का ही ग्रहण किया जायगा। वास्तव→

सम्बोधने च । २।३।४७ ॥

इह प्रथमा स्यात् । हे राम । इति प्रथमा ।

सम्बोधने चेति—सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे हे राम, यहाँ प्रथमा विभक्ति का प्रत्यय सु आता है । सम्बोधन में सु का लोप होने पर 'हे राम' यह प्रयोग होता है । सम्बोधन का अर्थ है, अच्छी तरह समझाना, जब वक्ता अपनी बात सुनने के लिए श्रोता को बुलाकर अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, उसी समय श्रोता वक्ता की ओर सावधान होकर सुनता है । इस प्रकार प्रथमा विभक्ति विधान के ये दो ही सूत्र पाणिनि व्याकरण में उपलब्ध होते हैं ।

(यहाँ यह शंका, कि प्रथमा विभक्ति के तो उपर्युक्त केवल दो ही सूत्र हैं, पर इनसे भिन्न स्थलों में जैसे कर्तृवाच्य वाक्यों में कर्त्ता में तथा कर्मवाच्य वाक्यों में कर्म में जो प्रथमा विभक्ति होती है उसका विधान किस सूत्र से होगा, न होना चाहिए क्योंकि संस्कृत भाषा में वाक्य में प्रधानता क्रिया पद की होती है, इस क्रिया से सम्बन्ध रखने वाला ही कारक कहलाता है; अतः इस क्रिया के साथ जिस शब्द का जैसा अन्वय होगा वह शब्द वैसा कारक अपने आप समझ लिया जायगा । वाक्य में प्रयुक्त क्रिया, काम का करने वाला या जिससे वह काम होगा अपने आप कर्त्ता समझ लिया जायगा और क्रिया के अनुसार ही उससे प्रथमा विभक्ति या कर्मवाच्य वाक्यों में कर्म में प्रथमा विभक्ति समझ ली जायगी । अतः इसका अलग विधान नहीं किया गया है ।)

वस्तुतः केवल लिंग की प्रतीति नहीं हो सकती है, क्योंकि सभी शब्दों में लिंग के पहले जाति और व्यक्ति की प्रतीति अवश्य ही रहती है । अतः एक लिंग मात्र में प्रथमा विभक्ति विधान से यह तात्पर्य है कि जहाँ जाति और व्यक्ति के अर्थ से अधिक यदि किसी की प्रतीति हो तो वह लिंगमात्र की हो, इसी लिंग मात्राधिक्य में प्रथमा विभक्ति का विधान किया गया है ।

इति प्रथमा

में प्रातिपदिक के उच्चारण से इन्हीं दो (जाति व व्यक्ति) की उपस्थिति नियत रूप से होती है, लिंग आदि की प्रतीति तो अनिश्चित रहती है—कहीं पुल्लिंग की प्रतीति, कहीं स्त्री लिंग, और कहीं नपुंसक लिंग की प्रतीति होती है । इसी प्रकार संख्या व कारकों की भी प्रतीति निश्चित नहीं रहती, एक ही शब्द से कहीं एकत्व की, कहीं द्वित्वादि की प्रतीति होती है; इसी प्रकार कहीं कर्त्ता की; कहीं कर्मादि की प्रतीति होती है । इसीलिए प्रातिपदिकार्थ से केवल जाति व व्यक्ति का ही ग्रहण किया गया है ।

द्वितीया विभक्ति

कारके १।४।२३।। इत्यधिकृत्य ।

कर्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९।।

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्म संज्ञं स्यात् ।

कर्तुः किम् —माषेष्वश्वं बध्नाति । कर्मणः ईप्सिता माषा न तु कर्तुः ।

कारके इति—इस सूत्र द्वारा 'कारक' का अधिकार कर (आगे के सूत्रों द्वारा कारकों की कर्म आदि संज्ञायें की गई हैं।

कर्तुरिति—वाक्य में प्रयुक्त क्रिया द्वारा कर्त्ता जिस पदार्थ को सबसे अधिक चाहता है, उसकी कर्म[1] संज्ञा होती है, अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त पदार्थों में से कर्त्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिस पदार्थ की सबसे अधिक इच्छा करता है उसे ही कर्म कहते हैं। तात्पर्य यह कि कर्त्ता जिस क्रियान्वित पदार्थ को अपने व्यापार द्वारा प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक चाहता है, उसे कर्म कहते हैं। यथाः—"कृष्णः गोपालस्य ग्रामात् अश्वम् आनयति" वाक्य में कर्त्ता व क्रिया के अतिरिक्त गोपाल ग्राम और अश्व ये तीन पदार्थ हैं, परन्तु कर्त्ता (कृष्णः) को आनयन क्रिया द्वारा अश्व ही अभीष्टतम है, अन्य नहीं, अतः अश्व की ही कर्म संज्ञा होगी।

कर्तुः किमिति— यदि वाक्यगत कोई पदार्थ कर्त्ता को इष्टतम न होकर किसी

---

१. कर्म का सामान्य लक्षण होता है कि "जिस वस्तु या व्यक्ति पर त्रिया का फल समाप्त हो, उसे कर्म कहते हैं", किन्तु वह घर जाता है, इस वाक्य में यद्यपि जाना क्रिया का फल 'घर' पर समाप्त होता है, तथापि वह साधारणतः कर्म नहीं माना जाता और न 'जाना' क्रिया सकर्मक ही है, अतः ऐसे 'घर' आदि शब्दों को, जो साधारण नियमानुसार कर्म नहीं बन सकते, कर्म बनाने के लिए विशेप नियमों का विधान किया गया है। अर्थात् गम् विश् आदि क्रियाओं के योग में कर्म विधान के लिए विशेष नियमों का निर्देश किया गया है।

तमब् ग्रहणं किम्—पयसा ओदनं भुङ्क्ते। कर्मेत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहण माधारनिवृत्यर्थम्, अन्यथा गेहं प्रविशतीत्यत्रैव स्यात्।

अनभिहिते २।३।१।। इत्यधिकृत्य।

द्वितीया २।३।७।।

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मणि प्रातिपदिकार्थमात्र इति प्रथमैव। अभिधानं तु प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः। तिङ्—हरिः सेव्यते। कृत्—लक्ष्म्या सेवितः। तद्धितः—शतेन क्रीतः शत्यः। समासः—प्राप्त आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः।

अन्य कर्म आदि को इष्टतम होगा तो उसकी कर्म संज्ञा न होगी, जैसे, "माषेष्वश्वं-बध्नाति"—उदड़ों में (उरद के खेतों में) अश्व को बांधता है। इस वाक्य में माष और अश्व दो पदार्थ हैं पर कर्त्ता को इष्टतम पदार्थ बन्धन क्रिया के द्वारा अश्व ही है जिसे वह बांधना चाहता है न कि माष। माष अश्व को भले ही इष्ट हों पर कर्म संज्ञा तो कर्त्ता द्वारा इष्टतम पदार्थ की ही होगी, न कि कर्म आदि के इष्टतम पदार्थ की। अतः यहां अश्व को ही कर्म संज्ञा होगी, माष की नहीं। कर्म निर्धारण में कर्त्ता की इच्छा का ही प्राधान्य देखा जाता है, कर्म आदि की इच्छा का नहीं।

तमबिति—सूत्र में ईप्सित शब्द के आगे तमप् प्रत्यय के प्रयोग करने का प्रयोजन यह है कि जो वस्तु कर्त्ता को अधिक प्रिय होगी उसी की कर्म संज्ञा होगी, अन्य की नहीं, जैसे, "पयसा ओदनं भुङ्क्ते" (दूध के साथ चावल खाता है) इस वाक्य में कर्त्ता को इष्टतम पदार्थ ओदन ही है, इसीलिये ओदन की ही कर्म संज्ञा होगी पयस् की नहीं, क्योंकि यद्यपि पयस् भी कर्त्ता को इष्ट है पर इष्टतम नहीं। दूध पेय पदार्थ है, भोज्य नहीं, वह तो भोजन क्रिया का साधन मात्र है।

कर्मेत्यनु वृत्ताविति—जब कि "अधिशीङ्स्थासां कर्म" इस सूत्र से 'कर्म' इस शब्द की अनुवृत्ति (आवश्यकतानुसार दूसरे पूर्ववर्त्ती सूत्रों से अन्य पदों को ले आना) हो ही सकती थी, तो फिर उक्त सूत्र में कर्म ग्रहण का प्रयोजन है कि उक्त सूत्र से कर्म के साथ-साथ आधार की भी, जिसकी कि वहां कर्म संज्ञा होती है, आवृत्ति न चली आवे। यदि ऐसा होगा, तब तो आधार की ही कर्म संज्ञा होने से 'गेहं प्रविशति' इत्यादि वाक्यों में 'गेहम्' इत्यादि आधारभूत शब्दों की ही कर्म संज्ञा हो सकेगी, पर 'हरिम् भजति' इत्यादि वाक्यों में 'हरिम्' आदि में कर्म संज्ञा न हो सकेगी। क्योंकि 'हरिम्' तो आधार नहीं, अतएव सूत्र में 'कर्म' ग्रहण किया गया है, जिससे कि "हरिम् भजति" जैसे वाक्यों में भी कर्म संज्ञा हो सके।

अनभिहिते इति—अनभिहित (अनुक्त-अकथित) अर्थ में, इसका अधिकार कर अर्थात् आगे के सूत्रों में इसका अधिकार मानकर—

कर्मणीति—अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। अर्थात् तिङ् आदि प्रत्ययों के द्वारा अकथित कर्म में द्वितीया होती है। कर्तृवाच्य वाक्यों में कर्म सदा

क्वचिन्निपातेनाभिधानम्, यथा विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्। साम्प्रतमित्यस्य हि युज्यत इत्यर्थः।

तथायुक्तं चानीप्सितम् ।१।४।५७।।

ईप्सिततमवत्क्रियया युक्तम नोप्सितमपि कारकं कर्म संज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते।

अनुक्त रहता है अतः उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। "हरिं भजति" इस वाक्य में भजन क्रिया द्वारा कर्त्ता (भक्त) को इष्टतम कारक है 'हरि' अतः उसकी कर्म संज्ञा होकर प्रस्तुत सूत्र से उसमें द्वितीया विभक्ति हुई है और उक्त कर्त्ता में प्रातिपदिकार्थ इत्यादि नियम से प्रथमा ही होगी।

अभिधानमिति—प्रायः तिङ्, कृत्, तद्धित और समास से कर्म आदि कारक उक्त होते हैं। 'हरिः सेव्यते' यहाँ कर्म वाच्य में तिङ् (ते) से कर्म के उक्त हो जाने से (हरिः) में प्रथमा विभक्ति है। 'लक्ष्म्या सेवितः' यहाँ कर्मवाच्य में 'सेव्' धातु से क्त प्रत्यय के द्वारा कर्म के उक्त होने से 'हरिः' में प्रथमा विभक्ति है।

शतेन क्रीतः शत्यः (सौ से खरीदा हुआ) 'शत्यः' इसमें क्रीतार्थक तद्धित यत् प्रत्यय द्वारा कर्म के उक्त हो जाने से प्रथमा विभक्ति है। प्राप्तः आनन्दः यं स प्राप्तानन्दः। इस उदाहरण में प्राप्त और आनन्द पदों में द्वितीयार्थ में बहुव्रीहि समास है अतः यहाँ अन्य पदार्थ (जन मनुष्य आदि) कर्म के समास द्वारा उक्त हो जाने से (प्राप्तानन्दः) इस समासान्त पद में प्रथमा विभक्ति हुई है।

क्वचिदिति—कहीं-कहीं निपात (च वा आदि की निपात संज्ञा है) के द्वारा भी कर्म के उक्त हो जाने से उसके योग में प्रथमा विभक्ति होती है। यहाँ 'साम्प्रतम्' यह एक निपात है। जिसका अर्थ है उचित। असाम्प्रतम्—अनुचित। यद्यपि, विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्—"विषवृक्ष को भी बढ़ाकर स्वयं काटना उचित नहीं" इस वाक्य में सम्वर्ध्य क्रिया का कर्म विष वृक्ष है, तथापि यह 'असाम्प्रतम्' इस निपात द्वारा उक्त हो गया है, अतः यहाँ विष वृक्ष के आगे प्रथमा विभक्ति हुई है।

तथायुक्तमिति—उन पदार्थों की भी जो कर्त्ता द्वारा अनीप्सित (न चाहे हुए) भी होकर कर्त्ता के इष्टतम पदार्थ की तरह ही क्रिया से जुड़े रहते हैं, कर्म संज्ञा होती है। "ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति" गाँव को जाता हुआ तिनके को स्पर्श करता है। इस वाक्य में तृण उपेक्ष्य (जिसके प्रति कर्त्ता उदासीन हो) अनीप्सित है, तथापि वह स्पृश् क्रिया से उसी भाँति जुड़ा हुआ है जिस भाँति कर्त्ता का इष्टतम पदार्थ ग्राम, अतएव उसकी भी ग्राम के समान ही कर्मसंज्ञा उक्त सूत्र से होती है और 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से दोनों में द्वितीया विभक्ति भी होती है। इसी प्रकार "ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते" (चावल खाता हुआ विष खाता है) इस वाक्य में भोजन क्रिया द्वारा कर्त्ता का इष्टतम पदार्थ ओदन है पर ओदन के समान ही विष भी (कर्त्ता द्वारा अनीप्सित होता हुआ भी) भोजन क्रिया के साथ सम्बद्ध है अतः ओदन के

अकथितं च । १।४।५१ ।।

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ।

दुह्याच् पच् दण्ड् रुधि प्रच्छिचिब्रू शासुजिमथ्मुषाम् ।

कर्मयुक् स्यादकथितं च तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ।।

दुहादीनां द्वादशानां तथा नीप्रभृतीनां चतुर्णां कर्मणा यद्युज्यते तदेवाकथितं कर्मेति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः । गां दोग्धि पयः ।

समान ही विष शब्द की भी कर्म संज्ञा है। अतः दोनों में 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है।

(अनीप्सित पदार्थ दो प्रकार का हो सकता है, उपेक्ष्य एवं द्वेष्य। उक्त उदाहरणों में 'तृण' उपेक्ष्य रूप अनीप्सित है और 'विष' द्वेष्य रूप अनीप्सित है। अतः अनीप्सित पदार्थ चाहे उपेक्ष्य, चाहे द्वेष्य हो, क्रिया से सम्बद्ध होने पर उनमें द्वितीया विभक्ति होती है।)

अकथितं चेति—अपादान आदि के द्वारा अविवक्षित (जो कहने के लिए इष्ट न हो) कारक अकथित[1] कहलाता है और उसकी भी कर्म संज्ञा होती है। पर यह नियम निम्नलिखित कारिका में परिगणित धातुओं के लिए ही है :—

"दुह्याच् पच् दण्ड् रुधि प्रच्छ चिब्रू शासुजिमथ्मुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं च तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ।।"

दुहादीनामिति—अर्थात् दुह (दुहना) याच् (मांगना) पच् (पकाना) दण्ड् (दण्ड देना) रुध् (रोकना) प्रच्छ् (पूँछना) चिञ् (चुनना) ब्रू (कहना) शास् (शासन करना) जि (जीतना) मथ् (मथना) मुष् (ठगना) नी (ले जाना) हृ (चुराना) कृष् (खींचना) वह् (ले जाना या ढोना) इस प्रकार दुह आदि १२ और नी आदि चार इन १६ धातुओं के कर्म से जिस पदार्थ का सम्बन्ध होता है, वह अकथित (अविवक्षित) कहा जाता है

---

१. जहाँ किसी पदार्थ (शब्द) से अपादान आदि कारकों का अर्थ प्रकट होता भी हो, पर वक्ता उसका प्रयोग नहीं करना चाहता हो, तो वह कारक अविवक्षित कहलाता है और इस अविवक्षित कारक की भी कर्म संज्ञा होती है। 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' सूत्र से जिस शब्द में कर्म संज्ञा का विधान किया जाता है वह प्रधान कर्म कहलाता है, पर अविवक्षित कारक में जहाँ 'अकथितं च' सूत्र से कर्म संज्ञा का विधान किया जाता है वह गौण (अप्रधान) कर्म कहलाता है। वस्तुतः कई एक ऐसी क्रियायें हैं जिनके मुख्य कर्मों के साथ कुछ अन्य पदार्थ भी सम्बद्ध होते हैं जो कर्म के अतिरिक्त अन्य कारकों का अर्थ द्योतित करते हैं। ऐसे ही पदार्थ गौण कर्म मान लिये गये हैं और उनमें प्रधान कर्म की भाँति द्वितीया विभक्ति का विधान किया गया है।

बलिं याचते वसुधाम् । तण्डुलानोदनं पचति । गर्गान् शतं दण्डयति । व्रजमवरुणद्धि गाम् । माणवकं पन्थानं पृच्छति । वृक्षमव चिनोति फलानि । माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा । शतं जयति देवदत्तम् । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । देवदत्तं शतं मुष्णाति ।

और यह अकथित पदार्थ ही इन धातुओं के मुख्य कर्म से सम्बद्ध होने के कारण गौण कर्म कहा जाता है, फलतः प्रधान कर्म की 'कर्तुरीसिततमं कर्म' से कर्म संज्ञा तथा गौण कर्म को 'अकथितं च' सूत्र से कर्म संज्ञा होती है और दोनों ही में 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से 'द्वितीया विभक्ति' होती है। जैसे — **'गां दोग्धि पयः'** गाय से दूध दुहता है। इस वाक्य में यद्यपि गाय, सामान्य नियम के अनुसार अपादान कारक है, तथापि वह वक्ता द्वारा अविवक्षित है तथा गाय यहाँ अवधिभूत अपादान में नहीं, अपितु निमित्त रूप में विवक्षित है। अतः 'अकथितं च' इस सूत्र के नियम के अनुसार 'गाय' की कर्म संज्ञा होकर उसमें द्वितीया विभक्ति होगी। पर यदि अपादान की विवक्षा होगी तो पंचमी विभक्ति होकर 'गोः दोग्धि पयः' ऐसा प्रयोग होगा।

इसी प्रकार निम्नलिखित अन्य उदाहरणों में गौण कर्म में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग है :—

बलिं याचते वसुधाम्—'बलि से पृथिवी मांगता है' यहाँ बलि शब्द में अपादान की अविवक्षा कर गौण कर्म में द्वितीया विभक्ति की गई है। अपादान विवक्षित होने पर 'बलेः याचते वसुधाम्'—प्रयोग होगा। इसी प्रकार 'अविनीतं विनयं याचते' यहाँ चतुर्थी की अविवक्षा की गई है। वस्तुतः यहाँ याच् धातु का मुख्य कर्म 'अविनीत' है, और 'विनय' शब्द में चतुर्थी की अविवक्षा कर द्वितीया की गई है। सम्प्रदान की विशेष विवक्षा होने पर 'अविनीतं विनयाय याचते' यह प्रयोग भी होगा।

तण्डुलानोदनं पचति—चावलों से (अथवा चावलों का) भात पकाता है, यहाँ तण्डुल शब्द के करण कारक की अविवक्षा कर उसे गौण कर्म मानकर 'ताण्डुलान्' में द्वितीया हुई है।

गर्गान् शतं दण्डयति—गर्गों से सौ रुपया दण्ड लेता है। यहाँ गर्ग शब्द में अपादान की अविवक्षा कर द्वितीया विभक्ति है।

व्रजमव रुणद्धि गाम्—व्रज (वाड़ा) में गाय को रोकता है। यहाँ अधिकरण की अविवक्षा कर 'व्रजम्' में द्वितीया विभक्ति की गई है।

माणवकं पन्थानं पृच्छति—बालक से मार्ग पूछता है। यहाँ अपादान की अविवक्षा कर 'माणवकम्' में द्वितीया है।

वृक्ष मव चिनोति फलानि—वृक्ष से फलों को चुनता है। यहाँ अपादान की अविवक्षा कर 'वृक्षम्' में द्वितीया विभक्ति है।

ग्राम मजां नयति हरति कर्षति वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलि भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि। कारकं किम्-माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति।

माणवकं धर्म ब्रूते शास्ति वा— बालक के लिये धर्म को कहता अथवा उपदेश करता है। यहाँ 'माणवकम्' में द्वितीया है।

शतं जयति देवदत्तम्— देवदत्त से सौ रुपये जीतता है। यहाँ अपादान की अविवक्षा कर 'देवदत्तम्' में द्वितीया हुई है।

सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति—अमृत के लिये क्षीर सागर मथता है। यहाँ सम्प्रदान की अविवक्षा कर 'सुधाम्' में द्वितीया हुई है।

देवदत्तं शतं मुष्णाति—देवदत्त से सौ रुपये ठगता है। यहाँ अपादान की अविवक्षा कर 'देवदत्तम्' में द्वितीया विभक्ति है।

ग्राम मजां नयति हरति कर्षति वहति वा— गाँव में बकरी को ले जाता है, यहाँ अधिकरण की अविवक्षा कर 'ग्रामम्' में द्वितीया है।

अर्थेति—'अकथितं च' इस सूत्र से जो 'दुह्' आदि द्विकर्मक धातुओं में अप्रधान कर्म की कर्म संज्ञा का विधान किया जाता है, वह संज्ञा अर्थ के आश्रित है अर्थात् दुह्, आदि धातुओं के समान अर्थ वाली अन्य भी द्विकर्मक धातुओं में अपादानादि की अविवक्षा होने पर गौण कर्म की कर्म संज्ञा होती है, फलतः **'बलिं भिक्षते वसुधाम्'** इस उदाहरण में याच् धातु के समानार्थक भिक्ष् धातु के योग में भी, तथा **'माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्ति इत्यादि'** इस उदाहरण में 'ब्रू' धातु के समानार्थक भास् अभि+धा, आदि के योग में भी 'बलिम्' तथा 'माणवकम्' में अपादान की अविवक्षा कर द्वितीया विभक्ति की गई है।

कारकं किमिति—'अकथितं च' सूत्र द्वारा कारक—क्रियान्वित पदार्थ की ही कर्म संज्ञा की जाती है, अतएव **'माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति'** इस उदाहरण में माणवक शब्द क्रिया से अन्वित न होने के कारण, कारक नहीं है और उसकी कर्म संज्ञा नहीं होती है, अतएव उसमें षष्ठी विभक्ति है।[1]

---

१. पूर्वोक्त दुह आदि १६ धातुओं के योग में कर्तृवाच्य प्रयोग में तो इनके प्रधान व अप्रधान दोनों ही कर्मों में द्वितीया तथा कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होती है, पर यदि इन द्विकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य वाक्य बनाना हो तो दुह आदि १२ धातुओं के प्रधान कर्म में द्वितीया, गौण कर्म में प्रथमा तथा कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है। पर 'नी' आदि शेष ४ धातुओं के योग में प्रधान कर्म में प्रथमा, गौण कर्म में द्वितीया और कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होगी, जैसा कि निम्नलिखित कारिका द्वारा स्पष्ट किया गया है :—

(वा) अकर्मकधातुभि र्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्म संज्ञक इति वाच्यम् । कुरून् स्वपिति । मासमास्ते । गो दोह मास्ते । क्रोश मास्ते ।

गतिबुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्मा कर्मकाणामणि कर्ता स णौ १।४।५२।।

अकर्मकेति—अर्थात्[1] अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल, भाव, तथा गन्तव्य पथ की भी कर्म संज्ञा होती है।

कुरून् स्वपिति—कुरु देश में सोता है। इस वाक्य में 'स्वपिति' इस अकर्मक क्रिया के योग में भी देश वाचक कुरु शब्द की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है।

मासमास्ते—महीने भर रहता है, यहाँ 'आस्ते' इस अकर्मक क्रिया के योग में काल वाचक 'मास' की कर्म संज्ञा हुई है।

गोदोह मास्ते—गोदोहन बेला तक अर्थात् जब तक गायें दुहीं जाये तब तक ठहरता है। यहाँ भाव व्यञ्जक गोदोह की अकर्मक क्रिया के योग में कर्म संज्ञा होकर द्वितीया हुई है।

क्रोश मास्ते—कोस भर में रहता है, यहाँ मार्ग वाचक क्रोश की कर्म संज्ञा हुई है। इसी प्रकार 'क्रोशं प्रतिष्ठते, कतिपय दिवसान् स तत्रावसत्' इत्यादि में भी कर्म संज्ञा होती है।

गतीति—गत्यर्थक (गम्, या, इण् आदि) बुद्धयर्थक (ज्ञा, विद्, बुध् आदि) प्रत्यवसानार्थक (भक्षणार्थक—भक्ष, भुज् आदि) शब्द कर्मक, और अकर्मक धातुएँ (स्था, आस्, शीङ् आदि) धातुओं का अण्यन्तावस्था में (जब कि इन धातुओं

गौणे कर्मणि दुह्यादे : प्रधाने नीहृकृष्वहाम् ।
विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः ।

कर्तृ वाच्य	**कर्म वाच्य ।**
कृष्णः गां पयः दोग्धि	कृष्णेन गौः पयः दुह्यते ।
स माणवकं पन्थानं पृच्छति	तेन माणवकः पन्थानं पृच्छ्यते ।
कृष्णः अजां ग्रामं नयति	कृष्णेन अजा ग्रामं नीयते ।

१. सकर्मकत्व और अकर्मकत्व प्रायः वक्तृविवक्षा तथा प्रयोग पर निर्भर हैं, तथापि अग्रलिखित अर्थों वाली धातुयें प्रायः अकर्मक होती हैं—

"लज्जा सत्ता स्थिति जागरणं, वृद्धि क्षय भय जीवित मरणम् । शयन क्रीडा रुचि दीप्त्यर्थं धातु गणन्तमकर्मक माहुः ।"

गत्यर्थक धातुओं के योग में स्थान वाची शब्दों की कर्म संज्ञा तो होती ही है, पर इनके अतिरिक्त जहाँ आलंकारिक कर्म होता है उसमें भी कर्म संज्ञा देखी जाती है, यथा—"निद्रां ययौ, मनसा हरिमेति, आनन्दस्य परां कोटि मध्यगच्छत् ।"

गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मणाम कर्मकाणां चाणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात् । शत्रूनगमयत्स्वर्गम्, वेदार्थं स्वानवेदयत् । आशयच्चामृतं देवान् । वेदमध्यापयद्विधिम् । आसयत्सलिले पृथ्वीम्, यः स मे श्रीहरि र्गतिः । गतीत्यादि किम् — पाचयत्योदनं देवदत्तेन । अण्यन्तानां किम्-गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं तमपरः प्रयुङ्क्ते गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः ।

से प्रेरणार्थक णिच् प्रत्यय न किया गया हो) जो कर्ता हो, वह ण्यन्तावस्था में (जबकि इन धातुओं से णिच् प्रत्यय करके इन्हें प्रेरणार्थक[1] बना लिया हो) कर्म संज्ञक हो जाता है और फिर उससे द्वितीया विभक्ति आती है। निम्नलिखित तालिका में दोनों ही अवस्थाओं के प्रयोग हैं—

साधारण या अण्यन्तावस्था	प्रेरणार्थक या ण्यन्तावस्था
शत्रवः स्वर्गमगच्छन् (शत्रु स्वर्ग गये)	हरिः शत्रून् स्वर्गम् अगमयत्
स्वे वेदार्थमविदुः	हरिः स्वान् वेदार्थमवेदयत्
देवा अमृतमाश्नन्	हरिः देवान् अमृतमाशयत्
विधि र्वेदमध्यैत	हरिः वेदं विधि मध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आस्त	हरिः पृथ्वीं सलिले आसयत्

यहाँ उक्त वाक्यों में काले अक्षरों वाले पद सभी साधारण अवस्था में कर्त्ता थे, पर ण्यन्तावस्था में वे सभी कर्म हो गये हैं। अतः उनके आगे द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

गतीत्यादि किमिति—सूत्र में परिगणित धातुओं के अतिरिक्त यदि अन्य कोई धातु होगी तो उसका साधारणावस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था में कर्म न होगा प्रत्युत उसमें साधारण नियम के अनुसार तृतीया विभक्ति ही होगी, यथा देवदत्तः

---

१. धातु को साधारण अवस्था में कर्ता स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं काम करता है जैसे "स गच्छति" वाक्य में पर जब उस कर्त्ता से जब कोई अन्य व्यक्ति काम कराता है, उसे काम करने के लिये प्रेरित करता है तब उस अर्थ को प्रेरणार्थक क्रिया द्वारा प्रकट किया जाता है, धातु से इस अर्थ को प्रकट करने के लिये णिच् प्रत्यय जोड़ना पड़ता है, ऐसा करने से धातु के रूप में पर्याप्त अन्तर हो जाता है, जैसे गच्छति का प्रेरणार्थक रूप 'गमयति' होगा। प्रेरणा देने वाले कर्त्ता को प्रयोजक कर्त्ता और जिसको प्रेरणा दी जाती है, उसे प्रयोज्य कर्त्ता कहते हैं, प्रयोजक कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति रहती है पर प्रयोज्य कर्त्ता में तृतीय विभक्ति हो जाती है, कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् द्वितीया ही रहती है। यथा 'स भार्यां त्यजति' का प्रेरणार्थक प्रयोग होगा 'अन्य तेन भार्यां त्याजयति' इसी प्रकार 'रामः ओदनं पचति' (साधारणावस्था) का प्रेरणावस्था में प्रयोग होगा 'देवदत्तः तं प्रेरयति इति देवदत्तः रामेण ओदनं पाचयति।'

(वा) नी वह्योर्न । नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन ।

(वा) नियन्तृ कर्तृकस्य वहेरनिषेधः । वाहयति रथं वाहान् । सूतः ।

(वा) आदिखाद्योर्न । आदयति खादयति वान्नं वटुना ।

(वा) भक्षेरहिंसार्थस्य न । भक्षयत्यन्नं वटुना । अहिंसार्थस्य किम्-भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम् ।

ओदनं पचति, तं यज्ञदत्तः (प्रयोजक कर्त्ता) प्रेरयति, इति यज्ञदत्तः देवदत्तेन (प्रयोज्य कर्त्ता) ओदनं पाचयति ।

अण्यन्तानां किमिति—इसी प्रकार गत्याद्यर्थक धातुओं में भी वही कर्त्ता ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञक हो सकेगा जो अण्यन्तावस्था में उस धातु का कर्त्ता रह चुका होगा । यथा, 'देवदत्तः यज्ञदत्तं गमयति तं विष्णुमित्रः प्रेरयति, इति विष्णुमित्रः देवदत्तेन यज्ञदत्तं गमयति' । यहाँ देवदत्त अण्यन्तावस्था का कर्त्ता न होकर गमयति इस रूप के साथ ण्यन्तावस्था का ही कर्त्ता है; अतः वह तृतीया में रखा गया है, द्वितीया में नहीं ।

(वा) नी वह्योर्नेति—अर्थात् नी व वह् धातुओं के प्रेरणार्थक प्रयोग में इनका अण्यन्तावस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था में कर्म न हो अतएव 'नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन' भृत्य से भार ढुलवाता है—यहाँ कर्म संज्ञा का इस वार्तिक से निषेध होने से भृत्यं न होकर भृत्येन ही हुआ ।

(वा) "नियन्तृ कर्तृकस्य वहेरनिषेधः"—अर्थात् उक्त वार्तिक द्वारा कर्म संज्ञा का निषेध वहाँ नहीं होगा जहाँ 'वह' धातु का कर्त्ता नियन्ता (हांकने वाला) होगा अर्थात् उसकी कर्म संज्ञा हो जायगी । जैसे 'वाहयति रथ वाहान् सूतः" सूत घोड़ों से रथ ढुलवाता है—यहाँ वाहान् की कर्म संज्ञा का निषेध न होगा, द्वितीया विभक्ति हो जायगी ।

(वा) आदिखाद्योर्न—अर्थात् अद् और खाद् धातुओं के प्रयोज्य कर्त्ता की कर्म संज्ञा न होगी, यथा—आदयति खादयति वान्नं वटुना—ब्रह्मचारी से अन्न खिलवाता है—यहाँ प्रयोज्य कर्त्ता वटु की कर्म संज्ञा नहीं हुई । अतः यहाँ तृतीया विभक्ति है ।

(वा) "भक्षेरहिंसार्थस्य न"—जब भक्ष् धातु का अर्थ हिंसा (पीड़ा या हानि पहुँचाना) नहीं होता, तब प्रयोज्य कर्त्ता की कर्म संज्ञा नहीं होती, यथा "भक्षयति अन्नं वटुना" यहाँ वटु द्वारा अन्न भक्षण में हिंसा का भाव नहीं है । अतः उक्त वार्तिक के कर्म संज्ञा का निषेध हो जायगा, वटु में द्वितीया न होकर तृतीया ही रहेगी, पर जहाँ हिंसा भाव होगा वहाँ यह वार्तिक निषेध न करेगा, अर्थात् 'गति बुद्धि' सूत्र से कर्म संज्ञा हो जायगी, यथा "भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्" (बैलों को धान खिलाता है) यहाँ धान भक्षण में हिंसा का भाव है । अतः बलीवर्दान् में कर्म संज्ञा हो जायगी ।

(वा) जल्पति प्रभृतीना मुपसंख्यानम्। जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः।

(वा) दृशेश्च। दर्शयति हरिं भक्तान्। सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रतीत्यादीनां न। स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन।

(वा) शब्दायतेर्न। शब्दाययति देवदत्तेन। धात्वर्थसंगृहीतकर्मत्वेनाकर्मकत्वात् प्राप्तिः। येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न सम्भवति तेऽत्राकर्मकाः न त्वविवक्षित कर्माणोऽपि, तेन मासमासयति देवदत्तमित्यादौ कर्मत्वं भवत्येव। देवदत्तेन पाचयतीत्यादौ तु न।

(व) जल्पतीत्यादि—जल्प् भाष् आदि धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्त्ता ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञक होते हैं।

'पुत्रं धर्म जल्पयति भाषयति वा' (पुत्र से धर्म कहलवाता है) यहाँ अण्यन्तावस्था के कर्त्ता पुत्र की ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति है।

(व) दृशेश्चेति—दृश् (देखना) धातु का अण्यन्तावस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था के प्रयोग में कर्म संज्ञक होता है।

"दर्शयति हरिं भक्तान्" (भक्तों को हरि दिखलाता है) यहाँ अण्यन्तावस्था के कर्त्ता 'भक्त' की ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है।

सूत्र इति—'गतिबुद्धि' सूत्र में बुद्धयर्थक से ज्ञान सामान्यवाची बुध्, ज्ञा, आदि धातुओं का ही ग्रहण हैं, ज्ञान विशेष वाचक स्मृ, घ्रा आदि का नहीं। इसका प्रमाण है "दृशेश्च" इस वार्तिक में दृश् ग्रहण। यदि ज्ञान विशेष वाचक धातुओं का भी ग्रहण होता तब तो बुद्धयर्थक धातुओं द्वारा दृश् का भी ग्रहण हो ही जाता क्योंकि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञान ही दर्शन है, 'दृशेश्च' वार्तिक व्यर्थ था। अतः स्मृ, घ्रा, आदि धातुओं का ग्रहण न होने के कारण 'स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन' इस प्रयोग में देवदत्त की कर्मसंज्ञा न होने से द्वितीया विभक्ति न हुई।

(वा) शब्दायतेर्नेति—शब्दायति धातु के कर्त्ता की ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा न हो।

'शब्दाययति देवदत्तेन' (देवदत्त से शब्द करवाता है) प्रस्तुत प्रयोग में धातु के अर्थ में ही शब्दरूपी कर्म के संगृहीत हो जाने से यह धातु अकर्मक है। अतः अकर्मक होने के कारण 'गतिबुद्धि' सूत्र से ण्यन्तावस्था के प्रयोग से साधारण दशा के कर्त्ता 'देवदत्त' को कर्मसंज्ञा प्राप्त थी, इस वार्तिक से उसका निषेध हो जाने से कर्मसंज्ञाभाव में 'देवदत्तेन' में तृतीया विभक्ति हुई है।

हृक्रोरन्यतरस्याम् । १।४।५३।।

हृक्रोरणौ यः कर्त्ता स णौ वा कर्म स्यात् । हारयति कारयति व भृत्यं भृत्येन वा कटम् ।

येषामिति—सूत्र में अकर्मक धातुओं से तात्पर्य उन्हीं धातुओं से है जिनका देश काल इत्यादि से भिन्न कोई कर्म संभव नहीं हो; उन धातुओं से नहीं, जो सकर्मक होते हुए भी कर्म की अविवक्षा कर देने से अकर्मक बन गई हैं अतएव "मासमास्ते देवदत्तः" इस साधारण वाक्य का ण्यन्तावस्था में प्रयोग करने पर "मासमासयति देवदत्तम्" यह प्रयोग होगा अर्थात् देवदत्त की कर्मसंज्ञा हो जायगी, पर देवदत्तः पचति का ण्यन्तावस्था का प्रयोग "देवदत्तेन पाचयति" होगा न कि "देवदत्तम्" क्योंकि यहाँ पच् धातु के सकर्मक होते हुए भी इसे कर्म की अविवक्षा कर अकर्मक बनाया गया है।

व्याकरण की दृष्टि से क्रियाएँ चार प्रकार से अकर्मक बन जाती हैं।

"धातोरर्थान्तरे वृत्ते धात्वर्थेनोपसंग्रहात् ।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिकाः क्रियाः ।।"

अर्थात् धातु का अर्थान्तर (अन्य अर्थ में प्रयोग) होने से १. जैसे 'वह्' (ले जाना) या (ढोना) धातु स्वतः सकर्मक है "भारं वहति गर्दभः (गदहा बोझ ढोता है) पर यही अर्थान्तर में प्रयुक्त होकर अर्थात् बहने अर्थ में अकर्मक है 'नदी वहति'।

इसी प्रकार जब धातु के अर्थ में उसका कर्म संगृहीत हो जाता है २. जैसे स जीवति (वह जीता है) यहाँ जीवति का अर्थ है—प्राण धारण करना पर वह इसका प्राण रूप कर्म 'जीव्' धातु के अर्थ में ही संगृहीत कर लिया गया है अतः धातु अकर्मक बन गया है।

इसी प्रकार कर्म के प्रसिद्ध होने से भी धातु अकर्मक बन जाता है ३. जैसे 'मेघो वर्षति' यहाँ 'वर्षति' बरसता है इस क्रिया में 'जलम्' यह कर्म सर्वप्रसिद्ध है अतः 'जलम् वर्षति' न कहकर केवल 'वर्षति' का प्रयोग होता है। और इस प्रकार धातु अकर्मक बन जाता है।

इसी प्रकार कर्म के न प्रयोग करने की इच्छा से भी सकर्मक धातु अकर्मक बन जाता है ४. जैसे 'हितान्न यः संश्रृणुते' यहाँ 'संश्रृणुते' में श्रु धातु सकर्मक है पर इस वाक्य में कर्म का प्रयोग नहीं किया गया है अतः धातु अकर्मक बन गया है।

"हृक्रोरन्यतरस्याम्"—हृ (ले जाना) कृ (करना) धातुओं का साधारणावस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था में विकल्प से कर्मसंज्ञक होता है यथा "कारयति हारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्"—भृत्य से चटाई बनवाता या मँगवाता है। इस वाक्य में

(वा) अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् । अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा ।

अधिशीङ् स्थासां कर्म । १।४।४६।।

अधिपूर्वाणा मेषामाधारः कर्म स्यात् । अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः ।

अभिनिविशश्च । १।४।४७।।

अभिनीत्येतत् संघातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात् ।

अभीनिविशते सन्मार्गम् । 'परिक्रयणे सम्प्रदानम्' इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्याऽन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात् क्वचिन्न । पापेऽभिनिवेशः ।

भृत्य की विकल्प से कर्म संज्ञा होगी, कर्मसंज्ञाभाव में तृतीया भी होगी अतः भृत्यं भृत्येन दोनों रूप बनेंगे ।

"अभिवादिदृशोरात्मने पदे वेति वाच्यम्"—अर्थात् अभिपूर्वक वदि धातु और दृश् धातु जब प्रेरणार्थक होने पर आत्मने पद में प्रयुक्त होती है । तब उनका भी साधारण अवस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञक हो जाता है विकल्प से । जैसे "अभिवादयते दर्शयते वा देवं भक्तं भक्तेन वा"—भक्त से देव को प्रणाम कराता या दिखलाता है—इस प्रयोग में अण्यन्तावस्था के कर्त्ता भक्त की ण्यन्तावस्था में विकल्प से कर्म संज्ञा होती है अतः उसमें द्वितीया एवं तृतीया दोनों विभक्तियों का प्रयोग होगा ।

अधिशीङ्स्थासां कर्म इति—अधि उपसर्गपूर्वक शीङ्, स्था, आस् इन धातुओं का आधार कर्म संज्ञक होता है (आधार—वह स्थल जहाँ इन क्रियाओं का काम होता है) जैसे अधिशेते, अध्यास्ते, अधितिष्ठति वा वैकुण्ठं हरिः"—हरि वैकुण्ठ में शयन करते, बैठते अथवा ठहरते हैं । यहाँ वैकुण्ठ शब्द की कर्म[1] संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है । इसी प्रकार सोऽर्धासनमधितिष्ठति, स शिलातलमधिशेते, भवतां भवन मध्यास्य सुखमहमन्वभवम् ।

अभिनिविशश्चेति—एक ही साथ अभि और नि उपसर्गपूर्वक विश् धातु का आधार कर्म संज्ञक होता है **'अभिनिविशते सन्मार्गम्'**—सन्मार्ग का अनुसरण करता है । इस वाक्य में मार्ग शब्द की कर्म संज्ञा होती है ।

---

१. कर्म संज्ञा विधान का फल है द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होना अतः जिन शब्दों में भी कर्म संज्ञा जिस किसी भी सूत्र से की गई है वहाँ 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होगी । विस्तार भय से प्रत्येक उदाहरण में द्वितीया विभक्ति का निर्देश नहीं किया गया है । पर छात्रों को कर्म संज्ञा लिखने के बाद द्वितीया विभक्ति अवश्य लिखनी चाहिए ।

उपान्वध्याङ् वसः । १।४।४८।।

उपादि पूर्वस्य वसते राधारः कर्म स्यात् । उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा वैकुण्ठं हरिः ।

(वा) अभुक्त्यर्थस्य न । । वने उपवसति ।

विश् धातु के आधार की कर्म संज्ञा अभि, नि इस संघातपूर्वक होने पर ही होगी, इनमें से किसी एक के पूर्व रहने पर सप्तमी ही होगी, जैसे "निविशते सन्मार्गे ।"

उक्त सूत्र में आगे कहे जाने वाले "परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्" इस सूत्र में मण्डूकप्लुति न्याय से (अर्थात् मण्डूक की तरह बीच के सूत्रों को छोड़ते हुए उछलकर) 'अन्यतरस्याम्' (विकल्प) की अनुवृत्ति (अपकर्ष या खींच लिया जाना) होती है और उस 'अन्यतरस्याम्' को व्यवस्थित विभाषा—(कहीं होना कहीं न होना) मान लिया गया है। अतः "पापेऽभिनिवेशः"—पाप में प्रवृत्ति—इस उदाहरण में अभि, नि इस संघात के पूर्व रहते हुए भी विश् धातु के संयोग में कर्मसंज्ञा उक्त सूत्र से नहीं होती है अतः 'पापे' में सप्तमी विभक्ति है।

उपान्वध्याङ् वस इति—उप, अनु, अधि, आ पूर्वक वस् धातु के योग में आधार की कर्म संज्ञा होती है। यथा "उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति, वा वैकुण्ठं हरिः"—हरि वैकुण्ठ में रहता है इस वाक्य में वैकुण्ठ शब्द की कर्मसंज्ञा होती है। यदि इन उपसर्गों में से कोई भी उपसर्ग वस् धातु के पहले न लगा हो तो आधार में सप्तमी ही होगी जैसे "हरिः वैकुण्ठे वसति"।

(वा) अभुक्त्यर्थस्य न इति—जब उपवस् का अर्थ रहना न होकर उपवास करना—व्रत करना होता है, तब भी सप्तमी ही होती है "वने उपवसति"—वन में व्रत करता है।

(अकर्मक धातु भी जब उपसर्ग आदि वशात् सकर्मक हो जाता है तब उसके कर्म में भी द्वितीया विभक्ति होती है यथा "स्वामिनश्चित्तमेवाहमनुवर्ते" मैं स्वामी के चित्त का ही अनुवर्तन करता हूँ—इस प्रयोग में यद्यपि 'वृत' धातु अकर्मक है पर अनु उपसर्ग पूर्वक होने से वह सकर्मक हो जाता है। अतः उसके कर्म 'चित्तम्' में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी हैं जैसे "**स सिंहासनमारोहति**"—वह सिंहासन पर चढ़ता है, यहाँ आ+रुह धातु सकर्मक हो गया है और उसके कर्म 'आसन' में द्वितीया विभक्ति हुई है।

"**खगा दिवमुत्पतन्ति**"—पक्षी आकाश में उड़ते हैं यहाँ उत्+पत् धातु है।

"**वाचमर्थोऽनुधावति**"—अर्थ वाणी का अनुसरण करता है यहाँ अनु+धाव् धातु है जो कि सकर्मक हो गया है।

उभसर्वतोरिति—अर्थात् तसिल् प्रत्ययान्त उभ एवं सर्व शब्द (उभयतः सर्वतः) के योग में द्वितीया विभक्ति करनी चाहिये, 'धिक् शब्द के योग में तथा

(वा) उभ सर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीया म्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥
उभयतः कृष्णं गोपाः । सर्वतः कृष्णम् । धिक् कृष्णाभक्तम् ।
उपर्युपरि लोकं हरिः । अध्यधि लोकम् । अधोऽधो लोकम् ।

उपरि आदि तीन शब्दों के योग में (उपर्युपरि, अध्यधि, अधोऽधः) द्वितीया होती है तथा इनसे अतिरिक्त स्थलों में भी द्वितीया विभक्ति देखी जाती है, क्रमशः इनके उदाहरण—

"उभयतः कृष्णं गोपाः"—कृष्ण के दोनों ओर गोपाल (हैं)—यहाँ तसिल् प्रत्ययान्त 'उभयतः' के योग में 'कृष्णम्' में द्वितीया है।

"सर्वतः कृष्णम्"—कृष्ण के चारों ओर, यहाँ तसिल् प्रत्ययान्त 'सर्वतः' के योग में 'कृष्णम्' में द्वितीया है।

"धिक् कृष्णाभक्तम्"—कृष्ण के अभक्त को धिक्कार (है)—यहाँ 'धिक्' के योग में 'अभक्तम्' में द्वितीया है। धिक् के योग में कभी-कभी प्रथमा भी होती है :—

धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः धिगियं दरिद्रता,

कभी कभी सम्बोधन में भीः—धिङ् मूर्ख ! यदि त्वं नाधीषे ।

"उपर्युपरि लोकं हरिः"—हरि लोक के समीप (ठीक ऊपर) है—यहाँ आम्रेडित 'उपर्युपरि' के योग में 'लोकम्' में द्वितीया है।

इसी प्रकार **"अध्यधि लोकम्"**—संसार के ठीक समीप देश में—और "अधोऽधो लोकम्" संसार के समीप—ठीक नीचे—यहाँ इनके योग में 'लोकम्' में द्वितीया है।

इनसे अतिरिक्त स्थलों में भी द्वितीया विभक्ति होती है जैसे "न त्वामृते तत्र गन्तुमहमीहे" तुम्हारे बिना मैं वहाँ जाना नहीं चाहता—यहाँ 'ऋते' के योग में द्वितीया विभक्ति है इसी प्रकार 'बिना' आदि के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है।

(वा) **"अभितः परितः समया निकषा हा प्रति योगेऽपि"**—अर्थात् अभितः परितः, समया, निकषा, हा, और प्रति के योग में भी द्वितीया होती है, यथा "अभितः कृष्णम्"—कृष्ण के दोनों ओर "परितः कृष्णम्" कृष्ण के चारों ओर "ग्रामं समया"

---

१. आम्रेडित यह पारिभाषिक शब्द है, इसका अर्थ है—द्विरुक्ति किसी शब्द का दो बार कथन करना। "उपर्यध्यधसः सामीप्ये" ८-१-७ इस पाणिनि सूत्र के अनुसार सामीप्य के अर्थ में उपरि अधि और अधः आम्रेडित—द्विरुक्त हो जाते हैं अर्थात् उपर्युपरि, अध्यधि, एवं अधोऽधः इस प्रकार प्रयुक्त होने लगते हैं और इनके योग में समीप अर्थ में द्वितीया विभक्ति होती है। पर यदि समीप अर्थ से भिन्न अर्थ में इनका प्रयोग होगा तो द्वितीया न होकर षष्ठी ही होगी गथा उपर्युपरि **"सर्वेषामादित्य इव तेजसा"** इस वाक्य में सर्वेषाम् में षष्ठी है।

(वा) अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि ।

अभितः कृष्णम् । परितः कृष्णम् । ग्रामं समया । निकषा लंकाम् । हा कृष्णाभक्तम्-तस्य शोच्यते इत्यर्थः । बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् ।

अन्तरान्तरेण युक्ते । २।३।४।।

आभ्यां योगे द्वितीया स्यात् । अन्तरा त्वां मां हरिः । अन्तरेण हरिं न सुखम् ।

कर्मप्रवचनीयाः । १।४।८३।। इत्यधिकृत्य ।

गाँव के पास "निकषा लंकाम्"—लंका के पास "हा कृष्णाभक्तम्"[1] कृष्ण के अभक्त के लिये हाय—शोक । अर्थात् वह शोचनीय है ।

"विभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्"—भूखे को कुछ नहीं सूझता, इन प्रयोगों में "अभितः" आदि के योग में क्रमशः कृष्णम्, ग्रामम्, लंकाम्, कृष्णाभक्तम्, विभुक्षितम् इन शब्दों में द्वितीया विभक्ति है ।

अन्तरान्तरेण[2] युक्ते इति—अर्थात् अन्तरा और अन्तरेण के योग में द्वितीया विभक्ति होती है ।

"अन्तरा त्वां मां हरिः"—हरि तुम्हारे और मेरे बीच में है—यहाँ 'अन्तरा' के योग में त्वाम्, माम् में द्वितीया है ।

"अन्तरेण हरिम् न सुखम्"—हरि के बिना सुख नहीं—यहाँ अन्तरेण के योग में 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति है ।

कर्मप्रवचनीया इति—अर्थात् यहाँ से कर्मप्रवचनीय संज्ञा का अधिकार करके—

पाणिनीय व्याकरण में कुछ ऐसे अव्ययों की कर्मप्रवचनीय संज्ञा की गई है जो न तो किसी क्रिया विशेष के द्योतक हों न सम्बन्ध के ही वाचक हों, और न किसी अन्य क्रिया पद को लक्षित ही करायें पर वाक्यान्तर्गत पदों में भेद दर्शक हों अर्थात् विभक्ति विधायक हों । इनके योग में भी प्रायः कर्म कारक का ही विधान होता है । जैसा कि वाक्यपदीयकार ने कहा है—

क्रियाया द्योतको नायं सम्बन्धस्य न वाचकः ।
नापि क्रियापदापेक्षी सम्बन्धस्य तु भेदकः ।।

अनुर्लक्षणे इति—किसी विशेष लक्षण (हेतु) को द्योतित करने में 'अनु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

कर्म प्रवचनीय युक्ते द्वितीया इति—कर्मप्रवचनीय उपसर्गों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है, यथा "जपमनु प्रावर्षत" लक्षण या हेतु भूत जप से वर्षा हुई,

---

१. हा के योग में सम्बोधन भी होता है "हा हा देवि स्फुटति हृदयम्" भगवति अरुन्धति ।

२. भवतः साहाय्यमन्तरेण नाहं प्रभवामि शत्रून् जेतुम् । त्वामन्तरेण न कोऽप्यस्ति मे सहायः । त्वां मां चान्तरा विद्यते भगवान् ।

अनुर्लक्षणे । १।४।८४।।

लक्षणे द्योत्येऽनुरुक्त संज्ञः स्यात् । गत्युपसर्ग संज्ञापवादः ।

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया । २।३।८।।

एतेन योगे द्वितीया स्यात् । जपमनु प्रावर्षत् । हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षण-मित्यर्थः । परापि हेताविति तृतीयाऽनेन बाध्यते । 'लक्षणेत्थंभूत' इत्यादिना सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात् ।

तृतीयार्थे ।। १।४।८५।।

अस्मिन् द्योत्येऽनुरुक्त संज्ञः स्यात् । नदीमन्ववसिता सेना

नद्या सह सम्बद्धेत्यर्थः । षिञ् बन्धने क्तः ।

अर्थात् जप करने के पश्चात् वर्षा हुई, जब तक जप नहीं किया गया तब तक वर्षा नहीं हुई, वर्षा का लक्षण या हेतु जप था—यहाँ 'अनु' अव्यय की 'अनुर्लक्षणे' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है और तब उसके योग में इस सूत्र से 'जपम्' में द्वितीया विभक्ति होती है ।

यहाँ 'हेतौ' सूत्र से होने वाली तृतीया विभक्ति यद्यपि इस सूत्र से विधीयमान द्वितीय से परे है,[1] तथापि उसे बाँधकर 'जपमनु' में फिर भी कर्मप्रवचनीय संज्ञा विधान करने के कारण द्वितीया ही होती है । तात्पर्य यह है कि 'जपमनुप्रावर्षत्' इस प्रयोग में ''लक्षणेत्थं भूताख्यान'' इत्यादि सूत्र से 'अनु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हो ही जाती, फिर 'अनुर्लक्षणे' सूत्र से जो लक्षण—हेतु में पुनः कर्म प्रवचनीय संज्ञा का विधान किया गया है इससे प्रमाणित होता है कि लक्षण द्योतित करने में 'पर' भी तृतीया विभक्ति को बाँधकर द्वितीया ही होती है ।

तृतीयार्थे इति—तृतीया के अर्थ को प्रकट करने वाला 'अनु' कर्म प्रवचनीय संज्ञक होता है । यथा ''नदीमन्व वसिता सेना''—सेना नदी के साथ सम्बद्ध है—इस प्रयोग में नदी शब्द के आगे तृतीया विभक्ति होनी चाहिए थी, यहाँ अनु 'तृतीयार्थ' में प्रयुक्त हुआ है जिसकी कि इस सूत्र से कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई है अतः उसके योग में 'नदीम्' में द्वितीया विभक्ति होगी तृतीया नहीं । अव पूर्वक षिञ् (बाँधना) धातु से क्त प्रत्यय करके अवसित शब्द बनता है अतः उसका अर्थ ''सम्बद्ध'' होता है ।

हीने इति—हीनता को द्योतित करने में अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है, यथा 'अनु हरिम् सुराः' देवता हरि से हीन हैं—यहाँ हीनता द्योतक 'अनु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति है ।

---

१. पाणिनीय व्याकरण में 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इस सूत्र के अनुसार यह नियम है कि दो तुल्य कार्यों का आपसी विरोध (एक ही स्थान में दोनों की प्राप्ति रूप विरोध) होने पर जो कार्य पर (अर्थात् अष्टाध्यायी की सूत्र संख्याक्रम के अनुसार बाद में होने वाला कार्य) होता है, वही गृहीत होता है । पूर्व कार्य रुक जाता है ।

हीने । १।४।८६।।

हीने द्योत्येऽनुः प्राग्वत् । अनुहरिं सुराः । हरे र्हीना इत्यर्थः ।

उपोऽधिके च ।१।४।८७।।

अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्यव्ययं प्राक् संज्ञं स्यात् ।

अधिके सप्तमी वक्ष्यते । हीने, उपहरिं सुराः ।

लक्षणेत्थं भूताख्यान भागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः । १।४।९०।।

एष्वर्थेषु विषयभूतेषु प्रत्यादयः उक्त संज्ञाः स्युः । लक्षणे, वृक्षं वृक्षं प्रतिपर्यनु वा विद्योतते विद्युत् । इत्थं भूताख्याने, भक्तो विष्णुं प्रतिपर्यनु वा । भागे, लक्ष्मीर्हरिं प्रतिपर्यनु वा । हरे र्भाग इत्यर्थः । वीप्सायाम्, वृक्षं वृक्षं प्रतिपर्यनु वा सिञ्चति । अत्रोप सर्गत्वा भावान्न षत्वम् । एषु किम्-परिषिञ्चति ।

उपोऽधिके चेति—अधिक या हीन अर्थ के द्योतक 'उप' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है यथा 'उप हरिम् सुरा.' देवता हरि से घटकर हैं—यहाँ हीनतार्थ द्योतक उप की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से उसके योग में 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति है जब 'उप' अधिक अर्थ का द्योतक होगा तब सप्तमी विभक्ति होगी, जैसा कि आगे कहा जायगा।

लक्षणेत्थं भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवा इति—अर्थात् लक्षण (किसी की ओर निर्देश करना) इत्थंभूताख्यान (यह इस प्रकार का है, यह बतलाना) भाग (यह उसके हिस्से में पड़ता है, यह बतलाना) और वीप्सा (द्विरुक्ति दिखलाना) अर्थों में प्रति, परि, तथा अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है, यथा, 'वृक्षं वृक्षं प्रति परि, अनु वा विद्योतते विद्युत्'—वृक्ष की ओर बिजली चमकती है इस प्रयोग में वृक्ष बिजली चमकने को लक्षित करता है अर्थात् वह ज्ञापक लक्षण है, इस लक्षण को प्रकट करने वाले प्रति, परि, अनु की उक्त नियमानुसार कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से 'वृक्षम्' में द्वितीया विभक्ति हुई है।

"भक्तो विष्णुं प्रति परि अनु वा"—विष्णु का भक्त है—इस प्रयोग में इत्थं-भूताख्यान (यह इस प्रकार का है ऐसा कथन) अर्थ में प्रति परि अनु को कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से उनके योग में 'विष्णुम्' में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

"लक्ष्मी र्हरिम् प्रति परि अनु वा"—लक्ष्मी हरि का भाग है—यहाँ 'भाग' अर्थ में प्रयुक्त प्रति, परि, अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से उनके योग में 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति हुई है।

"वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा सिञ्चति"—प्रत्येक वृक्ष को सींचता है—यहाँ वीप्सा (व्याप्तुमिच्छा अर्थात् किसी क्रिया का प्रत्येक वस्तु से सम्बन्ध करने की इच्छा) अर्थ में वर्तमान प्रति परि अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा ही नहीं रहती (क्योंकि एक को एक ही संज्ञा प्राप्त करने का नियम है) अतः उप-सर्गाभाव में "प्रति परि अनु + सिञ्चति" इस स्थिति में "उपसर्गात् सुनोति ८-३-६५" सूत्र से स् को ष् आदेश नहीं होता है। 'वृक्षम् वृक्षम्' में द्वितीया विभक्ति तो कर्म में होती ही है।

अभिरभागे ।१।४।९१।।

भागवर्जे लक्षणादावभिरुक्त संज्ञः स्यात् । हरिमभि वर्तते ।

भक्तो हरिमभि । देवं देव मभिसिञ्चति । अभागे किम्—यदत्र ममाभिष्यात्तद् दीतयाम् ।

अधिपरी अनर्थकौ । १।४।९३।।

उक्तसंज्ञौ स्तः । कुतोऽध्यागच्छति । कुतः पर्यागच्छति । गतिसंज्ञाबाधात् 'गतिर्गतौ' इति निघातो न ।

प्रति परि तथा अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा उक्त लक्षण आदि अर्थों में ही होती है, इनसे भिन्न अर्थों में नहीं जैसे प्रति, परि, अनु + सिञ्चति इस प्रयोग में परि की कर्म प्रवचनीय संज्ञा नहीं होगी । अतः उपसर्ग संज्ञा होने से स को ष् आदेश हो जाता है अतः प्रति, परि, अनु षिञ्चति, ऐसा प्रयोग होता है ।

अभिरभागे इति—केवल भाग अर्थ को छोड़कर शेष उपर्युक्त तीन अर्थों में वर्तमान अभि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, यथा **"हरिमभिवर्तते, भक्तो हरिमभि, देवं देवमभि सिञ्चति"** इन प्रयोगों में क्रमशः लक्षण इत्थं भूताख्यान और वीप्सा अर्थ द्योतक अभि की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति हुई है ।

भाग अर्थ में 'अभि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा न होने से वहाँ उपसर्ग संज्ञा बनी रहती है । फलतः "यदत्र ममाभिष्यात् तद्दीयताम्—यहाँ जो मेरा भाग हो वह दे दो—में अभि के आगे स्यात् के स् को ष हो जाता है । "उपसर्ग प्रादुर्भ्यामस्तिर्यं च परः" यह सूत्र मूर्धन्य ष् आदेश करता है ।

"अधिपरी अनर्थकाविति"—अनर्थक अधि और परि की उक्त संज्ञा होती है यथा 'कुतोऽध्यागच्छति' कुतः 'पर्यागच्छति' इन प्रयोगों में अधि, परि की उक्त संज्ञा हो जाने से, गति[1] संज्ञा नहीं रहती । अतः "गतिर्गतौ" ८-१-७० सूत्र से सर्वानुदात्त[2] नहीं होता है ।

"सुः पूजायामिति"—अर्थात् पूजार्थ में वर्तमान सु की उक्त संज्ञा होती है यथा "सुसिक्तम्" अच्छी तरह सींचा गया—यहाँ सु की उक्त संज्ञा होने से उपसर्गाभाव में सिक्तम् के स् को ष् नहीं होता, इसी प्रकार 'सुस्तुतम्' में भी षत्व नहीं होता । पर पूजार्थ से भिन्न अर्थ के द्योतक सु की उक्त संज्ञा नहीं होती अतः उपसर्ग संज्ञा रहती है जिसका फल होता है कि "सुषिक्तं किं तवात्र"—मैंने सुचारु रूप से सींचा है तुम्हारा इसमें क्या ? यहाँ निन्दा अर्थ है अतः सु के आगे सिक्तम् के स् को ष् हो गया है ।

---

१. प्र परा अप् सम् आदि सभी उपसर्ग क्रिया योग में गति संज्ञक हो जाते हैं 'उपसर्गाः क्रिया योगे' इस सूत्र के विधान से ।

२. किसी शब्द के सभी स्वरों को अनुदात्त हो जाना, सर्वानुदात्त कहलाता है ।

सुः पूजायाम् । १।४।९४।

सुसक्तिम् । सुस्तुतम् । अनुपसर्गत्वान्न षः । पूजायां किम्—सुषिक्तं किं तवात्र, क्षेपोऽयम् ।

अतिरतिक्रमणे च । १।४।९५।।

अतिक्रमणे पूजायां चातिः कर्म प्रवचनीयसंज्ञः स्यात् । अतिदेवान् कृष्णः ।

अपिः पदार्थ सम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु । १।४।९६।।

एषु द्योत्येषु अपिरुक्त संज्ञः स्यात् । सर्पिषोऽपि स्यात् । अनुपसर्गत्वान्न षः । सम्भावनायां लिङ् । तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृदौर्लभ्यप्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपि शब्दः स्यादित्यनेन संबध्यते । सर्पिष इति षष्ठी तु अपिशब्दबलेन गम्यमानस्य बिन्दोरवयवावयविभावसम्बन्धे । इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थ द्योतकता नाम । द्वितीया तु नेह प्रवर्तते । सर्पिषो बिन्दुना योगो न त्वपिनेत्युक्तत्वात् । अपि स्तुयाद्विष्णुम् । सम्भावनं शक्त्युत्कर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः । अपि स्तुहि । अन्वव सर्गः कामचारानुज्ञा । धिग्देवदत्त मपि स्तुयाद् वृषलम् । गर्हा—अपि सिञ्च । अपि स्तुहि । समुच्चये ।

"अतिरतिक्रमणे चेति"—अर्थात् अतिक्रमण एवं पूजा अर्थ में अति की उक्त संज्ञा होती है यथा "अति देवान् कृष्णः"—कृष्ण देवों से बढ़कर या देवों के पूज्य हैं—यहाँ कर्म प्रवचनीय संज्ञक अति के योग में 'देवान्' में द्वितीया विभक्ति है ।

"अपिः पदार्थ सम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हा समुच्चयेष्विति"—अर्थात् पदार्थ, सम्भावना, अन्ववसर्ग-गर्हा, समुच्चय, इन अर्थों को द्योतित करने में 'अपि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है ।

पदार्थ का अर्थ है 'पद का अर्थ' 'अर्थात् अप्रयुक्त शब्द के अर्थ को द्योतित करना ही पदार्थ है । 'सर्पिषोऽपि स्यात्' इस प्रयोग में 'अपि' अप्रयुक्त बिन्दु का द्योतक है । अतः अपि की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा के अभाव के कारण स्यात् के स को ष् नहीं हुआ है, क्योंकि वह उपसर्ग के बाद ही हो सकता था ।

सर्पिषोऽपि स्यात् इस प्रयोग में स्यात् शब्द अस् धातु से सम्भावनार्थक लिङ् लकार में बना है । यह सम्भावना किस पदार्थ की ? इस जिज्ञासा में अस् धातु का अर्थ (सत्ता या भवन) 'होना' ही इस सम्भावना का विषय है अर्थात् होने की सम्भावना । इस स्थिति में कर्त्ता (बिन्दु) के अभाव में, 'अपि' उस अप्रयुक्त कर्त्ता (भवन-होने अर्थ का कर्त्ता बिन्दु है जो कि प्रयुक्त नहीं है,) को द्योतित करता है और इस प्रकार कर्त्ता की दुर्लभता द्योतित करता हुआ वह 'अपि' क्रिया के साथ सम्बद्ध हो जाता है । तात्पर्य यह है कि इस वाक्य में प्रयुक्त 'अपि' स्यात् क्रिया के कर्त्ता, बिन्दु के अर्थ को द्योतित करने के लिए आया है अतएव वह बिन्दु की तरह ही, स्यात् क्रिया के अर्थ-होने की सम्भावना—को तथा कर्त्ता बिन्दु को भी द्योतित करता है इसीलिए वह बिन्दु की भाँति स्यात् क्रिया से सम्बद्ध हो जाता है, यही अपि शब्द की पदार्थ द्योतकता है । सर्पिस् और अपि में अवयवावयविभाव सम्बन्ध होने से यहाँ

षष्ठी विभक्ति है द्वितीया विभक्ति तो यहाँ नहीं हो सकती क्योंकि सर्पिस् का बिन्दु के साथ योग है अपि के साथ नहीं।

'सर्पिषोऽपि स्यात्' इस प्रयोग में 'स्यात्' यह क्रिया पद अस् धातु से लिङ् लकार में बनता है, लिङ् लकार सम्भावना अर्थ में होता है, इस सम्भावना का विषय, अस् धातु का अर्थ-होना (सत्ता या भवन) है। अर्थात् स्यात् का अर्थ है—होने की सम्भावना। किसके होने की? इस जिज्ञासा में कर्त्ता होने की सम्भावना ही होती है। वह कर्त्ता (बिन्दु) यहाँ प्रयुक्त नहीं है। अतः 'अपि' यहाँ उसे द्योतित करता है और इस प्रकार 'अपि' जिस तरह कर्त्ता (बिन्दु) की दुर्लभता द्योतित करता है और इस प्रकार वह न केवल बिन्दु को ही द्योतित करता है अपितु बिन्दु कर्त्ता की दुर्लभता को प्रकट करता हुआ स्यात् क्रिया जन्य दुर्लभता को भी प्रकट करने के कारण वह स्यात् से सम्बद्ध भी हो जाता है। यहाँ अपि से बिन्दु अर्थ गम्य होता है। सर्पिस् से बिन्दु का अवयवावयवि भाव सम्बन्ध है—बिन्दु "अवयव" सर्पिस् (घृत) 'अवयवी' इस प्रकार अवयवावयविसम्बन्ध होने (सर्पिषः) में सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति है। यहाँ द्वितीया विभक्ति नहीं हो सकती क्योंकि सर्पिस् का तो बिन्दु से योग है न कि अपि से, अतः बिन्दु के योग के अभाव में द्वितीया नहीं हो सकती। अपि शब्द की यही पदार्थ द्योतकता है। और इसी अर्थ में अपि की उक्त संज्ञा है जिसका फल षत्वाभाव है।

"अपि स्तुयाद् विष्णुम्"—क्या विष्णु की स्तुति कर सकेगा। यहाँ सम्भावना द्योतनार्थ प्रयुक्त अपि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञाभाव के कारण 'स्तुयात्' के स् को ष् नहीं हुआ है। सम्भावना का अर्थ शक्ति के उत्कर्ष को प्रकट करने के लिए अत्युक्ति करना है।

"अपि स्तुहि"—अच्छा स्तुति करो अथवा नहीं—यहाँ अन्ववसर्ग (इष्ट कार्य करने की अनुमति देना) अर्थ में अपि की उक्त संज्ञा और उसका फल षत्वाभाव है।

"धिक् देवदत्तम् अपि स्तुयाद् वृषलम्"—देवदत्त को धिक्कार है जो कि वह शूद्र की स्तुति करता है—यहाँ गर्हा (निन्दा) अर्थ में अपि की उक्त संज्ञा और उसका फल षत्वाभाव है।

"अपि सिञ्च अपि स्तुहि"—सींचो भी, स्तुति भी करो—यहाँ समुच्चय अर्थ में अपि की उक्त संज्ञा का फल षत्वाभाव है।

"कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे"—जब कोई वस्तु भाव या क्रिया लगातार कुछ समय तक या दूर तक चलती रहती है (व्यवधान नहीं होता) तो उन समयवाचक और मार्ग (अध्वन्) वाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है जैसे—

"मासं कल्याणी"—मास भर कल्याणकारिणी—इस प्रयोग में कल्याण रूप गुण मास भर लगातार बना रहता है अतः कालवाचक 'मास' शब्द में द्वितीया विभक्ति है।

"मासमधीते"—महीने भर लगातार पढ़ता है—यहाँ अध्ययन क्रिया के अत्यन्त संयोग में 'मास' शब्द में द्वितीया है।

कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे । २।३।५।।

इह द्वितीया स्यात् । मासं कल्याणी । मासमधीते । मासं गुडधानाः । क्रोशं कुटिला नदी । क्रोशमधीते । क्रोशं गिरिः । अत्यन्त संयोगे किम्-मासस्य द्विरधीते । क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः । इति द्वितीया ।

"मासं गुडधाना"—मास भर गुडधान है—यहाँ गुडधान रूप द्रव्य का मास के साथ निरन्तर संयोग होने से द्वितीया है।

"क्रोशं कुटीला नदी" – कोस भर तक लगातार टेढ़ी नदी—यहाँ नदी के कुटिलत्व गुण के कोस भर तक बराबर टेढ़े रहने पर मार्गवाचक क्रोश शब्द में द्वितीया है।

"क्रोशमधीते"— कोस भर पढ़ता है—यहाँ अध्ययन क्रिया का कोस भर तक लगातार सम्बन्ध है अतः 'क्रोश' शब्द में द्वितीया है।

"क्रोशं गिरिः"— कोस भर तक (लगातार) पर्वत है—यहाँ 'क्रोशम् में' गिरि का निरन्तर सम्बन्ध रहने से द्वितीया है।

"अत्यन्तसंयोगे किमिति"—यदि गुण क्रिया या द्रव्य वाचक का कालवाचक या मार्गवाचक से लगातार सम्बन्ध (अत्यन्त संयोग) होता है तो कालवाची या मार्गवाचक शब्द से द्वितीया होती है अन्यथा नहीं।

"मासस्य द्विरधीते"—(महीने में दो बार पढ़ता है) अध्ययन क्रिया का मास से लगातार सम्बन्ध नहीं है, अतः मास में द्वितीया विभक्ति नहीं होती अपितु सम्बन्ध विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है। इसी प्रकार 'क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः' यहाँ पर भी मार्गवाचक शब्द क्रोश से सम्पूर्णतया सम्बन्ध न होने पर द्वितीया न होकर षष्ठी हुई है।

इति द्वितीया

तृतीया विभक्ति

स्वतन्त्रः कर्त्ता । १।४।५४।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्त्ता स्यात् ।

साधकतमं करणम् । १।४।४२।।

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् । तमव् ग्रहणं किम्—गंगायां घोषः ।

कर्तृकरणयोस्ततीया । २।३।१८।।

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् । रामेण वाणेन हतो वाली ।

स्वतन्त्रः कर्त्तां इति—क्रिया का स्वतन्त्रता से विवक्षित पदार्थ कर्त्ता[1] कहलाता है ।

साधकतमं करणमिति—क्रिया की सिद्धि में जो कारक सबसे अधिक सहायक होता है उसे करण[2] कहते हैं । अर्थात् जिस पदार्थ के व्यापार के अनन्तर क्रिया की सिद्धि हो जाती है वही सबसे अधिक सहायक होता है और उसी की करण संज्ञा होती है ।

तमविति—सूत्र में साधक शब्द के आगे तमप् ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है ? अर्थात् यह कारक प्रकरण है कारक और साधक पर्यायवाचक शब्द हैं अतः पुनः

---

१. "विवक्षातः कारकाणि भवन्ति" नियम के अनुसार प्रत्येक कारक विवक्षाधीन है अतः क्रिया का आश्रय जड़ या चेतन जो भी हो, वह कर्त्ता कहा जायगा ।

२. रामः जलेन मुखं प्रक्षालयति 'इस वाक्य में यद्यपि जल और राम का हाथ दोनों सहायक हैं तथापि हाथ वाक्य के अन्तर्गत होने से सहायक नहीं कहा जायगा अतः जल ही यहाँ सबसे अधिक सहायक कारक है अतः जल की करण संज्ञा होगी ।

(वा) **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् । प्रकृत्या चारुः । प्रायेण याज्ञिकः । गोत्रेण गार्ग्यः । समेनैति । विषमेणैति । द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति । 'सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि ।'**

साधक ग्रहण से ही प्रकृष्ट साधक यह अर्थ तो हो ही जाता फिर तमप् ग्रहण का क्या प्रयोजन है ? इसका उत्तर है कि इस कारक प्रकरण में अन्वर्थ संज्ञा वल से प्राप्त विशेष अर्थ नहीं लिया जाता, साधारण अर्थ ही गृहीत होता है जिसका फल यह होता है कि 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र से आधारमात्र की अधिकरण संज्ञा हो जाती है । यदि तमप् ग्रहण वल से यह अर्थ न लिया गया होता तव 'गंगायां धोषः" इस वाक्य में अधिकरण-संज्ञा न होती, केवल 'तिलेषु तैलम्' इत्यादि प्रयोगों में ही पूर्णतया व्यापक आधार में ही अधिकरण संज्ञा होती । तमप् ग्रहण के कारण साधारण आधार की भी अधिकरण संज्ञा हो जाती है ।

कर्तृकरणयोस्तृतीया इति—अनुक्त कर्त्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है ।

"रामेण वाणेन हतो वाली"—इस प्रयोग में 'हतः' में कर्म-वाच्य में क्त प्रत्यय है । अतः कर्त्ता अनुक्त है और वाण करण है । प्रस्तुत सूत्र से दोनों में तृतीया विभक्ति होती है ।

(वा) **"प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्"**—प्रकृति आदि शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है ।

"प्रकृत्या चारुः"—स्वभाव से सुन्दर—यहाँ प्रकृति शब्द से तृतीया विभक्ति होती है ।

इसी प्रकार—**प्रायेण याज्ञिकः**—प्रायः याज्ञिक है, **गोत्रेण गार्ग्यः**—गोत्र से गार्ग्य है, **समेनैति**—समगति से आता है, **विषमेणैति**—विषम चलता है, आदि में भी तृतीया विभक्ति होती है ।

"**द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति**—दो-दो द्रोण करके धान्य खरीदता है, **सुखेन दुःखेन वा याति**-सुख अथवा दुःख से चलता है, इन प्रयोगों में उक्त वार्तिक से तृतीया विभक्ति होती है ।

इन दोनों ही प्रयोगों में भी उक्त वार्तिक से तृतीया विभक्ति हुई है । प्रथम प्रयोग में तो 'दो द्रोण सम्बन्धी धान्य' ऐसा अर्थ करने से सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी और दूसरे प्रयोग में सुख और दुःख दोनों के क्रिया विशेषण होने से द्वितीया प्राप्त थी इस वार्तिक से षष्ठी एवं द्वितीया को रोककर तृतीया हुई है ।

प्रकृत्यादिगण आकृति गण है अतः गणपाठ में पठित शब्दों से भी तृतीया होती है यथा "नाम्ना श्यामः, चरितेन दान्तः" इत्यादि प्रयोगों में भी तृतीया विभक्ति होती है ।

दिवः कर्म च १।४।४३।।

दिवः साधकतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्, चात् करण संज्ञम्। अक्षैः रक्षान्वा दीव्यति।

अपवर्गे तृतीया।२।३।६।।

अपवर्गः फलप्राप्तिस्तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तन्तसंयोगे तृतीया स्यात् अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः। अपवर्गे किम्—मासमधीतो नायातः।

सहयुक्तेऽप्रधाने। २।३।१९।।

सहार्थेन युक्ते अप्रधाने तृतीया स्यात्। पुत्रेण सहागतः पिता। एवं साकं सार्धं समं योगेऽपि। विनाऽपि तद्योगं तृतीया। 'वृद्धो यूना' १।२।६५।। इत्यादि निर्देशात्।

दिवः कर्म चेति—दिव् (खेलना) धातु के साधकतम कारक की कर्म संज्ञा होती है, और चकार ग्रहण से तृतीया भी होती है, यथा "अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति"—पासों से खेलता है। यहाँ तृतीया एवं कर्म संज्ञा होकर द्वितीया भी विभक्ति होती है।

अपवर्गे तृतीयेति—अपवर्ग का अर्थ फल प्राप्ति है—फल प्राप्ति या कार्यसिद्धि का बोध कराने के लिये कालवाची और मार्गवाची शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है, यथा "अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः" दिन भर या कोस भर में (लगातार कार्य करके) अनुवाक पढ़ लिया, यहाँ अहन् (कालवाचक) क्रोश (मार्गवाचक) शब्दों से तृतीया विभक्ति है।

अपवर्ग—फल प्राप्ति का प्रयोजन यह है कि यदि निरन्तर कार्य करते हुए भी फलप्राप्ति नहीं होती तो कालवाचक या मार्गवाचक शब्दों से तृतीया न होकर 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होगी। जैसे "मासमधीतो नायातः" मासभर पढ़ा तो भी आया नहीं— यहाँ द्वितीया ही होती है।

सहयुक्तेऽप्रधाने इति—सह के अर्थ के योग में अप्रधान (अर्थात् प्रधान कर्त्ता का साथ देने वाले शब्द में तृतीया विभक्ति होगी **'पुत्रेण सहागतः पिता'**—पुत्र के साथ पिता आया— यहाँ प्रधान कर्ता पिता है, क्योंकि क्रिया का मुख्य सम्बन्ध पिता के ही साथ है अतः उसमें प्रथमा और अप्रधान कर्ता 'पुत्रेण' है इसलिये पुत्र शब्द से तृतीया है। इसी प्रकार सह के पर्यायवाची अन्य शब्दों के योग में भी तृतीया विभक्ति होती है 'मया साकं' सार्धम्, समं वा गच्छति।

यदि कहीं सह आदि का प्रयोग नहीं भी है पर इनका अर्थ प्रतीत होता है तो भी सह आदि के अभाव में भी तृतीया विभक्ति होगी। इसका प्रमाण है "वृद्धो-यूना" इत्यादि पाणिनि सूत्र ही, 'यूना' में सह का योग न रहने पर भी तृतीया विभक्ति की गई है।

येनाङ्गविकारः ।२।३।२०।।

येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया स्यात् । अक्ष्णा काणः । अक्षिसम्बन्धिकाणत्व विशिष्ट इत्यर्थः । अङ्गविकारः किम्—अक्षि काण मस्य ।

इत्थं भूतलक्षणे ।२।३।२१।।

कञ्चित् प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात् । जटाभिस्तापसः । जटाज्ञाप्यतापसत्व विशिष्ट इयर्थः ।

संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ।२।३।२२।।

सं पूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया वा स्यात् । पित्रा पितरं वा संजानीते ।

येनाङ्गविकार इति—जिस विकृत अंग से अंगी में विकार लक्षित होता है उस अंग वाचक शब्द से भी तृतीया विभक्ति होती है ।

"अक्ष्णा काणः"—आँख से काना— यहाँ विकृत 'आँख' जो कि शरीर का एक अंग है, से व्यक्ति (अंगी) में विकार लक्षित होता है अतः 'अक्षि' शब्द में तृतीया है इसका अर्थ है "आँख सम्बन्धी काणत्व से युक्त व्यक्ति" इसी प्रकार "पादेन खञ्जः, कर्णेन बधिरः, शिरसा खल्वाटः, पृष्ठेन कुब्जा, उदरेण स्थूलः, कट्या वक्रः, आदि में भी तृतीया ही होगी ।

सूत्र में अंगविकार से तात्पर्य है कि जहाँ अंग के विकार से अंगी (व्यक्ति) में विकार लक्षित हो वहाँ अंगवाची शब्द में तृतीया होगी पर "अक्षि काणमस्य" इस प्रयोग में आँख का कानापन ही बतलाया गया है न कि इससे व्यक्ति में विकार लक्षित कराया गया है अतः यहाँ 'अक्षि' में तृतीया न होगी ।

"इत्थं भूतलक्षणे इति"—इत्थं भूत अर्थात् किसी विशेष दशा को प्राप्त हुआ अतः जहाँ किसी विशेष दशा की प्राप्ति को सूचित करने वाले शब्दों का योग होगा वहाँ उन शब्दों में तृतीया विभक्ति होगी ।

"जटाभिस्तापसः"—जटाओं से तपस्वी— यहाँ जटाओं द्वारा व्यक्ति का तपस्वी होना लक्षित कराया गया है । जटाओं द्वारा व्यक्ति का तपस्वी होना लक्षित होता है अर्थात् जटायें तपस्वीपन की लक्षक या ज्ञापक हैं अतः 'जटाभिः' में प्रस्तुत सूत्र से तृतीया विभक्ति है । "जटाभिस्तापसः का अर्थ है, जटाओं से लक्षित तपस्वीपन से युक्त व्यक्ति ।"

'संज्ञ-इति'—सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु के कर्म में तृतीया विभक्ति विकल्प से हो ।

हेतौ ।२।२।२३।।

हेत्वर्थे तृतीया स्यात् । द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम् । करणत्वं तु क्रियामात्र विषयं व्यापार नियतं च । दण्डेन घटः । पुण्येन दृष्टो हरिः । फलमपीह हेतुः । अध्ययनेन वसति ।

गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका । अलं श्रमेण । श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः । साधन क्रियां प्रति श्रमः करणम् । शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः । शतेन परिच्छिद्येत्यर्थः ।

'पित्रा पितरं वा संजानीते'—(पिता को अच्छी प्रकार जानता है) यहाँ सम् + ज्ञा = संजानीते के कर्म 'पितरम्' में द्वितीया तथा 'पित्रा' में तृतीया विभक्ति हुई है ।

हेताविति—कारण वाची शब्द से तृतीया विभक्ति होती है ।

द्रव्यादीति—'कर्तृकरण्योस्तृतीया' सूत्र से करण में तृतीया का विधान किया गया है, और इस सूत्र से हेतु में तृतीया होती है अतः स्पष्ट है कि करण और हेतु दोनों भिन्न हैं । हेतु तो साधारण रूप से द्रव्य गुण और क्रिया प्रायः तीनों का ही हो सकता है वहाँ किसी व्यापार होने की अत्यावश्यकता नहीं रहती पर 'करण' क्रिया का ही हो सकता है अतएव उसमें निश्चित रूप से क्रिया साधक व्यापार (कर्म) रहता है । "रामेण बाणेन बाली हतः" यहाँ बाण शब्द में करण में तृतीया है इस बाण में हनन् क्रिया का साधक व्यापार विद्यमान है । पर निम्नलिखित उदाहरणों में ऐसा नहीं है अतः यहाँ हेतु में तृतीया है ।

दण्डेन घटः—यहाँ यद्यपि दण्ड द्रव्य में व्यापार है पर वह घट (द्रव्य) का हेतु है, क्रिया का जनक नहीं । अतः यहाँ हेतु में तृतीया है ।

पुण्डेन दृष्टो हरिः—यहाँ पुण्य शब्द हरि दर्शन का हेतु है पर इसमें कोई व्यापार नहीं है अतः यह निर्व्यापार साधारण हेतु है अतः यहाँ प्रस्तुत सूत्र से हेतु में (न कि करण में) तृतीया है ।

फलमपीति—इस सूत्र में फल या प्रयोजन भी हेतु शब्द से ग्रहीत होता है अतएवः—

'अध्ययनेन वसति' अध्ययन के प्रयोजन से रहता है । यहाँ प्रयोजन के भी हेतु द्वारा ग्रहीत होने के कारण 'अध्ययन' में तृतीया विभक्ति हुई है ।

गम्यमानेति—गम्यमाना अर्थात् वाक्य में साक्षात् अप्रयुक्त भी क्रिया, यदि उसका अर्थ निकलता है, तो वह भी कारक विभक्ति विधान में प्रयोजिका होती है ।

अलं श्रमेण—श्रम से बस करो अर्थात् श्रम करना व्यर्थ है इससे कुछ सिद्ध न हो सकेगा । यहाँ 'श्रम' साधन क्रिया के प्रति करण है, पर साधन क्रिया वाक्य

(वा) अशिष्टव्यवहारे दाणः संप्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया। दास्या संयच्छते कामुकः। धर्मे तु भार्यायै संयच्छति। इति तृतीया।

में प्रयुक्त नहीं है, पर उसका अर्थ यहाँ गृहीत होता है अर्थात् 'अलं श्रमेण' का अर्थ करते समय उसका अध्याहार कर लिया जाता है अतएव वह यहाँ गम्यमाना क्रिया कही जायगी, उपर्युक्त नियमानुसार ऐसी भी क्रिया कारक विभक्ति में निमित्त है अतः 'श्रमेण' में तृतीया है। **'शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः'** सौ सौ करके बछड़ों को पानी पिलाता है, यहाँ भी उपर्युक्त नियमानुसार गम्यमान 'परिच्छिद्य' इस क्रिया के द्वारा शतेन में तृतीया विभक्ति हुई है। यहाँ परिच्छिद्य क्रिया वाक्य में प्रयुक्त नहीं है तथापि इसके प्रति 'शत' यह करण है अतएव इस गम्यमान क्रिया को मानकर यहाँ तृतीया है।

(वा) अशिष्टेति—अशिष्ट व्यवहार में दाण् (देना) धातु के प्रयोग में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है।

'दास्या संयच्छते कामुक :'—(कामुक दासी के लिये देता है) यहाँ 'दा' के प्रयोग में चतुर्थी प्राप्त थी पर वार्तिक के अनुसार अशिष्ट व्यवहार में 'दास्या' में तृतीया विभक्ति हुई है।

'भार्यायै संयच्छति' यहाँ धर्म व्यवहार है, अशिष्ट व्यवहार नहीं अतः वार्तिक से तृतीया न होकर साधारण अर्थ में 'दा' के प्रयोग में चतुर्थी होगी।

इति तृतीया

चतुर्थी विभक्तिः

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।१।४।३२।।

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदान संज्ञः स्यात् ।

चतुर्थी सम्प्रदाने ।२।३।१३।

विप्राय गां ददाति । अनभिहित इत्येव । दानीयो विप्रः ।

(व) क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् । पत्ये शेते ।

कर्मणेति—दान के कर्म द्वारा कर्त्ता जिसे चाहता है जिसको देता है या जिसको उद्देश्य बनाता है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। क्योंकि सम्प्रदान का अर्थ है जिसे कुछ दिया जाय 'सम्प्रदीयते यस्मै तत्सम्प्रदानम्'।

चतुर्थीति—सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है।

विप्राय गां ददाति—(ब्राह्मण को गाय देता है) यहाँ दान का कर्म गाय है जिसको वह ब्राह्मण को उद्देश्य कर देता है अतः 'विप्र' की सम्प्रदान संज्ञा और प्रकृत सूत्र से उसमें चतुर्थी विभक्ति है।

अनभिहित इति—द्वितीया, तृतीया विभक्तियों की तरह चतुर्थी विभक्ति भी अनुक्त सम्प्रदान में ही होगी, अर्थात् जहाँ सम्प्रदान कारक में प्रत्यय होने पर सम्प्रदान उक्त हो जायगा वहाँ चतुर्थी न होगी।

दानीयो विप्रः—दीयते अस्मै इस विग्रह में सम्प्रदान में यहाँ अनीयर् प्रत्यय होकर 'दानीयः' रूप बनता है अतः सम्प्रदान के उक्त हो जाने से विप्र में चतुर्थी विभक्ति न होगी।

(वा) क्रियेति—जब किसी क्रिया के द्वारा भी कर्त्ता को कुछ अभिप्रेत (इष्ट) होता है तब भी उस पदार्थ की सम्प्रदान संज्ञा होती है।

पत्ये शेतेः—पति के उद्देश्य से सोती है। यहाँ शयन क्रिया 'शेते' का अभिप्रेत पति है अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा होकर 'पत्ये' में चतुर्थी विभक्ति हुई है।

(वा) यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा । पशुना रुद्रं यजते, पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः ।

रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।१।४।३३।।

रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः सम्प्रदानं स्यात् ।

हरये रोचते भक्तिः । अन्य कर्तृकोऽभिलाषो रुचिः । हरिनिष्ठप्रीते र्भक्तिः कर्त्री । प्रीयमाणः किम्—"देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि ।

श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ।१।४।३४।।

एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टः सम्प्रदानं स्यात् । गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते ह्नुते तिष्ठते शपते वा । ज्ञीप्स्यमानः किम्—देवदत्ताय श्लाघते पथि ।

(व) यजेरिति—यज् धातु के कर्म की करण संज्ञा तथा सम्प्रदान की कर्म संज्ञा हो ।

'पशुना रुद्रं यजते' (रुद्र को पशु देता है) यहाँ यज् धातु के कर्म पशु की करण संज्ञा तथा रुद्र की, जो कि 'दा' धातु के कर्म द्वारा अभिप्रेत पदार्थ है सम्प्रदान संज्ञा है । अतः कर्म (पशु) की करण संज्ञा होकर तथा रुद्र की कर्म संज्ञा होकर दोनों में क्रमशः तृतीया एवं द्वितीया विभक्ति हुई है ।

रुच्यर्थानामिति – रुचि अर्थ वाली धातुओं के योग में प्रीयमाण (प्रसन्न होने वाला) पदार्थ सम्प्रदान संज्ञक हो ।

(रुच धातु के यद्यपि 'दीप्ति' तथा अभिप्रीति (प्रसन्नता) ये दो अर्थ हैं तथापि यहाँ 'प्रीयमाणः' इस पद के साहचर्य से अभिप्रीत्यर्थक रुच् धातु ही गृहीत है ।)

हरये रोचते भक्तिः—हरि को भक्ति अच्छी लगती है । यहाँ रुच् धातु के योग में प्रीयमाण पदार्थ 'हरि' है अतः उसकी प्रकृतसूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होकर उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है ।

अन्य कर्तृक इति—अन्य के द्वारा उत्पन्न की गई अभिलाषा को रुचि कहते हैं । प्रकृत उदाहरण में हरि में रहने वाली रुचि (प्रीति) को उत्पन्न करने वाली भक्ति है । रुच् धातु का इस प्रकार का यहाँ विशेष अर्थ ग्रहण किया गया है अतएव जहाँ इस प्रकार की अन्यकर्तृक अभिलाषा रूप रुचि न होगी वहाँ सम्प्रदान संज्ञा न होगी, जैसे 'हरिः भक्तिमभिलषति' यहाँ हरि की सम्प्रदान संज्ञा नहीं होती ।

प्रीयमाणः किमितिः—प्रीयमाण पदार्थ की ही सम्प्रदान संज्ञा होती है अत-एव 'देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि' यहाँ प्रीयमाण पदार्थ देवदत्त है न कि पथिन् शब्द । अतः देवदत्त की ही सम्प्रदान संज्ञा है पथिन् की नहीं, अतएव वहाँ अधिकरण में सप्तमी है ।

श्लाघेति--श्लाघ् (प्रशंसा या स्तुति करना) ह्नुङ् (छिपना या दूर करना) स्था, शप् (उलहना देना) धातुओं के प्रयोग में ज्ञीप्स्यमान पदार्थ, अर्थात् कर्त्ता जिस पर अपना भाव प्रकट करना चाहता है, की सम्प्रदान संज्ञा होती है ।

धारेरुत्तमर्णः ।१।४।३५।।

धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्णः उक्त संज्ञः स्यात् । भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः । उत्तमर्णः किम्-देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे ।

स्पृहेरीप्सितः ।१।४।३६।।

स्पृहयतेः प्रयोगे इष्टः सम्प्रदानं स्यात् । पुष्पेभ्यः स्पृहयति । ईप्सितः किम्—पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति । ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा । प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात् कर्म संज्ञा । पुष्पाणि स्पृहयति ।

गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते ह्नुते तिष्ठते शपते वा (गोपी कामवश कृष्ण के लिये श्लाघा करती अर्थात् आत्म प्रशंसा द्वारा कृष्ण पर अपनी विरह वेदना प्रकट करती है । सपत्नी आदि को दूर कर कृष्ण पर अपना भाव प्रकट करती है । देर हो रही है अब चलना चाहिए ऐसा कह कर भी ठहर कर अपना भाव कृष्ण के लिये बतलाती है । उपालम्भ द्वारा अपना भाव प्रकट करती है । इन सभी भावों में कृष्ण ही बोधयितुमिष्ट अर्थात् ज्ञीप्स्यमान पदार्थ हैं अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा और चतुर्थी विभक्ति है ।

ज्ञीप्स्यमानः किमिति—ज्ञीप्स्यमान पदार्थ की ही सम्प्रदान संज्ञा होती है । अतः 'देवदत्ताय श्लाघते पथि' यहां पथिन् शब्द ज्ञीप्स्यमान पदार्थ न होने के कारण सम्प्रदान संज्ञक न हुआ है ।

धारेरिति—णिजन्त धारि धातु के योग में उत्तमर्ण अर्थात् ऋण देने वाला सम्प्रदान संज्ञक होता ।

भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः—(भगवान भक्त के लिये मोक्ष का ऋणी है) यहाँ णिच् प्रत्ययान्त धृ के योग से उत्तमर्ण भक्त की सम्प्रदान संज्ञा और उसमें चतुर्थी विभक्ति है, भगवान अधमर्ण ऋणी है, भक्त उत्तमर्ण है, क्योंकि भक्त का भगवान पर भक्ति रूपी ऋण है जिसके निष्क्रय के लिये वह मोक्ष को धारण करता है ।

उत्तमर्णः किमिति—उत्तमर्ण की ही सम्प्रदान संज्ञा होती है अतः **'देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे'** यहाँ उत्तमर्ण देवदत्त है न कि पथिन् अतः पथि में सप्तमी विभक्ति हुई है और देवदत्त में जो कि उत्तमर्ण है सम्प्रदान संज्ञा तथा चतुर्थी विभक्ति है ।

स्पृहेरिति—स्पृह् (चाहना) धातु के योग में ईप्सित (चाहा हुआ) पदार्थ सम्प्रदान संज्ञक हो ।

पुष्पेभ्य : स्पृहयति—(फूलों को चाहता है) यहाँ स्पृह् धातु के योग में ईप्सित पदार्थ-पुष्प की सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी विभक्ति हुई है ।

क्रुध द्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः १।४।३७।।

क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपः स उक्त संज्ञः स्यात् । हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा । यं प्रति कोपः किम्—

भार्यामीर्ष्यति, मैनामन्योऽद्राक्षीदिति । क्रोधोऽमर्षः । द्रोहोऽपकारः । ईर्ष्याऽक्षमा, असूया गुणेषु दोषाविष्करणम् । द्रुहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते । अतो विशेषणं सामान्येन यं प्रति कोप इति ।

ईप्सितः किमिति—ईप्सित पदार्थ की ही सम्प्रदान संज्ञा होती है। अतः 'पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति' यहाँ वन की सम्प्रदान संज्ञा नहीं हुई क्योंकि ईप्सित पदार्थ पुष्प है न कि वन।

ईप्सितमात्र इति—सूत्र द्वारा साधारणतया ईप्सित चाहे हुए पदार्थ की ही, सम्प्रदान संज्ञा होती है न कि ईप्सित अत्यधिक चाहे हुए पदार्थ की भी, अत्यधिक चाहे हुए पदार्थ अर्थात् जिसमें प्रकर्ष—अत्यधिकता की विवक्षा होगी तो वहाँ सम्प्रदान संज्ञा न होकर कर्म संज्ञा ही होगी क्योंकि 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' सूत्र सम्प्रदान संज्ञा विधायक सूत्र से पर है, नियमानुसार तुल्य बल विरोध होने पर, पर कार्य ही होता है (विप्रतिषेधे परं कार्यम्)।

पुष्पाणि स्पृहयति—यहाँ प्रकर्ष विवक्षा में पर होने के कारण कर्मसंज्ञा होकर पुष्पाणि में द्वितीया हुई है।

क्रुधेति—क्रुध (क्रोध करना) द्रुह (द्रोह-बैर करना) ईर्ष्य (ईर्ष्या करना) असूय (गुणों में दोष देखना) धातुओं के प्रयोग में जिस पर क्रोध आदि किया जाय उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा—(हरि पर क्रोध द्रोह आदि करता है) यहाँ इन धातुओं के प्रयोग में हरि के प्रति क्रोध है अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा और उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है।

यं प्रति कोपः किमिति—जिसके प्रति कोप हो उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है अतः भार्याम् ईर्ष्यति मा एनाम् अन्यः अद्राक्षीत् (पत्नी को कोई दूसरा देखे यह बात सहन नहीं करता) यहाँ भार्या के प्रति क्रोध नहीं है किन्तु उसका दूसरे के द्वारा देखा जाना सह्य नहीं है अतः कोप का विषय न होने के कारण भार्या की सम्प्रदान संज्ञा न होगी अपितु उसमें कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होगी।

यद्यपि क्रुध आदि चारों क्रियाओं का अर्थ भिन्न-भिन्न है तथापि (यं प्रति कोपः) यह सामान्य रूप से इन सभी का विशेषण है जैसे क्रोध का अर्थ है—अमर्ष, द्रोह-अपकार, ईर्ष्या सहन न करना और असूया-गुणों में दोष देखना। अतः यहाँ न केवल क्रोध अपितु द्रोह आदि भी कोप प्रभव-क्रोध से उत्पन्न होने वाले ही लिये जाते हैं। अतएव यं प्रति कोपः यह सामान्यतः सभी का विशेषण हो जाता है।

क्रुध द्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म १।४।३८।।

सोपसर्गयोरनयो र्योगे यं प्रति कोपस्तत्कारकं कर्म संज्ञं स्यात् ।

क्रूरमभिक्रुध्यति । अभि द्रुह्यति ।

राधीक्ष्यो र्यस्य विप्रश्नः १।४।३९।।

एतयोः कारकं सम्प्रदानं स्यात् । यदीयो विविधः प्रश्नः क्रियते ।

कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा । पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थः ।

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता १।४।४०।।

आभ्यां परस्य शृणोते र्योगे पूर्वस्य प्रवर्तनरूप व्यापारस्य कर्त्ता सम्प्रदानं स्यात् । विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा । विप्रेण मह्यं देहीति प्रवर्तितः प्रतिजानीत इत्यर्थः ।

अनुप्रति गृणश्च १।४।४१।।

क्रुधद्रुहोरिति—उपसर्ग पूर्वक क्रुध् और द्रुह् धातुओं के योग में जिसके प्रति कोप हो उसकी कर्मसंज्ञा होती है ।

क्रूरमभिक्रुध्यति अभिद्रुह्यति—क्रूर के प्रति क्रोध और द्रोह करता है यहाँ दोनों धातुओं के सोपसर्ग होने से प्रकृत सूत्र से क्रोध के विषय 'क्रूर' की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया हुई है ।

राधीक्ष्योरिति—राध् तथा ईक्ष् धातुओं के योग में जिसके विषय में शुभाशुभ विषयक विविध प्रश्न किये जाएँ उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है ।

राध तथा ईक्ष धातु के क्रमशः आराधना एवं देखना अर्थ हैं पर यहाँ इनका प्रयोग शुभाशुभ विषयक पर्यालोचना के अर्थ में किया गया है ।

"कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा" गोपी द्वारा पूछे जाने पर गर्गाचार्य कृष्ण के विषय में शुभाशुभ की पर्यालोचना करते हैं, यहाँ कृष्ण के विषय में प्रश्न किया गया था । अतः उसी की सम्प्रदान संज्ञा हुई और चतुर्थी विभक्ति हुई है ।

प्रत्याङ्भ्यामिति--प्रति और आङ् उपसर्गपूर्वक श्रु धातु के योग में प्रवर्तित कराने वाले, अर्थात् जो पहले प्रेरणा करने वाला है, कर्त्ता की सम्प्रदान संज्ञा हो ।

विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा (विप्र के लिये गाय का वचन देता है तात्पर्य यह कि पहले ब्राह्मण कहता है कि मुझे गाय दो तब दूसरा उसे गाय देने का वचन देता है) इस वाक्य में पहले प्रवर्त्तन रूप-प्रेरणा रूप व्यापार का कर्त्ता विप्र है अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा होकर उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है । (प्रति आङ् पूर्वक श्रु धातु का अर्थ प्रतिज्ञा करना या वचन देना है ।)

अनुप्रतिगृणश्चेति—अनु तथा प्रति उपसर्ग पूर्वक गृ (शब्द करना) धातु के योग में पहले प्रवर्त्तना रूप व्यापार के करने वाले की सम्प्रदान संज्ञा होती है ।

आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्व-व्यापारस्य कर्तृभूत मुक्त संज्ञं स्यात्। होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति।

होता प्रथमं शंसति तमध्वर्युः प्रोत्साहयतीत्यर्थः

परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् १।४।४४।।

नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणं तस्मिन् साधकतमं कारकं सम्प्रदान संज्ञं वा स्यात्। शतेन शताय वा परिक्रीतः।

(वा) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या। मुक्तये हरिं भजति।

(वा) क्लृपि सम्पद्यमाने च। भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते सम्पद्यते जायत इत्यादि।

(वा) उत्पातेन ज्ञापिते च। वाताय कपिला विद्युत्।

होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति—होता के लिये अनुगृणन-प्रोत्साहन देता है अर्थात् होता (यज्ञीय चार ऋत्विजों में से एक) पहिले बोलता है तब अध्वर्यु (अन्य ऋत्विज) उसको प्रोत्साहित करता है, यहाँ पूर्वव्यापार का कर्त्ता होता है अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा होकर उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है।

परिक्रयणे इति—परिक्रयण का अर्थ है 'नियत काल के लिये किसी को वेतन पर रखना'। इस परिक्रयण रूप व्यापार का जो साधकतम कारक उसकी सम्प्रदान संज्ञा विकल्प से होती है।

शतेन शताय वा परिक्रीतः—(सौ रुपये वेतन देकर रखा गया) यहाँ परिक्रयण (वेतन देकर नियत काल के लिये स्वीकार करना) का साधकतम कारक अर्थात् करण 'शत' है अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा और उसमें चतुर्थी विभक्ति है, पक्ष में करण में तृतीया विभक्ति होगी।

(वा) तादर्थ्य इति—तादर्थ्य अर्थात् 'उसके लिये' इस अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है तात्पर्य यह कि जिस प्रयोजन के लिये कोई कार्य होता है उस प्रयोजन वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है।

मुक्तये हरिं भजति—(मुक्ति के लिये हरि को भजता है) यहाँ मुक्ति प्रयोजन है अतः उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है।

(वा) क्लृपीति—क्लृप्—समर्थ होना या उत्पन्न होना अर्थवाली धातुओं के प्रयोग में जो होने वाला और परिणाम या फलस्वरूप है उसमें चतुर्थी होती है।

भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते सम्पद्यते जायते (भक्ति ज्ञान के लिये होती है) यहाँ ज्ञान सम्पद्यमान (होने वाला) है अतः उसमें चतुर्थी हुई है।

(वा) उत्पातेनेति—उत्पात का अर्थ है, आकस्मिक भौतिक विकार जो अशुभ सूचक हो, इस उत्पात से सूचित अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है।

(वा) हितयोगे च । ब्राह्मणाय हितम् ।

क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ।१।३।१४।।

क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य तस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य तुमुनः कर्मणि चतुर्थी स्यात् । फलेभ्यो याति । फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः ।

नमस्कुर्मो नृसिंहाय । नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः । एवं स्वयम्भवे नमस्कृत्येत्येत्यादावपि ।

तुमर्थाच्च भाववचनात् ।२।३।१५।।

वाताय कपिला विद्युत्—(कपिल वर्ण की बिजली आँधी की सूचिका है) यहाँ बिजली से आँधी की अशुभ सूचना मिलती है अतः 'वाताय' में चतुर्थी विभक्ति है ।

(वा) हितयोगे चेति—हित के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

ब्राह्मणाय हितम्—यहाँ हितयोग 'ब्राह्मणाय' में चतुर्थी है ।

क्रियार्थोपपदस्येति— उपपद वह पद होता है जो समीप सुनाई पड़े या रहे । क्रियार्था क्रिया 'उपपदं यस्य' अर्थात् जहाँ किसी एक क्रिया के लिये होने वाली दूसरी क्रिया पास में हो । स्थानिनः का अर्थ है अप्रयुज्यमान अर्थात् जिसका स्थान तो हो पर उसका प्रयोग न किया गया हो । क्रियार्था क्रिया के योग में तुमुन् प्रत्यय का विधान किया गया है । क्रियार्थक क्रिया के योग में ही तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं अतः क्रियार्थक क्रिया से यहाँ तात्पर्य तुमुन् प्रत्ययान्त क्रिया की सिद्धि के लिये प्रयुक्त अन्य क्रिया । पर स्थानी अर्थात् उसका प्रयोग वाक्य में न किया गया हो अतः क्रियार्थोपपदस्य स्थानिन इत्यादि का अर्थ है जहाँ तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का अर्थ तो प्रकट हो रहा हो पर उसका प्रयोग न हो तो ऐसी क्रिया के कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

फलेभ्यो याति—फलों के लिये जाता है, यहाँ इसका तात्पर्य है कि फलों को ले आने के लिये जाता है । यहाँ क्रियार्था क्रिया है 'याति' क्योंकि आनयन रूप क्रिया के लिये यहाँ इस दूसरी क्रिया का प्रयोग है, पर उस आनयन क्रिया का प्रयोग नहीं किया गया है यद्यपि यहाँ इसका कर्म 'फल' है । अतः इस क्रियार्था क्रिया 'याति' के उपपद (पास में) रहते, अप्रयुज्यमान जो तुमुन् प्रत्ययान्त 'आहर्तुम्' क्रिया उसके कर्म अर्थात् 'फल' में चतुर्थी विभक्ति हुई है । इसी प्रकार **'नमस्कुर्मो नृसिंहाय'** इस वाक्य में नृसिंहम् अनुकूलयितुम् नमस्कुर्मः इस अर्थ में अनुकूलयितुम् इस स्थानी अर्थात् अप्रयुज्यमान तुमुन्नन्त पद के कर्म नृसिंह में चतुर्थी विभक्ति है । यहाँ भी नमस्कुर्मः यह क्रियार्था क्रिया उपपद है । इसी प्रकार 'स्वयम्भुवे नमस्कृत्य' इत्यादि स्थलों में भी चतुर्थी विभक्ति हुई है । यहाँ इसका अर्थ है ''स्वयम्भुवम् प्रीणयितुम् नमस्कृत्य'' यहाँ भी प्रीणयितुम् इस तुमुन्नन्त पद का अप्रयोग है यद्यपि उसका भाव यहाँ गृहीत है ।

तुमर्थाच्चेति—'भाववचनाश्च' ३।३।११।। इस सूत्र द्वारा भाव में होने वाले

'भाववचनाश्च' इति सूत्रेण यो विहितस्तदन्ताच्चतुर्थी स्यात् ।
यागाय याति, यष्टुं यातीत्यर्थः ।

नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलं वषड्योगाच्च ।२।३।१६।।

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः ।

(ब) उपपद विभक्तेः कारक विभक्ति र्बलीयसी । नमस्करोति देवान् ।

प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा ।

अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि । प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः । **तस्मै प्रभवति ।५।१।१०१।।**

घञ् आदि प्रत्ययों का तुमुन् के अर्थ में विधान किया गया है अतः उन घञ् आदि प्रत्ययान्त शब्दों से चतुर्थी विभक्ति हो ।

यागाय याति—यज्ञ के लिये अर्थात् यज्ञ करने के लिये जाता है । यहाँ यज् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय होकर याग शब्द बनता है, यहाँ घञ् प्रत्यय तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में हुआ है अतः इस घञन्त शब्द से चतुर्थी विभक्ति है ।

नम इति—नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलम् वषड् शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

हरये नमः—यहाँ नमः के योग में 'हरये' में चतुर्थी है ।

उपपदविभक्तेरिति—उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति बलवती होती है । अतः इस बलवत्तावश उपपद विभक्ति को बाधकर कारक विभक्ति होती है । विभक्ति विधान के प्रायः दो निमित्त होते हैं (१) क्रिया सम्बन्ध, (२) पद सम्बन्ध । क्रिया को साक्षात् या असाक्षात् रूप से निमित्त मानकर होने वाली विभक्ति कारक विभक्ति कही जाती है जैसे कर्म में होने वाली द्वितीया विभक्ति आदि । पद को मानकर अर्थात् क्रिया पद से भिन्न अन्य किसी पद को निमित्त मानकर होने वाली विभक्ति उपपद विभक्ति कही जाती है ।

(उपपद=पास में पढ़ा गया पद) जिस एक ही स्थल में दोनों प्रकार की विभक्तियाँ प्राप्त होती हैं वहाँ कारक विभक्ति ही होती है जैसे 'नमस्करोति देवान्' इस वाक्य में नमः इस पद को निमित्त मानकर उक्त सूत्र से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त होती है । 'नमस्करोति' इस क्रिया पद को मानकर कर्म 'देव' में द्वितीया विभक्ति भी प्राप्त होती है । इस दशा में उक्त परिभाषा के नियमानुसार कारक विभक्ति-द्वितीया के बलवती होने से यहाँ द्वितीया विभक्ति ही होगी, चतुर्थी नहीं, क्योंकि वह 'नमः' पद को निमित्त मानकर होने के कारण उपपद विभक्ति है ।

प्रजाभ्यः स्वस्ति—यहाँ स्वस्ति के योग में 'प्रजाभ्यः' में चतुर्थी विभक्ति है ।

अग्नये स्वाहा—यहाँ स्वाहा के योग में 'अग्नये' में तथा पितृभ्यः स्वधा यहाँ स्वधा के योग में 'पितृभ्यः' में चतुर्थी विभक्ति है ।

स एषां ग्रामणीः ५।२।७८।। इति निर्देशात् । तेन प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्येति सिद्धम् । वषडिन्द्राय । चकारः पुनर्विधानार्थः ।

तेनशीर्विवक्षायां परामपि 'चतुर्थी चाशिषीति' षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति । स्वस्ति गोभ्यो भूयात् ।

अलमिति—सूत्र में 'अलम्' से पर्याप्ति अर्थ का ग्रहण है अर्थात् करने में समर्थ यह अर्थ है, फलतः निषेधार्थक अलम् के योग में चतुर्थी न होगी। पर्याप्त अर्थात् समर्थ अर्थ वाले सभी शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। अतः **"दैत्येभ्यो हरिः अलम् समर्थः प्रभु-शक्तः"** इत्यादि के योग में भी 'दैत्येभ्यः' में चतुर्थी विभक्ति सिद्ध होती है परन्तु अलं **विवादेन** (विवाद न करो) यहाँ निषेधार्थक अलं के योग में चतुर्थी न होकर तृतीया हुई है।

प्रभ्वादियोगे इति—प्रभुः समर्थः के योग में उपर्युक्त उदाहरणों में चतुर्थी तो प्रस्तुत सूत्र द्वारा होती ही है पर इन प्रभु आदि समर्थ वाचक शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति भी शुद्ध मानी गई है, यद्यपि किसी सूत्र द्वारा इस षष्ठी का विधान नहीं किया गया है तथापि पाणिनि सूत्रों 'तस्मै प्रभवति' स एषां ग्रामणीः" से यह विदित होता है कि प्रभ्वादि के योग में चतुर्थी भी होती है क्योंकि स्वयं सूत्रकार ने 'तस्मै प्रभवति' यह प्रयोग किया है (यहाँ प्रभवति का अर्थ समर्थ होना है) और इसी प्रकार ग्रामणीः (ग्राम को नयन करने में समर्थ) के योग में 'एषाम्' में षष्ठी का प्रयोग किया है। इन्हीं सूत्रों के प्रमाण से माघ कवि ने 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य' इस प्रयोग में 'भुवनत्रयस्य' शब्द में प्रभुः के योग में षष्ठी विभक्ति की है। अर्थात् माघ कवि का उक्त प्रयोग पाणिनि व्याकरण सम्मत ही समझना चाहिए।

वषडिन्द्राय—इन्द्राय वषट् (इन्द्र के लिए हविष्यदान) यहाँ वषट् के योग में 'इन्द्राय' में उक्त सूत्र से चतुर्थी है।

चकार इति—सूत्र में चकार ग्रहण पुनः चतुर्थी विधान के लिए है। जिससे कि आशीर्वादार्थ की विवक्षा में 'चतुर्थी चाशिषि' इस सूत्र द्वारा होने वाली, पर भी षष्ठी विभक्ति को बाधकर चतुर्थी ही हो।

'स्वस्ति गोभ्यो भूयात्' (गायों का कल्याण हो) यहाँ आशीर्वादार्थ विवक्षा में 'चतुर्थी चाशिषि' सूत्र से षष्ठी विभक्ति और स्वस्ति के योग में प्रकृत सूत्र से चतुर्थी दोनों ही प्राप्त होती हैं। इस दशा में तुल्यबल विरोध होने पर, पर कार्य होना चाहिए था अर्थात् षष्ठी विधायक सूत्र के पर होने के कारण षष्ठी ही होनी चाहिए थी पर सूत्र में जो चकार का ग्रहण किया गया है वह पुनः चतुर्थी विधानार्थ है अतः पर भी षष्ठी को बाधकर यहाँ चतुर्थी ही होगी अन्यथा चकार ग्रहण का कोई प्रयोजन ही न रह जायगा। यदि चकार न होता तो परत्वात् षष्ठी ही होती।

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।२।३।१७।।

प्राणि वर्जे मन्यतेः कर्मणि चतुर्थी वा स्यात्तिरस्कारे । न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा । श्यना निर्देशात् तानादिकयोगे न । न त्वां तृणं मन्वेऽहम् । अप्राणिष्वित्यपनीय ।

(वा) नौकाकान्नशुकशृगाल वर्ज्येष्विति वाच्यम् । तेन न त्वां नावं अन्नं वा मन्ये इत्यत्राप्राणित्वेऽपि चतुर्थी न । न त्वां शुने मन्ये इत्यत्र प्राणित्वेऽपि भवत्येव ।

गत्यर्थ कर्मणि द्वितीया चतुर्थ्यौं चेष्टायामनध्वनि ।२।३।१२।।

मन्यकर्मणीति—अनादर या तिरस्कार प्रकट करने में मन् (मानना या समझना दिवादि) धातु के कर्म में यदि वह प्राणी न हो तो विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है।

(न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा) मैं तुमको तिनके के तुल्य भी नहीं समझता। यहाँ मन् (श्यन् विकरण दिवादि) धातु के योग में अनादर प्रकट करने में, अप्राणि-वाचक तृण शब्द से चतुर्थी विभक्ति हुई है, और पक्ष में मन् धातु के कर्म में द्वितीया भी।

श्यनेति—'मन्य' इस श्यन् विकरण द्वारा निर्देश करने के कारण तनादि मन् धातु के योग में चतुर्थी विभक्ति न होगी। अपितु मन् के कर्म में द्वितीया ही होगी।

न त्वां तृणं मन्वेऽहम्—यहाँ मन् धातु तनादिगण का है, अतः उसके योग में चतुर्थी नहीं हुई है।

वा नौकेति—वार्तिककार का मत है कि उक्त सूत्र में से 'अप्राणिषु' यह पद हटाकर उसके स्थान पर प्रस्तुत वार्तिक पढ़ना चाहिए अर्थात् अप्राणिषु के स्थान पर नौ (नाव) काक, अन्न, शुक, शृंगाल को छोड़कर मन् धातु के कर्म में चतुर्थी विभक्ति हो, ऐसा कहना चाहिए।

न त्वां नावम् अन्नं वा मन्ये (तुमको नाव वा अन्न नहीं समझता) यहाँ इस वार्तिक के विधान के अनुसार, नाव और अन्न के अप्राणी होते हुए भी, चतुर्थी विभक्ति नहीं होती। अतः नावम् व अन्नम् में द्वितीया है। क्योंकि वार्तिक में अप्राणी होते हुए भी इन शब्दों के योग में चतुर्थी का विधान नहीं है, वार्तिक के अभाव में सूत्र द्वारा यहाँ चतुर्थी हो जाती।

न त्वां शुने मन्ये—(तुझे कुत्ता भी नहीं समझता) यहाँ यद्यपि श्वा प्राणि वाचक है, अतएव सूत्र से चतुर्थी नहीं प्राप्त है पर वार्तिक में श्वन् के योग में चतुर्थी का निषेध न होने से यहाँ 'शुने' में प्राणिवाचक होने पर भी चतुर्थी हो जाती है।

गत्यर्थकर्मणीति—गत्यर्थक धातुओं के कर्म में द्वितीया व चतुर्थी विभक्ति होती है यदि वह कर्म मार्गवाचक न हो पर शारीरिक चेष्टा हो।

अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मणि एतौ स्तश्चेष्टायाम् । ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति । चेष्टायां किम्-मनसा हरिं व्रजति । अनध्वनीति किम्-पन्थानं गच्छति । गन्त्राधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः । यदा तूत्पथात् पन्था एवा क्रमितुमिष्यते तदा चतुर्थी भवत्येव । उत्पथेन पथे गच्छति । इति चतुर्थी ।

'ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति'—(गाँव को जाता है) यहाँ ग्राम मार्गवाचक भी नहीं है, और गमन क्रिया में शारीरिक चेष्टा है। अतः ग्राम शब्द में गम् धातु के योग में चतुर्थी व द्वितीया विभक्ति है।

चेष्टायां किमिति—शारीरिक व्यापार करने पर ही चतुर्थी व द्वितीया होती है अतः 'मनसा हरिं व्रजति' (मन के द्वारा हरि को प्राप्त होता है) मन की गति शारीरिक चेष्टा नहीं है अतः उक्त विभक्तियाँ नहीं हुईं।

अनध्वनीति—गत्यर्थक धातुओं का कर्म मार्गवाचक होने पर उक्त विभक्तियाँ नहीं होतीं अतः 'पन्थानं गच्छति' (मार्ग पर चलता है) यहाँ गम् धातु का कर्म मार्ग ही है अतएव यहाँ चतुर्थी विभक्ति न होकर केवल कर्म में द्वितीया हुई है।

गन्त्राधिष्ठित इति—यदि गमन कर्त्ता के द्वारा मार्ग अधिष्ठित होता है अर्थात् जब जाने वाला स्वयं अपने इष्ट मार्ग पर चलता है तभी मार्गवाचक शब्दों से चतुर्थी का निषेध सूत्र द्वारा होता है पर जब उत्पथ (कुमार्ग) से जाने में असमर्थ होकर गन्ता उसे छोड़कर इष्ट मार्ग की ओर चलता है तब मार्गवाचक शब्द में भी चतुर्थी होती ही है जैसे 'उत्पथेन पथे गच्छति' (अनिष्ट मार्ग से इष्ट मार्ग पर चलता है) यहाँ मार्गवाचक होते हुए भी 'पथे' में चतुर्थी विभक्ति हो गई है। क्योंकि गन्ता भ्रम-वश अधिष्ठित अनिष्ट मार्ग को छोड़कर अपने इष्ट मार्ग पर चलने लगा है।

इति चतुर्थी

पंचमी विभक्ति

ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४।।

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकमपादान संज्ञं स्यात् ।

अपादाने पञ्चमी २।२।२८।।

ग्रामादायति । धावतोऽश्वात्पतति । कारकं किम्-वृक्षस्य पर्णं पतति ।

ध्रुवमिति—अपाय का अर्थ है—विश्लेष अलग होना। किसी पदार्थ (वस्तु या व्यक्ति) के अलग होने में जो कारक ध्रुव अर्थात् अवधि अर्थात् सीमा रूप है उसकी अपादान संज्ञा हो।

अपादान इति—अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है।

ग्रामादायाति—(गाँव से आता है) यहाँ अवधिभूत कारक ग्राम की अपादान संज्ञा और प्रकृतसूत्र से पञ्चमी विभक्ति है।

धावतोऽश्वात्पतति—(दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है) यद्यपि यहाँ अवधिभूत पदार्थ अश्व, ध्रुव या स्थिर नहीं है तथापि वह 'पतति' क्रिया के प्रति अवधिभूत होने से अपादान संज्ञक है और उसमें पञ्चमी विभक्ति है।

'धावतोऽश्वात्पतति' जैसे प्रयोग में अपादान संज्ञा हो सके अतएव वृत्तिकार ने ध्रुवम् का अर्थ अवधिभूतम् किया है, यदि ध्रुवम् का अटल स्थिर अर्थ लिया जाता तो यहाँ अपादान संज्ञा न हो सकती थी।

कारकं किमिति—कारक की ही अपादान संज्ञा होती है, अतः जो कारक नहीं होता अर्थात् जिसका क्रिया से अन्वय नहीं होता उसकी अपादान संज्ञा नहीं होती, अतएव **'वृक्षस्य पर्णं पतति'** में वृक्ष की अपादान संज्ञा न होने से उसमें पंचमी नहीं हुई है।

(वा) जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् । पापाज्जुगुप्सते । विरमति । धर्मात्प्रमाद्यति ।

भीत्रार्थानां भयहेतुः ।१।४।२५।।

भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात् ।

चौराद्बिभेति । चौरात्त्रायते । भयहेतुः किम्—अरण्ये बिभेति त्रायते इति वा ।

पराजेरसोढः ।१।४।२६।।

पराजेः प्रयोगेऽसह्योऽर्थोऽपादानं स्यात् । अध्ययनात् पराजयते, ग्लायतीत्यर्थः । असोढः किम्—शत्रून् पराजयते । अभिभवतीत्यर्थः ।

(वा) जुगुप्सेति—जुगुप्सा (घृणा) विराम (अलग होना) प्रमाद (असावधानी करना) अर्थ वाली धातुओं के योग में जुगुप्सा आदि के कारणभूत पदार्थों की अपादान संज्ञा हो ।

पापाज्जुगुप्सते—यहाँ जुगुप्सा के विषयभूत पदार्थ पाप की अपादान संज्ञा तथा उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई । इसी प्रकार विरमति, के योग में भी ।

धर्मात् प्रमाद्यति—(धर्म से असावधानी करता है) यहाँ धर्मात् में पञ्चमी विभक्ति है ।

भीत्रार्थानामिति—भयार्थक तथा रक्षार्थक धातुओं के योग में भय के हेतुभूत कारक की अपादान संज्ञा हो ।

चौराद् बिभेति—(चोर से डरता है) यहाँ चोर भय का हेतु है । अतः उसकी अपादान संज्ञा और उसमें पञ्चमी बिभक्ति है । इसी प्रकार 'चौरात्त्रायते' प्रयोग के चौरात् में त्रायते के योग में पञ्चमी है ।

भयहेतुः किम्—भय के हेतुभूत पदार्थ की ही अपादान संज्ञा होती है अतः 'अरण्ये बिभेति त्रायते वा' यहाँ अरण्य की अपादान संज्ञा नहीं हुई क्योंकि यहाँ अरण्य भय का हेतु नहीं माना गया है ।

पराजेरिति—परा उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु के योग में असहनीय वस्तु की अपादान संज्ञा हो ।

अध्ययनात् पराजयते—अध्ययन से हार मानता है, उससे थक जाता है । यहाँ पराजयते के योग में असह्य पदार्थ अध्ययन की अपादान संज्ञा और उसमें पञ्चमी हुई है ।

असोढः किमिति—असह्य पदार्थ की ही अपादान संज्ञा होती है अतः 'शत्रून्पराजयते' (शत्रुओं का हराता है) 'अभिभवति=पराजित करता है' यहाँ शत्रून्

वारणार्थानामीप्सितः ।१।४।२७।।

प्रवृत्तिविघातो वारणम् । वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितोऽपादानं स्यात् । यवेभ्यो गां वारयति । ईप्सितः किम्—यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे ।

अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ।१।४।२८।।

व्यवधाने सति यत्कर्तृकस्यात्मनो दर्शनस्याभावमिच्छति तदपादानं स्यात् । मातु र्निलीयते कृष्णः । अन्तर्धौ किम्—चौरान्न दिदृक्षते । इच्छति ग्रहणं किम् अदर्शनेच्छायां सत्यां सत्यपि दर्शने यथा स्यात् ।

की अपादन संज्ञा न होकर कर्म संज्ञा द्वितीया विभक्ति है, क्योंकि शत्रु असह्य नहीं हैं ।

वारणार्थानामिति—वारण का अर्थ है निवारण करना, रोकना, प्रवृत्ति का रोक देना । वारण अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में ईप्सित वस्तु की, अर्थात् जिस से हटाने की चाह हो, अपादान संज्ञा होती है ।

यवेभ्यो गां वारयति—(यवों से गाय को हटाता है) यहाँ यवों से हटाना चाहता है । अत: ईप्सित पदार्थ यव है, अतएव उसकी अपादान संज्ञा और उनमें पञ्चमी विभक्ति है ।

ईप्सितः किम्—ईप्सित पदार्थ की ही अपादान संज्ञा होती है । अत: 'यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे । इस वाक्य में क्षेत्र की जो अनीप्सित है अपादान संज्ञा नहीं हुई । क्षेत्र से गाय वारण करना अभीष्ट नहीं, अपितु यव अभीष्ट हैं ।

अन्तर्धाविति—व्यवधान रहने पर जिससे अपना अदर्शन चाहा जाय या जिससे अपने आप को छिपाना चाहा जाय उसकी अपादान संज्ञा होती है ।

मातुर्निलीयते कृष्णः—कृष्ण माता से छिपता है, कृष्ण दीवाल आदि का व्यवधान करके माता से छिपना चाहता है । अत: मातु: की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी हुई है ।

अन्तर्धौ किम्—अन्तर्धि का अर्थ है—व्यवधान अर्थात् किसी वस्तु द्वारा व्यवधान होने पर ही अपादान संज्ञा होती है । अत; 'चौरान्न दिदृक्षते' (चोर मुझे न देख लें अत: चोरों को देखना नहीं चाहता) यहाँ व्यवधान के अभाव में दिदृक्षा रहते हुए भी अपादान संज्ञा नहीं हुई है । यहाँ व्यवधान निमित्तक छिपना नहीं है ।

इच्छति ग्रहणं किमिति—सूत्र में इच्छति ग्रहण करने का फल यह है कि यदि कोई व्यक्ति छिपने की इच्छा रखता हुआ भी देख लिया जाय तो भी अपादान संज्ञा हो सके । 'युधिष्ठिरो दुर्योधनाद् निलीयते' यहाँ भी अपादान संज्ञा हो जाती है ।

आख्यातोपयोगे ।१।४।२९।।

नियमपूर्वक विद्यास्वीकारे वक्ता प्राक् संज्ञः स्यात् । उपाध्यायादधीते । उपयोगे किम्-नटस्य गाथां शृणोति ।

जनि कर्तुः प्रकृतिः ।१।४।३०।।

जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात् । ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते ।

भुवः प्रभवः १।४।३१।।

भवनं भूः । भूकर्तुः प्रभवस्तथा । हिमवतो गंगा प्रभवति । तत्र प्रकाशते इत्यर्थः ।

(वा) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च । प्रसादात् प्रेक्षते, आसनात् प्रेक्षते, प्रसादमारुह्य आसने उपविश्य प्रेक्षत इत्यर्थः । श्वशुराज्जिह्रेति । श्वशुरं वीक्ष्येत्यर्थः ।

आख्यातोपयोगे—इस सूत्र में उपयोग का अर्थ है नियमपूर्वक विद्या का ग्रहण करना । अतः नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में आख्यात (वक्ता या अध्यापक) जिससे विद्या ग्रहण की जाय अपादान संज्ञक होता है ।

उपाध्यायादधीते—(उपाध्याय से पढ़ता है) यहाँ नियमपूर्वक विद्याध्ययन में वक्ता उपाध्याय की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई है ।

उपयोगे किमिति—नियमपूर्वक विद्या स्वीकार में ही वक्ता की अपादान संज्ञा होती है । अतः नटस्य गाथां शृणोति 'इस वाक्य में नियमपूर्वक गाथा श्रवण के अभाव में 'नट' की अपादान संज्ञा नहीं होगी ।

जनिकर्तुरिति—जनि का अर्थ है उत्पत्ति 'जनिरुत्पत्तिरुद्भवः' । जनि कर्ता= उत्पन्न होने वाले—जायमान का जो हेतु, उसकी अपादान संज्ञा हो ।

ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते—(ब्रह्म से प्रजायें उत्पन्न होती हैं) यहाँ जायमान प्रजाओं की उत्पत्ति का हेतु ब्रह्म है । अतः उसकी अपादान संज्ञा होने से उसमें पञ्चमी विभक्ति है ।

भुव इति—भू का अर्थ है होना । प्रभवः का अर्थ है प्रथम प्रकाश का स्थान । भुवः अर्थात् भू के कर्त्ता के प्रथम उत्पत्ति या प्रकाश स्थान की अपादान संज्ञा हो, तात्पर्य यह कि उत्पन्न होने वाले की उत्पत्ति का जो प्रथम स्थान उसकी अपादान संज्ञा हो ।

हिमवतो गंगा प्रभवति—हिमालय से गंगा प्रथम प्रकाशित होती है—यहाँ प्रकाश स्थान हिमालय की अपादान संज्ञा और उसमें पञ्चमी विभक्ति है ।

(वा) ल्यब्लोप इति—ल्यप् के लोप होने पर, उसके कर्म तथा आधार में पञ्चमी विभक्ति हो (अर्थात् जहाँ ल्यबन्त शब्द अप्रयुक्त हो अर्थात् वाक्य में ल्यबन्त पद का प्रयोग न हो, पर उसका भाव प्रकट हो रहा हो ।)

अपपरी वर्जने ।१।४।८७।।

एतौ वर्जने कर्मप्रवचनीयौ स्तः ।

कि इस समय यद्यपि उसका प्रयोग देश या काल अर्थ में किया जा रहा है तथापि उसके योग में पञ्चमी विभक्ति होगी । पूर्व उत्तर आदि शब्दों का प्रयोग दिशा काल एवं देश इन सभी अर्थों में होता है, दिक् न कहकर दिक् शब्द कहने से पूर्वादि शब्दों का तीनों अर्थों में प्रयोग ग्रहण किया जायगा । उपर्युक्त उदाहरण तो दिशावाचक पूर्व शब्द का है । "चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः" चैत से प्रथम फाल्गुन । यहाँ पूर्व शब्द समय का वाचक है तथापि इसके दिक् शब्द होने के कारण इसके योग में भी चैत्रात् में पञ्चमी विभक्ति हुई है ।

अवयववाचीति-- अवयव वाची पूर्व, पर, उत्तर आदि दिक् शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति नहीं होती । इसके लिए 'तस्य परमाम्रेडितम्' यह पाणिनि सूत्र ही प्रमाण है यहाँ 'तस्य परम्' में परम् के योग में षष्ठी है पञ्चमी नहीं । इस नियम के अनुसार 'पूर्वं कायस्य' (शरीर का पूर्व अवयव) यहाँ पञ्चमी नहीं हुई, अपितु सम्बन्ध मात्र विवक्षा में षष्ठी विभक्ति हुई ।

अञ्चूत्तरपदस्येति – यद्यपि अञ्चू धातु से बने शब्दों के उत्तर पद वाले प्राक्, प्रत्यक्, उदक्, आदि शब्द भी दिक् शब्द ही हैं । अतः दिक् शब्द से ही यद्यपि इनका ग्रहण हो जाता तथापि पुनः सूत्र में उनके ग्रहण करने का प्रयोजन यह हैं कि 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन'' सूत्र के प्राप्त होने वाली षष्ठी का बाध हो सके जिससे कि प्राक् आदि शब्दों के योग में षष्ठी न होकर पञ्चमी ही हो । जैसे--प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात् यहाँ स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय और उसका लोप हो जाता है । यह अतसर्थक प्रत्यय है अतः इनके योग में ग्रामात् में पंचमी हुई है ।

दक्षिणा ग्रामात्—दक्षिण शब्द से 'आच्' इस तद्धित प्रत्यय के आने पर दक्षिणा शब्द बना है । अतः आच् प्रत्ययान्त दक्षिणा के योग में ग्रामात् में पञ्चमी विभक्ति है ।

दक्षिणाहि ग्रामात् – यहाँ दक्षिण शब्द से आहि प्रत्यय होता है अतः दक्षिणाहि के योग में ग्रामात् में पञ्चमी है ।

अपादाने इति—'अपादाने पञ्चमी' इस सूत्र पर भाष्यकार ने 'कार्तिक्याः प्रभृति' यह प्रयोग किया है इस प्रमाण से सिद्ध है कि प्रभृति अर्थ वाले शब्दों के योग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है ।

भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः—(जन्म से लेकर हरि की सेवा करनी चाहिए) यहाँ प्रभृति और आरभ्य के योग में 'भवात्' में पञ्चमी विभक्ति हुई है ।

अपपरीति—अपपरिवहिः २।१।१२।। इस सूत्र द्वारा वहिः के साथ पञ्चम्यन्त का समास विधान किया जाता है पर वहिः के योग में पञ्चमी का विधान किसी सूत्र द्वारा नहीं किया गया है, तथापि उक्त सूत्र द्वारा वहिः के साथ पञ्चम्यन्त से

आङ् मर्यादावचने ।१।४।८९।।

आङ् मर्यादायामुक्तसंज्ञः स्यात् । वचनग्रहणादभिविधावपि ।

पञ्चम्यपाङ् परिभिः ।२।३।१०।।

एतैः कर्मप्रवचनीयै योगे पञ्चमी स्यात् । अप हरेः, परि हरेः संसारः । परिरत्र वर्जने । लक्षणादौ तु हरिं परि । आमुक्तेः संसारः । आसकलाद् ब्रह्म ।

समास विधान के प्रमाण से जाना जाता है कि वहिः के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है अतएव 'ग्रामाद्बहिः' इस प्रयोग में बहिः के योग में ग्रामात् में पञ्चमी है ।

अपपरीतिः—वर्जन अर्थ में वर्तमान अप और परि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

आङिति – मर्यादा अर्थ में आङ् की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। प्रकृत सूत्र में 'मर्यादायाम्' न कहकर जो 'मर्यादावचन' कहा है अर्थात् वचन शब्द का अधिक ग्रहण किया गया है, इससे यह सिद्ध होता है कि वचन ग्रहण से मर्यादा के अतिरिक्त अभिविधि का भी ग्रहण है अर्थात् मर्यादा और अभिविधि अर्थ में आङ् की कर्मप्रवचीय संज्ञा होती है।

अप आङ् परि इन कर्मप्रवचनीय संज्ञकों के योग में पञ्चमी विभक्ति हो ।

अप हरेः, परि हरेः, संसारः (हरि को छोड़कर जन्म मरणादि रूप सुख-दुखात्मक संसार है, यहाँ परि अप वर्जन अर्थ में हैं। अतः अपपरी वर्जने सूत्र से इनकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा है और प्रकृत सूत्र से इनके योग में 'हरेः' में पञ्चमी विभक्ति हुई है।

लक्षणादौ तु—जहाँ परि शब्द लक्षणादि अर्थात् लक्षण इत्थंभूताख्यानादि अर्थों में होगा वहाँ तो इसकी लक्षणेत्यादि सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होगी और द्वितीया विभक्ति होगी। जैसे 'हरिं परि'

आमुक्तेः संसारः—(मुक्ति तक अर्थात् मुक्ति के पूर्व तक संसार है) यहाँ आङ् मर्यादा अर्थ में है। अतः इसकी आङ् मर्यादावचने सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा तथा प्रकृत सूत्र से 'मुक्तेः' यहाँ पञ्चमी विभक्ति होती है।

'आसकलाद् ब्रह्म' :—सकलपर्यन्त या सबको व्याप्त करके ब्रह्म है। यहाँ अभिविधि अर्थ में आङ् की पूर्ववत् कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से प्रकृत सूत्र द्वारा 'सकलाद्' में पञ्चमी विभक्ति हुई है। (मर्यादा) और अभिविधि में यह अन्तर है कि मर्यादा में तो वह वस्तु गृहीत नहीं होती पर अभिविधि में वह वस्तु भी गृहीत होती है जहाँ तक के लिए किसी बात को बतलाया गया हो। "तेन विनेति मर्यादा, तेन सहेत्यभिविधिः" आमुक्तेः का अर्थ है मुक्ति तक अर्थात् मुक्ति के पूर्व तक, मुक्ति को छोड़कर उसके पूर्व तक। आसकलाद् का अर्थ है सबको व्याप्त करके अतः यह अभिविधि है।

गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम् । कस्मात्त्वं नद्याः ।

(वा) यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी ।

(वा) तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ ।

(वा) कालात् सप्तमी च वक्तव्या ।

वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा । कार्तिक्या आग्रहायणी मासे ।

प्रासादात् प्रेक्षते—आसनात् प्रेक्षते—(महल से देखता है, आसन से देखता है) यहाँ क्रमशः आरुह्य और उपविश्य इन ल्यवन्त पदों का प्रयोग तो नहीं है पर इनका भाव अवश्य प्रकट होता है अर्थात् प्रासादात् प्रेक्षते का अर्थ है महल पर चढ़कर देखता है और आसनात् प्रेक्षते का अर्थ है आसन पर बैठकर देखता है। अतः यहाँ आरुह्य पद के कर्म प्रासाद में तथा उपविश्य के अधिकरण आसन में क्रमशः पञ्चमी विभक्ति हुई है।

श्वशुराज्जिह्रेति—(ससुर से लज्जा करती है) यहाँ वीक्ष्य पद का अप्रयोग है पर उसका भाव द्योतित हो रहा है। अतः उक्त वाक्य का अर्थ है। 'ससुर को देखकर लज्जा करती है।' अतः यहाँ वीक्ष्य पद के योग में उसके कर्म श्वशुर में पञ्चमी विभक्ति हुई है।

गम्यमानापीति – जिस क्रिया का वाक्य में साक्षात् प्रयोग न हो, पर प्रकरण आदि वश जिसका ज्ञान हो, वह क्रिया गम्यमान कही जाती है। ऐसी क्रिया भी किसी भी कारक विभक्ति का निमित्त (कारण) होती है, अतएव कस्मात्वं नद्याः—तुम कहाँ से (आये) नदी से (आये) यहाँ यद्यपि आगमन क्रिया साक्षात् उपात्त नहीं है, तथापि उसके योग में पञ्चमी विभक्ति होती है, अतः नद्याः में पञ्चमी विभक्ति है।

(वा) **यतश्चेति**—जिससे मार्ग या समय का निर्धारण नाप या संख्या की जाय उस स्थान या समय वाची शब्द से पञ्चमी विभक्ति हो।

(वा) **तद्युक्ताविति**—उस पञ्चम्यन्त शब्द से युक्त दूर या मार्गवाचक शब्द से प्रथमा और सप्तमी विभक्ति हो।

(वा) **कालादिति**—उस पञ्चम्यन्त काल वाचक शब्द से सप्तमी विभक्ति हो।

वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा—(वन से ग्राम एक योजन है) यहाँ वन शब्द से ग्राम की दूरी बतलाई जाती है। अतः उसमें प्रथम वार्तिक से स्थान वाचक होने के कारण पञ्चमी विभक्ति है, इस वनात् पञ्चम्यन्त से युक्त दूरी वाचक शब्द योजन है। अतः द्वितीय वार्तिक से इसमें प्रथमा और सप्तमी विभक्ति है। अतः 'वनाद् ग्रामो योजनं, योजने वा' प्रयोग बनता है।

अन्यारादितरर्तेदिक् शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि युक्ते ।२।३।२९।।

एतैर्योगे पञ्चमी स्यात् । अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतर ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् । आराद्वनात् । ऋते वा कृष्णात् । पूर्वो ग्रामात् । दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः ।

तेन सम्प्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि भवति । चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः । अवयव वाचि योगे तु न । **तस्य परमाम्रेडितम्** ।८।१।२२।। इति निर्देशात् । पूर्वं कायस्य । अञ्चूत्तर पदस्य तु दिक्शब्दत्वेऽपि **"षष्ठ्यतसर्थ प्रत्ययेन"** इति षष्ठीं वाधितुं पृथग्ग्रहणम् । प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात् । आच्—दक्षिणा ग्रामात् ! आहि—दक्षिणाहि ग्रामात् । "अपादाने पञ्चमी" इति सूत्रे कार्तिक्याः प्रभृतीति भाष्यप्रयोगात् प्रभृत्यर्थ योगे पञ्चमी । भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः ! **अपपरिबहिः** २।१।१२।। इति समासविधानाज्ज्ञापनाद् बहिर्योगेऽपि पञ्चमी । ग्रामाद्बहिः ।

कार्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्तिकी से अगहन पूर्णिमा एक महीने में होती है। यहाँ कार्तिकी शब्द से समय की गणना की जा रही है। अतः प्रथम वार्तिक से उसमें पञ्चमी विभक्ति है और तृतीय वार्तिक द्वारा कालवाची मास शब्द में सप्तमी विभक्ति है।

अन्यारादिति—अन्य, आरात्, (दूर या समीप) इतर, (अन्य) ऋते (बिना) दिक् शब्द (पूर्वादि) अञ्चु धातु से बना हुआ शब्द जिसके उत्तरपद में हो ऐसे प्राक् प्रत्यक् आदि शब्द, आच् प्रत्ययान्त दक्षिणा आदि शब्द तथा आहि प्रत्ययान्त दक्षिणाहि आदि शब्द, इनके योग में पञ्चमी हो।

अन्य इति—सूत्र में पठित अन्य शब्द से तदर्थवाची अन्य शब्दों का जैसे भिन्न, पर, इतर आदि का भी ग्रहण है। इतर शब्द का ग्रहण, जबकि वह अन्यार्थवाची शब्दों के अन्तर्गत आ ही जाता था, केवल प्रपञ्चार्थ है, अधिक बढ़ाकर कहने के लिए अथवा अनावश्यक ही है।

अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्—कृष्ण से अन्य। यहाँ इन अन्यार्थवाची शब्दों के योग में 'कृष्णात् में पञ्चमी है।

आराद्वनात्—वन के पास यहाँ आरात् के योग में वनात् में पञ्चमी है।

ऋते कृष्णात्—कृष्ण के बिना। यहाँ ऋते के योग में कृष्णात् में पञ्चमी विभक्ति है।

पूर्वो ग्रामात्—ग्राम से पूर्व—यहाँ दिक् शब्द पूर्व के योग में ग्रामात् में पञ्चमी है।

दिशीति—सूत्रपठित 'दिक्शब्द का अर्थ है वह शब्द जो दिशा के अर्थ में देखा गया है अर्थात् जिसका प्रयोग दिशा के अर्थ में होता है। इससे यह फल हुआ

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य ।२।३।३५।।

एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे तृतीयापञ्चम्यौ स्तः। स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्तः। द्रव्ये तु स्तोकेन विषेण हतः।

दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ।२।३।३५।।

एभ्यो द्वितीया स्यात् पञ्चमी तृतीये। प्रातिपदिकार्थमात्रे विधिरयम्। ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा। अन्तिकम् अन्तिकेन अन्तिकात् वा। असत्त्ववचनस्येत्यनुवृत्तेर्नेह। अदूरः पन्थाः। इति पञ्चमी।

पृथक् रामेण, रामात, रामम् वा—यहाँ पृथक् के योग में प्रकृत नियम के अनुसार तीनों विभक्तियाँ हुई हैं।

इसी प्रकार बिना, और नाना के योग में भी उपर्युक्त तीनों विभक्तियाँ होंगी, 'बिना नाना वा रामेण रामात् रामं वा।

करणे चेति—द्रव्य से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त स्तोक (कम) अल्प, कृच्छ्र (दुःख) तथा कतिपय शब्दों से करण अर्थ में तृतीया व पञ्चमी विभक्ति विकल्प से हों।

स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्तः—(थोड़े से ही प्रयत्न से छूटा हुआ) यहाँ स्तोक शब्द का प्रयोग किसी द्रव्य के समानाधिकार में न होने से प्रकृत सूत्र से तृतीया और पञ्चमी विभक्ति हुई हैं। इसी प्रकार अल्प, कृच्छ्र आदि शब्दों के योग से भी।

द्रव्येत्विति—अद्रव्यवाची ही स्तोकादि शब्दों से उक्त विभक्तियाँ होती हैं, द्रव्यवाची होने पर नहीं जैसे 'स्तोकेन विषेण हतः' यहाँ स्तोक शब्द 'विष' इस द्रव्य का समानाधिकरण है। अतः यहाँ पञ्चमी विभक्ति न होगी।

दूरान्तिकेति—दूर तथा अन्तिक (समीप) अर्थ वाले शब्दों से द्वितीया तथा पञ्चमी व तृतीया विभक्ति भी होती हैं।

प्रातिपदिकार्थमात्र इति—ये उक्त तीनों विभक्तियाँ केवल प्रातिपदिकार्थ में होती हैं अर्थात् इन विभक्तियों के होने पर भी इन शब्दों से प्रथमा विभक्ति का ही अर्थ लिया जायगा, विभक्तियों के कारण कोई अन्य विभक्त्यर्थ नहीं।

ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा—(गाँव से दूर) यहाँ दूर शब्द से उपर्युक्त तीनों विभक्तियाँ हुई हैं। इसी प्रकार अन्तिक शब्द से भी विभक्तियाँ होंगी।

असत्त्वेति—इस सूत्र में ऊपर वाले सूत्र से 'असत्त्ववचनस्य' शब्द की अनुवृत्ति है। अतः दूर व अन्तिक अर्थ वाले शब्द यदि किसी द्रव्य के विशेषण न होंगे तभी इनसे उपर्युक्त विभक्तियाँ होंगी अन्यथा नहीं, जैसे 'अदूरः पन्थाः' यहाँ अदूर 'पन्था' इसका विशेषण होने से अद्रव्यवाची नहीं है। अतः उसमें प्रथमा विभक्ति है।

इति पञ्चमी

षष्ठी विभक्ति

षष्ठी शेषे ।२।३।५०।।

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात् । राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव । सतां गतम् । सर्पिषो जानीते । मातुः स्मरति । एधोदकस्योपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयोः । फलानां तृप्तः ।

षष्ठीति—कारक अर्थात् कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण तथा प्रातिपदिकार्थ—प्रथमा, जिनका कि वर्णन अष्टाध्यायी के क्रमानुसार ऊपर किया जा चुका है, इनसे बचा हुआ जो स्व (अपनी वस्तु धनादि या व्यक्ति) तथा स्वामी आदि सम्बन्ध, इस सम्बन्ध को प्रकट करने में षष्ठी विभक्ति होती है।

(इस विभक्ति से संज्ञादि शब्दों में पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट किया जाता है, इसका क्रियापद से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अतएव इस विभक्ति को कारक विभक्ति नहीं कहते हैं।)

राज्ञः पुरुषः—(राजा का पुरुष) यहाँ पुरुष 'स्व' का वाचक है और 'राज्ञः' स्वामी का। अतः राजा और पुरुष दोनों संज्ञा शब्दों में स्वस्वाभिमाव सम्बन्ध होने से यहाँ राज्ञः में षष्ठी है।

कर्मादीनामिति—जब कर्म आदि कारकों में भी केवल सम्बन्ध मात्र प्रकट करने की इच्छा रहती है अर्थात् कर्मत्व आदि की विवक्षा नहीं होती तो वहाँ भी षष्ठी विभक्ति ही होती है। जैसे **सतां गतम्**—(सज्जनों का गमन) यहाँ भाव में गम् धातु से क्त प्रत्यय है। अतः यहाँ सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में 'सताम्' में षष्ठी है, तृतीया नहीं। इसी प्रकार **'सर्पिषो जानीते'** (घृत के उपाय से प्रवृत्त होता है) यहाँ 'सर्पिस्' के प्रवृत्ति में करण होने के कारण, करण में तृतीया की अविवक्षा कर सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में 'सर्पिषः' में षष्ठी हुई है।

प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ।१।४।९२।।

एतयोरर्थयोः प्रतिरुक्तसंज्ञः स्यात् ।

प्रतिनिधिप्रतिवादने च यस्मात् ।२।३।११।।

अत्र कर्मप्रवचनीयैं योगे पञ्चमी स्यात् । प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति । तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् ।

अकर्तर्यृणे पञ्चमी । ।२।३।२४।।

कर्तृवर्जितं यदृणं हेतुभूतं ततः पञ्चमी स्यात् । शताद् बद्धः ?

अकर्तरि किम्—शतेन बन्धितः ।

प्रतिरिति:—प्रतिनिधि तथा प्रतिदान अर्थ में वर्तमान प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

प्रतिनिधीति— यस्मात्—जिसकी ओर से कोई प्रतिनिधि हो अथवा जिससे किसी वस्तु का प्रतिदान हो अर्थात् वस्तु बदली जाय उससे कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति के योग में पञ्चमी हो ।

प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति—(प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं) यहाँ प्रतिनिधि अर्थ में वर्तमान 'प्रति' की **प्रतिरिति** सूत्र द्वारा कर्मप्रवचनीय संज्ञा और कृष्ण की ओर से प्रद्युम्न प्रतिनिधि हैं अतएव कृष्णात् में प्रति के योग में प्रकृत सूत्र से पञ्चमी विभक्ति है ।

तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्—(तिलों से उड़द बदलता है) यहाँ प्रतिदानार्थक प्रति की पूर्ववत् कर्मप्रवचनीय संज्ञा और तिलों से माषों का प्रतिदान है। अतएव तिलेभ्यः में प्रकृत सूत्र से पञ्चमी हुई है ।

अकर्तर्यृण इति—कर्त्ता से भिन्न जो ऋण का हेतु हो उससे पञ्चमी विभक्ति होती है ।

शताद्बद्ध :—(सौ रुपये का ऋण न देने के कारण बांधा गया) यहाँ 'शत शब्द ऋणबन्धन का हेतु है अतएव प्रकृत सूत्र से उसमें पञ्चमी है ।

अकर्तरीति किम्—कर्तृभिन्न ऋण के हेतुभूत शब्द से ही पञ्चमी विभक्ति होती है अर्थात् ऋण के बन्धन के हेतुभूत पदार्थ की कर्त्ता संज्ञा न हो उसी स्थिति में पञ्चमी होगी । अतः शतेन बन्धितः (सौ रुपये ने (कर्जदार को) बँधवाया । यहाँ शत शब्द में पञ्चमी न होगी क्योंकि यहाँ ऋण द्वारा बन्धन का हेतुभूत शब्द कर्त्ता ही है । बन्धितः—यहाँ बन्ध धातु प्रेरणार्थक णिच् प्रत्ययान्त बन्धि से कर्म में क्त प्रत्यय है । अतः इसका कर्त्ता शतेन और कर्म अधमर्ण पुरुष है। शत (सौ रुपये) ने अधमर्ण को बँधवाया यह इसका अर्थ है । अतः यहाँ यद्यपि शतेन हेतु है तथापि कर्त्ता होने के कारण उसमें पञ्चमी न होगी ।

विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ।२।३।२५॥

गुणे हेतावस्त्रीलिंगे पञ्चमी वा स्यात् । जाड्याज्जाड्येन वा बद्धः ।

गुणे किम्—धनेन कुलम् । अस्त्रियां किम्—बुद्ध्या मुक्तः ।

विभाषेति योगविभागादगुणे स्त्रियां च क्वचित् । धूमादग्निमान् । नास्ति घटोऽनुपलब्धेः ।

पृथग्विना नानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् ।२।३।३२॥

एभिर्योगे तृतीया स्यात् पञ्चमी द्वितीये च । अन्यतरस्यां ग्रहणं समुच्चार्थम् पञ्चमी द्वितीयेऽनुवर्तते । पृथग् रामेण रामात् रामं वा । एवं बिना नाना ।

विभाषेति—स्त्रीलिंग से भिन्न जो गुणवाचक शब्द, हेतु को भी प्रकट करता है उससे विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है।

जाड्याज्जाड्येन वा बद्धः—(मूर्खता के कारण बँध गया) यहाँ जाड्य शब्द स्त्रीलिंग नहीं, गुणवाचक है और हेतु भी है। अतः उससे पञ्चमी विभक्ति हुई है और पक्ष में तृतीया भी।

गुणे किमिति—गुणवाचक से ही पञ्चमी होती है। अतः **'धनेन कुलम्'** यहाँ पर धन शब्द के गुणवाचक न होने के कारण पञ्चमी नहीं हुई।

अस्त्रियां किमिति—स्त्रीलिंग भिन्न गुणवाचक शब्द से ही पञ्चमी होती है। अतः **'बुद्ध्या मुक्तः'** यहाँ पञ्चमी नहीं हुई क्योंकि बुद्धि शब्द स्त्रीलिंग है अतएव यहाँ हेतु में तृतीया विभक्ति है।

विभाषेति—'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' सूत्र में योग विभाग करके 'विभाषा' एक सूत्र तथा शेष दूसरा सूत्र मान लिया जाता है' और इसमें हेतौ तथा 'पञ्चमी' की अनुवृत्ति करके इसका अर्थ होता है—'हेतु में विकल्प से पञ्चमी हो। जिसका फल यह होता है कि कहीं-कहीं गुणवाचक शब्द न होने पर भी पञ्चमी हो जाती है। जैसे 'धूमात् अग्निमान्' (धुएँ से अग्निवाला (पर्वत) यहाँ यद्यपि धूम शब्द गुणवाचक नहीं है तथापि इस योगविभाग से यहाँ पञ्चमी हो जायगी।

इसी प्रकार इस योगविभाग का दूसरा फल यह है कि कहीं-कहीं स्त्रीलिंग शब्द से भी पञ्चमी हो जायगी, जैसे-नास्ति घटोऽनुपलब्धेः" उपलब्धि (प्राप्ति) न होने से घट नहीं है। यहाँ अनुपलब्धि शब्द लभ धातु से क्तिन् प्रत्यायन्त होने के कारण स्त्रीलिंग है तथापि इससे पञ्चमी विभक्ति साधु है।

पृथगिति—पृथक् बिना नाना के योग में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है और पक्ष में पञ्चमी तथा द्वितीया भी होती है।

सूत्र में 'अन्यतरस्याम्' का ग्रहण समुच्चय के लिये है जिससे इसमें द्वितीया और पञ्चमी का भी समावेश हो जाता है।

दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्तरस्याम् ।२।३।३४।।

एतैर्योगे षष्ठी स्यात् पञ्चमी च । दूरं निकटं ग्रामस्य, ग्रामाद्वा ।

ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ।२।३।५१।।

जानातेरज्ञानार्थस्य करणे शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी स्यात् । सर्पिषो ज्ञानम् ।

अधीगर्थदयेशां कर्मणि । २।३।५२।।

एषां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात् । मातुः स्मरणम् । सर्पिषो दयनम् । ईशनं वा ।

कृञः प्रतियत्ने । २।३।५३।।

कृञः कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात् गुणाधाने । एधोदकस्योपस्करणम् ।

दूरान्तिकार्थैरिति—दूर और अन्तिक (समीप) अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी तथा पञ्चमी विभक्ति होती हैं।

दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद् वा—यहाँ दूरम् तथा अन्तिकार्थवाची निकटम् के योग में षष्ठी तथा पञ्चमी विभक्ति होती हैं।

ज्ञोऽविदर्थस्येति—ज्ञान से भिन्न अर्थवाली ज्ञा धातु के करण में सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी हो।

सर्पिषो ज्ञानम्—(घृत सम्बन्धी अर्थात् घृत के द्वारा होने वाली प्रवृत्ति) यहाँ ज्ञा धातु का अर्थ 'जानना' न होकर ज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति अर्थ है और इस प्रवृत्ति का करण है—'सर्पिष्' अतः प्रकृत सूत्र से 'सर्पिषः' में षष्ठी है।

अधीगर्थ इति—अधि पूर्वक इ (इक् स्मरणे) अधीक्—अधीगर्थ अर्थात् स्मरणार्थक धातुओं, दानगतिरक्षणार्थक दय धातु, ईश, (ऐश्वर्य अर्थ में) धातु के कर्म में सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

मातुः स्मरणम्—(माता का स्मरण करना) यहाँ 'स्मृ' के योग में उसके कर्म मातृ शब्द में षष्ठी विभक्ति है।

सर्पिषो दयनम्, ईशनं वा—(घृत का देना अथवा उसका यथेष्ट प्रयोग)-यहाँ दय् एवं ईश के कर्म सर्पिस् में षष्ठी विभक्ति है।

कृञ इति—वृत्तिकार ने प्रतियत्न का अर्थ गुणाधान अर्थात् "किसी वस्तु के गुणों का किसी अन्य वस्तु में रखना" किया है। अतः सूत्र का अर्थ है—गुणाधान अर्थ में कृञ् धातु के कर्म में सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी हो।

एधोदकस्योपस्करणम्—(एध (काष्ठ) जल का उपस्करण है) यहाँ कृञ् धातु (उपस्करणम्) के कर्म में षष्ठी विभक्ति है।

रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः ।२।३।५४।।

भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रुजार्थानां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात् । चौरस्य रोगस्य रुजा ।

(वा) अज्वरिसंताप्योरिति वाच्यम् । रोगस्य चौरज्वरः चोरसन्तापो वा । रोगकर्तृकं चौरसम्बन्धि ज्वरादिकमित्यर्थः ।

आशिषि नाथः ।२।३।५५।।

आशीरर्थस्य नाथतेः शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् । सर्पिषो नाथनम् । आशिषीति किम्—माणवकनाथनम् । तत्सम्बन्धिनी याच्ञेत्यर्थः ।

जासिनिप्रहण नाटक्राथपिषां हिंसायाम् ।२।३।५६।।

रूजार्थानामिति—ज्वरि धातु को छोड़कर अन्य रोगार्थक धातुओं के कर्म में सम्बन्ध मात्र विवक्षा में षष्ठी हो, पर इन धातुओं का कर्त्ता भाववाचक हो ।

चोरस्य रोगस्य रुजा—(रोग द्वारा की गई चोर सम्बन्धी पीड़ा) यहाँ रोगार्थक रुज् धातु का कर्म चोर है तथा भाववाचक शब्द रोग उसका कर्त्ता है । अतः चौरस्य में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी है, रोगस्य में तो कर्त्ता में षष्ठी है ।

(वा) अज्वरीति—सूत्र में 'अज्वरि' के स्थान पर 'अज्वरि संताप्योः' ऐसा कहना चाहिए अर्थात् ज्वरि और सन्तापि धातुओं को छोड़कर अन्य रोगार्थक धातुओं के कर्म में षष्ठी हो अतएव **'रोगस्य चौरज्वरः चौरसन्तापो वा'** ।

चौरज्वरः, चौरसन्तापः इन दोनों में षष्ठी समास है पर यह षष्ठी सम्बन्ध मात्र विवक्षा में हुई है, प्रकृत सूत्र से कर्म की अविवक्षा में षष्ठी विभक्ति यहाँ नहीं है क्योंकि ज्वर और सन्ताप के रहते सूत्र द्वारा षष्ठी नहीं होती है । यदि इस सूत्र से षष्ठी होती तो समास न होता । इसीलिए कि यहाँ 'शेषे षष्ठी' सूत्र से षष्ठी है, समासान्त उदाहरण दिया गया है । यहाँ भी पूर्ववत् रोग कर्त्ता है चोर कर्म है । अतः इस वाक्य का भी वही अर्थ है "रोगकर्तृक चोर सम्बन्धी ज्वर आदि ।"

आशिषीति—आशीः अर्थात् अभिलाषा अर्थवाली नाथ धातु के कर्म में सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी हो ।

सर्पिषो नाथनम्— (घृत सम्बन्धी अभिलाषा) यहाँ अभिलाषार्थक नाथ धातु के कर्म 'सर्पिस्' में सम्बन्धमात्र की विवक्षा में प्रकृत सूत्र द्वारा षष्ठी विभक्ति है ।

आशिषीति किम्—अभिलाषार्थक नाथ धातु के ही कर्म में षष्ठी होती है । अतः माणवकनाथनम् (माणवक सम्बन्धी याचना) में इस सूत्र द्वारा षष्ठी न होगी, क्योंकि यहाँ नाथ् का अर्थ अभिलाषा न होकर 'याचना' है । यहाँ भी 'शेषे षष्ठी' सूत्र से सम्बन्ध मात्र में षष्ठी होकर षष्ठी समास है, इस सूत्र से षष्ठी नहीं हुई है अन्यथा समास न होता अतएव समासान्त उदाहरण दिया गया है ।

जासिति——हिंसार्थक जासि, (जसु—ताडन अर्थ में—का ण्यन्त रूप जासि है) तथा जसु हिंसायाम् (इसका भी ण्यन्त रूप जासि बनेगा अतः जासि पद से दोनों का

षष्ठी हेतुप्रयोगे ।२।३।२६।।

हेतु शब्द प्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी स्यात् । अन्नस्य हेतो र्वसति ।

सर्वनाम्नस्तृतीया च ।२।३।२७।।

सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतो द्योत्ये तृतीया स्यात् षष्ठी च । केन हेतुना वसति । कस्य हेतोः ।

(वा) निमित्तपर्याय प्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् । किं निमित्तं वसति । केन निमित्तेन । कस्मै निमित्तायेत्यादि । एवं किं कारणम् । को हेतुः, किं प्रयोजनमित्यादि । प्रायग्रहणादसर्वनाम्नः प्रथमा द्वितीये न स्तः । ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः । ज्ञानाय निमित्तायेत्यादि ।

मातुः स्मरति—(माता का स्मरण करता है) यहाँ कर्म की अविवक्षा कर सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में 'मातुः' में षष्ठी है ।

एधोदकस्योपस्कुरुते—(काष्ठ जल को परिष्कृत करता है) यहाँ 'एधः' यह कर्त्ता तथा दक (जल) यह कर्म है पर यहाँ कर्म की अविवक्षा कर सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में दकस्य में षष्ठी हो गई है । अथवा 'एधोदकस्य' यह षष्ठयन्त पद समासान्त है अर्थात् "एध और उदक को परिष्कृत करता है" इस अर्थ में 'एधोदक' इस समासान्त पद में कर्म की अविवक्षा तथा सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी है ।

भजे शम्भोश्चरणयोः—(शम्भु के चरणों का भजन करता हूँ) यहाँ भी चरण शब्द में कर्म की अविवक्षा कर सम्बन्ध मात्र में षष्ठी विभक्ति हुई है ।

फलानां तृप्तः—(फलों से तृप्त हुआ) यहाँ यद्यपि फल करण है तथापि उसकी अविवक्षा कर सम्बन्ध मात्र विवक्षा में 'फलानाम्' में षष्ठी विभक्ति हुई है ।

षष्ठी हेतुप्रयोगे—हेतु शब्द के प्रयोग में तथा हेतु (कारण) अर्थ के प्रकट करने में, हेतु शब्द से तथा कारणभूत शब्द से भी षष्ठी विभक्ति होती है ।

अन्नस्य हेतो र्वसति—(अन्न के प्रयोजन से रहता है) यहाँ हेतु शब्द में तथा रहने के प्रयोजनभूत शब्द 'अन्न' में षष्ठी विभक्ति होती है ।

सर्वनाम्न इति—जब सर्वनाम शब्दों के साथ हेतु शब्द का प्रयोग हो तब हेतुता प्रकट करने अर्थ में सर्वनाम तथा हेतु शब्द से तृतीया तथा षष्ठी विभक्ति होती है ।

केन हेतुना वसति—(किसलिए रहता है) यहाँ 'केन' इस सर्वनाम के साथ प्रयुक्त हेतु शब्द में तथा किम् शब्द में तृतीया विभक्ति है और पक्ष में षष्ठी विभक्ति होकर कस्य हेतो र्वसति, यहाँ षष्ठी भी होगी ।

वा-निमित्तेति—निमित्त शब्द तथा उसके पर्यायवाची (प्रयोजन कारण आदि) शब्दों से प्रायः सभी विभक्तियाँ देखी जाती हैं ।

षष्ठ्यतसर्थ प्रत्ययेन ।२।३।३०॥

एतद्योगे षष्ठी स्यात् । 'दिक् शब्द' इति पञ्चम्या अपवादः । ग्रामस्य दक्षिणतः । पुरः पुरस्तात् । उपरि उपरिष्टात् ।

एनपा द्वितीया ।२।३।३१॥

एनबन्तेन योगे द्वितीया स्यात् । एनपेति योगविभागात् षष्ठ्यपि । दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा । एवमुत्तरेण ।

फलतः किं निमित्तम् (प्रथमा) केन निमित्तेन (तृतीया) कस्मै निमित्ताय (चतुर्थी) आदि सभी विभक्तियाँ होती हैं, इसी प्रकार इसके पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग में भी किं कारणम्, को हेतुः, किम् प्रयोजनमित्यादि ।

प्रायग्रहणादिति—वार्तिक में 'प्राय' ग्रहण से यह ज्ञापित होता है कि जहाँ सर्वनाम का प्रयोग नहीं होगा वहाँ प्रथमा और द्वितीया विभक्ति नहीं होगी अन्य सब विभक्तियाँ यथावत् होंगी । अतएव

"ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः"— यहाँ प्रथमा द्वितीया न होकर तृतीया हुई है क्योंकि यहाँ सर्वनाम का प्रयोग नहीं है । इसी प्रकार 'ज्ञानाय निमित्ताय' भी प्रयोग होगा ।

षष्ठ्यतसर्थ इति— अतस् अर्थात् अतसुच् प्रत्यय तथा तदर्थ वाची प्रत्ययों से बने शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है ।

'अन्यारादितर्ते'— इत्यादि सूत्र में 'दिक् शब्द' का ग्रहण करने से दिशावाची शब्दों के योग में पञ्चमी न होकर षष्ठी ही होती है ।

ग्रामस्य दक्षिणतः— यहाँ अतस् प्रत्ययान्त दक्षिणतः के योग में ग्रामस्य में षष्ठी विभक्ति है ।

इसी प्रकार अतसर्थवाची प्रत्यय-असि, अस्ताति, रिल् एवं रिष्टाति प्रत्ययों से बने पुरः, पुरस्तात्, उपरि उपरिष्टात् आदि के योग में भी षष्ठी विभक्ति होगी ।

ग्रामस्य पुरः पुरस्तात्—यहाँ पुर+असि (इकार इत्संज्ञक है)=पुरः, पूर्व+अस्ताति+पुर+अस्तात्=पुरस्तात्, इसी प्रकार उर्ध्व+रिल्=उपरि (ऊर्ध्व को निपातन से उप आदेश) ऊर्ध्व+रिष्टाति=उपरिष्टात्, इन सबके योग में ग्रामस्य में षष्ठी है ।

एनपेति—एनप् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है । यहाँ इस सूत्र में 'एनपा' 'द्वितीया' यह विभाग करके प्रथम भाग में षष्ठी सूत्र से षष्ठी की अनुवृत्ति लाकर, एनप् प्रत्यायन्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति भी होती है ।

दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा—यहाँ 'दक्षिणेन' शब्द में दक्षिण शब्द से एनप् प्रत्यय करके, दक्षिणेन के योग में प्रकृत सूत्र से द्वितीया तथा योगविभाग से षष्ठी भी हुई है । इसी प्रयार 'उत्तरेण' इस एनप् प्रत्ययान्त के योग में भी दोनों विभक्तियाँ होंगी ।

विभाषोपसर्गे ।२।३।६५॥

पूर्व योगापवादः । शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति ।

प्रेष्य ब्रुवोर्हविषो देवता सम्प्रदाने ।४।३।६१॥

देवता सम्प्रदानेऽर्थे वर्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणोः हविर्विशेषष्य वाचकाच्छब्दात् षष्ठी स्यात् । अग्नये छागस्य हविषो वपायाः मेदसः प्रेष्य अनुब्रुहि वा ।

कृत्वोऽर्थ प्रयोगे कालेऽधिकरणे च ।४।३।६४॥

कृत्वोऽर्थानां प्रयोगे कालवाचिन्यधिकरणे शेषे षष्ठी स्यात् । पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् । द्विरह्नो भोजनम् । शेषे किम्—द्विरहन्यध्ययनम् ।

विभाषेति—उपसर्गपूर्वक दिव् धातु के कर्म में शेषार्ष विवक्षा में विकल्प से षष्ठी हो ।

यह पूर्वनियम का अपवाद है ।

शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति—यहाँ सोपसर्ग दिव् धातु के कर्म में शेषार्थ विवक्षा में षष्ठी व द्वितीया हुई है ।

प्रेष्य ब्रुवोरिति—देवता सम्प्रदान अर्थ में वर्तमान प्रेष्य और ब्रू धातु के कर्म में शेषार्थ विवक्षा में षष्ठी हो । जबकि उक्त दोनों क्रियाओं का कर्म हवि वाचक शब्द हो ।

यहाँ देवता सम्प्रदान का अर्थ है—जहाँ देवता को उद्देश्य करके कुछ दिया जाय—देवता जिसमें सम्प्रदान हो—देवता का उद्देश्य करके जहाँ कुछ सम्यक् दान किया जा रहा हो ।

सूत्र में 'प्रेष्य' यह क्रियापद प्रपूर्वक इष् (दिवादि इच्छार्थक) के लोट् लकार के मध्यम पुरुष एक वचन का रूप है । अतएव इसके साहचर्य से ब्रू धातु के लोट् मध्यम पुरुष एक वचन के रूप ब्रूहि का ही यहाँ ग्रहण किया जायगा अर्थात् प्रेष्य और ब्रूहि इनके कर्म में षष्ठी हो । कर्म भी हविर्विशेष का वाचक ही शब्द होना चाहिए ।

अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा—(अग्निदेव के उद्देश्य से दिये जाते हुए छाग सम्बन्धी वपा (चर्बी) मेदस् रूप हवि विशेष को प्रकाशित करो ।) यहाँ प्रेष्य और अनुब्रूहि के कर्म वपा मेदस् हविष् आदि में षष्ठी विभक्ति हुई है ।

कृत्वोऽर्थेति—कृत्व अर्थ वाले प्रत्ययों के प्रयोग में काल-वाचक अधिकरण में शेषार्थ की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ।

यह बताया जा चुका है कि क्रिया की आवृत्ति को प्रकट करने अर्थ में संख्या-

कर्तृकर्मणो : कृति ४।३।६५॥

कृद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात् । कृष्णस्य कृतिः । जगतः कर्त्ता कृष्णः ।
(वा) गुणकर्मणि वेष्यते । नेताऽश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा ।
कृति किम्-तद्धिते माभूत्-कृतपूर्वी कटम् ।

वाचक शब्द से कृत्व सुच् प्रत्यय होता है जैसे सप्तकृत्वः पञ्चकृत्वः सातवार पाँचवार करके।

पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् – (दिन में पाँचवार भोजन) यहाँ कालवाचक अहन् शब्द से, 'पञ्चकृत्वः' इस कृत्वप्रत्ययान्त शब्द के योग में अधिकरण में षष्ठी विभक्ति हुई है। वास्तव में 'दिन मे पाँचवार भोजन' इस अर्थ में दिन वाचक अहन् शब्द में अधिकरण में सप्तमी होनी चाहिए थी। पर इस सूत्र के नियमानुसार यहाँ अहन् शब्द में षष्ठी हुई है, अह्नः' यह षष्ठी विभक्ति का रूप हैं।

द्विरह्नो भोजनम्—(दिन में दो बार भोजन) यहाँ संख्यावाचक द्वि शब्द से सुच् प्रत्यय होकर 'द्विः' बना है, यह प्रत्यय भी उसी अर्थ में अर्थात् क्रिया की आवृत्ति अर्थ में होता है। अतः इसके योग में अधिकरण अर्थ में वर्तमान अहन् शब्द से सम्बन्ध मात्र विवक्षा में षष्ठी होकर 'अह्नः' यह रूप बना है।

शेषे किमिति—सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में ही षष्ठी विभक्ति होती है, अन्यथा अधिकरण में सप्तमी होगी जैसे 'द्विरहन्यध्ययनम्' (दिन में दो बार पढ़ना) यहाँ शेषार्थ की विवक्षा नहीं की। अतः 'द्विः अहनि अध्ययनम्' इस प्रयोग में अहनि शब्द में सप्तमी हुई है।

कर्तृकर्मणोरिति—कृदन्त के योग में कर्त्ता तथा कर्म में षष्ठी हो।

कृष्णस्य कृतिः—(कृष्ण का कार्य) यहाँ कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय करके 'कृतिः' यह कृन्दन्त रूप बना है। इसके योग में कृष्ण इस कर्त्ता में षष्ठी होकर कृष्णस्य कृतिः प्रयोग बना है।

जगतः कर्त्ता कृष्णः—(जगत् के कर्त्ता कृष्ण) यहाँ कृ धातु से तृच् प्रत्यय द्वारा बने कर्त्ता इस कृदन्त के योग में 'जगतः' इस कर्म में षष्ठी विभक्ति हुई है।

(वा) गुणकर्मणीति—दो कर्म वाली कृत् प्रत्ययान्त धातुओं के योग में गौण कर्म में विकल्प से षष्ठी हो।

नेताऽश्वस्य सुघ्नस्य स्रुघ्नं वा—(स्रुघ्न नामक प्रदेश विशेष में घोड़े को ले जाने वाला) यहाँ नी धातु से तृच् प्रत्यग करके बने हुए 'नेता' इस कृदन्त के योग में गौण कर्म स्रुघ्न शब्द में प्रकृत वार्तिक से षष्ठी विभक्ति होकर 'स्रुघ्नस्य' तथा पक्ष में 'अकथितं च' सूत्र नियमानुसार द्वितीया विभक्ति होकर 'स्रुघ्नम्' ये दो रूप बने हैं। 'अश्वस्य' यहाँ प्रधान कर्म में 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से षष्ठी विभक्ति है।

हिंसार्थानामेषां शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् । चौरस्योज्जासनम् । निप्रौ संहितौ विपर्यस्तौ व्यस्तौ वा । चौरस्य निप्रहणनम् । निहननम् । प्रणहननम् वा । नट अवस्कन्दने चुरादिः । चौरस्योन्नाटनम् । चौरस्य क्राथनम् । वृषलस्य पेषणम् । हिंसायां किम्—धानापेषणम् ।

ग्रहण है) नि तथा प्र उपसर्गपूर्वक हन् धातु, नाट् धातु, क्राथ् धातु तथा पिष् धातुओं के कर्म में सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है ।

चौरस्योज्जासनम्—(चोर सम्बन्धी हिंसा) उत् उपसर्गपूर्वक जसु (ण्यन्त जासि) धातु से 'उज्जासनम्' बनता है, इसका कर्म चोर है अतः यहाँ कर्मत्व की अविवक्षा कर सम्बन्धमात्र विवक्षा में प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति हुई है ।

निप्राविति—"नि और प्र" हन् धातु के पूर्व में दोनों उपसर्ग इसी क्रम से मिले हुए अर्थात् 'निप्र' इस रूप में अथवा विपर्यस्तदशा में अर्थात् प्रनि इस दशा में अथवा व्यस्त दशा में अर्थात् नि और प्र इस पृथक्-पृथक् रूप में भी गृहीत होते हैं। इनके क्रमशः उदाहरण निम्नलिखित हैं ।

चौरस्य निप्रहणनम्—(कर्मरूप चोर सम्बन्धी हनन) यहाँ हन्तेरत्पूर्वस्य सूत्र से न का ण हो गया है, इसका कर्म चोर है। अतः उसमें सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी है ।

नि, प्र उपसर्गों के विपर्यस्त एवं व्यस्त दशा के उदाहरण हैं—चौरस्य प्रणिहननम् 'यहाँ 'नेर्गदनद' इत्यादि सेत्र से नि के न को ण हो गया है, पर धातु के न को ण नहीं होगा 'अट्कुप्वाङ्' सूत्र के नियम से। व्यस्त के उदाहरण है—निहननम्, प्रहणनम् ।

चौरस्योन्नाटवम्—यहाँ नट अवस्कन्दने धातु से उत् उपसर्ग लगाकर उन्नाटनम् रूप बनाया गया है, 'यहाँ नट् नृत्तौ' का ग्रहण नहीं है क्योंकि सूत्र में 'नाट' इस दीर्घ का ग्रहण किया गया है. यद्यपि चुरादिगण की नट् अवस्कन्दने धातु का अर्थ नाट्य है पर उत् उपसर्ग के कारण यहाँ इसका अर्थ हिंसा हो गया है, अतः चोरस्योन्नाटनम् का अर्थ है कर्मरूप चौरसम्बन्धिनी हिंसा। इसी प्रकार **'चौरस्य क्राथनम्'** यहाँ क्राथ धातु हिंसार्थक है, इसी प्रकार पिष् धातु का पेषणम् रूप है, इसका कर्म वृषल है प्रकृत सूत्र से सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में 'वृषलस्य' में षष्ठी है, पेषणम् का अर्थ हिंसा अर्थात् वृषल सम्बन्धिनी हिंसा ।

हिंसायाम् किमिति—हिंसार्थक ही इन धातुओं के योग में षष्ठी होती है। अतः **'धानापेषणम्'** यहाँ पिष धातु हिंसार्थक नहीं, पीसना अर्थ है। अतः प्रकृत सूत्र से षष्ठी न होकर 'कर्तृकर्मणोः कृतिः' सूत्र से कृदन्त के योग में षष्ठी विभक्ति हुई

व्यवहृपणोः समर्थयोः ।२।३।५७।।

शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् । द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे चानयोस्तुल्यार्थता । शतस्य व्यवहरणं पणनं वा । समर्थयोः किम्—शलाकाव्यवहारः । गणनेत्यर्थः । ब्राह्मणपणनं स्तुतिरित्यर्थः ।

दिवस्तदर्थस्य ।२।३।५८।।

द्यूतार्थस्य क्रयविक्रय रूप व्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी स्यात् । शतस्य दीव्यति । तदर्थस्य किम्—ब्राह्मणं दीव्यति स्तौतीत्यर्थः ।

है और तब षष्ठी तत्पुरुष समास होकर उक्त रूप बना है, प्रकृत सूत्र से षष्ठी होने पर समास न होगा।

व्यवहृपणोरिति—समर्थयोः—समानार्थक वि+अव पूर्वक हृ (हरणे) धातु और पण् (व्यवहार तथा स्तुति अर्थ वाली) धातु इनके कर्म में सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी होती है।

द्यूत इति—द्यूत क्रीड़ा और क्रय विक्रय करना इन दो अर्थों में वि+अव पूर्वक हृ तथा पण् धातु समानार्थक हैं।

शतस्य व्यवहरणं पणनं वा—(सौ का क्रयविक्रय या द्यूत) यहाँ इन दोनों धातुओं के योग में कर्मरूप शतस्य में सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी है।

समर्थयोः किमिति—समानार्थक ही इन धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है। अतः 'शलाका व्यवहारः' यहाँ व्यवहारः का अर्थ गणना है न कि क्रयविक्रय। अतः व्यवहारार्थक पण् धातु से समान अर्थ न रखने के कारण यहाँ इस सूत्र द्वारा षष्ठी नहीं है। इसी प्रकार **'ब्राह्मणपणनम्'** में भी षष्ठी इस सूत्र से न होगी क्योंकि यहाँ पण् धातु का अर्थ व्यवहार न होकर स्तुति करना है इन दोनों ही प्रयोगों में 'शेषे षष्ठी' से षष्ठी होकर षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ है।

दिव इति—तदर्थस्य अर्थात् द्यूत एवं क्रयविक्रय व्यवहार अर्थ में दिव् धातु के कर्म में सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी हो।

शतस्य दीव्यति—(सौ रुपयों सम्बन्धी द्यूत या क्रयविक्रय व्यवहार अर्थात् सौ रुपयों का द्यूत में या क्रयविक्रय में लगाना) यहाँ इन दो अर्थों में वर्तमान दिव् धातु के कर्म शतस्य में सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी विभक्ति है।

तदर्थस्य किमिति—द्यूत और क्रयविक्रय व्यवहार में ही षष्ठी होती है। भिन्न अर्थ में नहीं अतः **'ब्राह्मणं दीव्यति'** यहाँ षष्ठी नहीं होती क्योंकि यहाँ दिव् का अर्थ स्तुति है द्यूतादि नहीं।

उभयप्राप्तौ कर्मणि ।२।३।६६।।

उभयोः प्राप्ति र्यस्मिन् कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात् । आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ।

(वा) स्त्रीप्रत्ययोरककारयोर्नायं नियमः । भेदिका विभित्सा वा रुद्रस्य जगतः ।

कृति किमिति—कृत्प्रत्ययान्त शब्दों के ही योग में षष्ठी विभक्ति होती है, सूत्र में इसलिए कृत् ग्रहण हैं। अतः तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होगी। फलतः 'कृतपूर्वी कटम्' यहाँ कृतपूर्व शब्द से 'सपूर्वाच्च' इस सूत्र से इनि प्रत्यय जो कि तद्धित प्रत्यय है, करके 'कृतपूर्वी' रूप बना है। अतः यहाँ तद्धित प्रत्ययान्त कृतपूर्वी के योग में 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से 'कटम्' में षष्ठी विभक्ति नहीं हुई है। यद्यपि कट शब्द कृतपूर्वी शब्द का कर्म है तथापि कृतपूर्वी शब्द के तद्धित प्रत्ययान्त होने के कारण यहाँ षष्ठी नहीं होती है।

उभयेति—कृदन्त के योग में जहाँ कर्त्ता और कर्म दोनों ही में षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है, वहाँ कर्म में ही षष्ठी विभक्ति होती है। और कर्त्ता में अनुक्त होने से तृतीया होती है।

आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन—(अगोप-गोपाल से भिन्न व्यक्ति द्वारा गायों का दुहना आश्चर्य की बात है) यहाँ दुह् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर 'दोहः' (दुहना) यह कृदन्त रूप बनता है, इसका कर्त्ता अगोप है और कर्म गो है, यहाँ कर्त्ता और कर्म दोनों में षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है पर प्रकृत सूत्र के नियमानुसार कर्म में ही षष्ठी होकर 'गवाम्' यह रूप बनता है, और अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होकर (क्योंकि दोहः में घञ् प्रत्यय भाव में होता है अतएव कर्त्ता अनुक्त रहता है) अगोपेन रूप बनता है, यह सम्पूर्ण उक्त वाक्य साधु है।

(वा) स्त्रीति—स्त्रीलिङ्ग में होने वाले अक् (ण्वुल् आदि) तथा 'अ' प्रत्ययों से निष्पन्न कृदन्त शब्दों के योग में (उभय प्राप्तौ कर्मणि) इस सूत्र का नियम नहीं लगता अर्थात् स्त्रीवाचक ण्वुल् तथा अ प्रत्ययान्त कृदन्त शब्दों के योग में कर्त्ता व कर्म दोनों में षष्ठी विभक्ति हो जाती है।

भेदिका विभित्सा वा रुद्रस्य जगतः—(रुद्र कर्तृक जगत् कर्मक भेदनेच्छा अथवा भेदन अर्थात् रुद्र द्वारा संसार के भेदन की इच्छा (विभित्सा) अथवा संसार का भेदन, यहाँ भिद् धातु से ण्वुल् प्रत्यय, अक आदेश स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय करने पर 'भेदिका' यह स्त्रीलिंग रूप बनता है। अतः स्त्रीलिंग अक एवं अ प्रत्ययान्त (विभित्सा) इन कृदन्त रूपों के योग में इनके कर्त्ता रुद्र एवं कर्म जगत् इन दोनों शब्दों में षष्ठी विभक्ति हुई है। यहाँ प्रकृत वार्तिक के नियमानुसार 'उभय प्राप्तौ कर्मणि' सूत्र द्वारा केवल कर्म में ही षष्ठी नहीं होती अपितु दोनों में षष्ठी होती है।

(वा) शेषे विभाषा। स्त्री प्रत्यय इत्येके। विचित्रा जगतः कृति र्हरे र्हरिणा वा। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति। शब्दानामनुशासनमाचार्येणाचार्यस्य वा।

क्तस्य च वर्तमाने २।३।६७॥

वर्तमानार्थस्य क्तस्य च योगे षष्ठी स्यात्। न लोकेति निषेधस्यापवादः। राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा।

(वा) शेषे इति—अक और अ प्रत्ययों से भिन्न शेष प्रत्ययों से निष्पन्न कृदन्त शब्दों के योग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है (वास्तव में 'उभयप्राप्तौ' नियम का यह विकल्प है 'उभयप्राप्तौ' सूत्र कर्म में तो षष्ठी करता ही है, कर्त्ता में उसके नियम के अनुसार षष्ठी नहीं होनी चाहिए थी, प्रस्तुत वार्तिक कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी विधान करता है)।

स्त्रीप्रत्यय इत्येके—स्त्रीलिंग कृत प्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग में ही यह वार्तिक काम करता है, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है। इनके मत के अनुसार **"विचित्रा जगतः कृतिः हरेः हरिणा वा"** यहाँ कृति इस स्त्रीलिंग कृत् प्रत्ययान्त के योग में कर्त्ता 'हरि' में वार्तिक के अनुसार विकल्प से षष्ठी तथा पक्ष में तृतीया है। 'जगतः' में तो कर्म में नित्य षष्ठी है।

केचिदिति—किन्हीं आचार्यों का मत है कि 'शेषे विभाषा' वार्तिक द्वारा विधीयमान वैकल्पिक षष्ठी, अक अ प्रत्ययों से भिन्न स्त्री प्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग में ही नहीं होती अपितु वह सामान्यतः (अविशेषेण) सभी प्रत्ययों के (चाहे वे किसी भी लिंग के हों) प्रयोग में भी होती है। अर्थात् कृत् प्रत्ययों के प्रयोग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी होती है।

शब्दानामनुशासनमाचार्येणाचार्यस्य वा—यहाँ अनुशासनम् शब्द में ल्युट् प्रत्यय भाव में होने के कारण यह शब्द नपुंसक लिंग है तथापि इसके कर्त्ता आचार्येण आचार्यस्य' में विकल्प से षष्ठी हुई पक्ष में तृतीया विभक्ति होगी, क्योंकि भाव में प्रत्यय होने पर अनुक्त कर्त्ता में तृतीया होती है।

क्तस्येति—वर्तमान काल में कहे गये क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

क्त प्रत्यय प्रायः भूतकाल में ही होता है, पर "मति बुद्धिपूजार्थेभ्यश्च" सूत्र द्वारा विहित क्त प्रत्यय वर्तमान में होता है, इसी वर्तमान में होने वाले क्त प्रत्यय का ग्रहण इस सूत्र में है।

'न लोकेत्यादि' सूत्र द्वारा आगे निष्ठा (क्त-क्तवतु) प्रत्ययों के प्रयोग में षष्ठी का निषेध किया जाता है पर यह सूत्र वर्तमान में होने वाले क्त प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विधान करता है। अतः यह उसका अपवाद है।

अधिकरणवाचिनश्च ।२।३।६८।।

क्तस्य योगे षष्ठी स्यात् । इदमेषामासितम् शयितं गतं भुक्तं वा ।

न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ।२।३।६९।।

एषां प्रयोगे षष्ठी न स्यात् । लादेशाः—कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः । उः —हरिं दिदृक्षुः । अलंकरिष्णु र्वा । उक् । दैत्यान् धातुको हरिः ।

(वा) कमेरनिषेधः । लक्ष्म्याः कामुको हरिः ।

राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा—(राजाओं द्वारा माना जाता, जाना जाता और पूजा जाता है) यहाँ वर्तमान कालिक क्त प्रत्ययान्त शब्दों के योग में 'राज्ञाम्' में कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति है ।

अधिकरणेति—अधिकरणवाची क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। (क्त प्रत्यय भाव व कर्म में होता है पर "क्तोऽधिकरणेत्यादि सूत्र द्वारा क्त प्रत्यय अधिकरण में भी होता है इसी का इस सूत्र से ग्रहण है । यह भी नलोकेत्यादि सूत्र का अपवाद है) ।

इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा—यहाँ आसितम् इत्यादि प्रयोगों में क्त प्रत्यय अधिकरण में होने से इनके योग में 'एषाम्' में कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति है ।

न लोकेति—ल (लकार के स्थान में होने वाले प्रत्यय शतृ शानच् आदि) उ, उक, अव्ययकृदन्त (त्वा आदि) निष्ठा—(क्त-क्तवतु) खल् के अर्थ में होने वाले प्रत्यय, तथा तृन् प्रत्यय, इनके योग में (कर्तृकर्मणोः कृति) 'सूत्र से प्राप्त षष्ठी विभक्ति नहीं होती है ।

कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः यहाँ कुर्वन् (कृ+शतृ) तथा कुर्वाणः (कृ+शानच्) इन लादेश प्रत्ययों के प्रयोगों में इनके कर्म सृष्टि में प्राप्त षष्ठी का प्रकृत सूत्र द्वारा निषेध होने पर द्वितीया विभक्ति हुई है ।

हरिं दिदृक्षुः—(हरि को देखने की इच्छा रखने वाला) यहाँ दिदृक्षुः (सन्नन्त दिदृक्षु से 'सनः संसभिक्ष उः' से उप्रत्यय है) उ प्रत्यय के प्रयोग में 'हरिम्' में षष्ठी का निषेध होकर द्वितीया हुई ।

अलङ्करिष्णुः—सूत्र में 'उ' से उकारान्त कृदन्त का ग्रहण है। अतः अलम् पूर्वक कृ+इष्णुच् से निष्पन्न 'अलंकरिष्णुः' इस शब्द के प्रयोग में भी षष्ठी का निषेध होने पर 'हरिम्' में द्वितीया हुई है ।

दैत्यान् धातुको हरिः—(दैत्यों का घातक हरि) हन्+उकञ् से घातुकः बनता है, यहाँ उपधा वृद्धि, 'हो हन्तेः' सूत्र से हकार को घादेश और नकार को तकार होकर घातुकः रूप बनता है । इसके योग में 'दैत्यान्' में षष्ठी का निषेध होता है ।

(वा) कमेरिति—उक् प्रत्ययान्त 'कम्' धातु के योग में षष्ठी का निषेध नहीं होता अर्थात् षष्ठी हो जाती है ।

अव्ययं—जगत् सृष्ट्वा। सुखं कर्तुम्। निष्ठा—विष्णुना हता दैत्याः। खलर्थः—ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा। तृन्निति प्रत्याहारः—शतृ शानचाविति तृशब्दादारभ्यातृनो नकारात्। शानन्—सोमं पवमानः। चानश्—आत्मानं मण्डयमानः। शतृ—वेदमधीयन्। तृन्—कर्त्ता लोकान्।

(व) द्विषः शतु र्वा। मुरस्य मुरं वा द्विषन्। सर्वोऽयं कारकषष्ठयाः प्रतिषेधः, शेषे षष्ठी तु स्यादेव। ब्राह्मणस्य कुर्वन्। नरकस्य जिष्णुः।

लक्ष्म्याः कामुको हरिः—यहाँ कामुकः इस उक प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी का निषध न होने से लक्ष्म्याः में षष्ठी है।

जगत् सृष्ट्वा—यहाँ अव्यय कृत्—त्वा प्रत्यय के योग में जगत् शब्द में षष्ठी का निषेध होने से द्वितीया विभक्ति है।

सुखम् कर्तुम्—यहाँ तुमुन्नन्त कर्तुम् के प्रयोग में 'सुखम्' में षष्ठी का निषेध होकर द्वितीया है।

विष्णुना हता दैत्याः—यहाँ (हन्+क्त) हताः के प्रयोग में कर्त्ता विष्णुना में षष्ठी का निषेध होने से अनुक्त कर्त्ता में तृतीया है।

दैत्यान् हतवान् विष्णुः—यहाँ (हन्+क्तवतु) हतवान् के योग में षष्ठी का निषेध होने से अनुक्त कर्म दैत्यान् में द्वितीया विभक्ति है।

ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा—(हरि के लिये संसार का प्रपञ्च सरल है) यहाँ ईषत् पूर्वक कृ धातु से खल् प्रत्यय होकर ईषत्करः बना है। यहाँ खल् प्रत्यय कर्म में है, अतः कर्त्ता हरि में षष्ठी का निषेध होने से तृतीया विभक्ति है।

तृन्निति—सूत्र में तृन् शब्द से तृन् प्रत्यय नहीं अपितु तृन् प्रत्याहार का ग्रहण है—अर्थात् 'शतृशानचौ' के तृ से लेकर तृन् प्रत्यय के नकार तक के प्रत्यय लिये जाते हैं। अतः इन प्रत्ययों के योग में षष्ठी नहीं होती।

सोमं पवमानः—(सोम को पवित्र करता हुआ) यहाँ (पू+शानन्) पवमानः के योग में षष्ठी का निषेध होने से सोमम् में द्वितीया है।

आत्मनं मण्डयमानः—यहाँ (मण्डि+चानश्) मण्डयमानः के प्रयोग में आत्मानम् में षष्ठी का निषेध होने से द्वितीया है।

वेदमधीयन्—यहाँ (अधि+इ+शतृ) अधीयन् के योग में

कर्त्ता लोकान्—यहाँ (कृ+तृन्) कर्त्ता के योग में षष्ठी का निषेध होकर वेदम् व लोकान् में द्वितीया है।

(वा) द्विष इति—शतृ प्रत्ययान्त द्विष् धातु के योग में षष्ठी विभक्ति का निषेध विकल्प से हो।

अकेनो र्भविष्यदाधमर्ण्ययोः २।३।७०॥

भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न स्यात्। सतः पाल-कोऽवतरति। व्रजं गामी। शतं दायी।

कृत्यानां कर्तरि वा।२।३।७१॥

षष्ठी वा स्यात्। मया मम वा सेव्यो हरिः।

कर्तरीति किम्—गेयो माणवकः साम्नाम्। भव्य गेय।३।४।६८॥ इति

मुरस्य मुरं वा द्विषन्—यहाँ (द्विष्+शतृ) द्विषन् के योग में षष्ठी का निषेध-विकल्प से होने से उक्त प्रयोग बना है।

सर्वोऽयमिति—न लोकेत्यादि सूत्र द्वारा 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र द्वारा प्राप्त कारक षष्ठी का ही निषेध है। पर 'शेषे षष्ठी' सूत्र से किसी भी कारक में सम्बन्ध-मात्र की विवक्षा होने पर तो षष्ठी हो ही जाती है।

ब्राह्मणस्य कुर्वन्—यहाँ शतृ प्रत्ययान्त के योग में तथा नरकस्य जिष्णुः—यहाँ स्नु प्रत्ययान्त के योग में सम्बन्धमात्र विवक्षा में षष्ठी है। कर्मत्व विवक्षा में यहाँ द्वितीया भी हो सकती है।

अकेनोरिति—भविष्यत् अर्थ में कहे हुए अक प्रत्यय, तथा भविष्यत् और आधमर्ण्य अर्थ में कहे हुए इन प्रत्यय, इनके योग में षष्ठी विभक्ति न हो।

सतः पालकोऽवतरति—(सज्जनों का पालन करने वाला अवतरित होता है।) यहाँ पाल् धातु से भविष्यत् अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय है वु को अक आदेश होकर पालकः बना है, इसके योग में सतः में षष्ठी न होकर द्वितीया ही होती है।

व्रजं गामी—(व्रज को जाने वाला)यहाँ भी भविष्यत् अर्थ में गम् धातु से णिनि प्रत्यय होकर गामी बना है। अतः इसके योग में व्रजम्' में षष्ठी न होकर द्वितीया हुई है।

शतं दायी—(सौ रुपये का देनदार—ऋणी) सूत्र में आधमर्ण्य का अर्थ है अधमर्ण (जो ऋण लेता है) का भाव आधमर्ण्य। इस अर्थ में हुए इन् प्रत्यय के योग में षष्ठी नहीं होती। 'दायी' में दा धातु से णिनि, युक् होकर दायी रूप बना है। अतः शतम् में षष्ठी न होकर द्वितीया है।

कृत्यानामिति—कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी हो।

मया मम वा सेव्यो हरिः—(मेरे द्वारा हरि सेवा योग्य है) यहाँ 'सेव्य' में सेव् धातु से कर्म में ण्यत् होकर सेव्यः बना है। अतः अनुक्त कर्त्ता में कृत्य प्रत्यय ण्यत् के योग में 'कर्तृकर्मणोः' सूत्र से नित्य षष्ठी प्राप्त थी इस सूत्र से उसमें विकल्प से षष्ठी होने से मम तथा मया दो रूप हुये हैं।

कर्तरीति किम्—सूत्र में 'कर्तरि' ग्रहण से ज्ञात होता है कि जहाँ कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में षष्ठी प्राप्त होगी वहाँ ही यह विकल्प करेगा पर कर्म में होने वाली षष्ठी नित्य ही होगी। अतएव—

कर्तरि यद्विधानादनभिहितं कर्म। अत्र योगो विभज्यते 'कृत्यानाम्' उभयप्राप्ताविति नेति चानुवर्तते। तेन नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन। ततः 'कर्तरि वा' उक्तोऽर्थः।

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् ।२।३।७१।।

तुल्यार्थै योगे तृतीया वा स्यात् पक्षे षष्ठी। तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा। अतुलोपमाभ्यां किम्—तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति।

चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्र भद्रकुशलसुखार्थ हितैः ।१।३।७३।।

"गेयो माणवकः साम्नाम्"—(माणवक साम का गाने वाला है) यहाँ 'गै' धातु से 'भव्यगेय' इत्यादि सूत्र द्वारा कर्त्ता में यत् प्रत्यय होकर 'गेयः' बना है, यह यत् कृत्य प्रत्यय है। अतः इसके अनभिहित कर्म 'साम्नाम्' में नित्य षष्ठी विभक्ति हुई है, कर्त्ता में प्रत्यय होने से कर्त्ता के अभिहित होने के कारण 'माणवकः' में प्रथमा है।

अत्रेति—'कृत्यानां कर्तरि वा' इस सूत्र में योग विभाग है अर्थात् 'कृत्यानाम्' यह एक सूत्र है इसमें 'उभय प्राप्तौ' और 'न' की अनुवृत्ति कर इसका अर्थ होता है—कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्त्ता और कर्म दोनों में प्राप्त षष्ठी न हो। जिससे कि 'नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन' यहाँ कृत्य प्रत्यय तव्यत् है। अतः 'नेतव्याः' इसके कर्त्ता 'कृष्ण' कर्म 'व्रज' में षष्ठी प्राप्त थी इस विभक्त सूत्र द्वारा उसका निषेध होने से गौण कर्म व्रजम् में द्वितीया और अनुक्त कर्त्ता कृष्णेन में तृतीया हुई है, 'गावः' इसमें प्रधान कर्म के उक्त होने से प्रथमा विभक्ति है। दूसरा सूत्र है 'कर्तरि वा' इसमें 'कृत्यानाम्' इस प्रथम सूत्र की अनुवृत्ति है। अतः इसका वही उक्त अर्थ होगा—कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी हो।

तुल्यार्थैरिति—तुला और उपमा इन दो शब्दों को छोड़कर शेष तुल्यार्थवाची शब्दों के योग में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है तथा पक्ष में षष्ठी भी।

तुल्यः सदृशः समः वा कृष्णेन कृष्णस्य वा—यहाँ तुल्य और तदर्थवाचक सदृश आदि शब्दों के योग में कृष्ण में तृतीया तथा पक्ष में षष्ठी विभक्ति हुई है।

अतुलोपमाभ्यां किमिति—सूत्र द्वारा तुला और उपमा शब्दों के योग में तृतीया नहीं होती। अतः "तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति" यहाँ इन शब्दों के योग में कृष्ण में प्रकृत सूत्र द्वारा तृतीया नहीं हुई, सम्बन्ध विवक्षा में केवल षष्ठी विभक्ति है।

चतुर्थीति– आशीर्वादार्थ में आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख हित शब्द तथा एतदर्थवाची शब्दों के योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति हो और पक्ष में षष्ठी हो।

आयुष्यं चिर जीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्—(कृष्ण दीर्घायु हों) यहाँ आशीर्वादार्थ में आयुष्य एवं तदर्थ चिरं जीवित के योग में 'कृष्णाय' में चतुर्थी तथा

एतदर्थं योगे चतुर्थी वा स्यात् पक्षे षष्ठी आशिषि। आयुष्यं चिरं जीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्। एवं मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शं अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात्। आशिषि किम्—देवदत्त स्यायुष्यमस्ति। व्याख्यानात् सर्वत्रार्थ ग्रहणम्। मद्रभद्रयोः पर्यायत्वादन्यतरो न पठनीयः। इति षष्ठी।

पक्ष में षष्ठी है। इसी प्रकार शेष मद्र भद्र आदि के योग में भी उक्त दोनों विभक्तियाँ होंगी।

आशिषि किमिति—आशीर्वाद अर्थ में ही चतुर्थी होती है। अतः 'देवदत्तस्य आयुष्यम् अस्ति' (देवदत्त की दीर्घायु है) यहाँ आशीर्वादार्थ के अभाव में प्रकृत सूत्र से चतुर्थी नहीं होती केवल सम्बन्ध विवक्षा में षष्ठी हुई है।

व्याख्यानादिति—आचार्यों के व्याख्यान से यहाँ इन सभी शब्दों के अर्थवाची शब्दों का ग्रहण है। अतः इन शब्दों के साथ-साथ इनके अर्थवाची शब्दों का यहाँ सर्वत्र ग्रहण है। फलतः मद्र और भद्र शब्द पर्यायवाची हैं अतः इनमें से एक का सूत्र में ग्रहण करना ही पर्याप्त था (क्योंकि एक से समानार्थवाची दूसरे का ग्रहण तो हो ही जाता) अतः दूसरे का पाठ न करना चाहिए था।

इति षष्ठी

सप्तमी विभक्ति

आधारोऽधिकरणम् ।१।४।४५।।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञः स्यात् ।

सप्तम्यधिकरणे च ।१।३।३६।।

अधिकरणे सप्तमी स्यात् । चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चे त्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्वस्मिन्नात्मास्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा । 'दूरान्तिकार्थेभ्यः' इति विभक्तित्रयेण सह चतस्रोऽत्र विभक्तयः फलिताः ।

आधार इति—कर्त्ता और कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का जो आधार उसकी अधिकरण संज्ञा हो। अर्थात् अधिकरण कारक क्रिया का साक्षात् आधार न होकर कर्त्ता और कर्म के द्वारा तन्निष्ठ क्रिया द्वारा आधार बनता है।

सप्तमीति—अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। प्रस्तुत सूत्र में चकार ग्रहण से 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस सूत्र से दूरान्गिकार्थेभ्यः' शब्द की अनुवृत्ति होती है। अतः दूर और अन्तिक अर्थवाची शब्दों में भी सप्तमी होती है।

आधार तीन प्रकार का होता है :—1—औपश्लेषिक संयोग आदि सम्बन्ध, उपश्लेष का अर्थ है, संयोग आदि अर्थात् जहाँ कर्त्ता कर्म, आधार पर अपना संयोगादि सम्बन्ध रखें, ऐसा आधार औपश्लेषिक आधार कहा जाता है। २—वैषयिक-विषयता सम्बन्ध को लेकर बनने वाला आधार अर्थात् कर्त्ता का जिस वस्तु के साथ संयोगादि सम्बन्ध न होकर बौद्धिक सम्बन्ध हो।

३ अभिव्यापक—अर्थात् वह आधार जिसमें कोई वस्तु पूर्ण रूप से उसके सभी अवयवों में व्याप्त होकर रहती है।

कटे आस्ते—(चलाई पर बैठता है) यह प्रथम प्रकार के आधार का उदाहरण

(वा) क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्। अधीती व्याकरणे। अधीतमनेनेति विग्रहे 'इष्टादिभ्यश्च' ।५।२।८८।। इति कर्तरीनिः ।

(वा) साध्वसाधु प्रयोगे च । साधुः कृष्णो मातरि । असाधु र्मातुले ।

है, कर्त्ता का कट पर संयोग सम्बन्ध है। क्योंकि बैठने में उसका कट के साथ संयोग होता है। अतः 'आधारोऽधिकरणम्' सूत्र से 'कट' की अधिकरण संज्ञा है और 'सप्तम्यधिकरणे च' सूत्र से उसमें सप्तमी विभक्ति है।

स्थाल्यां पचति—(डेगची में (चावल) पकाता है) यहाँ भी प्रथम प्रकार का आधार है, क्योंकि पचति क्रिया के कर्म चावलों का डेगची के साथ पचति क्रिया द्वारा संयोग होता है अतएव 'स्थल्याम्' में अधिकरण संज्ञा होकर सप्तमी विभक्ति हुई है।

मोक्षे इच्छास्ति—(मोक्ष विषयक इच्छा है) यहाँ द्वितीय प्रकार के अर्थात् वैषयिक आधार में सप्तमी है, क्योंकि कर्त्ता का मोक्ष से संयोगादि दैहिक सम्बन्ध न होकर बौद्धिक सम्बन्ध है, मोक्ष इच्छा का विषय है। अतः मोक्ष की अधिकरण संज्ञा और उसमें सप्तमी विभक्ति है।

सर्वस्मिन्नात्मास्ति—(सब में आत्मा है) यहाँ तृतीय प्रकार का अर्थात् अभिव्यापक आधार है क्योंकि आत्मा पूर्णरूपेण सब में व्याप्त है। अतः आधारभूत सर्वस्मिन् में सप्तमी विभक्ति है।

वनस्य दूरे अन्तिके वा—यहाँ अनुवृत्ति द्वारा लब्ध दूर, अन्तिक शब्दों में 'सप्तम्यधिकरणे च' सूत्र से सप्तमी है। 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस सूत्र से दूर और अन्तिक शब्दों में द्वितीया, तृतीया व पञ्चमी का विधान होता है, इन तीन विभक्तियों के साथ प्रस्तुत सूत्र द्वारा विधीयमान सप्तमी को भी मिलाकर उक्त शब्दों में चार विभक्तियाँ—द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी एवं सप्तमी होती है।

(वा) क्तस्येति—क्त प्रत्ययान्त शब्दों से इन् प्रत्यय होकर बने हुए शब्दों के कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है।

अधीती व्याकरणे—(व्याकरण पढ़ा हुआ या पढ़ने वाला) यहाँ अधिपूर्वक इङ् (अध्ययन करना) धातु से क्त करके अधीत बनता है और फिर अधीत इस क्त प्रत्ययान्त शब्द से, अधीतमनेन इस विग्रह में 'इष्टादिभ्यश्च' सूत्र से कर्त्ता में इनि प्रत्यय होकर 'अधीती' रूप बनता है इस 'अधीती' के कर्म—व्याकरण शब्द में प्रकृत वार्तिक से सप्तमी विभक्ति होती है।

(वा) साध्विति—साधु व असाधु शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है।

साधुः कृष्णो मातरि, आसाधु : मातुले—(कृष्ण माता के प्रति अच्छा और मामा के प्रति बुरा है, यहाँ साधु और असाधु के प्रयोग में मातरि और मातुले में प्रकृत वार्तिक से सप्तमी है।

(वा) निमित्तात् कर्म योगे। निमित्तमिहि फलम्। योगः संयोगसमवायात्मकः। चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, दन्तयो र्हन्ति कुञ्जरम्, केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः (इति भाष्यम्)।

हेतौ तृतीयाऽत्र प्राप्ता तन्निवारणर्थमिदम्। सीमाऽडकोशः। पुष्कलको गन्धमृगः योगविशेषे किम्— वेतनेन धान्यं लुनाति।

(वा) **निमित्तादिति**—निमित्तात् अर्थात् फल वाचक शब्द से सप्तमी विभक्ति हो, यदि फलवाचक शब्द का कर्म के साथ संयोग या समवाय सम्बन्ध हो। (वार्तिक में निमित्त का अर्थ फल है तथा योग का अर्थ है सम्बन्ध अर्थात् संयोग या समवाय सम्बन्ध।)

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति—(चर्म के लिए व्याघ्र को मारता है) यहाँ निमित्त अर्थात् फलवाचक शब्द है चर्म, क्योंकि व्याघ्र के मारने का उद्देश्य चर्म की प्राप्ति ही है। हन्ति क्रिया का कर्म है 'द्वीपी' इस कर्मरूप द्वीपी के साथ फलरूप चर्म का समवाय सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) है क्योंकि चर्म, 'द्वीपी' में सदा समवेत रहता है, दोनों को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। अतः 'चर्मणि' में प्रकृत वार्तिक से सप्तमी है।

दन्तयो र्हन्ति कुञ्जरम्—(दाँतों के लिए हाथी को मारता है) यहाँ फलवाचक दन्त का कर्मरूप कुञ्जर के साथ समवाय (वस्तुतस्तु संयोग) सम्बन्ध है। अतः 'दन्तयोः' में सप्तमी हुई है।

केशेषु चमरीं हन्ति—(केशों के लिए चमरी नामक मृगविशेष को मारता है) यहाँ भी फलरूप केश का कर्मरूप चमरी नामक मृगविशेष के साथ संयोग सम्बन्ध होने से केशेषु में सप्तमी हुई है।

सीम्नि पुष्कलको हतः—सीमा=अण्डकोश, पुष्कलक=गन्ध मृगविशेष—अण्डकोश के लिए पुष्कलक मृग को मारता है) यहाँ भी फलवाचक सीमन् का कर्म रूप पुष्कलक के साथ संयोग सम्बन्ध होने से 'सीम्नि' में सप्तमी हुई है।

हेताविति—यहाँ इन सभी प्रयोगों में 'हेतौ' सूत्र से हेतु में तृतीया प्राप्त थी, उसको निषेध कर वार्तिक द्वारा सर्वत्र सप्तमी हुई है।

योग विशेषे किमिति—जहाँ फलवाचक शब्द का कर्म के साथ समवाय या संयोग सम्बन्ध रहता है वहीं इस सूत्र द्वारा फलवाचक शब्द में सप्तमी होती है। अतः 'वेतनेन धान्यं लुनाति' (वेतन के लिए धान्य काटता है) फलवाचक वेतन का कर्मरूप धान्य से संयोग या समवाय सम्बन्ध नहीं है। अतः यहाँ 'वेतनेन' में सप्तमी न होकर 'हेतौ' सूत्र से हेतु में तृतीया हुई है।

यस्य च भावेन भावलक्षणम्।२।३।३७।।

यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी स्यात। गोषु दुह्यमानासु गतः (वा) अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च। सत्सु तरत्सु असन्त आसते। असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति। सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति। असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति।

यस्येति—जिसके एक कार्य से कोई दूसरा कार्य लक्षित हो उससे सप्तमी हो, अर्थात् जिसके एक कार्य से दूसरा कार्य होना पाया जाय उससे सप्तमी होती है।

गोषु दुह्यमानासु गतः—गायें दुहीं जाने पर (वह) गया अथवा जब गायें दुहीं जा रहीं थीं। (वह) चला गया यहाँ गायों की दोहन रूप क्रिया (कार्य) से अन्य की गमन रूप क्रिया (कार्य) लक्षित होती है अर्थात् गायों के दोहन रूप एक कार्य से गमन रूप कार्यान्तर लक्षित होता है। अतः गो शब्द में सप्तमी विभक्ति हुई है इसका विशेषण है दुह्यमान अतः उसमें भी विशेषणानुसार सप्तमी निभक्ति हुई है।

अर्हाणामिति—अर्ह अर्थात् जो जिस कार्य के लिए योग्य या उपयुक्त हो वह अर्ह तथा अयोग्य अनर्ह कहा जाता है। अर्हों का कर्तृत्व प्रकट करने में तथा अनर्हों का अकर्तृत्व प्रकट करने में तथा इसकी विपरीतता में सप्तमी विभक्ति होती है। अर्हाणां कर्तृत्व, अनर्हाणाम् अकर्तृत्व, अनर्हाणाम् कर्तृत्व, अर्हाणाम् अकर्तृत्व इस प्रकार इस वार्तिक के चार भाग हैं, इनके क्रमशः उदाहरण हैं—अर्हाणाम् कर्तृत्वे—**सत्सु तरत्सु असन्त आसते** अर्थात् क्रिया में योग्य लोगों की कर्तृत्व विवक्षा होने पर—जैसे उक्त वाक्य में, सज्जनों का तरना उचित है, वे तरण क्रिया के कर्त्ता हैं। अतः सत्सु में सप्तमी है और तरत्सु में विशेष्यानुसार विशेषण में भी सप्तमी है।

अनर्हाणमकर्तृत्वे—जिस क्रिया में जिनका कर्तृत्व अनुचित हो, जैसे असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति यहाँ असत् का तरण क्रिया में कर्तृत्व अनुचित है, इनका यह अकर्तृत्व, तिष्ठत्सु से प्रकट हो रहा है क्योंकि सत्सु की क्रिया तिष्ठत्सु है। अतः तरन्ति में उनका अकर्तृत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है इस प्रकार अनर्हों के अकर्तृत्व बोधक असत्सु में यहाँ सप्तमी है।

इसी प्रकार अनर्हाणां कर्तृत्वे—अर्थात् अयोग्यों का कर्तृत्व बताने में उनसे सप्तमी होती है जैसे **असत्सु तरत्सु सन्तः तिष्ठन्ति** यहाँ असज्जनों का तरण क्रिया का कर्त्ता होना अनुचित है किन्तु उनका तरना तरत्सु से प्रकट हो रहा है अर्थात् तरत्सु से उनका (असत्) कर्तृत्व प्रकट होता है। अतः असत्सु में सप्तमी है और विशेष्यानुसार तरत्सु में भी सप्तमी है।

इसी प्रकार अर्हाणामकर्तृत्वे—योग्यों का अकर्तृत्व प्रकट करने में तद्वाचक शब्द से सप्तमी होती है जैसे सत्सु तिष्ठत्सु असन्तः तरन्ति यहाँ सत् (योग्य) का तरण क्रिया से अन्वय न होकर तिष्ठत्सु से है। अतः यहाँ अर्ह का अकर्तृत्व है इसलिए सत्सु में सप्तमी है और विशेष्यानुसार तरत्सु में भी।

षष्ठी चानादरे ।२।३।३८।।

अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत्। रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः।

स्वामीश्वराधिपति दायाद साक्षि प्रतिभू प्रसूतैश्च ।२।३।३९।।

एतैः सप्तभि र्योगे षष्ठी सप्तम्यौ स्तः। षष्ठ्यामेव प्राप्तायां पाक्षिक सप्तम्यर्थं वचनम्—गवां गोषु वा स्वामी। गवां गोषु वा प्रसूतः। गा एवानुभवितुं जात इत्यर्थः।

आयुक्त कुशलाभ्यां चासेवायाम् ।२।३।४०।।

आभ्यां योगे षष्ठी सप्तम्यौ स्तस्तात्पर्येऽर्थे। आयुक्तो व्यापारितः। आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा। आसेवायां किम्—आयुक्तो गौः शकटे। ईषद् युक्त इत्यर्थं।

(कुछ आचार्यों के मत से यह वार्तिक व्यर्थ है 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' से यहाँ सप्तमी हो सकती थी।)

षष्ठीति—अनादर की अधिकता प्रकट होने पर जिस क्रिया से अन्य क्रिया लक्षित हो उसमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हो।

रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत्—(रोते हुए पुत्रादिक की उपेक्षा कर सन्यास ग्रहण कर लिया) यहाँ रुदन का अनादर प्रकट होता है तथा रुदन क्रिया से प्रवजन क्रिया लक्षित भी होती है। अतः रुदन् में प्रकृत सूत्र से षष्ठी व सप्तमी विभक्ति हुई हैं।

स्वामीति—स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू एवं प्रसूत के योग में षष्ठी तथा सप्तमी हों।

वास्तव में यहाँ सम्बन्ध में षष्ठी तो प्राप्त ही थी, केवल पक्ष में सप्तमी विधान के लिए यह सूत्र है।

गवां गोषु वा स्वामी—यहाँ स्वामी के योग में गवां गोषु में षष्ठी व सप्तमी हुई हैं।

गवां गोषु वा प्रसूतः—(गायों में उत्पन्न हुआ) यहाँ भी षष्ठी व सप्तमी विभक्ति प्रसूतः के योग में हुई हैं। इसका अर्थ है कि गायों का अनुभव करने के लिए ही उत्पन्न हुआ है।

आयुक्तेति—आसेवा—तत्परता निरन्तरता अर्थ में आयुक्त और कुशल शब्दों के योग में षष्ठी तथा सप्तमी हो।

आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा (हरिपूजन में तत्पर लगाया हुआ कुशल) यहाँ आयुक्त का अर्थ है व्यापारित=लगाया हुआ आयुक्त और कुशल के योग में हरिपूजन शब्द में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ हैं।

यतश्च निर्धारणम् ।२।३।४१॥

जातिगुणक्रिया संज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम् यतस्ततः षष्ठी सप्तम्यौ स्तः । नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः । गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा । गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः । छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः ।

पञ्चमी विभक्ते ।२।३।४२॥

विभागो विभक्तम् । निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी स्यात् । माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः ।

आसेवायां किमिति—तत्परता निरन्तरता अर्थ में ही उक्त विभक्तियाँ होती है । अतः "आयुक्तो गौः शकटे" (बैलगाड़ी में कुछ जोड़ा हुआ' यहाँ नैरन्तर्य या तत्परता न होने के कारण यहाँ इस सूत्र द्वारा उक्त विभक्तियाँ नहीं हुई हैं अपितु आधार में केवल सप्तमी है । यहाँ 'आ' का ईषद् (कुछ) अर्थ है ।

यतश्चेति—जाति गुण क्रिया संज्ञा के द्वारा अर्थात् इनकी विशेषताओं के कारण जहाँ किसी पदार्थ को अपने जिस समुदाय से पृथक् करना हो वहाँ षष्ठी वा सप्तमी विभक्ति होती है ।

नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः—(मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है) यहाँ मनुष्य समुदाय से जाति विशेषता के कारण ब्राह्मण को पृथक् किया जा रहा है । अतः नृषु नृणां में सप्तमी व षष्ठी दोनों विभक्ति हैं ।

गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा—(गायों में कृष्णा गाय बहुत दूध देने वाली है) यहाँ बहुक्षीरत्व रूप गुण द्वारा कृष्णा गाय का अन्य गायों से निर्धारण किया गया है, अतः गोषु गवाम् में उक्त विभक्तियाँ हुई हैं ।

गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः—(जाने वालों में दौड़ता हुआ शीघ्र जाता है) यहाँ क्रिया द्वारा निर्धारण में उक्त विभक्तियाँ गच्छताम् (षष्ठी) गच्छत्सु (सप्तमी) हैं ।

छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः—(छात्रों में मैत्र चतुर है) यहाँ संज्ञा द्वारा निर्धारण है अतः उक्त विभक्तियाँ हैं ।

पञ्चमीति—विभाग का अर्थ है विभक्ति—भेद । जहाँ निर्धार्यमाण वस्तु (जिसका विशिष्ट रूप में भेद दिखलाया जाय) वस्तुतः भिन्न ही होती हो, वहाँ जिससे भेद किया जाय उसमें पञ्चमी होती है ।

माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः—माथुर पाटलिपुत्र के लोगों से सम्पन्न हैं । यहाँ मथुरा वासी पाटलिपुत्रवासियों से भिन्न ही है, आढ्यत्व को लेकर यहाँ दोनों में पुनः भेद दिखाया गया है, यहाँ निर्धार्यमाण माथुर हैं इनका पाटलिपुत्रकों से भेद किया जा रहा है । अतः इनमें प्रकृत सूत्र से पञ्चमी हुई है ।

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ।२।३।४३।।

आभ्यां योगे सप्तमी स्यादर्चायां न तु प्रतेः प्रयोगे । मातरि साधु निपुणो वा । अर्चायां किम्—निपुणो राज्ञो भृत्यः । इह तत्त्व कथने तात्पर्यम् ।

अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् । साधु निपणो वा मातरं प्रतिपर्यनु वा ।

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ।२।३।४५।।

आभ्यां योगे तृतीया स्याच्चात्सप्तमी । प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा ।

नक्षत्रे च लुपि ।२।३।४५।।

नक्षत्रे प्रकृत्यर्थे यो लुप्तसंज्ञया लुप्यमानस्य प्रत्ययस्यार्थः तत्र वर्तमानात् तृतीया सप्तम्यौ स्तोऽधिकरणे । मूलेनावाहयेद् देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् । मूले श्रवणे इति वा । लुपि किम्—पुष्ये शनिः ।

साध्विति—साधु और निपुण के योग में सप्तमी हो पूजा अर्थ में । पर प्रति शब्द के प्रयोग में न हो ।

मातरि साधुर्निपुणो वा—यहाँ पूजार्थ में मातरि में सप्तमी है ।

आर्चायां किम्—अर्चा अर्थ में ही उक्त विभक्ति होती है अतः **निपणो राज्ञो भृत्यः** (राजा का सेवक कुशल है) यह वास्तविक बात का कथन है प्रशंसा नहीं । अतः राज्ञः में सम्बन्धमात्र में षष्ठी है इस सूत्र से सप्तमी नहीं हुई है ।

(वा) **अप्रात्यादिभिरिति** – सूत्र में अप्रतेः के स्थान पर 'अप्रत्यादिभिः कहना चाहिए जिससे कि प्रति परि अनु के प्रयोग में उक्त शब्दों के योग में अर्चार्थ में सप्तमी विभक्ति न हो ।

साधुर्निपुणो वा मातरं प्रतिपर्यनु वा – यहाँ प्रति परि अनु के प्रयोग में साधु निपुण शब्दों के योग में सप्तमी नहीं हुई है । अतः 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' से यहाँ द्वितीया विभक्ति है । प्रति परि अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा पहले बताई जा चुकी है ।

प्रसितेति—प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है और सप्तमी भी ।

प्रसित उत्सुको वेति—(हरि में लीन) यहाँ इन शब्दों के योग में हरि में तृतीया और सप्तमी हुई है ।

नक्षत्रे चेति—जहाँ नक्षत्र वाची शब्द, लुप् इस नाम से लुप्त हुए प्रत्यय के अर्थ में वर्तमान हो, वहाँ उससे अधिकरण में तृतीया व सप्तमी होती हैं ।

मूलेनेति—यहाँ मूल तथा श्रवण ये दोनों शब्द, एतन्नामक नक्षत्रों से युक्त काल के बोधक हैं । अर्थात् मूल नक्षत्र का अर्थ है, मूल नक्षत्र से युक्त काल, एवं श्रवण नक्षत्र से युक्त काल, क्योंकि यहाँ इन दोनों से 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' सूत्र से

सप्तमीपञ्चम्यौ कारक मध्ये ।२।३।३।।

शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वानौ ताभ्या मेते स्तः ।

अद्य भुक्त्वायं द्व्यहे द्व्यहाद् वा भोक्ता । कर्तृशक्त्यो र्मध्येऽयं कालः । इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्येत् । कर्तृकर्मशक्त्यो र्मध्येऽयं देशः । अधिकशब्देन योगे सप्तमी पंचम्या विध्येते । "तदस्मिन्नधिकम् ।५।२।४५।। 'यस्मादधिकम्' इति च सूत्र निर्देशात् । लोके लोकाद् वाधिको हरिः ।"

'युक्तःकाल' अर्थ में 'अण्' प्रत्यय हुआ है और 'लुब विशेषे' सूत्र से उसका लोप हो गया है । अतः अब इस अवस्था में ये दोनों शब्द लुप् नाम से लुप्त हुए 'अण्' प्रत्यय के अर्थ में वर्तमान हैं । अतः इन नक्षत्रवाची शब्दों से **"मूलेन श्रवणेन, मूले श्रवणे इति वा"** में तृतीया व सप्तमी दोनों विभक्तियां हुई हैं ।

लुपि किमिति—लुप् नाम से लुप्त प्रत्यय के अर्थ में ही वर्तमान शब्द से उक्त विभिक्तियां होती हैं । अतः 'पुष्ये शनिः' यहाँ 'पुष्य' शब्द पुष्य नक्षत्र से युक्तकाल अर्थ में न होकर अपने ही अर्थ में वर्तमान है । अतः यहाँ न तो कोई प्रत्यय ही हुआ है और न उसका लुप् ही । अतः यहाँ अधिकरण में केवल सप्तमी है ।

सप्तमीति—दो कारक शक्तियों के बीच में जो काल और मार्ग हो, तद्वाचक शब्दों से सप्तमी व पंचमी विभक्ति होती है ।

अद्येति—(आज खाकर वह दो दिन में खायेगा) यहाँ काल दो शक्तियों के बीच में है—एक कर्तृशक्ति (भोजक रूप शक्ति) का सम्बन्ध आज (अद्य) से और दूसरी कर्तृशक्ति का सम्बन्ध द्व्यह (दो दिन) से है अतः दो कर्तृशक्तियों के मध्य वर्तमान काल वाचक शब्द 'द्व्यह' में सप्तमी व पंचमी विभक्तियां हैं ।

इहस्थोऽयमिति—(यहाँ स्थित ही यह एक कोस पर लक्ष्य को वेध सकता है) यहाँ मार्गवाचक शब्द 'क्रोश' दो शक्तियों—कर्त्ता और कर्म के बीच वर्तमान है अर्थात् 'अयम्' यह कर्तृशक्ति और 'लक्ष्यम्' यह कर्मशक्ति है । इन दोनों के बीच वर्तमान 'क्रोश' शब्द से उक्त दोनों विभक्तियां हुई हैं ।

अधिकेति—अधिक शब्द के योग में पंचमी और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं इसका प्रमाण है—पाणिनि सूत्र—**"तदस्मिन्नधिकम् और यस्मादधिकम्"** इन दोनों सूत्रों में अधिक के योग में उक्त दोनों विभक्तियों का प्रयोग किया गया है । अतः अधिक के योग में ये दोनों विभक्तियां होंगी जैसा कि **"लोके लोकाद् वाधिको हरिः"** इस प्रयोग में देखा जाता है ।

अधिरीश्वरे ।१।४।९७।।

स्वस्वामिभाव सम्बन्धेऽधिः कर्मप्रवचनीय संज्ञः स्यात् ।

यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ।२।३।९।।

अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी स्यात् । उपपरार्धे हरे गुणाः । परार्धादधिका इत्यर्थः । ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी । अधि भुवि रामः । अधि रामे भूः । सप्तमी शौण्डैरिति समासपक्षे तु रामाधीना । 'अषडक्ष' ।५।४।७।। इत्यादिना खः ।

विभाषा कृञि ।४।९८।।

अधिरीश्वर इति—स्व और स्वामी में सम्बन्ध को प्रकट करने में 'अधि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है ।

यस्मादिति—जिससे अधिक हो और जिसका स्वामित्व कहा जाय उस शब्द में कर्म प्रवचनीय के योग में सप्तमी होती है ।

उपपरार्ध इति—परार्ध से अधिक—परार्ध नाम है—'स्व' से बड़ी संख्या का, परार्ध से भी अधिक अर्थात् संख्यातीत हरि के गुण हैं । यहाँ 'उपोऽधिके च' सूत्र से 'उप' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा है । परार्ध से अधिक के गुणों का कथन है और कर्म प्रवचनीय संज्ञक 'उप' का योग है । अतः 'परार्धे, में प्रकृत सूत्र से सप्तमी विभक्ति हुई है ।

ऐश्वर्येत्विति—अर्थात् ईश्वरवचन-स्वामित्व प्रकट करने में तो स्व (सेवकादि) और स्वामी शब्दों में पर्याय से सप्तमी होती है ।

अधिभुवि रामः—(राम भू के स्वामी हैं) यहाँ स्व वाचक 'भू' शब्द से 'अधि' इस कर्म प्रवचनीय के योग में सप्तमी है ।

अधिरामे भूः—(भू राम की 'स्व' है) वहाँ स्वामी वाचक 'राम' में अधि के योग में सप्तमी है ।

सप्तमीति--'अधिरामे' इस विग्रह में जब 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से समास होगा तब राम+अधि रामाधि से 'अषडक्ष' इत्यादि सूत्र से ख प्रत्यय होकर और उसका ईन आदेश होने पर 'रामाधीन' स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् होकर रामाधीना प्रयोग होगा ।

विभाषेति—कृञ् धातु के योग में स्व स्वामिभाव सम्बन्ध में 'अधि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा विकल्प से होती है ।

यदत्रेति - (जो यहाँ मुझे नियुक्त करेगा) अधिकरिष्यति का अर्थ है—विनियोक्ष्यते—नियुक्त करेगा । यहाँ विनियोक्ता का स्वामित्व प्रकट होता है । अतः प्रकृत सूत्र से 'अधि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा है । इसका फल है—गति संज्ञा का

अधिः करोतौ प्राक् संज्ञो वा स्यादीश्वरेऽर्थे । यदत्र मामधिकरिष्यति' विनियोक्ष्यत इत्यर्थः। इह विनियोक्तु रीश्वरत्वं गम्यते। अगतित्वात् 'तिङि चोदात्तवति' ।८।१।६१।। इति निघातो न । इति सप्तमी ।

इति कारक प्रकरणम्

बाध होना । गति संज्ञा के बाध होने से **'तिङि चोदात्तवति'** इस सूत्र से अधि को निघात अर्थात् सर्वानुदात्त नहीं होता । उक्त प्रयोग में 'माम्' में अधिकरिष्यति का कर्म होने से द्वितीया है । इति सप्तमी ।

इति कारक प्रकरणम्

अथ समास प्रकरणम्

केवल समासः

समासः पञ्चधा । तत्र समसनं समासः ।

स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः । प्रायेण पूर्वपदार्थ-प्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधान स्तत्पुरुषस्तृतीयः । तत्पुरुष भेदः कर्मधारयः । कर्मधारय भेदो द्विगुः ।

समास इति—समास पांच प्रकार का होता है ।

तत्रेति—समसन (संक्षेप) अर्थात् अनेक पदों का मिलकर एक पद बन जाना समास कहलाता है । (सम् पूर्वक अस् (एक साथ रखना) धातु से समास पद बनता है ।) अतः समास का अर्थ है, संक्षेप, अर्थात् अनेक पदों का एक पद बन जाना ही, संक्षेप या समास है ।

(समास विधि से अनेक पदों से मिलकर बना हुआ एक पद, समस्त पद कहलाता है और इस प्रकार पदों के मिलने की प्रक्रिया को समास कहते हैं ।)

स चेति—किसी विशेष नाम से रहित समास ही केवल समास है, और यह केवल समास नामक प्रथम समास है । तात्पर्य यह कि जिस समास का कोई अन्य नाम न हो, जो किसी भी समास के प्रकरण में न आ सकता हो वह केवल समास कहलाता है । जैसे 'भूतपूर्वः यह समस्त पद किसी भी अन्य समास के प्रकरण के अन्तर्गत नहीं आता है, अतः यह केवल समास है ।

प्रायेणेति—प्रायः जिसमें पूर्व पद का अर्थ प्रधान रहता है, वह अव्ययीभाव नामक द्वितीय समास कहलाता है । (समस्त पद का प्रथम पद, पूर्वपद तथा द्वितीय पद उत्तर पद कहा जाता है) जैसे 'उप कृष्णं भक्ताः' (कृष्ण के समीप भक्त हैं) यहाँ उप का अर्थ (समीप) ही प्रधान है। क्योंकि इसका ही भक्त जनों से साक्षात् सम्बन्ध है ।

यहाँ प्रायेण इसलिए कहा है कि कहीं-कहीं अव्ययीभाव समास में ऐसे उदा-हरण मिलेंगे जिनमें पूर्वपद प्रधान नहीं है, जैसे उन्मत्ता गंगा यत्र स उन्मत्तगंगो नाम

प्रायेणान्य पदार्थ प्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः। प्रायेणोभय पदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः।

देशः (जहाँ गंगा उन्मत्त है वह उन्मत्त गंग नामक देश) यहाँ पूर्व पद का अर्थ प्रधान न होकर अन्य पदार्थ (देश) का अर्थ प्रधान है, तथापि अव्ययीभाव के अधिकार में होने के कारण यह भी अव्ययीभाव समास माना जाता है, यदि 'प्रायेण' न कहा जाता तो ऐसे पदों की अव्ययीभाव संज्ञा न होती।

प्रायेणेति--जिसमें प्रायः उत्तर पद का अर्थ प्रधान होता है वह तत्पुरुष नामक तृतीय समास कहलाता है। जैसे 'गंगा जलम् आनय' (गंगा के जल को लाओ) यहाँ 'आनय' इस क्रिया पद के साथ जल का ही साक्षात् सम्बन्ध होता है, अतः यहाँ 'जल' इस उत्तर पद का अर्थ ही प्रधान हैं। 'प्रायेण' कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ उत्तर पदार्थ प्रधान न भी हो, वह भी तत्पुरुष समास समझा जाय, जैसे 'माला मतिक्रान्तः' अतिमालः जिसने माला का अतिक्रमण किया हो, यहाँ पूर्व-पद अति का ही अर्थ प्रधान है, पर 'प्रायेण' कथन सामर्थ्य से यह भी तत्पुरुष समास माना जाता है। इसी प्रकार के पूर्वकायः, अपरकायः आदि अन्य उदाहरण हैं, जहाँ पूर्वपद ही प्रधान है।

तत्पुरुष भेद :—तत्पुरुष का ही एक भेद कर्मधारय नामक तृतीय समास कहलाता है। "तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः" समानाधिकरण तत्पुरुष ही कर्म-धारय समास कहलाता है, यहाँ भी उत्तर पदार्थ प्रधान होता है अतएव यह तत्पुरुष का ही एक भेद है। विशेष्य और विशेषण का समास कर्मधारय समास होता है जैसे 'महांश्चासौ राजा महाराजः' यहाँ 'राजन्' यह उत्तर पदार्थ ही प्रधान है।

कर्मधारय भेद इति—कर्मधारय समास का ही एक भेद द्विगु समास कहलाता है, जिस कर्मधारय (विशेष्य विशेषण का समास) समास में प्रथम विशेषण वाचक पद संख्यावाचक होता है उसे द्विगु समास कहते हैं 'संख्या पूर्वो द्विगुः' जैसे पञ्चानां गवां समाहारः (पाँच गायों का समाहार (समूह), यहाँ विशेषण—पञ्च संख्यावाचक है, अतः पञ्चगवम् यह द्विगु समास है।

प्रायेणान्येति—जिसमें प्रायः अन्य पदार्थ प्रधान रहता है वह बहुव्रीहि नामक चतुर्थ समास कहलाता है जैसे 'लम्बोदरम् आनय' (लम्बे उदर वाले को लाओ) यहाँ अन्य पदार्थ प्रधान है लम्बे उदर वाला कोई व्यक्ति विशेष, उसी का क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध होता है, पूर्व या उत्तर पदों का नहीं।

यहाँ 'प्रायेण' का तात्पर्य है कि कहीं-कहीं बहुव्रीहि समास में अन्य पदार्थ प्रधान नहीं भी होता जैसे 'द्वित्राः' (दो तीन) यहाँ यद्यपि दोनों पद प्रधान हैं तथापि यह बहुव्रीहि समास के अन्तर्गत माना जाता है।

प्रायेणोभयेति—जिसमें प्रायः दोनों पदों का अर्थ प्रधान होता है वह द्वन्द्व नामक पाँचवा समास कहलाता है, जैसे माता-पितरौ आनय' माता-पिता को

समर्थः पदविधिः ।२।१।१।।

पद सम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ।

प्राक्कडारात् समासः ।२।१।३।।

कडाराः कर्मधारये इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते ।

सह सुपा ।२।१।४।।

सुप्—सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक् ।

लाओ, यहाँ दोनों पदों का अर्थ प्रधान है क्योंकि दोनों का ही क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध है।

यहाँ प्रायेण का तात्पर्य है कि जहाँ उभय पदार्थ प्रधान न भी हो वहाँ भी द्वन्द्व समास माना जाय जैसे 'दन्तोष्ठम् आदि उदाहरणों में उभय पदार्थ प्रधान न होकर समाहार का अर्थ जो कि अन्य पदार्थ है, प्रधान है, तथापि यह द्वन्द्व समास माना जाता है।

समर्थ इति—पद सम्बन्धी विधि, वह विधि जो पद को उद्देश्य करके कही गई है। वह समर्थ पदों से ही बोध्य हो अर्थात् जिन पदों में सामर्थ्य होगा उन्हीं पदों में पद-विधि होगी अन्यत्र नहीं।

यद्यपि सुबन्त व तिङन्त दोनों ही पद होते हैं, तथापि समास विधि सुबन्त से सुबन्त के ही साथ होती है। अतः समास विधि पदविधि है, पदविधि होने के कारण समास उन्हीं पदों में होगा, जिनका परस्पर सामर्थ्य होगा। अर्थात् जो पद परस्पर अन्वित होने की योग्यता रखते होंगे, परस्पर मिलकर अर्थ-बोध कराने का सामर्थ्य रखते होंगे, जहाँ पदों में यह सामर्थ्य नहीं होता वहाँ समास नहीं होता है, जैसे 'भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्य' यहाँ 'राज्ञः पुरुषः' परस्पर अन्वित नहीं हैं, अतः यहाँ समास न होगा।

प्राक्कडारादिति—'कडाराः कर्मधारये' इस सूत्र से पहिले तक समास का अधिकार है, अर्थात् वहाँ तक समास प्रकरण चलेगा।

१२५ **सहेति**—सुबन्त का सुबन्त के साथ विकल्प से समास हो।

समासत्वादिति—समास होने से प्रातिपदिक संज्ञा होती है (कृत्तद्धित समासाश्च') और प्रातिपदिक संज्ञा होने से 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' सूत्र से सु आदि विभक्तियों का लोप हो जाता है।

परार्थेति—परार्थ (अन्य अर्थ) का कथन वृत्ति कहलाता है। प्रत्यय अथवा अन्य पद के अर्थ सहित जो एक विशिष्ट अर्थ होता है उसे वृत्ति कहते हैं।

कृत्तद्धितेति—कृत, तद्धित, समास, एक शेष, और सनाद्यन्त धातुरूप-ये पाँच वृत्तियाँ हैं। (इनमें कृत् तद्धित तथा सनाद्यन्त धातु में तो प्रत्यय के अर्थ सहित विशिष्ट अर्थ कहा जाता है और समास तथा एक शेष में अन्य पद के सहित एक विशिष्ट अर्थ कहा जाता है)।

परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत्तद्धित समासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च-वृत्तयः । वृत्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा पूर्वं भूतो भूतपूर्व इति लौकिकः । पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । 'भूतपूर्वे चरड्' इति निर्देशात् भूतशब्दस्य पूर्वं निपातः ।

(धा) इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च । वागर्थौ इव-वागर्थाविव । इति केवल समासः प्रथमः ।

वृत्यर्थेति—वृत्ति के अर्थ के बोध कराने वाले वाक्य को विग्रह कहते हैं जैसे 'गंगा जलम्' यह समास वृत्ति है । इसका अर्थ गंगायाः जलम् इस वाक्य द्वारा प्रतीत होता है, अतः यह विग्रह है । इसी प्रकार 'पुत्रीयति' इस सनाद्यन्त धातुरूप वृत्ति का विग्रह 'पुत्रमात्मनः इच्छति' यह वाक्य है ।

सचेति—यह विग्रह दो प्रकार का होता है, लौकिक और अलौकिक । लौकिक विग्रह वह जिसका लोक में प्रयोग किया जाता है, जैसे गङ्गाजलम् का गंगायाः जलम् । अलौकिक वह है जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता जैसे—गङ्गा ङस् जल सु इसका प्रयोग केवल व्याकरण की प्रक्रिया बोधनार्थ ही होता है, लोक में नहीं । जैसा कि मूल में भूतपूर्वः के लौकिक-पूर्वं भूतः । अलौकिक 'पूर्व अम् भूत सु' ये विग्रह दिये गये हैं ।

भूतपूर्व :—(जो पहिले हुआ हो) यहाँ 'पूर्वं भूतः' इस लौकिक, पूर्व अम् भूत सु' इस अलौकिक विग्रह में 'सह सुपा' सूत्र से पूर्वम् सुवन्त का भूतः सुवन्त के साथ समास हुआ, समास होने से "कृत्तद्धितसमासाश्च" इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा हुई, प्रातिपदिक संज्ञा होने से 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः) सूत्र से अम् और सु का लोप हुआ । तब पूर्वभूत यह प्रातिपदिक बना । "भूतपूर्वे चरट्" इस पाणिनि सूत्र के प्रमाण से भूत शब्द का पूर्व प्रयोग किया गया इस प्रकार भूतपूर्व इस प्रातिपदिक से प्रथमा एक वचन में भूतपूर्वः यह रूप सिद्ध हुआ ।

वार्तिक—इव के साथ सुवन्त का समास हो और विभक्ति का लोप न हो ।

वागर्थाविव—वागर्थौ इव इस लौकिक विग्रह तथा 'वागर्थ औ इव' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत वार्तिक से समास हुआ, विभक्ति के लोप का निषेध होकर वागर्थाविव यह रूप बना ।

समास विधि के मुख्यतया तीन फल होते हैं, एक पद बन जाना, विभक्ति का लोप होना, ३ एक स्वर होना । प्रस्तुत उदाहरण में विभक्ति लोप न होने से केवल दो ही फल हैं ।

उपर्युक्त पञ्च समासों में बहुव्रीहि और द्वन्द्व समास अनेक पदों में भी होते हैं, शेष समास प्रायः दो पदों में होते हैं । एक दो स्थलों में तत्पुरुष समास में भी दो से अधिक पद देखें जाते हैं ।

इति केवल समास

अथ अव्ययीभावः

अव्ययीभावः ।२।१।५।।

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात् ।

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्द प्रादुर्भाव पश्चाद्यथानुपूर्व्य यौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ।२।१।३।।

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते, सोऽव्ययीभावः। प्रायेणा विग्रहो नित्यसमासः। प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ—हरि ङि अधि इति स्थिते।

अव्ययीभाव इति—'अव्ययीभावः' इस सूत्र का तत्पुरुष के पूर्व तक अधिकार है अर्थात् 'तत्पुरुषः' इस सूत्र तक के पूर्व सूत्रों के द्वारा जो समास किया जायेगा वह अव्ययीभाव कहलायेगा।

अव्ययमिति—विभक्ति, १ समीप, २ समृद्धि, ३ व्यृद्धि ४ (ऋद्धि का न होना) अर्थ ५ (वस्तु) का अभाव, अत्यय (ध्वंस) ६, असंप्रति (अनुचित ७, शब्द की अभिव्यक्ति ८, पश्चात् ९, यथा १०, अनुक्रम, ११, यौग पद्य (एक साथ होना) १२, सादृश्य १३, सम्पत्ति १४, साकल्य (सम्पूर्णता १५, तथा अन्त १६ इन अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुवन्त के साथ नित्य समास होता है और वह अव्ययीभाव समास कहलाता है।

प्रायेणेति—नित्य समास वह है जिसका प्रायः विग्रह न हो, अथवा नित्य समास वह है जिसका प्रायः अपने पदों के साथ विग्रह न हो (न विग्रहः यस्मिन् सोऽविग्रहः अथवा न स्वपदेन विग्रहो यस्य सोऽविग्रहः) तात्पर्य यह कि नित्य समास का अपने पदों के साथ लौकिक विग्रह नहीं होता, अलौकिक विग्रह ही होता है, जैसा कि नीचे के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट है।

प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ।१।२।४३।।

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जन संज्ञं स्यात् ।

उपसर्जनं पूर्वम् ।२।२।३०।।

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम् । इत्यधे; प्राक प्रयोगः; सुपो लुक् ।

एकदेश विकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिक संज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । अव्ययीभावश्चेत्य व्ययत्वात्सुपो लुक् । अधि हरि ।

विभक्ताविति—विभक्ति के अर्थ में, यहां सप्तमी के अर्थ में अधि अव्यय है। इसका लौकिक विग्रह है 'हरौ' इसमें अधि नहीं आता है पर अलौकिक विग्रह "हरि ङि अधि" में अधि आता है अतः विग्रह पद से नित्य समास में लौकिक विग्रह लेना चाहिए इसमें समास का एक अवयव ही आता है दोनों पद नहीं, अतएव यह अस्वपद विग्रह कहा जाता है।

अधिहरि—यहाँ लौकिक विग्रह 'हरौ' तथा 'हरि ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में अव्ययं विभक्तीत्यादि सूत्र से विभक्त्यर्थ में समास हुआ।

प्रथमेति—समास शास्त्र में अर्थात् समास विधायक सूत्र में जो पद प्रथमान्त हो उस पद के द्वारा विग्रह में जिस पद का बोध हो वह उपसर्जन संज्ञक हो।

यथा प्रकृत में समासविधायक सूत्र है 'अव्ययं विभक्तीत्यादि' इसमें प्रथमान्त है, 'अव्ययम्' इस के द्वारा 'हरि ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में बोध्य पद है—'अधि' अतः 'अधि' की उपसर्जन संज्ञा होगी।

उपसर्जनमिति—समास में उपसर्जन संज्ञक का पूर्व प्रयोग हो।

यतः प्रकृत में उपसर्जन संज्ञा 'अधि' की है, अतः उसका ही पूर्व प्रयोग होगा।

अधि का पूर्वनिपात करने पर 'अधि हरि ङि' इस स्थिति में—

सुपो लुक्—समास होने पर 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' सूत्र से विभक्ति का लोप होता है।

(इस कथन से उक्त उदाहरण में 'ङि' विभक्ति का लोप होकर 'अधि हरि' यह स्थिति हुई)

एकदेशेति—जिसका एकदेश विकृत हो जाता है, वह अन्य नहीं हो जाता। (यहाँ 'देश' का अर्थ है—अवयव—अंश या भाग। यदि किसी वस्तु का एक अंश विकृत भी हो जाय तो भी वह अन्य नहीं हो जाती, जिस प्रकार एक हाथ कट जाने पर भी मनुष्य, मनुष्य ही रहता है अन्य नहीं हो जाता) इस न्याय से सिद्ध होने वाली प्रातिपदिक संज्ञा का फल है, उसके आगे सु आदि विभक्तियों का होना।

इस एकदेश 'विकृत न्याय' से यद्यपि 'ङि' का लोप हो जाने पर यहाँ प्राति-

अव्ययी भावश्च ।२।४।१८।।

अयं नपुंसकं स्यात् ।

नाव्ययीभावादतोऽम्त्व पञ्चम्याः ।२।४।८३।।

अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक्ः तस्य तु पञ्चमीं बिना अमादेशश्च स्यात् । गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नित्यधि गोपम् ।

तृतीया सप्तम्यो र्बहुलम् ।२।४।८४।।

पदिक संज्ञा विकृत हो गई है, तथापि वह अन्य नहीं, अतः अधि हरि में प्रातिपदिक संज्ञा बनी रहेगी, फलतः उसके आगे 'सु' प्रत्यय आयेगा ।

अव्ययीभावश्चेति—'अव्ययीभावश्च' इस सूत्र से अव्ययीभाव होने के कारण अव्यय संज्ञा हुई, और इसीलिए पुनः समस्त पद से आये हुये सु आदि अव्ययों का 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से लोप हुआ ।

प्रकृत में 'अधिहरि' इस समस्त पद से 'एक देशविकृतन्याय' से आये हुये सु अव्यय के साथ 'अधिहरि सु' इस स्थिति में 'अव्ययीभावश्च' इस सूत्र से उसकी अव्ययीभाव संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से 'सु' का लोप होने पर 'अधिहरि' यह रूप सिद्ध हुआ ।

अव्ययीभावश्च—यह अर्थात् अव्ययीभाव समास नपुंसकलिङ्ग हो ।

नाव्ययीभावादिति—ह्रस्व अकारान्त अव्ययीभाव से परे सुप का लोप नहीं होता, तथा पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर उसको अम् आदेश होता है ।

अधिगोपम्—गाः पाति इति गोपाः—(गायों का पालन करने वाला) 'गोपि' इति अधिगोपम् इस लौकिक विग्रह में, 'गोपा ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में "अव्ययं विभक्तीत्यादि सूत्र से विभक्त्यर्थ में समास, प्रथमानिर्दिष्टम् सूत्र से, 'अव्ययम्' इस प्रथमान्त पद से बोध्य विग्रह में स्थित 'अधि' की उपसर्जन संज्ञा, उपसर्जनं पूर्वम्, सूत्र से 'अधि' का पूर्वनिपात, 'अधिगोपा ङि' इस स्थिति में समास होने से प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' से विभक्ति लोप, पुनः एकदेश विकृत न्याय से 'अधिगोपा' इस समस्त पद से प्रथमैकवचन में पुनः सु प्रत्यय, 'अधिगोपा' सु इस स्थिति में 'अव्ययीभावश्च' इस सूत्र से नपुंसक लिङ्ग हुआ, फलतः 'ह्रस्वो नपुंसकके प्रातिपदिकस्य' इस सूत्र से 'पा' के आकार को ह्रस्व, अधिगोप+सु इस स्थिति में 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होकर सु का लोप प्राप्त हुआ" नाव्ययीभावादिति सूत्र से सुलोप का निषेध और प्रथमा विभक्ति में उसको अम् आदेश होकर 'अधिगोपम्' रूप बनता है ।

तृतीयेति—ह्रास्वाकारान्त अव्ययीभाव से परे तृतीया व सप्तमी को बहुलता से (विकल्प से) अम् आदेश होता है ।

अदन्ता दव्ययीभावात् तृतीया सप्तम्यो बहुलमम्भावः स्यात् । अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा । कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम् उपकृष्णेन । मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धि दुर्यवनम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा सम्प्रति न युज्यते इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश 'इति हरि,' विष्णो : पश्चादनु विष्णु । योग्यता वीप्सा पदार्थानति वृत्ति सादृश्यानि यथार्थाः । रूपस्य योग्य मनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ।

इस प्रकार अकारान्त अव्ययीभाव समास से परे तृतीया और सप्तमी विभक्तियों को भी अम् आदेश विकल्प से होगा अतः अधिगोप इस अकारान्त अव्ययी भाव के प्र० में अधिगोपम्, द्वि० में अधिगोपम्, तृ० में अधिगोपेन-अधिगोपम्, च० में अधिगोपम्, पञ्चमी में अधिगोपात्, षष्ठी में अधिगोपम्, स० में अधिगोपे-अधिगोपम्, रूप बनेंगे। तात्पर्य यह कि अकारान्त अव्ययीभाव समास वाले शब्द के पञ्चमी विभक्ति में ही विभक्त्यन्त रूप बनते हैं, तृतीया व सप्तमी में विकल्प से, तथा शेष विभक्तियों में अमादेश हो जाने से विभक्त्यन्त रूप नहीं बनते ।

कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम् इस लौकिक विग्रह में तथा 'कृष्ण ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपेत्यादि सूत्र से समीपार्थ में समास, उपसर्जन संज्ञा, उप का पूर्वनिपात, 'उप-कृष्ण ङस्' इस स्थिति में समासत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' विभक्ति लोप, पुनः एकदेश विकृत न्याय से प्रातिपदिकत्वेन प्र० एक में सु प्रत्यय, 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसक लिङ्ग, नाव्ययीभावादिति से सु को अमादेश होकर उपकृष्णम्, तृतीयेति से तृतीया व सप्तमी में विकल्प से अमादेश होकर **उपकृष्णम्—उपकृष्णेन, उपकृष्णम्-उपकृष्णे**। शेष विभक्तियों में **उपकृष्णम्** रूप बनेंगे ।

(अव्ययीभाव समास के शेष अकरान्त उदाहरणों में भी यही प्रक्रिया रहेगी, इकारान्त उकारान्त आदि अव्ययीभाव समास वाले शब्दों के आगे सु प्रत्यय की अव्ययीभाव संज्ञा होने से **"अव्ययाबाप्सुपः"** से उनका लोप हो जायेगा तथा शेष विभक्तियों में भी उनके वैसे ही रूप बनेंगे ।

'मद्राणाम् समृद्धिः सुमद्रम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'मद्र आम् सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तीत्यादि सूत्र से समृद्धि अर्थ में सु इस अव्यय का मद्र शब्द के साथ समास, पूर्व प्रयोग, विभक्ति लोप, पुनः प्रातिपदिकत्वेन 'सु' अदन्त होने से अमादेश 'सुमद्रम्' रूप सिद्ध होता है ।

यवनानां व्यृद्धिः **दुर्यवनम्** (यवनों की दुर्दशा) यहाँ व्यृद्धि अर्थ में दुर् अव्यय का यवन शब्द के साथ 'यवन आम् दुर्' इस विग्रह में समास, शेष कार्य पूर्ववत् होकर 'दुर्यवनम्' रूप बनेगा ।

अव्ययीभावे चाऽकाले ।६।३।८१।।

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले । हरेः सादृश्यं सहरि । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण

मक्षिकाणाम भावः **निर्मक्षिकम्** (मक्खियों का अभाव) मक्षिका आम् निर् इस विग्रह में 'अव्ययम्' सूत्र से, अर्थ (वस्तु का अभाव) में निर् अव्यय का मक्षिका सुवन्त के साथ समास, शेष कार्य पूर्ववत्, नपुंसक होने से ह्रस्व होकर निर्मक्षिकम् ।

हिमस्य अत्ययः **अतिहिमम्** (वर्फ की समाप्ति) यहाँ अत्यय अर्थात् विनाश अर्थ में अति अव्यय का हिम सुवन्त के साथ 'हिम ङस् अति' इस विग्रह में समास, शेष कार्य पूर्ववत् 'अतिहिमम्' ।

निद्रा संप्रति न युज्यते इति **अतिनिद्रम्** (निद्रा इस समय उचित नहीं) यहाँ असंप्रति (अनौचित्य) अर्थ में अति अव्यय का निद्रा सुवन्त के साथ समास, शेष कार्य पूर्ववत्, नपुंसक लिंग, ह्रस्व होकर 'अतिनिद्रम्' रूप बनता है ।

हरिशब्दस्य प्रकाशः **'इतिहरि'** (हरि शब्द का उच्चारण) यहाँ शब्द प्रादुर्भाव (प्रकट करना) अर्थ में इति अव्यय का हरि सुवन्त के साथ समास, शेष कार्य, 'अव्ययीभावश्च । अव्यय संज्ञा, सुलोप होकर इतिहरि शब्द बनता है ।

विष्णोः पश्चात् **अनुविष्णु** (विष्णु के बाद) यहाँ पश्चात् अर्थ में अनु अव्यय का विष्णु सुवन्त के साथ (विष्णु ङस् अनु) समास शेष कार्य, अव्यय संज्ञा, सुलोप होकर 'अनुविष्णु ।'

योग्यतेति—यथा शब्द के चार अर्थ हैं—योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति, सादृश्य, इन चारों अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुवन्त के साथ 'अव्ययम्' सूत्र से समास होता है ।

रुपस्य योग्यम् **अनुरूपम्** (रूप के योग्य) यहाँ योग्यता अर्थ में अनु अव्यय का रूप सुवन्त के साथ (रूप ङस् अनु) समास, शेष कार्य, नपुंसक लिंग, अमादेश होकर 'अनुरूपम्' ।

अर्थम्-अर्थम् प्रति **प्रत्यर्थम्** (प्रत्येक अर्थ में) यहाँ वीप्सा (वार-वार होना) अर्थ में प्रति का अर्थ के साथ (अर्थ अम् प्रति) समास, शेष कार्य पूर्ववत् होकर 'प्रत्यर्थम् ।'

शक्ति मनतिक्रम्य **यथाशक्ति** (शक्ति का अतिक्रमण न करके अर्थात् शक्ति के अनुसार) यहाँ पदार्थानतिवृत्ति (वस्तु का अतिक्रमण न करना) अर्थ में अति अव्यय का शक्ति सुवन्त के साथ 'शक्ति ङस् अति) समास, शेष कार्य, अव्यय संज्ञा, सुलोप, 'यथाशक्ति' ।

अव्ययीभावे इति—अव्ययीभाव समास में सह को स आदेश होता है, काल-वाची उत्तर पद परे रहते नहीं ।

हरेः सादृश्यम् सहरि (हरिका सादृश्य) यहाँ सादृश्य अर्थ में सह अव्यय का

इति-अनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत्-सचक्रम् । सदृशः संख्या ससखि । क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य-सतृणमत्ति । अग्नि ग्रन्थ पर्यन्त मधीते साग्नि ।

नदीभिश्च २।१।२०।।

नदीभिः सह संख्या समस्यते ।

(वा) समाहारे चायमिष्यते । पञ्चगङ्गम् । द्वियमुनम् ।

हरि के साथ (हरि टा सह) समास, शेष कार्य, अव्ययीभावे सूत्र से सह को स आदेश, अव्यय संज्ञा सुलोप 'सहरि' ।

ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण इति **अनुज्येष्ठम्** (ज्येष्ठ के क्रम के अनुसार) यहाँ आनुपूर्व्य अर्थ में अनु का ज्येष्ठ के साथ (ज्येष्ठ ङस् अनु) समास, शेष कार्य, नपुंसक, अम् 'अनुज्येष्ठम्' ।

चक्रेण युगपत् **सचक्रम्** (चक्र के साथ) यहाँ युगपद् (एक साथ) अर्थ में सह का चक्र के साथ (चक्र टा सह) समास, शेष कार्य, सह को स आदेश, नपुंसक, अम् 'सचक्रम्' ।

सदृशः सख्या **ससखि** (सखा के तुल्य) यहाँ सादृश्य (समानता) अर्थ में सह का सखि के साथ (सखि टा सह) समास, शेष कार्य, अव्ययीभावे से सह को स आदेश, अव्यय संज्ञा, सुलोप, 'ससखि' ।

क्षत्राणां सम्पत्तिः **सक्षत्रम्** (क्षत्रियों की सम्पत्तिः) यहाँ सम्पत्ति अर्थ में सह का क्षत्र के साथ (क्षत्र भिस् सह) समास, शेष कार्य, अव्ययीभावे से स आदेश, नपुंसक, अमादेश, 'सक्षत्रम्' ।

तृणम् अपि अपरित्यज्य **सतृणम्** (तिनके को भी न छोड़कर अर्थात् सब का सब अत्ति-खाता है) यहाँ साकल्य (सम्पूर्णता) अर्थ में सह का तृण के साथ (तृण टा सह) समास लेष कार्य, स आदेश, नपुंसक, अमादेश होकर 'सतृणम्' ।

अग्नि ग्रन्थ पर्यन्तमधीते-**साग्नि** (अग्नि सम्बन्धी ग्रन्थ तक पढ़ता है) यहाँ अन्त (पर्यन्त) अर्थ में सह का अग्नि के साथ समास, शेष कार्य, सादेश, अव्यय संज्ञा, सुलोप, 'साग्नि' ।

नदीभिश्चेति—नदी विशेष वाचक शब्दों के साथ संख्या वाचक शब्दों का समास हो ।

(वार्तिक) यह समास समाहार में इष्ट है अर्थात् नदी विशेष वाचक शब्दों के साथ संख्यावाचक शब्दों का समास होने पर समस्त पद समाहार (समूह) का बोधक हो ।

पञ्चगङ्गम्—पञ्चानां गंगानां समाहारः (पाँच गंगाओं का समूह) पञ्चन् जस् गंगा जस् इस विग्रह में नदी विशेष गंगा शब्द के साथ पञ्चन् इस संख्या वाचक शब्द

तद्धिताः ।४।१।७६।।

आपञ्चम समाप्तेरधिकारोऽयम् ।

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ।५।४।१०७।।

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीपम् उपशरदम् । प्रतिविपाशम् ।

(जराया जरश्च) उपजरसम्, इत्यादि ।

का प्रकृत सूत्र से समास, संख्या के प्रथमानिर्दिष्ट होने से पञ्चन् की उपसर्जन संज्ञा पूर्वनिपात, 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न लोप । अव्ययीभावत्वात् नपुंसक, ह्रस्व, पञ्चगंग से सु, उसको अमादेश होकर, पञ्चगंगम् रूप बनता है ।

द्वियमुनम्—(द्वयोः यमुनयोः समाहारः) दो यमुनाओं का समूह, यहाँ भी सब कार्य पूर्ववत् होकर 'द्वियमुनम्' रूप बनेगा ।

तद्धिता इति—पञ्चम अध्याय की समाप्ति तक तद्धित का अधिकार है, अर्थात् इस सूत्र से पञ्चमाध्याय तक के पूर्व सूत्रों का कार्य तद्धित कार्य कहा जायेगा ।

अव्ययीभावे इति—अव्ययीभाव समास में शरत् आदि शब्दों से समासान्त टच् प्रत्यय हो ।

टच् प्रत्यय का 'अ' शेष रहता है, ये प्रत्यय समस्त पद के अन्त में होने के कारण समासान्त कहलाते हैं । ये तद्धित प्रकरण के अन्तर्गत 'तद्धिताः' इस अधिकार सूत्र के अनुसार, माने जायेंगे । अतः समासान्त प्रत्ययों के होने पर 'कृत्तद्धित समासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होकर सु आदि प्रत्यय आयेंगे) ।

उपशरदम्—शरदः समीपम् उपशरदम् (शरद् के समीप) 'शरद् ङस् उप' इस विग्रह में 'अव्ययं विभक्तीत्यादि' सूत्र से समीपार्थ में समास, उप का पूर्व प्रयोग, विभक्ति लोप, उपशरत्, शब्द से 'अव्ययीभावे शरदिति' सूत्र से टच् (अ) प्रत्यय, उपशरत्+अ=उपशरद शब्द से सु प्रत्यय, अकारान्त अव्ययीभाव होने से अमादेश "उपशरदम्" ।

विपाशाया अभिमुखम् **प्रतिविपाशम्**—(विपासा नदी की ओर) यहाँ **'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये'** इस सूत्र से प्रति अव्यय का विपाश् इस नदी विशेष वाचक शब्द के साथ समास, पूर्व निपातादि कार्य, प्रतिविपाश् से टच्, पूर्वोक्त प्रकार से प्रति-विपाशम् रूप सिद्ध होता है ।

(विपाश् शब्द नदी विशेष का वाचक है, 'विपाशा तु विपाट् स्त्रियाम् इत्यमरः') ।

जराया इति—जरा शब्द को जरस्, आदेश होता है । और समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।

जरायाः समीपम्—**उपजरसम्**—(बुढ़ापे के पास) यहाँ 'जरा ङस् उप' इस

अनश्च ।५।४।१०८।।

अन्नन्तादव्ययी भावाद् टच् स्यात् ।

नस्तद्धिते ।६।४।१४४।।

नान्तस्य भस्य टेर्लोपःस्यात् तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् ।

नपुंसका दन्यतर स्याम् ।५।४।१०९।।

अन्नन्तं यत् क्लीवं तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा स्यात् । उपचर्मम्, उपचर्म ।

विग्रह में, 'अव्ययम्' सूत्र से समीपार्थ में समाज पूर्वनिपात, विभक्ति लोप, प्रकृत सूत्र से जरा को जरस् आदेश, और इसी से टच् प्रत्यय होकर उपजरस इस अकारान्त अव्ययीभाव से सु, नपुंसक, अमादेश होकर 'उपजरसम्' सिद्ध होता है ।

अनश्चेति—अन् अन्त वाले अव्ययीभाव समास के शब्दों से टच् प्रत्यय हो ।

नस्तद्धिते इति—नकारान्त भ संज्ञक टि का लोप हो तद्धित प्रत्यय परे रहते ।

उपराजम्—राज्ञः समीपम् (राजा के पास) 'राजन् ङस् उप' इस विग्रह में 'अव्ययम्' सूत्र से समास, पूर्व प्रयोगादिकार्य, उपराजन् शब्द से 'अनश्च' सूत्र से टच् प्रत्यय 'नस्तद्धिते' सूत्र से 'अन्' इस 'टि' का लोप, उपराज्+अ=उपराज इस अकारान्त से सु, उसका अम् आदेश होकर 'उपराजम्' रूप बनता है ।

('टि' तथा 'भ' ये पाणिनीय संज्ञायें हैं । "अचोऽन्त्यादिटि" सूत्र के अनुसार किसी शब्द के अन्तिम स्वर सहित आगे वाला समस्त भाग 'टि' संज्ञक होता है, जैसे राजन् में अन्तिम स्वर 'अ' सहित समस्त भाग 'अन्' की 'टि' संज्ञा होती है । 'यचि भम्' इस सूत्र से यकारादि और अजादि प्रत्यय आगे रहने पर पहिले की 'भ' संज्ञा होती है, टच् का 'अ' अजादि प्रत्यय है अतः यहाँ पूर्व की भ संज्ञा होती है अतः 'अन्' यह भ संज्ञक टि है ।)

अध्यात्मम्—(आत्मनि अधि) आत्मा के विषय में 'आत्मन् ङि अधि' इस विग्रह में विभक्त्यर्थ में समास, पूर्ववत् शेष कार्य अध्यात्मन्+टच्, टि लोप, अमादेश 'अध्यात्मम् ।'

नपुंसकादिति—अन् अन्त वाला जो नपुंसक लिंग शब्द तदन्त अव्ययीभाव से टच् विकल्प से हो ।

उपचर्मम् (चर्मणः समीपम्-चर्म के समीप) यहाँ 'चर्मन् ङस् उप' इस विग्रह में समीपार्थ में समास, शेष कार्य, उपचर्मन् इस अन्नन्त नपुंसक लिंग अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय, 'अन्' इस 'टि' का लोप होकर उपचर्मम्, जहाँ टच् प्रत्यय न होगा वहाँ उपचर्मन् से न लोप होकर 'उपचर्म' बनेगा ।

झयः ।५।४।१११॥

झयन्तादव्ययीभावाट्टज्वा स्यात् । उपसमिधम्' उपसमित् ।

इत्यव्ययीभाव समासः ।।द्वितीय।।

झय इति—झय्, 'प्रत्याहार' अन्त वाले अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय विकल्प से हो।

उपसमिधम्—(समिधः समीपम्-समिधा के समीप) 'समिध् ङस् उप' इस विग्रह में पूर्ववत् समासादि कार्य होकर उपसमिध् शब्द से झयः सूत्र से टच् प्रत्यय उपसमिध्+अ=उपसमिध' से सु, अकारान्त होने से अमादेश होकर 'उपसमिधम्' टच् के अभाव पक्ष में उपसमिध् ऐसा धकारान्त नपुंसक शब्द रहता है, प्र० एक वचन में तकार होकर 'उपसमित्' रूप बनता है।

इति अव्ययी भाव समास

अथ तत्पुरुष समासः

तत्पुरुषः ।२।१।२२।।

अधिकारोऽयं प्राग्बहुब्रीहेः ।

द्विगुश्च । द्विगुरपि तत्पुरुष संज्ञकः स्यात् ।

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्त प्राप्तापन्नैः ।२।१।२४।।

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते । स च तत्पुरुषः । कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः । इत्यादि ।

तत्पुरुष इति—बहुब्रीहि से पूर्व तक तत्पुरुष का अधिकार है अर्थात् 'तत्पुरुषः' से लेकर 'शेषो बहुब्रीहिः' तक के सूत्रों से किया गया समास तत्पुरुष कहलायेगा ।

द्विगुरिति—द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञक हो । (इस तत्पुरुष संज्ञा करने का फल है, द्विगु समास में भी समासान्त विधि आदि का होना)

द्वितीयेति—द्वितीयान्त सुवन्त का श्रित, अतीत, पतित, गत तथा अत्यस्त (फेंका हुआ) प्राप्त और आपन्न प्रातिपदिकों से बने सुवन्तों के साथ समास हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ।

कृष्णश्रितः—कृष्णम् श्रितः—(कृष्ण के आश्रित) 'कृष्ण अम् श्रित सु' इस अलौकिक विग्रह में द्वितीयान्त कृष्णम् का श्रित प्रातिपदिक से बने 'श्रितः' इस सुवन्त के साथ समास हुआ । समास शास्त्र—द्वितीयेत्यादि सूत्र में द्वितीया इस प्रथमान्त से बोध्य 'कृष्णम्' पद की उपसर्जन संज्ञा उसका पूर्वनिपात, फिर प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति लोप, 'कृष्णश्रित' इस समस्त प्रातिपदिक से एक देश विकृत न्याय से प्रातिपदिक होने से सु प्रत्यय, रुत्व विसर्ग, प्र० एक वचन में 'कृष्णश्रितः' रूप बनता है ।

(इसी प्रकार सूत्र पठित अन्य सुवन्तों के साथ समास करने पर "दुःखमतीतः—दुःखातीतः,—नरकं पतितः—नरकपतितः—स्वर्ग गतः—स्वर्गगतः, कूपम्

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ।२।१।३०।।

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थशब्देन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः — शङ्कुलाखण्डः । धान्येनार्थः धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् — अक्ष्णा काणः ।

अत्यस्तः—कूपात्यस्तः, सुखं प्राप्तः—सुखप्राप्तः, संकटम् आपन्नः—संकटापन्नः' समस्त शब्द बनेंगे ।

(कहा जा चुका है कि तत्पुरुष समास का उत्तर पद प्रधान होता है क्योंकि उसी का क्रिया पद के साथ अन्वय सम्भव होता है । अतः इस समास में दोनों पदों में से प्रथम पद में प्रथमा विभक्ति को छोड़कर द्वितीया से सप्तमी तक कोई भी विभक्ति आ सकती है, अतः जो विभक्ति पूर्व पद में आयेगी, उसी के अनुसार यह समास द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष आदि कहा जायेगा । उत्तर पदार्थ प्रधान होने के कारण, क्रिया में अन्वित होने से अर्थानुसार उसमें विभक्ति रहती है, वैसे तो उत्तर पद में प्रायः प्रथमा विभक्ति ही देखी जाती है । इस सब का कारण यह है कि तत्पुरुष समास दो प्रकार का होता है—समानाधिकरण—जिसमें दोनों ही पदों में समान विभक्तियाँ रहती हैं अर्थात् प्रथमा विभक्ति रहती है, इसलिए कर्मधारय तथा द्विगु समास जो कि तत्पुरुष के ही भेद हैं समानाधिकरण तत्पुरुष कहलाते हैं, क्योंकि इनमें दोनों पदों में समान विभक्तियाँ रहती हैं । इसका दूसरा प्रकार है—व्यधिकरण—अर्थात् जिसमें समान विभक्तियाँ न हों, इसलिए व्यधिकरण तत्पुरुष में पूर्व पद में द्वितीया से सप्तमी तक कोई विभक्ति होती है और उत्तर पद में प्रथमा रहती है ।)

तृतीयेति—तृतीयान्त सुबन्त का तृतीयान्त के अर्थ से किये गये गुणवाचक शब्द के तथा अर्थ शब्द के साथ समास हो विकल्प से ।

शंकुलाखण्डः—(सरौते से किया गया टुकड़ा) शङ्कुलया खण्डः, यहाँ उत्तर पद गुणवाचक है (खण्डित की गई वस्तु से तात्पर्य नहीं, अपितु खण्ड इस गुणवाचक पद से तात्पर्य है) यहाँ तृतीयान्त का अर्थ शंकुला (सरौता है) इसी तृतीयान्तार्थ से किया गया यह गुण वाचक शब्द खण्ड है, अतएव 'शङ्कुला टा खण्ड सु' इस विग्रह में तृतीयेति सूत्र से समास, सुप् लोप, शङ्कुलाखण्ड इस प्रातिपदिक से उक्त रूप बनता है ।

धान्यार्थः—धान्येन अर्थः—(धान्य से (प्रयोजन) 'धान्य टा अर्थ सु' समास, सुप् लोप 'धन्यार्थः' रूप सिद्ध होता है ।

तत्कृतेति किमिति—सूत्र में तत्कृत (तृतीयान्तार्थ से कृत गुण वाचक) के साथ समास होता है अतः—

कर्तृ करणे कृता बहुलम् ।२।१।३२।।

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् । हरिणा त्रातः—हरित्रातः । नखैं भिन्नः – नखभिन्नः ।

(प०) कृद्ग्रहणे गतिकारक पूर्वस्यापि ग्रहणम् । नखनिर्भिन्नः ।

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ।२।१।३२।।

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभ्यश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । यूपाय दारु—यूपदारु । तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः, तेनेह न—रन्धनाय स्थाली ।

अक्ष्णा काणः–(आँख से काना) यहाँ समास नहीं होता क्योंकि कानापन आँख के द्वारा किया हुआ नहीं है ।

कर्तृकरणे इति—कर्त्ता और करण में जो तृतीया तदन्त पद का कृदन्त के साथ बहुलतया समास हो ।

हरित्रातः—हरिणा त्रातः (हरि के द्वारा रक्षित) "हरि टा त्रात सु" इस विग्रह में कर्तरि तृतीयान्त हरिणा का त्रातः इस सुबन्त के साथ समास होकर शेष कार्य पूर्ववत् होंगे ।

नखभिन्नः—(नखैः भिन्नः—नखों से काटा हुआ, 'नख भिस् भिन्न सु, इस विग्रह में समास, शेष कार्य पूर्ववत् । यहाँ करण में तृतीया विभक्ति है ।

कृद्ग्रहण, इति—कृदन्त के ग्रहण में गति और कारक पूर्वक कृदन्त का भी ग्रहण होता है । अर्थात् जो कार्य कृदन्त को कहा गया है, वह गति (प्र परा आदि उपसर्ग) तथा कर्म आदि कारक पूर्वक कृदन्त को भी हो, इसका फल यह होता है कि तृतीयान्त शब्द का निर् इस गति संज्ञकपूर्वक भिन्न शब्द के साथ भी समास होता है, अतः नखभिन्नः की तरह **'नखनिर्भिन्नः'** यह रूप भी बनता है ।

चतुर्थीति—चतुर्थ्यन्त के अर्थ के लिए जो वस्तु हो, उसके वाचक पद के साथ, तथा अर्थ (के लिए) बलि, हित, सुख और रक्षित शब्दों के साथ, चतुर्थ्यन्त का समास हो।

यूपदारु - यपाय दारु (यज्ञ स्तम्भ के लिए लड़की) यहाँ चतुर्थ्यन्त के अर्थ-यूप के लिए दारु-लकड़ी है अतः 'यूप ङे, दारु सु' इस विग्रह में समास तथा शेष कार्य होकर "यूपदारु" रूप बनता है ।

तदर्थेनेति—सूत्र गत तदर्थेन पद का अभिप्राय है, प्रकृति का विकृति भाव अर्थात् चतुर्थ्यन्त का अर्थ विकृति तथा उत्तर पद का अर्थ प्रकृति होना चाहिए, उसी दशा में इस सूत्र से समास होगा अन्यथा नहीं ।

तेनेति—इस कारण यहाँ समास नहीं होता—रन्धनाय स्थाली (राँधने के लिए डेगची) यहाँ स्थाली और रन्धन में प्रकृति-विकृति भाव नहीं है—स्थाली की विकृति रन्धन नहीं है ।

(वा) अर्थेन नित्य समासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् ।

द्विजार्थः सूपः, द्विजार्था यवागुः, द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ।

पञ्चमी भयेन ।२।१।३७।।

चौराद्भयं चौरभयम् ।

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ।२।१।३९।।

पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ।६।३।२।।

अलुग् उत्तरपदे । स्तोकान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः । कृच्छ्रादागतः ।

(वार्तिक) अर्थेनेति—अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है और समस्त पद का लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होता है ।

द्विजार्थः सूपः—द्विजाय अयम् (ब्राह्मण के लिए यह दाल) (नित्य समास होने के कारण यहाँ अस्वपद-विग्रह है) 'द्विज ङे अर्थ सु' इस विग्रह में वार्तिक से समास, द्विजार्थ इस समस्त पद से सूपः इस विशेष्य के अनुसार पुल्लिंग प्र० एकवचन में 'द्विजार्थः' रूप बना है । इसी प्रकार द्विजाय इयम्=द्विजार्था यवागुः यहाँ विशेष्यानुरोध से स्त्रीलिङ्ग, तथा द्विजाय इदम्="द्विजार्थं पयः" यहाँ नपुंसक लिंग होता है ।

भूतबलिः—भूतेभ्यः बलिः—भूतों के लिए बलि । 'भूत भ्यस् बलि सु' इस विग्रह में चतुर्थीति सूत्र से समास, तथा शेष कार्य पूर्ववत् होकर भूतबलि; रूप बनता है । इसी प्रकार गवे हितम् (गौ के लिए हितकर) 'गो. ङे. हित सु', समासादिकार्य होकर गोहितम्, एवं गोसुखम् (गवे सुखम्) गोरक्षितम् (गोभ्यः रक्षितम्) प्रयोग बनते हैं ।

पञ्चमीति—पञ्चम्यन्त का भय वाचक शब्दों के साथ समास हो ।

चौरभयम्—चौरात् भयम् (चौर से भय) 'चौर ङसि भय सु' इस विग्रह में समास शेष कार्य 'चौरभयम्' ।

स्तोकेति—स्तोक (थोड़ा) अन्तिक (समीप) दूरार्थ वाचक शब्द तथा कृच्छ्र (कष्ट) इन पदों का क्त प्रत्ययान्त पदों के साथ समास हो ।

पञ्चम्याः इति—स्तोक आदि शब्दों से परे पञ्चमी का लोप न हो, उत्तर पद परे रहते ।

(उत्तर पद शब्द समास के चरम अवयव में रूढ़ है अर्थात् उत्तर पद शब्द का अर्थ समास का ही उत्तर पद है)

स्तोकान्मुक्तः (स्तोकात् मुक्तः) थोड़े से मुक्त हुआ ।

षष्ठी ।२।२।८।।

सुबन्तेन प्राग्वत् । राजपुरुषः ।

पूर्वा परावरोत्तरमेकदेशि नैकाधिकरणे ।२।२।१।।

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते । एकत्व संख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठी समासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः । एकाधिकरणे किम्—पूर्वश्छात्राणाम् ।

अर्धं नपुंसकम् ।२।२।२।।

समांशवाची अर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्याः—अर्धपिप्पली ।

अन्तिकादागतः (अन्तिकात् आगतः) पास से आया हुआ ।

अभ्याशादागतः (अभ्याशात् आगतः) पास से आया हुआ ।

दूरादागतः—(दूरात् आगतः) दूर से आया हुआ ।

कृच्छ्रादागतः (कृच्छ्रात् आगतः) कष्ट से आया हुआ ।

यहाँ सर्वत्र स्तोकेति सूत्र से समास, 'पञ्चम्याः' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति का अलुक्, अर्थात् लोप का निषेध-लोप नहीं होता ।

षष्ठीति—षष्ठ्यन्त का सुबन्त के साथ समास हो ।

राजपुरुषः—(राज्ञः पुरुषः—राजा का आदमी) 'राजन् ङस् पुरुष सु, इस विग्रह में समास, न लोप 'राजपुरुषः' ।

पूर्वापरेति—पूर्व (आगे का) ऊपर (पीछे का) अधर (नीचे का) तथा उत्तर (ऊपर का) इन अवयव वाचक पदों का अवयवी वाचक शब्दों के साथ समास होता है, यदि अवयवी एकत्व संख्या विशिष्ट हो अर्थात् एक बचनान्त हो ।

(सूत्र में एकदेशी का अर्थ है अवयव, एको देशोऽस्या स्तीति एकदेशी अर्थात् अवयवी, अवयवी का एक देश उसका अवयव होता है। एकाधिकरण का अर्थ है एक वस्तु अर्थात् एक वचनान्त शब्द ।)

षष्ठी समासेति—यह षष्ठी समास का अपवाद है ।

पूर्वकायः—पूर्वं कायस्य—(शरीर का अग्र भाग) 'पूर्व अम् काय ङस्' इस विग्रह में समास, 'पूर्वापरेति' समास विधायक सूत्र में प्रथमान्त से वोध्य 'पूर्व' शब्द की उपसर्जन संज्ञा और पूर्व निपात, विभक्ति लोप, 'पूर्वकायः' ।

(षष्ठी समास के अपवाद होने का यह फल है कि 'पूर्व, अधर, उत्तर, इन शब्दों का पूर्व निपात हो सके, यदि 'षष्ठी' सूत्र से समास होता तो प्रथमान्त पद

सप्तमी शौण्डैः ।२।११४०॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्डः—अक्षशौण्डः इत्यादि ।

द्वितीया तृतीयेत्यादि योगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेयः ।

दिक्संख्ये संज्ञायाम् ।२।१।५०॥

पूर्वेषुकामशमी । सप्तर्षयः । संज्ञाया मेवेति नियमार्थं सूत्रम् । तेनेह न—उत्तरा वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः ।

बोध्य काय' पद का ही पूर्व प्रयोग होता, अतएव इस सूत्र द्वारा यह समास विधान किया गया है ।)

अपरकाय—अपरं कायस्य (शरीर का पिछला भाग) यहाँ भी पूर्ववत् समास तथा शेष कार्य होंगे ।

एकाधिकरणे इति—अवयवी के एक वचनान्त होने पर ही समास होता है अतएव 'पूर्वः छात्राणाम्' यहाँ छात्राणम् इस अवयवी के बहुवचनान्त होने से यहाँ समास नहीं होता, सन्धि होकर **'पूर्वश्छात्राणाम्'** बनता है ।

अर्धमिति—बराबर भाग का वाचक अर्ध शब्द जो नित्य नपुंसक लिङ्ग है, उसका सुबन्त के साथ समास हो ।

अर्धपिप्पली—अर्धं पिप्पल्याः (पिप्पली का आधा भाग) 'अर्ध अम् पिप्पली ङस्' इस विग्रह में समास, समास सूत्र में प्रथमान्त पद से बोध्य 'अर्धम्' का पूर्व प्रयोग, विभक्तिलोप, अर्ध पिप्पली' यहाँ भी पूर्व पद प्रधान है ।

सप्तमीति—सप्तम्यन्त का शौण्ड आदि शब्दों के साथ समास हो ।

अक्षशौण्डः—अक्षेषु शौण्डः—(पासों में प्रवीण) 'अक्ष सुप् शौण्ड सु' इस विग्रह में समास, अक्ष का पूर्व निपात, शेष कार्य होने पर 'अक्षशौण्डः' ।

द्वितीयेति— द्वितीया श्रितातीत आदि 'सप्तमी शौण्डैः' तक समास विधायक सूत्रों में द्वितीया, तृतीया आदि योग विभाग करने से प्रयोगानुसार अन्यत्र (उक्त स्थलों से भिन्न स्थानों में भी) समास जानना चाहिए । तात्पर्य यह कि द्वितीया, तृतीया चतुर्थी, पञ्चमी, सप्तमी, ये पृथक् सूत्र भी रहें और उक्त सूत्र भी रहें जिससे कि उक्त सूत्रों द्वारा तो उन शब्दों के साथ द्वितीयान्त आदि पदों का समास हो सके और शेष प्रयोगों में जो कि इनसे भिन्न भी हों, योग विभाग के द्वारा द्वितीया आदि सूत्रों से समास हो सके ।

दिक्संख्ये इति—दिशा वाचक और संख्या वाचक शब्दों का संज्ञा अर्थ में समर्थ सुबन्त के साथ समास हो ।

तद्धितार्थोत्तर पद समाहारे च २।१।५१॥

तद्धितार्थ विषये, उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये, दिक् संख्ये प्राग्वत् । पूर्वस्यां शालायां भवः पूर्वा शाला इति समासे जाते—

(व) सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः ।

दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ।४।२।१०७॥

अस्माद् भवार्थे ञः स्याद् असंज्ञायाम् ।

पूर्वेषुकामशमी—पूर्वा इषुकामशमी—यह किसी प्राचीन नगरी का नाम है । 'पूर्वा सु इषुकामशमी सु' इस विग्रह में दिकसंख्ये सूत्र से समास होकर 'पूर्वेषुकामशमी' बनता है ।

सप्तर्षयः—सप्त च ते ऋषयः (सात ऋषि) 'सप्तन् जस् ऋषि जस्' इस विग्रह में समास, शेष कार्य, प्र० बहु ब० में 'सप्तर्षयः' ।

(इस सूत्र से लेकर 'उपमानानि सामान्यवचनैः' सूत्र तक समानाधिकरण तत्पुरुष समास है, अतः दोनों पदों में समान विभक्तियाँ रहेंगी । इसके पूर्व व्यधिकरण तत्पुरुष था अतएव दोनों पदों में भिन्न-भिन्न विभक्तियाँ थीं ।)

संज्ञायामेवेति—इनका समास संज्ञा में ही हो, इस नियम के लिए यह सूत्र है । तात्पर्य यह कि 'जब विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' द्वारा यहाँ समास हो ही सकता था, तो फिर सूत्र का विधान व्यर्थ था अतः नियमार्थ यह सूत्र है कि दिक् वाची तथा संख्यावाची शब्दों का समास संज्ञा में ही हो, इस नियम के होने के कारण यहाँ समास न होगा, उत्तरा वृक्षाः पञ्च ब्राह्मणाः क्योंकि यहाँ संज्ञा नहीं है ।

१५५ तद्धितार्थेति—तद्धितार्थ के विषय में, उत्तरपद परे रहते, समाहार के वाच्य रहते दिशावाचक और संख्यावाचक पदों का समास हो ।

पूर्वस्यामिति—यह तद्धितार्थ के विषय का उदाहरण है, पूर्वस्यां शालायां भवः (पूर्वशाला में होने वाला) यहाँ 'भवः' यह तद्धितार्थ है, क्योंकि 'तत्र भवः' सूत्र से भवार्थ में तद्धित प्रत्यय होता है । यहाँ पूर्वा-दिशा वाचक शब्द का शाला के साथ समास होने पर, विभक्ति लोप होकर पूर्वा शाला यह स्थिति हुई ।

वार्तिकः—सर्वनाम को वृत्तिमात्र में अर्थात् कृदन्त आदि पाँचों वृत्तियों में पुंवद्भाव होता है ।

प्रस्तुत उदाहरण में समास वृत्ति है, पूर्वा यह सर्वनाम शब्द है, इसका पुंवद्भाव होने पर टाप प्रत्यय की निवृत्ति होकर पूर्वशाला बना ।

दिक् पूर्वेति—दिशा वाचक शब्द जिसके पूर्व में हो ऐसे शब्द से भव आदि अर्थों में ञ प्रत्यय हो, यदि संज्ञा न हो ।

प्रस्तुत उदाहरण में पूर्वशाला शब्द में दिशा वाचक पूर्व शब्द है, यहाँ भव

तद्धितेष्वचामादेः ।७।२।११७।।

ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादे रचो वृद्धिः स्यात् । यस्येति च— पौर्वशालः । पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ ।

(वा) द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ।

गोरतद्धितलुकि ।५।४।९२।।

गोऽन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि । पञ्चगवधनः ।

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ।१।२।४२।।

संख्या पूर्वो द्विगु ।२।२।५।।

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्या पूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात् ।

अर्थ भी है, संज्ञा भी नहीं है, अतः ञ प्रत्यय हुआ, ञ का 'अ' शेष रहा अतएव यह प्रत्यय ञित् कहलाया ।

तद्धितेष्विति—ञित् और णित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अचों में आदि जो अच् उसको वृद्धि हो ।

पूर्वशाला+ञ (अ) यहाँ ञित् प्रत्यय के आगे रहने पर आदि अच् उकार को 'औ' वृद्धि, 'यस्येति च' सूत्र से आकार लोप पौर्वशाल्+अ='पौर्वशाल' प्रातिपदिक से प्र० एकवचन में 'पौर्वशालः' रूप बनता है । इसका विग्रह है 'पूर्वा ङि शाला ङि' ।

पञ्चेति—पञ्च गावो धनं यस्य (जिसके पाँच गायें धन है) इस तीन पद के बहुव्रीहि समास में—

वार्तिक—द्वन्द्वेति—द्वन्द्व तत्पुरुष में उत्तर पद परे रहते नित्य समास होता है ।

गोरिति—गो शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो, जहाँ तद्धित प्रत्यय का लोप न हुआ हो ।

पञ्चगवधनः—पञ्च, गावो, धनं यस्य (पाँच गायें जिसका धन है) यहाँ तीन पद का बहुव्रीहि समास होता है पर इसके पूर्व पञ्च और गावः का उत्तर पद 'धन' परे रहते 'तद्धितार्थ' सूत्र से समास, विभक्ति लोप, न लोप, होकर पञ्चगो+धन बना, यहाँ यह तत्पुरुष समास वार्तिक के अनुसार नित्य समास है क्योंकि यहाँ 'धन' यह उत्तर पद है । अतः पञ्च गो+धन इस स्थिति में गोरतद्धितेति सूत्र से गो शब्दान्त तत्पुरुष पञ्चगो के आगे टच् (अ) प्रत्यय हुआ, अवादेश होकर 'पञ्चगवधनः' रूप बनता है ।

तत्पुरुष इति—समानाधिकरण तत्पुरुष को कर्मधारय समास कहते हैं समानाधिकरण=समान विभक्त्यन्त विषयक समास) जिसका समान अधिकरण या

द्विगुरेकवचनम् ।२।४।१।।

द्विग्वर्थः समाहार एकवत् स्यात् ।

स नपुंसकम् ।२।४।१७।।

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम् ।

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ।२।१।५७।।

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलम्—नीलोत्पलम् । बहुल ग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्—कृष्णसर्पः । क्वचिन्न—रामो जामदग्न्यः ।

अभिधेय हो, वह समानाधिकरण कहलाता है । जहाँ पूर्व तथा उत्तर पद दोनों समान—एक वस्तु के लिए ही प्रयुक्त हों, जैसे 'नीलोत्पलम्' इस समास में नील एवं उत्पल दोनों ही पूर्वोत्तर पद एक ही कमल के लिए प्रयुक्त हुए हैं, अतः यह समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय समास है । ऐसे पद विग्रह में भी समान विभक्तिक रहते हैं—"नीलं च तद् उत्पलम्" यहाँ नील व उत्पल दोनों के आगे एक ही 'सु' प्रथमैक वचन प्रत्यय है ।

संख्येति—'तद्धितार्थ' सूत्र द्वारा विहित तीनों प्रकार का समास यदि संख्या पूर्व हो तो द्विगु कहलाता है ।

द्विगुरिति—द्विगु समास का अर्थ—समाहार (समुदाय) एक वचनान्त होता है ।

स इति—समाहार में द्विगु और द्वन्द्व समास नपुंसक लिंग होते हैं ।

पञ्चगवम्—(पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम् पाँच गायों का समुदाय) "पञ्चन् आम् गो आम्" इस विग्रह में समाहार अर्थ में 'तद्धितार्थ' सूत्र से समास, विभक्ति लोप, न लोप, गोरतद्धितेति सूत्र से टच् (अ) अवादेश होकर 'पञ्चगव' इस स्थिति में 'संख्या पूर्वो द्विगुः' इस सूत्र से द्विगु संज्ञा, द्विगुरिति सूत्र से एक वचन का विधान, 'स इति' सूत्र से नपुंसक लिंग होने से, सु को अमादेश होकर 'पञ्चगवम्' रूप बनता है ।

विशेषणमिति—विशेषण का विशेष्य के साथ बहुलता से समास होता है और वह समास समानाधिकरण-कर्मधारय कहलाता है ।

(भेदक=विशेषण, क्योंकि यह अन्य पदार्थों से भेद बतलाता है, जैसे 'कृष्णा गौः' यहाँ कृष्णा यह विशेषण अन्य नील पीतादि गायों का व्यावर्तक या भेदक है । भेद्य=विशेष्य-जिसका अन्य पदार्थों से भेद किया जाता है । भेद्य भेदक दोनों ही एक ही वस्तु को बतलाते हैं अतएव वे समानाधिकरण कहलाते हैं ।

समास विधायक सूत्र में 'विशेषणम्' यह प्रथमान्त पद है अतः इसके द्वारा बोध्य सभी विशेषण वाची पदों का पूर्व प्रयोग ही होता है ।

नीलोत्पलम्—नीलं च यत् उत्पलम् (नीला जो कमल) 'नील सु उत्पल सु' इस विग्रह में विशेषणमिति सूत्र से समास, नीलोत्पल प्रातिपदिक से 'नीलोत्पलम्' रूप बना ।

उपमानानि सामान्य वचनैः ।२।१।५५।।

घन इव श्यामः घनश्यामः ।

(वा) शाक पार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम् ।

शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः । देवपूजको ब्राह्मणः देवब्राह्मणः ।

नञ् ।२।२।६।।

नञ् सुपा सह समस्यते ।

बहुलेति—सूत्र में बहुल ग्रहण सामर्थ्य से यह समास कहीं नित्य होता है और कहीं नहीं भी होता है।

कृष्णसर्पः—(काला सांप) 'कृष्ण सु सर्प सु' इस विग्रह में समास, विभक्ति लोप होकर 'कृष्णसर्पः' बनता है, यहां नित्य समास होने से "कृष्णः च असौ सर्पः" इस विग्रह द्वारा "काला जो सर्प" इस प्रकार बोध नहीं होता अपितु कृष्णसर्प, सांपों की एक विशेष जाति है। अतः कृष्णः सर्पः ऐसा वाक्य प्रयुक्त नहीं होता।

रामो जामदग्न्यः—यहां बहुल ग्रहण के कारण विशेषण विशेष्य रहते हुए भी समास नहीं होता।

उपमानानीति—उपमान वाचक सुबन्तों का सामान धर्मवाचक (सामान्य वचन) सुबन्तों के साथ समास हो।

जिससे किसी की समता दिखाई जाय वह उपमान कहलाता है, जिस धर्म से समता बताई जाती है उसे साधारण धर्म कहते हैं।

घनश्याम—घन इव श्यामः—(मेघ के समान श्याम वर्ण वाला) 'घन सु श्याम सु" इस विग्रह में समास, विभक्ति लोप, 'घनश्यामः' यहां उपमान वाचक घन शब्द का साधारण धर्मवाचक श्याम शब्द के साथ समास हुआ है। यहां लक्षणा शक्ति से प्राप्त इव शब्द का विग्रह वाक्य में स्पष्टता के लिए प्रयोग किया गया है, घन शब्द, घन के समान इस अर्थ में लाक्षणिक है।

(वार्तिक) शाकेति—शाकपार्थिव आदि समासों की सिद्धि के लिये उत्तर पद का लोप कहना चाहिए।

शाकपार्थिवः—शाक प्रियः पार्थिवः—(शाक पसन्द करने वाला राजा) यहाँ शाक प्रिय और पार्थिव का समास होकर उत्तर पद प्रिय का वार्तिक से लोप हुआ।

देवब्राह्मण :—देवपूजकः ब्राह्मणः (देवताओं की पूजा करने वाला ब्राह्मण) देवपूजक और ब्राह्मण का समास होकर पूजक इस उत्तर पद का लोप हुआ है।

नञिति—नञ् का सुबन्त के साथ समास हो, निषेधार्थक न ही नञ् है अतएव यह नञ् समास कहलाता है।

न लोपो नञः ।६।३।७४।।

नञो नस्य लोपः स्यात् उत्तरपदे । न ब्राह्मणः—अब्राह्मणः ।

तस्मान्नुडचि ।६।३।७४।।

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्या जादेर्नुडागमः स्यात् । अनश्वः । नैकधेत्यादौ तु न शब्देन सह सुप्सुपेति समासः ।

कुगतिप्रादयः ।२।२।१८।।

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः ।

ऊर्यादिच्विडाचश्च ।१।४।६१।।

न लोप इति—उत्तर पद परे रहते नञ् के नकार का लोप हो ।

अब्राह्मणः—न ब्राह्मणः—(जो ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रिय आदि हो) न ब्राह्मण सु, इस विग्रह में नञ् सूत्र से समास, विभक्ति लोप, 'न लोपो नञः' सूत्र से नकार का लोप होकर 'अब्राह्मणः' बना ।

तस्मादिति—जिस नञ् के नकार का लोप हो गया हो उससे परे अजादि उत्तर पद को नुट् का आगम हो ।

अनश्वः—न अश्वः (घोड़े से भिन्न) 'न अश्व सु' इस विग्रह में 'नञ्' सूत्र से समास, 'न लोपो नञः' सूत्र से न लोप, तस्मादिति सूत्र से अजादि उत्तर पद अश्व परे रहते, लुप्तनकारवान् 'अ' के आगे नुट् (न्) का आगम होकर 'अनश्वः' बना ।

नैकधेति—नैकधा (अनेक प्रकार से) यहाँ न के साथ एकधा का 'सुप्सुपा' सूत्र से केवल समास होता है । यदि यहाँ नञ् समास किया जाता, तो नकार का लोप होकर और नुट् का आगम होकर 'अनेकधा' रूप बनता ।

कुगतीति—कु, गति संज्ञक, और प्र आदि का समर्थ सुबन्त के साथ समास हो ।

कुपुरुष :—कुत्सितः पुरुषः—बुरा मनुष्य । यहाँ कु अव्यय का पुरुष सुबन्त के साथ समास होकर 'कुपुरुषः' बनेगा ।

(गति संज्ञक और प्र आदि के उदाहरण आगे दिये गये हैं, यद्यपि क्रिया के योग में प्रादि उपसर्गों की गति संज्ञा होती है तथापि इनके पृथक् ग्रहण का प्रयोजन यह है कि जहाँ इनका क्रिया के साथ योग न होगा वहाँ गति संज्ञा न होने से प्रादि के साथ समास न हो सकेगा जैसे 'सुपुरुषः' यहाँ 'सु' इस प्रादि का क्रिया के साथ योग न होकर सुबन्त पुरुषः के साथ योग है, यहाँ इसकी गति संज्ञा नहीं, अतएव 'सुपुरुषः' आदि प्रयोगों की सिद्धि के लिये ही यहाँ गति संज्ञक से पृथक् प्रादि का ग्रहण है)

ऊर्यादीति—ऊरी आदि, च्वि प्रत्ययान्त तथा डाच् प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के योग में गति संज्ञक होते हैं ।

ऊर्यादयः, च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रिया योगे गतिसंज्ञाः स्युः। ऊरीकृत्य। शुक्लो कृत्य। पटपटा कृत्य। सुपुरुषः।

(वा) प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया। प्रगत आचार्यः—प्राचार्यः।

(वा) अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया। अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे—

एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते।१।२।४४।।

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जन संज्ञं स्यात् न तु तस्य पूर्वनिपातः।

ऊरीकृत्य—(स्वीकार करके) यहाँ कृत्य-कृ धातु के योग में स्वीकारार्थ ऊरी शब्द की प्रकृत सूत्र से गति संज्ञा हुई है, अतः ऊरी इस गति संज्ञक का 'कुगतिप्रादयः' से कृत्वा के साथ समास होगा समास के फलस्वरूप 'समासेऽनञ् पूर्वे क्त्वो ल्यप् सूत्र से क्त्वा को ल्यप् आदेश होकर 'ऊरीकृत्य' रूप बनता है।

शुक्लीकृत्य—अशुक्लं शुक्लं कृत्वा (जो सफेद नहीं उसे सफेद बनाकर) यहाँ अभूततद्भाव (जो वैसा नहीं था उसका वैसा करना या होना) अर्थ में 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्य कर्तरि च्विः' सूत्र से च्वि प्रत्यय होकर उसका सर्वापहारिलोप हो जाता है 'अस्य च्वौ' सूत्र से शुक्लगत अकार को ईकार होकर शुक्ली रूप बनता है, अतः इस च्वि प्रत्ययान्त शब्द की प्रकृत सूत्र से कृत्वा के योग में गति संज्ञा होने से समास और फलतः क्त्वा को ल्यप् होकर उक्त रूप बनता है।

पटपटाकृत्य—पटत्-पटत् इति कृत्वा—(पट-पट करके), यहाँ 'पटत्' इस अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण शब्द से कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है। 'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्' सूत्र से डाच् परे रहते 'पटत्' को द्वित्व होकर पटत् पटत्+ डाच् (आ) कृ बनता है। डित् होने डाच् परे रहते द्वितीय 'पटत्' की 'अत्' इस टि का लोप होकर, पूर्व 'पटत्' के तकार और उत्तर पद के पकार दोनों के स्थान में पर रूप होकर पटपट्+आ='पटपटा' डाच् प्रत्ययान्त की कृत्वा इस क्रिया के योग में गति संज्ञा, समास, क्त्वा को ल्यप् होकर 'पटपटाकृत्य' यह रूप बनता है।

सुपुरुषः—शोभनः पुरुषः—(अच्छा पुरुष), यहाँ प्रादि 'सु' का पुरुष के साथ 'कुगतिप्रादयः' से समास होकर 'सुपुरुषः' बनता है।

(वा) प्रादय इति—प्र आदि का 'गत' आदि अर्थ में प्रथमान्त के साथ समास होता है।

प्राचार्यः—प्रगत आचार्यः—(प्रकृष्ट आचार्य) यहाँ 'प्र' का आचार्यः इस प्रथमान्त के साथ 'गत' अर्थ में समास होकर प्राचार्यः' बनता है।

(वा) अत्यादय इति—अति आदि का 'क्रान्त' आदि अर्थ में द्वितीयान्त के साथ समास हो।

एकविभक्तीति—विग्रह में जिस पद की एक (नियत) निश्चित विभक्ति होती है उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है, किन्तु उसका पूर्वनिपात नहीं होता।

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ।१।२।४८।

उपसर्जनं यो गो शब्दः, स्त्री प्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात् । अतिमालः ।

(वा) अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया । अवक्रुष्टः कोकिलया । अवकोकिलः ।

(वा) पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या । परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः ।

'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञक का पूर्व निपात किया गया है। अर्थात् अब तक उपसर्जन संज्ञा का फल पूर्व निपात था। पर इस सूत्र द्वारा की गई उपसर्जन संज्ञा का प्रयोजन अन्य कार्य है पूर्व प्रयोग करना नहीं ।)

गोस्त्रियोरिति—उपसर्जन संज्ञक जो शब्द, अथवा स्त्री प्रत्ययान्त शब्द, वह जिसके अन्त में हो उस प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है ।

अतिमालः—मालाम् अतिक्रान्तः (माला का जो अतिक्रमण कर गया हो) इस विग्रह में 'मालाम्' इस द्वितीयान्त के साथ क्रान्त अर्थ में अति का वार्तिक द्वारा समास, अति का पूर्व निपात, विभक्ति लोप, 'अतिमाला' इस दशा में 'नियत विभक्तिक-माला' शब्द की "एक विभक्ति' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा, गोस्त्रियोरिति सूत्र से उपसर्जन संज्ञक स्त्री प्रत्यान्त-अतिमाला के अन्त के आकार को ह्रस्व होने पर 'अतिमालः' रूप बनता है ।

(सूत्र विधान के अनुसार यहाँ माला शब्द नियत विभक्तिक है, क्योंकि किसी भी कारक के साथ प्रयुक्त होने पर—अतिक्रान्तः मालाम्, अतिक्रान्तेन मालाम् आदि विभिन्न विभक्तियों के साथ विग्रह करने पर भी 'मालाम्' शब्द नियत विभक्ति वाला अर्थात् द्वितीया विभक्ति में ही रहता है ।)

(वा) अवादय इति—अव आदि का क्रुष्ट आदि अर्थ में तृतीयान्त के साथ समास होता है ।

अवलोकिकलः—अवक्रुष्टः कोकिलया—कोकिल के द्वारा कूजित) यहाँ अव का कोकिला के साथ समास, पूर्व निपात, विभक्ति लोप, होकर अवलोकिला शब्द की उपसर्जन संज्ञा, गोस्त्रियोरिति सूत्र से आकार को ह्रस्व होकर 'अवकोकिलः' रूप बनता है ।

(वा) पर्यादय इति—परि आदि का ग्लान आदि अर्थों में चतुर्थ्यन्त के साथ समास हो ।

पर्यध्ययनः—परिग्लानः अध्ययनाय (पढ़ने के लिए थका हुआ) यहाँ परि का चतुर्थ्यन्त अध्ययनाय के साथ समास हुआ ।

(वा) निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः—निष्कौशाम्बिः।

तत्रोपपदं सप्तमी स्थम् ।३।१।९२।।

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपद संज्ञं स्यात्।

उपपदमतिङ् ।२।२।१९।।

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते, अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति-कुम्भकारः। अतिङ् किम्—मा भवान् भूत्, 'माङि लुङ्' इति सप्तमी निर्देशान् माङ् उपपदम्।

(वा) निरादय इति—निर् आदि का निष्क्रान्त आदि अर्थ में पञ्चम्यन्त के साथ समास हो।

निष्कौशाम्बिः—निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः (कौशाम्बी से निकला हुआ) यहाँ निर् का पञ्चम्यन्त कौशाम्बी से समास, पूर्व निपात, विभक्तिलोप, उपसर्जन संज्ञा, गोस्त्रियोरिति सूत्र से ईकार को ह्रस्व होकर निष्कौशाम्बिः'।

तत्रेति—सप्तम्यन्त पद—कर्मणि इत्यादि में वाच्य रूप से स्थित जो कुम्भ आदि, उसका वाचक शब्द उपपद संज्ञक हो, अर्थात् 'कर्मण्यण्' सूत्र में 'कर्मणि' यह सप्तम्यन्त पद है, इसमें कुम्भ आदि अर्थ वाच्य रूप में रहते हैं, क्योंकि अर्थ सदा अपने वाचक पद में वाच्य रूप में स्थित रहता है और वाचक पद अपने अर्थ में सदा वाचक रूप में स्थित रहता है अर्थात् शब्द और अर्थ में (शब्द और तद्बोध्य अर्थ 'वस्तु') में वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध रहता है अतः 'कर्मणि' इस वाचक शब्द में वाच्यत्वेन स्थित कुम्भ रूप अर्थ (वस्तु) है इसका वाचक शब्द 'कुम्भ' है, 'कुम्भं करोति' यहाँ यह 'करोति' क्रिया का कर्म भी है अतः इसकी उपपद संज्ञा होती है। अतएव वृत्तिकार ने "कर्मणि इत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि तद्वाचकं पदम् उपपद संज्ञं स्यात्" लिखा है।

उपपदमिति—उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ समास होता है, यह समास अतिङ् होता है अर्थात् तिङन्त पद के साथ नहीं होता।

कुम्भकारः—कुम्भं करोति—(घड़ा बनाने वाला) यहाँ पहिले द्वितीयान्त कुम्भम् उपपद रहते कृ धातु से 'कर्मण्यण्' सूत्र से अण् प्रत्यय, ऋकार को वृद्धि होकर कुम्भ अम् कार इस स्थिति में 'उपपदमतिङ' सूत्र से समास होगा, क्योंकि यहाँ 'कर्मण्यण्' इस सूत्र में स्थित 'कर्मणि' इस सप्तम्यन्त से बोध्य 'कुम्भ अम्' की तत्रेति सूत्र से उपपद संज्ञा है, समासत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा होने से विभक्ति लोप होकर 'कुम्भकार' बना इसका प्रथमैक बचन में 'कुम्भकारः' बनता है।

(वा) गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। व्याघ्री। अश्वक्रीती। कच्छपी, इत्यादि।

(यहाँ उत्तर पद-कार-सुबन्त नहीं है, कार इस कृदन्त प्रातिपदिक से सु आदि विभक्ति प्रत्यय आने के पूर्व ही यहाँ समास हो जाता है जैसा कि 'गति कारकेत्यादि' अग्रिम वार्तिक द्वारा निर्देश किया गया है। अतएव वृत्तिकार ने केवल 'समर्थेन समस्यते' कहा है 'समर्थेन सुबन्तेन' नहीं, अतएव यह समास उपपद समास कहलाता है।)

(यह नित्य समास है अतएव यहाँ 'कुम्भं करोति' यह अस्वपद विग्रह होता है 'कुम्भं कारः' ऐसा स्वपद विग्रह नहीं।)

अतिङ् किमिति—यह समास तिङन्त के साथ नहीं होता, ऐसा कहा गया है इसलिए ''मा भवान् भूत्' यहाँ समास नहीं होगा। यद्यपि यहाँ 'माङिलुङ्' इस सूत्र में 'माङि' यह सप्तम्यन्त पद बोध्य माङ् उपपद है, तथापि 'भूत्' (अभूत्) यह तिङन्त पद है अतः इसके साथ समास न होगा।

(वा) गतिकारकेति—गति संज्ञक, कारक, और उपपद को कृदन्त पदों के साथ, 'सुप्' आने के पूर्व ही समास हो।

व्याघ्री—(बाघिन) यहाँ 'व्याजिघ्रति' जो विशेष रूप से चारों ओर सूंघती हो; इस विग्रह में वि+आङ् पूर्वक घ्रा धातु से 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से क प्रत्यय, कित् होने से धातु के आकार का लोप, वि+आ+घ्र+अ=व्या+घ्र इस दशा में 'घ्र' के आगे सुप् आने के पूर्व 'वार्तिक' से गति समास हुआ क्योंकि यहाँ घ्रा धातु के योग में 'वि+आ' की गति संज्ञा है। तब व्याघ्र शब्द से (इसके जाति वाचक होने के कारण) 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर 'व्याघ्री' शब्द बनता।

यहाँ यदि वार्तिक के अभाव में 'घ्र' के आगे सुप् आने के बाद समास होता तो सुप् आने के पूर्व ही 'घ्र' शब्द से लिङ्ग बोधक प्रत्यय 'टाप्' पहिले आ जाता क्योंकि 'स्वार्थ द्रव्य लिङ्ग संख्याकारकाणि प्रातिपदिकार्थः' के अनुसार संख्या कारक बोधक सुप् की अपेक्षा प्रथम परिगणित होने से लिङ्ग अन्तरङ्ग है अतः 'घ्र' शब्द से सुप् आने के पूर्व ही लिग बोधक प्रत्यय पहिले हो जायेगा। केवल 'घ्र' शब्द जाति वाचक नहीं, अतः इससे जातेरस्त्रीत्यादि सूत्र से ङीष् प्रत्यय तो सम्भव न हो सकेगा अतः लिग बोधक प्रत्यय टाप् हो जायेगा फिर सुबुत्पत्ति और समास करने पर व्याघ्रा यह अनिष्ट रूप बनेगा अतः सुप् आने के पूर्व ही समास विधान किया गया है जिससे कि व्या+घ्र का समास होकर व्याघ्र यह जाति वाचक शब्द बन सके और फलतः ङीष् प्रत्यय होकर व्याघ्री यह शब्द बन जाय तब इससे सु प्रत्यय आये।

तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याऽव्ययादेः ।५।४।८६।।

संख्याव्ययादेरंगुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात् । द्वे अङ्गुली प्रमाण मस्य-द्व्यंगुलम् । निर्गतमङ्गुलिभ्यः निरङ्गुलम् ।

अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ।५।४।८७।।

एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्संख्याव्ययादेः । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् ।

अश्वक्रीती—अश्वेन क्रीता—(घोड़े के द्वारा खरीदी गई) यहाँ "कर्तृकरणे कृता बहुलम्" से 'अश्व टा' इस करण कारक का क्रीत इस कृदन्त के साथ, सुबुत्पत्ति के पूर्व उक्त वार्तिक के सामर्थ्य से समास हुआ, अश्वक्रीत इस शब्द से 'क्रीतात्करण पूर्वात्' इस सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर अश्वक्रीती बन जाने पर सु प्रत्यय, उसका लोप होकर अश्वक्रीती प्रयोग बनता है। यदि यहाँ सुबुत्पत्ति के बाद समास होता तो पहिले लिंग बोधक प्रत्यय टाप् हो जाने पर 'अश्वक्रीता' से फिर अकारान्त न होने के कारण ङीष् प्रत्यय न होता ।

कच्छपी—कच्छेन पिबति (जो कच्छ-तीर या किनारा से पीती है, कच्छपी) यहाँ 'सुपिस्थः' सूत्र में 'सुपि' इस योग-विभाग से सुबन्त कच्छ उपपद रहते पा धातु से क प्रत्यय, आकार लोप, कच्छ टा+प इस स्थिति में सुबुत्पत्ति से पूर्व प के साथ 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' से समास, विभक्ति लोप होने पर कच्छप इस जाति बाचक से 'जातेरित्यादि सूत्र से ङीष् होकर कच्छपी रूप बना, यहाँ व्याघ्री के समान यदि सुबुत्पत्ति के बाद समास होता तो लिंग बोधक प्रत्यय टाप् पहिले हो जाता और फिर अकारान्त न रहने से जाति लक्षण ङीष् न हो पाता ।

तत्पुरुषस्येति—संख्या वाचक और अव्यय जिसके आदि में हों और अंगुलि शब्द अन्त में हो ऐसे तत्पुरुष समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो ।

द्व्यङ्गुम्—द्वे अंगली प्रमाणमस्य (दो अङ्गुल लम्बा) यहाँ "द्वि औ अङ्गुलि औ" इस विग्रह में 'प्रमाणम्' इस तद्धितार्थ में 'तद्धितार्थेत्यादि सूत्र से समास, विभक्ति लोप, 'द्व्यङ्गुलि' इस तत्पुरुष से प्रकृत सूत्र द्वारा अच् प्रत्यय, 'यस्येति च' से इकार लोप होकर प्रथमैक वचन में नपुं० लिंग में 'द्व्यङ्गुलम्' रूप बना ।

निरङ्गुलम्—निर्गतम् अंगुलिभ्यः—(अङ्गुलियों से निकला हुआ) इस विग्रह में निर् का अङ्गुलि के साथ 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' से समास, विभक्तिलोप, निरङ्गुलि तत्पुरुष से अच् प्रत्यय, इकार लोप होकर 'निरङ्गुलम्' रूप बनता है ।

अहरिति—अहः, सर्व, एकदेश, संख्यात, और पुण्य इन शब्दों से, संख्या और अव्यय से परे रात्रि शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय हो ।

अहर्ग्रहणमिति—सूत्र में अहन् शब्द का ग्रहण द्वन्द्व समास के लिये है अर्थात्

रात्राह्नाहाः पुंसि ।२।४।२९।।

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव । अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः । सर्वरात्रः, संख्यातरात्रः ।

(वा) संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् । द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् ।

अहन् और रात्रि शब्द का द्वन्द्व समास ही होता है, तत्पुरुष नहीं। पर इस सूत्र से अच् प्रत्यय वहाँ भी होता है। शेष तत्पुरुष समास हैं।

रात्रेति—रात्र, अह्न, और अहः ये शब्द जिनके अन्त में हों, वे द्वन्द्व व तत्पुरुष पुल्लिग में हों।

अहोरात्रः—अहश्च रात्रिश्च अनयोः समाहारः (दिन और रात का समुदाय) यहाँ 'अहन् सु रात्रि सु' इस विग्रह में समाहार द्वन्द्व समास होकर 'अहः' इति सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय, इकार लोप, नकार को 'अहन्' सूत्र से रुत्व, 'हशि च' से उत्व, गुण, अहोरात्र बना, यहाँ "रात्रेति सूत्र से पर होने के कारण 'स नपुंसकम्' से प्राप्त नपुंसकत्व एवं अपवादत्वात् परवल्लिंगता को भी बाध कर पुल्लिग होने से अहोरात्रः' रूप बनता है।

सर्वरात्रः—सर्वा रात्रयः (सब रातें) या सर्वा चासौ रात्रिश्च इस विग्रह में सर्वा शब्द का रात्रि शब्द के साथ "पूर्व-कालैक सर्वजरत्पुराणेत्यादि" सूत्र से कर्मधारय तत्पुरुष समास, पुंवत्कर्मधारयेत्यादि सूत्र से सर्वा शब्द को पुंवद्भाव होकर तथा 'अहः इति, सूत्र से अच् प्रत्यय होकर सर्वरात्रि+अ इस स्थिति में 'यस्येति च' से इकार लोप, रात्रेति सूत्र से पुल्लिग, सर्वरात्रः रूप बना।

संख्यातरात्र—संख्याता रात्रिः (गिनी हुई रात) इसकी सिद्धि भी सर्वरात्रः की भाँति होगी।

अहः इति सूत्र में एक देश का अर्थ है एक अंश या भाग, इसका उदाहरण होगा—'पूर्वरात्र': पूर्वं रात्रेः (रात्रि का पूर्व भाग) यहाँ पूर्वापरेति सूत्र से एक देश समास होकर, अहः इति सूत्र से अच् प्रत्यय रात्रेति सूत्र से पुल्लिग होकर 'पूर्वरात्रः' बनेगा।

वार्तिक-संख्येति—संख्या पूर्वक रात्र शब्द नपुंसक लिंग होता है।

द्विरात्रम्—द्वयोः रात्र्योः समाहारः (दो रात्रियों का समुदाय) इस विग्रह में द्वि शब्द का रात्रि शब्द के साथ, समाहार अर्थ में 'तद्धितार्थेत्यादि सूत्र से समास, अहः इति सूत्र से अच् प्रत्यय, इकार लोप, द्विरात्र शब्द से रात्रेति सूत्र से पुल्लिग प्राप्त था इसका इस वार्तिक से बाध होकर नपुंसक लिंग हुआ, तब 'द्विरात्रम्' रूप बना।

त्रिरात्रम्—तिसृणां रात्रीणां समाहारः—(तीन रातों का समुदाय) इसकी भी सिद्धि द्विरात्रम् की भाँति होगी।

राजाहः सखिभ्यष्टच् ।५।४।९१।।

एतदन्तात् तत्पुरुषाद् टच् स्यात् । परमराजः ।

आन्महतः समानाधिकारण जातीययोः ।६।३।४६।।

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे । महाराजः । प्रकार वचने जातीयर्—महाप्रकारो महाजातीयः ।

द्वयष्टनः संख्यायाम बहुव्रीह्यशीत्योः ।६।३।४७।।

आत्स्यात् । द्वौ च दश च-द्वादश । अष्टाविंशतिः ।

राजेति—राजन्, अहन्, सखि अन्त वाले तत्पुरुष शब्दों से समासान्त टच् प्रत्यय हो ।

परमराजः—परमश्चासौ राजा च—(श्रेष्ठ राजा) यहाँ परम शब्द का राजन् शब्द के साथ (विशेषण विशेष्य का) कर्मधारय तत्पुरुष समास, तथा प्रकृत सूत्र से टच् (अ) प्रत्यय होकर परमराजन् + अ इस स्थिति में 'न स्तद्धिते' सूत्र से 'अन्' इस 'टि' का लोप होकर प्र० एक व० में परमराजः रूप बनता है ।

आन्महत इति—महत् शब्द को आकार अन्तादेश हो, समानाधिकरण उत्तरपद और जातीयर् प्रत्यय परे रहते ।

महाराजः—महान् चासौ राजा च (बड़ा राजा) इस विग्रह में महत् और राजन् का समानाधिकरण समास, प्रकृत सूत्र से महत् के तकार को आकारादेश होकर पूर्ववत् 'महाराजः' रूप बनता है ।

महाजातीयः—महा प्रकारः (बड़ा सा) यहाँ महत् शब्द से 'प्रकार वचने जातीयर्' से पहिले जातीयर् प्रत्यय हुआ तब प्रकृत सूत्र से आकारान्ता देश होकर 'महाजातीयः' रूप बना है ।

(वास्तव में महाजातीयः पद तद्धितान्त है, समस्त पद नहीं, इस प्रकरण में यह उदाहरण केवल उसका आकारान्तादेश दिखाने के लिए दिया गया है ।)

द्वयष्टन इति—द्वि और अष्टन् शब्द को आकार अन्तादेश हो, संख्या अर्थ में, बहुव्रीहि समास में और अशीति शब्द परे रहते न हो ।

द्वादश—द्वौ च दश च (दो और दश अर्थात् बारह) इस विग्रह में द्वि का दशन् के साथ द्वन्द्व समास, प्रकृत सूत्र से द्वि के इकार को आकारान्ता देश, द्वा दशन् शब्द से प्र० एक व० में सु प्रत्यय, उसका लोप, न् का लोप होकर द्वादश बनता है ।

अष्टाविंशतिः—अष्टौ च विंशतिश्च (आठ और बीस अर्थात् अट्ठाइस) यहाँ भी द्वन्द्व समास, आकारान्त देश होकर प्र० एक व० में अष्टाविंशतिः रूप बनता है ।

त्रेस्त्रयः ।६।३।४८।।

त्रयोदश, त्रयोविंशतिः, त्रयस्त्रिंशत् ।

परवल्लिगं द्वन्द्व तत्पुरुषयोः ।२।४।२३।।

एतयोः पर पदस्यैव लिंगं स्यात् । कुक्कुट मयूर्याविमे ।

मयूरी कुक्कुटाविमौ । अर्ध पिप्पली ।

(व) द्विगु प्राप्तापन्नालं पूर्व गति समासेषु प्रतिषेधो वाच्यः ।

पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः—पुरोडाशः ।

त्रेरिति—त्रिशब्द को त्रयस् (आदेश) हो संख्या वाची उत्तर पद परे रहते किन्तु बहुव्रीहि समास में तथा अशीति शब्द परे रहते नहीं होता ।

त्रयोदश—त्रयश्च दश च (तीन और दश अर्थात् तेरह) यहाँ भी पूर्ववत् द्वन्द्व समास, प्रकृत सूत्र से त्रि को त्रयस् आदेश, सकार को रुत्व एवं उत्व, गुण होकर त्रयोदश रूप बनता है ।

इसी प्रकार त्रयश्च विंशतिश्च त्रयोविंशतिः और त्रयश्च त्रिंशत् च त्रयस्त्रिंशत् रूप बनते हैं ।

परवदिति—द्वन्द्व व तत्पुरुष समास में परपद के समान लिंग होता है ।

कुक्कुट मयूर्यौ—इमे—(ये मुर्गा और मोरनी) कुक्कुटश्च मयूरी च इस विग्रह में द्वन्द्व समास होकर, परपद—मयूरी-स्त्रीलिंग है अतः प्रकृत सूत्र के अनुसार समस्त पद से भी स्त्रीलिंग ही हुआ । इसी स्त्रीलिंग के बताने के लिए ही 'इमे' शब्द का आगे प्रयोग किया गया है ।

मयूरी कुक्कुटौ-इमौ-यहाँ मयूरी च कुक्कुटश्च इस विग्रह में द्वन्द्व समास करके, परपद कुक्कुट के पुल्लिंग होने के कारण समस्त पद से भी पुल्लिंग हुआ, इसीलिए 'इमौ' द्वारा पुल्लिंग का निर्देश किया गया है ।

अर्ध पिप्पली—अर्ध पिप्पल्याः (पिप्पली का अर्ध भाग) यहाँ 'अर्ध नपुंसकम्' सूत्र से तत्पुरुष समास होने पर प्रकृत सूत्र से परपद पिप्पली के स्त्रीलिंग होने से समस्त पद भी स्त्रीलिंग हुआ ।

'वार्तिक'-द्विगुप्राप्तेति—द्विगु समास और जिस समास में प्राप्त आपन्न तथा अलं शब्द पूर्व पद में है, तथा गति समास में परपद के समान लिंग नहीं होता ।

पञ्चकपालः—पुरोडाशः—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः—(पांच कपालों में बना हुआ पुरोडाश) यहाँ इस विग्रह में तद्धितार्थ में 'तद्धितार्थेत्यादि सूत्र से द्विगु समास, विभक्ति लोप होकर 'पञ्चकपाल' शब्द बना, यहाँ परपद-कपाल नपुंसक लिंग है किन्तु वार्तिक के सामर्थ्य से समस्त पद भी नपुंसक लिंग नहीं हुआ अपितु विशेष्य – पुरोडाशः के पुल्लिंग होने से समस्त पद से भी पुल्लिंग ही हुआ ।

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ।२।२।४।।

एतौ समस्येते । अकारश्चानयोरन्तादेशः । प्राप्तो जीविकां प्राप्त-जीविकः । आपन्न जीविकः । अलं कुमार्यै-अलं कुमारिः । अतएव ज्ञापकात् समासः । निष्कौशाम्बिः ।

प्राप्तेति—प्राप्त और आपन्न शब्दों का द्वितीयान्त के साथ समास हो और इनके अन्त को अकार आदेश हो ।

प्राप्तजीविकः—प्राप्तः जीविकाम्—जिसे जीविका मिल गई हो । यहाँ प्रकृत सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ । विग्रह में नियत बिभक्तिक होने से जीविका शब्द की 'एक विभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा और गोस्त्रियो रूपसर्जनस्य' सूत्र से उसे ह्रस्व होने पर 'प्राप्तजीविक' यहाँ पूर्व सूत्र से परपद जीविका के स्त्रीलिंग होने के कारण, समस्त पद से भी स्त्रीलिंग प्राप्त था, वार्तिक से उसका निषेध होकर विशेष्यानुसार पुंल्लिग हुआ ।

आपन्नजीविकः—आपन्नो जीविकाम् (जीविका को प्राप्त) यहाँ भी सभी कार्य पूर्ववत् होंगे ।

अलंकुमारिः—अलं कुमार्यै (कुमारी के लिए योग्य) इस विग्रह में तत्पुरुष समास होता है, कुमारी की उपसर्जन संज्ञा होकर ह्रस्व होता है, यहाँ परपद कुमारी के स्त्रीलिंग होने से समस्त पद से भी स्त्रीलिंग प्राप्त था, वार्तिक से उसका निषेध होकर विशेष्यानुसार पुंल्लिग हुआ ।

अतएवेति—उपर्युक्त वार्तिक में अलंपूर्वक समास में परपद के समान लिंग होने का निषेध किया गया है, इससे यह पता चलता है कि अलम् का भी सुवन्त के साथ समास होता है, यद्यपि काशिकाकार ने यहाँ 'पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या' इस वार्तिक के अनुसार समास माना है ।

निष्कौशाम्बिः—यहाँ प्रादि समास होने से परपद कौशम्बी-स्त्रीलिंग है अतः समस्त पद से भी स्त्रीलिंग प्राप्त था, उसका वार्तिक द्वारा निषेध होकर विशेष्यानुसार पुंल्लिग हुआ, यहाँ भी उपसर्जन संज्ञा और ईकार को ह्रस्व होकर 'निष्कौशम्बिः' पुंल्लिग रूप होगा ।

(यद्यपि यहाँ 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या) से निरादि समास ही है तथापि वार्तिक में 'गति समास' ग्रहण करने के कारण इसे उसका ही उदाहरण सिद्ध करने के लिए यहाँ 'प्रादि' समास मानना चाहिए । वार्तिकस्थ गतिसमास प्रादि का उपलक्षण है, क्योंकि मुख्य गति समास में लिंग की चर्चा असम्भव ही है अतएव 'गति समास' में 'गतेः समासो येन' यह विग्रह करके 'कुगतिप्रादयः से यहाँ प्रादि समास मानना ही समीचीन है ।)

अधर्चाः पुंसि च ।

अधर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः । अर्धर्चः । अर्धर्चम् । एवं ध्वजतीर्थ शरीर मण्डपीयूष देहाकुंश पाश सूत्रादयः । सामन्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ।

अधर्चा इति —अर्धर्च आदि शब्द पुल्लिग एवं नपुंसक लिंग दोनों में होते हैं।

अर्धर्च—ऋचः अर्धम् (ऋचा का आधा भाग) इस विग्रह में (अर्धं नपुंसकम्' से समास 'ऋक् पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से 'अ' प्रत्यय होकर अर्धर्च यह अकारान्त तत्पुरुष बनता है, यहाँ ऋच् शब्द स्त्रीलिंग है, समस्त पद से भी स्त्रीलिंग प्राप्त था, पर प्रकृत सूत्र से यहाँ पुल्लिग 'अर्धर्चः' और नपुंसक लिंग 'अर्धर्चम्' दोनों रूप होंगे।

एवमिति—इसी प्रकार ध्वज, तीर्थ, शरीर, मण्ड, पीयूष, देह, अंकुश, पात्र सूत्र आदि शब्द दोनों लिंगों में होते हैं।

सामान्य इति —जहाँ लिंग विशेष की प्रतीति नहीं होती, वहाँ सामान्यतः नपुंसक लिंग होता है, जैसे 'मृदु पचति, प्रातः कमनीयम्' यहाँ मृदु और कमनीयम् में सामान्यतः नपुंसक लिंग है।

इति तत्पुरुष समासः

अथ बहुव्रीहि समासः

शेषो बहुव्रीहिः ।२।२।२३॥

अधिकारोऽयं प्राग् द्वन्द्वात् ।

अनेकमन्य पदार्थे ।२।२।२४॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ।

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ।२।२।३५॥

सप्तम्यन्तं विशेषणञ्च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । अतएव ज्ञापनाद् व्यधिकरण पदो बहुव्रीहिः ।

हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् ।६।३।६॥

शेष इति—द्वन्द्व से पूर्व तक इस बहुव्रीहि का अधिकार है । 'उक्तादन्यः शेषः के अनुसार यहाँ शेष पद से प्रथमान्त पद का समास मुख्यतया लिया जायेगा, क्योंकि द्वितीया से सप्तमी तक समास बताया जा चुका है ।

अनेकमिति—अन्य पद के अर्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्त पदों का समास हो विकल्प से, और वह समास बहुव्रीहि हो ।

सप्तमीति—सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि समास में पूर्व प्रयोग हो ।

अतएवेति—प्रकृत सूत्र में सप्तम्यन्त पद का पूर्व प्रयोग कहा गया है, इसी से यह सिद्ध होता है कि व्यधिकरण पदों का अर्थात् भिन्न विभक्तिक पदों का भी बहुव्रीहि समास होता है अर्थात् जहाँ सभी प्रथमान्त पदों का समास होगा वहाँ वह समानाधिकरण बहुव्रीहि कहलायेगा जैसे प्राप्तम् उदकम् यं स प्राप्तोदकः यहाँ दोनों पद प्रथमान्त है पर जहाँ एक पद प्रथमान्त और दूसरा अन्य विभक्तिक होगा वहाँ व्यधिकरण बहुव्रीहि होगा जैसे कण्ठे कालो यस्य यहाँ एक पद सप्तम्यन्त है ।

हलदन्तादिति – हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् (लोप न) हो, संज्ञा अर्थ में ।

हलन्ताद् अदन्तात् सप्तम्या अलुक्। कण्ठेकालः। प्राप्त मुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशु रुद्रः। उद्धृतौदना स्थाली। पीताम्बरो-हरिः। वीरपुरुषको ग्रामः।

(वा) प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तर पदलोपः। प्रपतति पर्णः प्रपर्णः।

कण्ठेकालः—(नीलकण्ठ-पक्षी या शिव जी) कण्ठे कालो यस्य सः इस लौकिक एवं 'कण्ठ ङि काल सु' इस अलौकिक विग्रह में 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' में सप्तमी ग्रहण रूप प्रमाण से व्यधिकरण बहुव्रीहि समास हुआ और इसी से सप्तम्यन्त कण्ठे का पूर्व प्रयोग हुआ, समासत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा होने से ङि और सु विभक्तियों का लोप प्राप्त हुआ, हलदन्तादिति सूत्र से सप्तमी के लोप का निषेध होने से केवल सु का लोप होकर 'कण्ठेकाल' इस अकारान्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में कण्ठेकालः, रूप बनता है।

'अनेक मन्य पदार्थे' सूत्र के अनुसार अनेक प्रथमान्तों का, जो कि अन्यार्थ में अन्य विभक्तियों के अर्थ में वर्तमान हों, समास होता है, अर्थात् यह समास असमानाधिकरण बहुव्रीहि होता है, अन्यार्थ में वर्तमान कहने से यह समास द्वितीयादि के अर्थ में होगा प्रथमा विभक्ति के अर्थ में नहीं क्योंकि प्रथमा विभक्ति तो समास के अन्दर ही है, अन्य नहीं। जिसके अर्थ में यह होता है उसका निर्देश विग्रह में यत् शब्द के द्वारा किया जाता है। द्वितीयार्थ से लेकर सप्तम्यर्थ तक के उदाहरण नीचे दिये गये हैं—

प्राप्तोदको ग्रामः—प्राप्तम् उदकं यं स (जिसको जल प्राप्त हो गया है, ऐसा ग्राम) यहाँ द्वितीयार्थ में प्राप्त और उदक प्रथमान्तों का अनेकेति सूत्र से समास, विभक्ति लोप होकर उक्त रूप बनता है। (बहुव्रीहि समास के शब्द प्रायः विशेषण होते हैं अतः समस्त पद में लिंग वचन विशेष्यानुसार होते हैं।)

ऊढरथोऽनड्वान्—ऊढो रथो येन स (जिसने रथ चलाया है ऐसा बैल) यहाँ तृतीयार्थ में अनेकेति सूत्र से समास होकर उक्त रूप बना है।

उपहृतपशु रुद्रः—उपहृतः पशुः यस्मै स (जिसे पशु भेंट किया गया है ऐसे शिव जी) यहाँ चतुर्थ्यर्थ में समास है।

· **उद्धृतौदना स्थाली**—उद्धृतम् ओदनं यस्याः सा (जिससे चावल निकाल लिये गये हैं ऐसी स्थाली) यहाँ पञ्चम्यर्थ में समास है।

पीताम्बरो हरिः—पीतम् अम्बरं यस्य स (जिसका वस्त्र पीला हो ऐसे हरि) यहाँ षष्ठ्यर्थ में समास है।

वीर पुरुषको-ग्रामः—वीराः पुरुषा यस्मिन् स (जिसमें वीर पुरुष हों ऐसा ग्राम) यहाँ सप्तम्यर्थ में समास होकर समसान्त कप् प्रत्यय हुआ है।

वार्तिक-प्रादिभ्य इति—प्र आदि से परे धातु से बना हुआ जो शब्द तदन्त

(वा) नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। अविद्यमानः पुत्रः अपुत्रः।

स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु।६।३।३४।।

उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः निपातनात् पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथा भूतस्य स्त्रीवाचक शब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात्। समानाधिकरणे स्त्री लिङ्गे उत्तर पदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः—चित्रगुः। रूपवद्भार्यः। अनूङ् किम्-वामोरूभार्यः। पूरण्यां तु—

का अन्य पद के साथ समास होता है और पूर्वपद के अन्तर्गत उत्तरपद धातुज-धातु से बने हुए शब्द का लोप होता है, विकल्प से।

प्रपर्णः—प्रपतितानि पर्णानि यस्मात् स (जिससे पत्ते गिर गये हैं ऐसा वृक्ष) यहाँ 'प्र' से परे धातुज शब्द 'पतित' है, तदन्त शब्द-प्रपतित का पर्ण के साथ समास हुआ और इसी से 'पतित' का लोप विकल्प से होने पर प्रपर्णः तथा प्रपतितपर्णः ये दो रूप बनते हैं।

वार्तिक-नञ् इति – नञ् से परे विद्यमानतार्थ वाचक जो पद तदन्त का अन्य पद के साथ समास हो और विकल्प से विद्यामानार्थक शब्द का लोप हो।

अपुत्रः – अविद्यमानः पुत्रो यस्य स-जिसका पुत्र विद्यमान न हो, यहाँ नञ् से पर विद्यमान शब्द है तदन्त अविद्यमान पद का पुत्र के साथ समास, विद्यमान पद का विकल्प से लोप होने पर अपुत्रः और अविद्यमानपुत्रः रूप बनते हैं।

स्त्रिया इति—प्रवृत्तिनिमित्त समान होने पर जो शब्द उक्तपुंस्क है और उससे पर ऊङ् प्रत्यय नहीं है, ऐसे स्त्रीवाचक शब्द का पुल्लिग वाचक के समान रूप हो जाता है समानाधिकरण, स्त्रीलिंग, उत्तर पद परे होने पर किन्तु पूरणी संख्या प्रथमा आदि और प्रिया आदि शब्द परे होने पर नहीं।

सूत्र में 'भाषितपुंस्कादनूङ्' यह एक समस्त पद है। जिसका अर्थ है—उक्त पुंस्क शब्द से परे जहाँ ऊँङ् प्रत्यय नहीं है। 'भाषितपुंस्क' यह पूर्वपद है और 'अनूङ्' यह उत्तर पद है, पूर्व पद की पञ्चमी विभक्ति का समास होने पर भी निपातन से लोप नहीं हुआ है। अनूङ्' इस उत्तर पद में बहुव्रीहि समास है—'ऊङ्: अभावः यस्याम् (जिसमें ऊङ् का अभाव हो) इस प्रकार 'भाषितपुंस्कादनूङ्' इस समस्त पद के आगे षष्ठी विभक्ति है क्योंकि यह शब्द 'स्त्रियाः' का विशेषण है, पर इस षष्ठी का भी निपातन से लोप हो गया है अतएव इसका अर्थ होगा—भाषित पुंस्क शब्द से परे ऊङ् प्रत्यय रहित जो स्त्रीवाचक शब्द।

अप्पूरणीप्रमाण्योः ।५।४।११६।।

पूरणार्थं प्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिङ्गं तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात् । कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणी पञ्चमा रात्रयः । स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः । अप्रियादिषु किम्—कल्याणीप्रियः' इत्यादि ।

भाषित पुंस्क का अर्थ है—'उक्त पुंस्क'—इसी का अर्थ वृत्तिकार ने 'तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात् पर' यह अर्थ किया है, अर्थात् प्रवृत्तिनिमित्त—प्रयोग का कारण अर्थात् जो शब्द समान निमित्त को लेकर पुल्लिग तथा अन्य लिगों में प्रयुक्त होता है वह भाषितपुंस्क कहलाता है ।

चित्रगुः—चित्रा गावो यस्य—(जिसके चितकवरी गायें हो) यहां चित्रा और गो इन प्रथमान्तों का षष्ठ्यर्थ में समास, विभक्ति लोप होकर प्रकृत सूत्र से स्त्रीवाचक चित्रा को पुंवद्भाव होगा जिसका फल स्त्रीलिंग बोधक टाप् प्रत्यय की निवृत्ति हो जायेगी, चित्र रह जायगा (यहां चित्रा शब्द चित्रत्व के कारण पुलिंग स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग में भी प्रयुक्त होता है अतएव यह समान प्रवृत्तिनिमित्त वाला भाषित-पुंस्क स्त्रीवाचक शब्द है, इसमें ऊङ् प्रत्यय भी नहीं है; गो पद में भी प्रथमा विभक्ति होने से समानाधिकरण, तथा गो शब्द स्त्रीलिंग भी है तथा यहां उत्तर पद गो, पूरणी संख्या (प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि पूरण प्रत्ययान्त) तथा प्रिया आदि भी नहीं है, 'चित्रगो' इस स्थिति में 'गोस्त्रियोः' सूत्र से गो के ओ को 'उ' ह्रस्व होगा । चित्रगु इस प्रातिपदिक से चित्रगुः यह प्रथमा विभक्ति का रूप बनेगा ।

रूपवद्भार्यः—रूपवती भार्या यस्य (जिसकी भार्या रूपवती हो) यहां समास होने पर प्रकृत सूत्र से 'रूपवती' शब्द को पुंवद्भाव होकर, रूपवद् तथा भार्या के आकार को 'गोस्त्रियोः' से ह्रस्व लेकर रूपवद्भार्य इस प्रातिपदिक से रूपवद्भार्यः रूप बनता है ।

अनूङ् किमिति—सूत्र के अनुसार ऊङ् प्रत्ययान्त स्त्रीवाचक शब्द को पुंवद्भाव नहीं होता अतः "वामोरूः भार्या यस्य (सुन्दर उरुओं वाली जिसकी भार्या हो) यहां 'वामोरू' शब्द में ऊङ् प्रत्यय है अतः भार्या के साथ समास होने पर पुंव-द्भाव नहीं होता, ह्रस्व होकर वामोरूभार्य से वामोरूभार्यः बनता है।

पूरणी संख्या परे होने पर तो—

अप्पूरणीति—पूरणार्थक प्रत्यायान्त जो स्त्रीलिंग शब्द तदन्त तथा प्रमाणी शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय हो ।

कल्याणीपञ्चमाः रात्रयः—कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम्—जिन रात्रियों में पाँचवीं रात कल्याणदायिनी हो । यहां उत्तरपद—पञ्चमी । पूरणार्थ प्रत्ययान्त है, इसलिए पुंवद्भाव नहीं हुआ तब प्रकृत सूत्र से अप् (अ) प्रत्यय होकर 'यस्येति च'

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच् ।५।४।११३॥

स्वाङ्गवाचि सक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात् । दीर्घसक्थः । जलजाक्षी स्वाङ्गात् किम् – दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६॥ इति वक्ष्यमाणोऽच् ।

द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः ।५४।११५॥

सूत्र से ईकार का लोप, स्त्रीत्व विवक्षा में टाप्, प्रथमा वि० में कल्याणीपञ्चमा रूप बना।

स्त्रीप्रमाणः—स्त्री प्रमाणी यस्य (जिसे स्त्री प्रमाण हो) यहाँ भी प्रमाणी-शब्दान्त होने से पुंवद्भाव न होगा, तब अप्, यस्येति च, ईकार लोप होकर 'स्त्री प्रमाणः' रूप बनता है।

अप्रियादिष्विति—'स्त्रियाः पुंवद्भाषित०' सूत्र के अनुसार प्रिया आदि शब्द परे होने पर पुंवद्भाव नहीं होता अतः यहाँ कल्याणी प्रिया यस्य स इस विग्रह में प्रिया शब्द के उत्तर पद होने के कारण पुंवद्भाव न होगा, उत्तर पद को 'गोस्त्रियोः' से ह्रस्व होकर 'कल्याणी प्रियः' रूप बनेगा।

बहुव्रीहाविति—जिसके अन्त में स्वाङ्गवाची सक्थि, और अक्षि शब्द हों ऐसे बहुव्रीहि से समासान्त षच् प्रत्यय हो।

दीर्घसक्थः—दीर्घे सक्थिनी यस्य (जिसके ऊरु बड़े हों) यहाँ समास होने पर प्रकृत सूत्र से षच् (अ) प्रत्यय, यस्येति च इकार लोप, दीर्घसक्थ से प्र० एक० में 'दीर्घसक्थः' रूप बनता है।

जलजाक्षी—जलजे इव अक्षिणी यस्याः सा (जिसकी आँखें कमल के समान हों) यहाँ समास होकर प्रकृत सूत्र से षच् प्रत्यय यस्येति चेति' इकार लोप, जलजाक्ष से, प्रत्यय के षित् होने के कारण 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष्, होकर उक्त रूप बना है।

स्वाङ्गात्किमिति—प्राणी में स्थित अंग, स्वाङ्ग कहलाता है, अतः मूर्ति आदि के अंग, स्वांग न कहे जायेंगे, प्रकृत सूत्र स्वांगवाची सक्थि तथा अक्षि से षच् प्रत्यय करता है, अतः—

दीर्घसक्थि—शकटम्—यहाँ षच् न होगा क्योंकि यहाँ सक्थि स्वांगवाची न होकर शकट—'गाड़ी' के अंग का वाची है। एवं **स्थूलाक्षा** वेणुयष्टिः यहाँ भी स्थूले अक्षिणी यस्याः सा जिसकी बड़ी-बड़ी आँखें हों ऐसी बांस की छड़ी) अक्षि शब्द स्वांग वाची नहीं अतः षच् प्रत्यय न होकर 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' इस अग्रिम सूत्र से अच् प्रत्यय होकर 'यस्येति च' से इकार लोप होकर स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् 'स्थूलाक्षा' बनता है।

द्वित्रिभ्यामिति—द्वि और त्रि से परे मूर्धन् शब्द को समासान्त ष प्रत्यय हो, बहुव्रीहि समास में।

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्यात्, बहुव्रीहौ । द्विमूर्धः । त्रिमूर्धः ।

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ।५।४।११७।।

आभ्या लोम्नोऽप्स्याद् बहुव्रीहौ । अन्तर्लोमः । बहिर्लोमः ।

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ।५।४।१३८।।

हस्त्यादिवर्जिता दुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद् बहुव्रीहौ । व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्यः किम्—हस्तिपादः । कुसूलपादः ।

संख्यासु पूर्वस्य ।५।४।१४०।।

द्विमूर्धः—द्वौ मूर्धानौ यस्य (जिसके दो सिर हों) यहाँ बहुव्रीहि समास, प्रकृत सूत्र से ष (अ) प्रत्यय, 'नस्तद्धिते' से अन् टि का लोप 'द्विमूर्ध इस अकारान्त समस्त शब्द से 'द्विमूर्धः' बनता है ।

त्रिमूर्धः—त्रयो मूर्धानः यस्य—पूर्ववत् ।

अन्तरिति—अन्तर् और वहिर, से परे लोमन् शब्द को समासान्त अप् प्रत्यय हो, बहुव्रीहि समास में ।

अन्तर्लोमः—अन्तर् अन्तर्गतानि लोमानि यस्य (जिसके लोम भीतर हों) समास प्रकृत सूत्र से अप् प्रत्यय, 'अन्' इस टि का लोप, अन्तर्लोम' इस अकारान्त शब्द से प्र० एक व० में उक्त रूप बनता है ।

बहिर्लोमः—बहिर्गतानि लोमानि यस्य (जिसके लोम बाहर हों) इसकी भी सिद्धि पूर्ववत् होगी ।

पादस्येति—हस्ति आदि से भिन्न उपमान से परे पाद शब्द के अन्त का समासान्त लोप हो, बहुव्रीहि समास में ।

व्याघ्रपात्—व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य—जिसके पाद व्याघ्र के पाद के समान हों । यहाँ उपमान वाचक व्याघ्र से पर पाद शब्द के अन्त अकार का, समास करने के बाद, प्रकृत सूत्र से लोप होकर व्याघ्रपाद्, प्र० एक व० में तकार होकर व्याघ्रपात् बना है ।

अहस्त्यादिभ्यः किमिति—हस्त्यादि उपमानों से भिन्न उपमान से पर होने पर ही अकार का लोप होता है अतः—

हस्तिपादः—हस्तिनः इव पादौ यस्य इस विग्रह में हस्ति-उपमान से पर पाद के अन्त का लोप न होगा ।

कुसूल पादः कुसूलस्येव पादौ यस्य, यहाँ भी समासान्त अकार लोप न होगा अतः 'कुसूलपादः बनेगा ।

संख्येति—संख्या या सु जिसके पूर्व में हो ऐसे पाद शब्द के अन्त का समासान्त लोप हो, बहुव्रीहि समास में ।

पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ । द्विपात् । सुपात् ।

उद्विभ्यां काकुदस्य ।५।४।१४८।।

लोपः स्यात् । उत्काकुत् । विकाकुत् ।

पूर्णाद्विभाषा ।५।४।१४९।। पूर्णकाकुत् । पूर्णकाकुदः ।

सुहृद् दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ।५।४।१५०।।

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रम् ।

उरः प्रभृतिभ्यः कप् ।५।४।१५१।।

सोऽपदादौ ।८।३।३८।।

द्विपात्—द्वौ पादौ यस्य (जिसके दो पैर हों) यहाँ समास होने के बाद संख्या पूर्व पाद के अकार का प्रकृत सूत्र से लोप होकर द्विपात्, एवं-सुपात् - शोभनौ पादौ यस्य जिसके सुन्दर पैर हों । यहाँ भी पूर्ववत् सभी कार्य होंगे ।

उद्विभ्यामिति—उद् और वि से परे काकुद शब्द के अन्त का समासान्त लोप हो, बहुव्रीहि में ।

उत्काकुत्—उद्गतं काकुदं यस्य (जिसका काकुद (तालु) उठ गया हो) यहाँ उद्+काकुद का समास, प्रकृत सूत्र से अन्त्य अकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

विकाकुत्—विगतं काकुदं यस्य (जिसका तालु नष्ट हो गया हो) इसकी भी सिद्धि पूर्ववत् होगी ।

पूर्णादिति—पूर्ण शब्द से परे काकुद शब्द के अन्त का लोप विकल्प से हो ।

पूर्णकाकुत्—पूर्णं काकुदं यस्य (जिसका काकुद पूर्ण हो गया हो) यहाँ समासोत्तर प्रकृत सूत्र से दकार के अकार का लोप होकर पूर्णकाकुत्, लोपाभाव पक्ष में पूर्णकाकुदः यह रूप बनेगा ।

सुहृदिति—सु और दुर् से पर हृदय शब्द को हृत् आदेश निपातन से हो, क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थ में, बहुव्रीहि समास में ।

सुहृत्—शोभनं हृदयं यस्य (जिसका हृदय स्वच्छ हो, अर्थात् मित्र) यहाँ समास होकर हृदय शब्द को प्रकृत सूत्र से हृत् आदेश होगा ।

दुर्हृत्—दुष्टं हृदयं यस्य (जिसका हृदय दुष्ट हो अर्थात् शत्रु) इसकी भी पूर्ववत् सिद्धि होगी ।

उर इति—उरस् आदि शब्दों से समासान्त कप् प्रत्यय हो, बहुव्रीहि में ।

स इति—पाश, कल्प, क और काम्य परे रहते विसर्ग को स होता है ।

पाश कल्पक काम्येषु विसर्गस्य सः ।
कस्कादिषु च ।८।३।४८।।
एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः स्यादन्यत्र तु सः । इति सः—व्यूढोरस्कः ।
इणः षः ।८।३।३९।।
इणः उत्तरस्य विसर्गस्य षः पाशकल्पक काम्येषु परेषु । प्रियसर्पिष्कः ।
निष्ठाः ।२।२।३६।।
निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । युक्तयोगः ।
शेषाद्विभाषा ।५।४।१५४।।
अनुक्त समासान्ताद् बहुव्रीहेः कप् वा स्यात् । महायशस्कः । महायशाः ।
इति बहुव्रीहि समासः

कस्कादिष्विति—कस्क इत्यादिगणपठित शब्दों में इण् (प्रत्याहार) से परे विसर्ग को षत्व होता है तथा अन्य शब्दों को स होता है।

व्यूढोरस्कः—व्यूढम् उरः यस्य (जिसका वक्षः स्थल विशाल हो) इस विग्रह में व्यूढ + उरस् का समास "उर" इति सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय, 'खरवसानयोरि-त्यादि सूत्र से (सकार को रुत्व होने पर) र् को विसर्ग, व्यूढोरः + क इस स्थिति में सोऽपदादौ सूत्र से विसर्ग को सकार होकर व्यूढोरस्कः रूप बनता है।

कस्क आदि गणपठित शब्दों में तो षकार होता है, अन्यत्र सकार होता है, यह बताना ही यहाँ इस सूत्र के उल्लेख का प्रयोजन है।

इण इति—इण् से परे विसर्ग को षकार होता है, पाश, कल्प, क, काम्य आदि परे रहते।

प्रियसर्पिष्कः—प्रियं सर्पिः यस्य (जिसको घृत प्रिय हो) इस विग्रह में समास करने के बाद, कप् प्रत्यय होकर, सर्पिस् के सकार को रुत्व विसर्ग होने पर प्रिय-सर्पिः + क इस दशा में प्रकृत सूत्र से इण्—'इ' से पर विसर्ग को षत्व होकर प्रिय सर्पिष्कः रूप बनता है।

निष्ठेति—निष्ठा प्रत्ययान्त शब्द का पूर्व प्रयोग हो।

युक्तयोगः—युक्तः योगः येन (जिसने योग धारण किया हो) यहाँ समास होकर प्रकृत सूत्र से निष्ठा (क्त) प्रत्ययान्त युक्त शब्द का पूर्व प्रयोग होकर युक्तयोगः रूप बनता है।

शेषादिति—जिससे किसी समासान्त प्रत्यय का विधान नहीं किया गया हो ऐसे बहुव्रीहि समास से कप् प्रत्यय विकल्प से हो।

महायशस्कः—महत् यशः यस्य (जिसका बड़ा यश हो) यहाँ समास होने पर प्रकृत सूत्र से कप् प्रत्यय, (आन्महतः) सूत्र से महत् के तकार को आकार होकर महायशस्कः और कप् के अभाव पक्ष में महायशस् प्रातिपदिक से सु प्रत्यय, 'सु' का लोप' सकार से पूर्व अकार को दीर्घ, सकार का रुत्व विसर्ग होकर महायशाः प्र० एक व० में बनेगा।

इति बहुव्रीहि समासः

अथ द्वन्द्व समासः

चार्थे द्वन्द्वः ।२।२।२९।।

अनेकं सुवन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते; स द्वन्द्वः । समुच्चयान्वाचयेतरेतर-योग समाहाराश्चार्थः । तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्पर निरपेक्षस्यानेकस्यै कस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । 'भिक्षामट गां चानय' इति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वा-चयः । अनयो रसामर्थ्याद् समासो न ।

धवखदिरौ छिन्धि इति मिलिताना मन्वय इतरेतरयोगः । 'संज्ञा च परिभाषा च अनयोः समाहारः संज्ञापरिभाषम् ।

चार्थे इति—च के अर्थ में वर्तमान अनेक सुवन्तों का विकल्प से समास हो और उस समास की द्वन्द्व संज्ञा हो ।

समुच्चयेति—समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार ये चार 'च' के अर्थ हैं ।

तत्रेति—परस्पर निरपेक्ष अनेक पदार्थों का एक पदार्थ में अन्वय होना समुच्चय कहलाता है जैसे ईश्वरं गुरुं च भजस्व' ईश्वर और गुरू का भजन करो । इस वाक्य में ईश्वर और गुरु पदार्थ एक दूसरे से निरपेक्ष हैं—एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रखते पर दोनों का स्वतन्त्र रूप से भजन क्रिया में अन्वय है अतः यहाँ 'च' का प्रथम अर्थ है ।

जब उन पदार्थों में से, जिनका समुच्चय किया जा रहा है, एक का आनु-षङ्गिकतया—गौण रूप से अन्वय होता है तब उसे **अन्वाचय** कहते हैं जैसे 'भिक्षामट गां चानय 'भिक्षा माँगो और गाय को ले आओ' इस वाक्य में प्रधान कार्य माँगना है, भिक्षा माँगते हुए यदि गाय मिल जाय तो उसे भी लेते आना' इस प्रकार 'गाय का लाना' आनुषङ्गिक गौण—अमुख्य कार्य है अतः यहाँ 'च' का द्वितीय अर्थ है ।

अनयोरिति—समुच्चय और अन्वाचय इन दो अर्थों में सामर्थ्य न होने के कारण समास नहीं होता।

जहाँ अनेक पदार्थों का एक दूसरे के प्रति आकांक्षा होने से परस्पर सम्बन्ध होता है उसे सामर्थ्य या व्यपेक्षा कहते हैं समुच्चय में दोनों पदार्थ निरपेक्ष तथा अन्वाचय में, एक आनुषंगिक और एक मुख्य होता है अतएव इन दोनों में परस्पर आकांक्षा न रहने के कारण सामर्थ्याभाव में समास नहीं होता है।

धवखदिराविति—परस्पर मिले हुये (साकांक्ष) पदार्थों का एक में अन्वय होना **इतरेतरयोग**—कहलाता है (इतर=अन्य का इतर—अन्य के साथ सम्बन्ध) जैसा 'धवखदिरौ छिन्धि' (धव और खदिर को काटो) यहाँ इस वाक्य में धव और खदिर का एक साथ मिलकर 'काटना' क्रिया में अन्वय होने से यहाँ दो परस्पर साकांक्ष पदों का इतरेतर योग है। फिर भी दोनों का अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी रहता है अतएव समासोत्तर इनमें द्विवचन का प्रयोग किया जाता है।

समाहार का अर्थ है—समूह, जैसे 'संज्ञापरिभाषम्' संज्ञा और परिभाषा का समूह। यहाँ संज्ञा और परिभाषा को समुदाय रूप में एक मान लिया जाता है, अर्थात् इनका अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं रहता अपितु दोनों का मिलकर एक समूह के रूप में अन्य अर्थ के साथ अन्वय होता है।

धवखदिरौ—(धव और खदिर) धवश्च खदिरश्च इस लौकिक तथा 'धव सु+खदिर सु। इस अलौकिक विग्रह में इतरेतर योग' में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समास, विभक्ति लोप होकर 'धवखदिर' यह समस्त पद बनता है, पुनः प्रातिपदिक संज्ञा होने से औ विभक्ति लाई जायेगी क्योंकि इतरेतर योग समास में पदार्थों का स्वतन्त्र व्यक्तित्व रहता है। अतः धवखदिरौ' यह प्रथमा द्विवचन का रूप होगा।

द्वन्द्व समास दो से अधिक पदों में भी होता है अतः अन्त में बहुवचन का भी प्रयोग होता है।

संज्ञापरिभाषम्—(संज्ञा और परिभाषा का समूह) 'संज्ञा च परिभाषा च' तयोः समाहारः, इस विग्रह में समास होने पर विभक्ति लोप, संज्ञापरिभाषा इस समस्त पद से प्रथमा एक वचन में सुप्रत्यय होगा। समाहार समास में सदा नपुंसक लिंग एक वचन ही होता है अतः यहाँ नपुंसक लिंग ही होगा, नपुंसक लिंग होने से "ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य" से आकार को ह्रस्व होकर संज्ञापरिभाष बन जायेगा तब नपुं० में सु का अमादेश होकर उक्त रूप बनेगा।

(द्वन्द्व समास के दो या दो से अधिक पद प्रधान रहते हैं 'उभयपदार्थप्रधान द्वन्द्व समास होता है' ऐसा बतलाया जा चुका है अतः किस पद को पूर्व में रखा जाय ? इस प्रश्न के समाधान के लिये जहाँ उपसर्जन संज्ञा से काम न चल सकेगा

राजदन्तादिषु परम् ।२।२।३१।।

एषु पूर्व प्रयोगार्हं परं स्यात् । दन्तानां राजा राजदन्तः ।

(वा) धर्मादिष्वनियमः ।

अर्थधर्मौ, धर्मार्थावित्यादि ।

द्वन्द्वे घि ।२।२।३२।

द्वन्द्वे घि संज्ञं पूर्वं स्यात् । हरिश्च हरश्च हरिहरौ ।

अजाद्यन्तम् ।२।२।३३।।

क्योंकि समास शास्त्र 'चार्थे द्वन्द्वः' इस सूत्र में 'अनेक मन्य पदार्थे' से अनेकम्' की अनुवृत्ति है अतः 'अनेकम्' इस प्रथमान्त से बोध्य सभी प्रथमान्त पद हो जायेंगे तो फिर किसका पूर्व प्रयोग किया जाय ? इसका समाधान यह है कि उन प्रयोगों को छोड़कर जिनके लिये विशेष नियम सूत्र हैं, सर्वत्र स्वेच्छानुसार किसी का भी पूर्व-प्रयोग किया जा सकता है ।

राजदन्ता दिष्विति—राजदन्त आदि शब्दों में जिस शब्द का पूर्व प्रयोग प्राप्त हो, उसका पर प्रयोग हो ।

राजदन्तः—दन्तानां राजा (दांतों का राजा) इस विग्रह में यहाँ 'षष्ठी' सूत्र से समास होता है, फलतः 'षष्ठी' इस प्रथमान्त से बोध्य 'दन्त' की उपसर्जन संज्ञा होने से उसी का पूर्व प्रयोग प्राप्त था, पर प्रकृत सूत्र से उसका पर प्रयोग होने से 'राजदन्तः' यह रूप बनेगा ।

वार्तिक-धर्मादिष्विति—धर्म अर्थ आदि शब्दों में किसको प्रथम रखा जाय ? इसका नियम नहीं है, किसी को भी इच्छानुसार पूर्व या पर में रखा जा सकता है ।

अर्थधर्मौ—(अर्थ और धर्म) अर्थश्च, धर्मश्च, अर्थ सु+धर्म सु इस विग्रह में इतरेतर योग अर्थ में द्वन्द्व समास, विभक्ति लोप होकर, वार्तिक द्वारा पूर्व प्रयोग विषयक नियम न होने से अर्थधर्मौ तथा धर्मार्थौ, ये दोनों ही रूप बनेंगे ।

द्वन्द्वे इति—द्वन्द्व समास में घि संज्ञक पद का पूर्व प्रयोग होता है ।

हरिहरौ—हरिश्च हरश्च (हरि=विष्णु 'हर=शिव) हरि सु+हर सु' इस विग्रह में इतरेतर योग में द्वन्द्व समास होकर घि संज्ञक हरि शब्द का प्रकृत सूत्र से पूर्व प्रयोग होने से "हरिहरौ" यह रूप बनता है ।

(पाणिनि मुनि ने 'शेषो घ्यसखि "सूत्र के द्वारा सखि शब्द को छोड़कर प्रायः सभी इकारान्त उकारान्त शब्दों की घि संज्ञा की है । अतः इकारान्त होने से 'हरि की घि संज्ञा है)

अजादीति—द्वन्द्व समास में अजादि अदन्त पद का पूर्व प्रयोग हो अर्थात् जो पद अजादि (स्वरादि) तथा अदन्त (ह्रस्व अकारान्त हो) उसका पूर्व प्रयोग हो ।

इवं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात् । ईशकृष्णौ ।

अल्पाच्तरम् । शिवकेशवौ ॥

पिता मात्रा ।१।२।७०।।

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च पितरौ; माता-पितरौ वा ।

ईश कृष्णौ—ईशश्च कृष्णश्च (ईश और कृष्ण) ईश सु+कृष्ण सु इस विग्रह में इतरेतर योग द्वन्द्व समास, अजादि तथा अकारान्त 'ईश' शब्द का प्रकृत सूत्र से पूर्व प्रयोग होकर उक्त रूप बनता है।

अल्पाजिति—द्वन्द्व समास में उस पद का पूर्व प्रयोग हो जिसमें दूसरे की अपेक्षा अल्प अच् (स्वर) हों।

शिवकेशवौ—शिवश्च केशवश्च (शिव और केशव) शिव सु+केशव सु इस विग्रह में इतरेतर द्वन्द्व समास, केशव की अपेक्षा अल्प अच् वाले शिव का पूर्व प्रयोग होकर उक्त रूप बनता है।

पितेति—मातृ शब्द के साथ कथन होने पर पितृ शब्द विकल्प से शेष रहता है।

पितरौ—माता च पिता च (माता और पिता) इस विग्रह में यहाँ माता के साथ पिता का कथन है, दोनों पदों का इतरेतर द्वन्द्व समास होने पर प्रकृत सूत्र के अनुसार पितृ पद शेष रहेगा। पर 'यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी भवति' जो शेष रहता है वह लोप होने वाले का भी अर्थ बतलाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार शेष बचा हुआ पितृ शब्द, माता का भी अर्थ वतलायेगा जिसका कि समासोत्तर लोप हो गया है। अतः एक ही पितृ शब्द से माता और पिता इन दो प्रातिपदिकों के अर्थ को बोधित करने के कारण इसके आगे दो वचन का प्रयोग होगा अतः 'पितरौ' रूप बनेगा।

माता-पितरौ—माता च पिता च (माता और पिता) यहाँ एक शेष के वैकल्पिक होने के कारण उसके अभाव पक्ष में समास होने पर मातृ-पितृ इस स्थिति में 'पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते' गौरव की दृष्टि से माता, पिता की अपेक्षा दशगुना अधिक श्रेष्ठ है इत्यादि वचनों के अनुसार 'अभ्यर्हितं च' इस वार्तिक के द्वारा पूज्य होने के कारण मातृ शब्द का पूर्व प्रयोग होगा, तब मातृ-पितृ इस दशा में "आनङ् ऋतो द्वन्द्वे" इस से मातृ शब्द के ऋकार को आनङ् आदेश होकर तथा न लोप होकर 'मातापितृ' यह रूप बनेगा, तब दो का प्रातिपदिक होने से इसके आगे दो वचन का प्रयोग होकर "माता-पितरौ" यह रूप बनेगा।

(उन समासों को जिनमें एक शेष रहता है 'एक शेष' समास कहते हैं।

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य सेनाङ्गानाम् ।२।४।२।।

एषां द्वन्द्व एकवत् । पाणिपादम् । मार्दङ्गिकवैणविकम् । रथिकाश्वारोहम् ।

द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ।५।४।१०६।।

चवर्गान्ताद् दषहन्ताच्च द्वन्द्वा ट्टच् स्यात् समाहारे । वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम् । त्वक्स्रजम् । शमीदृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपानहम् । समाहारे किम्-प्रावृट्शरदौ ।

इति द्वन्द्वः

यह कोई पृथक् समास नहीं है अपितु यह 'एक शेष वृत्ति' नाम की एक विशेष विधि है ।)

द्वन्द्वश्चेति—प्राणी तूर्य (बाजे) और सेना इनके अंगों के वाचक शब्दों का द्वन्द्व समास एक वचनान्त हो ।

वास्तव में यह सूत्र एक प्रकार से नियम सूत्र है एक वचनान्त कहने का तात्पर्य यह है कि इन शब्दों का समाहार द्वन्द्व समास ही हो, समाहार द्वन्द्व होने से स्वभावतः नपुंसक लिंग एक वचन होगा ही, अतः सूत्र का तात्पर्य समाहार द्वन्द्व नियमार्थ है, इससे इतरेतर द्वन्द्व न होगा ।

पाणिपादम्—पाणी च पादौ च (हाथ और पैर) यहाँ हाथ और पैर प्राणी के अंग हैं, अतः इनका समाहार द्वन्द्व समास होने पर द्वन्द्वश्चेति सूत्र से एक वचनान्त होने के कारण तथा समाहार के नपुं० लिंग होने के कारण 'पाणिपादम्' यह रूप बनेगा ।

मार्दङ्गिकवैणविकम्—मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्च (मृदंग बजाने वाला और वेणु बजाने वाला) यहाँ इन शब्दों के तूर्य (वाद्य) के अंग होने के कारण समाहार द्वन्द्व समासोत्तर, प्रकृत सूत्र से एक वचनान्त होने से 'मार्दङ्गिकवैणविकम्' रूप बनता है ।

रथिकाश्वारोहम्—रथिकाश्च अश्वारोहाश्च (रथिक और घुड़सवार) यहाँ इन दोनों शब्दों के सेनांग होने के कारण समाहार द्वन्द्व समासोत्तर प्रकृत सूत्र के अनुसार एक वचन में उक्त रूप बनता है ।

द्वन्द्वादिति—चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त, और हकारान्त द्वन्द्व समास से समासान्त टच् प्रत्यय हो समाहार द्वन्द्व में ।

वाक्त्वचम्—वाक् च त्वक् च तयोः समाहारः (वाणी और त्वचा का समुदाय) यहाँ वाच् और त्वक् पदों का समाहार द्वन्द्व समास होने पर चवर्गान्त होने के कारण प्रकृत सूत्र से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होकर 'वाक्त्वच' ऐसा अकारान्त समस्त पद बनता है, समाहार होने के कारण नपुं० एक वचन में उक्त रूप बनता है ।

त्वक्स्रजम्—त्वक् च स्रक् च तयोः समाहारः (त्वचा और माला) यहाँ पूर्ववत् समास, पूर्व चकार को 'चोः कुः' से कुत्व, स्रज् के जकार के चवर्ग होने के कारण प्रकृत सूत्र से टच् प्रत्यय, शेष कार्य पूर्ववत् होकर उक्त रूप बनता है।

शमीदृषदम्—शमी च दृषद् च तयोः समाहारः (शमी और पाषाण) यहाँ पूर्ववत् समास दृशद् के दकारान्त होने से प्रकृत सूत्र से टच्, शेष कार्य पूर्ववत् होकर उक्त रूप बनता है।

वाक्त्विषम्—वाक् च त्विट् च तयोः समाहारः (वाणी और कान्ति) पूर्ववत् समास, त्विष् शब्द के षकारान्त होने से प्रकृत सूत्र से टच्, शेष कार्य पूर्ववत् होकर उक्त रूप बनता है।

छत्रो पानहम्—छत्रञ्च उपानच्च तयोः समाहारः (छत्र और जूते) यहाँ छत्र और उपानह् का पूर्ववत् समास, हकारान्त होने से प्रकृत सूत्र से टच्, शेष कार्य पूर्ववत् होकर उक्त रूप बनता है।

समाहारे किमिति—सूत्र द्वारा समाहार द्वन्द्व में ही टच् प्रत्यय का विधान है। अतः 'प्रावृट् च शरच्च' इस इतरेतर योग द्वन्द्व में टच् प्रत्यय न होने से 'प्रावृट् शरदौ' यह रूप बनेगा।

इति द्वन्द्व समास

अथ समासान्ताः

ऋक्पूरब्धूः पथा मानक्षे ।५।४।७४।।

अ अनक्षे इतिच्छेदः । ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अ प्रत्ययोऽन्तावयवः । अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न । अर्धर्चः । विष्णुपुरम् । विमलापं सरः । राजधुरा । अक्षे तु— अक्षधूः, दृढधूः रक्षः । सखिपथः । रम्यपथो देशः ।

ऋक्पूरिति—ऋच्, पुर्, अप्, धुर्, और पथिन् शब्द जिनके अन्त में हों, उस समास को समासान्त अ प्रत्यय हो, परन्तु अक्ष (रथ के चक्र का मध्य भाग) में जो धुर् (धुरी) तदन्त शब्द से 'अ' प्रत्यय न हो। सूत्र में 'आनक्षे' पद में अ+अनक्षे ऐसा पदच्छेद है, जिसका अर्थ है, इन शब्दों के अन्त वाले शब्दों से 'अ' प्रत्यय हो पर अक्ष में जो धुर् वहाँ न हो।

अर्धर्चः—अर्धम् ऋचः (ऋचा का आधा) यहाँ 'अर्धं नपुंसकम्' सूत्र से समास, ऋच् शब्दान्त होने से प्रकृत सूत्र से 'अ' प्रत्यय होकर, अर्धर्च इस अकारान्त शब्द से 'अर्धर्चादयः पुंसि च' इससे पुल्लिग में होने के कारण 'अर्धर्चः' रूप बनता है।

विष्णु पुरम्—विष्णोः पूः इति विष्णुपुरम् (विष्णु की नगरी) यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास, प्रकृत सूत्र से 'अ' प्रत्यय होकर विष्णुपुर इस अकारान्त प्रातिपदिक से नगर वाचक होने से नपुंसक लिंग होने से 'विष्णु पुरम्' रूप बनता है।

विमलापं सरः—विमला आपः यत्र (जहाँ निर्मल जल हों वह सरोवर) यहाँ बहुव्रीहि समास प्रकृत सूत्र से 'अ' प्रत्यय होकर "विमालाप" इस अकारान्त से 'सरः' का विशेषण होने से नपुंसक लिंग में 'विमलापम्' रूप बनता है।

राजधुरा—राज्ञः धूः (राजा का भार) यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास, प्रकृत सूत्र से अ प्रत्यय, राजन् के नकार का लोप होकर राजधुर इस अकारान्त शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर राजधुरा रूप बनता है।

अक्ष्णोऽदर्शनात् । ५।४।७६॥

अचक्षुः पर्यायादक्ष्णोऽच्स्यात् समासान्तः । गवामक्षीव गवाक्षः ।

उपसर्गादध्वनः ।५।४।८५॥

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ।

न पूजनात् ।५।४।६९॥

पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः ।

(वा) स्वस्तिभ्यामेव । सुराजा । अतिराजा ।

इति समासान्ताः

अक्षे तु-अक्षधूः—सूत्र द्वारा अक्ष की धुर् के लिये 'अ' प्रत्यय का विधान न करने के कारण 'अक्षधूः' यहाँ 'अ' प्रत्यय नहीं हुआ, रकार को विसर्ग होकर 'अक्षधूः' रूप बना है, यहाँ भी षष्ठी तत्पुरुष समास है ।

दृढधूः—अक्षः—दृढा धू र्यस्य (जिसकी धुरा दृढ़ हो ऐसा अक्ष) यहाँ बहुव्रीहि समास में भी 'अ' प्रत्यय न होने से 'दृढधूः' यही रूप बना है ।

सखिपथः—सख्युः पन्थाः (मित्र का मार्ग) यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास में सखिपथिन् से प्रकृत सूत्र से 'अ' प्रत्यय; भ संज्ञा, 'भस्य टेर्लोपः' से इन् इस 'टि' का लोप होकर 'सखिपथ' इस अकारान्त शब्द से उक्त रूप बनता है ।

रम्यपथः—रम्याः पन्थानो यत्र-जिसमें रमणीक मार्ग हों ऐसा देश । यहाँ बहुव्रीहि समास में प्रकृत सूत्र से 'अ' प्रत्यय, टि लोप होकर 'रम्यपथः' रूप बना है ।

अक्ष्ण इति – नेत्र वाचक से भिन्न अक्षि शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय हो ।

गवाक्षः—गवाम् अक्षि इव—गायों की आँखों जैसा, गवाक्ष झरोखा खिड़की आदि । यहाँ अक्षि शब्द नेत्र वाचक नहीं है क्योंकि उसका यहाँ उपमान के रूप में प्रयोग हुआ है । अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ 'अच्' प्रत्यय, 'यस्येति च' से इकार लोप होकर, गो+अक्ष=गवाक्ष से प्र० एक व० में 'गवाक्षः' रूप बनता है ।

उपसर्गादिति—उपसर्ग से परे अध्वन् शब्द को समासान्त अच् प्रत्यय हो ।

प्राध्वः—प्रगतः अध्वानम् (मार्ग पर चला हुआ जो रथ) यहाँ पर प्र+अध्वन् का 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इस वार्तिक से प्रादि समास होकर, प्रकृत सूत्र से अच् प्रत्यय, अन् इस 'टि' का लोप होकर प्राध्व इस अकारान्त प्रातिपदिक से 'प्राध्वः यह रूप बनता है ।

न पूजनादिति—प्रशंसा सूचक शब्दों से परे, समस्त पदों से समासान्त प्रत्यय न हो ।

'वार्तिक' स्वस्तिभ्यामिति—सु और अति इन दो प्रशंसा वाचक शब्दों से पर पदों से ही समासान्त प्रत्यय का निषेध हो अन्यत्र नहीं।

सुराजा—शोभनः राजा (अच्छा राजा) यहाँ 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से प्रादि तत्पुरुष समास होकर 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' सूत्र से टच् प्रत्यय प्राप्त था। प्रकृत सूत्र से उसका निषेध होने से, 'सुराजन्' इस नकारान्त शब्द से, प्र० एक व० में सुराजा रूप बनता है।

अतिराजा—अतिक्रान्तः राजानम्—जिसने राजा का अतिक्रमण किया हो। यहाँ 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' वार्तिक से समास होकर पूर्ववत् टच् प्रत्यय प्राप्त था उसका प्रकृत सूत्र से निषेध होकर पूर्ववत् 'अतिराजा' रूप बनता है।

इति समासान्त प्रकरणम्

अथ कृत्य प्रक्रिया

धातोः ।३।१।९१॥

आतृतीयाध्याय समाप्त्यन्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः । 'कृदतिङ्' इति कृत्संज्ञा ।

वासरूपोऽस्त्रियाम् ।७।१।९४॥

अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवाद प्रत्ययः, उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्, स्त्र्यधिकारोक्तं विना ।

धातोरिति—इस सूत्र से लेकर (पाणिनि कृत अष्टाध्यायी) के तृतीय अध्याय की समाप्ति तक जो प्रत्यय कहे गये हैं, वे सब धातु से परे (आगे) हों ।

(यह अधिकार सूत्र है, कृदन्त प्रकरण के सभी सूत्रों में इसका अधिकार जाता है, अतएव सभी कृत् प्रत्यय धातु से परे होते हैं)

कृदिति—कृदतिङ् ।३।१।९३॥ इस सूत्र से तिङ्-भिन्न प्रत्ययों की कृत्-संज्ञा होती है ।

(तिङ् प्रत्यय—तिप् तस् झि-आदि, भी धातुओं से ही परे होते हैं और कृत् प्रत्यय भी, अतः धातुओं से होने वाले तिङ् प्रत्ययों से भिन्न प्रत्यय—यत् ण्यत् तव्यत् क अण् आदि कृत् प्रत्यय कहे जायेंगे ।)

वासरूप इति—इस धातु के अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्रों द्वारा विहित प्रत्ययों के बाधक विकल्प से हों । 'स्त्रियां क्तिन्' ३।३।९४॥ इस सूत्र के अधिकार में कहे गये प्रत्ययों को छोड़कर ।

उत्सर्ग का अर्थ है—सामान्य, अर्थात् जिन प्रत्ययों के लिए किन्हीं विशेष धातुओं की अपेक्षा नहीं रहती, जैसे तव्यत् अनीयर् अण् आदि प्रत्यय । अपवाद का अर्थ है—विशेष, अर्थात् वे प्रत्यय जो किन्हीं विशेष प्रकार की धातुओं से ही हो

कृत्याः ।७।१।६५।।

'ण्वुल् तृचौ'' इत्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः ।

कर्तरि कृत् ।३।४।६७।।

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात् । इति प्राप्ते ।

सकते हैं। जैसे यत् ण्यत् क आदि प्रत्यय। असरूप—अर्थात् वे प्रत्यय जो दूसरे से स्वरूपतः भिन्न हैं।

सामान्य नियमानुसार सभी अपवाद प्रत्यय अपने उत्सर्ग प्रत्ययों के, अपने स्थल में, नित्य बाधक होते हैं, पर इस प्रकरण में उत्सर्ग अपवाद प्रत्ययों के लिए यह विशेष नियम है कि जो असरूप अपवाद प्रत्यय हैं, वे उत्सर्ग प्रत्ययों के विकल्प से बाधक होंगे, नित्य नहीं, जैसे इसी प्रकरण में तव्यत् तव्य अनीयर् प्रत्यय हैं, जो कि सभी प्रकार की धातुओं से हो सकते हैं अतएव ये उत्सर्ग प्रत्यय हैं, यत् तथा ण्यत् प्रत्यय भी इसी प्रकरण के हैं, पर वे विशेष धातुओं से ही होते हैं अतएव वे अपवाद प्रत्यय हैं, साथ ही, इन प्रत्ययों का तव्य, अनीय शेष रहता है और अपवाद प्रत्ययों का य शेष रहता है, अतः ण्यत् यत् आदि प्रत्यय उक्त प्रत्ययों के विकल्प से बाधक होंगे अतः कृ धातु से कर्तव्यम् करणीयम् तथा कार्यम् भी रूप बनेंगे।

परन्तु सरूप (समान रूप वाले जैसे अण् और क प्रत्यय, क्योंकि अनुबन्ध लोप होने पर इन दोनों का 'अ' शेष रहता है) प्रत्यय उत्सर्ग के नित्य बाधक होंगे। 'कर्मण्यण्' से अण् प्रत्यय होता है वह उत्सर्ग प्रत्यय है, क्योंकि कर्म उपपद रहते वह किसी भी धातु से हो सकता है, क प्रत्यय अपवाद प्रत्यय है क्योंकि वह कुछ विशेष धातुओं से ही होता है अतः क 'प्रत्यय' अण् प्रत्यय का नित्य बाधक होगा। जैसे 'गाम् ददाति गोदः' यहाँ गोदः में क प्रत्यय है, यहाँ 'गाम्' इस कर्म के उपपद रहते अण् प्रत्यय भी हो सकता था पर क प्रत्यम उसका नित्य बाधक हो जायेगा अतः गोदः आदि क प्रत्यय के स्थल में अण् प्रत्यय न हो सकेगा।

परन्तु उत्सर्ग अपवाद का यह बाध्य बाधक भाव नियम "स्त्रियां क्तिन्" इस सूत्र के अधिकार में विहित स्त्री प्रत्ययों में नहीं लगता है, अर्थात् यहाँ अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग के नित्य बाधक रहेंगे, जैसे चिकीर्षा आदि प्रयोगों में 'अ प्रत्ययात्' सूत्र से अ प्रत्यय होता है, यहाँ क्तिन् प्रत्यय (उत्सर्ग प्रत्यय) न हो सकेगा।

कृत्या इति—'ण्वुल् तृचौ' इस आगे वाले सूत्र से पहिले के सभी प्रत्ययों की कृत्य सँज्ञा होती है, अर्थात् ये सभी प्रत्यय कृत्य प्रत्यय कहलायेंगे।

कर्तरीति—कृत् प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में हों। इससे सभी प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में प्राप्त हुए—

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०॥

एते भावकर्मणो रेव स्युः ।

तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६॥

धातो रेते प्रत्ययाः स्युः । एधितव्यम्, एधनीयं त्वया ! भावे औत्सर्गिक मेक बचनं क्लीबत्वञ्च । चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया ।

तयोरिति—कृत्य क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही हों, अर्थात् ये प्रत्यय कर्त्ता में न हों।

(अतएव इन प्रत्ययों के भाव और कर्म में होने से कारण कर्त्ता के अनुक्त होने से, कर्त्ता में तृतीया तथा सकर्मक धातुओं के कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है ।)

तव्यदिति—धातु से तव्यत् तव्य और अनीयर् प्रत्यय हों ।

(तव्यत् और तव्य दोनों ही प्रत्ययों के योग में शब्द रूप एक सा ही बनता है, केवल वैदिक स्वर भेद होता है, तव्यत् के अन्तिम त् की और अनीयर् के रेफ की इत् संज्ञा होती है और उनका लोप हो जाता है ।)

एधितव्यम्, एधनीयम् त्वया (तुझे बढ़ना चाहिए) वृद्ध्यर्थक (बढ़ने अर्थ में) एध धातु से तव्यत् तव्य तथा अनीयर् प्रत्यय करने पर, तव्यत् प्रत्यय में वलादि आर्ध धातुक के परे होने के कारण इट् का आगम हुआ (इट् में केवल 'इ' शेष रहता है, अनीयर् प्रत्यय करने पर इट् न होगा क्योंकि वह बलादि (बल् प्रत्याहार मे) नहीं है, एधितव्य और एधनीय ऐसी स्थिति में 'कृत्तद्धित समासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा करने पर सु प्रत्यय, नपुंसक लिंग में सु को अम् आदेश करने पर उक्त रूप सिद्ध होंगे ।

"आर्ध धातुकस्येड् बलादेः" वल प्रत्याहार जिसके आदि में हो, ऐसे आर्ध धातुक प्रत्यय के आगे रहने पर सेट् धातु को इट् का आगम हो, इस सूत्र से तव्यत् में बलादि आर्धधातुक प्रत्यय के आगे रहने पर इट् आगम हुआ । सेट् अनिट धातुओं का परिगणन तिङन्तप्रकरण में किया गया है, सर्वत्र उसी के अनुसार सेट् व अनिट् धातुओं का परिचय प्राप्त करना चाहिये । तिङ् शित् (शकारेत्संज्ञक) प्रत्ययों को छोड़कर शेष प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं ।

भाव इति—भाव में सामान्यतः एक वचन और नपुंसक लिंग होता है ।

(प्रत्ययों के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि अकर्मक धातुओं से प्रत्यय कर्त्ता या भाव में तथा सकर्मक से कर्त्ता व कर्म में होते हैं, जहाँ कर्म में या भाव में प्रत्यय होगा वहाँ अनुक्तकर्त्ता में तृतीया विभक्ति होगी, जहाँ सकर्मक धातु से कर्त्ता

(वा) केलिमर उपसंख्यानम् । पचेलिमा माषाः, पक्तव्या इत्यर्थः । भिदेलिमाः सरलाः भेत्तव्या इत्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययः ।

में प्रत्यय होगा वहाँ कर्त्ता उक्त हो जाने से कर्त्ता में प्रथमा व कर्म में द्वितीया होगी इसी प्रकार सकर्मक से कर्म में प्रत्यय होने पर कर्म में प्रथमा विभक्ति होगी)

एध धातु अकर्मक है और तयोरेवेति सूत्र के नियम के अनुसार सभी कृत्य प्रत्यय अकर्मक से भाव में और सकर्मक से कर्म में होंगे अतः यह भाव में प्रत्यय हुए हैं। भाव में प्रत्यय करने पर सर्वत्र एक वचन नपुंसक लिंग होता है अतएव एधनीयम् एधितव्यम् में नपुंसक लिंग एक वचन है, 'त्वया' यह कर्त्ता में तृतीया है।

चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया (तुझे धर्म अर्जित करना चाहिये) यहाँ चिञ् (चुनना-सकर्मक) धातु से कर्म में तव्य और अनीयर् प्रत्यय करने पर इकार को 'ए' गुण होने से चेतव्य तथा अनीयर् के आगे रहने पर एकार को अयादेश करने पर चयनीय रूप बनेंगे (कृदन्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा-सु प्रत्यय, 'धर्मः' इस शब्द के पुल्लिंग एक वचन होने से, चेतव्य और चयनीय के आगे भी रुत्वविसर्ग होकर उक्त रूप सिद्ध होंगे।

(वा) कर्म व भाव में तव्यत् आदि के समान केलिमर् प्रत्यय का भी उपसंख्यान (कथन) करना चाहिए।

(केलिमर् प्रत्यय के ककार और रेफ इत् संज्ञक हैं, एलिम शेष रहता है)

इस प्रकरण में कई स्थानों पर गुण की आवश्यकता पड़ेगी। अतः 'गुण' के प्रयोग को समझ लेना चाहिए। इस प्रकरण में गुण करने वाले मुख्यतया दो सूत्र हैं "सार्वधातुकार्धधातुकयोः", अर्थात् सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्ययों के आगे रहने पर इगन्त अंग (इक् प्रत्याहार जिसके अन्त में हो ऐसा शब्द स्वरूप) को गुण होता है तथा दूसरा सूत्र है "पुगन्त लघूपधस्य च" अर्थात् पुगन्त (पुक् आगम जिसके अन्त में हो) और लघूपध (जिसकी उपधा में लघु वर्ण हो) अंग के इक् को गुण हो सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्ययों के आगे रहने पर। स्वरान्त (इ उ ऋ लृ) अन्त वाली धातुओं में प्रथम सूत्र से तथा लघूपध धातुओं में द्वितीय सूत्र से सर्वत्र गुण समझना चाहिए।

पचेलिमाः माषाः—[माष (उरद) पकाने योग्य है] यहाँ पच् (पकाना सकर्मक) धातु से केलिमर् (एलिम) प्रत्यय होने पर पचेलिम बना, कर्म में प्रत्यय होने से कर्म (माषाः) के अनुसार पुल्लिंग तथा बहुवचन में पचेलिमाः रूप बना।

भिदेलिमाः सरलाः—(सरल वृक्ष काटने चाहिए) यहाँ भी पूर्ववत् भिद् (तोड़ना-काटना सकर्मक) धातु से केलिमर् प्रत्यय होने पर भिदेलिम, 'सरलाः' कर्म के अनुसार पुल्लिंग बहुवचन में भिदेलिमाः रूप बनता है।

कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३॥

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥

स्नात्यनेन स्नानीयम् चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः ।

अचो यत् ३।१।९७ ॥

अजन्ताद्धातो र्यत् स्यात् । चेयम् ।

ईद्यति ६।४।६५॥

यति परे आत् ईत् स्यात् । देयम् । ग्लेयम् ।

मूल में पचेलिमाः का अर्थ पक्तव्याः तथा भिदेलिमाः का अर्थ भेत्तव्याः लिखा गया है।

कर्मणीति—उक्त दोनों प्रयागों में धातुओं के सकर्मक होने से कर्म में प्रत्यय हुए हैं।

कृत्येति—कृत्य एवं ल्युट् प्रत्यय बहुलता से होते हैं।

बहुल शब्द का अर्थ है—बहुत प्रकार से होना आगे इसी बहुलता का वर्णन है—

क्वचिदिति—कहीं विधि की नित्य प्रवृत्ति होना, कहीं न होना, कहीं विकल्प से प्रवृत्ति होना और कहीं कुछ अन्य ही प्रकार का हो जाना। इस प्रकार विधि का बहुत प्रकार का विधान देखकर बाहुलक को (विद्वान्) चार प्रकार का कहते हैं।

स्नानीयम्—चूर्णम् (जिससे स्नान किया जाता है वह चूर्ण स्नानीय कहलाता है) यहाँ स्ना (पवित्र होना-अकर्मक) धातु से करण अर्थ में (बाहुलकात्) अनीयर् प्रत्यय होकर 'स्नानीयम् रूप बना।

दानीयः विप्रः (देने योग्य ब्राह्मण, जिसे दिया जाय) यहाँ दा (देना सकर्मक) धातु से सम्प्रदान अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होकर दानीयः रूप बना।

इन दोनों प्रयोगों में क्रमशः करण एवं सम्प्रदान में प्रत्यय हुए हैं जो कि किसी अन्य सूत्र से नहीं हो सकते थे। अतः बाहुलक नियम से ये प्रत्यय हुए हैं।

अच इति—अजन्त धातुओं से यत् प्रत्यय हो।

चेयम्—(चुनने योग्य) चिञ् (चुनना सकर्मक) धातु से यत् प्रत्यय, गुण, चेय, प्रातिपदिक संज्ञा, सामान्य में नपुंसक लिंग, सु प्रत्यय, अम्, आदेश, होकर 'चेयम्' रूप बना।

ईदिति—यत् प्रत्यय परे रहते आकार का ईकार होता है।

देयम्—(देने योग्य या देना चाहिए) दा (देना सकर्मक) धातु से 'अचो यत्'

पोरदुपधात् ३।१।९८।

पवर्गान्तादवुपधाद्यत् स्यात् । ण्यतोऽपवादः । शप्यम् । लभ्यम् ।

एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ३।१।१०९।

एभ्यः क्यप् स्यात् ।

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।७१।।

इत्यः । स्तुत्यः । शासु-अनुशिष्टौ ।

सूत्र से यत् प्रत्यय हुआ, ईद्यति सूत्र से यत् प्रत्यय परे रहते धातु के 'आ' को ईकार होकर गुण होने पर देय, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, सामान्य में नपुंसक लिंग, सु को अम् आदेश होकर देयम्, रूप बनता है।

ग्लेयम्—(ग्लानि करने योग्य) ग्लै (ग्लानि करना अकर्मक) धातु से यत् प्रत्यय करने पर "आदेच उपदेशेऽशिति" सूत्र से ऐकार को आत् आदेश, ग्ला+यत् इस स्थिति में 'देयम्' की भाँति अन्य सब कार्य होकर 'ग्लेयम्' रूप बनता है।

पोरिति—पवर्ग अन्त वाली तथा अकारोपध (जिनकी उपधा में अकार हो) धातुओं से यत् प्रत्यय हो।

ण्यत इति—'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से होने वाले ण्यत् प्रत्यय का यह अपवाद (बाधक) है।

शप्यम्—(शाप के योग्य) शप् (शाप देना या शपथ लेना) धातु से (इसके पवर्गान्त एवं अकारोपध होने से) यत् प्रत्यय होने से 'शप्यम्' रूप बना (यहाँ हलन्त धातु होने से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था उसको बाधकर यत् प्रत्यय हुआ है।)

लभ्यम्—(पाने योग्य, पाना चाहिए) लभ (पाना आतमने पदी, सकर्मक) धातु से पूर्ववत् यत् प्रत्यय करने पर लभ्यम् रूप बनता है।

एतीति—इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष् धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो। (यहाँ शास् तथा जुष् हलन्त धातुओं से ण्यत् तथा शेष अजन्त धातुओं से 'अचो यत्' सूत्र से अच् प्रत्यय प्राप्त था उसको बाधकर इससे क्यप् प्रत्यय होता है।)

ह्रस्वस्येति—ह्रस्व को तुक् का आगम हो, पित् कृत् प्रत्यय परे रहते (पित्-जिस प्रत्यय से पकार की इत् संज्ञा हुई हो)

इत्यः (जाने योग्य) इण् (जाना अकर्मक) धातु से क्यप् प्रत्यय हुआ पकार तथा ककार इत् संज्ञक है 'य' शेष रहता है। इकार के ह्रस्व होने के कारण ह्रस्वस्येति सूत्र से तुक् का आगम उ 'क्' इत् संज्ञक है 'त्' शेष रहता है, इत्य की प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, प्रथमैक वचन में 'इत्यः' रूप बनता है।

शास इदङ्हलोः ।६।४।३४।

शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति । शिष्यः । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः ।

मृजे र्विभाषा ।३।१।११३॥

मृजेः क्यब्वा स्यात् । मृज्यः ।

ऋहलोर्ण्यत् ।३।१।१२४॥

स्तुत्यः (स्तुति करने योग्य) स्तु (स्तुति करना) धातु से क्यप् प्रत्यय, शेष कार्य पूर्ववत् होने से 'स्तुत्यः' रूप बनता है।

शिष्यः (अनुशासन करने योग्य) शास् धातु अनुशासन करने अर्थ में है, शास् धातु से "एतीति" सूत्र से क्यप् प्रत्यय करने पर 'शास्+क्यप्' ऐसी स्थिति में—

शास इति—शास् धातु की उपधा को इकार आदेश हो, अङ् या हलादि कित् ङित् परे रहते।

"शासः" इस सूत्र से हलादि कित् - क्यप् प्रत्यय परे रहते शास् की उपधा आकार को इकार होने पर शिस्+य इस स्थिति में "शासिवसिघसीनां च" सूत्र से सकार को मूर्धन्यादेश षकार होने पर शिष्य-प्रथमैक वचन में 'शिष्यः' यह रूप बनता है।

वृत्यः—(वरण करने योग्य) वृ (वरण करना) धातु से क्यप् तथा तुक् होकर 'वृत्यः' रूप बनता है।

आदृत्यः (आदर करने योग्य) आङ् पूर्वक दृ (आदर करना) धातु से क्यप् तथा तुक् होकर 'आदृत्यः' रूप बनता है।

जुष्यः (सेवा करने योग्य) जुष् (प्रीति तथा सेवा करना) धातु से क्यप् होकर 'जुष्यः' रूप बनता है।

(यहां इन प्रयोगों में क्यप् प्रत्यय के कित् होने के कारण कहीं भी गुण नहीं होता) इस प्रकरण में गुण व वृद्धि का निषेधक सूत्र है 'ग्क्ङिति च' अर्थात् गित् कित् और ङित् प्रत्ययो के आगे रहने पर इक् (इ उ ऋ लृ) को प्राप्त गुण और वृद्धि न हों। अतः गकार ककार तथा ङकार इत् संज्ञा वाले प्रत्ययों के आगे आने पर गुण वृद्धि न हो सकेंगे।)

मृजेरिति—मृज् धातु से विकल्प से क्यप् प्रत्यय हो।

मृज्यः (शुद्ध करने योग्य) मृज् (शुद्ध करना) धातु से क्यप् होकर 'मृज्यः' रूप बनता है। (मृज् धातु के हलन्त होने के कारण यहां प्राप्त ण्यत् प्रत्यय का यह विकल्प से बाधक है।)

ऋहलोरिति—ऋवर्णान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय हो।

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् स्यात् । कार्यम् । हार्यम् । धार्यम् ।

चजोः कुघिण्यतोः ।७।३।२५।।

चजोः कुत्वं स्यात् घिति णिति च परे ।

मृजेर्वृद्धिः ।७।१।११४।।

मृजेरिको वृद्धिः स्यात्, सार्वधातुकार्धधातुकयोः । मार्ग्यः ।

भोज्यं भक्ष्ये ।७।३।६९।।

भोग्य मन्यत् ।

इति कृत्य प्रक्रिया ।

कार्यम् (करने योग्य) कृ (करना सकर्मक) धातु से ण्यत् प्रत्यय होकर कृ=ण्यत् इस स्थिति में ण्यत् प्रत्यय के णित् के कारण, उसके आगे रहने पर 'अचोञ्णिति' सूत्र से धातु के ऋकार को आर् वृद्धि होकर 'कार्यम्' रूप बनता है ।

हार्यम् (हरण करने योग्य) हृ (हरण करना) धातु से ण्यत् प्रत्यय तथा वृद्धि होकर हार्यम् रूप बनता है ।

धार्यम् (धारण करने योग्य) धृ (धारण करना) धातु से ण्यत् तथा वृद्धि होकर 'धार्यम्' रूप बनता है ।

चजोरिति—चकार व जकार को कुत्व (कवर्ग आदेश, होता है, घित् और णित् प्रत्यय परे रहते ।

मृजेरिति—मृज् धातु के इक को वृद्धि हो, सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते ।

मार्ग्यः (शुद्ध करने योग्य) मृज् धातु से क्यप् प्रत्यय के अभाव पक्ष में ण्यत् प्रत्यय होने पर जकार को गकार आदेश, तब मृजेर्वृद्धिः सूत्र से ऋकार को आर् वृद्धि होकर मार्ग्यः रूप बनता है (यहाँ वृद्धि विधायक उक्त दोनों सूत्रों से वृद्धि न हो सकती थी, क्योंकि न तो यह धातु स्वरान्त ही था और न अकारोपध, अतएव इस सूत्र का प्रणयन किया गया है ।)

इस प्रकरण में वृद्धि करने वाले मुख्य सूत्र 'अचोञ्णिति' तथा 'अतउपधायाः' हैं । प्रथम सूत्र द्वारा "ञित् और और णित् प्रत्यय परे रहने पर अजन्त अंग, (स्वरान्त धातुओं) को वृद्धि होती है और द्वितीय सूत्र से ञित् णित् प्रत्ययों के आगे रहने पर अकार उपधा वाली धातुओं को वृद्धि होती है ।

भोज्यमिति—भक्षण करने योग्य अर्थ में 'भोज्य' रूप बनता है अर्थात् इस सूत्र से भक्षणार्थक भुज् धातु से, ण्यत् प्रत्यय परे रहते, चजोः सूत्र से प्राप्त कुत्व के अभाव का निपातन (विधान) किया जाता है ।

भोग्य मन्यत्—अर्थात् पालनार्थक भुज् धातु से ण्यत् प्रत्यय परे भोग्यम् रूप बनता है। अर्थात् यहाँ कुत्व हो जाता है।

भोज्यम्—(भक्षण करने योग्य) भुज् (पालन-उपभोग और भक्षण करना) धातु से भक्षण अर्थ में ण्यत् प्रत्यय होने से प्राप्त कुत्व के अभाव का इस सूत्र से निपातन होने पर भोज्यम् रूप बनेगा। उकार को गुण होकर ओकार हो जायेगा।

भोग्यम्—(उपभोग करने योग्य) भुज् धातु से उपभोग अर्थ में ण्यत् प्रत्यय होने पर कुत्व तथा गुण करने पर भोग्यम् रूप बनता है।

इति कृत्य प्रक्रिया

अथ पूर्वकृदन्तम्

ण्वुल्तृचौ ।३।१।१३३।।

धातोरेतौ स्तः । कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे ।

युवोरनाकौ ।७।१।१।।

यु वु एतयोरनाकौ स्तः । कारकः । कर्त्ता ।

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ।३।१।१३४।।

ण्वुल्तृचाविति—धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हों ।

(ण्वुल् का वु और तृच् का तृ शेष रहता है, अन्य भाग इत् संज्ञक हैं ।

कर्तरीति—ये प्रत्यय 'कर्तरि कृत्' सूत्र से कर्त्ता अर्थ में होते हैं ।

युवोरिति—यु और वु इनको क्रमशः अन और अक आदेश हों ।

कारकः—करोतीति (करने वाला) कृ (करना, सकर्मक) धातु से कर्त्ता अर्थ में प्रकृत सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय होने पर वु को उक्त सूत्र से अक आदेश होने पर, ऋकार को आर् वृद्धि होकर कारक शब्द स्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमैक वचन में कारकः यह रूप बनता है ।

कर्त्ता (करने वाला) कृ धातु से तृच् प्रत्यय, गुण होकर 'कर्तृ' की प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमैक वचन में कर्त्ता रूप बनता है ।

नन्दीति—नन्दि आदि धातुओं से ल्यु प्रत्यय, ग्रह आदि धातुओं से णिनि प्रत्यय, और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय हो ।

(इन प्रत्ययों के अनुबन्धों का लोप होने पर ल्यु का यु, णिनि का इन्, तथा अच् का अ शेष रहता है । णिनि प्रत्यय के णित् होने के कारण यथा स्थान वृद्धि भी होगी ।)

नन्द्यादे ल्युः, ग्रह्यादे णिनिः। पचादेरच् स्यात्। नन्दयतीति नन्दनः, जनमर्दयतीति जनार्दनः, लवणः, स्थायी, मन्त्री। पचारिकृतिगणः।

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ।३।१।१३५।। एभ्यः कः स्यात्। बुधः, कृशः, ज्ञः, प्रियः, किरः।

नन्दनः—नन्दयति इति (आनन्दित करने वाला) प्रेरणार्थक णिच् प्रत्ययान्त नन्दि धातु से ल्यु प्रत्यय होकर, यु को अन आदेश, तथा 'णेरनिटि' सूत्र से णिच् के इकार का लोप करने पर नन्दन इस प्रातिपदिक से 'नन्दनः' रूप बनता है।

जनार्दनः—जनमर्दयति इति (लोगों को गति देने वाला भगवान्) जन उपपद णिच् प्रत्ययान्त अर्द (गति, याचना) धातु से ल्यु प्रत्यय, यु को अन आदेश, "जन अर्द् इ अन" इस स्थिति में णि लोप होने पर 'जनार्दनः' रूप बनता है।

लवणः—लुनाति इति (काटने वाला या नमक) लूञ् (काटना) धातु से ल्यु प्रत्यय, अन आदेश, गुण, अवादेश लव्+अन इस स्थिति में निपातन से नकार को णत्व होकर 'लवण' प्रातिपदिक से 'लवणः' रूप बनता है।

ग्राहीः—गृह्णाति इति (ग्रहण करने वाला), ग्रह (ग्रहण करना) धातु से णिनि प्रत्यय, णित् प्रत्यय परे होने से 'अत उपधायाः' सूत्र से उपधा अकार को वृद्धि होकर ग्राहिन् इस शब्द स्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा, सुप्रत्यय, प्रथमैक वचन में 'ग्राही' यह रूप बनता है।

स्थायी—तिष्ठति इति (ठहरने वाला-स्थिर) स्था (ठहरना) धातु से णिनि प्रत्यय होकर-अनुबन्धन लोप होने पर स्था+इन् इस स्थिति में 'आतो युक् चिण्कृतोः' से आकारान्त स्था धातु के आगे युक् का आगम होने पर स्थायिन् प्रातिपदिक से प्रथमैक वचन में स्थायी रूप बनता है।

मन्त्री—मन्त्रयति इति (मन्त्रणा-सलाह देने वाला) णिच् प्रत्ययान्त चुरादि मन्त्रि (गुप्त वार्त्तालाप करना) धातु से णिनि प्रत्यय, 'मन्त्र् इ इन्' इस स्थिति में णि लोप होकर मन्त्रिन् प्रातिपदिक से पुंल्लिंग प्रथमैक वचन में 'मन्त्री' रूप बनेगा।

पचादिरिति—पचादि आकृति गण है, इस गण में पठित शब्दों से अच् प्रत्यय होता है, पच्+अच्=पचः पचति इति (पकाने वाला)।

इगुपधेति—इक् उपधा वाली धातुओं जैसे बुध्, कृश आदि, ज्ञा, प्री, कॄ धातुओं से क प्रत्यय हो। (क प्रत्यय में अ शेष रहता है, प्रत्यय के कित् होने के कारण 'क्ङिति च' सूत्र से गुण का निषेध होता है।)

बुधः—बुध्यते इति (ज्ञाता; विद्वान्) बुध् (जानना) धातु से क प्रत्यय होने पर 'बुधः' रूप बनता है।

आतश्चोपसर्गे ।३।१।१३६।।

प्रज्ञः । सुग्लः ।

गेहे कः ।७।१।१४४।।

गेह कर्तरि ग्रहेः कः स्यात् । गृहम् ।

कर्मण्यण् ।३।२।१।।

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात् । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः ।

कृशः (कृश्यतिइति—दुबला, क्षीण) कृश् (दुबना होना) धातु से क प्रत्यय होने पर कृशः सिद्ध होता है।

ज्ञः—जानाति इति (जानने वाला) ज्ञा (जानना) धातु से क प्रत्यय, कित् होने से "आतो लोप इटि च' सूत्र से आकार का लोप, 'ज्ञः' रूप सिद्ध होता है।

प्रियः—प्रीणाति इति (प्रसन्न करने वाला) प्री (क्र्यादि, तृप्त करना) धातु से क प्रत्यय "अचिश्नु धातु-भ्रुवां य्वोरिय ङुवङौ" सूत्र से प्री गत ई को इयङ् (इय) आदेश करने पर 'प्रियः' रूप बनता है।

'किरः'—किरति (बिखेरने वाला) कॄ (बिखेरना) धातु से क प्रत्यय, "ॠत इद्धातोः" सूत्र से ॠकार को इर् आदेश करने पर 'किरः' रूप बनता है।

आतश्चेति—उपसर्गपूर्वक आकारान्त धातु से क प्रत्यय हो।

प्रज्ञः—प्रकर्षेण जानातीति (अच्छी तरह जानने वाला) प्र+ज्ञा (जानना) धातु से क प्रत्यय करने पर आकार का लोप होकर 'प्रज्ञः' रूप बनता है।

सुग्लः—सुग्लायतीति (अच्छी तरह ग्लानि करने वाला) ग्लै (ग्लानि करना) धातु से क प्रत्यय, आदेच उपदेशेऽशिति" सूत्र से ऐकार को आकार आदेश, आकार का लोप 'सुग्ल' प्रातिपदिक से प्रथमैक वचन में सुग्लः रूप बनता है।

गेह इति—यदि गेह (घर) कर्त्ता हो, अर्थात् उस शब्द से घर अर्थ प्रकट होता हो तो ग्रह धातु से क प्रत्यय हो।

गृहम्—गृह्णाति धान्यादिकम् (जो धान्य आदि को अपने अन्दर रखता है) ग्रह (ग्रहण करना) धातु से क प्रत्यय, ग्रहिज्येति, सूत्र से र् को ऋ सम्प्रसारण, गृह्+अ इस दशा में गृह प्रातिपादक से नपुं० प्रथमैक वचन में गृहम् रूप बनता है। गृह शब्द पुंल्लिग में सदा बहुवनान्त ही रहता है 'गृहाः'। गृह शब्द 'अर्धर्चादि गण पठित होने के कारण पुंल्लिग और नपुंसकलिंग दोनों में प्रयुक्त, होता है।

कर्मणीति—कर्म उपपद रहते धातु से अण् प्रत्यय होता है, (अण् में 'अ' शेष रहता है, णित् होने से वृद्धि भी होती है।

कुम्भकारः : कुम्भं करोति (घड़ा बनाने वाला) कुम्भ+कृ (करना) धातु से

आतोऽनुपसर्गे कः ।२।२।३।।

आदन्ताद्धातो रनुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात् । अणोऽपवादः । आतो लोपः । गोदः । धनदः । कम्बलदः । अनुपसर्गे किम्—गोसन्दायः ।

(वा) मूलविभुजादिभ्यः कः ।

मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः । आकृतिगणोऽयम् । महीध्रः । कुध्रः ।

कुम्भम् इस कर्म के उपपद रहते अण् प्रत्यय, ऋकार को आर् वृद्धि, कुम्भकार इस प्रातिपदिक से पुल्लिग प्रथमैक वचन में कुम्भकारः रूप बनता है ।

इस प्रकरण में सूत्र के सप्तम्यन्त पद से बोध्य पद उपपद कहलाता है, इस उपपद का अपने उत्तरवर्ती पद के साथ 'उपपदमतिङ्' सूत्र से समास होता है, समास करने पर उपपद तथा अन्य पद के आगे की विभक्तियों का 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' से लोप हो जाता है, यथा प्रस्तुत उदाहरण में कुम्भम् यह कर्म उपपद है, और यह 'कर्मण्यण्' सूत्र में 'कर्मणि' इस पद द्वारा बोध्य है । अतः कुम्भ अम् कृ इस अवस्था में अण् प्रत्यय तथा वृद्धि करने पर कुम्भ अम् कार इस स्थिति में समास तथा अम् विभक्ति का लोप होकर कुम्भकार इस शब्द की पुनः प्रातिपदिक संज्ञा होकर सु प्रत्यय आने पर कुम्भकारः यह रूप बनेगा । उपपद वाले उदाहरणों में सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिए ।

आत इति—उपसर्ग रहित आदन्त (दीर्घ आकारान्त धातुओं से) कर्म उपपद रहते क प्रत्यय हो ।

यह 'क' प्रत्यय 'कर्मण्यण्' सूत्र के अण् प्रत्यय का सरूप प्रत्यय होने के कारण नित्य बाधक है ।

'आतो लोप इटि च' से 'आ' का लोप होता है ।

गोदः—गाम् ददाति इति (गाय देने वाला) गो+अम् दा (देना) धातु से क प्रत्यय, आकार लोप, गो+अम् द इस स्थिति में पूर्ववत् समास विभक्ति लोप, गोद इस कृदन्त शब्द स्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा प्रथमैक वचन में 'गोदः' रूप बनता है ।

धनम् ददाति **'धनदः'**, कम्बलम् ददाति **'कम्बलदः'**, रूप भी इसी प्रकार सिद्ध होंगे ।

सूत्र मे उपसर्ग रहित धातु से क प्रत्यय होता है अतः—गाम् सन्ददाति **'गोसन्दायः** यहाँ पर सम् उपसर्गपूर्वक दा धातु से क प्रत्यय न होगा, तब 'कर्मण्यण्' से अण् प्रत्यय 'आतो युक् चिण्कृतोः' से युक् का आगम होने पर 'गोसन्दाय' प्रातिपदिक से पुल्लिग प्रथमैक वचन में रूप बनेगा ।

(वा) **मूलेति**—मूलविभुज आदि शब्दों से क प्रत्यय हो ।

चरेष्टः ।३।२।१६।। अधिकरणे उपपदे । कुरुचरः ।

भिक्षासेनादायेषु च ।३।२।१७।।

भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायेति ल्यबन्तम्-आदायचरः ।

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ।३।२।२०।।

मूलविभुजो रथः—मूलानि विभुजति (जड़ों को कुचलने वाला रथ) मूल शस् वि+भुज् धातु से क प्रत्यय, उपपद समास, विभक्ति लोप, मूलविभुज-प्रातिपदिक संज्ञा 'मूलविभुजः' रूप बनता है ।

आकृतीति—मूलविभुज आदि आकृतिगण है । अतः—

महीध्रः—महीम् धरति (पृथ्वी को धारण करने वाला) मही अम् धृ धातु से क प्रत्यय, कित् होने से गुण निषेध, ऋकार को यण् होने से 'महीध्रः' यह रूप बनेगा ।

कुध्रः—कुं धरति (पृथिवी को धारण करने वाला, कु अम् धृ+क प्रत्यय, गुणाभाव होने पर यण् 'कु अम् ध्र' इस स्थिति में समास विभक्ति लोप, कुध्रः रूप सिद्ध होता है ।

चरेरिति—अधिकरण उपपद रहते चर् धातु से ट प्रत्यय होता है ।

(ट प्रत्यय के ट् की इत् संज्ञा है, टित् होने से स्त्रीत्व विवक्षा में "टिड्ढाणञ्" से ङीप् प्रत्यय होता है ।)

कुरुचरः—कुरुषु चरति (कुरु प्रदेश में घूमने वाला) कुरु सुप् चर् (गति और भक्षण) धातु से ट प्रत्यय उपपद समास, विभक्ति लोप, कुरुचर से कुरुचरः रूप बनता है ।

स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय होकर कुरुचरी रूप बनेगा ।

भिक्षेति—भिक्षा, सेना और आदाय उपपद रहते चर् धातु से ट प्रत्यय होता है ।

भिक्षाचरः—भिक्षाम् चरति (भिक्षा माँगने वाला) भिक्षा अम् चर्+ट प्रत्यय, समास विभक्ति लोप, भिक्षाचरः रूप बनता है ।

सेनाचरः—सेनायां चरति अथवा सेनां चरति—प्रविशति (सेना में घूमने वाला अथवा सेना में प्रवेश करने वाला) पूर्ववद् ट प्रत्यय, समास, विभक्ति लोप, सेनाचरः रूप सिद्ध होता है ।

आदायचरः—आदाय (ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द है । लेकर चलने वाला, आदाय+चर् से ट प्रत्यय, आदायचरः रूप सिद्ध होता है ।)

कृञ इति—हेतु ताच्छील्य (वैसा ही स्वभाव होना) आनुलोम्य (अनुकूलता) इन अर्थों के द्योतित रहने पर कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो ।

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् ।

अतःकृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ।८।३।४६।।

आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः ।

एजेः खश् ।३।२।२८।।

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात् ।

अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ।६।३।६७।।

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात्, खिदन्ते परे नत्वव्ययस्य । शित्वाच्छबादिः । जनमेजयतीति जनमेजयः ।

अत इति—अकार के आगे आने वाले उस विसर्ग को जो अव्यय से परे न हो- समास में नित्य सकार आदेश हो कृञ्, धातु, कम् धातु, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णी शब्द परे रहते ।

यशस्करी विद्या—यशः करोति (यश का हेतु विद्या) यशस् अम् कृ धातु से प्रकृत सूत्र से हेतु अर्थ में ट प्रत्यय । ऋ को अर् गुण, उपपद समास, विभक्ति लोप, 'यशः कर' इस स्थिति में "अतः कृकमि" इति सूत्र से कृञ् धातु के आगे रहते विसर्ग को सकारादेश, टित् होने से "टिड्ढाणञ" सूत्र से ङीप् प्रत्यय, यशस्करी रूप बनता है ।

श्राद्धकरः—श्राद्धं करोति-श्राद्धं कर्तुं शीलमस्य (श्राद्ध करने का जिसका स्वभाव हो) श्राद्ध अम् कृ+ट, गुण, समास, विभक्ति लोप, श्राद्धकर, प्रथमैक वचन में श्राद्धकरः ।

वचनकरः—वचनं करोति (कहे हुये को करने वाला आज्ञापालक) वचन अम् कृ+ट, गुणादि पूर्ववत्, 'वचनकरः' ।

एजेरिति ण्यन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय हो, (खश् प्रत्यय के खकार व शकार इत् संज्ञक है केवल 'अ' शेष रहता है, अतएव यह प्रत्यय खित् और शित् कहलाता है ।)

अरुरिति—अरुष् (मर्मवाचक शब्द) द्विषत् (शत्रु) और अनन्त को मुम् का आगम हो, खिदन्त प्रत्यय परे रहते, परन्तु अव्यय को मुम् का आगम न हो ।

(मुम् में केवल म् शेष रहता है ।)

शित्वेति—खश् प्रत्यय के शित् होने के कारण शप् आदि प्रत्यय होते हैं ।

जनमेजयः—जनमेजयति (जनता को कँपाने वाला) जन+अम्+णिच् प्रत्ययान्त एजि धातु से खश् प्रत्यय, खश् के शित् होने से खश् के पूर्व शप् प्रत्यय,

प्रियवशे वदः खच् ।३।२।३८।।

प्रियंवदः । वशंवदः ।

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ।३।२।७५।।

मनिन् क्वनिप् वनिप् विच्-एते प्रत्ययाः धातोः स्युः ।

नेड् वशि कृति ।७।२।८।।

वशादेः कृत इण् न स्यात् । शृ हिंसायाम्-सुशर्मा । प्रातरित्वा ।

(शप् में 'अ' शेष रहता है) जन+अम् एजि अ अ इस स्थिति में 'अतो गुणे' सूत्र से पूर्व अकार का लोप, शप् के शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा, "सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इकार को 'ए' गुण, अयादेश, जन अम् एजय इस स्थिति में उपपद समास, विभक्ति लोप, तब खिदन्त 'एजय' आगे रहने पर प्रकृत सूत्र से नकारोत्तरवर्ती अकार के आगे मुम् (म्) का आगम होकर जनमेजय, प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमैक वचन में 'जनमेजयः' रूप बनता है ।

प्रियेति—प्रिय और वश उपपद रहते वद् धातु से खच् प्रत्यय हो ।

(खच् में केवल 'अ' शेष रहता है खित् होने के कारण इसके परे रहते भी मुम् आगम होता है ।)

प्रियम्वदः—प्रियं वदति (प्रिय बोलने वाला) प्रिय+अम्+वद (बोलना) धातु से खच् प्रत्यय मुगागम होकर 'प्रियंवदः' यह रूप बनता है ।

वशं वदः—वशे वदति-वश में रहने वाला, पूर्ववत् खच् प्रत्यय मुमागम होकर सिद्धि होगी ।

अन्येभ्य इति—मनिन् क्वनिप् वनिप् और विच् प्रत्यय धातु से हों ।

सूत्र में अन्येभ्योऽपि का अर्थ है अन्य धातुओं से भी ये प्रत्यय "दृश्यन्ते" देखे जाते हैं । तात्पर्य यह कि इस सूत्र से पूर्व "आतो मनिन् क्वनिप् वनिपश्च" २।२।७३।। यह सूत्र है जो कि आकारान्त धातुओं से इन प्रत्ययों का विधान करता है अतएव इस सूत्र द्वारा आकारान्त से भिन्न भी धातुओं से भी इन प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

(मनिन् का मन्, क्वनिप् और वनिप् का वन् शेष रहता है, क्वनिप् के कित् होने से गुण वृद्धि निषेध होता है । विच् प्रत्यय का कुछ भी शेष नहीं रहता अर्थात् उसका सर्वापहारी लोप हो जाता है ।)

नेडिति—वश् प्रत्याहार जिसके आदि में है ऐसे कृत् प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता है ।

सुशर्मा—शोभनं शृणाति (अच्छी तरह हिंसा करता है) सु उपसर्ग पूर्वक शृ (हिंसा करना) धातु से प्रकृत सूत्र से मनिन् प्रत्यय, मनिन् प्रत्येक के वलादि आर्धधातुक

विड्वनोरनुनासिकस्यात् ।६।४।४१।।

अनुनासिकस्यात् स्यात् । विजायत इति विजावा । ओणृ अपनयने-अवावा । विच्—रुष् रिष् हिंसायाम् । रोट्, रेट्, सुगण् ।

क्विप् च ।३।२।७६।।

अयमपि दृश्यते । उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ।

होने से इट् प्राप्त था उसका प्रकृत सूत्र से निषेध, ऋकार को अर् गुण होकर सुशर्मन् शब्द से प्रातिपादिक संज्ञा होकर प्रथमैक वचन में सुशर्मा रूप बना ।

प्रातरित्वा—प्रातः एति (प्रातः जाने वाला) प्रातर् पूर्वक इण् (जाना) धातु से क्वनिप् प्रत्यय, प्रातर् इ वन् इस स्थिति में कित् होने से गुण का निषेध, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'' से तुक् का आगम होकर प्रातरित्वन् प्रातिपदिक से प्रथमैक वचन में उक्त रूप बना ।

विड्वनोरिति—विट् और वन् प्रत्यय परे रहते अनुनासिक वर्ण को आकार आदेश होता है।

(विट् प्रत्यय तो केवल वेद में ही देखा जाता है, क्वनिप् और वनिप् का वन् शेष रहता है अतः वन् से इन दो प्रत्ययों का ग्रहण है ।)

विजावा—विजायते (अनेक रूपों में होने वाला अथवा विचित्र प्रकार से उत्पन्न होने वाला) वि उपसर्ग पूर्वक जन् (उत्पन्न होना) धातु से वनिप् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से वनिप् का वन् परे रहते धातुगत अनुनासिक नकार को आकार आदेश होने पर, दीर्घादेश, विजावन् प्रातिपदिक से प्रथमैक वचन में 'विजावा' रूप बना ।

अवावा—ओणति-अपनयति (हटाने वाला) ओणृ (दूर करना) धातु से वनिप् प्रत्यय, ओण + वन्; प्रकृत सूत्र से णकार को आकारादेश 'ओ आ वन्', ओकार को अवादेश, अवावन्, प्र० एक वचन में अवावा, राजन् वत् रूप बनेंगे ।

रोट्-रेट—(हिंसा करने वाला) रुष् तथा रिष् (हिंसा करना) धातुओं से विच् प्रत्यय, विच् का सर्वलोप, इकार को 'ए' गुण तथा उकार को ओ गुण होकर रोष् रेष् प्रातिपदिकों से प्र० एक व० में जश्त्व विधि से षकार को डकार तथा चर्त्व विधि से डकार को टकार होकर रोट्, रेट्, सिद्ध होते हैं ।

सुगण्—सुष्ठु गणयति (अच्छी प्रकार गिनने वाला) सु पूर्वक गण् (गिनती करना) धातु से विच् प्रत्यय, सर्वलोप होकर 'सुगण्' प्रथमैक वचन में रूप बना है ।

क्विप् चेति—धातु से कर्त्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय भी हो ।

(क्विप् प्रत्यय का भी सर्वलोप हो जाता है, कित् होने से गुण वृद्धि निषेध

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ।३।२।७८॥

अजात्यर्थे सुपि धातो र्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये । उष्णभोजी ।

मनः ।३।२।७२॥

सुपि मन्यतेः णिनि स्स्यात् । दर्शनीयमानी ।

आत्ममाने खश्च ।३।२।८३॥

तथा धातु के नकार का लोप, पित् होने से ह्रस्वान्त धातुओं को तुक् का आगम भी होता है ।)

उखस्रात्—उखायाः स्रंसते (हाडी से गिरने वाला) उखा पूर्वक स्रंस (गिरना) धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वलोप, "अनिदितां हल उपाधायाः क्ङिति" सूत्र से धातुगत नकार का लोप, उपपद समास, विभक्तिलोप, उखास्रस् प्रातिपदिक से प्र० एक वचन में "वसुस्रन्सुध्वंस्वनडुहां दः" सूत्र से सकार को दकार, और 'वावसाने' से, विकल्प से चर्त्व—त् होकर उखास्रत् और उखास्रद् रूप बनते हैं ।

पर्णध्वत्—पर्णेभ्यः ध्वंसते (पत्तों से गिरने वाला) पर्ण पूर्वक ध्वंस् (गिरना) धातु से क्विप्, सर्वलोप, न लोप, सकार को दकार, चर्त्वादि पूर्ववत् पर्णध्वत् ।

वाहभ्रट्—वाहात् भ्रंशते (अश्व से गिरने वाला) वाह+भ्रंश+क्विप्, सर्व-लोप, न लोप, वाहभ्रश् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'व्रश्चेत्यादि सूत्र से शकार को षकार जश्त्व, चर्त्व आदि होकर वाहभ्रट् रूप बनता है ।

सुपीति—जाति वाचक से रहित सुवन्त उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय हो, जब ताच्छील्य (वैसा करने का स्वभाव) अर्थ द्योतित हो ।

उष्ण भोजी—उष्णं भोक्तुं शीलमस्य, अथवा उष्णं 'भुङ्क्ते तच्छीलः (गरम खाने का स्वभाव रखने वाला) उष्णम् इस जाति भिन्न सुवन्त के उपपद रहते भुज् (खाना व पालन करना) धातु से णिनि प्रत्यय (इन् शेष रहा) समास, विभक्ति लोप, गुण होकर उष्णभोजिन् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में **'उष्णभोजी'** रूप बनता है ।

मन इति—सुवन्त उपपद रहते मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो ।

दर्शनीयमानी—दर्शनीयं मन्यते (सुन्दर समझने वाला) दर्शनीयम् इस सुवन्त के उपपद रहते मन (मानना) धातु से णिनि प्रत्यय, णित् होने से धातु की उपधा अकार को आकार वृद्धि, समास, विभक्ति लोप, 'दर्शनीयमानिन्' प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'दर्शनीयमानी' प्रयोग बनता है ।

आत्माने इति—स्वकर्मक मनन् अर्थ में वर्तमान मन् धातु से सुवन्त उपपद रहते खश् प्रत्यय भी हो ।

(स्वकर्मक मनन का अर्थ है—अपने को वैसा मानना ।)

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात्-चाण्णिनिः। पण्डित मात्मानं मन्यते पण्डितंमन्यः, पण्डितमानी।

खित्यनव्ययस्य ।६।३।६६॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः, नत्वव्ययस्य। ततो मुम्। कालिम्मन्या।

करणे यजः ।३।२।८५।।

करणे उपपदे भूतार्थयजेर्णिनिः कर्तरि। सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी।

चाण्णिनिः—सूत्र में चकार ग्रहण से णिनि प्रत्यय भी होता है।

पण्डितम्मन्यः—पण्डितम् आत्मानं मन्यते (अपने को पण्डित मानने वाला) पण्डितम् इस सुबन्त के उपपद रहते मन् (मानना) धातु से खश् प्रत्यय, खश् के शित् होने से, सार्वधातुक संज्ञा, 'दिवादिभ्यः श्यन्' से श्यन् प्रत्यय, पण्डित अम् मन् श्यन् (य) खश् (अ) इस दशा में 'अतोगुणे' यकारोत्तरवर्ती अकार का पर रूप, उपपद समास विभक्ति लोप, 'पण्डित मन्य' इस स्थिति में खिदन्त शब्द-मन्य के आगे रहते मुम् (म्) का आगम होकर पण्डितम्मन्य इस प्रातिपदिक से प्रथमैक वचन में 'पण्डितम्मन्यः' रूप बनता है।

खश् के अभाव पक्ष में णिनि प्रत्यय करने पर, णित् होने से 'अत उपधायाः' सूत्र से धातु की उपधा को आकार वृद्धि, तथा शेष कार्य पूर्ववत् होने पर पण्डित मानिन् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में **पण्डितमानी** रूप बनता है।

खितीती—खिदन्त परे रहते पूर्व पद को ह्रस्व हो. अव्यय को छोड़कर।

कालिम्मन्या—कालीम् आत्मानं मन्यते (अपने आप को काली मानने वाली) कालीम् इस सुबन्त के उपपद रहते मन धातु से आत्ममाने सूत्र से खश् प्रत्यय, शित् होने से श्यन् विकरण, शेष कार्य पूर्ववत्, कालीमन्य इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से पूर्वपद काली की ईकार को ह्रस्व, मुम् का आगम होने पर कालिम्मन्य, स्त्रीत्व विवक्ष में टाप् प्रत्यय, प्र० एक व० में कालिम्मन्या रूप बनता है।

करणे इति—करण उपपद रहते भूतकाल में वर्तमान यज् धातु से णिनि प्रत्यय हो, कर्त्ता अर्थ में।

सोमयाजी—सोमेन इष्टवान् (जिसने सोम नामक यज्ञ किया हो) सोमेन इस तृतीयान्त सुबन्त के उपपद रहते यज् (यज्ञ करना) धातु से प्रस्तुत सूत्र से णिनि प्रत्यय, उपपद समास, विभक्ति लोप, उपधा वृद्धि, सोमयाजिन् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में सोमयाजी रूप सिद्ध होता है।

अग्निष्टोमयाजी—अग्निष्टोमेन इष्टवान् (अग्निष्टोम नामक यज्ञ जिसने किया हो) पूर्ववत् अग्निष्टोमयाजिन् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'अग्निष्टोमयाजी' रूप बनता है।

दृशेः क्वनिप् ।३।२।९४।।

कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान्-पारदृश्वा ।

राजनि युधि कृञः ।३।२।९५।।

क्वनिप् स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान्-राजयुध्वा । राजकृत्वा ।

सहे च ।३।२।९६।।

कर्मणीति निवृत्तम् । सह योधितवान्-सहयुध्वा । सहकृत्वा ।

दृशेरिति—कर्म उपपद रहते भूतकालवर्ती दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो, कर्त्ता अर्थ में ।

पारदृश्वा—पारं दृष्टवान् (जिसने पार देख लिया हो, अर्थात् पूर्ण) पार अम् दृश् (देखना) धातु से क्वनिप् प्रत्यय, उपपद समास, विभक्ति लोप, (क्विनिप् का वन् शेष रहता है । पारदृश्वन् इस नकारान्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'पारदृश्वा' रूप बनता है ।

राजनीति—राजन् कर्म उपपद रहते युध् और कृञ् धातु से क्वनिप् (वन) प्रत्यय हो ।

युधीति—युध् धातु से यहाँ अन्तर्भावितण्यर्थ गृहीत है अर्थात् सूत्र में 'युधि' कहने से जाना जाता है कि यहाँ युध् से णि प्रत्यय करके युधि का ग्रहण किया गया है । अतः युधि इस ण्यन्त धातु से ही प्रत्यय होगा ,

राजयुध्वा—राजानं योधितवान् (जिसने राजा को युद्ध कराया हो) राजन्+अम्+युध् धातु से प्रकृत सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय, उपपद समास, विभक्ति लोप, नकार-लोप, राजयुध्वन् इस नकारान्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'राजयुध्वा' यह रूप बनता है ।

राजकृत्वा—राजानं कृतवान् (जिसने राजा बनाया हो) राजन् अम् कृ (करना) धातु से क्वनिप्, शेष कार्य पूर्ववत्, राजकृत्वन् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'राजकृत्वा' बनता है ।

सहेचेति—सह उपपद रहते भी युध् और कृ धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो ।

कर्मणीति—'कर्मणि' इसकी निवृत्ति हो गई, अर्थात् इस सूत्र में 'कर्मणि' पद की अनुवृत्ति न होगी, क्योंकि 'सह' के अव्यय होने के कारण, उसका कर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होगा ।

सहयुध्वा—सह योधितवान् (जिसने साथ-साथ लड़ाया हो) सह+युध् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होने पर सहयुध्वन् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'सहयुध्वा' बनता है ।

सप्तम्यां जनेर्डः ।३।२।९७।।

तत्पुरुषे कृति बहुलम् ।३।६।१४।।

ङे रलुक् । सरसिजम् । सरोजम् ।

उपसर्गे च संज्ञायाम् ।३।२।९९।।

प्रजा स्यात् सन्ततौ जने ।

क्तक्तवतू निष्ठा ।१।१।२६।।

सहकृत्वा—सह कृत्वा (जिसने साथ-साथ किया हो) सह+कृ+क्वनिप्= सह कृत्वन्, पूर्ववत् 'सहकृत्वा' यह रूप बनेगा।

सप्तम्यामिति—सप्तम्यन्त सुबन्त उपपद रहते जन् धातु से ड प्रत्यय हो। (ड प्रत्यय का डकार इत् संज्ञक है 'अ' शेष रहता है, डित् होने के कारण, इसके परे रहते "टेः" सूत्र से 'टि' का लोप होता है। यह प्रत्यय भी भूतार्थ में होता है।)

तत्पुरुषे इति—तत्पुरुष समास में कृत् प्रत्यय परे रहने पर सप्तमी का लोप नहीं होता, बहुल रूप से।

ङेरलुक्—अर्थात् सप्तमी विभक्ति एक वचन के प्रत्यय 'ङि' का लोप, जो समास करने पर "सुपो धातु-प्रातिपदिकयोः" सूत्र से प्राप्त था, नहीं होता है।

सरसिजम्—सरसि जातम् (सरोवर में उत्पन्न हुआ कमल आदि) सप्तम्यन्त सरस् (सरसि) ङि पूर्वक जन् (उत्पन्न होना) धातु से ड प्रत्यय, डित् होने से 'अन्' इस 'टि' का लोप, सरस् ङि ज् अ इस स्थिति में उपपद समास, विभक्ति लोप प्राप्त था उसका 'तत्पुरुष' सूत्र से निषेध सरसिज इस प्रातिपदिक से सामान्य में नपुं० प्र० एक व० में 'सरसिजम्' यह रूप बना, अलुक् विकल्प से होता है अतएव पक्ष में विभक्ति लोप होने पर, सरस् के सकार को रुत्व, उत्व तथा गुण करने पर 'सरोजम्' यह रूप बनता है।

उपसर्गे चेति—उपसर्ग उपपद रहते हुए भी संज्ञा अर्थ में जन् धातु से ड प्रत्यय हो।

प्रजा स्यादिति—अर्थात् प्रजा शब्द सन्तति और प्रजाजन के अर्थ में है, अर्थात् इनकी संज्ञा है। प्रजा शब्द का संज्ञा अर्थ बताने के लिए ही, 'अमरकोष' का यह प्रमाण उद्धृत किया गया है।

प्रजा—प्रकर्षेण जाता (सन्तति या जनता) प्र उपसर्ग पूर्वक जन् धातु से संज्ञा अर्थ में ड प्रत्यय, डित् होने से टि लोप, 'प्रज' प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर 'प्रजा' शब्द बनता है।

क्तेति—क्त और क्तवतु प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है।

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ।

निष्ठा ।३।२।१०२।।

'भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र "तयोरेव'—इति भावकर्मणोः क्तः, 'कर्तरि कृद्' इति कर्तरि क्तवतुः । उकावितौ । स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विश्वं कृतवान् विष्णुः ।

निष्ठेति—भूतकालार्थ में वर्तमान धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय (क्त और क्तवतु) हों ।

तयोरेवेति— 'तयोरेव कृत्यक्त खलर्थाः इस सूत्र के अनुसार क्त प्रत्यय भाव और कर्म में होगा अर्थात् अकर्मक धातुओं से भाव में और सकर्मक धातुओं से कर्म में प्रत्यय होगा । कर्म और भाव में प्रत्यय होने से कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होगी । 'कर्तरिकृत्' सूत्र के अनुसार सकर्मक और अकर्मक धातुओं से क्तवतु प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में होगा, अतः इसके कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होगी ।

उकाविताविति—क्त और क्तवतु के ककार का तथा क्तवतु के उकार की इत् संज्ञा है अतः त और तवत् शेष रहते हैं । क्त प्रत्ययान्त शब्द अकारान्त तथा क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द तकारान्त होते हैं ।

स्नातं मया—(मैंने स्नान कर लिया) स्ना धातु से (अकर्मक होने के कारण) भाव में, भूतकाल में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय होने पर 'स्नात' इसकी कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमा एक वचन में सु प्रत्यय, भाव में प्रत्यय होने के कारण स्वभावतः नपुं० एक वचन होने से सु को अम् आदेश होकर 'स्नातम्' रूप बना ।

मया यह तृतीयान्त कर्त्ता है । क्योंकि 'स्नातम्' यह भाववाच्य है, भाव वाच्य या कर्म वाच्य में कर्त्ता के अनुक्त होने से उसमें तृतीया विभक्ति होती है ।

(यद्यपि यहाँ अकर्मक धातुओं से क्त प्रत्यय भाव अथवा कर्म में ही बतलाया गया है, तथापि "गत्यर्थाकर्मक श्लिषशीङ् स्थासवस जनरुहजीर्यतिभ्यश्च" इस सूत्र के अनुसार गत्यर्थक, अकर्मक, तथा श्लिष्, शीङ् (सोना) स्था, आस् वस, जन, रुह, (उगना) जॄ (जर्जरित होना) इन धातुओं से कर्त्ता अर्थ में भी क्त प्रत्यय होता है, जैसे तेन गतम् तथा स गतः चलितः ग्लानः आश्लिष्ट आदि प्रयोग होते हैं ।)

स्तुतः त्वया विष्णुः—(तुमने विष्णु की स्तुति की) यहाँ स्तु धातु के सकर्मक होने से क्त प्रत्यय कर्म में हुआ है । क्त प्रत्यय के कित् होने के कारण गुण निषेध होने पर 'स्तुतः' यह रूप बना है ।

इसके आगे 'त्वया विष्णुः' लिखने का तात्पर्य यह है कि स्तु धातु से कर्म में क्त प्रत्यय है है, अतएव कर्म के उक्त हो जाने से विष्णुः में प्रथमा और अनुक्त कर्त्ता 'मया' में तृतीया विभक्ति है ।

रदाभ्यां निष्ठातो न पूर्वस्य च दः ।८।२।४२।।

रदाभ्यां परस्य निष्ठा-तस्य नः स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातो र्दस्य च । शॄ हिंसायाम्, ऋत इत्, रपरः, णत्वम् । शीर्णः । भिन्नः । छिन्नः ।

संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः ।८।२।४३।।

निष्ठातस्य नः स्यात् । द्राणः । ग्लानः ।

ल्वादिभ्यः ।८।२।४४।।

विश्वं कृतवान् विष्णुः—(विष्णु ने संसार को बनाया) यहाँ कृ धातु से भूत-काल में क्तवतु (तवत्) प्रत्यय है, क्तवतु प्रत्यय कर्तृ वाच्य में होता है । कृतवत् इस प्रातिपदिक से प्रथमा एक वचन से 'कृतवान्' यह रूप बनता है ।

यह कर्त्ता में प्रत्यय होने के कारण उक्त कर्त्ता में प्रथमा (विष्णुः) और अनुक्त कर्म में द्वितीया (विश्वम्) है ।

रदाभ्यामिति—रेफ और दकार से परे निष्ठा प्रत्यय के तकार को नकार हो, तथा निष्ठा की अपेक्षा पूर्व धातु के दकार को भी नकार हो ।

शीर्णः (नष्ट हुआ) शॄ (हिंसा करना) धातु से कर्म में भूतकाल में क्त प्रत्यय, 'ऋत इद्धातोः' सूत्र से ऋकार का इत् इकार, तपर, शिर्+त इस स्थिति में 'हलिच' इस सूत्र से इकार को दीर्घ, शीर्+त इस दशा में रेफ से पर निष्ठातकार को प्रकृत सूत्र से नकार तथा उसको णकार होकर शीर्ण प्रातिपदिक ने प्र० एक व० में 'शीर्णः' रूप बनता है ।

भिन्नः (फाड़ा हुआ) भिद, (फाड़ना) धातु से क्त प्रत्यय होकर भिद्+त इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से तकार को नकार तथा धातु के दकार को भी नकार आदेश होने से भिन्न इस प्रातिपदिक से 'भिन्न' : रूप बनता है ।

छिन्नः (काटा हुआ) छिद् धातु से पूर्ववत् इस रूप की भी सिद्ध होगी ।

संयोगादेरिति—संयोग जिनके आदि में हो और जो यण् (य् र् ल् व्) वाली हों ऐसी आकारान्त धातुओं से निष्ठा के तकार का नकार हो ।

द्राणः—(कुत्सित गतिवान्) द्रा धातु से क्त प्रत्यय, तकार को प्रकृत सूत्र से नकार, णत्व, द्राण प्रातिपदिक से प्र० एक व० में द्राणः रूप बनता है ।

ग्लानः—(दुखी) ग्लै (हर्षक्षय होना, ग्लानि होना) धातु से क्त प्रत्यय, 'आदेच उपदेशेऽशिति' से ऐकार का आकार, प्रकृत सूत्र से तकार को नकार ग्लान प्रातिपदिक से 'ग्लानः' रूप बनता है ।

ल्वादिभ्य इति—ल्वादिगण की लूञ् आदि २१ धातुओं से परे निष्ठा तकार को नकार आदेश हो ।

एक विंशते लूंञादिभ्यः प्राग्वत् । लूनः । ज्या धातुः । ग्रहिज्या इति सम्प्रसारणम् ।

हलः ।६।४।४२।।

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्संप्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः । जीनः ।

ओदितश्च ।८।२।४५।।

भुजो—भुग्नः । टुओश्वि—उच्छूनः ।

शुषः कः ।८।२।५१।।

निष्ठा-तस्य कः । शुष्कः ।

लूनः—(काटा हुआ) लूञ् (काटना, छेदना) धातु से क्त प्रयत्यय, प्रकृत सूत्र से तकार को नकारादेश, 'लूनः' यह रूप बनता है ।

हलः— अङ्ग के अवयव हल् (व्यञ्जन वर्ण) से पर जो सम्प्रसारण तदन्त को दीर्घ हो ।

जीनः—(जीर्ण हुआ, क्षीण आयु वाला) ज्या (जीर्ण होना) धातु से क्त प्रत्यय, ल्वादि धातुओं में होने के कारण ल्वादिभ्यः सूत्र से तकार को नकारादेश, 'ग्रहिज्या' इत्यादि सूत्र से यकार को इ सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणच्च' सूत्र से आकार का पूर्व रूप, जि+न इस स्थिति में 'हलः' सूत्र से इकार को दीर्घ होकर 'जीन' प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'जीनः' यह रूप बना ।

ओदितश्चेति—ओदित् (जिनमें से ओकार की इत् संज्ञा हुई हो) धातुओं से परे निष्ठातकार को नकार हो ।

भुग्नः—(टेढ़ा) भुजो (कौटिल्यार्थक) धातु से 'ओ' की इत्संज्ञा होने से यह धातु ओदित् हुआ तब भुज्, धातु से क्त प्रत्यय के तकार को प्रकृत सूत्र से नकारादेश होकर भुज्+न इस स्थिति में 'चोः कुः' इस सूत्र से जकार को कुत्व+गकार होने पर भुग्न प्रातिपदिक में 'भुग्नः' यह रूप बनता है ।

उच्छूनः—सूजा हुआ) उत्, उपसर्ग पूर्वक टु ओश्वि (गति और वृद्धि) धातु में टु और ओ इत्, संज्ञक होने से 'श्वि' इस ओदित धातु से क्त प्रत्यय के तकार को नकार "वचिस्वपियजादीनां किति" सूत्र से (श्वि धातु के यजादि धातुओं में होने के कारण) वकार का 'उ' सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से धातु के इकार का पूर्व रूप, उत्+शु+न इस स्थिति में 'हलः' से उकार को दीर्घ, 'श्वीदितो निष्ठायाम्' सूत्र से इट् का निषेध, श्चुत्वविधि से तकार का च्, शकार का छकार 'उच्छून' प्रातिपदिक से 'उच्छूनः' यह रूप बनता है ।

शुष इति——शुष् धातु से परे निष्ठा तकार को ककार हो ।

शुष्कः (सूखा हुआ) शुष् (सूखना) धातु से क्त के तकार को प्रकृत सूत्र से ककारादेश होने पर 'शुष्कः' यह रूप बनता है ।

पचो वः ।८।२।५२ । पक्वः । क्षै हर्षक्षये—

क्षायो मः ।८।२।५३। क्षामः ।

निष्ठायां सेटि ।६।४।५२।।

णेर्लोपः । भावितः । भावितवान् । दृह् हिंसायाम्—

दृढः स्थूलबलयोः ।७।२।२०।।

स्थूले बलवति च निपात्यते ।

दधातेर्हिः ।७।४।४२।।

तादौ किति । हितम् ।

दो दद्घोः ।७।४।४६।।

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दद् स्यात् । तादौ किति । चर्त्वम् । दत्तः ।

पच इति—पच् धातु से पर निष्ठा तकार को वकार हो ।

पक्वः—(पका हुआ) पच् (पकाना) धातु से क्त के तकार को वकारादेश होने पर 'पक्वः' यह रूप बनता है ।

क्षाम इति—क्षै धातु से पर निष्ठा तकार को मकार हो ।

क्षामः (कृश हुआ) क्षै (क्षीण होना) धातु से क्त प्रत्यय 'आदेच' इत्यादि सूत्र से ऐकार को आकारादेश, तकार को मकार आदेश होकर 'क्षामः' यह रूप बनता है ।

निष्ठाया मिति—इट् सहित (सेट्) निष्ठा संज्ञक प्रत्यय परे रहने पर णि का लोप होता है ।

भावितः, भावितवान्—यहाँ प्रेरणार्थक णि प्रत्ययान्त भू धातु से वृद्धि, आवादेश करके 'भावि' से क्त और क्तवतु प्रत्यय करने पर, तकार के बलादि आर्ध धातुक प्रत्यय होने से इट् का आगम, भावि इ त, तथा भावि इ तवत् इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से सेट निष्ठा के आगे रहने पर णि का लोप, प्र० एक व० में भावितः, भावितवान् रूप होते हैं ।

दृढ़ इति—स्थूल और बलवान् अर्थ में दृढ़ शब्द की सिद्धि निपातन से होती है ।

दृह, (हिंसार्थक) धातु से क्त प्रत्यय 'होढः' हकार को ढकार, 'झषस्तथो र्धोऽधः' सूत्र से त को ध, ष्टुत्वविधि से धकार को ढकार "ढोढ़े लोपः" सूत्र से पूर्व ढकार का लोप, 'दृढ़ः' रूप बना ।

दधातेरिति—धा धातु को हि आदेश होता है । तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते ।

हितम् (धारण किया हुआ) धा (धारण करना) धातु से क्त प्रत्यय होने

लिटः कानज्वा ।३।२।१०६।।

क्वसुश्च ।३।२।१०७।।

लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः । तङानावात्मने पदम् । चक्राणः ।

म्वोश्च ।८।२।६५।।

मान्तस्य धातो र्नत्वं म्वोः परतः । जगन्वान् ।

पर प्रकृत सूत्र से 'धा' को हि आदेश होकर हित प्रातिपदिक से नपुं० प्र० एक व० में 'हितम्' रूप बनता है।

दो दद्धिति—घु संज्ञक दा धातु को दद् आदेश हो, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते ।

दत्तः (दिया हुआ) दा (देना) धातु से क्त प्रत्यय, धातु को प्रकृत सूत्र से दद् आदेश, दकार को चर्त्वविधि से तकार, 'दत्त' इस प्रातिपदिक से 'दत्तः' यह रूप बनेगा।

लिट इति—लिट् लकार को कानच् हो विकल्प से ।

क्वसुश्चेति—लिट् लकार को क्वसु, भी आदेश हो विकल्प से ।

(कानच् और क्वसु में क्रम से आन और वस् शेष रहते हैं, शेष अनुबन्धों का लोप हो जाता है।)

तङानाविति—तङ् अर्थात् त से लेकर महिङ् तक तिङन्त प्रकरण में धातुओं के आगे आने वाले ९ प्रत्यय तथा आन अर्थात् शानच् कानच् आदि वे प्रत्यय जिनमें 'आन' शेष रहता है, इनकी आत्मने पद संज्ञा होती है अर्थात् तङ् और आन प्रत्यय आत्मने पदी धातुओं से होते हैं।

चक्राणः—(भूतकाल में करता हुआ) कृ (करना) धातु से परे लिट् लकार के स्थान में कानच्, कृ+आन इस स्थिति में, लिट् के स्थान में होने के कारण कानच् परे रहते भी धातु को द्वित्व (कृ कृ) अभ्यास कार्य (पूर्व ऋकार को 'अ') (रपर, र् का लोप, ककार को चकार आदि) करने पर चकृ+आन इस स्थिति में यण् और णत्व होकर 'चक्राणः' यह रूप सिद्ध होता है।

म्वोश्चेति—मकारान्त धातु को नकारादेश हो, मकार और वकार परे रहते ।

जगन्वान्—(गया हुआ) गम् धातु से परे लिट् को क्वसु (वस्) आदेश होने पर, द्वित्व, अभ्यास कार्य, होने पर जगम्+वस् इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से धातु के अन्त्य मकार को नकारादेश, होने पर जगन्वस् प्रातिपदिक से प्र० एक व में सु प्रत्यय आने पर क्वसु प्रत्यय के उगित् होने के कारण नुम्, दीर्घ, सुलोप, संयोगान्त सकार लोप होकर 'जगन्वान्' रूप बनता है। इसके रूप सकारान्त विद्वस् शब्द की तरह बनेंगे।

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ।३।२।१२४।।

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः । शबादिः । पचन्तं चैत्रं पश्य ।

आने मुक् ।७।२।८२।।

अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्याद् आने परे । पचमानं चैत्रं पश्य । लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड् ग्रहणात् प्रथमासमानाधिकरण्येऽपि क्वचित् सन्, द्विजः ।

लट इति—अप्रथमान्त (प्रथमान्त से भिन्न) से समानाधिकरण होने पर लट् लकार के स्थान में शतृ और शानच् हों।

शबादीति—शतृ (अत्) शानच् (आन) आदि के शित् होने से शप् (अ) आदि प्रत्यय (विकरण) भी होते हैं।

पचन्तं चैत्रं पश्य—(पकाते हुये चैत्र को देखो) पच् (पकाना) धातु से लट् लकार के स्थान में शतृ (अत्) आदेश शित् होने से शप् विकरण, पच् अ अत् इस स्थिति में 'अतो गुणे' से अकार का पर रूप, होकर पचत् प्रातिपदिक से द्वितीयैक वचन में नुम होकर 'पचन्तम्' रूप बनता है।

आने इति—अदन्त (ह्रस्व अकारात) अंग को मुक् का आगम हो, आन परे रहते।

पचमानं चैत्रं पश्य—(पकाते हुये चैत्र को देखो) पच् धातु से लट् के स्थान में शानच् (आन) प्रत्यय, शप्, (अ) होने पर अदन्त अंग से पर होने के कारण प्रस्तुत सूत्र से आन परे मुक् का आगम होकर 'पचमान' प्रातिपदिक से द्वितीया एक-वचन में 'पचमानम्' रूप बना।

(शानच् प्रत्यय केवल आत्मने पदी धातुओं से होता है पच् धातु उभयपदी है, अतः इससे शतृ व शानच् दोनों ही प्रत्यय होंगे। शानच् प्रत्यय आगे रहने पर अदन्त अंग से परे मुक् का आगम होता है, अतः शप् श्यन् श आदि विकरणवाली आत्मने पदी धातुओं से ही मुक् का आगम होगा, अन्य विकरणों वाली धातुओं से नहीं।)

लडिति—'लटः शतृशानचावित्यादि' सूत्र में जबकि 'वर्तमाने लट्' सूत्र से लट् की अनुवृत्ति आ ही सकती थी, तो फिर पुनः लट् ग्रहण करने के सामर्थ्य से यह सिद्ध होता है कि कहीं-कहीं पर प्रथमान्त से समानाधिकरण रहने पर भी शतृ शानच् प्रत्यय हो जाते हैं।

सन् द्विजः—(अच्छा ब्राह्मण) अस् (होना) धातु से प्रथमान्त–द्विजः—के साथ समानाधिकरण होने पर भी लट् के स्थान में शतृ (अत्) प्रत्यय होने पर 'श्नसो-रल्लोपः' सूत्र से धातु के आदि अकार का लोप होने पर 'सत्' इस प्रातिपदिक के प्रथमैक वचन में सु प्रत्यय, नुम् सुलोप, संयोगान्त तकार लोप आदि विभक्ति कार्य होने पर 'सन्' यह रूप बनता है।

विदेः शतुर्वसुः ।७।१।३६।।

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा । विदन् । विद्वान् ।

तौ सत् ।३।२।१२७।।

तौ शतृशानचौ सत् संज्ञौ स्तः ।

लृटः सद्वा ।३।३।१४।।

व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनाप्रथमासमानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य ।

पहिले तो सूत्रानुरोध से द्वितीयान्त ही उदाहरण दिये थे पर 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' आदि प्रथमान्त प्रयोग देखकर 'सन्' यह प्रथमान्त उदाहरण दिया गया है। वास्तव में प्रथमान्त प्रयोग बहुत अधिक मिलते हैं, अतएव इस ज्ञापक की आवश्यकता थी।

विदेरिति—विद् धातु से परे शतृ के स्थान में वसु आदेश हो विकल्प से।

विदन्—विद्वान् (जानता हुआ) अदादिगण की विद् (ज्ञानार्थक) धातु से लट् के स्थान में शतृ प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से शतृ के स्थान में वसु (वस्) आदेश होने पर 'विद्वस्' इस प्रातिपदिक से प्र० एक व० में सु प्रत्यय, नुम, दीर्घ, संयोगान्त लोप, सुलोप आदि विभक्ति कार्य करने पर विद्वान् यह रूप बनता है; वसु आदेश के अभाव पक्ष में विद् से शतृ करने पर विदत् इस प्रातिपदिक से प्र० एक व० में नुम् आदि विभक्ति कार्य करने पर विदन् यह रूप बनता है।

तौ इति—वे शतृ और शानच् सत् संज्ञक हों।

लृट इति—लृट् लकार के स्थान में सत् संज्ञक प्रत्यय (शतृ और शानच्) विकल्प से हों।

व्यवस्थेति—यह व्यवस्थित विभाषा है अर्थात् सत् संज्ञक प्रत्ययों का विकल्प व्यवस्था के अनुसार समझना चाहिए। कहीं तो ये नित्य होते हैं और कहीं नहीं भी।

तेनेति—इसीलिये अप्रथमासमानाधिकरण में, प्रत्ययऔर उत्तर पद परे रहते, सम्बोधन, लक्षण तथा हेतु अर्थ में तो ये आदेश नित्य होंगे।

(अप्रथमासमानाधिकरण का उदाहरण तो नीचे दिया गया है पर शेष के उदाहरण इस पुस्तक में नहीं दिये गये हैं।)

करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य—(आगे-भविष्य में कार्य करने वाले को देखो) यहाँ उभयपदी कृ धातु से लृट के स्थान में शतृ (अत्) व शानच् (आन) आदेश करने पर स्य और इट् गुण, षत्व आदि होकर करिष्यत् तथा करिष्यमाण प्रातिपदिकों से द्वि० एक व० में उक्त रूप बनते हैं।

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ।३।२।१३४।।

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ।

तृन् ।३।२।१३५।।

कर्त्ता कटान् ।

जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ।३।२।१५५।।

षः प्रत्ययस्य ।१।३ ६।।

प्रत्ययस्यादिः ष इत्संज्ञः स्यात् । जल्पाकः । भिक्षाकः । कुट्टाकः । लुण्टाकः । वराकः-वराकी ।

सनाशंस भिक्ष उः ।३।२।१६८।।

चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ।

आक्वेरिति--क्विप् प्रत्यय तक कहे जाने वाले प्रत्यय तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी कर्त्ता के अर्थ में समझना चाहिये ।

तृनिति—धातु से उक्त कर्त्ता अर्थ में तृन् प्रत्यय हो ।

कर्त्ता—कटान् (चटाइयाँ बनाने का स्वभाव रखने वाला (तच्छील) चटाइयाँ बनाना अपना धर्म समझने वाला (तद्धर्म) अथवा चटाइयों को अच्छी तरह बनाने वाला (तत्साधुकारी) यहाँ कृ धातु से उक्त अर्थों में प्रकृत सूत्र से तृन् प्रत्यय, गुण होकर कर्तृ प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'कर्त्ता' रूप बना है ।

जल्पेति—जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ् इन धातुओं से षाकन् प्रत्यय हो तच्छीलादि कर्त्ता अर्थ में ।

ष इति—प्रत्यय के आदि के 'ष' की इत्संज्ञा हो ।

जल्पाकः—(जल्पितुं शीलमस्य—बोलना जिसका स्वभाव हो) जल्प धातु से प्रकृत सूत्र द्वारा षाकन् प्रत्यय, इस सूत्र से षकार की इत् संज्ञा, लोप, 'आक' शेष रहने पर जल्पाक प्रातिपदिक से 'जल्पाकः' रूप बनता है ।

भिक्षाकः (भिक्षा मांगने का स्वभाव वाला) पूर्ववत् भिक्ष+षाकन् (आक) 'भिक्षाकः' रूप सिद्ध होता है ।

कुट्टाकः (कूटने का स्वभाव वाला) 'कुट्टाकः' इसी प्रकार ।

लुण्टाकः (लूटने का स्वभाव वाला) 'लुण्टाकः' इसी प्रकार ।

वराकः (चाहने वाला, या बेचारा) वृङ् धातु से 'षाकन् आक' गुण, 'वराकः' षाकन् प्रत्यय के षित् होने के कारण, स्त्रीत्व विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होकर 'वराकी' रूप बनेगा ।

सनेति—सन् प्रत्ययान्त धातुओं, आ+शंस् धातु तथा भिक्ष धातु से उ प्रत्यय होता है ।

भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ।३।२।१७७।।

विभ्राट् । भाः ।

राल्लोपः ।६।४।२१।।

रेफाच्छ्वो र्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति ।

धूः । विद्युत् । ऊर्क् । पूः । दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवते र्दीर्घः । जूः । ग्रावस्तुत् ।

चिकीर्षुः (करने की इच्छा रखने वाला) कर्तुमिच्छति इस अर्थ में कृ धातु से सन् प्रत्यय होकर 'चिकीर्ष्' यह रूप बनता है अतः सन्नन्त चिकीर्ष् धातु से प्रकृत सूत्र से 'उ' प्रत्यय होकर 'चिकीर्षु' प्रातिपदिक से उक्त रूप बनता है।

आशंसुः (आशा रखने वाला) आ+शंस् धातु से उ प्रत्यय होकर प्र० एक व० में 'आशंसुः' रूप बनता है।

भिक्षुः (मांगने वाला) भिक्ष+उ='भिक्षुः' रूप बनता है।

भ्राजेति—भ्राज्, भास्, धुर्वि, द्युत्, ऊर्ज, पॄ, जु तथा ग्राव पूर्वक स्तु धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो, तच्छीलादि अर्थों में।

विभ्राट्—(विशेष रूप से चमकने वाला) वि+भ्राज् (चमकना) धातु से प्रकृत सूत्र से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप, विभ्राज् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में सु प्रत्यय, उसका लोप, व्रश्चभ्रस्जेत्यादि सूत्र से जकार को षकार, जश्त्वविधि से षकार का डकार तब चर्त्वविधि से ट्कार होकर उक्त रूप बना है।

भाः—(दीप्ति-चमक) भास् (चमकना) धातु से क्विप् प्रत्यय, लोप, भास् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में सु प्रत्यय, लोप, सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'भाः' रूप बनता है।

राल्लोप इति—रेफ से परे च्छ् तथा व् का लोप हो, झलादि कित्, ङित् परे रहते।

धूः—(धुरा) धुर्व् (हिंसार्थक) धातु से क्विप् प्रत्यय, लोप, प्रकृत सूत्र से रेफ से पर धातु के वकार का लोप, धुर् प्रातिपदिक से प्र० एक व० में सु प्रत्यय, उसका लोप "र्वोरुपधायाः" सूत्र से उकार को दीर्घ, र् का विसर्ग होकर 'धूः' रूप बनता है।

विद्युत्—(बिजली) वि पूर्वक द्युत् (चमकना) धातु से क्विप् प्रत्यय, लोप, 'विद्युत्' इस कृदन्त प्रातिपदिक से उक्त रूप बनता है।

ऊर्क्—(बलवान्) ऊर्ज, (बल तथा जीवन होना) धातु से क्विप्, लोप, 'ऊर्ज्' कृदन्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में सु प्रत्यय, लोप, 'चोः कुः' सूत्र से जकार को गकार, वैकल्पिक चर्त्व विधि से पक्ष में क् होकर उक्त रूप बनता है।

(वा) क्विब्वचि प्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणंच वक्तीति-वाक्।

च्छ्वोः शूडनुनासिके च ।६।४।१९।।

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ किङ्ति। पृच्छतीति प्राट्। आयतं स्तौति-आयतस्तूः। कटं प्रवते-कटप्रूः। जूरुक्तः। श्रयति हरिम्-श्रीः।

पूः—(नगर—पुर) पृ (पालन या पूर्ण करना) धातु से क्विप्, लोप, "उदोष्ठ्य पूर्वस्य" सूत्र से ऋकार को उ, रपर, 'पुर्' इस कृदन्त प्रातिपदिक से 'धूः' के समान उक्त रूप बनता है।

"अन्येभ्योऽपि दृश्यते" सूत्र से 'दृश्यते' में दृश् ग्रहण का फल यह है कि इसके अतिरिक्त अन्य कार्य भी होते हैं। प्रकृत सूत्र में उसी 'दृश्यते' के अपकर्ष करने से यहाँ भी 'जूः' इस प्रयोग में अन्य कार्य—दीर्घ होता है।

(अनुवृत्ति तो पिछले सूत्रों से आगे के सूत्रों में होती है, पर 'अपकर्ष' आगे के सूत्रों से पिछले सूत्रों में किया जाता है, आवश्यकतानुसार दोनों विधियों से कार्य किया जाता है।)

जूः (रोगी या वेगवान्) जु (गत्यर्थक) धातु से क्विप्, लोप, दृश्यते, इस अपकर्ष सामर्थ्य से दीर्घ 'जू' इस कृदन्त प्रातिपदिक से 'जूः' रूप बनता है, यह ऊकारान्त शब्द है।

ग्रावस्तुत्—(पाषाण का गुण गाने वाला या पूजक) ग्राव पूर्वक स्तु (स्तुति करना) धातु से क्विप्, लोप, "ह्रस्वस्येत्यादि सूत्र से तुक् का आगम, ग्रावस्तुत् इस कृदन्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में सु लोप होकर उक्त रूप बनता है।

(वा) क्विबिति—वच्, प्रच्छ्, आयत पूर्वक स्तु, कट पूर्वक प्रु, जु, तथा श्रि धातुओं से क्विप् प्रत्यय, दीर्घ तथा सम्प्रसारणाभाव हो।

वाक् (वाणी) वक्ति इति अर्थात् जो बोलती है, वच् (बोलना) धातु से प्रकृत वार्तिक से क्विप्, दीर्घ, होकर 'वाच्' इस कृन्दत प्रातिपदिक से प्र० एक व० में कुत्व होकर उक्त रूप बनता है।

च्छ्वोरिति—तुक् सहित छकार और वकार को क्रमशः श और ऊठ् हों, अनुनासिक क्विप् और झलादि कित् ङित् परे।

प्राट्—(प्रश्न करने वाला) पृच्छति-इति प्राट्, प्रच्छ् (पूँछना) धातु से प्रकृत वार्तिक द्वारा क्विप्, दीर्घ, सम्प्रसारणाभाव प्रकृत सूत्र से च्छ् को शकारादेश, 'प्राश्' इस कृदन्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'व्रश्चेत्यादि' सूत्र से शकार को ष, जश्त्व से ड् चर्त्व से ट् होकर 'प्राट्' रूप बनता है।

दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ।३।२।१८२।।

दबादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे । दात्यनेन दात्रम् । नेत्रम् ।

तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ।७।२।६।।

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न । शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्त्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । नद्ध्री ।

आयतस्तूः—(विस्तारपूर्वक गुणगान करने वाला) आयतं स्तौति-इति, आयत पूर्वक स्तु धातु से क्विप्, दीर्घ, 'आयतस्तू' इस प्रातिपदिक से प्र० एक व० में उक्त रूप बनता है ।

कटप्रूः (चटाई बनाने वाला) कटं प्रवते इति, कट पूर्वक प्रु धातु से क्विप् तथा दीर्घ होकर पूर्ववत् रूप बनता है ।

जूरुक्तः—'जूः' की सिद्धि ऊपर बताई जा चुकी है ।

श्रीः—(लक्ष्मी) श्रयति हरिम्, श्रि (सेवा करना) धातु से क्विप् तथा दीर्घ होकर प्र० एक व० में उक्त रूप बनता है ।

(श्री शब्द इस प्रकार यद्यपि स्त्रीलिङ्ग है, तथापि ङी प्रत्ययान्त न होने से यहाँ सु प्रत्यय का लोप न होकर सकार का रुत्व विसर्ग होकर 'श्रीः' रूप बनेगा ।)

दाम्नीति—दाप्, नी, शस्, यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह्, पत्, दश्, नह् धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय हो, करण अर्थ में ।

(ष्ट्रन् प्रत्यय के षकार नकार इत्संज्ञक हैं, केवल त्र शेष रहता है ।

दात्रम् (दाँती, दँरांती) दाति अनेन, जिससे काटा जाय, दाप् (काटना) धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् (त्र) प्रत्यय, दात्र प्रातिपदिक से प्र० नपुं० एक व० में 'दात्रम्' रूप बनता है ।

नेत्रम्—नयति अनेन जिससे विषय के प्रति ले जाय जाय, आंख आदि, नी (ले जाना) धातु से ष्ट्रन्, गुण, नेत्र प्रातिपदिक से 'नेत्रम्' रूप बनता है ।

ति इति—ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क, स, इन दश प्रत्ययों के आगे रहते इट् न हो ।

(इन दश प्रत्ययों में कुछ प्रत्यय उणादि हैं, त्र से तात्पर्य प्रकृत प्रत्यय ष्ट्रन् से है, इन प्रत्ययों के वलादि आर्ध धातुक होने से प्राप्त इट् का यह सूत्र निषेध करता है ।

शस्त्रम्—(शस्त्र) शस् (मारना)+त्र, इडभाव 'शस्त्रम्' रूप बना ।

योत्रम्—(जोत, बैलों के गले में बांधने की पट्टी) यु+(मिलाना) त्र, गुण, होकर 'योत्रम्' रूप बनता है ।

अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ।३।२।१८४।।

अरित्रम्, लवित्रम्, धवित्रम्, सवित्रम्, खनित्रम्, सहित्रम्, चरित्रम्, ।

पुवः संज्ञायाम् ।३।२।१८५।। पवित्रम् ।

इति पूर्वकृदन्तम्

योक्त्रम्—(जोत, नहने की रस्सी आदि) युज् (जोड़ना) धातु से ष्ट्रन्, गुण जकार को 'ग' गकार को क् होकर उक्त बनता है।

स्तोत्रम्—(स्तुति, स्तव, स्तुति पाठ के श्लोकों का संग्रह) स्तु (स्तुति करना)+त्र गुण होकर 'स्तोत्रम्' रूप बनता है।

तोत्त्रम्—(चाबुक, आरा आदि) तुदति अनेन, तुद् व्यथित करना+त्र, गुण, चर्त्वविधि से दकार को तकार, उक्त रूप सिद्ध होता है।

सेत्रम् (बांधने की रस्सी) सि (बाँधना) धातु से ष्ट्रन् गुण 'सेत्रम्' यह रूप सिद्ध होता है।

सेक्त्रम्—(सींचने का पात्र) सिच् (सींचना) धातु से ष्ट्रन् (त्र) गुण, चकार को ककार होकर उक्त रूप बनता है।

मेढ्रम्—(मूत्रेन्द्रिय) मेह्+त्र इस दशा में हकार को ढकार, त् को ध, ष्टुत्व से ध को ढ, पूर्वढकार लोप होकर मेढ्र प्रातिपदिक से 'मेढ्रम्' रूप बनता है।

पत्त्रम्—(सवारी, पंख, पत्ता आदि) पत् (गिरना) धातु से 'पत्त्रम्' रूप बनता है।

दंष्ट्रा—(दाढ़) दंश (डँसना) धातु से, दंश्+त्र, श् को ष, ष्टुत्व होकर दंष्ट्र, स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् होकर उक्त रूप सिद्ध होता है, यहाँ षित् कार्य अनित्य होने से, ङीष् न होकर टाप् हुआ है।

नद्ध्री—(नहनी, हल आदि में बांधने की रस्सी) नह् (बाँधना) धातु से ष्ट्रन्, 'नहो धः' से ह् का ध, (झषस्तथेत्यादि सूत्र से ष्ट्रन् के तकार को ध, पूर्व धकार को 'झरोझरीत्यादि' सूत्र से दकार, स्त्रीत्व विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होकर 'नद्ध्री' रूप बनता है।

अर्तीति—ऋ, लू, धू, सू, खन, सह, चर इन धातुओं से इत्र प्रत्यय हो।

अरित्रम् (नाव चलाने का डंडा) ऋ (गत्यर्थक) इत्र प्रत्यय, गुण होकर अर्+इत्र, नपुं० प्र० एक वचन में उक्त रूप बनता है,

लवित्रम् (चाकू, छुरी आदि) लू (छेदना काटना) इत्र, गुण अवादेश होकर 'लवित्रम्' रूप सिद्ध होता है।

धवित्रम्—(पंखा) धूञ् (कँपाना) इत्र, गुण अवादेश होकर 'धवित्रम्' रूप बनता है।

कहीं 'धुवित्रं व्यजनं तद् यद्रचितं मृगचर्मणा' इस कोष के अनुसार धुवित्रम् भी मिलता है। धू+इत्र इस दशा में धू धातु के कुटादिगण में होने से इत्र प्रत्यय को ङित् के समान मान लेने के कारण 'विङति च' से निषेध होने से गुण न होगा तब ऊकार को उवङ् होकर धुवत्रिम्, रूप बनेगा।

सवित्रम्—(उत्पत्ति साधन) सू+इत्र गुणावादेश, होकर सवित्रम्, इसी प्रकार खन् (खोदना) खन्+इत्र=खनित्रम् सह (सहना) सह+इत्र=सहित्रम्, चर्+इत्र=चरित्रम्, रूप बनेंगे। इत्र प्रत्यायान्त शब्द नपुंसकलिंग में आते हैं।

पुव इति—संज्ञा अर्थ में पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो।

पवित्रम्—(पवित्र करने का साधन) पूञ् (पवित्र करना) धातु से इत्र प्रत्यय पू+इत्र, गुणावादेश होकर **पवित्रम्** रूप बनता है। यह शब्द 'दर्भ की बनी उस पवित्री की संज्ञा है, जो यज्ञादि के समय अनामिका में धारण की जाती है।

इति पूर्वकृदन्तम्

अथोणादयः

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥१॥

करोतीति कारुः, वातीति वायुः, पायुर्गुदम्, जायुरौषधम्, मायुः पित्तम् स्वादुः साध्नोति परकार्यमिति साधुः, आशु शीघ्रम् ।

जिन प्रत्ययों के आदि में उण् प्रत्यय हैं वे उणादि प्रत्यय कहलाते हैं । यद्यपि ये प्रत्यय भी कृदन्त प्रत्ययों के अन्तर्गत माने जाते हैं । तथापि अष्टाध्यायी से पृथक् लगभग ७५९ सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट होते हैं ।

कृवेति—कृ (करना) वा (गति) पा (पीना) जि (जीतना) मि (फेंकना) स्वद् (चखना) साध् (सिद्ध करना, बनाना) अश् (व्याप्त होना) इन धातुओं से उण् प्रत्यय हो ।

कारुः (शिल्पी) कृ+उण्, वृद्धि, कारुः, करोतीति कारुः ।

वायुः (वाति इति जो बहती है) वा+उण् "आतो युक् चिण् कृतोः" युक् का आगम होकर 'वायुः' इसी प्रकार 'पा' से पायुः ।

जायुः (जयति रोगान् जो रोगों को जीतती है) जि+उण्, वृद्धि, आय आदेश होकर 'जायः' औषधि ।

मायुः (मिनोति प्रक्षिपति ऊष्माणं शरीरे) जो शरीर में गर्मी पैदा करे, पित्त । मि (प्रक्षेपण) धातु से उण्, वृद्धि, अयादेश मायुः ।

स्वादु—(स्वादिष्ट) स्वदते जो स्वाद में अच्छा लगता है । स्वद्+उण् उपधा वृद्धि, स्वादुः ।

साधुः (सज्जन) साध्नोति पर कार्यम् इति जो दूसरे के काम को सिद्ध करता है । साध्+उण्=साधुः ।

आशु (अश्नुते-व्याप्नोति-शीघ्र होने वाला) अश+उण्, वृद्धि, आशु, यह

उणादयो बहुलम् ।३।३।१।।

एते वर्तमाने संज्ञायाम् च बहुलं स्युः । केचिदविहिता अप्यूह्याः ।

संज्ञासु धातु रूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।

कार्याद्विद्यादनूबन्धमेच्छास्त्र मुणादिषु ।।

शब्द शीघ्रता अर्थ में अव्यय है । पर विशेषण रूप में प्रयुक्त होने पर तीनों लिङ्गों में आता है ।

उणादय इति—उण् आदि प्रत्यय वर्तमान काल में और संज्ञा अर्थ में बहुल रूप में होते है ।

केचिदिति—यहाँ बहुल ग्रहण सामर्थ्य से कुछ उन प्रत्ययों का भी ग्रहण कर लेना चाहिए जिनका किन्हीं सूत्रों द्वारा विधान नहीं किया गया है ।

संज्ञास्विति—संज्ञा शब्दों में जिस धातु की सम्भावना हो उसकी प्रथम कल्पना करनी चाहिए, तदन्तर शेख भाग को प्रत्यय समझना चाहिए, प्रत्ययों में भी कार्य अर्थात् गुण वृद्धि सम्प्रसारण आदि देखकर अनुबन्धों की कल्पना कर लेनी चाहिए । उणादि प्रत्यय जानने का यही नियम है ।

उदाहरणार्थ 'शङ्कुला' (सरौता) शब्द में, शब्द के आदि भाग में शङ्क धातु को मानकर उत्तर भाग में उलच् प्रत्यय मानकर इस शब्द की व्युत्पत्ति कर लेनी चाहिए । इसी प्रकार अन्य शब्दों में प्रकृति प्रत्यय तथा अनुबन्धों की कल्पना कर लेनी चाहिए ।

उणादि प्रत्यय यद्यपि अष्टाध्यायी के सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट नहीं है, तथापि पाणिनि आचार्य को ये प्रत्यय मान्य है, इसका प्रमाण उनका 'उणादयो बहुलम्' यह सूत्र ही है, जो कि उणादि प्रत्ययों के विषय में नियम निर्धारित करता है ।

इति उणादयः

अथोत्तर कृदन्तम्

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ।३।४।१०।।

क्रियार्थायां क्रियाया मुपपदे भविष्यदर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम् । कृष्णं द्रष्टुं याति । कृष्णं दर्शको याति ।

कृत् प्रत्ययों के लिए पूर्व कृदन्त और उत्तर कृदन्त ये दो प्रकरण हैं। प्रथम में होने वाले प्रत्यय प्राय: किसी न किसी कारक के अर्थ में होते हैं, द्वितीय में वे प्रत्यय हैं जो प्राय: 'भाव' में होते है तथा इन प्रत्ययों से अव्यय पद भी बनते हैं।

तुमुन्निति—एक क्रिया की सिद्धि के लिए दूसरी क्रिया के उपपद रहते, भविष्यत् अर्थ में धातु से तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हों।

(यहाँ उपपद का अर्थ है क्रिया का आगे या पीछे समीप में उपस्थित रहना। जिस क्रिया की सिद्धि के लिये अन्य क्रिया की जाती है उससे ही ये प्रत्यय होते हैं।)

मान्तत्वादिति—मकारन्त होने के कारण तुमुन् (जिसमें केवल 'तुम्' शेष रहता है) प्रत्ययान्त शब्द अव्यय पद बनते हैं। 'कृन्मेजन्त:' सूत्र के अनुसार मान्त एवं एजन्त कृदन्तों की अव्यय संज्ञा होती है। अव्ययकृतो भावे सूत्र नियम के अनुसार तुमुन् प्रत्यय भाव अर्थ में होता है।

(ण्वुल् प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में होता है।)

कृष्णं द्रष्टुं याति—(कृष्ण को देखने के लिए जाता है) यहाँ जाना क्रिया दर्शन क्रिया के लिये है। अत: जाना क्रिया (याति) दर्शन क्रिया (दृश्) के लिए है। इसलिये 'याति' इस क्रिया के समीप रहते दृश् धातु से तुमुन् प्रत्यय, "सृजिदृशो र्झल्यमकिति" सूत्र से दृश् धातु स्थित ऋकार के आगे अम् का आगम, ऋकार को 'अ' आगे रहने पर यण्-रेफ होने पर द्रश्+तुम् इस स्थिति में "व्रश्चभ्रस्जेत्यादि" सूत्र से शकार को षकार, ष्टुत्व विधि से 'तुम्' के तकार को टकार होने पर 'द्रष्टुम्' यह अव्यय पद बनता है।

कालसमयवेलासु तुमुन् ।३।३।१६७।।

कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् । कालःसमयो वेला वा भोक्तुम् ।

भावे ।३।३।१८।।

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् । पाकः ।

(यहाँ तुमुन् प्रत्यय के भविष्यत् काल में विधान करने का तात्पर्य यह है कि इसके प्रयोग में उपपद क्रिया की अपेक्षा तुमुन्नन्त क्रिया भविष्य काल में ही होती है, प्रकृत उदाहरण में याति (वर्तमान) की अपेक्षा दर्शन क्रिया भविष्य में ही होगी। न केवल वर्तमान, भूतकाल में भी प्रयुक्त इन रूपों में भविष्यत् का ही तात्पर्य रहता है—कृष्णं द्रष्टुमगच्छत्। यहाँ भी गमन क्रिया की अपेक्षा दर्शन क्रिया भविष्य में होगी।)

('न लोकेत्यादि' सूत्र से षष्ठी का निषेध होने पर कृष्णम् यहाँ पर कर्म में द्वितीया विभक्ति है।)

कृष्णं दर्शको याति—(कृष्ण को देखने वाला जाता है) यहाँ दृश् से ण्वुल् करने पर वु को अक आदेश, ऋकार को अर् गुण, 'दर्शक' इस कृदन्त प्रातिपदिक से 'दर्शकः' रूप बनता है।

ण्वुल् प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग लिंगत्रय में होता है। "अकेनोर्भविष्य-दाधमर्ण्ययोः" सूत्र से षष्ठी का निषेध होने पर यहाँ भी कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

कालेति—काल, समय, वेला इन शब्दों के उपपद रहते धातु से **तुमुन्** प्रत्यय हो।

(सूत्र में काल समय आदि पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से तात्पर्य है कि कालार्थक शब्दों के उपपद रहते तुमुन् प्रत्यय हो।)

काल : समयो, वेला वा भोक्तुम् यहाँ इन कालार्थक शब्दों के योग में भी भुज् धातु से तुमुन् प्रत्यय, लघूपध गुण, 'चोः कुः' कवर्ग-गकार तथा उसे चर्त्व ककार होकर 'भोक्तुम्' रूप बनता है।

भाव इति—उस धातु का अर्थ यदि वाच्य हो जो सिद्ध (पूर्ण) अवस्था को प्राप्त हो चुकी है, तो उस धातु से घञ् प्रत्यय हो।

अर्थात् 'भाव' साध्यावस्थापन्न तो तिङन्त में रहता है पर कृदन्त में यह भाव सिद्धावस्थापन्न हो जाता है, अतएव भाव में होने वाले घञ् आदि प्रत्ययों से सिद्धावस्थापन्न भाव की प्रतीति होती है जब कि तिङन्त क्रियाओं से वह साध्या-वस्था में ही रहता है। 'पचति' इस तिङन्त क्रिया से साध्यावस्था ही प्रतीति होती है, जबकि धात्वर्थ की पूर्ण सिद्धता कृदन्त शब्दों से प्रकट होती है, इसीलिए कृदन्त

अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ।३।३।१९।।

कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात् ।

घञि च भावकरणयोः ।६।४।१७।।

रञ्जेर्नलोपः स्यात् । रागः । अनयोः किम्-रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः ।

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ।३।३।४१।।

एषु चिनोते र्धञ् आदेश्च ककारः । उपसमाधानं राशीकरणम् । निकायः । कायः । गोमय-निकायः ।

शब्दों से धात्वर्थ भाव, 'द्रव्य' के रूप में प्रकट होता है, "कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते" फलतः घञन्त आदि कृदन्त शब्दों से लिग व वचन का भी योग हो जाता है।

पाकः—(पकने का कार्य) पच् धातु से भाव में घञ् (अ) प्रत्यय, ञित् होने से उपधा वृद्धि, घित् होने से "चजोः कु घिण्यतोः" से चकार को ककार होकर पाक कृदन्त से 'पाकः' रूप बनता है।

(घञ् प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिग भाव वाचक संज्ञाएँ होती है।)

अकर्तरीति—कर्त्ता से भिन्न कारक अर्थ में संज्ञा में धातु से घञ् प्रत्यय हो।

('भावे' सूत्र द्वारा निर्दिष्ट घञ् प्रत्यय भाव में होता है पर इस सूत्र द्वारा विहहित घञ् कारक में होता है।

घञीति—भाव और करण कारक में विहित घञ् परे रहते रञ्ज् धातु के नकार का लोप हो।

रागः—भाव में घञ् होने पर इसका अर्थ होगा रंगना और करण में होने पर अर्थ होगा 'रंग' जिससे रँगा जाय। अतः यहाँ 'भावे' सूत्र से 'रञ्जनम् रागः' इस अर्थ में, और रज्यते अनेन इति रागः इस अर्थ में (रँगने का साधन) अकर्तरीति सूत्र से घञ् प्रत्यय होने पर दोनों ही अर्थों में घञि चेति सूत्र से नकार लोप, ञित् परे रहते उपधा वृद्धि, जकार को 'ग' होकर रागः रूप बनेगा।

अनयोः किमिति—भाव और करण अर्थ में हुये घञ् परे रहते ही नकार का लोप होता है। अतः—

रङ्गः—रज्यति अस्मिन्—जिसमें लोग अनुरञ्जित होते हैं, अर्थात् रङ्ग भूमि या रङ्गशाला) यहाँ अधिकरण में घञ् होने से न लोप न होगा, जकार का 'चजोः' सूत्र से गकार, नकार का अनुस्वार पर सवर्ण होकर रङ्गः यह रूप बनेगा।

निवासेति—निवास, चिति-चयन, शरीर और उपसमाधान अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो, तथा आदि वर्ण को ककार हो।

एरच् ।३।३।५६॥

इवर्णान्ताद् अच् । चयः । जयः ।

ॠदोरप् ।३।३।५७॥

ॠदन्तादुवर्णान्ताद् अप् । करः । गरः यवः लवः । स्तवः । पवः ।

उणसमाधानमिति—उपसमाधान का अर्थ है—राशीकरण—ढेर लगाना ।

निकायः—(निवास-घर) नि उपसर्ग पूर्वक चिञ् (चुनना) धातु से निवास अर्थ में प्रकृत सूत्र से घञ् आदि चकार को ककार, ञित् प्रत्यय परे होने से इकार को ऐ वृद्धि, आय् आदेश होकर निकाय इस कृदन्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'निकायः' रूप बनता है ।

कायः—(चीयते-एकत्री क्रियतेऽस्थ्यादिकमत्र अर्थात् जिसमें हड्डी आदि एकत्र किये जायँ अर्थात् शरीर) यहाँ पूर्ववत् चि + घञ्, ककारादेश, वृद्धि, आयादेश होकर 'कायः' रूप बनता है ।)

गोमयनिकायः—'गोबर का ढेर' यहाँ गोमय पूर्वक चि धातु से पूर्ववत् कार्य होकर 'गोमयनिकायः' रूप बनता है ।

(चिति = चयन का उदाहरण है 'आकायम् अग्निं चिन्वीत ।)

एरजिति—इवर्णान्त धातुओं से भाव में अच् प्रत्यय हो ।

चयः—चिञ् धातु से अच् प्रत्यय, गुण अयादेश होकर, चयः, एवम् जयः—जि धातु से अच् गुण अयादेश होकर रूप बनते हैं । भाव में प्रत्यय होने के कारण इनका क्रमशः अर्थ है – चुनना, जीतना ।

ॠदोरिति– दीर्घ ॠकारान्त तथा उवर्णान्त धातुओं से भाव में अप् प्रत्यय हो ।

करः (बिखेरना या हाथ) कॄ (फेंकना) धातु से अप्, गुण, करः ।
एवं गरः—(निगलना) गॄ (निगल जाना) धातु से अप्, गुण, गरः ।
एवं यवः—(मिलना या जव) यु (मिलना) धातु से अप् गुणावादेश, यवः ।
एवं लवः—(काटना, लेश या भाग) लू (काटना) धातु से अप् गुणावादेश,
एवं पवः—(पवित्र करना) पू (पवित्र करना) धातु से अप् गुणावादेश,
एवं स्तवः—(स्तुति, स्तोत्र) स्तु (स्तुति करना) धातु से अप् गुणावादेश होकर स्तवः रूप बनता है ।

अच् एवं अप् प्रत्यय घञ् के अपवाद हैं, इनसे बने शब्द भी भाववाचक पुंल्लिग संज्ञाएँ हैं ।

(वा) घञर्थे क विधानम् । प्रस्थः । विघ्नः ।

ड्वितः क्त्रिः ।३।३।८८।।

क्त्रेर्मम् नित्यम् ।३।३।२०।।

क्त्रि प्रत्ययान्तात् मम् निर्वृत्तेऽर्थे । पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । डुवप्-उप्त्रिमम् ।

वार्तिक—घञ् के अर्थ में अर्थात् जिस अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है उसी अर्थ में क प्रत्यय भी हो ।

(क प्रत्यय के कित् होने से गुण और वृद्धि का निषेध होगा ।)

प्रस्थः—(प्रतिष्ठन्ते धान्यान्यस्मिन्निति—अर्थात् धान्य जिसमें तोले जायँ—एक तौल का नाम, अथवा यस्मिन् जनाः प्रतिष्ठन्ते—जिसमें लोग प्रतिष्ठित हों—पर्वत शिखर) प्र पूर्वक स्था धातु से प्रकृत वार्तिक द्वारा अधिकरण में क प्रत्यय, प्र स्था+क (अ), कित् परे होने से 'आतो लोप इटि च' से आकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

विघ्नः—"विशेषेण घ्नन्ति मनांसि यस्मिन्" जिसमें मन विशेष रूप से मर जाते हैं—अर्थात् विघ्न-बाधायें) वि+हन् धातु से क प्रत्यय, गमहनजनेत्यादि' सूत्र से हकारोत्तर स्थित अकार लोप 'वि ह् न्+अ' इस स्थिति में 'होहन्तेर्ञ्णिन्नेषु' से हकार को घकार, 'विघ्न' इस अकारान्त कृदन्त प्रातिपदिक से विघ्नः रूप बनता है ।

ड्वित इति—जिस धातु के डु की इत्संज्ञा हुई हो, ऐसी धातु से क्त्रि प्रत्यय हो, भाव में ।

क्त्रेरिति—क्त्रि प्रत्ययान्त से नित्य मप् प्रत्यय हो, निष्पन्न या सिद्ध होना अर्थ में ।

(क्त्रि प्रत्यय में 'त्रि' शेष रहता है, कित् होने से गुणादि नहीं होते ।)

पक्त्रिमम्—पाकेन निर्वृत्तम् अर्थात् पाक से निष्पन्न या पका हुआ, पच् धातु से 'डु' की इत्संज्ञा होती है, (डुपचष् पाके धातु है) अतः पच् धातु से ड्वितः क्त्रि सूत्र से क्त्रि प्रत्यय, "चोः कुः" कुत्व, पक्त्रि से पुनः क्त्रेर्मम् नित्यम् सूत्र से मप् प्रत्यय होने पर 'पक्त्रिम' इस कृदन्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में पक्त्रिमम् रूप बनता है ।

उप्त्रिमम्—वापेन निर्वृत्तम् अर्थात् बोने से निष्पन्न डुवप् (बोना-उगाना) धातु के (डु की इत्संज्ञा होने से) प्रकृत सूत्र से क्त्रि प्रत्यय, तथा क्त्रेरिति सूत्र से मप् होकर वप्त्रिम, प्रत्यय के कित् होने से 'वचिस्व पीत्यादि' सूत्र से वकार को सम्प्रसारण होकर उप्त्रिम प्रातिपदिक से उक्त रूप बनता है ।

ट्वितोऽथुच् ।३।३।८९।।

टुवेपृ कम्पने । वेपथुः ।

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ।४।३।९०।।

यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विश्नः । प्रश्नः । रक्ष्णः ।

स्वपो नन् ।३।३।९१।।

स्वप्नः ।

उपसर्गे घोः किः ।४।४।९२।।

प्रधिः । उपधिः ।

ट्वित इति—टु इत्संज्ञक धातुओं से अथुच् प्रत्यय हो ।

वेपथुः—(कम्पन) टुवेपृ (काँपना धातु से 'टु' इत् होने के कारण प्रकृत सूत्र से अथुच् (अथु) प्रत्यय होकर 'वेपथुः' बनता है ।

यजेति—यज्, याच्, यत्, विच्छ, प्रच्छ रक्ष् धातुओं से नङ् प्रत्यय हो, भाव में ।

यज्ञः—(याग) यज् (हवन करना) धातु से नङ् प्रत्यय, नकार को श्चुत्वविधि से अकार, ज् तथा ञ् मिलकर 'ज्ञ' बनकर उक्त रूप बनता है ।

याच्ञा—(माँगना) याच् धातु से पूर्ववत् नङ्, श्चुत्व, न् को ञ् टाप् याच्ञा, एवं यत्नः (यत्न) यत् धातु से नङ्, प्रत्यय होकर 'यत्नः' रूप बनता है । एवं विश्नः (प्रताप-कान्ति गति) बिच्छ (जाना) धातु से नङ्, 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' से च्छ को शकार होकर उक्त रूप बनता है ।

प्रश्नः—(पूँछना) प्रच्छ+नङ् पूर्ववत् सिद्ध होता है ।

रक्ष्णः—(रक्षा) रक्ष्+नङ्, णत्व होकर 'रक्ष्णः' रूप बनता है ।

(क्त्रि प्रत्ययान्त शब्दों में विशेष्यानुसार लिङ्ग होता है, पर अथुच् और नङ् प्रत्ययान्त पुल्लिग होते हैं ।)

स्वप इति—स्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो ,

स्वप्नः—स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होकर 'स्वप्नः' बनता है ।

उपसर्गे इति—उपसर्ग पूर्वक घु संज्ञक धातुओं से कि प्रत्यय हो ।

(कि प्रत्यय का 'इ' शेष रहता है । दा रूप एवं 'धा' रूप धातुओं की घु संज्ञा होती है । प्रत्ययान्त शब्द भी पुल्लिग होते हैं ।)

प्रधिः—(पहिये का घेरा) प्र पूर्वक धा धातु से कि प्रत्यय, आकार लोप, होकर प्रधिः रूप बनाता है ।

उपधिः—(कपट-छल) उप+धा+कि=उपधिः पूर्ववत् बनेगा ।

स्त्रियां क्तिन् ।४।४।९४।।

स्त्री लिंगे भावे क्तिन् स्यात् । घञोऽपवादः । कृतिः । स्तुतिः ।

(वा) ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद् वाच्यः । तेन नत्वम्-कीर्णिः । लूनिः । धूनिः । पूनिः ।

(वा) संपदादिभ्यः क्विप् । संपत् । विपत् । आपत् । क्तिन्नपोष्यते— सम्पत्तिः । विपत्तिः । आपत्तिः ।

स्त्रियामिति– स्त्रीलिंग में भाव में क्तिन् प्रत्यय हो ।

(यह घञ् प्रत्यय का अपवाद है ।)

कृतिः – (कार्य) कृ धातु से क्तिन् (ति) प्रत्यय, कित् होने से गुणाभाव, कृति इस कृदन्त प्रातिपदिक से प्र० एक व० में 'कृतिः' रूप बनता है ।

स्तुतिः —(स्तवन) स्तु से क्तिन्, गुणाभाव, 'स्तुतिः' रूप बनता है ।

वार्तिक—ॠकारान्त और लूञ् आदि धातुओं से क्तिन् प्रत्यय को निष्ठा संज्ञक (क्त क्तवतु) प्रत्ययों के समान कहना चाहिये । अर्थात् निष्ठा प्रत्यय परे जो नकारादि आदेश होते हैं, वे क्तिन् परे भी हों ।

कीर्णिः—(विक्षेप-फैलाना) कॄ (विक्षेपण करना) धातु से क्तिन् (ति) प्रत्यय, 'ॠत् इद्धातोः' ॠकार को इत्, रपर्, किर्+ति इस स्थिति में 'हलि च' से इकार को दीर्घ, निष्ठावद्भाव होने से 'रदाभ्याम्' इत्यादि सूत्र से रेफ परे तकार को नकार, णत्व 'कीर्णिः' रूप बनता है ।

लूनिः=(काटना) लूञ् (छेदन) धातु से क्तिन्, निष्ठावद्भाव, 'ल्वादिभ्यः' से नकारादेश होकर 'लूनिः' रूप बनता है ।

धूनिः (काँपना) 'पूर्ववत् क्तिन्' नकारादेश, 'धूनिः' इसी प्रकार

पूनिः (पवित्रता) पूञ्+क्तिन्, नकारादेश, पूनिः रूप बनता है ।

वार्तिक—सम् आदि उपसर्ग पूर्वक पद् धातु से क्विप् प्रत्यय हो ।

संपत्—सम् पूर्वक पद् (गति) धातु से क्विप्, सर्वापहार लोप, सम्पद् प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग, प्रथमैक वचन में 'सम्पद्' बनता है । इसी प्रकार

विपत्—वि+पद्+क्विप्=विपद् ।

आपत्—आ+पद्+क्विप्=आपद् ।

क्तिन्नपीति—इन उपसर्गों के पूर्व रहते पद् धातु से क्तिन् प्रत्यय भी होता है ।

संपत्तिः—सम्+पद्+क्तिन्, दकार को चर्त्व से तकार, सम्पत्तिः, इसी प्रकार विपत्तिः और आपत्तिः भी रूप बनते हैं ।

ऊति यूति जूति सातिहेति कीर्तयश्च ।४।४।६७।।

एते निपात्यन्ते ।

ज्वरत्वर स्त्रिव्य विमवामुपधायाश्च ।६।४।२०।।

एषा मुपधावकारयोरुठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ किङति च ।

ऊतीति—ऊति, यूति, जूति, साति, हेति और कीर्ति इन क्तिन् प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन किया जाता है ।

(तात्पर्य यह कि इनमें होने वाले यदि किसी कार्य का विधान किसी सूत्र द्वारा नहीं किया गया है, तो उसे निपातन से सिद्ध किया जाता है ।)

ऊतिः—(रक्षा) अव् (रक्षा करना) धातु से क्तिन्, ज्वरत्वर सूत्र से (जिसका व्याख्यान आगे किया जायेगा) अकार तथा वकार को ऊठ आदेश, (यहाँ 'स्त्रियां क्तिन्' से यद्यपि क्तिन् प्रत्यय सिद्ध था तथापि सूत्र में ऊति के ग्रहण का फल है, क्तिन् प्रत्यय परे उदात्त स्वर होना अतः उदात्त स्वर का ही निपातन होता है) इस प्रकार 'ऊतिः' रूप बनता है ।

यूतिः (मिश्रण) यु (मिश्रण करना) धातु से क्तिन्, होकर यहाँ निपातन से दीर्घ होता है । इसी प्रकार

जूतिः—(वेग) जु धातु से क्तिन् प्रत्यय, निपातन से दीर्घ होकर 'जूतिः' बनता है ।

सातिः—(अन्त, अवसान) षो (अन्तःकर्म) धातु से क्तिन् यहाँ 'द्यतिस्यति' इत्यादि सूत्र से इत्व प्राप्त था उसके अभाव का निपातन हुआ, तब 'आदेच' इत्यादि सूत्र से धातुगत ओकार को आकार होकर 'सातिः' रूप बना है । अथवा 'सन्' धातु से क्तिन् ''जनसन'' सूत्र से आत्व करने पर 'सातिः' रूप बनता है, इस दशा में स्वरार्थ निपातन माना जायेगा ।

हेतिः—(अस्त्र शस्त्र) हन् धातु से क्तिन्, निपातन से नकार को इकार करने पर हकरोत्तरवर्ती अकार के साथ गुण होकर 'हेतिः' बनता है । अथवा 'हि' धातु से क्तिन्, गुण निषेध को बाधकर निपातन से गुण करके 'हेतिः' बनता है ।

कीर्तिः—(यश) ण्यन्त चुरादि कॄ त् (संशब्दन, ख्याति) धातु से, ण्यन्त होने के कारण 'ण्यासश्रन्थो युच्' सूत्र से प्राप्त युच् प्रत्यय का अभाव तथा निपातन से क्तिन्, 'उपधायाश्च' सूत्र से ऋकार को इर् 'हलि च' से दीर्घ होकर 'कीर्त्तिः' रूप बनता है ।

ज्वर त्वरेत्ति—ज्वर, त्वर, स्रिव, अव, और मव धातुओं के वकार तथा तग्दत अकार को ऊठ् होता है, अनुनासिक क्वि तथा झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहने पर ।

अतः क्विप् । जूः । तूः । स्रूः । ऊः । मूः ।

इच्छा ।३।३।१०१।।

इषेर्निपातोऽयम् ।

अ प्रत्ययात् ।३।३।१०२।।

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् । चिकीर्षा । पुत्रकाम्या ।

अतः क्विप्—इस सूत्र से क्विप् प्रत्यय परे रहते ज्वर् आदि को ऊठ् विधान किया गया है अतः इस सूत्र से क्विप् प्रत्यय भी होगा ।

जूः—(रोग) ज्वर् (रोगे) धातु क्विप्, सर्वापहार लोप, वकार तथा अकार (उपधा) को ऊठ् आदेश 'जूर्' कृदन्त प्रातिपदिक से प्र० एक० व० वचन में 'जूः' इसी प्रकार 'त्वर' (शीघ्र करना) धातु से क्विप् ऊठ् होकर 'तूः' (शीघ्रकर्त्ता) रूप बनता है ।

स्रूः (शोषक या गन्ता) स्रिव् (गति या शोषण) धातु से क्विप्, लोप, ऊठ् (इकार तथा वकार दोनों को) 'स्रूः' रूप बनता है ।

ऊः (रक्षक) अव् (रक्षा करना) धातु से क्विप् लोप, अकार वकार को ऊठ्, ऊः' रूप बनता है ।

मूः (बांधने वाला) मव् (बांधना) धातु से क्विप्, लोप, वकाराकार को ऊ 'मूः' रूप सिद्ध होता है ।

(इन प्रयोगों में क्विप् प्रत्यय, भाव में न होकर कर्त्ता में होता है, तथा इसका स्त्रीलिङ्ग से भी कोई सम्बन्ध नहीं है ।)

इच्छेति—इष् (इच्छा करना) धातु से इच्छा शब्द की सिद्धि निपातन से होती है ।

इच्छा—इष् धातु से निपातन द्वारा भाव में श प्रत्यय होता हैं (श् की इत् संज्ञा होकर 'अ' शेष रहता है) शित् होने से 'सार्वधातुके यक्' से यक् प्राप्त था उसका इससे अभाव निपातन होकर 'इषुगमियमां छः' सूत्र से षकार को छकार होता है, तुक का आगम, श्चुत्व, इच्छ से स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् होकर 'इच्छा बनता है ।

अप्रत्ययादिति—भाव में तथा कर्तृभिन्न कारक में प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीलिंग में 'अ' प्रत्यय हो ।

(धातुओं या सुबन्त शब्द से प्रत्यय लगाकर बनी हुई धातुओं से यह प्रत्यय होता है, सुबन्त शब्दों से प्रत्यय लगाकर बनी धातुएँ, नाम धातु कहलाती हैं ।)

चिकीर्षा (करने की इच्छा) कृ धातु से सन् प्रत्यय होकर चिकीर्ष् इस प्रत्ययान्त धातु से भाव में 'अ' प्रत्यय होकर चिकीर्ष+अ इस स्थिति में 'आतो लोपः'

गुरोश्च हलः ।३।३।१३०।।

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियाम् 'अ' प्रत्ययः स्यात् । ईहा ।

ण्यासश्रन्थो युच् ।३।३।१०७।।

अकारस्यापवादः । कारणा । हारणा ।

नपुंसके भावे क्तः ।३।३।११४।।

ल्युट् च । हसितम् । हसनम् ।

से अकार लोप होकर चिकीर्ष से स्त्रीलिंग में टाप् प्रत्यय होने से चिकीर्षा' रूप बनता है।

पुत्रकाम्या—(पुत्र की इच्छा) 'आत्मनः पुत्रम् इच्छति' इस अर्थ में पुत्र शब्द से काम्यच् प्रत्यय होकर पुत्रकाम्य यह प्रत्ययान्त धातु बनता है, इससे पूर्ववत् 'अ' प्रत्यय होकर 'पुत्रकाम्या' बनता है।

गुरोरिति—गुरुमान्, (गुरु वर्ण वाला) तथा हलन्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में भाव में 'अ' प्रत्यय, होता है।

ईहा (इच्छा) ईह् (इच्छा करना) धातु दीर्घवर्ण वाला तथा हलन्त भी है। अतः इससे 'अ' प्रत्यय, टाप् होकर 'ईहा' रूप बनता है।

ण्यासेति—ण्यन्त (जिसके अन्त में णि प्रत्यय हो) आस् तथा श्रन्थ धातुओं से युच् प्रत्यय हो, स्त्रीलिङ्ग, में भाव में।

कारणा—(कराना या 'कारणा तु यातना तीव्र वेदना' इस अमर कोष बचन से, यातना) कृ धातु से णिच् प्रत्यय तथा वृद्धि होकर कारि, यह ण्यन्त धातु बनता है, इससे प्रकृत सूत्र से युच् प्रत्यय करके तथा यु को 'युवोरनाकौ' से अन आदेश करने पर कारि+अन इस स्थिति में 'णेरनिटि' सूत्र से णि लोप करने पर कारन, णत्व, टाप् 'कारणा' बनता है।

हारणा—(हरण) ण्यन्त हारि+युच्, अन, णि लोप होकर पूर्ववद् 'हारणा' रूप बनता है। आस् धातु से आसना (स्थिति) श्रन्थ से 'श्रन्थना' रूप बनते हैं।

नपुंसके इति—नपुंसकलिङ्ग भाव में क्त प्रत्यय होता है।

(अब तक भाव में होने वाले प्रत्यय पुल्लिङ्ग व स्त्रीलिङ्ग में बताये गये थे, अब यहाँ से नपुंसक लिङ्ग के भाव प्रत्ययों का निरूपण किया जाता है।

ल्युट् चेति—नपुंसक भाव में ल्युट् प्रत्यय भी होता है।

हसितम्—(हँसना) हस धातु से 'नपुंसके' सूत्र से भाव में क्त प्रत्यय, वलादि आर्ध धातुक 'त' परे रहते इट्, 'हसित' से हसितम् तथा हसनम्—(हँसना) 'ल्युट् च' से ल्युट् प्रत्यय करने पर अन आदेश होकर 'हसनम्' भी रूप बनता है।

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ।३।३।११८।।

छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ।६।४।९६।।

द्विप्रभृत्युप सर्गहीनस्य छादे र्ह्रस्वो घे परे । दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः । आकुर्वन्त्य स्मिन्निति आकरः ।

अवे तॄस्त्रोर्घञ् ।३।३।१२०।।

अवतारः कूपादेः । अवस्तारो जवनिका ।

हलश्च ।३।३।१२१।।

हलन्ताद् घञ् । घापवादः । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरिति—अपामार्गः ।

पुंसीत—पुल्लिग में संज्ञा अर्थ में प्रायः घ प्रत्यय हो, करण तथा अधिकरण में ।

छादेरिति—दो या दो से अधिक (द्विप्रभृति) उपसर्गों से रहित छादि धातु को ह्रस्व होता है घ परे रहते ।

दन्तच्छदः—(ओष्ठ) दन्ताः छाद्यन्ते अनेन-दांत जिससे ढके जायें) दन्त उपपद छद (अपवारण, ढकना) धातु से णिच् प्रत्यय, वृद्धि होकर छादि धातु बनता है इससे "पुंसि संज्ञायाम्" सूत्र से करण में घ प्रत्यय, होकर "छादेः" सूत्र से धातु के आकार को ह्रस्व, (घ का 'अ' शेष रहता है) 'छाद् इ अ' इस स्थिति में 'णेरनिटि' से णि लोप, छद+अ इस प्रकार दन्तच्छद (छ परे तुक् श्चुत्व होकर) दन्तच्छदः' रूप बनता है ।

आकरः—(खान-खनि) आकुर्वन्ति-सर्वतः आगत्य कार्यं कुर्वन्ति जनाः अस्मिन् अर्थात् जहां सब ओर से लोग आकर काम करें । आ+कृ यहाँ अधिकरण अर्थ में "पुंसि" सूत्र से घ प्रत्यय ऋकार को अर् गुण होकर 'आकरः' रूप बनता है ।

(घ प्रत्ययान्त शब्द भी घञ् की भाँति पुल्लिग ही होते हैं ।)

अवे इति—अव उपसर्ग पूर्वक तॄ और स्तॄ धातुओं से घञ् प्रत्यय करण और अधिकरण में हों संज्ञा में ।

अवतारः—(कूप आदि का सोपान मार्ग या घाट) अवतरन्ति जना यत्र-जहाँ लोग उतरते हैं । अव पूर्वक तॄ (तैरना) धातु से घञ्, ञित् होने से ॠ को आर् वृद्धि होकर 'अवतारः' यह रूप बनता है ।

अवस्तारः—(जवनिका, पर्दा) अव उपसर्ग पूर्वक स्तॄ (आच्छादन करना) धातु से घञ् प्रत्यय, ऋकार को आर् वृद्धि होकर 'अविस्तारः' रूप बनता है ।

हलश्चेति—हलन्त धातु से घञ् प्रत्यय हो । उक्त सूत्र से प्राप्त घ प्रत्यय का यह अपवाद है ।

ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्रा कृच्छ्रार्थेषु खल् ।३।३।१२६।

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् तयोरेवेति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रे—दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रे—ईषत्करः। सुकरः।

रामः—(रमन्ते योगिनः अस्मिन् जिसमें योगी जन रमते हैं अर्थात् ब्रह्म) रम् (क्रीडार्थक) धातु से अधिकरण में घञ् प्रत्यय, ञित् होने से उपधा वृद्धि, 'रामः' यह रूप बनता है।

अपामार्गः—अपमृज्यते व्याध्यादिः अनेन-जिससे व्याधि आदि दूर हो, शुद्ध हो, एक औषधि विशेष, जिसे 'चिरचिट' या 'सरफोंका कहा जाता है। अप् पूर्वक मृज् (शुद्ध करना) धातु से घञ्, 'मृजेर्वृद्धिः' सूत्र से ऋकार को आर् वृद्धि, 'चजोः' सूत्र से जकार को गकार आदेश, अप मार्ग+अ इस स्थिति में 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' सूत्र से उपसर्ग अप के अन्त्य 'अ' को दीर्घ होकर अपामार्गः रूप बनता है।

(यहाँ तक होने वाले भाव प्रत्ययों में क्तिन् आदि स्त्रीलिङ्ग तथा क्त व ल्युट् नपुंसकलिङ्ग में, शेष प्रत्यय घञ् व अच् अप् आदि पुल्लिग में होते हैं, इनसे बने शब्द भाव वाचक संज्ञा की तरह प्रयुक्त होते हैं।)

ईषदिति—कठिनता (दुःख) या सुख बोधक ईषत्, दुस् और सु उपसर्ग उपपद होने पर धातुओं से खल् प्रत्यय हो।

(खल् प्रत्यय में 'अ' शेष रहता है।)

करणेति—'करण और अधिकरण अर्थ में, इसकी निवृत्ति हो गई, अर्थात् अब खल् प्रत्यय करण और अधिकरण में न होंगे।

तयोरिति—'तयोरेव कृत्यक्त खलर्थाः' सूत्र के अनुसार खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में होंगे।

दुष्करः—कटो भवता—(आपका चटाई बनाना कठिन है) यहाँ 'कृच्छ्र' कठिनता अर्थ में है। कर्म में दुस् पूर्वक कृ धातु से खल् प्रत्यय, अर् गुण होकर, सकार को रुत्व, विसर्ग, षत्व होकर 'दुष्करः' बनता है।

ईषत्करः—(सहज में ही करने योग्य सरल) यहाँ सुख बोधक ईषत् पूर्वक कृ धातु से पूर्ववत् खल् होकर ईषत्करः बनता है।

सुकरः—(सुख पूर्वक करने योग्य) सु+कृ+खल्='सुकरः'।

(यहाँ कृ धातु के सकर्मक होने से कर्म में प्रत्यय है, अतः अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति है जिसका निर्देश 'भवता' इस शब्द के द्वारा किया गया है, 'कटः' यहाँ प्रथमा विभक्ति है क्योंकि कर्म के उक्त होने से कर्म में प्रथमा विभक्ति होती

आतो युच् ।४।३।१२८।।

खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ।

अलं खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ।३।४।१८।।

प्रतिषेधार्थयोऽलं खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । अमैवाव्ययेनेति नियमान्नोपपद समासः । दो दद्घोः—अलं दत्त्वा घुमास्थेतीत्वम्—पीत्वा खलु । अलं खल्वोः किम्—मा कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम्—अलंकारः ।

है । यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृतिः सूत्र से प्राप्त षष्ठी का 'न लोकेत्यादि सूत्र निषेध करता है ।)

आत इति - आकारान्त धातुओं से कठिनता व सरलता बोधक दुस् ईषत् सु उपपद रहते युच् प्रत्यय होता है ।

यह युच् प्रत्यय खल् प्रत्यय का बाधक है ।

ईषत्पानः—सोमो भवता (सोम पान करना आपके लिए सरल है) यहाँ पूर्ववत् ईषत् पूर्वक आकारान्त पा धातु से युच् प्रत्यय, यु को अन आदेश होकर 'ईषत्पानः' बनता है ।

(यहाँ भी प्रथमा व तृतीया का प्रयोग पूर्ववत् समझना चाहिये ।)

दुष्पानः सुपानः—(कठिनता से तथा सरलता से पीने योग्य) यहाँ भी पूर्ववत् खल् होकर उक्त रूप बनते हैं ।

अलंखल्वोरिति—प्रतिषेधार्थक अलं और खलु शब्द उपपद रहते धातुओं से क्त्वा प्रत्यय हो ।

प्राचामिति—सूत्र में 'प्राचाम्' (पूर्वाचार्यों के मत में) का ग्रहण केवल प्राचीन आचार्यों के प्रति आदर प्रदर्शन के लिये है, न कि विकल्प सूचनार्थ, जैसा कि 'लोपः शाकल्यस्य' अवङ् स्फोटायनस्य' आदि सूत्रों में शाकल्य, स्फोटायन आदि आचार्यों के नाम का ग्रहण विधि विकल्प के लिये होता है, क्योंकि इस प्रकरण में तो 'वासरूप' नियम के अनुसार विकल्प स्वतः सिद्ध है । यहाँ तो ल्युट् आदि प्रत्यय विकल्प से हो ही सकते है, अतः 'प्राचाम्' ग्रहण का प्रयोजन केवल आदर प्रदर्शन मात्र है ।

अमैवेति—"अव्यय के साथ यदि उपपद समास हो तो केवल अम् के साथ ही हो अन्य के साथ नहीं" इस नियम के कारण यहाँ उपपद समास नहीं होता, यद्यपि क्त्वा अव्यय है पर वह अम् नहीं है ।

अलं दत्त्वा—(मत दो) यहाँ प्रतिषेधार्थक अलं शब्द के उपपद रहते दा धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर 'दो दद्घोः' सूत्र से दा को दद् (दथ्) आदेश होकर चर्त्व होने पर 'दत्वा' बनता है ।

पीत्वा खलु—(मत पीओ) यहाँ भी प्रतिषेधार्थक खलु के उपपद रहते पा

समान कर्तृकयोः पूर्वकाले ।३।४।२१।।

समानकर्तृकयो र्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ।

धातु से क्त्वा प्रत्यय होकर, उसके कित् होने से (क्त्वा में केवल त्वा शेष रहता है क् इत् संज्ञक है) 'धुमास्था गापेत्यादि सूत्र से आकार को ईत्व होकर 'पीत्वा' बनता है।

(क्त्वा प्रत्ययान्त सभी शब्द "क्त्वात्तोसुनक सुनः" सूत्र से अव्यय होते हैं।

अलंखल्वोः किमिति—प्रकृत सूत्र द्वारा प्रतिषेधार्थक अलं और खलु के ही उपपद रहते क्त्वा प्रत्यय होता है अन्य प्रतिषेधार्थ 'मा' आदि के योग में नहीं अतः—

मा कार्षीत्—यहाँ कृ धातु से प्रतिषेधार्थक मा (माङ्) उपपद रहते हुए भी क्त्वा प्रत्यय नहीं हुआ है।

प्रतिषेधयोः किमिति—सूत्र द्वारा प्रतिषेधार्थक ही अलम् के योग में क्त्वा प्रत्यय होता है, अलं के अन्य-भूषण आदि अर्थों के साथ नहीं अतः—

अलङ्कार—(आभूषण) यहाँ अलं पूर्वक कृ धातु से क्त्वा प्रत्यय न होगा क्योंकि यहाँ अलं भूषणार्थक है, प्रतिषेध अर्थ में नहीं।

समान कर्तृकयोरिति—जहाँ दो या अधिक धात्वर्थों में एक (समान) ही कर्त्ता हो, वहाँ पूर्व काल में वर्तमान धातु से क्त्वा प्रत्यय हो, तात्पर्य यह कि जहाँ दो क्रियाएँ एक साथ हो रही हों, और उनका कर्त्ता एक ही हो अर्थात् एक ही कर्त्ता दो या तीन क्रियाओं का करने वाला हो तो जो क्रिया पहिले हो उससे क्त्वा प्रत्यय हो।

भुक्त्वा व्रजति—(खाकर जाता है) यहाँ भोजन व गमन क्रियाओं का एक ही कर्त्ता है, तथा भोजन क्रिया, गमन क्रिया से पूर्व काल में हो रही है अतः भुज् धातु से क्त्वा होकर, ज् को ग्, ग को क् होकर 'भुक्त्वा' रूप बनता है।

द्वित्वमिति—सूत्र में 'समान कर्तृकयोः' पद से सूचित दो वचन अविवक्षित है अर्थात् इसका प्रयोग किसी विशेष अभिप्राय से नहीं किया गया है यह आवश्यक नहीं कि जहाँ दो क्रियायें हो उनमें से पूर्वकालिक धातु से क्त्वा हो, अपितु तु जहाँ दो से अधिक भी क्रियायें हों, और उनका कर्त्ता एक ही हो तो उनमें से जो पूर्वकालिक क्रियायें होंगी उनसे क्त्वा प्रत्यय होगा। अतः—

भुक्त्वा पीत्वा व्रजति—यहाँ भुज् तथा पा दोनों से व्रजति के अपेक्षा पूर्वकालिक होने के कारण क्त्वा प्रत्यय होगा, 'पीत्वा' में 'घुमास्थेत्यादि सूत्र से ईत्व हुआ है।

न क्त्वा सेट् ।१।२।१८।।

सेट् क्त्वा किन्न स्यात् । शयित्वा । सेट् किम्—कृत्वा ।

रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६।।

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेः रलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः । द्युतित्वा-द्योतित्वा । लिखित्वा-लेखित्वा । व्युपधात् किम्-वर्तित्वा । रलः किम्-सेवित्वा । हलादेः किम्-एषित्वा । सेट किम्—भुक्त्वा ।

न क्त्वेति—सेट् (इट् सहित) क्त्वा कित् नहीं होता अर्थात् क्त्वा प्रत्यय सर्वत्र कित् होता है । परि यदि सेट् धातुओं में क्त्वा के पहिले इट् हो तो ऐसा क्त्वा कित् न होगा जिसका फल गुणादि का निषेध न होना है ।

शयित्वा—(सोकर) शीङ् (सोना, सेट्) धातु से क्त्वा प्रत्यय, इडागम होने से सेट क्त्वा परे प्रकृत सूत्र से क्त्वा के कित न होने से 'सार्त्रधातुकार्ध-धातुकयोः' से गुण, अयादेश होकर शयित्वा रूप बनता है ।

सेट किम्—सेट् क्त्वा ही अकित् होता है अतः—

कृत्वा—यहाँ इडभाव में अनिट् क्त्वा कित् ही रहा, फलतः यहाँ गुण न हुआ ।

रल इति—इवर्ण और उवर्ण जिनकी उपधा में हो ऐसी हलादि और रलन्त धातुओं से परे सेट् क्त्वा तथा सन् प्रत्यय विकल्प से कित् होते हैं ।

द्युतित्वा-द्योतित्वा—(चमक कर) द्युत (दीप्ति करना) धातु से क्त्वा प्रत्यय यहाँ द्युत धातु के उपधा में 'उ' है, आदि में द् हल वर्ण है, अन्त, में रल् तकार है । इट् का आगम होने पर, प्रकृत सूत्र से सेट् क्त्वा कित् माना गया अतः गुण नहीं हुआ तब द्युतित्वा और पक्ष में जब कित् नहीं हुआ तब 'उ' को ओ गुण होकर द्योतित्वा रूप बनते हैं ।

लिखित्वा-लेखित्वा—(लिखकर) यहाँ भी इवर्णोपध हलादि और रलन्त धातु लिख से पूर्ववत कार्य होने से उक्त रूप बनते हैं ।

व्युपधात्किम्—सूत्र में इवर्णोवर्णोपध धातुओं से पर ही सेट् क्त्वा को कित् विधान किया गया है अतः—

वर्तित्वा—यहाँ वृत् धातु के ऋवर्णोपध न होने से कित् न होने के कारण गुण होकर 'वर्तित्वा' रूप बनता है ।

रलः किम्—सूत्र में रलन्त धातु से पर ही सेट् क्त्वा को कित् किया गया है अतः—

सेवित्वा में सिव् धातु के रलन्त होने के कारण (रल् प्रत्याहार में वकार नहीं आता) क्त्वा के कित् न होने से गुण होकर सेवित्वा रूप बनता है ।

उदितो वा ।७।२।५६।।

उदितः परस्य क्त्व इड् वा । शमित्वा-शान्त्वा । देवित्वा द्यूत्वा । दधातेर्हिः-हित्वा ।

जहातेश्च क्त्वि ।७।४।४३।।

हित्वा । हाङ्स्तु-हात्वा ।

समासेऽनञ् पूर्वे क्त्वो ल्यप् ।७।३।३७।।

हलादेः किम्—सूत्र में हलादि धातु से परे ही क्त्वा को कित् किया गया है, अतः—

एषित्वा—यहाँ इष् धातु से क्त्वा, इट् होने पर धातु के हलादि न होने से, कित् न होगा अतः गुण होकर 'एषित्वा' बनेगा ।

सेट किम्—सूत्र में सेट् क्त्वा को ही कित् किया जाता है । अतः—

भुक्त्वा—यहाँ अनिट् होने से क्त्वा परे रहते कित् विकल्प न होने से, नित्य कित् रहने के कारण गुण निषेध होकर एक ही रूप बनेगा ।

उदित इति—उदित (जिनमें उकार इत् हो) धातुओं से परे क्त्वा को इट् विकल्प से हो ।

शमित्वा-शान्त्वा—(शान्त होकर) शमु (शान्त होना) धातु से (यह उकारेत्संज्ञक है) क्त्वा होने पर प्रकृत सूत्र से जब पक्ष में इट् हुआ तो शमित्वा यह रूप बना, जब इट् न हुआ तो शम्+क्त्वा इस स्थिति में 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति" सूत्र से धातु के उपधा अकार को दीर्घ, मकार का अनुस्वर परसवर्ण होकर 'शान्त्वा' रूप बनता है ।

देवित्वा-द्यूत्वा—दिवु (खेलकरना आदि) धातु से ('उ' की इत्संज्ञा होने से यह भी उदित् धातु है) क्त्वा, प्रकृत सूत्र से इट् होने पर गुण होकर देवित्वा, इडभाव पक्ष में 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च" से वकार को ऊठ् होने पर दि+ऊ+क्त्वा इस स्थिति में इ को यण्-यकार 'द्यूत्वा' रूप बनते हैं ।

हित्वा—(धारण कर) धा धातु से क्त्वा, दधातेर्हिः' सूत्र 'धा को हि आदेश होकर हित्वा रूप बनता है ।

जहातेरिति—ओहाक् त्यागे धातु को भी हि आदेश हो क्त्वा परे रहते ,

हित्वा—(त्यागकर) हा धातु से क्त्वा, प्रकृत सूत्र से हि आदेश होकर हित्वा रूप बनता है ।

हात्वा—'ओहाङ् गतौ' धातु के हा को उक्त सूत्र से हि आदेश न होगा अतः इसका रूप हात्वा (जाकर) होगा।

समास इति—(जिस समास में अव्यय पूर्व पद हो, पर नञ् समास न हो, उसमें क्त्वा को ल्यप् आदेश हो ।

अव्यय पूर्व पदेऽनञ् समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात् ।

तुक्—प्रकृत्य । अनञ् किम्-अकृत्वा ।

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ।३।४।२२।।

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्व विषये णमुल् स्यात्, क्त्वा च ।

नित्य वीप्सयोः ।८।३।४।।

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात् । आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्यय संज्ञकेषु कृदन्तेषु । स्मारं स्मारं नमति शिवम् । स्मृत्वा स्मृत्वा । पायं पायम् । भोजं भोजम् । श्रावं श्रावम् ।

प्रकृत्य—(करके) प्र पूर्वक कृ धातु से क्त्वा प्रत्यय करके प्र+कृत्वा इस स्थिति में कृत्वा का प्र उपसर्ग रूप अव्यय के साथ 'कुगति प्रादयः' सूत्र से समास होता है अतः इस अव्यय पूर्वपद समास में प्रकृत सूत्र से क्त्वा को ल्यप् (य) आदेश होकर, ल्यप् के पित् होने से उसके परे रहते 'ह्रस्वस्येत्यादि सूत्र से तुक् (त्) का आगम होकर उक्त रूप बनता है ।

अनञ् किम्—सूत्र में नञ् समास में ल्यबादेश नहीं होता, अतः—

अकृत्वा—(न करके) यहाँ नञ् समास होने से क्त्वा को ल्यप् आदेश नहीं होता है ।

आभीक्ष्ण्ये इति—(आभीक्ष्ण्य का अर्थ है—बार-बार करना या लगातार करना—पौनः पुन्य-पुनः पुनः होना) जहाँ निरन्तरता बतलानी हो, वहाँ क्त्वा प्रत्यय के विषय में धातु से णमुल् प्रत्यय हो और क्त्वा भी ।

नित्येति—नित्यता अर्थात् निरन्तरता और वीप्सा (प्रत्येक वस्तु में होना) प्रकट करना हो तो पद को द्वित्व (दो बार प्रयोग) होता है ।

आभीक्ष्ण्यमिति—तिङन्त प्रयोगों (क्रियापदों) में तथा अव्यय संज्ञक कृदन्त पदों में क्रिया का बार-बार होना या लगातार होना आभीक्ष्ण्य प्रकट करता है ।

स्मारं स्मारं नमति शिवम् (याद कर करके शिव जी को नमस्कार करता है) यहाँ स्मरण क्रिया का बार-बार होना रूप आभीक्ष्ण्य प्रकट करने के लिये स्मृ (स्मरण करना) धातु से आभीक्ष्ण्ये सूत्र से णमुल् (अम्) प्रत्यय होता है । णमुल् के णित् होने से ऋकार को आर्, वृद्धि, स्मारम्, नित्यवीप्सयोः सूत्र से द्वित्व होकर 'स्मारं स्मारम्' रूप बनते हैं । पक्ष में क्त्वा प्रत्यय होकर स्मृत्वा, स्मृत्वा भी रूप बनते हैं ।

पायं पायम्—(बार-बार पीकर या रक्षा कर) पा धातु से आभीक्ष्ण्य अर्थ में णमुल् होकर, णमुल् के णित् होने से 'आतो युक्' इत्यादि सूत्र से युक् का आगम होने पर द्वित्व होकर पायं पायम्, पक्ष में पीत्वा, पीत्वा रूप बनते हैं ।

भोज भोजम्—(खा-खाकर) भुज+णमुल्, गुण होकर भोजं भोजम्, पक्ष में भुक्त्वा, भुक्त्वा रूप बनते हैं ।

अन्यथैवं कथमित्थंसु सिद्धाऽप्रयोगश्चेत् ।३।४।२७।।

एषु कृञो णमुल् स्यात्, सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवम्भूतश्चेत् कृञ् । व्यर्थत्वात् प्रयोगानर्हं इत्यर्थः । अन्यथा कारम् । एवं कारम् । इत्थंकारं भुङ्क्ते । सिद्धेति किम्—शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ।

इत्युत्तर कृदन्तम्

श्रावं श्रावम्—(सुन-सुनकर) श्रु+णमुल्, वृद्धि, आव् आदेश होकर श्रावं श्रावम् । पक्ष में श्रुत्वा श्रुत्वा रूप बनते हैं ।

(आभीक्ष्ण्य और वीप्सा में विशेष अन्तर नहीं है, प्रथम में क्रिया की निरंतरता रहती है और द्वितीय में अनेक पदार्थों का एक साथ क्रिया या गुण के साथ अन्वय दिखाने की इच्छा रहती है जैसे ग्रामो ग्रामो रमणीयः ।

अन्यथेति—अन्यथा एवं कथं और इत्थम् इन अव्ययों के पूर्व रहते कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो) यदि कृञ् का अप्रयोग सिद्ध हो अर्थात् कृञ् के प्रयोग न करने पर भी यदि इष्टार्थ की प्रतीति हो सकती हो ।

व्यर्थत्वादिति—सिद्धाप्रयोग का अर्थ है—व्यर्थ होने के कारण जहाँ कृञ् धातु का प्रगोग आवश्यक न हो, तात्पर्य यह कि प्रयोग तो हो पर उसकी कोई उपयोगिता न हो ।

अन्यथा कारम् भुङ्क्ते—(अन्य प्रकार से खाता है) यहाँ अन्यथा पूर्वक कृञ् धातु से णमुल्, वृद्धि होकर, अन्यथा कारम् बतता है । यहाँ जो अर्थ अन्यथा भुङ्क्ते का है, वही अन्यथाकारं भुङ्क्ते का है, अतः कृञ् का अप्रयोग सिद्ध होने से उसका प्रयोग व्यर्थ है । इसी प्रकार एवंकारम्' कथंकारम्, इत्थंकारम्, भी रूप बनते है ।

सिद्धेति किम्—सूत्र में कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय का विधान उसी अवस्था में किया गया है जबकि कृञ् का प्रयोग व्यर्थ हो अतः—

शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते (शिर को अन्यथा करके खाता है) यहाँ कृञ् का प्रयोग आवश्यक है अन्यथा वाक्य ही पूर्ण न होगा, अतएव णमुल् न होकर केवल क्त्वा प्रत्यय होगा । इसी प्रकार एवम् कथम् पूर्वक कृञ् धातु का प्रयोग जहाँ आवश्यक होगा वहाँ णमुल् न होगा ।

इत्युत्तर कृदन्तम्

अथ तद्धित प्रकरणम्

साधारण प्रत्यया:

समर्थानां प्रथमाद्वा ।४।१।८२।।

इदं पदत्रय मधिक्रियते । प्राग्दिश इति यावत् ।

अथ तद्धितेति – तद्धित यह अन्वर्थ संज्ञा है, तेभ्य: प्रयोगेभ्य; हिता; तद्धिता:, जो प्रत्यय उन-उन प्रयोगों के लिए हितकर हों, अर्थात् प्रयोगों के अनुसार ही तद्धित प्रत्ययों का प्रयोग होता है ।

समर्थानामिति—"प्राग्दिशो विभक्ति:' इस सूत्र से पूर्व तक समर्थानाम्, प्रथमाद् वा, इन तीनों पदों का अधिकार है ।

'समर्थानाम्' का अर्थ है—अर्थ कथन-योग्यता रखने वाले पदों से । प्रथमात्= प्रथमोच्चरित पद से, वा=विकल्प से अर्थात् प्रयोग के योग्य-अर्थ-कथन योग्यता रखने वाले, तद्धित प्रत्यय विधायक सूत्रों में प्रथमात्=पहिले उच्चरित पद से जिसका बोध हो उस पद से अर्थात् प्रयोग योग्य प्रथमोच्चरित पदों से तद्धित प्रत्यय हो विकल्प से । सभी तद्धित प्रत्यय विकल्प से होते हैं अत: एक पक्ष में वाक्य भी रहता है, उदाहरणार्थ:—'उपगो: अपत्यम् औपगव:' यहाँ इस विग्रह वाक्य में प्रयोग योग्य 'उपगु' शब्द से 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण् प्रत्यय होगा क्योंकि इस सूत्र में 'तस्य' यह प्रथमोच्चरित शब्द है, इससे बोध्य पद उपगु है । विकल्प से होने के कारण एक पक्ष में ऐसा ही विग्रह् वाक्य भी प्रयुक्त हो सकेगा ।

समर्थानाम्, प्रथमात् वा इन तीनों पदों का समस्त तद्धित प्रत्यय विधायक सूत्रों में अधिकार जायेगा ।

अश्वेति—प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अश्वपति आदि शब्दों से अण् प्रत्यय हो ।

"तेन दीव्यति खनति"—इत्यादि सूत्र से पूर्व के अपत्यार्थ, रक्ताद्यर्थ, चातुरर्थ,

अश्वपत्यादिभ्यश्च ।४।१।८४।।

एभ्योऽण् स्यात् । प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । अश्वपतेरपत्यादि आश्वपतम् । गाणपतम् ।

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तर पदाण्ण्यः ।४।१।८५।।

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात् । अणोऽपवादः । दितेरपत्यं दैत्यः । अदितेरादित्यस्य वा (अपत्यम्) आदित्यः ।

शैषिक, तथा विकारार्थ आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्यय होते हैं, यही अर्थ प्राग्दीव्यतीय अर्थ कहलाते हैं ।"

आश्वपतम्—अश्वपतेः अपत्यादि (अश्वपति का अपत्य आदि, 'अश्वपति ङस्' प्रकृत सूत्र से अण् प्रत्यय, 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से तद्धितान्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा "सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' से विभक्ति लोप 'अश्वपति+अ' इस स्थिति में 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि अच् अकार को आकार वृद्धि, 'यस्येति च' इकार लोप होकर आश्वपत इस तद्धितान्त प्रातिपदिक से प्रथमैक वचन में अर्थानुसार नपुं० में 'आश्वपतम्' बनता है ।

इस प्रकरण में वृद्धि तथा 'यस्येति च' द्वारा लोप होना ये दोनों कार्य विशेष आवश्यक हैं । प्रायः सर्वत्र प्रयोग सिद्धि में इनका काम पड़ता है । "तद्धितेष्वचामादेः" यह सूत्र ञित् या णित् प्रत्ययों के आगे रहते स्वरों के आदि स्वर को वृद्धि करता है, दूसरा सूत्र है 'किति च' यह कित् प्रत्ययों के आगे रहते वृद्धि करता है, अतः कित् णित् ञित् तद्धित प्रत्ययों के आगे रहते साधारणतया सर्वत्र वृद्धि होगी जब तक कि कोई विशेष विधान या निषेध न मिले । इसी प्रकार यकारादि और अजादि प्रत्ययों के आगे रहने पर पूर्व की भ संज्ञा होती है और 'यस्येति च' इस सूत्र से ईकार और तद्धित प्रत्यय पर रहते भ संज्ञक अंग के इवर्ण और अवर्ण का लोप होता है अर्थात् यकारादि और स्वरादि तद्धित प्रत्ययों के आगे रहते पूर्व के इवर्ण और अवर्ण का लोप हो जाता है । यहाँ 'इ' और 'अ' से ह्रस्व व दीर्घ दोनों का ग्रहण है ।

गाणपतम्—गणपतेः अपत्यादि, यहाँ भी पूर्ववत् सभी कार्य होकर उक्त रूप सिद्ध होता है ।

दित्येति—दिति, अदिति, आदित्य तथा पतिशब्दान्त शब्दों से प्राग्दीव्यतीयार्थों में ण्य प्रत्यय हो ।

यह सामान्यतः प्राप्त अण् का बाधक है ।

दैत्यः—दितेः अपत्यम् (दिति की सन्तान) दिति शब्द से अपत्यार्थ में ण्य प्रत्यय, णित् होने से आदि अच् को ऐ वृद्धि, यस्येति चेति, इकार लोप होकर दैत्यः रूप बनता है ।

हलो यमां यमि लोपः ।८।४।६४।।

इति यलोपः । आदित्यः । प्राजापत्यः ।

(वा) देवाद्यञञौ । दैव्यम् । दैवम् ।

(वा) बहिषष्टि लोपो यञ् च । बाह्यः ।

(वा) ईकक् च ।

किति च ।७।२।११८।।

आदित्यः—अदितेः, आदित्यस्य वा अपत्यम् (अदिति या आदित्य की सन्तान) यहाँ अदिति शब्द से प्रकृत सूत्र से ण्य प्रत्यय, णित् होन से आदि वृद्धि, इकार लोप होकर आदित्यः रूप बनता है, और आदित्य शब्द से ण्य प्रत्यय होने पर आदित्य+य इस स्थिति में 'यस्येति च' से यकारोत्तर वर्ती अकार का लोप होने पर आदित्य्+य् इस दशा में ।

हल इति- हल वर्ण से परे यम् (प्रत्याहार) का लोप हो यम् (प्रत्याहार) परे रहते ।

इस सूत्र से हल वर्ण तकार से परे, यम्,—य्—का लोप हो गया, क्योंकि यम् वर्ण, यकार आगे है । अतः इस दशा में भी 'आदित्यः' रूप बनता है ।

प्राजापत्यः—प्रजापते रपत्यम् पुमान् (प्रजापति की पुरुष सन्तान) यहाँ पति उत्तर पद होने से प्रजापति शब्द से प्रकृत सूत्र से ण्य प्रत्यय, वृद्धि, इकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

वार्तिक-देवादिति—देव शब्द से अपत्यादि अर्थों में यञ् तथा अञ् प्रत्यय हों ।

दैव्यम्-दैवम्—देवस्य अपत्यम्—देव की सन्तान । यहाँ प्रकृत वार्तिक से, देव शब्द से यञ् प्रत्यय करने पर, वृद्धि, यस्येतिच' अकार लोप होकर 'दैव्यम्' बनेगा और अञ् प्रत्यय करने पर 'दैवम्' रूप बनेगा ।

वार्तिक बहिष् इति—वहिस् शब्द से अपत्यादि अर्थों में यञ् प्रत्यय हो तथा टि लोप हो ।

बाह्यः—वहिर्भवः (बाहर होने वाला) वहिस् शब्द से प्रकृत वार्तिक से यञ् प्रत्यय, 'इस्' इस 'टि' का लोप, आदि वृद्धि, 'बाह्यः' रूप बनता है ।

वार्तिक-ईकक् चेति—वहिस् शब्द से उक्तार्थों में ईकक् प्रत्यय भी होता है और 'टि' का लोप भी ।

कितीति—कित् तद्धित परे रहते स्वरों में आदि स्वर की वृद्धि हो । ('ईकक्' के अन्त्य 'क्' की इत्संज्ञा है ।)

किति तद्धिते चाचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । वाहीकः ।

(वा) गोरजादि प्रसंगे यत् । गोरपत्यादि-गव्यम् ।

उत्सादिभ्योऽञ् ।४।१।८६।।

औत्सः ।

इत्यपत्यादि विकारान्तार्थाः साधारण प्रत्ययाः ।

वाहीकः – वहिर्भवः (बाहर होने वाला) वहिस् शब्द से प्रकृत वार्तिक से ईकक् प्रत्यय, 'इस्' इस 'टि' का लोप, 'किति च' सूत्र से ईकक् प्रत्यय के कित् होने से वृद्धि होकर 'वाहीकः' रूप बनता है ।

वार्तिक गोरजादीति—अजादि अर्थात् अण् आदि स्वरादि प्रत्यय प्राप्त होने पर गो शब्द से यत् प्रत्यय हो ।

गव्यम्—गोः अपत्यादि (गौ की सन्तान आदि) यहाँ गो शब्द से प्रकृत वार्तिक से, अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर, यत् प्रत्यय होकर गो+य इस स्थिति में (वान्तो यि प्रत्यये) सूत्र से ओ को अव् आदेश होकर 'गव्यम्' रूप बनता है ।

उत्सादिभ्य इति – उत्स आदि शब्दों से उक्त अर्थों में अञ् प्रत्यय हो ।

औत्सः—उत्सस्य अपत्यं पुमान् (उत्स की पुरुष सन्तान) यहाँ उत्स शब्द से अञ् प्रत्यय, ञित् होने से आदि स्वर को वृद्धि होकर 'औत्सः' रूप बनता है ।

(यहाँ तक यञ् अण् अञ् आदि साधारण प्रत्ययों का अपत्यादि अर्थों में प्रयोग दिखलाया गया है, अब इसके आगे के प्रकरणों में विशेष विशेष अर्थों में इन प्रत्ययों का निर्देश किया जायेगा ।)

इति साधारण प्रत्यय प्रकरणम्

अथ अपत्याधिकारः

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ।४।१।८७।।

'धान्यानां भवन' इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ् स्नञौ स्तः । स्त्रैणः । पौंस्नः ।

तस्यापत्यम् ।४।१।९२।।

षष्ठयन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः ।

स्त्रीपुंसाभ्यामिति—स्त्री और पुंस् शब्दों से क्रमशः नञ् और स्नञ् प्रत्यय हों 'धान्यानां भवने' इत्यादि सूत्र से पूर्व के अर्थों में ।

स्त्रैणः—स्त्रिया अपत्यं पुमान् स्त्रीषु भवः, स्त्रीणां समूहः (स्त्री की पुरुष सन्तान, स्त्रियों में होने वाला, स्त्रियों का समूह आदि) इन विग्रहों में, अपत्यादि अर्थों में स्त्री शब्द से प्रकृत सूत्र से नञ् प्रत्यय 'ञित्वात्' प्रत्यय के ञित् सञ्ज्ञक होने से आदि अच् ईकार को ऐ वृद्धिः, नकार का णकार होकर 'स्त्रैणः' रूप बनता है ।

पौंस्नः—पुंसः अपत्यादि (पुरुष का अपत्य आदि) यहाँ भी पूर्ववत् पुंस् शब्द से स्नञ् प्रत्यय, वृद्धि होकर पौंस्नः' रूप बनता है । यहाँ पुंस्+स्न इस स्थिति में 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र से पुंस् के स् का लोप हो जाता है ।

तस्येति—षष्ठयन्त कृत सन्धि समर्थ पद से अपत्य अर्थ में पूर्वोक्त तथा आगे कहे जाने वाले प्रत्यय विकल्प से हों ।

यहाँ इस सूत्र में 'समर्थानां प्रथमा द्वा' का अधिकार होने से 'समर्थ पद से, विकल्प से, यह अर्थ किया गया है, प्रथमोच्चरित, 'तस्य' यह षष्ठयन्त पद है, इसी से प्रत्यय होंगे । यहाँ यह 'तस्य' पद सभी षष्ठयन्तों का परामर्शक है । 'कृत सन्धि' का तात्पर्य यह है कि सन्धि किये हुए पद से अन्यथा 'सूत्थितस्य अपत्यं सौत्थितिः' यह रूप न बनता क्योंकि सु उत्थित इस अकृत सन्धि पद से इञ् प्रत्यय करने पर आदि वृद्धि-

ओर्गुणः ।६।४।१४६।।

उवर्णान्तस्य भस्य गुणः स्यात्, तद्धिते । उपगोरपत्य औपगवः । आश्वपतः । दैत्यः । औत्सः । स्त्रैणः । पौंस्नः ।

अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम् ।४।१।१६२।।

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादिगोत्र संज्ञं स्यात् ।

एको गोत्रे ।४।१।९३।।

गोत्रे एक एवापत्य प्रत्ययः स्यात् । उपगो र्गोत्रापत्यम्-औपगवः ।

गर्गादिभ्यो यञ् ।४।१।१०५।।

गोत्रापत्ये । गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः । वात्स्यः ।

औ, आवादेश होकर 'साबुत्थितिः' रूप बनने लगता है अतएव कृत सन्धि समर्थ पद से प्रत्ययों का विधान है।

ओरिति—उवर्णान्त भसंज्ञक को गुण हो, तद्धित प्रत्यय परे होने पर।

औपगवः—(उपगोरपत्यम्-उपगु की सन्तान) यहाँ षष्ठयन्त समर्थ उपगु शब्द से 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति लोप, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य उकार को 'ओ' गुण, अव् आदेश होकर 'औपगवः, रूप बना है।

आश्वपतः—इत्यादि अन्य उदाहरणों की सिद्धि भिन्न-भिन्न प्रत्ययों द्वारा ऊपर दिखाई जा चुकी है। यहाँ केवल अपत्य अर्थ में इनका प्रयोग दिखाने के लिए इनका उल्लेख है।

अपत्यमिति—अपत्य रूप में विवक्षित अर्थात् जब पौत्र आदि दूसरी पीढी की सन्तान को भी अपत्य कहना हो तो उनकी गोत्र संज्ञा हो।

एक इति—गोत्र अर्थ में एक ही अपत्य प्रत्यय हो। अर्थात् यद्यपि गोत्रापत्य संज्ञा दूसरी पीढ़ी के पौत्र आदि की है तथापि इनसे एक ही अपत्य प्रत्यय होगा और उसी से सभी पीढियों के दूसरी से लेकर सौवीं तक पौत्रादि का बोध होगा, प्रत्येक पीढी के लिए भिन्न-भिन्न अण् इञ्, यञ्, अञ् आदि प्रत्यय न करने पड़ेंगे।

औपगवः—उपगो र्गोत्रापत्यम् (उपगु का गोत्रापत्य पौत्र प्रपौत्र आदि) यहाँ पूर्ववत् अण् प्रत्यय होकर 'औपगवः यही रूप बनेगा जो कि अपत्यार्थ में बन चुका है और यही अन्य पीढियों के पौत्रादि का भी बोधक होगा।

गर्गादिभ्य इति—गर्गादि षष्ठयन्त सुबन्त से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय हो।

गार्ग्यः—गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गर्ग का गोत्रापत्य। यहाँ गर्ग शब्द से यञ् प्रत्यय, वृद्धि तथा अकार लोप होकर 'गार्ग्यः' रूप बनेगा।

यञञोश्च ।२।४।६४।।

गोत्रे यद्यञन्त मञन्तं च तदवयवयोरेतयो र्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम् । गर्गाः । वत्साः ।

जीवति तु वंश्ये युवा ।४।१।१६३।।

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादे र्यदपत्यं चतुर्थ्यादि तद्युव संज्ञ मेव स्यात् ।

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ।४।१।९४।।

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्ता देव प्रत्ययः स्यात् । स्त्रियां तु न युव संज्ञा ।

यञिञोश्च ।४।१।१०१।।

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात् ।

आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ।७।१।२।।

प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय् स्युः। गर्गस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः । दाक्षायणः ।

वात्स्यः—वत्सस्य गोत्रापत्यम्-यहाँ भी पूर्ववत् यञ् प्रत्यय, वृद्धि, अकार लोप होकर 'वात्स्यः' बनेगा ।

यञञोश्चेति—गोत्र अर्थ में जो यञ् प्रत्ययान्त और अञ् प्रत्ययान्त पद उनके अवयव यञ् और अञ् का लोप हो, यदि उन्हीं के अर्थ अर्थात् गोत्रार्थ का बहुत्व बताना इष्ट हो, पर स्त्रीलिङ्ग में नहीं होता ।

गर्गाः—यहाँ गर्ग शब्द से गोत्रापत्यार्थ में यञ् प्रत्यय करके गार्ग्य रूप बना था, यदि इसी अर्थ में इनका प्रयोग बहुवचन में किया जाना इष्ट होगा तो प्रकृत सूत्र से यजन्त पद-गार्ग्य के अवयव-य् का लोप हो जायेगा, तन्निमित्तक वृद्धि भी न रहेगी अतः गार्ग्य का बहुवचन में गर्गाः इसी प्रकार वत्साः (बहुवचन में) बनेगा ।

इस प्रकार गर्ग शब्द से निष्पन्न गोत्रापत्य के रूप गार्ग्यः, गार्ग्यौ, गर्गाः आदि होंगे, द्वितीयादि में भी इसी प्रकार गर्गान् आदि बहुवचनान्त रूप होंगे ।

जीवतीति—वंश के पिता, पितामह के जीवित रहते जो पौत्र आदि का अपत्य चौथी पीढ़ी आदि में हो तो उसकी युव संज्ञा हो, अर्थात् पिता पितामह के जीवित रहते पौत्र की सन्तान (प्रपौत्र) युवापत्य कही जायेगी ।

गोत्राविति—युवापत्य अर्थ में गोत्र प्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हो । परन्तु स्त्रीलिंग में यह युवापत्य संज्ञा नहीं होती ।

यञिञेरितिः—गोत्र अर्थ में जो यञ् और अञ् प्रत्यय तदन्त शब्द से फक् प्रत्यय हो ।

आयन्निति—प्रत्यय के आदि फकार को आयन्, ढकार को एय्, खकार को ईन्, छकार को ईय्, और घकार को इय् आदेश हों ।

अत इञ् ।४।१।९५।।

अपत्येऽर्थे । दाक्षिः ।

बाह्वादिभ्यश्च ।४।१।९६।।

बाहविः । औडुलोमिः ।

गार्ग्यायणः—गर्गस्य युवापत्यम् (गर्ग का युवापत्य) इस अर्थ में गोत्रादिति सूत्र के नियम के अनुसार गोत्र प्रत्ययान्त से युवापत्यार्थ में प्रत्यय होता है । अतः पहिले गर्ग शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय करके गार्ग्य शब्द से युवापत्य अर्थ में 'यञ ञोश्च' सूत्र से फक् प्रत्यय होगा, गार्ग्य + फ इस स्थिति में "आयने" इत्यादि सूत्र से फकार को आयन् आदेश होने पर भ संज्ञक अकार का 'यस्येति च' से लोप, तथा न, को ण् होकर 'गार्ग्यायण:' रूप बनता है ।

(यहाँ गार्ग्यायण का अर्थ है—गर्ग की चतुर्थ पीढ़ी की सन्तान जो युवापत्य कहलाती है, इस पर इसकी युवापत्य संज्ञा तभी होगी जब उस वंश के पिता पितामह जीवित होंगे अन्यथा नहीं, मृत पिता या पितामह की चतुर्थ पीढ़ी की सन्तान युवापत्य न कहलायेगी और न इससे युवापत्यार्थ में होने वाले फक् आदि प्रत्यय ही हो सकेंगे उस दशा में तो गोत्रापत्य अर्थ का प्रत्यय ही रहेगा जैसे गर्ग का गोत्रापत्य गार्ग्य ही रहेगा और इसी से चतुर्थ पीढी का बोध होगा ।)

दाक्षायणः—दक्षस्य युवापत्यम्, यहाँ दक्ष से गोत्रापत्य में 'अत इञ्' सूत्र से इञ् प्रत्यय, वृद्धि होकर 'दाक्षि' यह गोत्रापत्य का रूप पहिले बनेगा तब 'यजिञोश्च' सूत्र से फक् तथा उसको आयन् आदेश, इकार लोप, णत्व होकर 'दाक्षायण:' रूप बनेगा ।

अत इति—अदन्त षष्ठयन्त समर्थ से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय हो ।

दाक्षिः—दक्षस्य अपत्यम् । यहाँ दक्ष से इञ् प्रत्यय, वृद्धि, अकार लोप होकर 'दाक्षिः' रूप बनता है ।

बाह्वादिभ्यश्चेति—बाहु आदि षष्ठयन्त समर्थ से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय हो ।

बाहविः—बाहोः (अपत्यम्) बाहु शब्द से इञ् प्रत्यय, पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः न्याय से अनावश्यक होते हुए भी आदिवृद्धि, 'ओर्गुणः' ओ गुण, अवादेश होकर 'बाहविः' बनता है ।

औडुलोमिः—उडूनि (नक्षत्राणि) लोमानि यस्य स उडुलोमा: तस्य अपत्यम्- उडुलोमन् की सन्तान) उडुलोमन् से इञ्, आदिवृद्धि, नस्तद्धिते अन् (टि) का लोप 'औडुलोमिः ।

(वा) लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः। उडुलोमाः। आकृतिगणोऽयम्।

अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ।४।१।१०४॥

ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्ये अन्यत्र तु गोत्रे। विदस्य गोत्रं वैदः। वैदौ। विदाः। पुत्रस्या पत्यम्-पौत्रः, पौत्रौ, पौत्राः। एवं दौहित्रादयः।

शिवादिभ्योऽण् ।४।१।११२॥

अपत्ये। शैवः। गाङ्गः।

वार्तिक-लोम्न इति – लोमन् से अपत्यार्थ में बहुवचन में 'अ' प्रत्यय हो।

उडुलोमाः—उडुलोम्नः अपत्यानि। यहाँ उडुलोमन् से अपत्यार्थ में बहुत्व की विवक्षा में 'अ' प्रत्यय, 'नस्तद्धिते' से टि लोप, उडुलोम इस अकारान्त शब्द से बहुवचन में 'उडुलोमाः'।

यह बाह्वादिगण आकृतिगण है। अतः इन प्रयोगों के अतिरिक्त जहाँ अन्यत्र इञ् प्रत्ययान्त शब्द मिलते हैं और उनका किसी अन्य सूत्र से विधान नहीं किया गया है उन्हें इसी गण में समझ लेना चाहिये।

अनृषीति —विद आदिकों से गोत्रापत्य में अञ् प्रत्यय हो, पर इन विदादिकों में जो ऋषि नहीं हैं उनसे तो केवल अपत्यार्थ में हो, गोत्रापत्य में नहीं।

वैदः—विदस्य गोत्रापत्यम्—यहाँ ऋषि होने के कारण विद शब्द से गोत्रापत्य में अञ् प्रत्यय, वृद्धि, प्रथमैक वचन में 'वैदः' यह रूप बनता है, द्विवचन में वैदौ पर बहुवचन में 'विदाः' रूप बनेगा; क्योंकि गोत्रापत्यार्थक अञ् प्रत्यय का बहुवचन में 'यञञोश्च' से लोप हो जायेगा।

पौत्रः—पुत्रस्य अपत्यम् (पुत्र की सन्तान) यहाँ पुत्र, ऋषि नहीं है, अतएव यहाँ गोत्रापत्य में प्रत्यय न होकर केवल अनन्तरापत्य अर्थात् शुद्ध अपत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय होकर वृद्धि द्वारा एक वचन में पौत्रः, द्वि० पौत्रौ और बहुवचन में भी पौत्राः, ही रूप बनेगा क्योंकि यहाँ गोत्रापत्यार्थक अञ् प्रत्यय न होने से उनका लोप न होगा।

इसी प्रकार 'दुहितृ' से दौहित्र आदि रूप बनेंगे।

शिवादिभ्य इति—शिव आदि (गण) से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय हो।

शैवः—शिवस्यापत्यम्, यहाँ शिव से अण प्रत्यय वृद्धि होकर शैवः रूप बनता है।

गाङ्गः—गङ्गाया अपत्यम् (गंगा का पुत्र) गङ्गा शब्द से अण् वृद्धि, अन्त्याकार लोप 'गाङ्गः'।

ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च ।४।१।११४।।

ऋषिभ्यः—वासिष्ठः, वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः—श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः—वासुदेवः । कुरुभ्यः—नाकुलः । साहदेवः ।

मातु रुत्संख्यासंभद्र पूर्वायाः ।४।१।११५।।

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च । द्वैमातुरः ।

षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः ।

ऋष्यन्धकेति—ऋषि, अन्धक, (यादव) वृष्णि और कुरु इन से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय हो ।

ऋषिभ्य इति—ऋषि के नामों से :—

वासिष्ठः—वसिष्ठस्यापत्यम्, यहाँ अण् प्रत्यय, आदि वृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर वासिष्ठः । इसी प्रकार 'विश्वामित्रस्यापत्यम्—वैश्वामित्रः ।

अन्धकेभ्य इति—अन्धक वंश वालों से :—

श्वाफल्कः—श्वफल्कस्यापत्यम् यहाँ श्वफल्क से अण् वृद्धि, अकारलोप होकर 'श्वाफल्कः' बनता है ।

वृष्णिभ्य इति—वृष्णि वंश वालों से :—

वासुदेवः—वसुदेवस्यापत्यम् (वसुदेव का पुत्र) यहाँ वसुदेव से अण् वृद्धि, अकार लोप होकर वासुदेवः बनता है ।

कुरुभ्य इति—कुरुवंशधरों से :—

नाकुलः—नकुलस्यापत्यम् (नकुल की सन्तान) यहाँ नकुल से अण्, वृद्धि, अकार लोप होकर 'नाकुलः' इसी प्रकार सहदेवस्यापत्यम् 'साहदेवः' बनता है ।

मातुरिति—संख्या, सम्, और भद्र पूर्वक मातृ शब्द को उत् आदेश हो और अण् प्रत्यय भी हो अपत्य अर्थ में ।

द्वैमातुरः—द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः (दो माताओं का पुत्र) यहाँ 'द्विमातृ' इस संख्या पूर्वक शब्द से प्रकृत सूत्र से अण् प्रत्यय, तथा मातृ के ऋकार को उत् आदेश एवं रपर, आदिवृद्धि होकर 'द्वैमातुर' इस अकारान्त प्रातिपदिक से प्रथमैक वचन में 'द्वैमातुरः' बनता है ।

षाण्मातुरः—षण्णाम् मातृणामपत्यम्—छः माताओं की सन्तान । यहाँ 'षण्मातृ' से अण् आदि सभी कार्य पूर्ववत् होंगे ।

सांमातुरः—सांमातु रपत्यम् इस विग्रह में पूर्ववत् 'सांमातुरः' तथा भद्रमातुरपत्यम् इस विग्रह में पूर्ववत् 'भाद्रमातुरः' बनेगा ।

स्त्रीभ्यो ढक् ।४।१।१२०॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् । वैनतेयः ।

कन्यायाः कनीन च ।४।१।११६॥

चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च ।

राजश्व शुराद्यत् ।४।१।१३७॥

(वा) राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् ।

येचाभावकर्मणोः ।६।४।१६८॥

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यात् । न तु भावकर्मणोः । राजन्यः । श्वशुर्यः जातावेवेति किम् ।

स्त्रीभ्य इति—स्त्री प्रत्यायान्त शब्दों से ढक् प्रत्यय हो ।

वैनतेयः—विनताया अपत्यम् (विनता की सन्तान-गरुड़) यहाँ स्त्रीप्रत्ययान्त 'विनता' से ढक् प्रत्यय, और ढकार को एय् आदेश, प्रत्यय के कित् होने से 'किति च' से आदि वृद्धि, 'यस्येति च' से आकार लोप होकर 'वैनतेयः । रूप बनता है ।

कन्याया इति—कन्या शब्द से अपत्यार्थ में कन्या को कनीन आदेश हो और सूत्र में चकार ग्रहण से अण् प्रत्यय भी हो ।

कानीनः—कन्यायाः अपत्यम् पुमान्—कन्या की पुरुष सन्तान-कर्ण अथवा व्यासदेव । कन्या शब्द से अण् प्रत्यय, कन्या को कनीन आदेश, आदिवृद्धि, 'कानीनः' यह बनता है ।

राजेति—राजन् और श्वशुर शब्द से अपत्यार्थ में यत् प्रत्यय हो ।

वार्तिक-राज्ञ इति—राजन् शब्द से जाति (अर्थ) में ही यत् प्रत्यय कहना चाहिए ।

तात्पर्य यह कि राजन् शब्द से यत् होकर बने शब्द से जाति का बोध होना चाहिये, अपत्यादि का नहीं ।

येचेति—यकारादि तद्धित परे रहते अन् प्रकृति से रहता है अर्थात् उसमें कोई लोपादि विकार नहीं होते । किन्तु यह प्रकृतिभाव भाव और कर्म में नहीं होता ।

राजन्यः—राज्ञः अपत्यं जातिः—राजा की सन्तान-क्षत्रिय जाति । यहाँ इस वार्तिक के सामर्थ्य से जाति अर्थ में राजश्वेति सूत्र से यत् प्रत्यय, 'नस्तद्धिते' सूत्र से प्राप्त भसंज्ञक 'अन्' इस टि लोप का "ये चेति" सूत्र द्वारा प्रकृतिभाव करने पर 'राजन्यः' रूप बनता है ।

जातावेति—राजन् शब्द से 'जाति' में ही यत् प्रत्यय होता है इसलिये जातिभिन्न अर्थ में यत् प्रत्यय न होगा ।

अन् ।६।४।१६७॥

अन् प्रकृत्या स्यादणि परे । राजनः ।

क्षत्राद् घः ।४।१।१३८॥

क्षत्रियः । जाताविल्येव—क्षात्रिरन्यत्र ।

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ।४।१।१४६॥

ठस्येकः ।७।३।५०॥

अङ्गात् परस्य ठस्येकादेशः स्यात् । रैवतिकः ।

राजनः—राज्ञोऽपत्यम्—(राजा की सन्तान) यहाँ अपत्यार्थ में यत् प्रत्यय न होने से अण् प्रत्यय होगा और 'नस्तद्धिते' से प्राप्त टि लोप का 'अन' इस सूत्र से प्रकृतिभाव होने पर 'राजनः' रूप बनेगा।

श्वशुर्यः—श्वशुरस्यापत्पयम् पुमान्—श्वशुर की पुरुष सन्तान। यहाँ श्वशुर शब्द से राजश्वेत्यादि सूत्र से यत् प्रत्यय, अन्त्याकार लोप होकर श्वशुर्यः रूप बनता है।

अन् इति—अण् प्रत्यय परे रहते 'अन्' का प्रकृति भाव होता है।

क्षत्रादिति—क्षत्र शब्द से जाति अर्थ में घ प्रत्यय हो।

क्षत्रियः—क्षत्रस्या पत्यं जातिः—क्षत्र की सन्तान जाति। क्षत्र शब्द से घ प्रत्यय, घकार को इय् आदेश अकार लोप होकर क्षत्रियः रूप बनता है।

जाताविति—क्षत्र से घ प्रत्यय जाति अर्थ में होता है अतः जातिभिन्न अर्थ में 'क्षत्रस्यापत्यम्' इस अर्थ में 'अत इञ्' से इञ् प्रत्यय तथा वृद्धि होकर 'क्षात्रिः' रूप बनेगा।

रेवत्यादिभ्य इति—रेवती आदि शब्दों से अपत्य अर्थ में ठक् प्रत्यय हो।

ठस्येति—अङ्ग संज्ञक से परे ठ् को इक् आदेश होता है (जिस शब्द से जो प्रत्यय किया जाता है, वह जिस समुदाय के आदि में है, ऐसे शब्दस्वरूप की उस प्रत्यय से परे रहने पर अंग संज्ञा होती है।)

रैवतिकः—रेवत्या अपत्यं पुमान् (रेवती की पुरुष सन्तान) रेवती शब्द से "रेवत्यादिभ्यः" सूत्र से ठक् प्रत्यय, ठकार को इक् आदेश, आदि वृद्धि, 'यस्येति च' ईकार लोप होकर 'रैवतिकः' रूप बनता है।

जनपदेति—जनपद वाचक शब्द से जो कि क्षत्रिय का भी वाचक हो अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय होता है।

पाञ्चालः—पञ्चालानामपत्यं पुमान्—पञ्चाल—एक जनपद तथा क्षत्रिय जाति भी, उसकी पुरुष सन्तान। यहाँ पञ्चाल शब्द से अञ् प्रत्यय, आदिवृद्धिः, 'पाञ्चालः' सिद्ध होता है।

जनपद शब्दात् क्षत्रियादञ् ।४।१।१६८॥

जन पद क्षत्रिय वाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये । पाञ्चालः ।

(वा) क्षत्रिय समान शब्दाज्जन पदात्तस्य राजन्य पत्यवत् । पञ्चा लानां राजा-पाञ्चालः ।

(वा) पूरोरण् वक्तव्यः ।पौरवः ।

(वा) पाण्डोर्ड्यण् । पाण्ड्यः ।

कुरुनादिभ्यो ण्यः ।४।१।१७२॥

कौरव्यः । नैषध्यः ।

ते तद्राजाः ।४।१।१७४॥

अञादय स्तद्राजसंज्ञाः स्युः ।

तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम् ।२।४।६२॥

वार्तिक-क्षत्रिय समानेति—जो जनपद वाचक शब्द समान रूप से क्षत्रिय जातिवाचक भी हो उससे अपत्यार्थ से राजा अर्थ में प्रत्यय हो।

पाञ्चालः—पञ्चालानां राजा (पञ्चालों का राजा(यहाँ राजा अर्थ में जन-पद एवं क्षत्रिय जातिवाचक पञ्चाल शब्द से अञ् प्रत्यय, वृद्धि पाञ्चालः ।

वार्तिक-पूरोरिति—पूरु शब्द से राजा अर्थ में अण् प्रत्यय हो ।

पौरवः—पुरुणां राजा—पुरु क्षत्रियों का राजा, यहाँ पुरु शब्द से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, ओ गुंणः, अवादेश होकर 'पौरवः' रूप बनता है ।

वार्तिक-पाण्डोरिति—पाण्डु शब्द से राजार्थ में ड्यण् प्रत्यय हो (इस प्रत्यय में केवल य शेष रहता है, डित् होने से 'टि' का लोप होता है ।)

पाण्ड्यः—पाण्डूनां राजा-(पाण्डुजनपद और उसके निवासी क्षत्रियों का राजा) पाण्ड से ड्यण् प्रत्यय, डित् होने से उकार इस 'टि' का लोप, वृद्धि होकर, पाण्ड्यः बनता है ।

कुरुनादिभ्य इति—कुरु और नकारादि जनपद तथा तत्रत्य क्षत्रिय शब्दों में राजा अर्थ में ण्य प्रत्यय हो ।

कौरव्यः—कुरुणां राजा इस विग्रह में कुरू शब्द से ण्य प्रत्यय, णित्वात् आदि वृद्धि, 'ओर्गुणः' गुण्, अवादेश होकर 'कौरव्यः' इसी प्रकार नैषध्यः—निषधानां राजा-निषध जनपद व तत्रत्य क्षत्रियों का राजा पूर्ववत् ण्य, वृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'नैषध्यः' बनता है । (यह नकारादि जनपद वाचक है)

ते इति—अञ् आदि प्रत्ययों की तद्राज संज्ञा होती है।

तद्राजस्येति—बहुत्व की विवक्षा में तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लोप हो, यदि यह बहुत्व तद्राज संज्ञक प्रत्यय का ही हो । किन्तु स्त्रीलिङ्ग में नहीं होता ।

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् तदर्थकृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्। इक्ष्वाकवः। पञ्चालाः इत्यादि।

कम्बोजाल्लुक् ।४।१।१७५।।

अस्मात्तद्राजस्य लुक्। कम्बोजः। कम्बोजौ।

(वा) कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्। चोलः। शकः। केरलः यवनः।

इत्यपत्याधिकारः

इक्ष्वाकवः—इक्ष्वाकूणां जनपद विशेषाणां राजा यहाँ जनपद शब्दादिति सूत्र से अञ् प्रत्यय, वृद्धि, उकार को गुण, अवादेश होकर एक वचन में 'ऐक्ष्वाकवः' रूप बनता है, पर इसका बहुवचन में तद्राजस्येति सूत्र से अञ् का लोप होने से वृद्धि की निवृत्ति भी हो जाती है तब इक्ष्वाकु इस शब्द का बहुवचन में रूप इक्ष्वाकवः बनता है। इसी प्रकार पञ्चाल शब्द का एक वचन में पाञ्चालः पर बहुवचन में अञ् के लोप होने पर पञ्चालाः रूप बनता है।

कम्बोजादिति—कम्बोज शब्द से तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लोप होता है।

कम्बोजः—कम्बोजानां राजा—कम्बोजों का राजा (कम्बोज शब्द जनपद एवं क्षत्रिय का भी वाचक है) यहाँ 'जनपद शब्दादिति' अञ् प्रत्यय उसका प्रकृत सूत्र से लोप होने से कम्बोजः ऐसा रूप बनेगा, अन्य वचनों में भी कम्बोज ही रहेगा कम्बोजौ कम्बोजा इत्यादि।

वार्तिक-कम्बोजादिभ्य इति—कम्बोज आदिकों से तद्राज प्रत्यय का लोप कहना चाहिये।

चोलः शकः—चोलानां शकानां जनपदानां क्षत्रियाणाम् वा राजा, इस विग्रह में 'द्व्यञ मगध' इत्यादि सूत्र से अण् उसका प्रकृत वार्तिक से लोप होकर उक्त रूप बनेंगे।

केरलः यवनः—इन दोनों प्रयोगों में जनपद शब्दादिति सूत्र से अञ् प्रकृत वार्तिक से उसका लोप होने पर उक्त रूप बनेंगे।

इति अपत्याधिकारः

अथ रक्ताद्यर्थकाः

तेन रक्तं रागात् ।४।२।१॥

अण् स्यात् । रज्यतेऽनेनेति-रागः । कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम् ।

नक्षत्रेण युक्तः कालः ।४।२।३॥

अण् स्यात् ।

(वा) तिष्य पुष्ययो र्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् । पुष्येण युक्तम्—पौषम्-अहः ।

रक्ताद्यर्थक से तात्पर्य है कि इस प्रकरण में 'रँगा हुआ' इत्यादि अर्थों में तद्धित प्रत्यय बतलाये गये हैं ।

तेनेति—रागात् अर्थात् रंग विशेष वाची शब्द से 'उससे रँगा हुआ' इस अर्थ में अण् प्रत्यय हो ।

रज्यत इति—इससे रँगा जाता है अतएव रंग को राग कहा जाता है । सूत्र में राग शब्द का अर्थ है—रंगने की वस्तु—नीला, पीला आदि रंग ।

काषायम्—कषायेण रक्तं वस्त्रम् (गेरुआ रंग से रंगा हुआ वस्त्र) इस विग्रह में कषाय शब्द से अण्, आदिवृद्धि अन्त्याकार लोप होकर 'काषायम् रूप बनता है ।'

नक्षत्रेणेति—नक्षत्र से युक्त (सम्बद्ध) काल अर्थ में नक्षत्र वाचक शब्द से अण् प्रत्यय हो ।

वार्तिक तिष्येति—उक्त अर्थ में नक्षत्र वाचक शब्द से विहित अण् परे रहते तिष्य और पुष्य शब्दों के यकार का लोप हो ।

पौषम्—पुष्येण युक्तम् (अहः) अर्थात् पुष्य नक्षत्र युक्त चन्द्रमा से युक्त दिन) यहाँ पुष्य (नक्षत्र वाचक) शब्द से नक्षत्रेणेति सूत्र से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अन्त्याकार लोप, पौष्य्+अ इस स्थिति में प्रकृति वार्तिक से यकार लोप होकर 'पौषम्' रूप बनता है ।

लुबविशेषे ।४।२।४।।

पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात् । षष्टि दण्डात्मकस्य कालस्यावान्तर विशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः ।

दृष्टं साम ।४।२।७।।

तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम ।

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ।४।२।६।।

वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम् ।

परिवृतो रथः ।४।२।१०।।

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रो रथः ।

लुबिति—पूर्व सूत्र से विहित (अण् प्रत्यय) का लोप हों, यदि साठ घड़ी (दण्ड) रूप काल का अवान्तर भेद (रात या दिन) का ज्ञान न हो।

अद्य पुष्यः—अद्य पुष्येण युक्तः कालः—आज पुष्य-नक्षत्र युक्त चन्द्र युक्त काल है। इस अर्थ में पुष्य शब्द से नक्षत्रेणेति सूत्र से अण् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से उसका लोप होता है, यहाँ अद्य पुष्यः कहने से किसी रात या दिन आदि काल विशेष का पता नहीं लगता।

दृष्टमिति—तेन—उसके द्वारा, दृष्टम्—देखा गया साम। इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ से अण् प्रत्यय हो।

वासिष्ठम्—साम वसिष्ठेन दृष्टम् (वसिष्ठ के द्वारा ज्ञान द्वारा प्राप्त साम) इस विग्रह में अण्, अन्त्याकार लोप होकर वासिष्ठम् रूप बनता है।

वामदेवादिति—पूर्वोक्त अर्थ में वामदेव शब्द से ड्यत् और ड्य प्रत्यय हो।

वामदेव्यम्—वामदेवेन दृष्टं साम (वामदेव के द्वारा ज्ञान से उपलब्ध साम) पूर्ववत् ड्यत् एवं ड्य प्रत्यय करने पर वामदेव्यम् रूप बनता है। यहाँ डित्व सामर्थ्य से 'टेः' सूत्र से वकारोत्तरवर्ती 'अकार इस 'टि' का लोप होता है। ड्यत् और ड्य दोनों में 'य' शेष रहता है, तित् होने से ड्यत् के परे 'स्वरित' होता है और ड्य के परे उदात्त स्वर होता है।

'साम' मन्त्रविशेष का नाम है जिस ऋषि के द्वारा जो साम दृष्ट (ज्ञान दृष्टि से प्राप्त हुआ है) वह उसी के नाम से प्रचलित है।

परिवृत इति—'तेन' की इसमें अनुवृत्ति है, अतः तेन=उसके द्वारा परिवृत्त (ढका हुआ) इस अर्थ में तृतीयान्त से अण् प्रत्यय होता है।

वास्त्रो रथः—वस्त्रेण परिवृतः—वस्त्र से ढका हुआ रथ। यहाँ वस्त्र शब्द से अण्, वृद्धि, अन्त्याकारलोप होकर 'वास्त्रः' प्रयोग बना है।

तत्रोद्धृत ममत्रेभ्यः ।४।२।१४।।

शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः ।

संस्कृत भक्षाः ।४।२।१३।।

सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे, यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भ्राष्ट्राः यवाः ।

साऽस्य देवता ।४।२।२४।।

इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बार्हस्पतम् ।

शुक्राद्घन् ।४।२।२६।। शुक्रियम् ।

तत्रेति—अमत्र अर्थात् पात्र । 'जिसमें उठाकर रखा हुआ हो, इस अर्थ में पात्र वाचक शब्दों से अण् प्रत्यय हो ।

शाराव ओदन—शरावे उद्धृतः—सकोरे में उठाकर रखा गया ओदन इस अर्थ में शराव शब्द से अण् प्रत्यय, वृद्धि, अन्त्याकारलोप 'शारावः' रूप बनता है ।

संस्कृतमिति—'उसमें संस्कृत किया गया' इस अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ से अण् प्रत्यय हो, यदि संस्कृत किया गया पदार्थ भक्ष्य (खाने योग्य) हो ।

भ्राष्ट्रा यवाः—भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः—भाड़ में संस्कृत अर्थात् भुने हुये यव) इस अर्थ में सप्तम्यन्त भ्राष्ट्र शब्द से अण् प्रत्यय होकर 'भ्राष्ट्राः' बनता है, यहाँ भी अनावश्यक होते हुये भी पर्जन्य वल्लक्षण प्रवृत्तिः' न्याय के अनुसार आदि वृद्धि, तथा अन्त्याकार लोप होगा ।

सास्येति—वह इसका देवता है । इस अर्थ में प्रथमान्त देव वाची समर्थ पद से अण् प्रत्यय हो ।

ऐन्द्रंहविः—इन्द्रो देवता अस्य इन्द्र जिस का देवता हो ऐसा हवि) यहाँ इन्द्र शब्द से अण् प्रत्यय, आदि वृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'ऐन्द्रम्' रूप बनता है ।

पाशुपतम्—पशुपतिः देवता अस्य-पशुपति शिव जिसके देवता हो ऐसा अस्त्र । यहाँ पशुपति शब्द से अण्, आदि वृद्धि, यस्येति च इकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

बार्हस्पतम्—'बृहस्पतिः देवता अस्य'—बृहस्पति जिसके देवता हो ऐसा शास्त्र । यहाँ बृहस्पति शब्द से अण् ऋकार को आर् वृद्धि, इकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

शुक्रादिति—शुक्र शब्द से उक्त अर्थ में घन् प्रत्यय हो ।

शुक्रियम्—शुक्रो देवताऽस्य—शुक्र जिसका देवता है । इस अर्थ में शुक्र शब्द से घन् प्रत्यय, आयन्—इत्यादि सूत्र से घ को इय् आदेश, अन्त्याकार लोप होकर 'शुक्रियम्' रूप बनता है ।

सोमाट्ट्यण् ।४।२।३०।। सौम्यम् ।

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ।४।२।३१।।

वायव्यम् । ऋतव्यम् ।

रीङ् ऋतः ।७।४।२७।।

अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः स्यात् । 'यस्येति च' । पित्र्यम् । उषस्यम् ।

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ।४।२।३४।।

एते पितात्यन्ते । पितुर्भ्राता पितृव्यः । मातु र्भ्राता मातुलः । मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता पितामहः ।

सोमादिति—सोम शब्द से उक्त अर्थ में ट्यण् प्रत्यय हो ।

सौम्यम्—सोमो देवताऽस्य—सोम जिसका देवता हो। इस अर्थ में सोम शब्द से ट्यण्, आदि वृद्धि तथा अन्त्याकार लोप होकर 'सौम्यम्' रूप बनता है ।

वायु इति—वायु, ऋतु, पितृ और उषस् शब्दों से पूर्वोक्त अर्थ में यत् प्रत्यय हो ।

वायव्यम्—वायुः देवता अस्य, वायु जिसका देवता हो । इस अर्थ में प्रकृत सूत्र से यत् प्रत्यय, 'ओर्गुणः' उकार को ओ गुण, 'वान्तो यि प्रत्यये' से अवादेश होकर 'वायव्यम्' रूप बनता है ।

ऋतव्यम्—ऋतु देवता अस्य—जिसका देवता ऋतु हो । इस अर्थ में यत् पूर्ववत् गुणावादेश होकर उक्त रूप बनता है ।

रीङ् इति—कृत तथा सार्वधातुक से भिन्न यकार और च्वि प्रत्यय परे रहते ह्रस्व ऋकारान्त अंग को रीङ् आदेश हो ।

पित्र्यम्—पितरो देवता अस्य पितर जिसका देवता हो, इस अर्थ में 'वायु' सूत्र से यत् प्रत्यय, ऋकारान्त अंग पितृ के ऋकार को प्रकृत सूत्र से रीङ् आदेश, 'पित् रीङ् यत्, पिती+य इस दशा में 'यस्येति च' सूत्र से ईकार लोप होकर 'पित्र्यम्' रूप बनता है ।

उषस्यम्—उषाः देवता अस्य हविषः जिस हवि का उषा देवता है । इस अर्थ में 'वायु' इति सूत्र से यत् प्रत्यय होकर 'उषस्यम्' रूप बनता है ।

पितृव्येति—पितृव्य (चाचा) मातुल (मामा) मातामह (नाना) पितामह (बाबा या दादा) ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

पितृव्यः—पितुर्भ्राता (पिता का भाई) यहाँ पितृ शब्द से निपातन से व्यत् प्रत्यय होकर 'पितृव्यः' बनता है ।

तस्य समूहः ।४।२।३७।।

काकानां समूहः काकम् ।

भिक्षादिभ्योऽण् ।४।२।३८।।

भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहः—गार्भिणम् । इह—

(वा) भस्याढे तद्धिते । इति पुंवद्भावे कृते —

इन् अण्यनपत्ये ।६।४।१६४।।

(निपातन पाणिनीय पारिभाषिक शब्द है, जहाँ सूत्रों में शब्द के सिद्ध रूपों का पाठ कर दिया जाता है, वहाँ उन सिद्ध रूपों में प्रकृति, प्रत्यय, आदेश लोप, आदि की आवश्यकतानुसार कल्पना कर ली जाती है और उन रूपों को सिद्ध मान लिया जाता है, इसी विधि का नाम निपातन है।)

मातुलः—मातुः भ्राता (माता का भाई) यहाँ मातृ शब्द से निपातन से डुलच् प्रत्यय होता है और उसका 'उल' शेष रहता है डित् होने से 'ऋकार' इस 'टि' का लोप होकर 'मातुलः' रूप बनता है।

मातामहः—मातुः पिता (माता का पिता) यहाँ मातृ शब्द से डामहच् प्रत्यय का निपातन किया जाता है, प्रत्यय का 'आमह' शेष रहता है पूर्ववत् टि लोप होकर मातामहः, इसी प्रकार पितुः पिता (पिता का पिता) यहाँ डामहच् प्रत्यय होकर **पूर्ववत् पितामहः** रूप बनता है।

तस्येति—'उसका समूह' इस अर्थ में षष्ठयन्त समर्थ से अण् प्रत्यय हो।

काकम्—काकानां समूहः (कौवों का समूह) काक शब्द से अण् प्रत्यय, आदि वृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'काकम्' यह रूप सिद्ध होता है।

भिक्षादिभ्य इति—भिक्षा आदि षष्ठयन्त शब्दों से समूह अर्थ में अण् प्रत्यय हो।

'भैक्षम्'—भिक्षाणां समूहः (भिक्षा का समूह) यहाँ भिक्षा शब्द से अण्, वृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'भैक्षम्' बनता है।

गार्भिणम्—गर्भिणीनां समूहः (गर्भिणियों का झुण्ड) गर्भिणी शब्द से अण्, आदि वृद्धि होकर। इह=यहाँ—

वार्तिक-भस्येति—ढभिन्न प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक अंग को पुंवद्भाव हो।

इस वार्तिक से गर्भिणी का पुंवद्भाव होने पर गार्भिन्+अ इस स्थिति में 'नस्तद्धिते' से इन् इस 'टि' का लोप प्राप्त था—

इनिति—अपत्यार्थ भिन्न अण् परे रहते इन प्रकृति से रहता है अर्थात् उसका

अनपत्येऽर्थेऽणि परे इन प्रकृत्या स्यात्। तेन 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न। युवतीनां समूहः – यौवनम्।

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ।४।२।४३।।

तलन्तं स्त्रियाम्। ग्रामता, जनता, बन्धुता।

(वा) गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्। गजता। सहायता।

(वा) अह्नः खः क्रतौ। अहीनः।

लोप नहीं होता। अत एव 'नस्तद्धिते' से टि लोप नहीं हुआ। तब नकार को णकार करने पर 'गार्भिणम्' रूप बनता है।

यौवनम्—युवतीनाम् समूहः (युवतियों का समूह) यहाँ 'यूनस्ति' सूत्र से युवन् शब्द से ति प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुये युवति शब्द से समूह अर्थ में अण् प्रत्यय, उक्तवार्तिक से पुंवद्भाव होकर युवन्+अण् इस स्थिति में णित्वात् आदि वृद्धि, तथा 'अन्' सूत्र से 'अन्' इस 'टि' का प्रकृतिभाव होकर 'यौवनम्' रूप बनता है।

(**यौवतम्**—का भी प्रयोग इसी अर्थ में होता, अतः वहाँ शतृ प्रत्ययान्त युवत् शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होकर 'युवती' दीर्घ ईकारान्त शब्द बनता है, इससे समूहार्थ में अण् प्रत्यय, तथा पुंवद्भाव होने से युवत्+अण् तब आदि वृद्धि होकर 'यौवतम्' भी रूप बनेगा।)

ग्रामेति—ग्राम जन और बन्धु शब्दों से तल् प्रत्यय हो, समूह अर्थ में।

तलन्तमिति—तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं अतः इनसे टाप् प्रत्यय जोड़ा जाता है।

ग्रामता—ग्रामणां समूहः (गाँवों का समूह) यहाँ ग्राम से तल् (त) स्त्रीलिंग होने से टाप् (आ) होकर ग्रामता, इसी प्रकार **जनता**—जनानां समूहः इस अर्थ में तल् प्रत्यय, टाप् होकर जनता, इसी प्रकार **बन्धुता**—बन्धूनां समूहः इस अर्थ में तल् प्रत्यय, टाप् होकर उक्त रूप बनता है।

वार्तिक-गजेति—गज और सहाय शब्दों से उक्त अर्थ में तल् प्रत्यय हो।

गजता—गजानां समूहः यहाँ गज शब्द से तल्, टाप् होकर गजता, इसी प्रकार सहाय शब्द से तल् तथा टाप् होकर सहायता रूप बनता है।

वार्तिक—अह्नः इति—अहन् शब्द से समूह अर्थ में ख प्रत्यय हो, यदि उसका यज्ञ अर्थ वाच्य हो।

अहीनः—अह्नां समूहेन साध्यः क्रतुः (अनेक दिनों में किया जाने वाला यज्ञ) यहाँ अहन् शब्द से ख प्रत्यय, 'आयन' इत्यादि सूत्र से 'ख' को 'ईन' आदेश, 'नस्तद्धिते' से 'अन्' इस 'टि' का लोप होकर 'अहीनः' रूप बनता है।

अचित्त हस्तिधेनोष्ठक् ।४।२।४७।।

इसु सुक्तान्तात् कः ।७।३।५१।।

इस्, उस्, उक्, तान्तात्परस्य ठस्य कः स्यात् । साक्तुकम् । हास्तिकम् । धैनुकम् ।

तदधीते तद्वेद ।४।२।५९।।

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ।७।३।३।।

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमात् ऐचा वागमौ स्तः । व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः ।

अचित्तेति—अचेतन वाची तथा हस्ति और धेनु शब्द से ठक् प्रत्यय हो, समूह अर्थ में ।

इसिति—जिन शब्दों के अन्त में इस्, उस्, उक् या तकार हों उनसे परे ठकार का ककार आदेश हो ।

साक्तुकम्—सक्तूनां समूहः (सक्तुओं का समूह) यहाँ सक्तु शब्द (अचित्त वाची शब्द) से ठक् प्रत्यय, 'उगन्त' (उक् प्रत्याहार इ उ) से परे ठक् प्रत्यय के ठकार को "इसु सु" इत्यादि सूत्र से क आदेश, 'किति च' से आदि वृद्धि होकर, साक्तुकम्' रूप बनता है ।

हास्तिकम्—हस्तिनां समूहः (हाथियों का समूह) यहाँ उगन्त (इकारान्त) हस्ति शब्द से उक्त सूत्र से ठक् प्रत्यय, 'इसुसु' सूत्र से ठकार को क आदेश, आदि वृद्धि 'हास्तिकम्' रूप बनता है ।

धैनुकम्—धेनूनां समूहः गायों का समूह) धेनु शब्द से ठक्, क आदेश, वृद्धि, 'धैनुकम्' रूप सिद्ध होता है ।

(यदि हास्तिकम् का विग्रह—हस्तिनीनां समूह यह किया जाय तो ठक् प्रत्यय होने पर 'भस्याढे तद्धिते से पुंवद्भाव होकर 'हास्तिकम्' ही रूप बनेगा ।)

तदधीते—'उसको पढ़ता या जानता है, इस विग्रह में द्वितीयान्त समर्थ से अण् आदि प्रत्यय होते हैं ।

न य्वाभ्यामिति—पदान्त में स्थित यकार व वकार से परे अच् को वृद्धि न हो, अपितु उनसे (यकार वकार) से पूर्व क्रमशः ऐ, औ का आगम हो ।

वैयाकरणः—व्याकरणमधीते वेद वा—व्याकरण पढ़ता है या जानता है । इस अर्थ में तदधीते सूत्र से अण् प्रत्यय, णित् होने से प्राप्त आदिवृद्धि का "न य्वाभ्यामिति" से निषेध और यकार से पूर्व 'ऐ' का आगम, अन्त्याकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

क्रमादिभ्यो वुन् ।४।२।६१।।

क्रमकः । पदकः । शिक्षकः । मीमांसकः ।

(वि+आकरण' इस स्थिति में वि (उपसर्ग) पद है 'इ' को ही य् हुआ है, अतएव यहाँ यकार पदान्त है, उसके पूर्व को ऐच् का आगम हुआ अर्थात् व् ऐ य् आकरण इस स्थिति में वृद्धि भी आकार को प्राप्त थी । ऐचागमाभाव में वैयाकरणः रूप न बनता ।)

क्रमदिभ्य इति—क्रम आदि द्वितीयान्त समर्थ पदों से उक्त अर्थ में वुन् प्रत्यय हो ।

क्रमकः—क्रम मधीते वेद वा—क्रम (क्रम पाठ) पढ़ता या जानता है । यहाँ प्रकृत सूत्र से वुन् प्रत्यय, वु को अक आदेश अन्त्याकार लोप होकर क्रमकः रूप बनता है ।

पदकः—पदमधीते वेद वा—'जो पद पाठ पढ़ता या जानता है । यहाँ पूर्ववत् सब कार्य होकर पदक : बनता है ,

शिक्षकः—शिक्षामधीते वेद वा—जो शिक्षाशास्त्र पढ़ता या जानता है । यहाँ शिक्षा शब्द से वुन्, अकादेश, अन्त्यआकार लोप होकर शिक्षकः, मीमांसा मधीते वेद वा मीमांसक : भी इसी प्रकार बनता है ,

इति रक्ताद्यर्थकाः

अथ चातुर्थिकाः

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ।४।२।६७।।

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे औदुम्बरो देशः ।

तेन निर्वृत्तम् ।४।२।६८।।

कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी ।

तस्य निवासः ।४।२।६९।।

चतुर्णाम् अर्थानां समाहारः—चतुरर्थी तत्र भवा चातुरर्थिकाः । इस प्रकरण में वह इसमें है १. 'वह देश' 'उसने बसाया' २. 'उनका निवास' ३. 'उससे जो दूर नहीं है' ४. इन चार अर्थों में प्रत्यय होंगे, अतएव इस प्रकरण का नाम चातुरर्थिक है ।

तदिति—'वह (वस्तु) इसमें (इस देश में) है ।' इस अर्थ में उस वस्तु वाचक प्रथमान्त समर्थ पद से, उक्त तथा वक्ष्यमाण अण् आदि प्रत्यय हो यदि प्रत्ययान्त शब्द देश वाचक हों ।

औदुम्बरो देश—उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे (गूलर इस देश में हैं) इस अर्थ में उदुम्बर इस प्रथमान्त शब्द से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अन्त्याकार लोप 'औदुम्बरः' रूप बनता है ।

तेनेति—उसके द्वारा निर्वृत्त=बसाया हुआ (देश विशेष) इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय हों ।

कौशाम्बी—कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी (कुशाम्ब नामक राजा द्वारा बसाई हुई नगरी) यहाँ कुशाम्ब शब्द से अण् प्रत्यय, आदि वृद्धि, अन्त्याकार लोप, ङीप् प्रत्यय होकर 'कौशाम्बी' रूप बनता है ।

तस्येति—षष्ठयन्त समर्थ पदों से 'निवास' इस अर्थ में अणादि प्रत्यय हों ।

शिबीनां निवासो देशः शैबः ।

अदूर भवश्च ।४।२।७०।।

विदिशाया अदूरभवं नगरम्—वैदिशम् ।

जनपदे लुप् ।४।२।८१ ।।

जनपदे वाच्ये चातुर्थिकस्य लुप् ।

लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने ।१।२।५१।।

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः । पञ्चालानां निवासो जनपदः— पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । बङ्गाः । कलिङ्गाः ।

शैबः—शिबीनां निवासो देशः (शिबि नामक राजाओं का निवास-देश) यहाँ शिबि षष्ठयन्त पद से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अन्त्य इकार लोप होकर 'शैबः' यह रूप बनता है ।

अदूरेति—अदूरभवः अर्थात् जो दूर न हो । इस अर्थ में पञ्चम्यन्त समर्थ पद से अण् आदि प्रत्यय हो ।

वैदिशम्—विदिशाया अदूरभवं नगरम्—विदिशा नामक नगरी से दूर न होने वाला नगर, यहाँ विदिशा शब्द से 'अदूरभव' इस अर्थ में अण् प्रत्यय आदि वृद्धि, अन्त्य आकार लोप होकर 'वैदिशम्' रूप बनता है ।

जनपदे इति—जनपद रूपी देश विशेष के वाच्य होने पर चातुर्थिक प्रत्यय का लोप हो ।

लुपीति—प्रत्यय का लोप होने पर प्रकृति के समान ही लिङ्ग और वचन हों ।

(सूत्र में 'युक्त' का अर्थ प्रकृति, व्यक्ति का लिङ्ग तथा वचन का वचन अर्थ है)

पञ्चालाः—पञ्चालानां निवासो जनपदः (पञ्चालों का निवास जनपद) यहाँ पञ्चाल शब्द से 'तस्य निवासः' सूत्र से अण् प्रत्यय, यहाँ निवास जनपद है अतः 'जनपदे लुप्' सूत्र से अण् का लोप होने पर, शब्द के एक जनपद का नाम होने से एक वचन प्राप्त था पर लुपीति सूत्र से प्रकृतिवत् लिङ्ग और वचन का विधान होने से पञ्चाल शब्द के पुल्लिङ्ग होने से पुल्लिङ्ग और बहुवचन होने से बहुवचन होकर 'पञ्चालाः' ही रूप बनेगा ।

(पञ्चाल आदि जनपदों के नाम सदा पुल्लिङ्ग और बहुवचन में आते हैं)

इसी प्रकार कुरुणां निवासो जनपदः, अङ्गानां, वङ्गानाम्, कलिङ्गानाम् वा निवासो जनपदः इन विग्रहों में पूर्ववत् अण् प्रत्यय, लोप प्रकृतिवत् लिङ्ग, वचन होकर सभी उक्त रूप बनेंगे ।

वरणादिभ्यश्च ।४।२।८२।।

अजनपदार्थ —आरम्भः । वरणाना मदूरभवं नगरम् —वरणाः ।

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ।४।२।८७।।

झयः ।८।२।१०।।

झयन्तान्मतो मस्य वः । कुमुद्वान् । नड्वान् ।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ।८।२।६।।

मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः । वेतस्वान् ।

वरणादिभ्य इति—वरण आदि शब्दों से परे चातुरर्थिक प्रत्यय का लोप हो ।

अजनेति—जनपद वाचक से भिन्न अर्थ में लोप करने के लिए यह सूत्र बनाया गया है (अन्यथा उक्त सूत्र से लोप सिद्ध ही था ।)

वरणाः—वरणाना मदूरभवं नगरम् —यहाँ 'वरण' से अण्, प्रकृत सूत्र से उसका लोप, शेष कार्य पूर्ववत् होकर 'वरणाः' रूप बनता है ।

कुमुदेति—कुमुद नड और वेतस शब्दों से सप्तम्यर्थ में ड्मतुप् (मत्) प्रत्यय होता है ।

झयः इति – झयन्त से परे 'मतु' के मकार को वकार होता है ।

कुमुद्वान्—कुमुदाः सन्त्यस्मिन् देशे (जिस देश में कुमुद हों) यहाँ कुमुद शब्द से ड्मतुप् (मत्) प्रत्यय, प्रत्यय के डित् होने से 'टेः' दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, 'झयः' सूत्र से प्रत्यय के मकार को वकार होकर 'कुमुद्वत्' इस तकारान्त शब्द से प्र० एक व० में 'कुमुद्वान्' रूप बनता है ।

नड्वान्—नडाः सन्ति अस्मिन् देशे, जिस देश में नड—नरकुल होते हैं । यहाँ नड शब्द से पूर्ववत् 'नड्वान्' रूप बनता है ।

मादिति—मवर्णान्त और अवर्णान्त तथा मवर्णोपध और अवर्णोपध शब्दों से परे 'मतु' के मकार को वकार हो यवादि परे रहते न हो ।

(सूत्र में 'मात्' का अर्थ मकार और अवर्ण है क्योंकि यहाँ मकारश्च अकारश्च अनयोः समाहारः मः तस्मात् 'मात्' यह विग्रह है ।)

वेतस्वान्—वेतसाः सन्ति यत्र देशे जिस देश में बेतस (बेंत) हों । यहाँ वेतस शब्द से प्रकृत सूत्र से ड्मतुप् (मत्) प्रत्यय डित्वसामर्थ्य से सकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, तब अवर्णोपध होने से प्रकृत सूत्र से मकार को वकार 'वेतस्वत्' शब्द से वेतस्वान्' रूप बनता है ।

नडशादाड्ड्वलच् ।४।२।८८।।

नडवलः । शाद्वलः ।

शिखाया वलच् ।४।२।८९।।

शिखावलः ।

इति चातुर्थिकाः

नडेति—नड और शाद शब्द से उक्त अर्थ में ड्वलच् प्रत्यय हो ।

नड्वलः—नडाः सन्त्यस्मिन् देशे (नड जिस देश में हों) नड शब्द से प्रकृत सूत्र से ड्वलच् (बल) प्रत्यय, डित्वसामर्थ्य से अकार 'टि' लोप होकर नड्वलः, इसी प्रकार शाद शब्द से शाद्वलः (शादाः सन्त्यस्मिन् देशे जिस देश में हरी घास अधिक हो) रूप बनता है ।

शिखाया इति—शिखा शब्द से उक्तार्थ में वलच् प्रत्यय हो ।

शिखावलः—शिखाः सन्त्यस्मिन् देशे (जिस देश में शिखा अधिक हों) शिखा शब्द से वलच् (बल) प्रत्यय होकर 'शिखाबलः' रूप बनता है ।

इति चातुर्थिकाः

अथ शैषिकाः

शेषे ।४।२।९२॥

अपत्यादि चतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेष स्तत्राणादयः स्युः। चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषम्-रुपम्। श्रावणः-शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदि पिष्टा दार्षदाः-सक्तवः चतुर्भिरुह्यते चातुरं-शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशम्-रक्षः। 'तस्य विकारः' इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।

शेष अर्थों में होने वाले प्रत्यय शैषिक कहलाते हैं।

शेष इति—अपत्य अर्थ से लेकर चातुरर्थिक तक के प्रत्ययों से भिन्न अर्थ शेष हैं, उस शेष अर्थ में अण् आदि प्रत्यय हों।

चाक्षुषम्—चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषम्-रूपम् जो चक्षु से ग्रहण किया जाय वह रूप चाक्षुष कहलाता है। यहाँ इस विग्रह में चक्षुष् शब्द से ग्रहण अर्थ में अण् प्रत्यय तथा आदि वृद्धि होकर 'चाक्षुषम्' रूप बनता है।

श्रावणः—श्रवणेन गृह्यते (जो श्रवण-कान-से गृहीत होता है वह शब्द) श्रवण+अण्, वृद्धि='श्रावणः'।

औपनिषदः—उपनिषद्भिः प्रतिपादितः—जिसका उपनिषदों द्वारा प्रतिपादन किया गया हो वह पुरुष) उपनिषद्+अण् आदिवृद्धि, 'औपनिषदः'।

दार्षदाः—दृषदि पिष्टाः—पत्थर से पिसे हुये सत्तू। दृषद्+अण्, वृद्धि (ऋकार को आर्) दार्षदाः सक्तवः'।

चातुरम्—चतुर्भिरुह्यते—जो चार से ले जाया जाता है ऐसा शकट। चतुर्+अण्, वृद्धि, 'चातुरम्'।

चातुर्दशम्—चतुर्दश्यां दृश्यते—चतुदर्शी में दिखाई देने वाला राक्षस। चतुर्दशी+अण्, वृद्धि, 'यस्येति च' अन्त्य ईकार लोप होकर 'चातुर्दशम्' रूप बनता है।

राष्ट्रावारपाराद्घखौ ।४।२।९३।।

आभ्यां क्रमाद् घखौ स्तः शेषे । राष्ट्रे जातादिः-राष्ट्रियः । अवारपारीणः ।

(वा) अवार पाराद्वि गृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् ।

अवारीणः । पारीणः । पारावारीणः । इह प्रकृति विशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जातादयोऽर्थ विशेषाः समर्थ विभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ।

ग्रामाद् यखञौ ।४।२।९४।।

ग्राम्यः । ग्रामीणः ।

'तस्य विकारः इति'—'तस्य विकारः' इस सूत्र से पहिले तक 'शेषे' इस सूत्र का अधिकार है ।

राष्ट्रेति—राष्ट्र और अवारपार शब्द से क्रमशः घ और ख प्रत्यय हों ।

राष्ट्रियः—राष्ट्रे जातः भवः आदि (राष्ट्र में उत्पन्न हुआ) राष्ट्र शब्द से घ 'प्रत्यय, 'आयन्' इत्यादि सूत्र से घकार को इय् आदेश, अन्त्याकार लोप, 'राष्ट्रियः' रूप सिद्ध होता है ।

अवारपारीणः—अवारपारंगतः—अवार पार जो जा चुका हो पारङ्गत । अवार पार शब्द से ख प्रत्यय, ख को ईन आदेश, अन्त्याकार लोप, णत्व होकर 'अवारपारीणः' रूप बनता है ।

वार्तिक—अवारपारादिति—पृथक् किये हुए अवारपार (अवार और पार) तथा विपरीत किये हुये (पार और अवार) शब्दों से भी ख प्रत्यय कहना चाहिए ।

अवारीणः—अवारे जातः, अवार+ख, ईन, णत्व, अवारीणः, पारे जातः—पारीणः, पारावारे जातः पारावारीणः रूप बनता हैं ।

इहेति—यहाँ प्रकृति विशेष (राष्ट्र आदि) से घ आदि प्रत्ययों से लेकर ट्यु-ट्युल् (सायं चिरं०) सूत्र पर्यन्त जितने प्रत्यय कहे गये हैं, उनके लिए 'तत्र जातः' आदि सूत्रों द्वारा केवल अर्थ एवं उनके लिए समर्थ विभक्तियों का आगे निर्देश किया जायेगा अर्थात् आगे के सूत्रों का, प्रत्यय विधायक एवं अर्थ विधायक सूत्रों की एक वाक्यता से, अर्थ किया जायेगा अतः सर्वत्र प्रकृति प्रत्यय अर्थ आदि का एक ही सूत्र में विधान न मिलने से कोई अर्थ विप्रतिपत्ति न समझनी चाहिए ।

ग्रामेति—सप्तम्यन्त समर्थ ग्राम शब्द से जातः, भवः, आदि अर्थ में य और खञ् प्रत्यय हों ।

ग्राम्यः—ग्रामे जातादिः (ग्राम में उत्पन्न हुआ) ग्राम शब्द से यत् प्रत्यय, अन्त्याकर लोप होकर ग्राम्यः, खञ् प्रत्यय तथा ईन आदेश होकर ग्रामीणः रूप बनता है ।

नद्यादिभ्यो ढक् ।४।२।९७।।

नादेयम् । माहेयम् । वाराणसेयम् ।

दक्षिणा पश्चात् पुरसस्त्यक् ।४।२।९८।।

दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्यः ।

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ।४।२।१०१।।

दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम् ।

अव्ययात्त्यप् ।४।२।१०४।।

नद्यादिभ्य इति—नदी आदि शब्दों से ढक् प्रत्यय हो।

नादेयम्—नद्यां जातं भवं वा (नदी से उत्पन्न नदी शब्द से ढक् प्रत्यय, कित्त्वात् आदि वृद्धि, ढकार को एय् आदेश, ईकार लोप होकर **नादेयम्**, इसी प्रकार मह्यां जातं भवं वा (पृथिवी में उत्पन्न) मही+ढक्, आदि वृद्धि, एय्, ईकार लोप=**माहेयम्**, 'वाराणस्यां जातं भवं वा'। वाराणसी+ढक्, एय् आदेश, ईकार लोप '**वाराणसेयम्**' रूप बनते हैं।

दक्षिणेति—दक्षिणा पश्चात् पुरस् शब्दों से शैषिक त्यक् प्रत्यय हो।

दाक्षिणात्यः—दक्षिणा जातः दाक्षिणात्यः (दक्षिण में उत्पन्न हुआ) यहाँ दक्षिणा शब्द से त्यक् प्रत्यय, कित्त्वात् आदि वृद्धि होकर 'दाक्षिणात्यः' रूप बनता है। यहाँ 'दक्षिणादाच्' सूत्र से आच् प्रत्ययान्त दक्षिणा शब्द अव्यय है।

पाश्चात्यः—पश्चात् भवः जातः वा यहाँ पश्चात् से त्यक्, वृद्धि, पाश्चात्यः, 'पुरो भवः जातः वा' (पूर्व में हुआ) यहाँ पुरस् से त्यक्, आदिवृद्धि होकर **'पौरस्त्यः'** बनता है।

द्युप्रागिति—दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच्, और प्रतीच् इन सप्तम्यन्त शब्दों से भवादि अर्थ में यत् (शैषिक) प्रत्यय हो।

दिव्यम्—दिवि जातम् आदि (स्वर्ग में हुआ) दिव् शब्द से यत् प्रत्यय होकर दिव्यम् रूप बनता है।

प्राच्यम्—प्राच्यां प्राग् वा भवं जातं वा (पूर्व में होने वाला पूर्वीय) प्राच्+यत्=प्राच्यम्। इसी प्रकार अपाच्यां भवं (दक्षिण दिशा में उत्पन्न होने वाला) अपाच्+यत्=अपाच्यम्, उदीच्यां भवम् आदि—(उत्तर दिशा में होने वाला) उदीच्+यत्=उदीच्यम्, प्रतीच्यां भवम् इत्यादि (पश्चिम दिशा में होने वाला) प्रतीच्+यत्=प्रतीच्यम् आदि रूप बनते हैं।

अव्ययादिति—अव्यय शब्दों से भवादि अर्थ में त्यप् प्रत्यय हो।

(वा) अमेहक्वतसित्रेभ्य एव । अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । तत्रत्यः ।

(वा) त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् । नित्यः ।

'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् ।१।१।७३।।

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद् वृद्ध संज्ञं स्यात् ।

त्यदादीनि च ।१।१।४७।।

वृद्ध संज्ञानि स्युः ।

वृद्धाच्छः ।४।२।१४४।।

शालीयः । मालीयः । तदीयः ।

वार्तिक—अमेहेति—अमा (सह) इह (यहाँ) क्व, तसिल् प्रत्ययान्त-यतः अतः आदि, और त्र प्रत्ययान्त तत्र अत्र आदि अव्ययों से ही त्यप् प्रत्यय कहना चाहिए ।

अमात्यः—अमा=सह भवः (साथ होने वाला अर्थात् मन्त्री, क्योंकि वह सामयिक परामर्श के लिये सदा राजा के साथ रहता है) अमा+त्यप्=अमात्यः । इसी प्रकार,

इहत्यः—इह भवः (यहाँ वाला) इहत्यः क्व+त्यप्=क्वत्यः (कहाँ का) तसन्त-ततः से ततस्त्यः (वहाँ का) त्र-प्रत्ययान्त—तत्र से तत्रत्यः वहाँ होने वाला) रूप बनते हैं ।

वार्तिक—त्यब्नेरिति—नि उपसर्ग से ध्रुव अर्थ में त्यप् प्रत्यय हो ।

नित्यः—(स्थायी) नि+त्यप्—'नित्यः' बनता है ।

वृद्धिरिति—जिस समुदाय के स्वरों में आदि स्वर वृद्धि संज्ञक (आ ऐ औ) हो उस समुदाय (शब्द) की वृद्ध संज्ञा हो ।

त्यदादीनीति—त्यद् आदि शब्दों की भी वृद्ध संज्ञा हो ।

वृद्धादिति—वृद्ध संज्ञक से छ प्रत्यय हो ।

शालीयः—शालायां भवः जातः वा (शाला में होने वाला) यहाँ शाला शब्द के आदि शा में आकार वृद्ध संज्ञक होने से, इस शाला शब्द की वृद्धिरिति सूत्र से वृद्ध संज्ञा है अतः प्रकृत सूत्र से छ प्रत्यय, छकार को ईय आदेश, अन्त्य आकार लोप होकर शालीयः । इसी प्रकार माला शब्द से माला+छ, ईय्, आकार लोप, मालीयः रूप बनेगा ।

तदीयः—तस्य अयम् (उसका यह) तद् शब्द के त्यद् आदि शब्दों में पठित होने के कारण तद् शब्द की प्रकृत सूत्र से वृद्ध संज्ञा होने से वृद्धाच्छः सूत्र से छ प्रत्यय, छ, को ईय् आदेश होकर 'तदीयः' रूप बनता है ।

(वा) वा नामधेयस्य वृद्ध संज्ञा वक्तव्या । देवदत्तीयः । दैवदत्तः ।

गहादिभ्यश्च ।४।२।१३८।।

गहीयः ।

युस्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ।४।३।१ ।

चाच्छः, पक्षेऽण् । युवयोर्युस्माकं वाऽयम् । युष्मदीयः । अस्मदीयः ।

तस्मिन्नणि च युस्माकास्माकौ ।४।३।६।।

युस्मदस्मदो रेतावा देशौ स्तः खञि अणि च । यौष्माकीणः । आस्माकीनः यौस्माकः । आस्माकः ।

वार्तिक वा नामधेयस्येति—किसी व्यक्ति विशेष के नाम की वृद्ध संज्ञा विकल्प से हो ।

देवदत्तीयः—देवदत्तस्य अयम् इस अर्थ में प्रकृत वार्तिक से वृद्ध संज्ञा, वृद्धाच्छः से छ प्रत्यय, ईय्, अकारलोप होकर 'देवदत्तीयः', वृद्ध संज्ञाभाव पक्ष में अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर 'दैवदत्तः' रूप बनेगा ।

गहादिभ्य इति—गह आदि शब्दों से भी छ प्रत्यय हो ।

गहीयः—गहे जातः (गह एक देश विशेष है, वहाँ होने वाला) गह+छ, ईय्, अकारलोप होकर उक्त रूप बनता है ।

युस्मदस्मदोरिति—युस्मद् और अस्मद् शब्द से विकल्प से खञ् प्रत्यय हो ।

चादिति—चकार ग्रहण करने से छ प्रत्यय भी हो और पक्ष में अण् प्रत्यय भी हो ।

युष्मदीयः—युवयोः युष्माकं वा अयम् (तुम दोनों का या तुम सब का) इस अर्थ में युष्मद् शब्द से छ प्रत्यय ईय् आदेश होकर 'युष्मदीयः' आवयोरस्माकं वा अयम् इस विग्रह में अस्मद् शब्द से छ प्रत्यय होकर 'अस्मदीयः' बनेगा ।

तस्मिन्निति—उस खञ् और अण् प्रत्यय परे रहते युस्मद् और अस्मद् शब्दों को क्रमशः युष्माक और अस्माक आदेश हों ।

यौष्माकीणः—युवयोर्युष्माकं वा अयम् इस विग्रह में पूर्व सूत्र से युष्मद् शब्द से खञ् प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से युस्मद् शब्द को युष्माक आदेश, खकार को ईन आदेश, आदिवृद्धि, अकारलोप, णत्व होकर 'यौष्माकीणः' इसी प्रकार अस्मद् शब्द से खञ्, अस्माक आदेश, वृद्धि, अकारलोप होकर 'आस्माकीनः' पक्ष में अण् होने पर युस्मद्+अण्, प्रकृत सूत्र से युष्माक आदेश, वृद्धि, अन्त्याकारलोप होकर यौष्माकः, अस्मद् शब्द से अण् प्रत्यय होकर पूर्ववत् अस्माक आदेश, वृद्धि आदि होकर 'आस्माकः' इस प्रकार छ, खञ अण् इन तीन प्रत्ययों के परे युस्मद् अस्मद् शब्दों

तवकममकावेकवचने ।४।३।३॥

एकार्थवाचिनोर्युस्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि अणि च। तावकीनः, तावकः। मामकीनः, मामकः। छे तु—

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ।७।२।९८॥

मपर्यन्तयोरेकार्थ वाचिनो स्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परतः। त्वदीयः। मदीयः, त्वत्पुत्रः। मत्पुत्रः।

मध्यान्मः ।४।३।८॥

मध्यमः।

के द्विवचन और बहुवचन से क्रमशः युस्मदीयः, अस्मदीयः यौष्माकीणः, आस्माकीनः। यौष्माकः, आस्माकः' ये रूप बनते हैं।

तवकेति—एकार्थ वाचक युस्मद् और अस्मद् शब्द को तवक और ममक आदेश हों खञ् और अण् परे रहते।

तावकीनः, तावकः— तव अयम्, यहाँ युस्मद् से खञ् तथा अण् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से तवक आदेश, खकार को ईन आदेश, आदिवृद्धि, तावकीनः। अण् परे भी आदिवृद्धि, अन्त्याकारलोप होकर तावकः, इसी प्रकार अस्मद् शब्द से खञ् प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से ममक आदेश, वृद्धि आदि होकर मामकीनः, अण् प्रत्यय होने पर वृद्धि आदि होकर पूर्ववत् 'मामकः' रूप बनते हैं।

छे तु— छ प्रत्यय होने पर तो—

प्रत्ययोत्तर पदयोरिति—एकार्थ वाचक युस्मद् तथा अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त भाग को त्व और म आदेश हों प्रत्यय और उत्तर पद परे रहते।

त्वदीयः मदीयः—तव अयम्, मम अयम् इस विग्रह युस्मद् तथा अस्मद् से छ प्रत्यय, प्रत्यय परे रहते प्रकृत सूत्र से दोनों के मपर्यन्त भाग को क्रमशः त्व और म आदेश त्वद्+छ, मद् छ; ईय आदेश त्वदीयः मदीयः रूप बनते हैं।

(युस्मद् और अस्मद् शब्द त्यदादि शब्दों के अन्तर्गत हैं अतः इनकी 'त्यदादीनि च' सूत्र से वृद्ध संज्ञा होकर 'वृद्धाच्छः' सूत्र से छ प्रत्यय होता है।)

त्वत्पुत्रः मत्पुत्रः—(तेरा पुत्र, मेरा पुत्र) ये दोनों उत्तर पद के उदाहरण हैं, वास्तव में उत्तरपद समास के चरमावयव में रूढ़ है अतः तद्धित में उसके उदाहरण न मिलेंगे, इसलिये यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास होने पर उत्तर पद पुत्र के परे रहते प्रकृत सूत्र से मपर्यन्त युस्मद् और अस्मद् को क्रमशः त्व और म आदेश करने पर त्वत्पुत्रः और मत्पुत्रः रूप बनते हैं।

मध्याविति – मध्य शब्द से भवादि अर्थ में शैषिक म प्रत्यय हो।

कालाद् ठञ् ।४।३।११।।

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात् । कालिकम् । मासिकम् । सांवत्सरिकम् ।

(वा) अव्ययानां भमात्रे टिलोपः । सायंप्रातिकः । पौनः पुनिकः ।

प्रावृष एण्यः ।४।३।१७।।

प्रावृषेण्यः ।

सायं चिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ।४।३।२३।।

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयो स्तुट् च । सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णे-प्रगेऽनयो रेदन्तत्वं निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् ।

मध्यमः—मध्ये भवः यहाँ मध्य शब्द से म प्रत्यय होकर 'मध्यमः' बनता है ।

कालादिति—काल शब्द से और काल वाचक सप्तम्यन्त शब्द से उक्तार्थ में ठञ् प्रत्यय हो ।

कालिकम्—काले भवम् जातम् वा (समय पर होने वाला) काल शब्द से प्रकृत सूत्र से ठञ् प्रत्यय, 'ठस्येकः' से ठकार को इक् आदेश, वृद्धि, अकारलोप होकर 'कालिकम्' इसी प्रकार मासे भवम् **मासिकम्,** मास+ठञ्, इक्, वृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर "मासिकम्" सम्वत्सरे भवम् (सम्वत्सर में होने वाला) सम्वत्सर+ठञ्, इक, वृद्धि, अकारलोप होकर **साम्वत्सरिकम्** रूप बनता है ।

वार्तिक अव्ययानामिति—भ संज्ञा होने पर सर्वत्र अव्ययों की टि का लोप हो ।

सायंप्रातिक—सायंप्रातर्भवः—सांझ सवेरे होने वाला । सायंप्रातर् अव्यय से कालाट्ठञ् सूत्र से ठञ् प्रत्यय, इक् आदेश, भ संज्ञा, आदिवृद्धि, प्रकृत वार्तिक से 'अर्' इस 'टि' का लोप होकर 'सायंप्रातिकः' सिद्ध होता है ।

पौनः पुनिकः—पुनः पुनर्भवः—बार-बार होने वाला । पुनः पुनर् अव्यय से ठञ्, इक्, वृद्धि, वार्तिक से अर् टि लोप होकर पौनः पुनिकः रूप बनता है ।

प्रावृष इति—काल वाचक प्रावृष् (वर्षा ऋतु) शब्द से एण्य प्रत्यय हो ।

प्रावृषेण्यः—प्रावृषि भवः (वर्षा में होने वाला) प्रावृष् शब्द से प्रकृत सूत्र से एण्य प्रत्यय होकर 'प्रावृषेण्यः' रूप बनता है ।

सायमिति—सायं चिरं प्राह्णे प्रगे और काल वाचक अव्ययों से भवार्थ में ट्यु तथा ट्युल् प्रत्यय हों और उनको तुट् का आगम भी हो ।

(इन दोनों प्रत्ययों का यु शेष रहता है उसे अन आदेश होता है । दोनों प्रत्ययों से स्वरों में भेद है । तुट् आगम में जो कि ट्यु ट्युल् प्रत्ययों के यु के स्थान में अन आदेश करने पर उसके आदि में होता है, केवल 'त्' शेष रहता है ।

तत्र जातः ।४।३।२५।।

सप्तमी समर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः । स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः । उत्से जातः औत्सः । राष्ट्रे जातः राष्ट्रियः । अवारपारे जातः—अवारपारीणः इत्यादि ।

प्रावृषष्ठप् ।४।३।२६।।

एण्यापवादः । प्रावृषिकः ।

सायम् और चिरम् शब्द अव्यय भी हैं और सायं तथा चिरं सुवन्त भी । जब सुबन्त सायं और चिरं से प्रत्यय (टयु टयुल्) होते हैं तो ये निपातन से मान्त हो जाते हैं, और जब ये सायम् एवम् चिरम् अव्यय है तब भी इनसे प्रत्यय होकर वही रूप बनते हैं, सुवन्त सायं आदि तथा अव्यय सायम् आदि समानार्थक ही है ।

सायन्तनम्—साये भवं—(सायं काल में होने वाला) यहाँ सुवन्त सायं से टयु टयुल् होने पर, प्रत्ययों के साथ निपातन से सायं का मकारान्त रूप हो जाता है तब सायम्+टयु या टयुल् इस स्थिति में यु को अन आदेश, अन के आदि को तुट् का आगम, सायम्+त्+अन=सायन्तन से सायन्तनम् रूप बनता है और सायम् यह मान्त अव्यय ही है तब भी प्रत्ययादि सब कार्य पूर्ववत् होकर 'सायन्तनम्' बनेगा, इसी प्रकार चिरे भवं—(देर में होने वाला) इस अर्थ में **चिरन्तनम्** रूप बनेगा ।

प्राह्णेतम्—प्राह्णे भवम् जातम् वा (पूर्वाह्ण में हुआ) प्राह्ण शब्द से टयु टयुल् प्रत्यय करने पर निपातन से एकारान्तता होगी अर्थात् प्राह्णे ऐसा रूप बन जायेगा शेष कार्य पूर्ववत् होकर प्राह्णेतनम् और इसी प्रकार **प्रगेतनम्** (प्रगे प्रातः काले जातम्) रूप बनेगा ।

प्राह्णे और प्रगे ये दोनों निपातन से एकारान्त हो जाते हैं ।

दोषा तनम्—दोषा जातम् (रात में होने वाला) काल वाचक अव्यय दोषा शब्द से टयु टयुल् प्रत्यय तथा तुट् आगम होकर पूर्वबत् 'दोषातनम्' रूप बनेगा ।

तत्रेति—सप्तम्यन्त समर्थ से 'उत्पन्न हुआ' इस अर्थ में अण् आदि और घ आदि प्रत्यय हों ।

स्रौघ्नः—स्रुघ्ने जातः (स्रुघ्न नामक देश में उत्पन्न हुआ) इस अर्थ में अण् प्रत्यय होकर 'स्रौघ्नः' रूप बनता है ।

औत्सः—उत्से जातः (उत्स उस गर्त या कुण्ड को कहते हैं जहाँ पर्वत से पानी गिरकर एकत्र होता है, वहाँ उत्पन्न हुआ) यहाँ भी अण् होकर 'औत्सः' रूप बनेगा ।

राष्ट्रियः—राष्ट्रे जातः इस विग्रह में घ प्रत्यय होकर पूर्ववत् रूप बनेगा ।

प्रावृष इति—प्रावृषि जातः (वर्षा में उत्पन्न हुआ) प्रावृष् शब्द से प्रकृत सूत्र से ठप् प्रत्यय, 'ठस्येकः' से ठ को इक् आदेश होकर प्रावृषिकः रूप बनेगा ।

प्रायभवः ।४।३।३९।।

तत्रेत्येव । स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः ।

सम्भूते ।४।३।४१।।

स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः ।

कोशाड्ढञ् ।४।३।४२।। कौशेयम् वस्त्रम् ।

तत्र भवः ।४।३।५३।। स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः । औत्सः । राष्ट्रियः ।

दिगादिभ्यो यत् ।४।२।।५४।। दिश्यम् । वर्ग्यम् ।

यह ठप् प्रत्यय जात अर्थ में एण्य प्रत्यय का बोधक है ।

प्रायभव इति—सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से प्रायभवः (अधिकतर होने वाला) इस अर्थ में अणादि एवं घादि प्रत्यय हों ।

स्रौघ्नः—स्रुघ्ने प्रायेण जातः (स्रुघ्न देश में अधिकता से होने वाला) अण् प्रत्यय होकर स्रौघ्नः बनेगा ।

सम्भूते इति—सप्तम्यन्त समर्थ शब्द से 'सम्भव होता है' इस अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय हों ।

स्रौघ्नः—स्रुघ्ने सम्भवति (स्रुघ्न में जिसकी सम्भावना है) यहाँ भी अण् होकर 'सौघ्नः' बनेगा ।

कोशादिति—उक्त अर्थ में कोश शब्द से ढञ् प्रत्यय हो ।

कौशेयम्—कोशे सम्भवति (कोश :क्रमिकोश' से उत्पन्न होने वाला रेशम) यहाँ कोश से प्रकृत सूत्र से ढञ् प्रत्यय, ञित्वात् आदि वृद्धि, ढकार को एय्, आदेश, कौशेयम्' रूप बनेगा ।

(वस्तुतः 'विकारे कोशाड्ढञ् सम्भूते ह्यर्थानुपपत्तिः' 'इस वार्तिक के अनुसार कोश शब्द से विकार अर्थ में ढञ् प्रत्यय करने पर उक्त अर्थ सम्भव है । 'सम्भवति' इस अर्थ में नहीं क्योंकि 'रेशम' क्रमिकोश का विकार ही होता है ।)

तत्रेति—सप्तम्यन्त से भव अर्थ में अणादि और घ आदि प्रत्यय होते हों ।

स्रौघ्नः—स्रुघ्ने भवः (विद्यमान या होने वाला) यहाँ अण् प्रत्यय होकर 'स्रौघ्नः' बना है । इसी प्रकार इस अर्थ में औत्सः, घ प्रत्यय करने पर राष्ट्रियः प्रयोग बनते हैं ।

दिगादिभ्य इति—दिश् आदि शब्दों से तत्र भवः अर्थ में यत् प्रत्यय हो ।

दिश्यम्—दिशि भवम्, दिश्+यत्=दिश्यम्, इसी प्रकार

शरीरावयवाच्च ।४।३।५५।। दन्त्यम् । कण्ठ्यम् ।

(वा) अध्यात्मादेष्ठञिष्यते ।। अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् ।

अनुशतिकादीनां च ।७।३।२०।।

एषामुभय पद वृद्धिः स्यात् ञिति, णिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । आकृतिगणोऽयम् ।

जिह्वा मूलाङ्गुलेश्छः ।४।३।६२।।

जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ।

वर्ग्यम् —वर्गे भवम्, वर्ग + यत् = अन्त्याकारलोप होकर 'वर्ग्यम्' बनेगा ।

शरीरेति—शरीर के अवयव वाचक शब्दों से तत्र भवः अर्थ में यत् प्रत्यय हो ।

दन्त्यम्—दन्तेषु भवम्, यहाँ दन्त शब्द से यत् प्रत्यय, अन्त्याकार लोप होकर दन्त्यम्, इसी प्रकार कण्ठ शब्द से कण्ठ्यम् रूप बनेगा ।

वार्तिक-अध्यात्मादेरिति—अध्यात्म आदि शब्दों से तत्र भवः अर्थ में ठञ् प्रत्यय इष्ट है ।

आध्यात्मिकम्—अध्यात्मं भवम् (आत्मा में होने वाला) यहाँ सप्तम्यन्त अध्यात्म शब्द से ठञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि, ठकार को इक्, अन्त्याकार लोप होकर 'आध्यात्मिकम्' रूप बनता है ।

अनुशतिकेति—अनुशतिक आदि समस्त पदों के पूर्व तथा उत्तर दोनों ही पदों की वृद्धि हो णित्, ञित् तथा कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते ।

आधिदैविकम्—अधिदेवं भवम् (देवों में होने वाला) अधिदेव इस समस्त पद से उक्त वार्तिक से ठञ् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से दोनों पदों के आदि को वृद्धि होकर आधिदैव + ठ, इक् आदेश अकार लोप होकर 'आधिदैविकम्' बनता है ।

आधिभौतिकम्—अधिभूतं भवम् (पृथिव्यादि भूतों में उत्पन्न) अधिभूत से पूर्ववत् ठञ्, उभय पद वृद्धि आदि होकर 'आधिभौतिकम्' रूप बनेगा ।

ऐहलौकिकम्—इहलोके भवम्, इहलोक + ठञ् उभय पद वृद्धि, आदि होकर ऐहलौकिकम्, एवं पारलौकिकम् (परलोके भवम्) इत्यादि रूप बनते हैं ।

यह अनुशतिकादि गण आकृति गण है । जिन पदों में उभय पद वृद्धि देखी जाती है और किसी सूत्र द्वारा उसका विधान नहीं मिलता उनको अनुशतिकादि गण में समझना चाहिए ।

जिह्वामूलेति—'तत्र भवः' अर्थ में जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्द से छ प्रत्यय हो ।

वर्गान्ताच्च ।४।३।६३।।

कवर्गीयम् ।

तत आगतः ।४।३।७४।।

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः ।

ठगायस्थानेभ्यः ।४।३।७५।।

शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः ।

विद्यायोनि सम्बन्धेभ्यो वुञ् ।४।३।७७।।

औपाध्यायकः । पैतामहकः ।

जिह्वामूलीयम् —जिह्वामूले भवम्—जिह्वा के मूल प्रदेश में उत्पन्न । जिह्वा-मूल शब्द से छ प्रत्यय, छकार को ईय आदेश, अन्त्याकार लोप होकर 'जिह्वामूलीयम्' इसी प्रकार अङ्गुलीयम् (अङ्गुल्यां भवम्-अङ्गुलि में होने वाला अंगूठी आदि) अङ्गुलि + छ, ईय् आदेश, अन्त्य इकार लोप, 'अङ्गुलीयम्' बनता है ।

वर्गान्तादिति —वर्ग शब्द जिनके अन्त में हो ऐसे सप्तम्यन्त समर्थ शब्दों से 'तत्र भवः' अर्थ में छ प्रत्यय हो ।

कवर्गीयम्—कवर्गे भवम् इस विग्रह में 'कवर्ग शब्द से छ प्रत्यय, ईय् आदेश, अन्त्याकार लोप, 'कवर्गीयम्' रूप बनता है ।

ततइति—पञ्चम्यन्त समर्थ से आगतः (आया हुआ) इस अर्थ में अणादि तथा घादि प्रत्यय हों ।

स्रौघ्नः—स्रुघ्नात् आगतः (स्रुघ्न से आया हुआ) स्रुघ्न + अण् = स्रौघ्नः ।

ठगिति—आय स्थान वाचक शब्दों से 'आगतः' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

शौल्कशालिकः—शुल्क शालाया आगतः [कर ग्रहण स्थान (चुंगी) से प्राप्त हुआ) शुल्कशाला शब्द से ठक् प्रत्यय, ठ का इक् आदिवृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'शौल्कशालिकः' बनता है ।

विद्येति—'तत आगतः' इस अर्थ में विद्या और योनि-रक्त सम्बन्ध वाचक शब्दों से वुञ् प्रत्यय हो ।

औपाध्यायकः—उपाध्यायादागतः (उपाध्याय से प्राप्त) यहाँ विद्याकृत सम्बन्ध वाचक उपाध्याय शब्द से वुञ् प्रत्यय, वु को अक, आदिवृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर औपाध्यायकः' रूप बनेगा ।

पैतामहकः—पितामहादागतः (पितामह से प्राप्त) पितामह से (योनि सम्बन्ध शब्द वाचक) वुञ् प्रत्यय, अक आदेश वृद्धि, अकार लोप होकर 'पैता-महकः' रूप बनता है ।

हेतु मनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ।४।३।८१।।

समादागतं समरूप्यम् । पक्षे गहादित्वाच्छः । समीयम् । विषमीयम् ।

देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् ।

मयट् च ।४।३।८२।।

सममयम् । देवदत्तमयम् ।

प्रभवति ।४।३।८३।।

हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा ।

तद्गच्छति पथिदूतयोः ।४।३।८५।।

स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा ।

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ।४।३।८६।।

स्रुघ्नमभिगच्छति स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम् ।

हेतुमनुष्येभ्य इति—'तत आगतः' इस अर्थ में हेतुवाचक एवं मनुष्य वाचक शब्दों से विकल्प से रूप्य प्रत्यय हो ।

समरूप्यम्—समादागतं (समहेतु से प्राप्त) सम इस हेतु वाचक शब्द से रूप्य प्रत्यय होकर 'समरूप्यम्' प्रयोग बनता है ।

समीयम्—रूप्य प्रत्यय विकल्प से होता है, अतः इसके अभाव पक्ष में 'गहादिभ्यश्च' इस सूत्र से छ प्रत्यय, ईय् आदेश, अन्त्याकार लोप होकर 'समीयम्' इसी प्रकार 'विषमादागतम्' इस विग्रह में **विषमीयम्** रूप बनेगा ।

देवदत्तरूप्यम्—देवदत्तादागतम् इस नाम वाचक देवदत्त शब्द से रूप्य प्रत्यय होकर 'देवदत्तरूप्यम्' अभाव पक्ष में 'तत आगतः' से अण् वृद्धि होकर '**दैवदत्तम्**' रूप बनेगा ।

मयट्चेति—उक्त अर्थ में उक्त शब्दों से मयट् प्रत्यय भी होता है ।

सममयम्—सम + मयट् = सममयम् । देवदत्त + मयट् = देवदत्तमयम् ।

प्रभवतीति—पञ्चम्यन्त समर्थ से प्रकट होता है, निकलता है' इस अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय हो ।

हैमवती—हिमवतः प्रभवति, जो हिमालय से निकलती है या निकलने वाली गंगा । हिमवत् + अण् आदि वृद्धि, हैमवत स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होकर उक्त रूप बनता है ।

तद्गच्छतीति—यदि जाने वाला मार्ग अथवा दूत हो तो द्वितीयान्त समर्थ से 'उसको जाता है' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय हो ।

स्रौघ्नः—स्रुघ्नं गच्छति (स्रुघ्न देश को जाने वाला मार्ग या दूत) स्रुघ्न + अण् = स्रौघ्नः ।

अभिनिष्क्रामतीति—'उसकी ओर निकलता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ से अणादि प्रत्यय हों ।

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ।४।३।८७।।

शारीरक मधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः ।

सोऽस्य निवासः ।४।३।८९।।

स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः ।

तेन प्रोक्तम् ।४।३।१०१।।

पाणिनिना प्रोक्तम् पाणिनीयम् ।

तस्येदम् ।४।३।१२०।।

उपगोरिदमौपगवम् ।

स्रौघ्नम् — स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति कान्यकुब्जद्वारम्=सुघ्न देश की ओर निकलने वाला कन्नौज का द्वार स्रौघ्न कहा जायेगा । स्रुघ्न+अण्=स्रौघ्नम् ।

अधिकृत्येति—द्वितीयान्त समर्थ शब्द से 'उस विषय को लेकर ग्रन्थ बनाया' इस अर्थ में अणादि प्रत्यय हों ।

शारीरकीयः — शारीरिक मधिकृत्य कृतो ग्रन्थः (स्वार्थ में क प्रत्यय होकर शरीर से शरीरक (शरीरमेव शरीरकम्) शब्द बनता है । इस शरीरक शब्द से 'तत्र भवः' से अण् प्रत्यय होकर शारीरक अर्थात् शरीर में होने वाला अर्थात् जीवात्मा, इस प्रकार इस शारीरक अर्थात् जीवात्मा के विषय को लेकर बनाया गया ग्रन्थ शारीरकीयः कहलायेगा) शारीरक शब्द से प्रकृत सूत्र द्वारा छ प्रत्यय, ईय् आदेश अकार लोप होकर उक्त रूप बनेगा ।

सोऽस्येति—प्रथमान्त समर्थ से 'यह इसका निवास स्थान है, इस अर्थ में अणादि प्रत्यय हों ।

स्रौघ्नः—स्रुघ्नो निवासोऽस्य (स्रुघ्न जिसका निवास स्थान हो) स्रुघ्न+अण् =स्रौघ्नः ।

तेनेति — तृतीयान्त समर्थ से 'प्रोक्तम्-कथितम्' इस अर्थ में अणादि प्रत्यय हों ।

पाणिनीयम्—पाणिनिना प्रोक्तम् (पाणिनि के द्वारा प्रवचन किया गया) पाणिनि शब्द से वृद्ध संज्ञक होने के कारण 'वृद्धाच्छः' सूत्र से छ प्रत्यय, ईय्, आदेश, इकार लोप होकर 'पाणिनीयम्' रूप बनता है ।

तस्येदमिति — 'उसका यह' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ से अणादि प्रत्यय हो ।

औपगवम् — उपगोः इदम् (उपगु का यह) उपगु शब्द से अण्, आदिवृद्धि, 'ओर्गुणः' उकार को ओ गुण, अवादेश होकर 'औपगवम्' रूप बनता है ।

इति शैषिक प्रत्ययाः

१५

अथ विकारार्थकाः

तस्य विकारः ।४।३।१३४।।

(व) अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः । अश्मनो विकारः आश्मः । भास्मनः । मार्तिकः ।

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ।४।३।१३५।।

तस्येति—षष्ठयन्त समर्थ से विकार अर्थ में अण् आदि प्रत्यय हों ।

(प्रकृति का प्रथम अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त हो जाना ही विकार है, जैसे मिट्टी इस प्रकृति से घट बन जाना मिट्टी का विकार कहलाता है ।)

वार्तिक-अश्मन इति—विकार अर्थ में प्रत्यय होने पर अश्मन् शब्द की 'टि' का लोप कहना चाहिये ।

आश्मः—अश्मनः विकारः—पत्थर का विकार सीमेन्ट आदि पदार्थ । अश्मन् शब्द से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, वार्तिक से 'अन्' इस 'टि' का लोप । यहाँ 'अन्' सूत्र से 'टि' का प्रकृतिभाव प्राप्त है अतः वार्तिक द्वारा उसका लोप किया गया है, इस प्रकार आश्म इस प्रातिपदिक से 'आश्मः रूप बनता है ।

भास्मनः—भस्मनः विकारः—(भस्म का विकार) यहाँ भस्मन् शब्द से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, 'नस्तद्धिते' सूत्र से प्राप्त टि लोप का 'अन्' सूत्र द्वारा प्रकृति भाव करने पर उक्त रूप बनता है ।

मार्तिकः—मृत्तिकाया विकारः (मृत्तिका का विकार) मृत्तिका+अण् आदि वृद्धि, आकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

अवयवे चेति—प्राणि ओषधि और वृक्ष वाचक षष्ठ्यन्त शब्दों से अवयव अर्थ में तथा चकार ग्रहण से विकार अर्थ में भी अञ् आदि प्रत्यय हों ।

चाद्विकारे। मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः। मौर्वं काण्डं भस्म वा। पैप्पलम्।

मयड् वैतयो र्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ।४।३।१४३।।

प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्यात्, विकारावयवयोः। अश्ममयम्। आश्मनम्। अभक्ष्येत्यादि किम्। मौद्गः' सूपः। कार्पासमाच्छादनम्।

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ।४।३।१४४।।

आम्रमयम्। शरमयम्।

मायूरः—मयूरस्य अवयवः विकारो वा (मोर का अंग या उसका विकार) यहाँ मयूर से अण्, वृद्धि, अकार लोप, 'मायूरः' रूप बनता है।

मौर्वम्—मूर्वायाः अवयवः (काण्डम्) विकारः (भस्म) वा (मूर्वा नामक) (ओषधिविशेष का तना या भस्म) मूर्वा + अण्, वृद्धि, आकार लोप होकर 'मौर्वम्' रूप बनता है।

पैप्पलम्—पिप्पलस्यावयवो विकारो वा (पीपल का अंग, या विकार) पिप्पल + अण्—वृद्धि, अन्त्याकार लोप 'पैप्पलम्' सिद्ध होता है।

मयड्वेति—प्रकृति मात्र से अवयव और विकार अर्थ में मयट् प्रत्यय विकल्प से हो, भाषा में यदि भक्ष्य वस्तु, या आच्छादन=ओढना, योग्य वस्तु हो तो न हो।

अश्ममयम्—अश्मनः विकारो अवयवो वा 'अश्मन्-पत्थर का विकार या अवयव-टुकड़ा आदि। अश्मन् शब्द से मयट् प्रत्यय, 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न लोप 'अश्ममयम्' बनता है।

आश्मनम्—मयट् प्रत्यय के अभाव पक्ष में अण् प्रत्यय, वृद्धि होकर 'आश्मनम्' रूप बनेगा।

अभक्ष्येत्यादीति—भक्ष्य एवं आच्छाद्य अर्थ से भिन्न अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है अतः **मौद्गः सूपः**—मुद्गस्य विकारः (मूँग का विकार-दाल) यह भक्ष्य वस्तु है मयट् न होकर अण्, वृद्धि होकर 'मौद्गः' रूप बनेगा। इसी प्रकार **कार्पासम्**—कर्पासस्य विकारः इस अर्थ में मयट् प्रत्यय न होकर अण् एवं वृद्धि होकर कार्पासम् बनेगा क्योंकि यह आच्छाद्य वस्तु है।

नित्यमिति—षष्ठ्यन्त समर्थ वृद्ध-संज्ञक शब्दों एवम् शर आदि शब्दों से नित्य ही मयट् प्रत्यय हो।

आम्रमयम्—आम्रस्यावयवो विकारो वा, आम्र का अवयव या विकार। वृद्ध संज्ञक आम्र शब्द से मयट् होकर उक्त रूप बनता है। इसी प्रकार शर शब्द से **शरमयम्** बनेगा।

गोश्च पुरीषे ।४।३।१४५।।

गोः पुरीषं गोमयम् ।

गोपयसो र्यत् ।४।३।१६०।। गव्यम् । पयस्यम् ।

इति विकारार्थकाः प्राग्दीव्यतीयाः

गोश्चेति—पुरीष (गोबर) अर्थ में षष्ठ्यन्त गो शब्द से मयट् प्रत्यय हो ।

गोमयम्—गो शब्द से मयट् होकर 'गोमयम्' रूप बना है ।

(वास्तव में 'गोबर' न तो गाय का अवयव ही होता है और न विकार ही अतः 'गोमयम्' में 'तस्येदम्' सूत्र से 'उसका यह' इस अर्थ में 'मयट्', प्रत्यय समझना चाहिये ।)

गोपयसोरिति—अवयव और विकार अर्थ में गो शब्द से यत् प्रत्यय हो ।

गव्यम् —गोः विकारः अवयवो वा-गाय का विकार या अवयव । यहाँ गो शब्द से यत् प्रत्यय, 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र से अवादेश होकर 'गव्यम्' रूप बना है ।

पयस्यम्—पयसः विकारोऽवयवो वा, पयस्-दूध का विकार या अवयव-खीर आदि, पयस् शब्द से यत् प्रत्यय होकर 'पयस्यम्' बनता है ।

इति विकारार्थक प्रत्ययाः

अथ ठगधिकारः

प्राग्वहतेष्ठक् ।४।४।१॥

'तद्वहति' इत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ।

तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ।४।४।२॥

अक्षै र्दीव्यति खनति जयति जितम् वा—आक्षिकः ।

संस्कृतम् ।४।४।३॥

दध्ना संस्कृतं-दाधिकम् । मारीचिकम् ।

प्राग्वहतेरिति—"तद्वहति रथ युग प्रासङ्गम्" इस सूत्र से पूर्व तक ठक् प्रत्यय का अधिकार है । अर्थात् उस सूत्र से पूर्व अर्थों में ठक् प्रत्यय होगा ।

तेनेति—तृतीयान्त समर्थ शब्द से खेलना जीतना खोदना और जीत लिया हुआ इन अर्थों में ठक् प्रत्यय हो ।

आक्षिकः—अक्षैः दीव्यति खनति जयति जितम् वा (पांशों से खेलता खोदता जीतना और जीता हुआ) अक्ष शब्द से ठक् प्रत्यय, 'ठस्येकः' ठकार को इक-आदेश, वृद्धि होकर 'आक्षिकः' बनता है ।

संस्कृतमिति—'संस्कार किया हुआ' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ से ठक् प्रत्यय हो ।

दाधिकम्—दध्ना संस्कृतम्, दधि से संस्कृत किया हुआ । दधि से ठक्, इक आदेश, वृद्धि अन्त्य इकार लोप, होकर 'दाधिकम्' रूप बनता है ।

मारीचिकम्—मरीचिकाभिः संस्कृतम्, मिर्चों से तैयार किया गया। मरीचिका शब्द से ठक्, आदिवृद्धि, इक आदेश, आकारलोप होकर 'मारीचिकम्' रूप बनता है ।

तरति ।४।४।५।।

तेनेत्येव । उडुपेन तरति औडुपिकः ।

चरति ।४।४।८।।

तृतीयान्ताद् गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात् । हस्तिना चरति हास्तिकः । दध्ना चरति दाधिकः ।

संसृष्टे ।४।४।२२।।

दध्ना संसृष्टम्-दाधिकम् ।

उञ्छति ।४।४।३२।।

बदराण्युञ्छति बादरिकः ।

रक्षति ।४।४।३३।।

समाजं रक्षति-सामाजिकः

तरतीति—'तरता है, पार करने वाला इस अर्थ में करण तृतीयान्त शब्द से ठक् प्रत्यय होता है ।

औडुपिकः—उडुपेन तरति—छोटी नाव से पार करने वाला, उडुप शब्द से ठक् प्रत्यय, इक आदेश, आदिवृद्धि, होकर 'औडुपिकः' रूप बनता है ।

चरतीति—'चलने वाला या खाने वाला' इस अर्थ में करण तृतीयान्त समर्थ से ठक् प्रत्यय होता है ।

हास्तिकः—हस्तिना चरति (हाथी के द्वारा चलने वाला) हस्ति शब्द से चरति=गच्छति अर्थ में ठक्, इक्, वृद्धिहोकर 'हास्तिकः' दाधिकः दध्ना चरति (दही से खाता है) यहाँ भी ठक्, इक, वृद्धि होकर दाधिकः बनता है ।

संसृष्टे इति—'संसृष्ट=मिला हुआ' इस अर्थ में करण तृतीयान्त शब्द से ठक् प्रत्यय हो ।

दाधिकम्—दध्ना संसृष्टम् (दही से संसृष्ट पदार्थ) दधि+ठक्='दाधिकम्' पूर्ववत् ।

उञ्छतीति—भूमि पर खेतों आदि में पड़े हुये धान्य को कण-कण कर चुनने को उञ्छन कहते हैं, इस उञ्छन अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ शब्दों से ठक् प्रत्यय हो ।

बादरिकः—बदराणि उञ्छति-बेरों को चुनने वाला । बदर शब्द से ठक्, इक, वृद्धि होकर 'बादरिकः' रूप बनता है ।

रक्षतीति—'रक्षा करने वाला' इस अर्थ में द्वितीयान्त से ठक् प्रत्यय हो ।

सामाजिकः—समाजं रक्षति, (समाज रक्षक) यहाँ समाज शब्द से ठक्, इक आदिवृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर सामाजिकः रूप बनता है ।

शब्ददर्दुरं करोति ।४।४।३४।।

शब्दं करोति शाब्दिकः । दर्दुरं करोति दार्दुरिकः ।

धर्मं चरति ।४।४।४१।।

धर्मं चरति धार्मिकः ।

(वा) अधर्माच्चेति वक्तव्यम् । आधर्मिकः ।

शिल्पम् ।४।४।५५।।

मृदङ्ग वादनं शिल्प मस्य मार्दङ्गिकः ।

प्रहरणम् ।४।४।५७।।

तदस्येत्येव । असिः प्रहरणमस्य-आसिकः । धानुष्कः ।

शब्ददर्दुरमिति—शब्द तथा दर्दुर शब्दों से 'करोति' 'करता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

शाब्दिकः—'शब्दं करोति' इस अर्थ में शब्द+ठक् पूर्ववत् 'शाब्दिकः' दर्दुरं करोति' इस अर्थ में पूर्ववत् दर्दुर+ठक्='दार्दुरिकः' बनता है ।

(दर्दुर का अर्थ है—मिट्टी का बड़ा बर्तन, मेढक आदि)

धर्ममिति—'आचरण करता है' अर्थ में द्वितीयान्त से ठक् प्रत्यय हो ।

धार्मिकः—धर्म चरति (धर्म करने वाला) इस अर्थ में धर्म शब्द से ठक् प्रत्यय, वृद्धि, अकारलोप होकर 'धार्मिकः' बनता है ।

वार्तिक-अधर्माच्चेति—अधर्म शब्द से भी आचरण करने अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

अधार्मिकः—अधर्मं चरति-अधर्म करने वाला । इस अर्थ में अधर्म शब्द से ठक्, इक, वृद्धि, अकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

शिल्पमिति—'जिसका यह शिल्प-पेशा है' अर्थ में प्रथमान्त से ठक् प्रत्यय हो ।

मार्दङ्गिकः—मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य–मृदङ्ग बजाना जिसका पेशा है । मृदङ्ग+ठक्, वृद्धि, इक, अकार लोप होकर उक्त रूप बना है ।

प्रहरणमिति—'उसका यह प्रहरण-अस्त्र या शस्त्र है' इस अर्थ में प्रथमान्त शब्द से ठक् प्रत्यय हो ।

आसिकः—असिः प्रहरणमस्य (तलवार जिसका शस्त्र है) यहाँ असि+ठक् वृद्धि, इक, इकार लोप, 'आसिकः' इसी प्रकार 'धनुः प्रहणमस्य धनुष् जिसका अस्त्र हो' धनुष्+ठक् होकर 'इसु सुक् तान्तात्कः' सूत्र से ठ को क आदेश धनुः+क

शीलम् ।४।४।६१।।

अपूप भक्षणं शीलमस्य-आपूपिकः ।

निकटे बसति ।४।४।७।।

नैकटिको भिक्षुः ।

इति ठगधिकारः

इस दशा में आदिवृद्धि, तथा 'इणः षः' सूत्र से विसर्गों को षकार होकर 'धानुष्कः' रूप बनता है ।

शीलमिति—'यह उसका स्वभाव है' इस अर्थ में प्रथमान्त सुवन्त से ठक् प्रत्यय हो ।

आपूपिकः—अपूपभक्षणं शीलमस्य, मालपुये खाना जिसका स्वभाव हो । अपूप शब्द से ठक्, इक, वृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'आपूपिकः' रूप बनता है ।

निकटे इति—'वसने वाला अर्थ में' सप्तम्यन्त निकट शब्द से ठक् प्रत्यय हो ।

नैकटिकः—निकटे बसति (जो पास में रहता है) यहाँ निकट शब्द से ठक् प्रत्यय, आदिवृद्धि, इक आदेश, अन्त्याकार लोप होकर 'नैकटिकः' रूप बनता है ।

इति ठगधिकारः

अथ यदधिकारः

प्राग्घिताद्यत् ।४।४।७५।।

तस्मै हितमित्यतः प्राग् यदधि क्रियते ।

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ।४।४।७६।।

रथं वहति रथ्यः, युग्यः, प्रासङ्ग्यः ।

धुरोयड्ढकौ ।४।४।७७।।

हलि चेति दीर्घे प्राप्ते ।

नभकुर्छुराम् ।८।२।७८।।

प्रागिति—'तस्मै हितम्' इस सूत्र से पूर्व के अर्थों में यत् प्रत्यय का अधिकार है ।

तद्वहतीति—'वहन करता है या वहन करने वाला' इस अर्थ में द्वितीयान्त रथ, युग और प्रासङ्ग शब्दों से यत् प्रत्यय हो ।

रथ्यः—रथं वहति—(रथ को खींचने वाला अश्व आदि) द्वितीयान्त रथ शब्द से यत् प्रत्यय अन्त्याकार लोप होकर 'रथ्यः' इसी प्रकार युगं वहति इस अर्थ में यत् प्रत्यय होकर 'युग्यः' तथा प्रासङ्गम् वहति-जो प्रासङ्ग को खींचता है—बछड़े आदि को शिक्षित करने के लिए जो एक विशेष प्रकार का काष्ठ दण्ड बांधा जाता है वह प्रासङ्ग कहलाता है । प्रासङ्ग+यत्='प्रासङ्ग्यः' रूप बनता है ।

धुर इति—'वहन करता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त धुर् शब्द से यत् और ढक् प्रत्यय हो ।

हलि चेति—यहाँ 'हलि च' इस सूत्र से रेफ की उपधा को दीर्घ प्राप्त होने पर :—

नेति—भसंज्ञक कुर् और छुर् की उपधा को दीर्घ न हो ।

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात् । धुर्यः । धौरेयः ।

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्य समसमित सम्मितेषु ।४।४।९१।।

नावा तार्यं नाव्यम्-जलम् । वयसा तुल्यो वयस्यः । धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम् । विषेण वध्यो विष्यः । मूलेन आनाम्यं मूल्यम् । मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया समितं तुल्यम् ।

तत्र साधुः ।४।४।९८।।

धुर्यः—धुरं वहति—धुर को—रथ आदि की वह सीधी लकड़ी जिस पर घोड़े आदि जोतते हैं—धारण करने वाला । यहाँ द्वितीयान्त धुर् शब्द से यत् प्रत्यय होने पर 'हलिच' सूत्र से रेफ की उपधा को दीर्घ प्राप्त था 'नेति' सूत्र से उसका निषेध होकर 'धुर्यः' रूप बना, धुर से ढक् प्रत्यय होने पर ढकार को एय् आदेश एवं आदि-वृद्धि 'धौरेयः' रूप बनता है ।

नौवय इति नौ १, वयस् २, धर्म ३, विष ४, मूल ५, मूल ६, सीता ७, और तुला ८ इन तृतीयान्त पदों से क्रमशः तार्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित, संमित इन अर्थों में यत् प्रत्यय हो ।

नाव्यम्—नावा तार्यम्—(नाव से उतरने योग्य) यहाँ तृतीयान्त नौ शब्द से यत् प्रत्यय, 'वान्तो यि प्रत्यये' से आवादेश होकर 'नाव्यम्' ।

वयस्यः—वयसा तुल्यः—जो अवस्था में समान हो, यहाँ वयस् से यत् होकर 'वयस्यः' ।

धर्म्यम्—धर्मेण प्राप्यम् (धर्म से पाने योग्य) यहाँ धर्म से यत् प्रत्यय, अन्त्याकार लोप होकर 'धर्म्यम्' ।

विष्यः—विषेण वध्यः—विष से मारने योग्य । यहाँ विष से यत् होकर विष्यः ।

मूल्यम्—मूलेन आनाम्यम्—मूलधन से बचाया जाने योग्य धनादि । मूल+यत्='मूल्यम्' ।

मूल्यः—मूलेन समः—(मूल के बराबर) यहाँ मूल+यत्='मूल्यः' ।

सीत्यम्—सीतया समितम्—सीता द्वारा समीकृत—बराबर किया हुआ, सीता खेत की उस खुदी रेखा (कूँड़) को कहते हैं जिसे हल द्वारा बनाया जाता है । यहाँ सीता+यत्, आकार लोप—'सीत्यम्' ।

तुल्यम्—तुलया संमितम्—(तराजू से तोला हुआ) तुला+यत्, आकारालोप होकर 'तुल्यम्' रूप बनते हैं ।

तत्रेति—साधु-प्रवीण अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ से यत् प्रत्यय हो ।

अग्रे साधुः अग्र्यः। सामसु साधुः सामन्यः। येचाभाव-कर्मणोरिति प्रकृति भावः। कर्मण्यः। शरण्यः।

सभाया यः ।४।४।१०५॥

अग्र्यः—अग्रे साधुः—(आगे रहने में प्रवीण) अग्र+यत्='अग्र्यः' यस्येति चेति अकार लोप।

सामन्य—सामसु साधुः (सामगान में प्रवीण) सामन्+यत्=सामन्यः। यहाँ 'येचाभावकर्मणोः' सूत्र से 'अन्' इस 'टि' का प्रकृति भाव हुआ है।

कर्मण्यः—कर्मणि साधुः—(कर्म करने में कुशल) कर्मन्+यत्=कर्मण्यः पूर्ववत्।

शरण्यः—शरणे साधुः (शरण दान में कुशल) शरण+यत्=शरण्यः। 'यस्येति च' अकार लोप।

सभाया इति—सभा शब्द से उक्त अर्थ में य प्रत्यय हो।

सभ्यः—सभायां (सभा में प्रवीण) सभा शब्द से य प्रत्यय 'यस्येति च' से अकार लोप होकर 'सभ्यः' रूप बनता है।

इति यत् प्रत्ययाः

अथ छयतोरधिकारः

प्राक् क्रीताच्छः ।५।१।१॥

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ।

उगवादिभ्यो यत् ।५।१।१।२॥

प्राक्क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात् । छस्यापवादः । शङ्कवे हितम्-शङ्कव्यम्-दारु । गव्यम् ।

(वा) नाभि नभं च । नभ्यः, अक्षः । नभ्यम्, अञ्जनम् ।

प्रागिति---'तेन क्रीतम्' इस सूत्र से पूर्व तक के अर्थों में छ प्रत्यय का अधिकार है ।

उगवादिभ्य इति—उकारान्त और गो आदि शब्दों से 'तेन क्रीतम्' इस सूत्र से पूर्व तक आने वाले अर्थों में यत् प्रत्यय हो । छ प्रत्यय का अपवाद है ।

शङ्कव्यम्—दारु—शङ्कवे हितम्—खूँटे के लिए अच्छा काष्ठ । चतुर्थ्यन्त उकारान्त शंकु शब्द से यत् प्रत्यय, 'ओगुर्णः' से उकार को 'ओ' गुण, 'वान्तो यि प्रत्यये' से अवादेश होकर 'शङ्कव्यम्' रूप बनता है ।

गव्यम्—गवे हितम्—(गौ को हित कर तृणादि) गौ+यत्='गव्यम्' 'वान्तो यि प्रत्यये' अवादेश ।

वार्तिक-नाभीति—हित अर्थ में नाभि शब्द को नभ आदेश और यत् प्रत्यय हो ।

नभ्य—अक्षः—नाभये हितः—नाभि के लिए हितकर—रथ-चक्र का वह मध्य भाग जिसमें अक्ष दण्ड डाला जाता है नाभि कहलाता है । अक्ष-एक काष्ठ विशेष का नाम है, यहाँ नाभि शब्द से उक्त वार्तिक से यत् प्रत्यय और नाभि को नभ आदेश, अन्त्याकारलोप होकर 'नभ्यः' रूप बनता है ।

तस्मै हितम् ।५।१।५।।

वत्सेभ्यो हितः वत्सीयः, गोधुक् ।

शरीरावयवाद्यत् ।५।१।६।।

दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । नस्यम् ।

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः ।५।१।९।।

आत्माध्वानौ खे ।६।४।१६९।।

एतौ खे प्रकृत्या स्तः । आत्मने हितम्—आत्मनीनम् । विश्वजनीनम् । मातृभोगीणः ।

इति छयतोः पूर्णोऽवधिः ।

नभ्यम्—अञ्जनम्—नाभये हितम्—चक्र नाभि के लिए हितकर तैलाभ्यञ्जन-तेल डालना-अञ्जन (ओंगना) कहलाता है। यहाँ भी पूर्ववद् यत् प्रत्यय नभ आदेश हुआ है।

तस्मै इति—हित अर्थ में चतुर्थ्यन्त से छ प्रत्यय हो।

वत्सीयः—गोधुक्—वत्सेभ्यः हितः—बछड़ों के लिए हितकर। वत्स से छ, ईय् आदेश, अन्त्याकार लोप होकर 'वत्सीयः' रूप बनता है। गोधुक्=गाय दुहने वाला ग्वाला।

शरीरेति—शरीर के अवयव वाचक चतुर्थ्यन्त समर्थ शब्दों से 'हितम्' अर्थ में यत् प्रत्यय हो।

दन्त्यम्—दन्तेभ्यो हितम्—(दाँतों के लिए हितकर) दन्त शब्द से यत् प्रत्यय, अन्त्याकार लोप होकर 'दन्त्यम्' इसी प्रकार कण्ठ से कण्ठ्यम् रूप बनता है।

नस्यम्—नासिकायै हितम्—(नाक के लिए हितकर) नासिका से यत् 'पद्दन्नोमास०' इत्यादि सूत्र से नासिका को नस् आदेश होकर 'नस्यम्' रूप बनता है।

आत्मन्निति—हित अर्थ में आत्मन्, विश्वजन और भोगोत्तर वाले शब्दों से 'ख' प्रत्यय हो।

आत्माध्वानाविति—ख प्रत्यय परे रहते आत्मन् और अध्वन् शब्दों को प्रकृति भाव होता है।

आत्मनीम्—आत्मने हितम्—अपने लिए हितकर। आत्मन् शब्द, से आत्मन्निति सूत्र से ख प्रत्यय, ईन् आदेश, यहाँ प्राप्त 'अन्' इस टि लोप का आत्माध्वानाविति सूत्र से निषेध कर प्रकृति भाव हो जाता है। इस प्रकार 'आत्मनीनम्' तथा विश्वजनीनम्—विश्वस्मै जनाय हितम्—(सब के लिए हितकर) विश्वजन शब्द से ख प्रत्यय, इन् आदेश, अन्त्याकार लोप होकर 'विश्वजनीनम्' रूप बनता है।

मातृभोगीणः—मातृभोगाय हितः—माता के शरीर के लिए हितकर) यहाँ भोगोत्तर मातृभोग शब्द से आत्मन्निति सूत्र से ख प्रत्यय, ईन् आदेश, अन्त्याकार लोप होकर 'मातृभोगीणः' रूप बनता है।

इति छयतोऽवधिः

अथ ठञधिकारः

प्राग्वतेष्ठञ् ।५।१।१८।।

तेन तुल्यमिति वर्ति वक्ष्यति, ततः प्राक् ठञधिक्रियते ।

तेन क्रीतम् ।५।१।३७।।

सप्तत्या क्रीतम्-साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् ।

तस्येश्वरः ।५।१।४२।।

सर्वभूमि पृथिवीभ्या मणञौ स्तः ।

अनुशतिकादीनां च ।७।३।२०।।

प्राग्वतेरिति—'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इस सूत्र से आगे वति प्रत्यय का विधान किया जायेगा, इससे पूर्व तक ठञ् प्रत्यय का अधिकार किया जाता है अर्थात् उस सूत्र से पूर्व तक के सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट अर्थों में ठञ् प्रत्यय होगा ।

तेनेति—'क्रीत-खरीदा हुआ' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ से ठञ् प्रत्यय हो ।

साप्ततिकम्—सप्तत्या क्रीतम्-सत्तर रुपयों द्वारा खरीदा हुआ । सप्तति शब्द से ठञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि, 'ठस्येकः' ठकार को इक आदेश, अन्त्य इकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

प्रास्थिकम्—प्रस्थेन क्रीतम्-प्रस्थ-एक परिमाण विशेष से खरीदा हुआ । प्रस्थ से ठञ् वृद्धि, इक, अन्त्याकार लोप होकर 'प्रास्थिकम्' रूप बनता है ।

तस्येश्वर इति—षष्ठयन्त सर्वभूमि और पृथिवी शब्दों से 'ईश्वर-स्वामी' अर्थ में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय हों ।

अनुशतिकेति—अनुशतिकादिगण पठित शब्दों के उभय पदों को वृद्धि हो तद्धित ञित् णित्, कित् प्रत्ययों के परे रहते ।

एषां सुभय पद वृद्धि ञिति णिति किति च तद्धिते। सर्वभूमेरीश्वरः—सार्वभौमः। पार्थिवः।

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवति शतम् ।५।१।५९।।

एते रुढ़ि शब्दा निपात्यन्ते।

सार्वभौमः—सर्वभूमेरीश्वरः—सब पृथिवी का स्वामी। यहाँ सर्वभूमि शब्द से "तस्येश्वरः" सूत्र से अण् प्रत्यय, णित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अनुशतीति सूत्र से सर्वभूमि शब्द के दोनों पदों को वृद्धि होकर सार्वभौमि+अ इस स्थिति में 'यस्येति च' से इकार लोप होकर 'सार्वभौमः' रूप बनता है।

पार्थिवः—पृथिव्या ईश्वरः (पृथिवी का स्वामी) पृथिवी शब्द से 'तस्येश्वरः' सूत्र से अञ् प्रत्यय, ञित्वात् आदिवृद्धि, अन्त्य ईकार लोप होकर 'पार्थिवः' रूप बनता है।

पङ्क्तीति—पङ्क्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्' षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शतम्, ये रूढ़ शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं।

पङ्क्ति—पाँच पाद वाले एक वैदिक छन्द का नाम है, पञ्च पादाः परिमाणमस्य-पाँच पाद जिसके परिमाण हों, यहाँ पञ्चन् शब्द से ति प्रत्यय, अन् इस 'टि' का लोप, चकार को कुत्व विधि से क आदेश, नकार को अनुस्वार परसवर्ण ङकार होकर पङ्क्ति' रूप बनता है, यह शब्द ग्रन्थादि की पंक्तिः (लाइन) के अर्थ में रूढ़ है।

विंशतिः—द्वौ दशतौ परिमाणमस्य संघस्य-दो दशक जिस समूह का परिमाण हो अर्थात् बीस। यहाँ द्विदशत् शब्द से निपातन से शतिच् प्रत्यय तथा प्रकृति को विन् आदेश, नकार को अनुस्वार होकर विंशतिः रूप बनता है।

(दश का वर्ग दशत् कहलाता है 'पञ्चद्दशतौ वर्गो वा' इस सूत्र से दशन् शब्द से वर्ग अर्थ में दशत् रूप बनता है।)

त्रिंशत्—त्रयो दशतः परिमाणमस्य—तीन दशक जिसके परिमाण हैं अर्थात् तीस। यहाँ त्रिदशत् से निपातन से शत् प्रत्यय प्रकृति को त्रिन् आदेश, नकार को अनुस्वार होकर त्रिंशत् (तीस) रूप बनता है।

चत्वारिंशत्—चत्वारो दशतः परिमाणमस्य-चार दशक जिसके परिमाण हों। यहाँ चतुर्दशत् शब्द से निपातन से शत् प्रत्यय, प्रकृति को चत्वारिन् आदेश नकार को अनुस्वार होकर चत्वारिंशत् (चालीस) बनता है।

पञ्चाशत्—पञ्च दशतः परिमाणमस्य-पाँच दशक जिसके परिमाण हों। यहाँ पञ्चदशत् से शत् प्रत्यय, प्रकृति को पञ्चा आदेश होकर पञ्चाशत् (पचास) रूप बनता है।

तदर्हति ।५।१।६३।।

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादयः स्युः । श्वेतच्छत्र मर्हति श्वैतच्छत्रिकः ।

दण्डादिभ्यो यत् ।५।१।६६।।

एभ्यो यत् स्यात् । दण्डमर्हति दण्ड्यः । अर्घ्यः । वध्यः ।

तेन निर्वृत्तम् ।५।१।७९।।

अह्ना निर्वृत्तम्—आह्निकम् ।

इति ठञोऽवधिः

षष्टिः—षड् दशतः परिमाणमस्य-छः दश वाला संघ । षड्दशत् शब्द से ति प्रत्यय, प्रकृति को षष् आदेश, तथा जश्त्व का अभाव षष्टिः (साठ) रूप बनता है ।

सप्ततिः—सप्त दशतः परिमाणमस्य-सात दशकों वाली संख्या, सत्तर । सप्तदशत्+ति, प्रकृति को सप्त आदेश होकर 'सप्ततिः बनता है ।

अशीतिः—अष्ट दशतः परिमाणमस्य संघस्य-आठ दशक जिस संघ में हो—(अस्सी) यहाँ ति प्रत्यय और अष्टदशत् इस प्रकृति को अशी आदेश होकर 'अशीतिः' बनता है ।

नवतिः—नव दशतः परिमाणमस्य—नवदशक संघ वाला अर्थात् नव्वे । नवदशत् से ति प्रत्यय, प्रकृति को नव आदेश होकर 'नवतिः बनता है ।

शतम्—दश दशतः परिमाणमस्य-दश दशक जिसमें हों अर्थात् सौ । दशदशत् से त प्रत्यय, प्रकृति को श आदेश होकर 'शतम्' बनता है ।

तदर्हतीति—'प्राप्त करने योग्य होता है' इस अर्थ में ठञ् आदि प्रत्यय हों ।

श्वैतच्छत्रिकः—श्वेतच्छत्रम् अर्हति=सफेद छत्र प्राप्त करने योग्य होता है । यहाँ श्वेतच्छत्र शब्द से ठञ्, इक, वृद्धि, अन्त्याकारलोप होकर 'श्वैतच्छत्रिकः रूप बनता है ।

दण्डादिभ्य इति—द्वितीयान्त दण्ड आदि शब्दों से यत्, अन्त्याकारलोप होकर 'दण्ड्यः' इसी प्रकार अर्घमर्हति=अर्घ्यः, वधमर्हति-'वध्यः' रूपों की सिद्ध होगी ।

तेनेति—'निर्वृत्तम्—सिद्ध हुआ' इस अर्थ में करण तृतीयान्त शब्द से ठञ् प्रत्यय हो ।

आह्निकम्—अह्ना निर्वृत्तम् 'आह्निकम्' जो एक दिन में किया गया हो । 'अहन्' इस शब्द से ठञ् प्रत्यय, ठ को इक आदेश, अहन्+इक इस स्थिति में 'अल्लोपोऽनः' से अहन् के हकार के अकार का लोप, आदिवृद्धि होकर 'आह्निकम्' रूप बनता है ।

इति ठञधिकारः

अथ त्वतलोरधिकारः

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ।५।१।११५।।

ब्राह्मणेन तुल्यम् ब्राह्मणवत् अधीते । क्रियाचेदिति किम्—गुणतुल्ये मा भूत्, पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ।

तत्र तस्येव ।५।१।११६।।

मथुरायामिव-मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः । चैत्रस्येव चैत्रवन् मैत्रस्य गावः ।

तेनेति– तृतीयान्त समर्थ से तुल्य अर्थ में वति प्रत्यय हो, यदि तुल्य क्रिया हो अर्थात् जो तुल्य है वह यदि क्रिया हो गुणादि नहीं ।

(वति प्रत्यय में इकार इत् संज्ञक है, इस अव्यय का प्रयोग क्रिया विशेषण की भाँति होता है ।)

ब्राह्मणवत्—ब्राह्मणेन तुल्यम् अधीते—ब्राह्मण के समान पढ़ता है । यहाँ ब्राह्मण इस तृतीयान्त पद से प्रकृत सूत्र से वति प्रत्यय होता है । 'ब्राह्मणवत्' रूप सिद्ध होता है ।

क्रियाचेदिति—क्रिया तुल्य होने पर ही वति प्रत्यय होता है अतः गुण तुल्य होने पर प्रत्यय न होगा । 'पुत्रेण तुल्यः स्थूलः' यहाँ स्थूलता रूप गुण है अतः गुण तुल्य में प्रत्यय नहीं हुआ है ।

तत्रेति– सप्तम्यन्त और षष्ठयन्त समर्थ से इव के अर्थ अर्थात् समानता में वति प्रत्यय हो ।

मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः—मथुराया मिव, मथुरा के समान स्रुघ्न में प्राकार है, यहाँ सप्तम्यन्त मथुरा शब्द से इव-समानता के अर्थ में वति प्रत्यय हुआ है ।

तस्य भाव स्त्व तलौ ।५।१।११६।।

प्रकृतिजन्य बोधे प्रकारो भावः । गोर्भावः-गोत्वम्, गोता । त्वान्तं क्लीबम् । तलन्तं स्त्रियाम् ।

आ च त्वात् ।५।१।१२०।।

'ब्रह्मण स्त्व'—इत्यतः प्राक् 'त्वतलौ' अधिक्रियेते । अपवादैः सह समावेशार्थमिदम् । चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः । स्त्रियाः भावः स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम्, स्त्रीता । पौंस्नम् । पुंस्त्वम् । पुंस्ता ।

चैत्रवत्—मैत्रस्य गावः—चैत्रस्य इव, चैत्र के समान मैत्र की गायें । यहाँ षष्ठयन्त चैत्र शब्द से वति प्रत्यय है ।

(इन दोनों ही उदाहरणों में द्रव्य की तुल्यता में वति प्रत्यय है क्रिया की तुल्यता में नहीं ।)

तस्येति—षष्ठयन्त शब्द से भाव अर्थ में त्व तल् प्रत्यय होते हैं ।

प्रकृति जन्येति—उस पदार्थ को 'भाव' कहा जाता है जो प्रकृति से उत्पन्न ज्ञान में विशेषण हो । तात्पर्य यह कि जिससे किसी प्रत्यय का विधान किया जाता है वह प्रकृति कहलाती है । इस प्रकृति से उत्पन्न जो बोध इसमें जो विशेषण हो वह 'भाव' कहा जायेगा । जैसे—'गो' शब्द से त्व प्रत्यय होकर गोत्व रूप बनता है यहाँ गो प्रकृति है यहाँ गो से उत्पन्न ज्ञान, गोत्वविशिष्ट गो व्यक्ति है इस प्रकार के ज्ञान में गोत्व यह विशेषणीभूत पदार्थ है, यही 'भाव' कहा जायेगा ।

शब्दों से जाति और व्यक्ति का जो ज्ञान होता है, उसमें व्यक्ति विशेष्य रहता है और जाति विशेषण ।

गोत्वम् गोता—गोर्भावः—'गो का भाव' इस अर्थ में त्व प्रत्यय होकर 'गोत्वम्' और तल् प्रत्यय होकर 'गोता' रूप बनता है । 'तल्' प्रत्ययान्त शब्द सदा स्त्रीलिङ्ग होते हैं अतएव उनके आगे स्त्रीत्व बोधक टाप् लगाया जाता है । त्व प्रत्ययान्त शब्द सदा नपुंसक लिङ्ग होते हैं । इसी बात को उपर्युक्त लिङ्गानुशासन सूत्रों से बतलाया गया है ।

आचेति—'ब्रह्मण स्त्व' इस सूत्र से पूर्व तक त्व और तल् प्रत्ययों का अधिकार है ।

अपवादैरिति—आगे कहे जाने वाले इमनिच् आदि अपवाद (बाधक) प्रत्ययों के साथ इनका समावेश करने के उद्देश्य से यहाँ यह अधिकार किया गया है अर्थात् अग्रिम सूत्रों में यदि अनुवृत्ति करके काम चलाया जाता तो इमनिच् प्रत्यय इनके बाधक हो जाते उस समय इमनिच् आदि के साथ त्व और तल् न हो सकते थे अत-

पृथ्वादिभ्य इमनिच् वा ।५।१।१२२॥

वावचनमणादि समावेशार्थम् ।

र ऋतो हलादे र्लघोः ।६।४।१६१॥

हलादेर्लघो र्ऋकारस्य रः स्यात्, इष्ठेमेयस्सु परतः ।

टेः ।६।४।१५५॥

भस्य टेर्लोपः इष्ठेमेयस्सु ।

(वा) पृथुमृदुभृश कृश दृढपरिवृढ़ा नामेव रत्वम् । पृथोर्भावः ।

प्रथिमा, पार्थवम् । म्रदिमा मार्दवम् ।

एव अधिकार किया गया है जिससे इमनिच् आदि के साथ ही साथ त्व तल् भी हो सकें ।

सूत्र में चकार ग्रहण नञ् स्नञ् प्रत्ययों के समावेशार्थ है जिससे कि त्व और तल् के साथ-साथ नञ् और स्नञ् भी हो सके ।

स्त्रैणम्—स्त्रियाः भावः इस अर्थ में नञ् प्रत्यय करने पर स्त्रैणम्' त्व प्रत्यय करने पर 'स्त्रीत्वम्' तल् करने पर 'स्त्रीता' रूप बनेंगे ।

पौंस्नम्—पुंसः भावः पुंस् शब्द से स्नञ् करने पर पौंस्नम्, पुंस्+त्व= पुंस्त्वम्, पुंस्+तल्=पुंस्ता रूप बनेंगे ।

पृथ्वादिभ्य इति—पृथु आदि शब्दों से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय विकल्प से हो ।

वेति—सूत्र में 'वा' का कथन अण् आदि प्रत्ययों के समावेश के लिए है, जिससे कि इमनिच् के अभाव में अण् आदि प्रत्यय भी हो सकें ।

(इमनिच् प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं, इमनिच् में केवल इमन् शेष रहता है ।)

र ऋत इति—हल् जिसके आदि में हो ऐसे लघु ऋकार को रेफ आदेश हो, इष्ठन् इमनिच् एवं ईयसुन् प्रत्यय परे रहते ।

टेरितिः—भसंज्ञक टि का लोप हो उक्त प्रत्ययों के आगे रहते ।

वार्तिक-पृथुमृदु इति—पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ़, परिवृढ़ इन शब्दों के ही लघु ऋकार को रत्व हो ।

प्रथिमा—पृथोर्भावः—(विशालता) पृथु शब्द से भाव में पृथ्वादिभ्यः सूत्र से इमनिच् प्रत्यय, हलादि लघु ऋकार को 'र ऋतो' से रेफ आदेश, प्रथु+इमन् इस दशा में भसंज्ञक 'टि' उकार का 'टेः' सूत्र से लोप होकर प्रथिमन् प्रातिपदिक से प्र०एक०व० में नान्त की उपधा को दीर्घ, न लोप, सुलोप होकर 'प्रथिमा' रूप बनता है ।

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ।५।१।१२३॥

चाद् इमनिच् । शौक्ल्यम्, शुक्लिमा । दार्ढ्यम्, द्रढिमा ।

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ।५।१।१२४॥

चाद्भावे । जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम् । मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम् । ब्राह्मण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ।

पार्थवम्—पृथोर्भाव: इमनिच् प्रत्यय के अभावपक्ष में 'इगन्ताच्च लघु पूर्वात्' सूत्र से पृथु शब्द से भाव में अण् प्रत्यय, णित्त्वात् आदिवृद्धि, अन्त्य उकार को 'ओर्गुणः' से ओ गुण, अवादेश होकर पार्थवम् रूप बनता है ।

म्रदिमा—मृदोर्भाव:—मृदुता, मृदु शब्द से पूर्ववत् इमनिच् प्रत्यय, र ऋतो सूत्र से, वार्तिक के विशेष नियम के अनुसार मृदु के ऋकार को रेफ, 'टे:' से उकार 'टि' का लोप होकर पूर्ववत् म्रदिमन् शब्द से 'म्रदिमा' रूप बनता है ।

मार्दवम्—मृदोर्भाव: इमनिच् के अभाव में अण् प्रत्यय, पूर्ववत् वृद्धि, गुणावादेश होकर 'मार्दवम्' रूप भी बनता है ।

वर्णदृढेति—वर्ण वाचक और दृढ़ आदि शब्दों से भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय हो ।

चकार ग्रहण से इमनिच् प्रत्यय भी होता है ।

(ष्यञ् में केवल 'य' शेष रह जाता है, और ष्यञ् प्रत्यान्त सभी शब्द नपुंसक लिंग होते हैं ।)

शौक्ल्यम्—शुक्लस्य भाव: (शुक्लता) शुक्ल इस वर्ण वाचक शब्द से ष्यञ् प्रत्यय, ञित्वात् आद्यच् को वृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'शौक्ल्यम्' रूप बनता है ।

शुक्लिमा-ष्यञ् के अभाव पक्ष में इमनिच् प्रत्यय करने पर अन्त्याकार लोप होकर शुक्लिमन् प्रतिपादिक से उक्त रूप बनता है ।

दार्ढ्यम्—दृढस्य भाव: (दृढ़ता) दृढ़ शब्द से ष्यञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर उक्त रूप बनता है।

द्रढिमा—ष्यञ् के अभाव में इमनिच् करने पर म्रदिमा की तरह यह रूप भी सिद्ध होता है ।

गुणवचनेति—षष्ठयन्त गुणवाचक और ब्राह्मण आदि शब्दों से ष्यञ् प्रत्यय भाव व कर्म अर्थ में होता है ।

जाड्यम्—जड्स्य भाव: कर्म वा जाड्यम्—मूर्ख का कर्म या भाव मूर्खता । यहाँ जड शब्द से ष्यञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'जाड्यम्' बनता है ।

सख्युर्यः ।५।१।१२६।।

सख्युर्भावः कर्म का सख्यम् ।

कपि ज्ञात्यो ढक् ।५।१।१२७।।

कापेयम् । ज्ञातेयम् ।

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ।५।१।१२८।।

सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ।

इति त्वतलोरधिकारः

मौढ्यम्—मूढस्य भावः इस अर्थ में ष्यञ् होकर पूर्ववत् मौढ्यम् रूप बनता है ।

ब्राह्मण्यम्—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा-ब्राह्मण का कर्म । ब्राह्मण शब्द से प्रकृत सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अन्त्याकार लोप होकर 'ब्राह्मण्यम्' रूप बनेगा ।

ब्राह्मणादि गण आकृति गण है अर्थात् जहाँ अन्यत्र भी ष्यञ् प्रत्यय मिले उसे भी इसी गण में समझना चाहिए ।

सख्युरिति—सखि शब्द से भाव तथा कर्म में य प्रत्यय हो ।

सख्यम्—सख्यु र्भावः कर्म वा, मित्र का कर्म । सखि शब्द से य प्रत्यय, 'यस्येति च' से इकार लोप होकर 'सख्यम्' रूप बनता है ।

कपीति—कपि और ज्ञाति शब्द से भाव और कर्म में ढक् प्रत्यय हो ।

कापेयम्—कपेः भावः कर्म वा-कपि का कर्म । यहाँ कपि शब्द से ढक् प्रत्यय कित्वात् आदिवृद्धिः ढकार को 'आयन्' इत्यादि सूत्र से एय आदेश, अन्त्य इकार का लोप होकर कापेयम् रूप बनता है ।

ज्ञातेयम्—ज्ञातेर्भावः—कुटुम्बी का कर्म । यहाँ ज्ञाति शब्द से ढक्, अन्य कार्य पूर्ववत् 'ज्ञातेयम्' ।

पत्यन्तेति—पति जिनके अन्त में हो, ऐसे शब्दों तथा पुरोहित आदि शब्दों से भाव और कर्म में यक् प्रत्यय हो ।

सैनापत्यम्—सेनापते र्भावः कर्म वा । यहाँ सेनापति इस पत्यन्त षष्ठयन्त शब्द से प्रकृत सूत्र से यक् प्रत्यय, कित्वात् वृद्धि, अन्त्य इकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

पौरोहित्यम्—पुरोहितस्य भावः कर्म वा । यहाँ भी पूर्ववत् यक् वृद्धि, इकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

इति त्वतलोरधिकारः

अथ भवनाद्यर्थकाः

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ।५।२।१॥

भवत्यस्मिन्निति भवनम् । मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्-मौद्गीनम् ।

व्रीहिशाल्योर्ढक् ।५।२।२॥

व्रैहेयम् । शालेयम् ।

धान्यानामिति—धान्यविशेष वाचक षष्ठयन्त समर्थ शब्दों से भवन (जिसमें हो) अर्थात् क्षेत्र (खेत) अर्थ में खञ् प्रत्यय हो।

भू धातु से अधिकरण में ल्युट् प्रत्यय करने पर भवनम् रूप बनता है इसका विग्रह है, भवति अस्मिन्—जिसमें हो या पैदा हो वह भवन है अर्थात् क्षेत्र, क्योंकि धान्य खेतों में उत्पन्न होते हैं।

मौद्गीनम्—मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्—वह खेत जिसमें मूँग पैदा हो। यहाँ मुद्ग शब्द से खञ् प्रत्यय, ञित्त्वात् आदिवृद्धि, ईन् आदेश, अन्त्याकारलोप होकर 'मौग्दीनम्' रूप बनता है।

व्रीहीति—धान्य विशेष वाचक व्रीहि और शालि शब्दों से ढक् प्रत्यय हो, पूर्वोक्त भवन क्षेत्र अर्थ में।

व्रैहेयम्—व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम्—व्रीहियों का खेत। व्रीहि से प्रकृत सूत्र से ढक् प्रत्यय, कित्त्वात् आदिवृद्धि, ढकार को एय् आदेश, अन्त्य इकार लोप होकर 'व्रैहेयम्' रूप बनता है।

शालेयम्—शालीनां भवनं क्षेत्रम्—शालिधान्यों का खेत। शालि शब्द से पूर्ववत् ढक् तथान्यकार्य होकर उक्त रूप बनता है।

हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ।५।२।२३।।

ह्योगोदोहस्य हियङ्गु रादेशः विकारेऽर्थे च खञ् च निपात्यते । दुह्यत इति दोहः- क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनम् नवनीतम् ।

तदस्य संजातं तारका दिभ्य इतच् ।५।१।३६।।

तारकाः संजाता अस्य तारकितं नभः । पण्डितः । आकृतिगणोऽयम् ।

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ् मात्रचः ।५।२।३७।।

तदस्येत्यनुवर्तते । ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् ।

हैयङ्गवीनमिति—संज्ञा अर्थ में निपातन से ह्योगोदोह शब्द को हियङ्गु आदेश तथा विकार अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ।

दोहः—का अर्थ है जो दुहा जाय (दुह्यते इति-दुह् + घञ्) अर्थात् दूध । ह्यः—कल (बीता हुआ) गवां दोहः—गोदोहः—गायों का दूध, ह्योगोदोह=कल का गायों का दूध । ह्योगोदोहस्य विकारः—कल के गोदुग्ध का विकार-मक्खन घृत आदि ।

हैयङ्गवीनम्—ह्योगोदोहस्य विकारः इस अर्थ में प्रकृत सूत्र से प्रकृति को हियङ्गु आदेश, तथा खञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि, ख् को ईन आदेश, अन्त्य उकार को गुण, अवादेश होकर 'हैयङ्गवीनम्' रूप बनता है ।

तदस्येति—'अस्य संजातम्-इसके हो गये हैं अर्थात् जो इसके पहिले नहीं थे वे अब हो गये हैं' इस अर्थ में प्रथमान्त तारका आदि शब्दों से इतच् प्रत्यय हो ।

तारकितम् नभः—तारकाः संजाता अस्य—जिसके तारे हो गये हैं अर्थात् जिसमें तारे निकल आये हैं ऐसा आकाश । यहाँ तारका शब्द से इतच् प्रत्यय, 'यस्येति च' आकारलोप होकर 'तारकितम् रूप बनता है ।

पण्डितः—पण्डा संजाता अस्य—पण्डा-बुद्धि जिसमें हो गई हो अर्थात् सदसद् विवेक वाली बुद्धि जिसमें हो । यहाँ पण्डा शब्द से इतच्, अन्त्य आकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

यह तारकादिगण आकृतिगण है, इतच् प्रत्ययान्त अन्य भी शब्दों को इसी गण में समझना चाहिए ।

प्रमाण इति—'इसका यह प्रमाण है' इस अर्थ में प्रथमान्त समर्थ शब्दों से द्वयसच्, दघ्नच् एवं मात्रच् प्रत्यय होते हैं ।

ऊरुद्वयसम्—ऊरु प्रमाणमस्य - ऊरु-जाँघ जिसका प्रमाण है अर्थात् जाँघ तक जल आदि । यहाँ ऊरु शब्द से द्वयसच् प्रत्यय, चकार की इत्संज्ञा होकर 'ऊरुद्वयसम्', इसी प्रकार दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय करने पर ऊरुदघ्नम् तथा ऊरुमात्रम् रूप बनेंगे ।

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ।५।२।३९।।

यत्परिमाणमस्य-यावान् । तावान् । एतावान् ।

किमिदम्भ्यां वो घः ।५।२।४०।।

आभ्यां वतुप्, वकारस्य घश्च ।

इदं किमोरीश् की ।६।३।९०।।

दृग् दृश् वतुषु इदम ईश् किमः कीः । कियान् । इयान् ।

संख्याया अवयवे तयप् ।५।२।४२।।

यत्तदिति—परिमाण अर्थ में यद्, तद्, एतद्, इन शब्दों से वतुप् प्रत्यय हो।

यावान्—यत् परिमाणमस्य—जितना' यहाँ यत् शब्द से वतुप् प्रत्यय (उप् की इत्संज्ञा) यत्+वत् इस स्थिति में 'आसर्वनाम्नः' सूत्र से यत् शब्द को अकारान्तादेश होकर यावत् इस प्रातिपदिक से पु० प्र० एक व० में, उगित् होने से नुम्, आगम्, अत्वन्त की उपधा को दीर्घ, सुलोप, संयोगान्त तकारलोप होकर 'यावान्' रूप बनेगा।

तावान्—तत्परिमाणमस्य-उतना-तद् शब्द से वतुप् प्रत्यय, अकारान्तादेश होकर 'तावान्' इसी प्रकार एतद् शब्द से एतावान् रूप सिद्ध होगा।

किमिदंभ्यामिति—किम् और इदम् शब्दों से परिमाण अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो, और वतुप् के वकार को घ आदेश हो।

इदमिति—इदम् शब्द को ईश् और किम् शब्द को की आदेश हो दृग्, दृश् और वतुप् प्रत्यय परे रहते।

(ईश् और की आदेश क्रमशः शित् एवं अनेकाल् होने से सम्पूर्ण इदम् और किम् के स्थान में होंगे।)

कियान्—किं परिमाणमस्य (कितना) किम् शब्द से किमिदंभ्यामिति सूत्र से वतुप् प्रत्यय, इसीसे वकार को घादेश, होकर किम्+घत् इस स्थिति में 'आयन्' सूत्र से घ् को इय् आदेश, किम्+इय्+अत् इस स्थिति में इदमिति सूत्र से किम् को की आदेश, 'यस्येति च' से 'की' के ईकार का लोप, क्+इय्+अत्=कियत् शब्द से पु० प्र० एक व० में कियान् रूप बनेगा।

इयान्—इदं परिमाणमस्य-इतना। इदम् शब्द से किमिदंभ्यामिति सूत्र से वतुप्, घादेश, इय् आदेश, इदमिति सूत्र से इदम् को ईश् आदेश होकर ई+इय्+अत् इस स्थिति में 'यस्येति च' प्रकृति ईकार का लोप होकर इयत् शब्द से प्र० एक व० में इयान् रूप बनता है।

संख्याया इति—'इसके अवयव हैं' इस अर्थ में संख्या वाचक शब्दों से तयप् प्रत्यय हो।

पञ्च अवयवा अस्य-पञ्चतयम् ।

द्वित्रिभ्यां तयस्याऽयज्वा ।५।२।४३।।

द्वयम्, द्वितयम् । त्रयम्, त्रितयम् ।

उभादुदात्तो नित्यम् ।५।२।४४।।

उभ शब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चोदात्तः ।

तस्य पूरणे डट् ।५।२।४८।।

एकादशानां पूरणः एकादशः ।

पञ्चतयम्—पञ्च अवयवा अस्य—पाँच अवयव वाला समुदाय । पञ्चन् से तयप् प्रत्यय, न लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

द्वित्रिभ्यामिति—द्वि और त्रि शब्द से परे तयप् को अयच् आदेश हो विकल्प से ।

द्वयम्-द्वितयम्—द्वौ अययवौ अस्य—दो अवयव वाला समुदाय । द्वि शब्द से संख्यायाः सूत्र से तयप् प्रयत्य, प्रकृत सूत्र से उसको अयच् आदेश 'यस्येति च' इकार का लोप होकर 'द्वयम्', अयच् आदेश के अभाव पक्ष में 'द्वितयम्' रूप बनेगा ।

त्रयम्-त्रितयम्—त्रयः अवयवा अस्य, तीन अवयवों का समुदाय । त्रि शब्द से पूर्ववत् तयप्, अयच् आदेश, इकारलोप होकर 'त्रयम्' अयच् के अभाव में 'त्रितयम्' रूप बनता है ।

उभादिति—उभ शब्द से परे तयप् को अयच् आदेश नित्य हो और वह उदात्त हो ।

उभयम्—उभौ अवयवौ अस्य-दो अवयवों का समुदाय अर्थात् दो । उभ शब्द से संख्यायाः सूत्र से तयप्, उसको प्रकृत सूत्र से अयच् आदेश, अन्त्याकार लोप होकर उक्त रूप सिद्ध होता है ।

तस्येति—षष्ठयन्त संख्या वाचक शब्द से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय ।

(डट् प्रत्यय में एक केवल 'अ' शेष रहता है । पूरण का अर्थ है अवयव, जो मिलकर किसी समुदाय को पूरा बनाते हैं, पूर्य्यतेऽनेन इति पूरणः । पूरणार्थ प्रत्ययान्त शब्द ही पूरणी संख्या वाले कहे जाते हैं यही शब्द हिन्दी में क्रम बोधक संख्यावाचक विशेषण कहलाते हैं ।)

एकादशः—एकादशानां पूरणः—ग्यारह संख्या को पूरा करने वाला अर्थात् ग्यारहवां । यहाँ एकादशन् शब्द से प्रकृत सूत्र से डट् प्रत्यय, डित्वात् 'अन्' इस 'टि' का लोप होकर 'एकादशः' बनता है ।

नान्ताद संख्यादे र्मट् ।५।२।४९।।

डटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । नान्तादिकम्-

ति विंशते र्डिति ।६।४।१४२।।

विंशते र्भस्य तिशब्दस्य लोपः स्यात् डिति परे । विंशः । असंख्यादेः किम्- एकादशः ।

षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ।५।२।५१।।

एषां थुगागमः स्याड्डटि । षण्णां पूरणः—षष्ठः । कतिथः । कतिपय शब्दस्या संख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट् । कतिपयथः । चतुर्थः ।

नान्तादिति—नकारान्त संख्या वाचक शब्द से यदि उसके आदि में संख्या न हो, डट् प्रत्यय को मट् का आगम हो (मट् आगम टित् होने से डट् के आदि में होगा। मट् का अकार उच्चारणार्थक है केवल म् शेष रहता है।)

पञ्चमः—पञ्चानां पूरणः-पांचवां । पञ्चन् शब्द से 'तस्य पूरणे' सूत्र से डट् प्रत्यय, असंख्यादि नकारान्त पञ्चन् से डट् परे रहते प्रकृत सूत्र से मट् का आगम, पञ्चन् म् अ इस स्थिति में 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से नकारलोप होकर 'पञ्चमः' बनता है ।

नान्तादिति—नकारान्त संख्या वाचक से ही डट् को मट् का आगम होता है । अतः—

तिविंशतेरिति—विंशति शब्द के भ संज्ञक 'ति' का लोप हो डट् परे रहते ।

विंशः—विंशतेः पूरणः—बीसवां । विंशति शब्द से 'तस्य पूरणे सूत्र' से डट् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से 'ति' का लोप, विंश+अ इस स्थिति में 'अतो गुणे' सूत्र से अकार का पर रूप होकर उक्त रूप बनता है ।

असंख्यादेरिति—संख्यादि नान्त संख्यावाचक शब्द से मट् का आगम नहीं होता, अतः—

एकादशः—यहां एकादशन् शब्द यद्यपि नान्त है तथापि संख्यादि होने के कारण यहां डट् परे मट् न होगा तब पूर्ववत् एकादशः रूप बनेगा ।

षडिति—षष्, कति, कतिपय, चतुर् इन शब्दों से डट् परे रहते थुक् का आगम हो ।

(थुक् में थ् शेष रहता है, कित् होने से यह आगम प्रकृति के अन्त में होता है।)

षष्ठः—षण्णां पूरणः=छठा । षष् से डट् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से थुक् का आगम षष्+थ्+अ इस स्थिति में थकार को ष्टुत्व ठकार होने पर षष्ठः रूप बनता है ।

द्वेस्तीयः ।५।२।५४।।

डटोऽपवादः । द्वयोः पूरणो द्वितीयः ।

त्रेः संप्रसारणं च ।५।२।५५।।

तृतीयः ।

श्रोत्रियं श्छन्दोऽधीते ।५।२।८४।।

श्रोत्रियः । वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः ।

पूर्वादिनिः ।५।२।८६।।

पूर्वं कृत मनेन-पूर्वी ।

कतिथः—कतीनां पूरणः—कितनवां । कति शब्द से डट् प्रत्यय, थुक् का आगम, होकर उक्त रूप बनता है ।

कतिपयेति—यद्यपि कतिपय शब्द संख्या वाचक नहीं है फिर भी इससे डट् परे जो थुक् का विधान किया है यही ज्ञापित करता है कि कतिपय शब्द से भी डट् प्रत्यय होता है ।

कपिपयथः—कतिपयानां पूरणः—पूर्ववत् यह भी सिद्ध होगा ।

चतुर्थः—चतुर् शब्द से डट्, थुक् होकर 'चतुर्थः' बनेगा ।

द्वेस्तीय इति—द्वि शब्द से पूरणार्थक तीय प्रत्यय हो ।

द्वितीयः—द्वयोः पूर्णः द्वितीयः—द्वि+तीय—द्वितीयः ।

त्रेरिति—त्रि शब्द से पूरणार्थक तीय प्रत्यय तथा प्रकृति को सम्प्रसारण अर्थात् रेफ को ऋकार हो ।

तृतीयः—त्रयाणां पूरणः—त्रि शब्द से प्रकृत सूत्र से तीय प्रत्यय, र् को ऋ सम्प्रसारण 'सम्प्रसारणच्च' से सूत्र से इकार को पूर्वरूप होकर तृतीयः बनता है ।

श्रोत्रिय इति—'पढ़ने वाला' अर्थ में छन्दस् शब्द से घन् प्रत्यय तथा प्रकृति को श्रोत्र आदेश निपातन से होता है ।

श्रोत्रियः—छन्दोऽधीते—वेद पढ़ने वाला । छन्दस् शब्द से घन् प्रत्यय, प्रकृति को श्रोत्र आदेश, घस्य इय् आदेश, अन्त्याकारलोप होकर 'श्रोत्रियः' बनता है ।

'वा इत्यनुवृत्तेरिति'—इस सूत्र में 'वा' की अनुवृत्ति होती है । अतः घन् प्रत्यय आदि सभी उक्त निपातन कार्य विकल्प से होते हैं । अतएव अभाव पक्ष में छन्दस् शब्द से उक्त अर्थ में अण् प्रत्यय तथा आदिवृद्धि करके 'छान्दसः' भी रूप बनता है ।

पूर्वाविति—कृतमनेन-इसने किया, इस अर्थ में पूर्व शब्द से इनि प्रत्यय होता है ।

सपूर्वाच्च ।५।२।८७।।
कृतपूर्वी ।
इष्टादिभ्यश्च । इष्ट मनेन-इष्टी । अधीती ।
इति भवनाद्यर्थकाः

पूर्वी—पूर्वं कृतम् अनेन इसने पहिले किया । पूर्व शब्द से इनि प्रत्यय, अन्त्या-कारलोप होकर पूर्विन् शब्द से प्र० एक व० में 'पूर्वी' रूप बनता है ।

सपूर्वाच्चेति—जिसके पहिले कोई शब्द हो ऐसे पूर्व शब्द से भी इनि प्रत्यय होता है ।

कृतपूर्वी— कृतं पूर्वम् अनेन-इसने पहिले कर लिया है । कृतपूर्व शब्द से इनि प्रत्यय होकर पूर्ववत् 'कृतपूर्वी' रूप बनता है ।

इष्टादिभ्यश्चेति—इष्ट आदि शब्दों से 'अनेन इष्टम् इस अर्थ में इनि प्रत्यय हो ।

इष्टी—इष्टम् अनेन इसने यज्ञ किया है ।' यहाँ इष्ट शब्द से इनि प्रत्यय, अन्त्याकारलोप होकर 'इष्टी' बनेगा ।

अधीती —अधीत मनेन—यह पढ़ चुका है । अधीत शब्द से इनि प्रत्यय, अकारलोप, 'अधीती' रूप बनता है ।

इति भवनाद्यर्थकाः

अथ मत्वर्थीयाः

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ।५।२।९४।।

गावोऽस्यास्मिन् वा सन्ति-गोमान् ।

अब यहाँ से मतुप् प्रत्यय के अर्थ वाले प्रत्ययों का निर्देश है।

तदस्येति—'तद् अस्य अस्ति' वह इसका है और 'तद् अस्मिन् अस्ति' वह इस में है' इस अर्थ में मतुप् प्रत्यय होता है।

गावः अस्य अस्मिन् वा सन्ति—गायें जिसकी हों अर्थात् जिसके पास गायें हैं, या जिसमें गायें हैं। गो शब्द से मतुप् प्रत्यय, (मतुप् में मत् शेष रहता है) गो-मत् इस प्रातिपदिक से प्र० एक व० में गोमान् रूप बनता है।

(इनि आदि वक्ष्यमाण प्रत्यय भी मतुप् प्रत्यय के उक्त अर्थ में ही होते हैं अतएव वे मत्वर्थीय प्रत्यय कहलाते हैं।)

मत्वर्थीय प्रत्ययों के अर्थों का संग्रह निम्नलिखित कारिका में किया गया है :—

'भूमनिन्दा प्रशंसासु नित्य योगेऽतिशायिने ।
संसर्गेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ।।

अर्थात् मतुप् आदि प्रत्यय भूम (बहुत्व आधिक्य) निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग (नित्य सम्बन्ध), अतिशायन (अतिशय), संसर्ग (सम्बन्ध) इन अर्थों में विवक्षानुसार होते हैं।

इनके क्रमशः उदाहृदण हैं :—

१. भूमः—जैसे गोमान्-अधिक गायों वाला, यहाँ बहुत्व की विवक्षा में मतुप् प्रत्यय है।

तसौ मत्वर्थे ।१।४।१९।।

तान्त सान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे । गरुत्मान् ।

'वसोः सम्प्रसारणम्' विदुष्मान् ।

(वा) गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः । शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः । कृष्णः ।

---

२. निन्दाः—ककुदावर्तिनी कन्या—(कुबड़ी) यहाँ निन्दा अर्थ है (ककुदावर्त+इनि ।)

३. प्रशंसा—रूपवती, यहाँ रूप+मतुप् होकर रूपवती बना है ।

४. नित्ययोग:—क्षीरी वृक्षः—दूध वाला वृक्ष, यहाँ मत्वर्थीय इनि प्रत्यय है—वृक्ष और दूध का नित्य सम्बन्ध है ।

५. अतिशायन—उदरिणी-बड़े पेट वाली (उदर+इनि)

६. संसर्गः—दण्डी—(दण्ड+इनि) दण्ड वाला पुरुष, संसर्ग अर्थ है ।

तसाविति—तकारान्त और सकारान्त शब्दों की भसंज्ञा हो मत्वर्थीय प्रत्यय परे रहते ।

गरुत्मान्—गरुतः अस्य सन्ति, जिसके पंख हैं । गरुत् शब्द से 'तदिति' सूत्र से मतुप् प्रत्यय, गरुत् शब्द के तकारान्त होने से प्रकृत सूत्र द्वारा मतुप् प्रत्यय परे भसंज्ञा, भसंज्ञा होने से पद संज्ञा न होने के कारण यहाँ 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' वार्तिक से तकार को अनुनासिक नहीं हुआ और न जश्त्वेन दकार ही हुआ । अतः गरुत्मत् शब्द से गरुत्मान् रूप बना ।

विदुष्मान्—विद्वांसोऽस्य सन्ति-जिसके विद्वान् हों । विद्वस् शब्द से मतुप् प्रत्यय, सकारान्त होने से प्रकृत सूत्र से भसंज्ञा अतः 'वसोः सम्प्रसारणम्' सूत्र से वकार को उ सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से अकार का पूर्वरूप होकर विदुष्मत् शब्द से प्र० एक व० में विदुष्मान् रूप बनता है ।

वार्तिक – **गुणवचनेभ्य इति**——गुणवाचक शब्दों से मतुप् प्रत्यय का लोप हो ।

(प्रकृत वार्तिक में गुण शब्द से केवल उन्हीं गुणवाचक शब्दों का ग्रहण है जो कि गुण और गुणी (गुणवान्) दोनों हो सकते हैं जैसे कृष्णः पटः—काला वस्त्र । रूप आदि गुण वाचक शब्दों का इसमें ग्रहण न होगा अतएव रूपं वस्त्रम् यह प्रयोग नहीं होता है ।)

शुक्लः पटः—शुक्लः गुणः अस्यास्ति-शुक्ल जिसका गुण है ऐसा वस्त्र । यहाँ शुक्ल शब्द से मतुप् प्रत्यय, प्रकृत वार्तिक से इसका लोप होकर शुक्लः रूप बनता है इसी प्रकार कृष्णः पटः भी प्रयोग होता है ।

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ।५।२।९६॥

चूडालः - चूडावान् । प्राणिस्थात्किम्—शिखावान् ।

(वा) प्राण्यङ्गादेव । नेह-मेधावान् ।

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ।५।२।१००॥

लोमादिभ्यः शः । लोमशः लोमवान् । रोमशः रोमवान् । पामादिभ्यो न-पामनः ।

(ग० सू०) **अङ्गात्कल्याणे** । अङ्गना ।

(ग० सू०) **लक्ष्म्या अच्च** । लक्ष्मणः ।

प्राणिस्थादिति—प्राणी में स्थित अंग वाचक अकारान्त शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से लच् प्रत्यय हो ।

चूडालः—चूडा अस्य सन्ति (जिसके केश हों) चूडा शब्द से लच् प्रत्यय, 'चूडालः' । पक्ष में मतुप् प्रत्यय, 'मादुपधायाश्च' इत्यादि सूत्र से मकार को वकार होकर चूडावान् रूप बनता है ।

प्राणिस्थात्किमिति—प्राणिस्थ पद से प्राणिस्थ पदार्थ से ही लच् प्रत्यय होगा, अतएव शिखावान् यहाँ पर शिखा के प्राणिस्थ न होकर दीपस्थ होने से लच् प्रत्यय न होगा केवल मतुप् प्रत्यय ही होगा ।

प्राण्यङ्गादेवेति—प्राणी के अंग वाचक से ही लच् प्रत्यय होता है अतएव मेधावान् (बुद्धिमान्) यहाँ मेधा शब्द से लच् प्रत्यय न होकर केवल मतुप् प्रत्यय होगा, मेधा प्राणी का अङ्ग नहीं, यहाँ अङ्ग पद से मूर्त अङ्ग—हाथ पैर आदि की ही विवक्षा है ।

लोमादीति—लोमन् आदि से श, पामन् आदि से न और पिच्छ आदि से इलच् प्रत्यय मत्वर्थ में होते हैं, विकल्प से ।

लोमशः—लोमानि सन्त्यस्य । लोमन् शब्द से श प्रत्यय, नकार लोप होकर लोमशः पक्ष में मतुप् लोमवान् इसी प्रकार रोमन्—(रोमाणि अस्य सन्ति) रोमशः और रोमवान् रूप बनते हैं ।

पामनः—पामास्यास्तीति (खुजली वाला) पामन् से न प्रत्यय, प्रकृति नकार का लोप, पामनः ।

(ग० सू०) **अङ्गादिति**—कल्याण विशेषणक अङ्ग शब्द से न प्रत्यय हो ।

अङ्गना—कल्याणानि-सुन्दराणि अङ्गानि अस्याः सा अङ्गना । अङ्ग शब्द से न प्रत्यय, स्त्री बोधक टाप् प्रत्यय होकर उक्त रूप बनता है ।

(ग० सू०) **लक्ष्म्या इति**– लक्ष्मी शब्द से मत्वर्थ में न प्रत्यय हो तथा अकार अत् आदेश हो ।

पिच्छादिभ्य इलच् । पिच्छिलः, पिच्छवान् ।

दन्त उन्नत उरच् ।५।२।१०६।।

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य-दन्तुरः ।

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ।५।२।१०९।।

केशवः, केशी, केशिकः, केशवान् ।

(वा) अन्येभ्योऽपि दृश्यते । मणिवः ।

(वा) अर्णसो लोपश्च । अर्णवः ।

अत इनिठनौ ।५।२।११५।।

दण्डी, दण्डिकः ।

लक्ष्मणः—लक्ष्मीरस्यास्तीति (लक्ष्मीवान्) लक्ष्मी शब्द से प्रकृत गण सूत्र से न प्रत्यय, और ईकार को अकारान्तादेश, णत्व होकर उक्त रूप बनता है ।

पिच्छलः – पिच्छ मस्यास्तीति मोर पंख वाला । यहाँ पिच्छ शब्द से इलच् (इल) प्रत्यय, अन्त्याकार लोप होकर 'पिच्छिलः, इलच् के अभाव में मतुप् होकर पिच्छवान् रूप बनेगा ।

दन्त इति—दन्त शब्द से मत्वर्थ में उरच् प्रत्यय हो ।

दन्तुरः—उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य (जिसके ऊँचे दांत हों) यहाँ दन्त शब्द से उच्चता सूचनार्थ उरच् प्रत्यय, अन्त्याकार लोप होकर उक्त रूप बनता है ।

केशादिति—केश शब्द से मत्वर्थ में व प्रत्यय विकल्प से हो ।

केशवः—केशाः सन्त्यस्य-केशों वाला । केश से व प्रत्यय, 'केशवः' पक्ष में 'अत इनिठनौ' सूत्र से इनि प्रत्यय अन्त्याकार लोप होकर केशिन् से केशी रूप बनेगा, केश से ठन् प्रत्यय करने पर 'ठस्येकः' से ठ को इक करने पर 'केशिकः' और इनके अभाव में मतुप् करने पर केशवान् इस प्रकार चार रूप बनेंगे ।

वार्तिक-अन्येभ्य इति—केश शब्द से भिन्न शब्दों से भी व प्रत्यय देखा जाता है ।

मणिवः—मणिरस्या स्तीति-(मणि वाला सर्प) मणि से प्रकृत वार्तिक से व प्रत्यय, 'मणिवः' सिद्ध होता है ।

वार्तिक-अर्णस इति—अर्णस् शब्द से व प्रत्यय हो और अन्त्य सकार का लोप भी हो ।

अर्णवः—अर्णांसि अस्य सन्ति (जल वाला सागर) अर्णस् शब्द से प्रकृत वार्तिक से व प्रत्यय, सकार का लोप होकर 'अर्णवः' रूप बनता है ।

अत इति—अदन्त शब्द से मत्वर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हो ।

व्रीह्यादिभ्यश्च ।५।२।११६।।

व्रीही । व्रीहिकः ।

अस्माया मेधास्रजो विनिः ।५।२।१२१।।

यशस्वी-यशस्वान् । मायावी । मेधावी । स्रग्वी ।

वाचो ग्मिनिः ।५।२।१२४।।

वाग्मी ।

अर्श आदिभ्योऽच् ।५।२।१२७।।

अर्शोऽस्य विद्यते—अर्शसः । आकृतिगणोऽस्यम् ।

दण्डी-दण्डिकः—दण्डोऽस्यास्तीति, दण्ड वाला । अकारान्त दण्ड शब्द से इनि प्रत्यय, अन्त्याकार लोप, दण्डिन् से प्रथमैकवचन में दण्डी तथा ठन् प्रत्यय करने पर 'ठस्येकः' से ठकार को इक तथा अकार लोप करने पर दण्डिकः रूप बनते हैं ।

व्रीह्यादिभ्य इति—व्रीहि आदि शब्दों से भी इनि और ठन् प्रत्यय हो ।

व्रीही-व्रीहिकः—व्रीहयः अस्य सन्ति धान वाला । व्रीहि शब्द से इनि, अन्त्य इकार लोप होकर व्रीहिन् से प्र० एक० व० से व्रीही, ठन् करने पर इक, इकार लोप होकर व्रीहिकः रूप बनते हैं ।

अस्मायेति—अस् अन्त वाले शब्दों से, माया मेधा और स्रज्, इन शब्दों से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय हो ।

यशस्वी-यशस्वान्—यशोऽस्यास्तीति असन्त यशस् शब्द से प्रकृत सूत्र से विनि विन्) प्रत्यय होकर यशस्विन् शब्द से यशस्वी पक्ष में मतुप् करने पर यशस्वान् रूप बनते हैं ।

मायावी—मायास्यास्तीति—माया+विनि=मायावी, इसी प्रकार मेधावी—मेधा अस्यास्तीति—मेधा+विनि=मेधावी । इसी प्रकार **स्रग्वी**—स्रग् अस्य अस्ति (माला वाला) स्रज् शब्द से विनि प्रत्यय 'चोः कुः' से जकार को गकार होकर स्रग्विन् से 'स्रग्वी' बनता है ।

वाच इति—वाच् शब्द से ग्मिनि प्रत्यय हो ।

वाग्मी—वाचोऽस्य सन्ति-अच्छा बोलने वाला । वाच् शब्द से ग्मिनि प्रत्यय चकार को जश्त्वेन जकार तब जकार को कुत्वेन गकार होकर वाग्मिन् शब्द से प्र० एक व० में वाग्मी, रूप बनता है ।

अर्शस् आदि शब्दों से मत्वर्थ में अच् प्रत्यय हो ।

अर्शसः—अर्शांसि सन्ति अस्य-बवासीर रोग वाला । अर्शस् शब्द से अच् प्रत्यय होकर अर्शसः बना है ।

अहंशुभंयोयुस् ।५।२।१४०।।

अहंयुः—अहंकारवान् । शुभंयुः—शुभान्वितः ।

इति मत्वर्थीयाः

यह आकृतिगण है, मत्वर्थीय प्रत्ययों की सम्भावना में अकारान्त शब्दों की सिद्धि इस सूत्र के अन्तर्गत समझनी चाहिये ।

अहमिति--अहम् और शुभम् इन मकारान्त अव्ययों से युस् प्रत्यय होता है ।

अहंयुः—अहङ्कारोऽस्यास्तीति (अहङ्कारी) अहम् से युस् प्रत्यय होकर 'अहंयुः' बनता है ।

युस् प्रत्यय का सकार इत् संज्ञक है, अतः सित् होने से 'सितिच' से पद संज्ञा होने से पदान्त मकार को अनुस्वार होता है । इसी प्रकार शुभम्+युस्='शुभंयुः' (शुभान्वित) रूप भी बनता है ।

इति मत्वर्थीयाः

अथ प्राग्दिशीयाः

प्राग्दिशो विभक्तिः ।५।३।१।।

दिक् शब्देभ्य इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्ति संज्ञाः स्युः ।

किं सर्वनाम-बहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ।५।३।२।।

'किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्च' इति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ।

पञ्चम्यास्तसिल् ।५।३।७।।

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्य स्तसिल् वा स्यात् ।

कु तिहोः ।७।२।१०४।।

प्राग्दिश इति—'दिक् शब्देभ्यः' इस सूत्र से पूर्व तक कहे जाने वाले प्रत्ययों की विभक्त संज्ञा हो ।

किं सर्वनामेति—द्वि आदि भिन्न सर्वनाम, तथा किम् और बहु शब्दों से (ये प्रत्यय होंगे) 'दिक् शब्देभ्यः' के पूर्व तक होने वाले प्रत्यय प्राग्दिशीय कहलायेंगे, क्योंकि वहाँ तक इस सूत्र का अधिकार है ।

(द्वि० आदि से भिन्न कहने के कारण ही, सर्वमान के अन्तर्गत होते हुये भी किम् शब्द का पृथक् ग्रहण किया गया है, अन्यथा द्वि आदि में आने के कारण किम् का ग्रहण न हो सकता था ।)

पञ्चम्या इति—पञ्चम्यन्त किम् आदि शब्दों से तसिल् प्रत्यय विकल्प से हो ।

कुतिहोरिति—किम् शब्द को कु आदेश हो, तकारादि और हकारादि प्रत्यय परे रहते ।

(तसिल् में केवल तस् शेष रहता है ।)

किमः कुः स्यात्तादौ ह्रादौ च विभक्तौ परतः। कुतः—कस्मात्।

इदम इश् ।५।३।३॥

प्राग्दिशीये परे। इतः।

अन् ।५।३।५॥

एतदः प्राग्दिशीये। अनेकाल् त्वात् सर्वादेशः। अतः। अमुतः। यतः। बहुतः। द्व्यादेस्तु-द्वाभ्याम्।

पर्यभिभ्यां च ।५।३।९॥

आभ्यां तसिल् स्यात्। परितः, सर्वतः, इत्यर्थः। अभितः, उभयतः, इत्यर्थः।

सप्तम्यास्त्रल् ।५।३।१०॥

कुत्र। यत्र। तत्र। बहुत्र।

कुतः—कस्मात्—(किस से या कहाँ से) कस्मादिति कुतः इस विग्रह में किम् ङसि से तसिल् करने पर प्रातिपादिक-संज्ञा, विभक्ति लोप, प्रकृत सूत्र से तकारादि प्रत्यय परे रहते किम् शब्द को कु आदेश होकर 'कुतः' रूप बनता है।

इदम इति—प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते इदम् शब्द को इश् आदेश हो।

(इश् आदेश के शित् होने से यह सम्पूर्ण इदम् के स्थान में होगा।)

इतः—अस्मात्—इससे। पञ्चम्यन्त इदम् शब्द से तसिल् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से इदम् शब्द को इश् आदेश होकर उक्त रूप बनता है।

अन् इति—प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते, एतद् शब्द को अन् आदेश हो।

अनेकाल् होने से अन् आदेश सम्पूर्ण एतद् के स्थान में होगा। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से नकार का लोप होकर केवल 'अ' शेष रहता है।

अतः—एतस्मात्—(इससे) एतद् शब्द से तसिल् प्रत्यय, 'अन्' सूत्र से अन् आदेश, न लोप होकर 'अतः' रूप बनता है।

अमुतः—अमुष्मात्—इससे। अदस् शब्द से तसिल् प्रत्यय, तसिल् प्रत्यय के विभक्ति संज्ञक होने से विभक्ति परे रहते 'त्यदादीनामः' सूत्र से सकार को अकार, अद+अ+तस् इस स्थिति में 'अतो गुणे' सूत्र से अकार का पर रूप, अद्+तस् इस स्थिति में 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' सूत्र से दकार से परे अकार के स्थान में उकार तथा दकार को मकार आदेश होकर 'अमुतः' रूप बनता है।

यतः—'यस्मात्-जिससे' यद् शब्द से तसिल् प्रत्यय, ''त्यदादीनामः' सूत्र से दकार को अकार और पूर्व अकार का 'अतो गुणे' से पर रूप होकर 'यतः' रूप बनता है।

बहुतः—बहु+तसिल्='बहुतः' रूप बनता है।

इदमो हः ।५।३।११।। त्रलोऽपवादः । इह ।

किमोऽत् ।५।३।१२।

वा—ग्रहण मप कृष्यते । सप्तम्यन्तात् किमोऽत् वा स्यात् । पक्षे त्रल्

क्वाऽति ।७।२।१०५।।

किमः क्वादेशः स्यादति । क्व, कुत्र ।

द्व्यादेरिति—द्वि आदि शब्दों से प्राग्दिशीय प्रत्यय नहीं होते अतः द्वि से तसिल् न होगा उसका पंचमी विभक्ति में द्वाभ्याम् केवल यही रूप बनेगा।

पर्यभिभ्यामिति—परि और अभि से तसिल् प्रत्यय हो।

परितः—सर्वतः सब ओर।

अभितः—उभयतः—दोनों ओर।

सप्तम्या इति—सप्तम्यन्त किम् आदि से त्रल् प्रत्यय हो।

कुत्र—कस्मिन् (किसमें कहाँ) किम् से त्रल् (त्र) प्रत्यय, 'कु तिहोः' से किम् को कु आदेश होकर उक्त रूप बनता है।

यत्र-तत्र—यस्मिन्-तस्मिन्—जहाँ-वहाँ या उसमें यद् तथा तद् शब्दों से त्रल् प्रत्यय, 'त्यदादीनामः' से दकार को 'अ' 'अतोगुणे' पर रूप होकर उक्त रूप बनते हैं।

बहुत्रः—बहु + त्रल् = बहुत्र। (बहुषु—बहुतों में)

इदम इति—सप्तम्यन्त इदम् शब्द से ह प्रत्यय हो।

(ह प्रत्यय त्रल् का अपवाद 'बाधक' है।)

इह—अस्मिन्—(इसमें यहाँ) इदम् शब्द से ह प्रत्यय, 'इदम इश्' सूत्र से इदम् को इश् आदेश होकर उक्त रूप बनता है।

किम इति—सप्तम्यन्त किम् शब्द से अत् प्रत्यय हो।

वाग्रहणमिति—'वा ह च छन्दसि' सूत्र से इस सूत्र में 'वा' (विकल्प) का अपकर्ष किया जाता है अतः अत् प्रत्यय के अभाव में पक्ष में त्रल् प्रत्यय भी होगा।

क्वाऽतीति—अत् प्रत्यय परे किम् शब्द को क आदेश हो।

क्व-कुत्र—कस्मिन्—(किसमें-कहाँ) किम् शब्द से किमोऽत् सूत्र द्वारा अत् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से किम् को क आदेश, 'अतो गुणे' सूत्र से पूर्व अकार का पर रूप होकर 'क' रूप बनता है (अत् का त् इत्संज्ञक है) पक्ष में त्रल् प्रत्यय कु आदेश होकर 'कुत्र' रूप बनता है।

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ।५।३।१४।।

पञ्चमी सप्तमीतर विभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते ।

(वा) दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान्—ततो भवान्, तत्र भवान् तं भवन्तम्— ततो भवन्तम्, तत्र भवन्तम् । एवं दीर्घायुः, देवानां प्रियः, आयुष्मान् ।

सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा ।५।३।१५।।

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् ।

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ।५।३।६।।

दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले सदा, सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले किम्—सर्वत्र देशे ।

इतराभ्य इति—पञ्चमी और सप्तमी (जिनमें अभी तक प्रत्ययों का विधान किया गया है) से भिन्न विभक्त्यन्त शब्दों से भी तसिल आदि प्रत्यय देखे जाते हैं ।

दृश् ग्रहणादिति—सूत्र में दृश् ग्रहण समार्थ्य से भवत् आदि के योग में ही अन्य विभक्त्यन्त शब्दों से ये प्रत्यय होंगे । अर्थात् सूत्र में जो 'दृश्यन्ते' पद कहा गया है उससे यह जाना जाता है कि तसिलादि प्रत्यय पञ्चम्यन्त और सप्तम्यन्त शब्दों के अतिरिक्त उन्हीं शब्दों से होंगे जिनके कि आगे वे प्रायः देखने में आते हैं, भवत् आदि शब्दों के योग में ही ये देख जाते हैं अतः कहा गया है कि 'भवदादियोग एव' । अतः अन्य विभक्तियन्तों से यदि ये प्रत्यय होंगे तो भवत् आदि के ही योग में होंगे अन्य से नहीं ।

ततो भवान्-तत्र भवान्—स भवान् (पूज्य) यहाँ भवत् शब्द के योग में प्रथमान्त से तसिल् प्रत्यय और त्रल् प्रत्यय देखे जाते हैं ।

ततो भवन्तम्-तत्र भवन्तम्—तं भवन्तम् (पूज्य) यहाँ द्वितीयान्त भवत् शब्द से तसिल् प्रत्यय और त्रल् प्रत्यय हुआ है ।

एवमिति—इसी प्रकार भवत् के अतिरिक्त दीर्घायुः, देवानां प्रियः तथा आयुष्मान् के योग में भी अन्य विभक्त्यन्त से ये प्रत्यय होंगे । जैसे स दीर्घायुः इस अर्थ में ततो दीर्घायुः भी प्रयोग बनेंगे ।

सर्वैकेति—सप्तम्यन्त काल बोधक सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् और तद् शब्दों से स्वार्थ में दा प्रत्यय हो ।

सर्वस्येति—सर्व शब्द को विकल्प से स आदेश होता है प्राग्दिशीय दकारदि प्रत्यय परे रहते ।

सदा सर्वदा—सर्वस्मिन् काले—(सब समय) सप्तम्यन्त काल वाचक सर्व शब्द से सर्वैकेत्यादि सूत्र से स्वार्थ में दा प्रत्यय, दादि-प्राग्दिशीय दा प्रत्यय परे रहते

इदमो र्हिल ।५।३।१६।।

सप्तम्यन्तात् । काल इत्येव ।

एतेतौ रथोः ।५।३।४।।

इदम् शब्दस्य एत् इत् इत्यादेशौं स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे । अस्मिन् काले—एतर्हि । काले किम्—इह देशे ।

अनद्यतनेर्हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१।।

कर्हि, कदा । यर्हि, यदा । तर्हि तदा ।

'सर्वस्येति' सूत्र से सर्व शब्द को स आदेश होकर 'सदा' स आदेश के वैकल्पिक होने से पक्ष में सर्वदा रूप बनेगा ।

एकदा – एकस्मिन् काले - (एक समय) यहाँ एक शब्द से दा प्रत्यय होकर एकदा रूप बनता है ।

कदा—कस्मिन् काले (किस समय) किम् शब्द से दा प्रत्यय 'किमः कः' । सूत्र के किम् शब्द को कादेश होकर कदा बनता है ।

यदा—यस्मिन् काले (जिस समय) यद् शब्द से दा प्रत्यय, विभक्ति संज्ञक दा प्रत्यय के आगे रहने 'त्यदादीनामः' सूत्र से दकार का अकार, 'अतो गुणे' से अकार का पर रूप होकर 'यदा' इसी प्रकार—

तदा—तद् शब्द से दा प्रत्यय होकर तदा बनता है ।

काले किम्—काल वाचक उक्त शब्दों से ही दा प्रत्यय होता है, अतः स्थान वाचक शब्दों से दा प्रत्यय न होगा 'सर्वत्र देशे' यहाँ सर्व शब्द स्थान वाचक है अतः दा प्रत्यय न होकर 'सर्वत्र' रूप बना है ।

इदम इति—सप्तम्यन्त काल वाचक इदम् शब्द से र्हिल् प्रत्यय हो ।

एतेताविति—रेफ आदि तथा थकार आदि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते इदम् शब्द को एत् और इत् आदेश क्रम से हों ।

एतर्हि—अस्मिन् काले (इस समय-अब) इदम् शब्द से र्हिल् प्रत्यय होकर 'एतर्हि' बना है ।

काले किमिति—काल वाचक से ही प्रत्यय होता है । अतः 'इह देशे' यहाँ इदम् शब्द से ह प्रत्यय और इदम् को इश् आदेश होकर 'इह' बनेगा क्योंकि यहाँ यह स्थान वाचक है ।

अनद्यतने इति—अनद्यतन (जो आज का न हो) अर्थ में वर्तमान काल वाचक सप्तम्यन्त शब्दों से र्हिल् प्रत्यय हो ।

एतदः ।५।३।५।।

एत् इत् एतौ स्तौ रेफादौ थादौ च प्राग्शिये । एतस्मिन् काले एतर्हि ।

प्रकार वचने थाल् ।५।३।२३।।

प्रकार वृत्तिभ्यः किमादिभ्यः थाल् स्यात् स्वार्थे । तेन प्रकारेण तथा । यथा ।

इदमस्थमुः ।५।३।१४।।

थालोऽपवादः ।

(वा) एतदोऽपि वाच्यः । अनेन एतेन वा प्रकारेण—इत्थम् ।

किमश्च ।५।३।२५।।

केन प्रकारेण—कथम् ।

इति प्राग्दिशीयाः

कर्हि-कदा—कस्मिन् काले (किस समय कब) किम् शब्द से हिल् प्रत्यय, 'किमः कः' से किम् को क आदेश होकर 'कर्हि' हिल् के अभाव पक्ष में 'दा' प्रत्यय होकर कदा बनेगा ।

यर्हि-यदा—यस्मिन् काले (जिस समय जब) यत् शब्द से हिल्, 'यर्हि' पक्ष में 'यदा', एवम् तर्हि --'तदा' रूप बनते हैं ।

एतद इति—क्रमशः रेफादि और थादि प्रत्यय परे रहते एतद् शब्द को भी एत् इत् आदेश होते हैं ।

एतर्हि – एतस्मिन् काले—अब । एतद् से हिल्, एतद् को प्रकृत सूत्र से एत आदेश होकर 'एतर्हि' रूप बनता है ।

प्रकाद वचने इति—प्रकार अर्थ में किम् आदि शब्दों से थाल् प्रत्यय स्वार्थ में होता है ।

तथा—तेन प्रकारेण—उस प्रकार से – वैसा—उस दशा में । यहाँ तद् से थाल् प्रत्यय 'त्यदादीनामः' से दकार को 'अ' होकर 'तथा' इसी प्रकार यत् से यथा बनता है ।

इदम इति—इदम् शब्द से प्रकार अर्थ में थमु प्रत्यय होता है ।

यह थाल् प्रत्यय का बाधक है ।

वार्तिक—एतद इति—एतद् शब्द से भी थमु प्रत्यय होता है ।

इत्थम् —अनेन एतेन प्रकारेण वा—(इस प्रकार) इदम् या एतद् शब्द से थमु (थम्) प्रत्यय, थकारादि प्रत्यय आगे होने से 'एतेतौरथोः' सूत्र से इदम् को इत् आदेश होकर 'इत्थम्' और एतद् को 'एतदः' सूत्र से इत् आदेश होकर भी इत्थम् रूप बनता है ।

किम् इति--किम् शब्द से भी प्रकार अर्थ में थमु प्रत्यय होता है ।

कथम् – केन प्रकारेण – (कैसे-किस प्रकार) किम् शब्द से प्रकृत सूत्र से थमु प्रत्यय 'किमः कः' से क आदेश होकर कथम्' रूप बनता है ।

इति प्राग्दिशीयाः

अथ प्रागिवीयाः

अतिशायने तमबिष्ठनौ ।५।३।५५।।

अतिशय विशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः ।

अयमेषा मतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः । लघुतमः । लघिष्ठाः ।

तिङश्च ।५।३।५६।।

तिङन्ता दतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ।

तरप्तम पौ घः ।१।१।२२।।

एतौ घ संज्ञौ स्तः ।

यहाँ से लेकर 'इवे प्रतिकृतौ' सूत्र से पूर्व तक के प्रत्यय 'प्रागिवीय' कहलाते हैं ।

अतिशायन इति—अतिशय अर्थ में वर्तमान शब्द से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं ।

(जहाँ बहुत में से एक का सबसे अधिक उत्कर्ष दिखाया जाता है वहाँ तमप् (तम) और इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय होते हैं ।)

आढ्यतमः—अयम् (जनः) एषाम् अतिशयेन आढ्यः (सम्पन्न) इस अर्थ में आढ्य शब्द से तमप् होकर उक्त रूप बनता है । इसी प्रकार अयमेषा मतिशयेन लघुः इस अर्थ में तमप् होकर 'लघुतमः' रूप बनता है ।

लघिष्ठः – अयमेषा मतिशयेन लघुः इस अर्थ में इष्ठन् प्रत्यय होने पर भ संज्ञा होकर 'टेः' सूत्र से उकार का लोप होकर 'लघिष्ठः' रूप बनता है ।

तिङश्चेति—अतिशय द्योतनार्थ तिङन्त से भी तमप् प्रत्यय होता है ।

तरप् इति—तरप् और तमप् प्रत्ययों की घ संज्ञा होती है ।

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ।५।४।११।।

किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्नतु द्रव्यप्रकर्षे । किन्तमाम् । प्राह्णेतमाम् । पचतितमाम् । उच्चैस्तमाम् । द्रव्यप्रकर्षे तु-उच्चैस्तमस्तरुः ।

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ।५।३।५७।।

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्ता देतौ स्तः । पूर्वयोरपवादः । अयमनयो रतिशयेन लघु र्लघुतरः लघीयान् । उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः, पटीयांसः ।

किमेत् इति—किम्, एकारान्त, तिङन्त और अव्यय से परे जो घ (संज्ञक तरप् तथा तमप्) प्रत्यय, तदन्त जो शब्द उससे आमु (आम्) प्रत्यय हो, पर द्रव्य की उत्कर्षता में न हो ।

किन्तमाम्—किम् शब्द से तमप् होने पर घ संज्ञा, तदन्त किन्तम शब्द से प्रकृत सूत्र से आमु प्रत्यय होकर उक्त रूप बनता है ।

प्राह्णेतमाम्—यहाँ एकारान्त प्राह्णे शब्द से तमप् प्रत्यय और घ संज्ञा होने पर आमु प्रत्यय होकर उक्त रूप बना है ।

पचतितमाम्—यहाँ तिङन्त पचति से तमप् और आमु होकर उक्त रूप बनता है ।

उच्चैस्तमाम्—यहाँ अव्यय उच्चैस् से उक्त प्रत्ययों के होने पर उक्त रूप बनता है ।

द्रव्य प्रकर्षे तु—द्रव्य के प्रकर्ष में आमु प्रत्यय नहीं होता अतः उच्चैस् अव्यय से केवल तमप् प्रत्यय होकर 'उच्चैस्तमः' रूप बनेगा, क्योंकि यह द्रव्य वाचक तरु के लिए यहाँ प्रयुक्त हुआ है ।

द्विवचनेति—दो में से एक के अतिशय या उत्कर्ष द्योतनार्थ, तथा जिससे विभाग (अलग) करना हो उसके उपपद (समीप पठित) होने पर सुबन्त और तिङन्त से तरप् (तर) तथा ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय होते हैं ।

पूर्वयोरिति—ये प्रत्यय पूर्वोक्त तमप् और इष्ठन् के बाधक हैं क्योंकि अतिशय द्योतनार्थ में ये प्रत्यय भी होते हैं । इन दोनों प्रकार के प्रत्ययों में अन्तर यह है कि तम और इष्ठन् तो बहुतों से एक का उत्कर्ष दिखाने में तथा तरप् और ईयसुनः, दो में से एक का उत्कर्ष दिखाने में प्रयुक्त होते हैं ।

लघुतरः-लघीयान्—अयम् (जनः) अनयोः अतिशयेन लघुः—यह इन दो में से अधिक हल्का है । यहाँ लघु शब्द से तरप् होकर लघुतरः, और ईयसुन् होकर, भ संज्ञा, उकार लोप होकर लघीयस् शब्द से प्र० एक व० में लघीयान् रूप बनता है ।

प्रशस्यस्य श्रः ।५।३।५०।।

अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः परतः ।

प्रकृत्यैकाच् ।६।४।१६३।।

इष्ठादिष्वैकाच् प्रकृत्या स्यात् । श्रेष्ठः, श्रेयान् ।

ज्य च ।५।३।६१।।

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यादिष्ठेयसोः । ज्येष्ठः ।

ज्यादादीयसः ।६।४।१६०।।

ज्यादुत्तरस्येयसुन् । आकारादेशः । आदेः परस्य । ज्यायान् ।

पटुतराः-पटीयांसः—उदीच्याः प्राच्येभ्यः अतिशयेन पटवः—उत्तर के लोग पूर्वी लोगों से अधिक चतुर हैं । यहाँ प्राच्य से उदीच्य का भेद (विभाग) दिखाया जा रहा है, अतः यहाँ पटु शब्द से तरप् होकर 'पटुतराः' ईयसुन् होकर भसंज्ञा, उकार लोप होकर, 'पटीयांसः' बनेगा ।

(तमप् आदि प्रत्यय वाले शब्दों का प्रयोग विशेषणवत् होता है अतः इनके रूप तीनों लिङ्गों में बनते हैं ।)

प्रशस्यस्येति—अजादि इष्ठन् एवं ईयसुन् प्रत्यय परे रहते प्रशस्य शब्द को श्र आदेश होता है ।

प्रकृत्यैकाजिति—इष्ठन् आदि प्रत्यय परे रहते एकाच् को प्रकृतिभाव होता है अर्थात् 'टेः' सूत्र से टि लोप नहीं होता ।

श्रेष्ठः—श्रेयान्—अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः—यह इसमें सबसे अधिक प्रशंसनीय, अथवा अयमनयोरतिशयेन यह इन दोनों में अधिक प्रशंसनीय, इस अर्थ में प्रशस्य शब्द से इष्ठन् एवं ईयसुन् प्रत्यय करने पर "प्रशस्यस्य श्रः" सूत्र से प्रशस्य को श्र आदेश और प्रकृत सूत्र से एक स्वर वाले श्र शब्द को प्रकृति भाव होने से टि लोपभाव होकर श्रेष्ठ और श्रेयस् शब्दों से उक्त रूप बनते हैं ।

ज्य चेति—प्रशस्य शब्द को ज्य भी आदेश हो उक्त प्रत्ययों के परे रहते ।

ज्येष्ठः—अयमेषामतिशयेन प्रशस्तः—यह इनमें अधिक प्रशंसा पात्र है । प्रशस्य शब्द से इष्ठन् प्रत्यय परे रहते प्रकृत सूत्र से प्रशस्य को ज्य आदेश, प्रकृत सूत्र से प्रकृति भाव होकर ज्येष्ठः रूप बनता है ।

ज्यादादिति—ज्य से परे ईयस् को आकार आदेश होता है ।

'आदेः परस्य'—ज्यात् इस पद का उच्चारण कर विधीयमान कार्य ईयस् के आदि ईकार को होगा ।

ज्यायान्—अयमन योरतिशयेन प्रशस्यः—दो में से अधिक प्रशंसनीय । यहाँ

बहोर्लोपो भू च बहोः ।६।४।१५८।।

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद्बहोश्च भूरादेशः । भूमा । भूयान् ।

इष्ठस्य यिट् च ।६।४।१५९।।

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद् यिडागमश्च । भूयिष्ठः ।

विन्मतोर्लुक् ।५।३।६५।।

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः । अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान्-त्वचिष्ठः, त्वचीयान् ।

प्रशस्य से ईयसुन्, 'ज्य च' सूत्र से प्रशस्य को ज्यादेश, 'प्रकृत्यैकाच्' से प्रकृतिभाव, ज्य + ईयस् इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से ईयस् के ईकार को आकार, सवर्णदीर्घ होकर ज्यायस् शब्द से 'ज्यायान्' रूप बनता है ।

बहोरिति—बहु शब्द से परे इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों का लोप हो और बहु को भू आदेश हो ।

भूमा-भूयान्—बहोर्भावः (बहुत्व) बहु शब्द से भाव में इमनिच् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से इमनिच् के इकार का 'आदेः परस्य' नियम के अनुसार लोप, और बहु प्रकृति को भू आदेश होकर भूमन् शब्द से 'भूमा' तथा ईयसुन् प्रत्यय करने पर 'ई' का लोप, भू आदेश होकर भूयस् शब्द से प्र० एक व० में 'भूयान्' रूप बनता है ।

इष्ठस्येति—बहु शब्द से परे इष्ठन् का (प्रत्यय के आदि इकार का) लोप हो और यिट् (य) आगम हो तथा बहु को भू आदेश हो ।

भूयिष्ठः—अयमेषां बहुः—यह इनमें अधिक । बहु से इष्ठन् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से इष्ठन् के इकार का लोप तथा भू आदेश और यिट् का आगम होकर भूयिष्ठः—रूप बनता है ।

विन्मतोरिति—इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते विन् और मतुप् प्रत्ययों का लोप हो ।

स्रजिष्ठः—अतिशयेन स्रग्वी-सब से अधिक माला वाला । यहाँ "स्रग्वी" इस विन् प्रत्ययान्त स्रग्विन् शब्द से इष्ठन् प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से विन् का लोप कर 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' अर्थात् निमित्त के नष्ट हो जाने पर उसे मानकर होने वाले कार्य भी नष्ट हो जाते हैं । इस नियम के अनुसार कुत्वेन जो गकार हुआ था वह भी न रहा अतः स्रजिष्ठ यह रूप बना है ।

स्रजीयान्—यहाँ पर भी ईयसुन् प्रत्यय के आगे रहते विन् प्रत्यय का लोप होने पर 'स्रजीयान्' रूप बनता है ।

त्वचिष्ठः—ईयविति—अतिशयेन त्वग्वान्—अधिक त्वचा वाला । यहाँ मतुप्

ईषद समाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ।५।३।६७।।

ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः । पचति कल्पम् ।

विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्तु ।५।३।६८।।

ईदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुवन्ताद्बहुच् वा स्यात् स च प्रागेव न तु परतः । ईषदूनः पटुः बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम्-यजतिकल्पम् ।

प्रागिवात्कः ।५।३।७०।।

'इवे प्रतिकृतौ' इत्यतः प्राक् काधिकारः ।

अव्यय सर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ।५।३।७१।।

कापवादः । तिङश्चेत्यनुवर्तते ।

प्रत्ययान्त त्वग्वत् शब्द से इष्ठन् और ईयसुन् आगे रहते मतुप् का लोप होने पर त्वचिष्ठः और त्वचीयान् रूप बनते है ।

ईषदिति—ईपदसमाप्ति – जब किसी पदार्थ में कुछ 'कमी बतानी हो, इस अर्थ में वर्तमान सुवन्त व तिङन्त से स्वार्थ में कल्पप् देश्य और देशीयर् प्रत्यय हों ।

विद्वत्कल्पः—ईषद् उनो विद्वान्—कुछ कम विद्वान् । इस अर्थ में विद्वस् शब्द से प्रकृत सूत्र द्वारा कल्पप् (कल्प प्रत्यय) "वसुस्रंसु" सूत्र से सकार को दकार और चर्त्वेन तकार होकर विद्वत्कल्पः रूप बनता है ।

इसी प्रकार देश्य और देशीयर् प्रत्यय करने पर विद्वद्देश्यः और विद्वद्देशीयः रूप बनते हैं ।

पचतिकल्पम्—ईषद् असम्पूर्णं पचति- कुछ कम पकाता है । इस अर्थ में पचति इस तिङन्त से कल्पप् प्रत्यय होकर 'पचतिकल्पम्' रूप बनता है ।

विभाषेति—ईषदसमाप्ति विशिष्ट अर्थ में वर्तमान सुवन्त से बहुच् प्रत्यय विकल्प से होता है और वह प्रकृति से पूर्व होता है, पर नहीं ।

बहुपटुः—ईषदूनः पटुः—कुछ कम चतुर अथवा चतुर जैसा, यहाँ पटु शब्द से प्रकृत सूत्र द्वारा पटु के पूर्व बहुच् (बहु) प्रत्यय होने पर 'बहुपटुः' रूप बनता है। इसी प्रकार कल्पप् प्रत्यय करने पर 'पटुकल्पः' रूप बनेगा ।

सुपः किमिति—सुवन्त से ही बहुच् प्रत्यय होता है अतः यजति इस तिङन्त से बहुच् प्रत्यय न होकर कल्पप् प्रत्यय होकर 'यजतिकल्पम्' बना है ।

प्रागिति—'इवे प्रतिकृतौ' सूत्र से पूर्व तक क प्रत्यय का अधिकार है ।

अव्ययेति – अव्यय और सर्वनामों से टि के पूर्व अकच् प्रत्यय हो ।

यह पूर्व सूत्र से प्राप्त क प्रत्यय का बाधक है ।

इस सूत्र में 'तिङश्च' सूत्र से तिङ् की अनुवृत्ति है ।

(वा) ओकार सकार भकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच् अन्यत्र सुवन्तस्य ।

अज्ञाते ।५।३।७३।।

कस्यायमश्वः—अश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वके । युष्माकाभिः । युवकयोः । त्वयका ।

कुत्सिते ।५।३।७४।।

कुत्सितोऽश्वः अश्वकः ।

वार्तिक-ओकारेति—ऐसे सुप् प्रत्ययों के परे रहते जिनमें आदि में ओकार सकार भकार हों सर्वनाम की टि से पूर्व अकच् प्रत्यय हो और अन्यत्र अर्थात् जहाँ इस प्रकार के सुप् प्रत्यय न हो वहाँ सुवन्त की टि से पूर्व अकच् हो ।

अज्ञाते—अज्ञात अर्थ में वर्तमान सुवन्त से क प्रत्यय हो ।

इन दोनों सूत्रों की एक वाक्यता से यह निष्कर्ष निकलता है कि अव्यय सर्वनाम और तिङन्त से अकच् प्रत्यय होगा तथा शेष सुवन्त से क प्रत्यय होगा ।

अश्वकः—कस्य अयम् अश्वः अज्ञात घोड़ा । यहाँ अश्व से 'अज्ञाते' सूत्र से क प्रत्यय होकर उक्त रूप बना ।

उच्चकैः—नीचकैः—अज्ञातम् उच्चैः नीचैः वा-अज्ञात ऊँचा और नीचा । यहाँ उच्चैस् और नीचैस् अव्ययों की 'टि' 'ऐस्' से पूर्व अकच् (अक) प्रत्यय होकर उक्त रूप बने हैं ।

सर्वकैः—अज्ञाताः सर्वे-यहाँ सर्वनाम सुबन्द पद सर्वे से टि के पूर्व अकच् होकर 'सर्वकैः' बनता है ।

युष्माकाभिः—अज्ञातैः युष्माभिः यहाँ सर्वनाम युष्मद् शब्द से भकारादि सुप् प्रत्यय भिस् परे रहते, उक्त वार्तिक के नियमानुसार सर्वनाम की टि अद् से पूर्व अकच् प्रत्यय होने पर युष्म्+अक+अद्+भिस् इस स्थिति में युष्मकद्+भिस् से युष्मदष्मदोरनादेशे' सूत्र से दकार को 'आ' युष्मका+भिस्=युष्मकाभिः रूप बना है ।

युवकयोः—अज्ञातयो र्युवयोः यहाँ ओकारादि ओस् प्रत्यय के परे सर्वनाम की टि अद् से पूर्व अकच्, होकर उक्त रूप बना है ।

त्वयका—अज्ञातेन त्वया यहाँ ओकार सकार भकारादि सुप न होने से सुवन्त त्वया की टि आ से पूर्व अकच् होकर 'त्वयका' रूप बनेगा ।

कुत्सिते इति—कुत्सा-निन्दा अर्थ में वर्तमान शब्दों से पूर्वोक्त रूप से क और अकच् प्रत्यय हों ।

कियत्तदोर्निधारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ।५।३।९२।।

अन्यः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः ।

वा बहूनां जाति परिप्रश्ने डतमच् ।५।४।९३।।

बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात् । जातिपरिप्रश्ने, इति प्रत्याख्यातमाकरे । कतमो भवतां कठः । यतमः । ततमः । वा ग्रहणमकजर्थम् । यकः । सकः ।

इति प्रागिवीयाः

अश्वकः—कुत्सितः अश्वः—निन्दित अश्व । अश्व शब्द से क प्रत्यय होकर अश्वकः बनता है ।

कियत्तदोरिति—दो में से एक के निर्धारण करने में किम्, यत और तद् शब्दों से डतरच् (अतर) प्रत्यय होता है ।

कतरः – कः अनयोः वैष्णवः—इन दोनों में कौन वैष्णव है । यहाँ किम् शब्द से डतरच् प्रत्यय, डित्वात् 'इम्' इस 'टि' का लोप होकर 'कतरः' इसी प्रकार अनयोः यः यतरः । तथा अनयोः सः-ततरः रूप बनते हैं ।

वा बहूनामिति—बहुतों में जब एक का निर्धारण किया जाय तो उक्त शब्दों से डतमच् (अतम) प्रत्यय होता है, विकल्प से ।

जातिपरिप्रश्ने इति—सूत्र में स्थित 'जातिपरिप्रश्ने' पद का भाष्यकार ने इसलिए खण्डन कर दिया है कि इस पद के रहने से केवल जाति विषयक निर्धारण में ही यह प्रत्यय हो सकेगा अन्यत्र नहीं जब कि प्रयोग अन्यत्र भी मिलते हैं अतः यह व्यर्थ है ।

कमतो भवतां कठः—आप लोगों में कठ शाखा का कौन है । कठ एक जाति है अतः जातिनिर्धारण में किम् शब्द से डतमच् प्रत्यय, डित्वात् टिलोप होकर 'कतमः' बनेगा । इसी प्रकार यः भवताम्—यतमः, स भवताम्—ततमः रूप भी बनते हैं ।

वा ग्रहणमिति—सूत्र में 'वा' (विकल्प) का ग्रहण इससिए किया गया है कि पक्ष में अकच् प्रत्यय भी हो सके ।

यकः-सकः—यः भवतां या एषाम् यः इनमें जो, स भवतां या तेषाम् स, उनमें वह । इस अर्थ में डतमच् के अभाव पक्ष में यद् और तद् शब्दों की 'टि' 'अद्' के पूर्व अकच्, य्+अद्+अक्, त्+अद्+अक्=यकद् तकद् से सु प्रत्यय होने पर 'त्यदादीनामः' से दकार को अ, अतोगुणे, पर रूप, यक+सु, तक सु इस स्थिति में सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'यकः' 'तदोः सः सावनन्त्योः' से तकार को सकार तथा सु के सकार को रुत्व विसर्ग होकर सकः बनता है ।

इति प्रागिवीय प्रत्ययाः

अथ स्वार्थिकाः

इवे प्रतिकृतौ ।५।३।९६।।

कन् स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिः—अश्वकः ।

(वा) सर्व प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् । अश्वकः ।

तत्प्रकृत वचने मयट् ।५।४।२१।।

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतम् । तस्य वचनं प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् । आद्ये प्रकृतमन्नम् अन्नमयम् । अपूपमयम् । द्वितीये-अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व ।

इवे इति—इव के अर्थ अर्थात् सदृश अर्थ में वर्तमान अर्थात् उपमान अर्थ वाले प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है, यदि प्रतिकृति-मूर्ति या चित्र उपमेय हो ।

तात्पर्य यह कि कन् प्रत्यय उपमान शब्द से होता है और कन् प्रत्यय के द्वारा उपमेय का अर्थ प्रकट होता रहता है । स्वभावतः प्रतिकृति उपमेय और वास्तविक वस्तु उपमान होती है, जब प्रतिकृति को असली पदार्थ के समान बताना हो तब यह प्रत्यय होता है ।

अश्वकः—अश्व इव, अश्व के समान, यहां उपमान अश्व से उपमेयार्थ प्रतिकृति को प्रकट करने के लिए प्रकृत सूत्र से कन् प्रत्यय होकर अश्वकः बना है ।

वार्तिक-सर्वेति - सब प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन् होता है ।

अश्वकः—अश्व एव अश्वकः अश्व ही अश्वक है दोनों के अर्थों में कोई अन्तर नहीं ।

तत्प्रकृतवचने इति – प्रचुरता-आधिक्य बोधन में तत्-प्रथमान्त शब्दों से मयट् प्रत्यय हो ।

प्राचुर्येणेति—सूत्र में प्रकृत शब्द का अर्थ है – प्रचुरता से प्रस्तुत किया गया

प्रज्ञादिभ्यश्च ।५।४।३८।।

अण् स्यात् । प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । दैवतः । बान्धवः ।

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ।५।४।४२।।

बहूनि ददाति बहुशः । अल्पशः ।

(वा) आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम् । आदौ-आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः ।

पदार्थ, वचन का अर्थ प्रतिपादन, वच् धातु से भाव और अधिकरण में ल्युट् प्रत्यय करने पर वचनम् रूप बनता है। अतः जब भाव में ल्युट् प्रत्यय माना जायेगा तब मयट् प्रत्यय के द्वारा बने हुए शब्द से भी उसी वस्तु की अधिकता प्रकट की जायेगी जिसके वाचक शब्द से मयट् प्रत्यय किया गया होगा। पर अधिकरण में ल्युट् प्रत्यय मानने पर उस वस्तु को प्रकट करेगा जिसमें अधिकता होगी।

जैसे आद्ये प्रथम अर्थ में अर्थात् भाव में ल्युट् मानने पर—

अन्नमयम्—प्रकृतम् अन्नम्—अन्न का आधिक्य। अन्न+मयट्=अन्नमयम्। प्रकृतः अपूपः—पूओं की अधिकता। अपूप+मयट्=अपूपमयम्।

द्वितीये-दूसरे अर्थ में अर्थात् अधिकरण में ल्युट् मानने पर—

अन्नमयो यज्ञः—प्रकृतमन्नं यस्मिन्-जिसमें अन्न की अधिकता हो ऐसा यज्ञ। अन्न+मयट्=अन्नमयः। इसी प्रकार प्रकृतः अपूपः यस्मिन् पर्वणि, जिस पर्व में पूओं का आधिक्य हो। अपूप+मयट्=अपूपमयम्।

प्रज्ञेति—प्रज्ञ आदि शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो।

प्राज्ञः—प्रज्ञ एव—प्रज्ञ+अण्, वृद्धि 'प्राज्ञः' प्रज्ञ और प्राज्ञ दोनों का एक ही अर्थ है। इसी प्रकार स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होकर **'प्राज्ञी'**, देवता एव—देवता+अण्, वृद्धि, आकारलोप **'दैवतः'** बन्धुरेव—बन्धु+अण् वृद्धि, 'ओर्गुणः' ओगुण, अवादेश होकर **बान्धवः** रूप बनता है।

बह्वल्पार्थात्—बहु और अल्प अर्थ वाले कारक शब्दों से स्वार्थ में शस् प्रत्यय हो विकल्प से।

बहुशः—बहूनि ददाति—बहुत देता है। बह्वर्थक बहु शब्द से शस् प्रत्यय सकार को रुत्व विसर्ग होकर बहुशः, अल्प से **अल्पशः** बनता है।

वार्तिक-आद्येति—'आदि' आदि शब्दों से तसि प्रत्यय कहना चाहिए।

(यह प्रत्यय सभी विभक्तियों से होता है)

आदितः—आदौ-आदि में, आदि+तसि्=आदितः, एवम् मध्य+तसि=मध्यतः, इसी प्रकार अन्ततः, पृष्ठतः, पार्श्वतः आदि रूप बनते हैं।

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ।५।४।५०॥

(वा) अभूत तद्भाव इति वक्तव्यम् ।

विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभि र्योगे ।

अस्य च्वौ ।७।४।३२॥

अवर्णस्य ईत्स्याच्च्वौ । वेर्लोपः । च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम् । अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति कृष्णीकरोति । ब्रह्मी भवति । गंगी स्यात् ।

आकृतिगणोऽयमिति—यह आद्यादि आकृति गण है अतः अन्य शब्दों से भी तसि प्रत्यय होता है ।

स्वरतः—स्वरेण-स्वर से । वर्णतः भी रूप बनते हैं ।

(शस् एवं तसि प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं ।)

कृभ्वस्तियोगे—विकार रूप को प्राप्त होने वाली प्रकृति के कारण में अर्थात् विकार के कारणभूत में वर्तमान विकार-वाचक सुबन्त से स्वार्थ में च्वि प्रत्यय विकल्प से हो कृ, भू और अस् धातु के योग रहते ।

वार्तिक-अभूतेति—अभूत के तद्भाव अर्थ में अर्थात् जो पहिले वैसा नहीं था उसके वैसा हो जाने अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है । अतः वार्तिक के साथ मिलाकर सम्पूर्ण सूत्र का अर्थ है—जो पहिले वैसा नहीं था उसके वैसा होने के अर्थ में, होने वाले (संपद्य कर्तरि) के वाचक शब्द से कृ, भू, अस् धातुओं के योग रहते च्वि प्रत्यय होता है ।

अस्येति—अवर्ण को ई होता है च्वि परे रहते ।

वेर्लोपः—च्वि प्रत्यय के वकार का 'वेरपृक्तस्य' सूत्र से लोप होता है, चकार की इत्संज्ञा और लोप तथा इकार उच्चारणार्थ है इस प्रकार च्वि प्रत्यय का सर्वापहार लोप हो जाता है ।

च्व्यन्तत्वादिति—च्वि प्रत्ययान्त शब्दों की अव्यय संज्ञा होती है ।

कृष्णी करोति—अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति, जो काला नहीं वह काला होता है या उसे करता है अथवा अकृष्णं कृष्णरूपेण सम्पद्यमानं करोति-जो अकृष्ण से कृष्ण हो रहा हो या उसे करने वाला हो । यहाँ कृष्ण शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में कृ धातु के योग में पूर्व सूत्र से च्वि प्रत्यय, उसका सर्वापहार लोप, प्रकृत सूत्र से, अकार को ईकार होकर उक्त रूप बनता है ।

ब्रह्मी भवति - अब्रह्म ब्रह्म भवति जो ब्रह्म नहीं था वह ब्रह्म होता है, यहाँ ब्रह्म से च्वि, लोप, नकार लोप, होकर प्रकृत सूत्र से ईकार करने पर उक्त रूप बनता है ।

(वा) अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्। दोषाभूतमहः। दिवाभूता रात्रिः।

विभाषा साति कार्त्स्न्ये ।५।४।५२॥

च्विविषये साति र्वा स्यात् साकल्ये।

सात्पदाद्योः । ८।३।१११॥

सस्य षत्वं न स्यात्। दधि सिञ्चति। कृत्स्नं शस्त्र मग्निः सम्पद्यते अग्निसाद्भवति।

च्वौ च ।७।४।२६॥

च्वौ परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात्। अग्नीभवति।

गंगी स्यात्—अगङ्गा गङ्गा सम्पद्यमाना स्याद् जो गंगा नहीं वह गङ्गा हो जाय। यहाँ अस् धातु के योग में गङ्गा शब्द से च्वि, उसका लोप, आकार को ईकार होकर उक्त रूप बनता है।

(वार्तिक) अव्ययस्येति—च्वि प्रत्यय परे रहते अव्यय के अवर्ण को ईकार न हो।

दोषाभूतम्-अहः—अदोषा दोषा सम्पद्यमानम् अभूत्-जो रात नहीं वह रात बन गया ऐसा दिन। यहाँ दोषा यह अव्यय है, भू के योग में च्वि प्रत्यय उसका लोप होकर 'दोषाभूतम्' बना यहाँ 'अस्य च्वौ' से प्राप्त ईकार आदेश का प्रकृत वार्तिक से निषेध होता है।

दिवाभूता रात्रिः—अदिवा दिवा सम्पद्यमाना अभूत जो दिन नहीं थी वह दिन हो गई ऐसी रात्रि। यह भी पूर्ववत् सिद्ध होता है।

विभाषेति—च्वि प्रत्यय के विषय में साति प्रत्यय हो विकल्प से साकल्य (सम्पूर्णता) अर्थ में।

सादिति—साति प्रत्यय के स तथा पदादि के सकार को षत्व नहीं होता।

अग्निसाद्भवति—कृत्स्नं शस्त्रम् अग्निः सम्पद्यते सम्पूर्ण शस्त्र (जलकर) अग्नि हो रहा है। यहां अग्नि शब्द से विभाषेति सूत्र द्वारा भू धातु के योग में साति प्रत्यय, अग्नि+साति+भवति इस स्थिति में 'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र से प्राप्त षत्व का निषेध प्रकृत सूत्र द्वारा होने पर 'अग्निसाद्भवति' रूप बनता है। साति में केवल 'सात्' शेष रहता है।

दधि सिञ्चति प्रयोग में पद के आदि में स्थित सिञ्चति में सकार का षत्व निषेध प्रकृत सूत्र द्वारा होता है।

च्वाविति—च्वि परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ हो।

अव्यक्तानुकरणाद् द्वयजवरार्धादनितौ डाच् ।५।४।५७।।

द्वयजेवावरं द्वयजवरं न्यूनं न तु ततो न्यूनमनेकाजिति यावत्तादृशमर्द्धमस्य तस्माड्डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभि योंगे ।

(वा) डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् । इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम् ।

(वा) नित्य माम्रे डिते डाचीति वक्तव्यम् ।

डाच्परं यदाम्रे डितं तस्मिन् परे पूर्वपरयो र्वर्णयोः पररूपं स्यात् । इति तकार पकारयोः पकारः—पट पटाकरोति । अव्यक्तानुकरणात्किम्—ईषत्करोति । द्वयजवरार्धात् किम्-श्रत्करोति । अवरेति किम्-खरट-खरटाकरोति । अनितौ किम् पटिति करोति ।

इति स्वार्थिकाः

इति तद्धित प्रकणरम्

अग्नी भवति—अनग्निः अग्निः भवति-जो अग्नि नहीं वह अग्नि होता है। यहाँ भू के योग में अग्नि शब्द से च्वि प्रत्यय, उसका लोप, प्रकृत सूत्र से इकार को दीर्घ होकर उक्त रूप बनता है।

अव्यक्तेति—जिसका अर्धभाग अनेकाच् अनेक स्वर वाला हो तथा जिससे परे इति शब्द न हो ऐसे अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणात्मक शब्द से कृ, भू और अस् के योग में डाच् प्रत्यय हो।

द्वयजेवावरमित्यादि—सूत्रस्थ द्वयजवरार्धात् पद का अर्थ है—द्वयच् एव अवरं न्यूनं यस्य, न तु ततो न्यूनम् अनेकाच् इति यावत् तादृशम् अर्धं यस्य तस्मात् अर्थात् केवल दो ही स्वर जिसमें कम हों, दो कम अर्थात् एकाच् नहीं, फलतः अनेकाच् जो शब्द उसका जो आधा शब्द स्वरूप उससे। यहाँ केवल द्वयच् कहने से अनेकाच् नहीं समझा जाता है अतएव अवर शब्द लगाया गया है। वस्तुतः अनेकाच् कहना ही अधिक स्पष्ट था। इस प्रकार अनेकाच् जिसका अर्ध भाग हो ऐसे अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणात्मक शब्द से डाच् प्रत्यय होता है।

ऐसी ध्वनि जिसमें अकारादि वर्ण स्पष्ट न हों उसे अव्यक्त ध्वनि कहा जाता है। जैसे किवाड़ बन्द करने या खोलने से उत्पन्न ध्वनि आदि, या हाथ पैर पटकने से उत्पन्न ध्वनि आदि।

वार्तिक डाचीति—डाच् प्रत्यय की विवक्षा में द्वित्व हो अर्थात् डाच् प्रत्यय करने से पूर्व विवक्षा मात्र में द्वित्व होता है, बाहुलक से।

वार्तिक-नित्यमिति—डाच् परक आम्रे डित शब्द से परे पूर्व और पर वर्णों के स्थान में पर रूप एकादेश होता है।

पटपटाकरोति— पटत् करोति—पटपट ऐसी ध्वनि करता है। यहाँ डाच् की विवक्षा होने पर 'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् वार्तिक से पटत् शब्द को द्वित्व होकर

पटत्-पटत् करोति बनता है, यहाँ पटत्-पटत् इस अवस्था में अर्ध भाग पटत् अनेकाच् भी है और यह अव्यक्त ध्वनि का अनुकरण भी है अत: कृ के योग में प्रकृत सूत्र द्वारा डाच् (आ) प्रत्यय, डित्वात् अत् इस 'टि' के लोप होने पर पटत्+पटा करोति इस स्थिति में नित्य मित्यादि वार्तिक से डाच् परक आम्रेडित 'पटा' के परे रहते पूर्व तकार और पकार को पर रूप अर्थात् पकार मात्र होने पर पटपटा करोति रूप बनता है।

(द्विरुक्त—दो बार कहे गए एक समान शब्दों में पर शब्द की आम्रेडित संज्ञा 'तस्यपरमाम्रेडितम्' इस सूत्र द्वारा होती है।)

अव्यक्तानुकरणात् किम्—अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण करने वाले शब्द से ही डाच् प्रत्यय होता है अत:—

ईषत् करोति यहाँ डाच् प्रत्यय न होगा क्योंकि ईषत् अव्यक्त ध्वनि का अनुकरण नहीं है।

द्वयजवरार्धात् किम्—जिसका अर्ध भाग द्वयच् से कम अर्थात् अनेकाच् हो उसी से डाच् प्रत्यय होता है अत:—'श्रत् करोति' यहाँ डाच् न होगा क्योंकि श्रत् में एक ही अच् है।

अवरेति किम्—द्वयच् के साथ अवर जोड़ने के कारण ही खरटखरटा करोति यहाँ डाच् प्रत्यय होता है यदि द्वयजवर न कहकर द्वयच् कहते तो यहाँ डाच् न होता।

यहाँ अर्ध भाग खरटत् दो अच् वाला नहीं अपितु अनेकाच् है, अवर शब्द के ग्रहण से ही अर्थ लब्ध होता है कि दो अच् से कम वाला न हो भले ही अधिक अच् वाला हो अर्थात् द्वयजवर शब्द एकाच् को रोकता है अनेकाच् को नहीं अत: यहाँ भी डाच् प्रत्यय होता है।

अनितौ किमिति—इति परे रहते डाच् नहीं होता अत: 'पटिति करोति' यहाँ डाच न होगा क्योंकि अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणात्मक पटत् शब्द के आगे इति है।

इति स्वार्थिकाः

इति तद्धित प्रकरणम्

अथ तिङन्त प्रकरणम्

तत्र

भ्वादिगणः

लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्। एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः।

लडिति—लट् आदि दश लकार हैं। इन सभी में 'ल' होने के कारण इन सबको 'लकार' इस नाम से अभिहित किया जाता है।

एषु इति—इन दश लकारों में पाँचवां 'लेट्' लकार है, इसका प्रयोग केवल वेद में ही देखा जाता है। अर्थात् इस लकार का प्रयोग लौकिक संस्कृत में नहीं होता।

शेष नौ लकारों में से प्रथम पाँच लकार अर्थात् लट्, लिट्, लृट्, लुट्, लोट्, टित् लकार कहलाते हैं, क्योंकि इन सब में 'ट्' की इत् संज्ञा और लोप हो जाता है, शेष चार लकार अर्थात् लङ्, लिङ्, लुङ् और लृङ्, ङित् लकार कहे जाते हैं, क्योंकि इनमें 'ङ्' की इत् संज्ञा और लोप होता है।

ये सभी लकार धातुओं के आगे ही प्रयुक्त होते हैं, और इन सभी लकारों के द्वारा धातु वाच्य क्रिया के काल, प्रकार आदि का ज्ञान होता है।

काल—साधारणतः 'वर्तमान, भूत और भविष्यत्' ये तीन काल होते हैं, कोई भी क्रिया जिस समय होती है, वह उसका काल कहा जाता है। फिर भी उक्त तीन प्रकार के कालों के अतिरिक्त अन्य भी इस काल के अवान्तर भेद होते हैं, जिनका बोध इन लकारों से होता है।

क्रिया के उस काल को **वर्तमान काल** कहते हैं, जिसमें क्रिया विशेष का प्रारम्भ और कार्य तो पाया जाता है, पर कार्य की समाप्ति नहीं, जैसे 'स पठति, ते गच्छन्ति, त्वं भाषसे' आदि, यहाँ इन वाक्यों में पढ़ना, जाना, बोलना, रूप कार्य का प्रारम्भ और होना तो पाया जाता है, पर इनकी समाप्ति नहीं देखी जाती, अतः ये

वर्तमान काल की क्रियायें हैं। इस वर्तमान काल के बोधनार्थ **लट् लकार** का प्रयोग किया जाता है।

जिस काल में प्रारब्ध कार्य की अथवा क्रिया की समाप्ति देखी जाय अर्थात् जिस काल में कोई क्रिया या कार्य आरम्भ होकर समाप्त हुआ भी ज्ञात हो, वह काल भूत काल कहलाता है। जैसे—रामः स्वगृहम् अगमत्-राम अपने घर गया'—इस वाक्य में 'जाना' क्रिया की समाप्ति देखी जाती है, अतः यह भूतकाल की क्रिया है। इस प्रकार के **सामान्य भूतकाल** के बोधनार्थ **लुङ् लकार** का प्रयोग होता है।

इस सामान्य भूतकाल के अतिरिक्त एक **अनद्यतन भूतकाल** भी होता है। अनद्यतन भूतकाल वह काल है, जो कि आज का न हो, अर्थात् आज के बारह बजे रात से पूर्व का समय अथवा आज प्रातः से पूर्व का समय। इस **अनद्यतन भूतकाल** के बोधनार्थ लङ् लकार का प्रयोग होता है, जैसे, देवदत्तः स्वगृहम् अगच्छत्।

इन सामान्य भूतकाल एवं अनद्यतन भूत के अतिरिक्त एक **परोक्ष अनद्यतन** भूतकाल भी होता है। परोक्ष अनद्यतन भूतकाल वह काल होता है जिस काल की क्रिया का प्रत्यक्ष होना न पाया जाय अर्थात् जिसे किसी ने न देखा हो, केवल सुना ही हो। सामान्य एवं अनद्यतन भूतकाल का तो प्रत्यक्ष होता है, किन्तु परोक्ष अनद्यतन भूतकाल का नहीं। जैसे, "रामोऽयोध्यायाः राजा बभूव" "राम अयोध्या के राजा हुए थे" यहाँ राम का, जो कि 'बभूव' क्रिया का कर्ता है, राजा होना, इस वाक्य के प्रयोक्ता को प्रत्यक्ष नहीं है, अर्थात् इस वाक्य के कहने वाले ने राम का राजा होना कभी नहीं देखा है, उसने केवल सुना है, अतः उसके लिए यह परोक्ष है और अनद्यतन भी। इस परोक्ष अनद्यतन भूतकाल के बोधनार्थ **लिट् लकार** का प्रयोग किया जाता है। यथा—रामो वनम् जगाम।"

क्रिया का वह काल जिसमें क्रिया का प्रारम्भ होना तो न पाया जाय, अपितु उसका आगे होना पाया जाय, **भविष्यत् काल** कहा जाता है; जैसे—देवदत्तः स्वगृहम् गमिष्यति "देवदत्त अपने घर जायेगा।" इस वाक्य में गमन-क्रिया का आगे होना ही पाया जाता है, न कि उसका अभी होना, अतः यह भविष्यत् काल है।

यह भविष्यत् काल भी दो प्रकार का होता है, **सामान्य भविष्यत् काल** और **अनद्यतन भविष्यत् काल**। सामान्य भविष्यत् काल में तो **लृट् लकार** का प्रयोग होता है, जैसे 'ते स्वगृहं यास्यन्ति' वे अपने घर जायेंगे। किन्तु अनद्यतन भविष्यत् काल में **लुट् लकार** का प्रयोग किया जाता है, जैसे—देवदत्तः स्वगृहं श्वो गन्ता-देवदत्त अपने घर कल जायेगा। आज बारह बजे रात से आने वाले कल के बारह बजे रात तक का समय अनद्यतन भविष्यत् काल कहा जायेगा। यदि क्रिया का अनद्यतन काल में होना प्रकट हो तो वहाँ इस काल के बोधनार्थ लुट् लकार का ही प्रयोग होना चाहिए, लृट् का नहीं। उक्त वाक्य में 'श्वः' शब्द के द्वारा क्रिया का अनद्यतन भविष्यत् काल में होना प्रकट हो रहा है अतएव वहाँ लुट् लकार का प्रयोग किया

है, लृट् लकार का नहीं। जिस वाक्य में अनद्यतन का उल्लेख स्पष्ट न हो, वहाँ लृट् लकार का प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार, लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लङ्, लुङ् ये छः लकार ही काल विशेष के बोधक हैं, शेष तीन लकार अर्थात् लोट्, लिङ् और लृङ्, किसी काल विशेष का बोध नहीं कराते, अपितु वे क्रिया के प्रकार को बतलाते हैं।

लोट् लकार का प्रयोग आगे बताये जाने वाले विधि (प्रेरणा) आदि छः अर्थों में, आज्ञा अर्थ में तथा आशीर्वाद आदि अर्थों में होता है।

लिङ् लकार का प्रयोग, विधि आदि छः-विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट संप्रश्न और प्रार्थना-अर्थों में तथा आशीर्वाद अर्थ में भी होता है। विधि आदि अर्थों के अतिरिक्त, जब लिङ् लकार का प्रयोग आशीर्वाद अर्थ में होता है, तब इसे "आशीर्लिङ्" लकार कहा जाता है। इस प्रकार लिङ् लकार द्विधा विभक्त हो जाता है, जब विधि आदि छः अर्थो में इसका प्रयोग होता है, तब इसे विधि लिङ् लकार और जब इसका प्रयोग आशीर्वाद अर्थ में होता है तब इसे आशीर्लिङ् लकार कहा जाता है। इन दोनों ही लिङ् लकारों के रूप एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

लृङ् लकार का प्रयोग हेतुहेतुमद्भाव आदि अर्थों में होता है।

इन लकारों के काल और प्रकार जानने के लिए निम्नलिखित तालिका द्रष्टव्य है :—

लकारों के काल और प्रकार

काल और प्रकार	लकार	उदाहरण
१. वर्तमान काल	लट्	रामः स्वपुस्तकम् पठति।
२. भूतकाल (१) समान्य भूत	लुङ्	देवदत्तः स्वगृहम् अगमत्।
(२) अनद्यतन भूत	लङ्	रामः स्वपुस्तकम् अपठत्।
(३) परोक्ष अनद्यतन भूत	लिट्	रामः अयोध्यायाः राजा बभूव।
३. सामान्य भविष्यत् काल	लृट्	ते स्व पुस्तकम् पठिष्यन्ति।
अनद्यतन भविष्यत्	लुट्	सः श्वो गृहम् गन्ता।
४. विध्यादि, आज्ञार्थ तथा आशीर्वादादि	लोट्	भवान् स्वगृहं गच्छतु।
५. विध्यादि अर्थों में	विधिलिङ्	अहरहः सन्ध्यामुपासीत।
६. आशीर्वादार्थ में	आशीर्लिङ्	ते मङ्गलानि भूयासुः
७. हेतु हेतुमद् भावार्थमें	लृङ्	सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्।

(१) लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ।२।४।६९।।

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्यु रकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ।

ल इति—ये लकार सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म में, तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में हों।

प्रत्येक धातु चाहे वह सकर्मक हो अथवा अकर्मक, दो अर्थ रखता है—**फल,** और व्यापार। व्यापार का जो आश्रय होता है वही कर्ता कहा जाता है, अर्थात् धातु वाच्य (धातु से प्रकट होने वाली) क्रिया (काम) का जो करने वाला होता हैं, वही कर्ता कहा जाता है, जैसे "देवदत्तः ओदनम् पचति" (देवदत्त चावल पकाता है) इस वाक्य में "पच्" धातु है जिसका अर्थ 'पकाना' है। धातु वाच्य क्रिया अर्थात् धातु से प्रकट होने वाला काम का आश्रय अर्थात् करने वाला—यहाँ 'देवदत्त' है, इस प्रकार यहाँ धातु वाच्य व्यापार (काम) का करने वाला होने के कारण 'देवदत्त' ही कर्ता है, क्योंकि 'पचति' इस क्रिया में 'बटलोई' को चूल्हे पर रखने, आग जलाने आदि से लेकर उतारने तक की जो कुछ भी क्रियायें (काम) की जाती हैं, उन सबका केवल एक मात्र 'कर्ता' 'देवदत्त' ही है। इस प्रकार पच् धातु से बोध्य (बतलाया जाने वाला) जो व्यापार (कार्य) उसका कर्ता होने से 'देवदत्त' ही इस वाक्य का कर्ता होता है।

इस प्रकार व्यापार और व्यापाराश्रय के अतिरिक्त धातु का दूसरा अर्थ होता है "फल"। जिस उद्देश्य की सिद्धि के लिए कोई क्रिया (काम) की जाती है, वह उद्देश्य प्राप्ति उस क्रिया का फल होता है और इस फल का जो आश्रय होता है वही फलाश्रय उस धातु का कर्म होता है, जैसे उक्त वाक्य 'देवदत्तः ओदनम् पचति' में 'पचति' क्रिया (काम) का उद्देश्य है 'चावलों का गलाना या पकाना' क्योंकि चावलों के गलने या पकने के ही उद्देश्य से यह क्रिया की जाती है, इस प्रकार 'गलना' ही उद्देश्य है, और इस गलने का आश्रय ओदन हैं क्योंकि ओदन ही गलते हैं, अतः गलने का आश्रय ओदन है, अतएव इस वाक्य में फलाश्रय ओदन हैं और वही कर्म है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि धातु वाच्य क्रिया या व्यापार का जो आश्रय होता है अर्थात् व्यापार जिसमें रहता है वह कर्ता होता है, और क्रिया का फल जिसमें रहता है वह फलाश्रय ही कर्म होता है। उक्त वाक्य में व्यापाराश्रय देवदत्त कर्ता है और फलाश्रय ओदन कर्म है, प्रत्येक क्रिया में कर्ता और कर्म का भेद इसी प्रकार देखा जा सकता है।

जिन धातुओं में फल और व्यापार भिन्न-भिन्न आश्रय में रहने वाले होते हैं वे सकर्मक कहे जाते हैं जैसे उक्त वाक्य में व्यापार का आश्रय देवदत्त था और फल का आश्रय ओदन था अतः व्यापार और फल के भिन्न-भिन्न आश्रयों में होने के कारण 'पच्' धातु सकर्मक था। सकर्मक का अर्थ है कर्म सहित धातु।

इन सकर्मक धातुओं से भिन्न वे धातु जिनका फलाश्रय और व्यापाराश्रय एक ही होता है अकर्मक कहे जाते हैं, अकर्मक धातुओं का व्यापार और फल एक ही आश्रय में रहता है, भिन्न-भिन्न आश्रयों में नहीं। जैसे—"देवदत्तः शेते" 'देवदत्त सोता है' इस वाक्य में 'शेते' शीङ् धातु का रूप है जिसका अर्थ है सोना। यहाँ धातु वाच्य व्यापार अर्थात् 'शी' धातु से प्रकट होने वाला व्यापार या काम है 'लेट जाना आदि' इस व्यापार (काम) का करने वाला देवदत्त है, अतः व्यापाराश्रय होने से देवदत्त कर्ता है। शयन क्रिया या सोने का उद्देश्य या फल है आराम या 'विश्राम' इस आराम का आश्रय भी देवदत्त है क्योंकि लेटने रूप काम से आराम देवदत्त को ही मिलता है। इस प्रकार इस वाक्य में व्यापार और फल दोनों का आश्रय केवल एक देवदत्त ही है, अतः यह धातु अकर्मक है, इसमें कर्ता से भिन्न अन्य कोई कर्म नहीं है।

इसी विधि से सभी धातुओं में सकर्मकत्व और अकर्मकत्व जाना जा सकता है।

इतना होने पर भी धातुगत सकर्मकत्व और अकर्मकत्व वस्तुतः विवक्षाधीन ही होता है किसी भी धातु का प्रयोग करने वाला व्यक्ति इसे जिस किसी भी रूप में, चाहे सकर्मक की तरह, अथवा चाहे अकर्मक की तरह प्रयोग में ला सकता है, अतएव वक्ता या प्रयोक्ता की स्वेच्छा के अनुसार कभी कोई धातु सकर्मक होते हुए भी अकर्मक की तरह प्रयुक्त होते हैं और कभी अकर्मक भी धातु सकर्मक की तरह प्रयुक्त होते हैं, अतः सकर्मकत्व और अकर्मकत्व को विवक्षाधीन ही समझना चाहिए।

यद्यपि विद्वानों ने निम्नलिखित कारिका में इन अर्थों वाली धातुओं को अकर्मक तथा शेष को सकर्मक लतलाया है, तथापि यह बड़ा स्थूल परिगणन है, क्योंकि इन अर्थों वाले धातुओं के अतिरिक्त अन्य धातु भी विवक्षानुसार अकर्मक हो सकते हैं, जैसा कि आगे सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। अस्तु निम्नलिखित अरिका में अकर्मक धातुओं का अति संक्षिप्त परिगणन ही समझना चाहिए—

"लज्जा सत्ता स्थिति जागरणं वृद्धिक्षय भय जीवितमरणम्।
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगणन्तमकर्मकमाहुः॥

निम्नलिखित अर्थों वाले धातु अकर्मक होते हैं—लज्जा (लज्जित होना) सत्ता (होना) स्थिति (ठहरना) जागरण (जागना) वृद्धि (बढ़ना) क्षय (घटना या नष्ट होना, भय (डरना) जीवित (जीना) मरणम् (मरना) शयन (सोना) क्रीड़ा (खेलना) रुचि (इच्छा करना) दीप्ति (प्रकाशित होना) आदि अर्थों वाले सभी धातु अकर्मक हैं, और शेष सकर्मक।

किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य धातु भी विवक्षाधीन अकर्मक तथा सकर्मक हो सकते हैं, जैसा कि निम्नलिखित कारिका में बतलाया गया है।

"धातोरर्थान्तरे वृत्ते धात्वर्थेनोपसंग्रहात्।
प्रसिद्धे रविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिकाः क्रियाः॥

अर्थात् सकर्मक भी धातु इन चार प्रकारों से अकर्मक बन जाते हैं—

धातु का अर्थान्तर में अर्थात् अपने से भिन्न अर्थ में प्रयोग होने से सकर्मक धातु भी अकर्मक बन जाता है, जैसे—'वह्' धातु (ले जाना या ढोना) अर्थ में स्वतः सकर्मक है "भारम् वहति गर्दभः (गदहा बोझ ढोता है) यहाँ 'भारम्' यह कर्म है, 'गर्दभः' यह कर्ता है, फलाश्रय और व्यापाराश्रय के भिन्न-भिन्न होने से यहाँ 'वह्' धातु अपने निजी अर्थ में सकर्मक है, पर जब प्रयोक्ता इसके अपने अर्थ से भिन्न अर्थ में अपनी इच्छानुसार इसका प्रयोग करेगा, तब यही अकर्मक बन जायेगा, जैसे—'नदी वहति' नदी बहती है, यहाँ इस वाक्य में यह धातु अकर्मक बन गया है, क्योंकि यहाँ फलाश्रय और व्यापाराश्रय केवल एक 'नदी' ही है।

इसी प्रकार जब धातु के अर्थ से उसका कर्म भी उसी में संगृहीत हो जाता है तब सकर्मक धातु भी अकर्मक बन जाता है, जैसे—स जीवति-वह जीता है, यहाँ जीव् धातु का अर्थ है, प्राणों को धारण करना, किन्तु यहाँ वह इस धातु का प्राण रूप कर्म जीव् धातु के अर्थ में ही संगृहीत कर लिया गया है, अतः सकर्मक होता हुआ भी यह यहाँ अकर्मक बन गया है।

इसी प्रकार कर्म के प्रसिद्ध होने से भी सकर्मक धातु अकर्मक बन जाता है, जैसे—'मेघो वर्षति' यहाँ 'वर्षति' इस क्रिया में 'जलम्' यह कर्म सर्व प्रसिद्ध है, अतः 'मेघो जलं वर्षति' न कहकर केवल 'वर्षति' का प्रयोग किया गया है और इस प्रकार इसे अकर्मक बना दिया गया है।

इसी प्रकार वक्ता यदि जानबूझ कर भी किसी धातु के कर्म का प्रयोग ही नहीं करता है, तब भी सकर्मक धातु अकर्मक बन जाता है, जैसे—"हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः" यहाँ 'संशृणुते' में यद्यपि श्रुधातु सकर्मक है तथापि इसमें वक्ता ने अपनी इच्छा से कर्म का प्रयोग नहीं किया है, अतः यह सकर्मक हो कर भी यहाँ अकर्मक बन गया है।

इसी प्रकार अन्यत्र भी सकर्मक और अकर्मक की व्यवस्था समझनी चाहिये। यद्यपि आचार्यों ने "फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वम् सकर्मकत्वम्" तथा "फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वम् अकर्मकत्वम्" आदि लिखकर सकर्मकत्व और अकर्मकत्व की व्यवस्था की हैं, तथापि सकर्मकत्व और अकर्मकत्व को सर्वत्र ही विवक्षाधीन समझना चाहिये। आगे निरूपणीय "लकारार्थप्रक्रिया" में अनेक धातु ऐसे बतलाये गये हैं जोकि विशेष-विशेष अर्थों में सकर्मक से अकर्मक, और अकर्मक से सकर्मक बन गये हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धातु वाच्य व्यापार का आश्रय तथा धातु व्यापार या क्रिया में जो स्वतन्त्रता पूर्वक विवक्षित हो वही कर्ता होता है।

धातु वाच्य फल का जो आश्रय तथा क्रिया का फल या उद्देश्य जिस पर समाप्त होता हो वही कर्म कहा जाता है।

धातु वाच्य व्यापार को ही भाव कहा जाता है अर्थात् धातु से प्रकट होने वाला जो व्यापार या कार्य वही भाव होता है।

सभी सकर्मक धातुओं से लकार कर्ता या कर्म में होते हैं और अकर्मक धातुओं से लकार कर्ता या भाव में होते हैं।

इस दृष्टि से तीन प्रकार के वाच्य सिद्ध होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। 'वाच्य' का अर्थ है, प्रकार अर्थात् जिससे यह जाना जाय कि लकार किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

कर्तृवाच्य—धातु का वह रूप है जिसमें लकार का अर्थ कर्ता हो अर्थात् लकार कर्त्रर्थ में प्रयुक्त हो, फलतः जब लकार कर्त्रर्थ में प्रयुक्त होगा तब क्रिया पद को कर्ता के अनुसार होना पड़ेगा, कर्ता के लिङ्ग वचन व पुरुष का प्रभाव क्रिया पर होगा, क्रिया को कर्ता के अनुसार अपने रूप को बदलना पड़ेगा।

कर्मवाच्य धातु का वह रूप है जिसमें लकार का अर्थ कर्म होता है अर्थात् लकार कर्म के अर्थ में प्रयुक्त होता है। फलतः जब लकार कर्म के अर्थ में प्रयुक्त होगा तब क्रिया पद को कर्म के अनुसार होना पड़ेगा, कर्म के लिङ्ग वचन और पुरुष का प्रभाव क्रिया पद पर होगा और क्रिया को कर्म के अनुसार अपना रूप परिवर्तित करना पड़ेगा।

भाववाच्य—धातु का वह रूप है जिसमें लकार का अर्थ भाव अर्थात् केवल धातु व्यापार मात्र होता है अर्थात् जहाँ लकार का प्रयोग न कर्ता में और न कर्म में अपितु केवल धातु व्यापार मात्रा में हो। फलतः धातु व्यापार मात्र में प्रयुक्त क्रिया पद पर कर्ता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, कर्म तो भाववाच्य में होता ही नहीं, क्योंकि अकर्मक धातुओं से ही भाववाक्य होता है। इस प्रकार भाववाच्य प्रयुक्त क्रिया पद पूर्ण स्वतन्त्र होता है, कर्ता के लिङ्ग वचन आदि का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

उक्त सूत्र बतलाता है कि जब लकार कर्त्रर्थ में आये तब कर्तृवाच्य, जब कर्म अर्थ में आये तब कर्मवाच्य और जब भाव=धातु वाच्य व्यापार मात्र में आये तब भाववाच्य होता है। सकर्मक धातुओं से लकार कर्ता और कर्म में, तथा अकर्मक धातुओं से कर्ता और भाव में होगा। इस प्रकार सकर्मक से-कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य तथा अकर्मक से कर्तृवाच्य और भाववाच्य होंगे।

इन त्रिविध वाच्यों के कारण संस्कृत वाक्य रचना में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। कर्तृवाच्य में, कर्त्रर्थ में लकार होने से कर्ता के अभिहित या उक्त हो जाने से, कर्ता में सदा प्रथमा विभक्ति और कर्म के अनभिहित या अनुक्त रहने से कर्म में सदा द्वितीय विभक्ति रहती है, क्रिया पद कर्ता के अनुसार विविध रूपों में परिवर्तित होता रहता है, पर कर्म का क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, यथा—रामः पुस्तकम् पठति बालकाः पुस्तकम् पठन्ति, तौ धर्मं कुरुतः, त्वम् स्वपाठं स्मरसि, युवाम् गृहम्-गच्छथः पत्रं लिखथ, अहं पत्रं लिखामि, आवाम् पुस्तकं पठावः, वयम् पठामः। यहाँ सर्वत्र

(२) वर्तमाने लट् ।३।२।१२३।।

वर्तमान क्रियावृत्ते र्धातो लट् स्यात् ।

अटाविती । उच्चारण सामर्थ्याल्लस्य नेत्वम् ।

'भू' सत्तायाम् । कर्तृ विवक्षायां 'भू' 'ल्' इति स्थिते—

क्रिया पद अपने कर्ता के अनुसार परिवर्तित होता गया है पर कर्म का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है ।

कर्म वाच्य में क्रिया पद कर्म के अनुसार होगा, जब कर्म अर्थ में लकार होगा तो कर्म के अभिहित होने से उसमें प्रथमा विभक्ति होगी और कर्ता में तृतीया, कर्म के लिङ्ग वचन और पुरुष का प्रभाव भी क्रिया पर पड़ेगा कर्ता पर नहीं । यथा— देवदत्तेन एको मृगो हन्यते, एभि र्व्याधैरेको मृगोऽहन्यत, ताभिरेकं पुस्तकं पठ्यते, तेनेमानि पुस्तकानि पठ्यन्ते, मया त्वम् दृश्यसे, ताभिरहं दृश्ये, तेनेमानि फलानि आनीयन्ते । इन वाक्यों में कर्मानुसार क्रिया पदों में परिवर्तन होता गया है—कर्ता का इन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ है ।

भाव वाच्य में क्रिया पद सर्वथा स्वतन्त्र रहता है अतः उस पर कर्ता का कोई प्रभाव नहीं होता, यथा—तेनात्र गम्यते, ताभिरत्र स्थीयते, अस्माभिः गम्यते, तेन विदुषा भूयते, श्रेयसि न केनापि तृप्तेन भूयते, अस्माभि : विद्वद्भिः भूयते । इन वाक्यों से स्पष्ट है कि भाववाच्य की क्रिया में पुरुषकृत एवं वचनकृत भेद नहीं होते, कर्ता में कोई भी पुरुष लिङ्ग वचन रह सकता है पर क्रिया में सदा प्रथम पुरुष एकवचन ही होगा ।

इन त्रिविध वाच्यों के रहते हुये भी कर्तृवाच्य का ही प्रयोग अधिक होता है, अतएव गणों एवं प्रक्रियाओं में धातुओं के प्रायः कर्तृवाच्य ही रूप दिये गये है । भाववाच्य और कर्मवाच्य के रूप प्रायः भाव कर्म प्रक्रिया में ही देखे जाते हैं ।

वर्तमान इति—वर्तमान कालिक क्रियावृत्ति धातु से लट् लकार हो । अर्थात् यदि धातु वाच्य क्रिया वर्तमान काल की हो तो उस धातु से लट्लकार का प्रयोग हो ।

अटाविताविति—लट् लकार के अकार और टकार की इत् संज्ञा है, फलतः 'तस्य लोपः' सूत्र से उन इत् संज्ञक 'अ' और ट् का लोप हो जाता है, केवल 'ल्' शेष रहता है ।

उच्चारणेति—उच्चारण सामर्थ्य से ल् की इत् संज्ञा नहीं होती; क्योंकि यदि अ और ट् की तरह ल् की भी इत् संज्ञा हो जाती और फलतः उसका भी लोप हो जाता तो कुछ भी शेष न रहता, और 'लट्' का उच्चारण करना ही व्यर्थ हो जाता अतः उच्चारण सामर्थ्यवश 'ल्' की इत्संज्ञा और लोप नहीं होता है ।

(३) तिप्तस् झि-सिप् थस् थमिब्वस्मस्, तातांझ-थाँसाथां ध्वमिड्वहिमहिङ् ।३।४।९९।।
एते अष्टादश लादेशाः स्युः ।

भू इति—'भू' यह इस गण का प्रथम धातु है, और इसका अर्थ 'सत्ता' अर्थात् 'होना' है 'भू' इस गण का प्रथम धातु है, अतएव इस गण का नाम भ्वादिगण है, इसी प्रकार अन्य गणों का नाम भी उस गण के प्रथम धातु के नाम से रखा गया है, जैसे अदादि तुदादि चुरादि आदि गण ।

कर्त्रिति—इस भू धातु से कर्ता की अर्थात् कर्तृवाच्य की विवक्षा में लट् लकार लाने पर 'भू ल्' इस स्थिति में । कर्तृविवक्षा का तात्पर्य यह है कि वक्ता या प्रयोक्ता यहाँ इस 'भू' धातु का प्रयोग कर्तृवाच्य में ही करना चाहता है, अन्यथा इस धातु के अकर्मक होने के कारण इसका प्रयोग भाववाच्य में भी हो सकता था, पर कर्ता की विवक्षा के अनुसार यहाँ लट् लकार का प्रयोग कर्तृवाच्य में ही किया गया है ।

तिप्तस्झिति—तिप्, तस्, झि । सिप्, थस्, थ । मिप्, बस्, मस् । त, आताम्, झ । थास्, आथाम्, ध्वम् । इट्, वहिङ् महिङ् । ये अठारह प्रत्यय लकारों के स्थान में होते हैं ।

सूत्र संख्या (३) में तिप् आदि अठारह प्रत्यय बतलाये गये हैं, ये प्रथम अक्षर 'ति' से लेकर महिङ् प्रत्यय के 'ङ्' तक हैं, अतएव इन सब प्रत्ययों को तिङ् प्रत्यय कहा जाता है, अर्थात् यह एक प्रकार का तिङ् प्रत्याहार है जो कि ति से लेकर महिङ् के 'ङ्' तब आने वाले १८ प्रत्ययों का बोधक है, ये प्रत्यय नव गणों के अन्तर्गत आने वाले सभी धातुओं के आगे प्रयुक्त होते हैं, अतएव इस प्रकरण का नाम 'तिङन्त' प्रकरण है, क्योंकि ये १८ प्रत्यय सभी धातुओं के बाद प्रयुक्त होते हैं । पहले नौ प्रत्ययों को छोड़कर यदि दशवें प्रत्यय 'त' से लेकर महिङ् के 'ङ्' तक लिया जाय तो यह 'तङ्' प्रत्याहार बनता है, इस तङ् प्रत्याहार के अन्तर्गत त से महिङ् तक नौ प्रत्यय आयेंगे । ये सभी प्रत्यय लकारों के ही स्थान में होते हैं, अतएव इन्हें 'लादेश' (ल् के स्थान में हुए आदेश) कहा जाता है ।

इन १८ प्रत्ययों के अतिरिक्त कानच् क्वसु शतृ, शानच्, चानश् आदि प्रत्यय भी लकारों के ही स्थान में होते हैं, अतएव इन्हें भी लादेश कहा जाता है । लिट् लकार के स्थान में कानच् और क्वसु प्रत्यय होते हैं तथा लट् और लृट् के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं । इनके क्रमशः सूत्र "लिटः कानज्वा, क्वसुश्च, लटः शतृशानचावप्रथमा समानाधिकरणे तथा लृटः सद्वा" हैं । "ताच्छील्यवयोवचनेषु चानश्' सूत्र से चानश् प्रत्यय भी होता है, इसका रूप शानच् के समान ही बनता है । लकारों के स्थान में इन सभी प्रत्ययों के होने के कारण इन्हें 'लादेश' कहा जाता

(४) लः परस्मैपदम् ।१।४।९९॥

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ।

(५) तङानावात्मनेपदम् ॥१।४।१००॥

तङ् प्रत्याहारः शानच् कानचौ चैतत् संज्ञाः स्युः ।

पूर्वसंज्ञापवादः ।

(६) अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ।१।३।१२॥

है। उक्त प्रत्ययों में तङ् प्रत्यय, शानच् और कानच् तो आत्मने पद में होते हैं, शेष तिङ् प्रत्यय तथा चानश् प्रत्यय परस्मैपद में होते है।

ल इति—लकारों के स्थान में जो भी आदेश हों उनकी परस्मैपद संज्ञा हो अर्थात् उन्हें परस्मैपद कहा जाय।

इस सूत्र से तो उक्त सभी लादेशों को परस्मैपद संज्ञा प्राप्त होती है क्योंकि ये सभी प्रत्यय लकारों के ही स्थान में होने से लादेश हैं, इस प्रकार आत्मने पद के लिए तो कहीं भी अवकाश न रह जायेगा अतः अग्रिम सूत्र निरवकाश होने से इस सूत्र का अपवाद हो जाता है।

तङानेति—तङ् प्रत्याहार (त से लेकर महिङ् तक) तथा शानच् और कानच् प्रत्ययों की आत्मने पद संज्ञा हो (शानच् कानच् शतृ क्वसु चानश् आदि कृदन्त प्रकरण में बताये जायेंगे)।

पूर्वसंज्ञेति—पूर्व संज्ञा अर्थात् सूत्र सं० ४ से की जाने वाली परस्मैपद संज्ञा का यह सूत्र अपवाद है "निरवकाशो विधि रपवादो भवति" इस वचन के अनुसार यदि सर्वत्र लादेशों की परस्मैपद संज्ञा ही हो जायेगी, तो इस सूत्र संख्या ५ से की जाने वाली आत्मने पद संज्ञा को कहीं भी अवकाश न रह जायेगा और उसका विधान व्यर्थ हो जायेगा, अतः निरवकाश होने से आत्मने पद संज्ञा पूर्व संज्ञा (परस्मैपद संज्ञा) की अपवाद होकर अपने क्षेत्र में परस्मैपद संज्ञा को रोक देगी। फलतः प्रथम नौ प्रत्ययों—तिप् से लेकर मस् तक का प्रयोग तो परस्मैपद धातुओं से होगा, और शेष नौ प्रत्ययों त से महिङ् तक का प्रयोग आत्मने पद धातुओं से होगा, इसके अतिरिक्त शानच् कानच् आदि प्रत्यय भी आत्मनेपदी धातुओं से ही होंगे।

अनुदात्तङित इति—अनुदात्तेत् अर्थात् वे धातु जितना अनुदात्त संज्ञक स्वर इत्संज्ञक हो, तथा ङित् अर्थात् वे धातु जिनके ङ् की इत् संज्ञा हुई हो, इन दोनों ही प्रकार के धातुओं से आत्मनेपद हो अर्थात् इन धातुओं से तङ् आदि नौ (त से महिङ् तक) प्रत्यय हों—

जैसे 'एध' वृद्धौ धातु का धकारोत्तरवर्ती अकार स्वर इत् संज्ञक है, तथा 'शीङ्' धातु का ङ् भी इत् संज्ञक है अतः इन धातुओं के क्रमशः अनुदात्तेत् और ङित् होने से इन में आत्मनेपद के त आदि नौ प्रत्यय ही लादेश होते हैं।

(७) स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ।१।३।७२।।

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्, कर्तृगामिनि क्रियाफले ।

(८) शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् ।१।३।७८।।

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ।

(९) तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१।।

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमाद् एतत्संज्ञाः स्युः ।

अनुदात्तेत् तथा ङित् धातुओं का ज्ञान धातु पाठ से होता है। वहाँ सभी धातु सस्वर एवं सानुबन्ध लिखे गये हैं।

स्वरितेति—स्वरितेत् अर्थात् वे धातु जिनका स्वरित संज्ञक स्वर इत् संज्ञक हो तथा ञित् अर्थात् वे धातु जिनका 'ञ्' इत् संज्ञक हो, इन दोनों प्रकार की धातुओं से आत्मनेपद हो, यदि क्रियाजन्य फल कर्ता को प्राप्त होता हो, अन्यथा नहीं, इससे स्पष्ट होता है कि यदि क्रिया जन्य फल स्वयं कर्ता को न मिलकर अन्य किसी को मिलता होगा तो उससे परस्मैपद ही होगा आत्मनेपद नहीं।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि स्वरितेत् और ञित् धातु उभय पद वाले हैं अर्थात् इनसे क्रियाजन्य फल के कर्तृगामी होने पर आत्मनेपद और क्रियाजन्य फल के परगामी होने पर परस्मैपद होता है, अतः ञित् और स्वरितेत् धातु उभयपदी हैं।

जैसे 'यज' धातु का अन्तिम अकार स्वरित है और वह इत्संज्ञक भी है, अतः क्रियाजन्य फल के कर्तृगामी होने पर इससे आत्मनेपद के प्रत्यय आयेंगे, इसी प्रकार श्रिञ् धातु ञित् है क्योंकि इसका ञ् इत्संज्ञक है, अतः इससे भी क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर आत्मनेपद के ही प्रत्यय आयेंगे। यह सूत्र क्रिया फल के कर्तृगामी होने पर स्वरितेत् और ञित् धातुओं से केवल आत्मनेपद का विधान करता है, किन्तु जब क्रियाजन्य फल परगामी होगा तब इन्हीं धातुओं से 'आगे आने वाले शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र से परस्मैपद होगा।

क्रिया का मुख्य उद्देश्य अर्थात् जिसकी सिद्धि के लिए क्रिया की जाती है, वही क्रिया का फल होता है, यह फल क्रिया करने वाले कर्ता को ही मिलता है यदि कर्ता स्वयं के लिए क्रिया करता है, यदि वह कोई क्रिया दूसरे के निमित्त करता है तो भले ही वह उस क्रिया को करे पर उसका फल उसे न मिलकर, जिसके लिए उसने उस क्रिया को किया है, उसे ही मिलेगा अर्थात् क्रिया का फल ऐसी दशा में परगामी होगा। जैसे एक पुरोहित जब स्वयं संध्योपासन करता है तब इस संध्योपासन रूप क्रिया से होने वाला पाप निवारण रूप फल उसी पुरोहित को मिलता है अतः इस स्थिति में क्रिया फल कर्तृगामी होगा। किन्तु जब वही पुरोहित किसी अपने यजमान के लिए उसे पुत्र प्राप्ति आदि के निमित्त यज्ञ करता है तब पुरोहित की उस यज्ञ क्रिया का फल यजमान को मिलता है इस प्रकार यह क्रिया फल परगामी हो जाता है। यद्यपि यज्ञ कराने के बदले पुरोहित को दक्षिणा मिलती है

(१०) तान्येक वचन द्विवचन बहुवचनान्येकशः ।१।४।१०२।।

लब्ध प्रथमादि संज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येक मेकवचनादि संज्ञानि स्युः ।

पर दक्षिणा तो पारिश्रमिक मात्र है, क्रिया का मुख्य फल नहीं, उसका मुख्य फल तो पुत्र प्राप्ति आदि है जो यजमान को ही मिलेगा अतः फल परगामी होगा और फल के परगामी होने पर स्वरितेत् एवं ञित् धातुओं से परस्मैपद के तिप् आदि नौ प्रत्यय ही होंगे।

शेषादिति—आत्मनेपद के निमित्त से रहित धातु से कर्त्रर्थ अर्थात् कर्तृवाच्य में परस्मैपद हो।

आत्मनेपद के निम्नलिखित चार निमित्त (हेतु) हैं जिनका कि विधान सूत्र सं० ३ एवं ७ मे किया गया है—

(१) धातु का अनुदात्तेत् होना। (२) धातु का ङित् होना। (३) धातु का स्वरितेत् होना और क्रियाफल का कर्तृगामी होना। (४) धातु का ञित् होना और क्रिया फल का कर्तृगामी होना।

इन चार निमित्तों से जो धातु रहित होगा उससे परस्मै पद ही होगा, आत्मने पद नहीं।

उक्त चार निमित्तों वाले धातुओं से तो आत्मनेपद होता ही है किन्तु कर्म वाच्य तथा भाववाच्य में प्रयुक्त धातु से भी आत्मने पद ही होता है। कर्तृवाच्य में अवश्य आत्मने पद और परस्मैपद दोनों ही आते हैं। उक्त चार निमित्तों वाले धातुओं से आत्मनेपद और शेष धातुओं से परस्मैपद होता है, जैसे—'भू' धातु उक्त चारों निमित्तों से रहित है अतः कर्तृवाच्य में इससे परस्मैपद होगा किन्तु भाववाच्य में इससे भी आत्मनेपद ही होगा।

तिङ इति—तिङ् (तिप् से लेकर महिङ् तक) के दोनों पदों अर्थात् परस्मैपद और आत्मनेपद के जो तीन-तीन त्रिक (तीन-तीन के तीन समूह) हैं उनकी क्रम से प्रथम मध्यम और उत्तम संज्ञा हो।

परस्मैपद और आत्मनेपद इन दोनों ही पदों के पृथक्-पृथक् नौ-नौ प्रत्यय हैं और इनके तीन-तीन त्रिक हैं।

प्रत्येक त्रिक में तीन-तीन प्रत्यय हैं—यथा—

परस्मैपद

त्रिक १—तिप्, तस्, झि। त्रिक २—सिप्, थस्, थ। त्रिक ३—मिप्, वस्, मस्।

आत्मनेपद

त्रिक १—त, आताम्, झ। त्रिक २—थास्, आथाम्, ध्वम्। त्रिक ३—इट्, वहि, महिङ्।

(११) युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ।१।४।१०५।।

तिङ् वाच्य कारक वाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः ।

(१२) अस्मद्युत्तमः ।१।४।१०७।।

तथा भूतेऽस्मद्युत्तमः ।

(१३) शेषे प्रथमः ।१।४।१०८।।

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् ।

इस प्रकार इन दोनों ही पदों के पृथक्-पृथक् तीन तीन त्रिक हैं, प्रत्येक के तीन-तीन त्रिकों की क्रमशः प्रथम मध्यम और उत्तम संज्ञा है, अर्थात्, प्रथम त्रिक प्रथम (पुरुष) द्वितीय त्रिक मध्यम (पुरुष) और तृतीय त्रिक उत्तम (पुरुष) कहलायेगा।

तानीति—जिनकी उक्त सूत्र सं० ९ से प्रथम मध्यम और उत्तम संज्ञा की जा चुकी है, ऐसे तिङ् के इन त्रिकों के तीन-तीन प्रत्ययों की क्रम से एक वचन द्विवचन और बहुवचन संज्ञा हो।

ऊपर बतलाये गये दोनों पदों के प्रत्येक त्रिक में तीन तीन प्रत्यय हैं जिनको क्रम से एक वचन, द्विवचन और बहुवचन कहा जाता है—यथा—

परस्मैपद				आत्मनेपद		
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम०	तिप्	तस्	झि	त	आताम्	झ
मध्यम०	सिप्	थस्	थ	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम०	मिप्	वस्	मस्	इट्	वहि	महिङ्

किस वचन का विधान कहाँ किया जाना चाहिए, इस सम्बन्ध में सुबन्त प्रकरण में निर्देश किया जा चुका है। अर्थात् एकत्व की विवक्षा में एकवचन, द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन और बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन होता है, वही नियम यहाँ भी समझना चाहिए। वचन विधान विवक्षा और स्थिति के आधीन है।

युष्मदीति—तिङ् का वाच्य जो कारक (कर्ता अथवा कर्म) उसी का वाचक यदि युष्मद् शब्द भी हो तो उसका, चाहे प्रयोग हुआ हो या न हुआ हो लकार के स्थान में मध्यम संज्ञक प्रत्यय होंगे।

मध्यम संज्ञक प्रत्यय—सिप् थस् थ, थास्, आथाम्, ध्वम् हैं।

सूत्र में प्रयुक्त "समानाधिकरणे" का ही फलितार्थ—"तिङ् वाच्य कारक वाचिनि युष्मदि उपपदे" है। क्योंकि लकार के स्थान में तिङ् होता है और लकार कर्ता या कर्म कारक में होते हैं, अतः तिङ् का अर्थ भी कारक है। यदि इसी कारक को युष्मद् शब्द भी कहता हो, तो उससे मध्यम संज्ञक प्रत्यय ही होंगे। युष्मद् शब्द का उस तिङ् के साथ प्रयोग करना अनिवार्य नहीं है, अतः चाहे युष्मद् का प्रयोग हो

(१४) तिङ्शित् सार्वधातुकम् ।३।४।११३॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः ।

(१५) कर्तरि शप् ।३।१।८८॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् ।

अथवा न हो, मध्यम संज्ञक प्रत्यय ही होंगे। शब्द सदा अर्थ में रहता है अतएव शब्द अधिकरण अर्थ होता है यदि कोई दूसरा भी शब्द उसी अर्थ को बतलाता है तो वे दोनों शब्द समानाधिकरण कहे जायेंगे। प्रकृत में तिङ् का अर्थ कारक है और उसी कारक को युष्मद् शब्द भी यदि बतलाता है तो वह समानाधिकरण होगा। सूत्र में स्थानिन; का अर्थ है 'अप्रयुज्यमान' क्योंकि आदेश होने पर स्थानी का लोप हो जाता है, "अपि" से प्रयुज्यमान अर्थ लिया गया है। इस प्रकार सूत्र का उक्त अर्थ फलित होता है।

अस्मदीति—तिङ् का वाच्य जो कारक उसी का वाचक यदि अस्मद् शब्द हो तो चाहे उसका प्रयोग हुआ हो अथवा न हुआ हो, लकार के स्थान में उत्तम संज्ञक तिङ् प्रत्यय अर्थात् मिप्, वस् मस्। इट्, वहि, महिङ् प्रत्यय हों।

शेष इति—मध्यम और उत्तम के विषय को छोड़ कर शेष स्थलों में लकार के स्थान में प्रथम संज्ञक प्रत्यय अर्थात् 'तिप् तस्, झि। त, आताम्, झ। हों।

सारांश यह कि जहाँ युष्मद् शब्द का प्रयोग हो अथवा उसका विषय हो वहाँ मध्यम संज्ञक और जहाँ अस्मद् का प्रयोग हो अथवा उसका विषय हो वहाँ उत्तम संज्ञक और इन दोनों के विषय से शेष बचे स्थलों में प्रथम संज्ञक प्रत्यय हों। इससे स्पष्ट है कि प्रथम संज्ञक प्रत्ययों का क्षेत्र इन दोनों से अधिक व्यापक है।

यहाँ उक्त सामान्य सूत्रों द्वारा पद व्यवस्था, लकार एवं तिङ् प्रत्ययों का निर्देश कर अब क्रम से लट् आदि लकारों के विविध रूपों की सिद्धि का प्रकार बतलाया जा रहा है:—

यह बतलाया जा चुका है कि 'भू' धातु से जो कि सत्तार्थक है, एवं आत्मने पद के उक्त निमित्तों से रहित है, प्रथम लकार होने के कारण वर्तमान काल की विवक्षा में 'वर्तमाने लट्' सूत्र से लट् लकार होगा, और कर्तृवाच्य की विवक्षा में भू+लट् इस स्थिति में अकार और टकार की इत्संज्ञा एवं लोप हो जाने पर भू+ल् यह स्थिति होगी, ल् की भी इत् संज्ञा और उसका लोप इसलिए नहीं होता कि ल् का का उच्चारण करना ही व्यर्थ न हो जाय। इस प्रकार भू+ल् इस स्थिति में, युष्मद् और अस्मद् शब्दों के विषय न होने के कारण, प्रथम पुरुष की विवक्षा में और एकत्व की विवक्षा में यहाँ तिप् प्रत्यय लादेश होगा अर्थात् लकार के स्थान में प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में वर्तमान काल में तिप् प्रत्यय होगा। तब 'भु+तिप्' ऐसी स्थिति होने पर, 'हलन्त्यम्' सूत्र से 'प्' की इत् संज्ञा और 'तस्य लोपः' सूत्र से उसका लोप होगा, इस प्रकार 'भू+ति' इस स्थिति में—

(१६) सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।७।३।८४।।

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः ।

अवादेशः । भवति, भवतः ।

तिङ् इति—'धातोः ।३।१।६१।।' इस सूत्र के अधिकार में कहे गये जो तिङ् और शित् (जिनमें श् की इत् संज्ञा हुई हो) प्रत्यय, उनकी सार्वधातुक संज्ञा हो।

इस सूत्र से धात्वधिकारोक्त तिङ्, उक्त स्थिति में 'ति' की सार्वधातुक संज्ञा होगी।

प्रत्येक संज्ञा विधान का कोई न कोई फल होता है, अतः अग्रिम सूत्र द्वारा उसके फल का निर्देश किया जा रहा है—

कर्तरीति—कर्त्रर्थक सार्वधातुक संज्ञक प्रत्यय के आगे रहते धातु से 'शप्' प्रत्यय हो।

प्रकृत उदाहरण में सार्वधातुक संज्ञक प्रत्यय 'ति' आगे है अतः भू धातु से 'शप्' प्रत्यय होगा। फलतः 'भू+शप्+ति' इस स्थिति में शकार एवं पकार की इत् संज्ञा और लोप होने पर 'भू+अ+ति' यह स्थिति होगी। 'शप्' 'विकरण' है, अतः वह धातु और प्रत्यय के बीच में होगा।

सार्वधातुकेति—सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्ययों के आगे रहने पर इगन्त अंग को गुण होता है।

'आर्धधातुक प्रत्ययों को आगे बतलाया जायेगा। प्रकृत सूत्र दोनों ही प्रकार के प्रत्ययों के आगे रहने पर गुण करता है, यह गुण, 'अलोऽन्त्यस्य परिभाषा के बल से अंग के अन्तिम इक् वर्ण को होता है, प्रस्तुत उदाहरण में 'भू' इस अंग का अन्तिम इक् वर्ण 'ऊ' है अतः इस 'ऊ' को सार्वधातुक प्रत्यय 'ति' के आगे रहते 'ओ' गुण होगा और 'ओ' को 'अव्' आदेश होकर 'भवति' यह रूप बनेगा।

"यस्मात् प्रत्यय विधि स्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्" सूत्र अंग संज्ञा करने वाला है, जो प्रत्यय जिस शब्द से किया जाता है वह जिस समुदाय के आदि में होता है, उस शब्द स्वरूप की उस प्रत्यय परे रहते अंग संज्ञा होती है। जैसे—'भवामि' इस उदाहरण में भू धातु से उत्तम पुरुष एकवचन में मिप् प्रत्यय तथा शप् (अ) प्रत्यय करने पर 'भू+अ+मि' यह स्थिति होती है, यहाँ मिप् प्रत्यय 'भू' धातु से होता है इसके आदि में 'भू+अ' यह समुदाय है, अतः मिप् प्रत्यय परे 'ऊ' को गुणादेश करके 'भव' यह अदन्त अंग बन जाता है। प्रकृत उदाहरण में 'भू+अ+ति' इस स्थिति में भू धातु से शप् प्रत्यय हुआ है अतः 'भू' को भी शप् प्रत्यय परे रहते अंग संज्ञा है और फलतः 'ऊ' इगन्त अंग है अतः 'ऊ' को गुण होता है, शप् का अवशिष्ट 'अ' स्पष्ट है अतः अवादेश होकर भवति रूप बनता है।

(१७) झोऽन्तः ।७।१।३॥

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः ।

'अतो गुणे'—भवन्ति ।

भवसि, भवथः, भवथ ।

(१८) अतो दीर्घो यञि ।७।३।१०१॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके ।

भवामि, भवावः, भवामः ।

स भवति, तौ भवतः, ते भवन्ति । त्वं भवसि, युवाम् भवथः, यूयं भवथ । अहं भवामि, आवां भवावः, वयं भवामः ।

भू धातु से प्रथम पुरुष द्विवचन की विवक्षा में लट् के स्थान में तस् प्रत्यय होगा, धातु से शप् (अ) होकर 'भू+अ+तस्' इस स्थिति में 'अ' को पूर्ववत् गुण अवादेश, और तस् के सकार को रुत्व तथा रु को विसर्ग होकर **भवतः** रूप बनेगा ।

भू धातु से बहुत्व की विवक्षा में प्रथम पुरुष में लट् के स्थान में 'झि' प्रत्यय होगा, शप् (अ) प्रत्यय करने पर 'भू+अ+झि' इस स्थिति में—

झोऽन्तः—प्रत्यय के अवयव झ् को अन्त् आदेश हो । उक्त स्थिति में प्रकृत सूत्र से झ् को अन्त् आदेश होकर 'भू+अ+अन्ति' इस स्थिति में, पूर्ववत् गुण और अवादेश करके 'भव+अन्ति' इस स्थिति में शप् के अकार और अन्ति के अकार (अ+अ) को (अतोगुणे) सूत्र से पर रूप एकादेश होने पर **भवन्ति** यह रूप होगा ।

मध्यम पुरुष एकवचन में भू धातु से सिप् (सि) प्रत्यय, शप् (अ) गुण अवादेश होकर **भवसि**, मध्यम पुरुष द्विवचन में लट् के स्थान में थस् प्रत्यय, शप् (अ) गुण अवादेश और प्रत्यय के सकार को रुत्व विसर्ग होकर **भवथः**, मध्यम पुरुष बहुवचन में 'थ' प्रत्यय, शप्, गुण अवादेश होकर **भवथ** रूप होगा ।

उत्तम पुरुष एकवचन की विवक्षा में भू धातु से लट्, लट् के स्थान में मिप् (मि) प्रत्यय, शप् (अ) प्रत्यय, गुण अवादेश होकर 'भवमि' इस स्थिति में—

अत इति— यञादि सार्वधातुक प्रत्यय आगे रहते अदन्त अंग को दीर्घ हो ।

उक्त स्थिति में अदन्त अंग 'भव' का अन्तिम वर्ण अकार है और उसके आगे 'मि' यह यञादि सार्वधातुक प्रत्यय भी है, अतः प्रकृत सूत्र से अकार को दीर्घ होकर **भवामि** रूप बनेगा ।

उत्तम पुरुष द्विवचन में भू धातु से लट्, उसके स्थान में वस् प्रत्यय, शप् गुण अवादेश और सूत्र सं० १८ से दीर्घ होकर, सकार को रुत्व विसर्ग होने पर **भवावः**, रूप होगा ।

उत्तम पुरुष बहुवचन में मस् प्रत्यय, शप्, गुण, अवादेश, पूर्ववत् दीर्घ, सकार को रुत्व विसर्ग होकर **भवामः** रूप होगा ।

(१९) परोक्षे लिट् ।३।२।११५।।

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्ते र्धातोर्लिट् स्यात् । लस्य तिबादयः ।

(२०) परस्मैपदानां णलतुसुस् थलथुस, णल्वमाः ।३।४।८२।।

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः ।

भू+अ इति स्थितिः—

(२१) भुवो वुग् लुङ् लिटोः ।६।४।८८।।

भुवो वुगागमः स्यात् लुङ् लिटोरचि ।

भू धातु के लट् लकार के सम्पूर्ण रूप इस प्रकार होंगे :—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

लट् लकार के इन विविध रूपों को इनके अपने-अपने कर्तृवाचक पदों के साथ इस प्रकार दिखाया जाता है—स भवति (वह होता है) तो भवतः (वे दोनों होते हैं) ते भवन्ति (वे सब होते हैं) त्वं भवसि (तुम होते हो) युवां भवथः (तुम दोनों होते हो) यूयं भवथ (तुम सब होते हो) अहं भवामि (मैं होता हूँ) आवां भवावः (हम दोनों होते हैं) वयं भवामः (हम सब होते हैं)।

इसी प्रकार अन्य लकारों के रूपों के साथ भी इन्हीं कर्तृवाचक पदों को समझना चाहिए।

परोक्ष इति—भूत अनद्यतन परोक्ष क्रिया अर्थ में वर्तमान धातु से 'लिट्' लकार होता है।

लस्येति—लिट् लकार के स्थान में पूर्ववत् तिव् आदि प्रत्ययों का विवक्षानुसार आदेश होता है।

परस्मैपदानामिति—लिट् के स्थान में आदिष्ट हुए परस्मैपद के तिप् आदि नौ आदेशों के स्थान में पुनः णल् आदि सूत्रोक्त नौ आदेश होते हैं। अर्थात् तिप् के स्थान में णल्, तस् के स्थान में अतुस्, झि के स्थान में उस्, सिप् के स्थान में थल्, थस् के स्थान में अथुस्, थ के स्थान में अ, मिप् के स्थान में णल्, वस् के स्थान में व, और मस् के स्थान में म आदेश होते हैं।

भूतानद्यतन परोक्ष क्रियार्थ की विवक्षा में भू धातु से लिट्-लकार, प्रथम-पुरुष एक वचन की विवक्षा में लिट् के स्थान में तिप् आदेश करने पर सूत्र सं० २० से तिप् के स्थान में णल् आदेश, ण् एवं ल् की इत् संज्ञा तथा लोप होने पर 'भू अ' इस स्थिति में—

भुव इति—लुङ् और लिट् लकार सम्बन्धी स्वर के आगे रहने पर भू धातु को वुक् का आगम हो।

(२२) लिटि धातोरनभ्यासस्य ।३।१।८॥

लिटि परे अनभ्यास धात्वयव स्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः आदि भूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य ।

भूव् भूव् अ इति स्थिते ।

(२३) पूर्वोऽभ्यासः ।३।१।४॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ।

(२४) हलादिः शेषः ।७।४।३०॥

अभ्यास स्यादि र्हल् शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते ।

इति वलोपे ।

वुक् में 'उ' और क् की इत्संज्ञा होकर उनका लोप हो जाने से केवल 'व्' शेष रहता है, अतएव कित् होने से यह आगम भू के आगे होगा ।

उक्त स्थिति में लिट् सम्बन्धी णल् का 'अ' स्वर आगे है, अतः प्रस्तुत सूत्र से वुक् का आगम होकर 'भूव् अ' इस स्थिति में—

लिटीति—लिट् लकार के आगे रहते, अनभ्यास (द्वित्व से रहित) धातु के अवयव प्रथम एकाच् (एक स्वर वाले भाग) को द्वित्व हो । यदि धातु स्वरादि हो तो आदि भूत स्वर से परे द्वितीय एकाच् को द्वित्व हो ।

इस सूत्र का स्पष्ट अर्थ यह है कि यदि हलादि धातु एकाच् है तो इसके एकाच् को व्यपदेशिवद्भाव से प्रथम एकाच् मानकर द्वित्व होगा, जैसे 'जि' धातु हलादि एकाच् है, अतः व्यपदेशिवद्भाव से 'जि' इस अकेले एकाच् को प्रथम एकाच् मानकर 'जि' को द्वित्व होगा । 'चकास्' धातु हलादि अनेकाच् है अतः इसके प्रथम एकाच् अर्थात् 'च' को द्वित्व होगा ।

यदि स्वरादि धातु एकाच् होगा तो उसके व्यपदेशिवद्भाव से प्रथम एकाच् को मान कर उसके एकाच् को द्वित्व होगा, जैसे 'अत्' धातु स्वरादि एकाच् है, इसको व्यपदेशिवद्भाव से प्रथम एकाच् मानकर अर्थात् 'अत्' को ही द्वित्व होगा । यदि स्वरादि धातु अनेकाच् है तो इसके द्वितीय एकाच् को द्वित्व होगा, जैसे 'ऊर्णुञ्' । धातु स्वरादि अनेकाच् है अतः इसके द्वितीय एकाच् अर्थात् 'नु' को द्वित्व होगा ।

लिट् लकार में धातु के द्वित्व के विधान के लिए सर्वत्र यही व्यवस्था माननी चाहिए ।

अनभ्यास से तात्पर्य यह है कि एकबार द्वित्व होने पर पुनः जिसमें द्वित्व न हुआ हो । एक बार द्वित्व होने पर पूर्व की अभ्यास संज्ञा हो जाती है, यदि पुनः द्वित्व किया जायेगा तो वह धातु अनभ्यास न होगा, द्वित्व अनभ्यास धातु के अवयव के एकाच् को ही होता है ।

(२५) ह्रस्वः ।७।४।५९।।

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् ।

(२६) भवतेरः ।७।४।७३।।

भवते रभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि ।

(२७) अभ्यासे चर्च ।८।४।५४।।

अभ्यासे झलां चरः स्युः, जशश्च ।

झशां जशः खयां चर इति विवेकः ।

बभूव, बभूवतुः, बभूवुः ।

उक्त स्थिति 'भूव् अ' में भू के आगे जो वकार है वह भू का ही अवयव माना जायेगा, क्योंकि "यदागमास्तद्गुणी भूतास्तद् ग्रहणेनैव गृह्यन्ते" (अर्थात् जिसको जो आगम होते हैं, वे उसी के आधीन रहते हैं और उसके ग्रहण से उस आगम का भी स्वतः ग्रहण हो जाता है) इस परिभाषा के बल से यहाँ जो भू को वुक् का आगम हुआ था वह भू का ही अवयव माना जायेगा और भू के ग्रहण से 'भूव्' का ही ग्रहण होगा। अतएव 'लिटिधातोः' इत्यादि सूत्र से यहाँ प्रथम एकाच् 'भूव्' को ही द्वित्व होगा केवल 'भू' मात्र को नहीं। भूव् को द्वित्व होने पर "भूव् भूव् अ" यह स्थिति होगी।

पूर्व इति—यहाँ द्वित्व करने के बाद जिन दो रूपों का विधान किया गया है अर्थात् द्वित्व करके जहाँ एक के दो समान रूप बना लिए गये हैं, उनमें प्रथम रूप की अभ्यास संज्ञा हो।

उक्त स्थिति में प्रथम 'भूव्' की अभ्यास संज्ञा होगी।

हलादिरिति—अभ्यास संज्ञक शब्द का आदि हल् वर्ण तो शेष रहता है, अन्य हलों का लोप हो जाता है।

उक्त स्थिति में 'भूव् भूव् अ' के प्रथम भूव् की अभ्यास संज्ञा की गई है, अतः इस अभ्यास का आदि हल् अर्थात् 'भू' तो शेष रहेगा, पर द्वितीय हल वर्ण अर्थात् 'व्' का लोप हो जायेगा। तब 'भू भूव् अ' ऐसी स्थिति हो जायेगी।

हलादि धातुओं में तो इस सूत्र से निर्बाध काम हो जायेगा अर्थात् आदि हल् शेष रहेगा अन्य हलों का लोप हो जायेगा। किन्तु 'अद्' जैसी अजादि धातुओं में क्या व्यवस्था होगी? वहाँ तो आदि हल् मिलेगा ही नहीं। इसके समाधान के लिए, 'हलादिः शेषः' सूत्र में 'अहल्' तथा "आदिः शेषः" ये दो योगविभाग किये जाते हैं, प्रथम योग का अर्थ होता है कि 'अभ्यास' हल् रहित हो, किन्तु इस कथन से तो सभी धातुओं के सभी हलों का लोप प्राप्त होगा, तब दूसरा योग यह नियम करेगा कि यदि आदि में हल् हो तो वह शेष रहता है। इस योग विभाग के फलस्वरूप 'अद्' धातु में 'अद्

अव्' द्वित्व करने पर अभ्यास के हल-का लोप हो जायेगा 'आव्' रूप बनेगा, अन्यत्र भी कहीं कोई दोष न रहेगा।

ह्रस्व इति—अभ्यास के स्वर को ह्रस्व हो।

उक्त स्थिति में प्रथम 'भू' के ऊकार को ह्रस्व होकर 'भु भूव् अ' इस स्थिति में—

भवतेरिति—भू धातु के अभ्यास के उकार को अकार हो लिट् लकार परे रहते।

उक्त स्थिति में उकार को अकार होकर 'भ भूव् अ' इस स्थिति में—

अभ्यास इति—अभ्यास में झल् वर्णों के स्थान में चर् वर्ण हों और जश् वर्ण भी हों।

इस सम्बन्ध में यह निर्णय है कि झश् वर्णों के स्थान में तो जश् वर्ण हों और खय् प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों के स्थान में चर् वर्ण हों।

झल् वर्णों के अन्तर्गत-वर्गों के प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ वर्ण तथा श ष स और ह् आते हैं। इनके स्थान में होने वाले जश् वर्ण (ज ब ग ड द अर्थात् वर्गों के तृतीय अक्षर हैं, तथा चर् वर्ण (च ट त क प अर्थात् वर्गों के प्रथम वर्ण हैं। किस वर्ण के स्थान पर कौन-सा वर्ण हो, इसके लिए यह निर्णय किया गया है कि वर्गों के प्रथम वर्णों के स्थान पर तो' प्रथम, तृतीय के स्थान पर तृतीय और श ष स् के स्थान पर श ष स ही रहेंगे, अर्थात् च ट ज आदि को च ट ज आदि ही होंगे, किन्तु द्वितीय वर्णों को प्रथम वर्ण तथा चतुर्थ वर्णों को तृतीय वर्ण होंगे, 'चिच्छेद डुढौके' इन उदाहरणों में क्रमशः छ को च और ढ को ड हुआ है। पूर्वोक्त 'कुहोश्चुः' सूत्र से कवर्ग को चवर्ग हो जाता है, जैसे 'जगाम' में ग को ज हुआ है, इसी सूत्र से ह को अन्तरतम वर्ण झ होता है, 'जघान' इस उदाहरण में, प्रस्तुत सूत्र से पुनः 'झ' इस चतुर्थ वर्ण के स्थान में 'ज' होता है। प्रस्तुत उदाहरण की उक्त स्थिति में चतुर्थ वर्ण 'भ' के स्थान में प्रकृत सूत्र से 'ब' होकर 'बभूव' यह रूप बनेगा।

भू धातु से प्रथम पुरुष द्विवचन की विवक्षा में लट् लकार उसके स्थान में तस् प्रत्यय, और तस् के स्थान में 'परस्मैपदानामित्यादि' सूत्र से अतुस् आदेश, भू धातु को वुक् का आगम, तदनु भूव् का द्वित्व, पूर्व भूव् की अभ्यास संज्ञा, 'हलादिः शेषः' से व लोप; 'ह्रस्वः' सूत्र से ह्रस्व, 'भवतेरः' सूत्र से उकार को अकार, 'अभ्यासे चर्च' सूत्र से भ को 'ब' होकर स् को रुत्व विसर्ग होकर बभूवतुः रूप बनेगा।

प्रथम पुरुष बहुवचन की विवक्षा में भू धातु से लट् उसके स्थान में झि प्रत्यय, झि को उस् आदेश, धातु को वुक्, द्वित्व, अभ्यास संज्ञा, व लोप; ह्रस्व और पूर्ववत् उकार को अकार, अभ्यासे चर्च से भ को ब होकर, सकार को रुत्व विसर्ग होकर बभूवुः रूप बनेगा।

(२८) लिट् च ।३।४।११५।।

लिडादेशस्तिङ् आर्धधातुकसंज्ञः स्यात् ।

(२९) आर्धधातुक स्येड्वलादेः ।७।२।३५।।

वलादे रार्धधातुकस्येडागमः स्यात् ।

बभूविथ, बभूवथुः, बभूव ।

बभूव, बभूविव, बभूविम ।

लिडिति—लिट् लकार के स्थान में आदिष्ट हुए तिङ् प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा हो ।

भू धातु से मध्यम पुरुष एकवचन की विवक्षा में लिट् लकार, लिट् के स्थान सिप् प्रत्यय, सिप् के स्थान में 'परस्मैपदानामित्यादि सूत्र से थल् (थ) आदेश, भू+थ इस स्थिति में "लिट् च' सूत्र से 'थ' की आर्धधातुक संज्ञा, (थल् आदेश तिङ् प्रत्ययों के स्थान में होता है अतः स्थानिवद्भाव से थल् भी तिङ् है ।)

उपर्युक्त "तिङ्शित् सार्वधातुकम्" सूत्र सभी तिङ् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा का विधान करता है अतः यहाँ भी उससे सार्वधातुक संज्ञा प्राप्त होती है, किन्तु 'लिट् च' सूत्र अपवाद होने से उसे बाध कर आर्धधातुक संज्ञा करता है ।

भू+थ इस स्थिति के होने पर, थ की आर्धधातुक संज्ञा होकर ।

आर्धधातुकस्येति—वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम हो । (इट् में केवल 'इ' शेष रहता है, टित् होने के कारण यह आगम प्रत्यय के अर्थात् यहाँ 'थ' के आदि में होगा और 'थ' वलादि आर्धधातुक भी है ।)

'भू+इ+थ' इस स्थिति में वुक् का आगम, भूव् को द्वित्व और पूर्ववत् अभ्यास संज्ञा, व लोप, ह्रस्व, अकार एवं भ को 'ब' करके बभूविथ रूप बनता है ।

द्विवचन में लिट्, थस्, थस् को अथुस् आदेश, पूर्ववत् बभूव्+अथुस्, सकार को रुत्व विसर्ग, बभूवथुः ।

बहुवचन में बभूव्+थ, थ को 'अ' आदेश होकर बभूव रूप होगा ।

भू धातु से उत्तम पुरुष एकवचन की विवक्षा में लिट्, लिट् के स्थान में मिप्-मिप् के स्थान में "परस्मैपदानाम्' सूत्र से णल् (अ) आदेश, पूर्वोक्त विधि से वुक्, द्वित्व, व लोप, आदि करके बभूव्+अ=बभूव,

द्विवचन में लिट्-वस्-वस् के स्थान में 'व' आदेश, 'व' के वलादि आर्धधातुक होने से 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' सूत्र से इट् (इ) पूर्वोक्त प्रकार से बभूव+इ+व होकर बभूविव, रूप बनेगा ।

बहुवचन में इसी प्रकार लिट्, मस्, मस् के स्थान में 'म' आदेश, इट्, बभूव्+इ+म होकर बभूविम रूप होगा ।

(३०) अनद्यतने लुट् ।३।३।१५।।

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातो लुट् ।

(३१) स्यतासी लृलुटोः ।३।१।३३।।

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तः, लृलुटोः परतः ।

शबाद्यपवादः ।

'लृ' इति लृङ् लृटोर्ग्रहणम् ।

(३२) आर्धधातुकं शेषः ।३।४।११४।।

तिङ्शिद्भ्योऽन्यः, धातोः, इति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात् ।

अनद्यतन इति—अनद्यतन भविष्यत् कालिक क्रिया के अर्थ में वर्तमान धातु से लुट् लकार हो ।

स्यतासीति—लृङ् लृट् और लुट् लकार परे रहते धातु से स्य और तासि-प्रत्यय हों ।

(लृट् और लृङ् लकारों में तो स्य प्रत्यय होगा तथा लुट् लकार में तासि-प्रत्यय होगा, तासि का तास् शेष रहेगा) ।

शबादीति—यह सूत्र शप् आदि प्रत्ययों का बाधक है। क्योंकि यह निरवकाश-त्वात् इसका अपवाद है ।

इन तीनों लकारों में अपने अपने गणों के अनुसार जो शप् श्यन् श्नु आदि विकरण प्राप्त होते हैं, यह सूत्र इनका अपवाद होने से बाधक होता है ।

लृ इति—सूत्र में 'लृ' से लृङ् और लृट् इन दोनों ही लुकारों का ग्रहण है, क्योंकि जहाँ अनुबन्ध रहित का ग्रहण किया जाता है वहाँ सामान्य का ग्रहण होता है । जैसा कि इस परिभाषा द्वारा निर्देश किया गया है "निरनुबन्धकग्रहणे सामान्य ग्रहणम्" अर्थात् जहाँ अनुबन्ध रहित का ग्रहण किया गया हो, सामान्य का ग्रहण करना चाहिये यहाँ पर 'लृ' इस अनुबन्ध रहित पद का ग्रहण किया गया है, अतः इससे सामान्यतः लृङ् और लृट् लकार का ग्रहण किया जायेगा, फलतः इन दोनों लकारों में 'स्य' प्रत्यय होगा ।

आर्धधातुकमिति—'धातोः' इस सूत्र के अधिकार में अर्थात् तृतीयाध्याय समाप्ति पर्यन्त, विहित तिङ् और शित् प्रत्ययों को छोड़कर शेष प्रत्ययों की आर्ध-धातुक संज्ञा हो ।

भू धातु से प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में 'अनद्यतने 'लुट्' सूत्र से लुट् लकार, उसके स्थान में तिप् प्रत्यय, भू+ति इस स्थिति में सार्वधातुक संज्ञा होने से 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त होगा, उसे अपवादत्वात् बाधकर "स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से तासि (तास्) प्रत्यय होकर 'भू तास् ति' इस स्थिति में 'आर्धधातुकं

(३३) लुटः प्रथमस्य डारौरसः ।२।४।८५।।

लुटः प्रथमस्य डा रौ रस् एते क्रमात्स्युः ।

डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टे र्लोपः—भविता ।

(३४) तासस्त्यो र्लोपः ।७।४।५०।।

तासेरस्तेश्च लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये परे ।

(३५) रि च ।७।४।५१।।

रादौ प्रत्यये तथा ।

भवितारौ, भवितारः ।

भवितासि, भवितास्थः, भवितास्थ ।

भवितास्मि, भवितास्वः, भवितास्मः ।

शेषः सूत्र से तास् प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होगी, क्योंकि तास् प्रत्यय 'धातोः सूत्र के अधिकार में है और तिङ् शित् से भिन्न भी है ।

तास् प्रत्यय का 'त' वलादि आर्धधातुक भी है, अतः 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' सूत्र से इट् का आगम होगा, तब 'भू इ तास् ति' इस स्थिति में 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से ऊकार को 'ओ' गुण और ओ को अवादेश होकर 'भवितास् ति' इस स्थिति में—

लुट इति—लुट् लकार के प्रथम पुरुष को क्रमशः डा रौ रस् आदेश हों, अर्थात् तिप् को डा, तस् को रौ और झि को रस् आदेश हो ।

उक्त स्थिति में 'ति' का डा आदेश होकर 'भवितास्, डा' इस स्थिति में, लकार की इत्संज्ञा तथा उसका लोप होने पर, यह डित् कहलायेगा ।

डित्वेति—डित्व विधान के बल से भसंज्ञक न होने पर भी अंग की टि का लोप हो जायेगा ।

तात्पर्य यह कि यद्यपि 'डा' आदेश स्वादि कप् प्रत्ययान्तों के अन्तर्गत नहीं आता, फलतः इसके परे रहते, 'यचि भम्, सूत्र से भ संज्ञा यहाँ नहीं होती, 'भवितास्' इस अंग के भसंज्ञक न होने के कारण, यहाँ 'टेः' सूत्र से 'भवितास्' में आस् जो यह 'टि' है उसका लोप नहीं हो सकता था, तथापि यहाँ 'डा' आदेश के डित् करने के बल से भसंज्ञक न होने पर भी अंग की 'आस्' इस टि का लोप हो जायेगा ।

उक्त स्थिति में डकार की इत्संज्ञा लोप होने के कारण भवितास् आ इस दशा में 'आस् इस टि का लोप होकर **'भविता'** यह रूप बनेगा ।

तासस्त्योरिति—तास् और अस् धातु का लोप हो सकारादि प्रत्यय परे रहते ।

यद्यपि प्रस्तुत सूत्र में तास् और अस् का लोप बतलाया गया है, तथापि वह 'अलोऽन्त्य परिभाषा सूत्र के बल से इनके अन्तिम वर्ण सकार का लोप करेगा, जैसे—

(३६) लृट् शेषे च ।३।३।१३।।

भविष्यदर्थाद् धातो लृट्, क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा ।

स्यः, इट्—भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति । भविष्यसि, भविष्यथः, भवि-ष्यथ । भविष्यामि, भविष्यावः, भविष्यामः ।

अस् धातु से लट् के स्थान में सिप् प्रत्यय करने पर धातु के अन्तिम 'स्' का लोप होकर 'असि' रूप बनता है, और इसी प्रकार भू धातु के लुट् मध्यम पुरुष एकवचन में 'भवितास्+सिप्' इस स्थिति में सादि प्रत्यय सिप् के आगे रहते इस सूत्र से सकार का लोप होकर 'भवितासि' रूप बनता है ।

रि चेति—रकारादि प्रत्यय आगे होने पर पूर्व सूत्रवत् तास् और अस् धातु का लोप हो ।

(यहाँ भी 'अलोऽन्त्य परिभाषा के बल से सम्पूर्ण तास् और अस् का लोप न होकर इनके अन्तिम वर्ण सकार का ही लोप होगा) ।

भू धातु से प्रथम पुरुष द्विवचन की विवक्षा में लुट् लकार, लुट् को तस् आदेश, 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से तास् प्रत्यय, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' सूत्र से वलादि आर्धधातुक 'त्' के आगे रहते इट् 'इ' का आगम, ऊकार को गुण अवादेश, 'भवि-तास्-तस्' इस स्थिति में तस् के स्थान में ''लुटः प्रथमस्य डारौरसः'' सूत्र से 'रौ' आदेश, रादि प्रत्यय 'रौ' के आगे रहते, 'रि च' सूत्र से तास् के सकार का लोप होकर **भवितारौ''** रूप बनेगा ।

इसी प्रकार **प्रथम पुरुष बहुवचन** में लुट्-झि, तास् प्रत्यय, गुण, अवादेश करके 'भवितास्+झि' इस स्थिति में 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' सूत्र से झि के स्थान में 'रस्' आदेश, रादि प्रत्यय आगे रहने पर 'रि च' सूत्र से तास् के सकार का लोप, सकार को रुत्वविसर्ग होकर 'भवितारः' रूप बनेगा ।

मध्यम पुरुष एकवचन में लुट्, सिप्, तास्इट्, गुण, अवादेश करके भवितास्+सि' इस स्थिति में '"तासस्त्यो र्लोपः' सूत्र से तास् के सकार का लोप करके भवितासि रूप होगा ।

द्विवचन में लुट्-थस्, तास्, इट् गुण, अवादेश करके भवितास्थः, और बहुवचन में, लुट्, थ, तास्, इट्, गुण, अवादेश करके **'भवितास्थ'** रूप होगा ।

उत्तम पुरुष एकवचन में लुट्-मिप्, तास्, इट् गुण अवादेश करके **'भवितास्मि'** द्विवचन में लुट्, वस्, तास्, इट् गुण, अवादेश करके 'भवितास्वः' और बहुवचन में लुट्-मस्-तास्-इट्-गुण-अवादेश करके **'भवितास्मः'** रूप बनेगा ।

लृडिति—(सामान्य) भविष्यत् कालिक क्रिया के अर्थ में वर्तमान धातु से लृट् लकार हो, क्रियार्थक किया विद्यमान हो अथवा न हो ।

जहाँ एक क्रिया दूसरी क्रिया के लिए की जाती है, वहाँ उस दूसरी क्रिया को क्रियार्थक क्रिया कहा जाता है, जैसे 'तेऽत्र पठितुम् आगच्छन्ति' इस वाक्य में "आगच्छन्ति" अर्थात् आगमन क्रिया, पठन-पढ़ना क्रिया के लिए की जा रही है, अतः आगमन क्रिया क्रियार्थक क्रिया होगी।

इस क्रियार्थक क्रिया की विद्यमानता में अथवा अविद्यमानता में, दोनों ही स्थितियों में, प्रधान धातु से लृट् लकार होता है, पर जहाँ क्रियार्थक क्रिया की अविद्यमानता रहती है, वहाँ तो लृट् लकार के रूप का अकेला ही प्रयोग हो जाता है, जैसे स पठिष्यति' किन्तु जहाँ क्रियार्थक क्रिया की विद्यमानता रहती है, वहाँ लृट् लकार के रूप के आगे 'इति' का प्रयोग करना भी आवश्यक होता है, जैसे— 'पठिष्यति-इति गच्छति' यहाँ 'गच्छति' यह क्रियार्थक क्रिया है अतः इसकी विद्यमानता में प्रधान क्रिया पठ् धातु के रूप 'पठिष्यति' के आगे 'इति' का प्रयोग किया गया है।

आगे आने वाले कृदन्त प्रकरण में जो क्रियार्थक क्रिया की विद्यमानता में तुमुन् और ण्वुल् प्रत्ययों का विधान किया गया है, फलतः 'कृष्णं द्रष्टुं याति, और कृष्णं दर्शको याति' जैसे प्रयोग होते हैं, वहाँ भी प्रधान क्रिया से होने वाले तुमुन् और ण्वुल् प्रत्ययों को भविष्यदर्थ में ही समझना चाहिये, पर इन प्रयोगों में क्रियार्थक क्रिया की विद्यमानता आवश्यक है।

'लृट् शेषे च' सूत्र के 'शेषे' पद से ज्ञात होता है कि लृट् लकार का प्रयोग सामान्य भविष्यत् काल में ही होता है, क्योंकि लुट् लकार का विधान अनद्यतन भविष्यत् काल में बताया जा चुका है, अतः अद्यतन भविष्यत् काल में तो लृट् लकार का प्रयोग होगा, पर अनद्यतन भविष्यत् काल में लुट् लकार का ही प्रयोग होगा। यह अद्यतनता और अनद्यतनता, वाक्य के प्रयोग से प्रकट होती है, जैसे यदि कहा जाय कि "मैं कल जाऊँगा" तो इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि गमन क्रिया अनद्यतन भविष्यत् काल की है, अतः यहाँ लुट् लकार का ही प्रयोग होगा—श्वो गन्तास्मि, यदि कहा जाय कि "मैं आज जाऊँगा' तो इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि गमन क्रिया अद्यतन भविष्यत् काल की है अतः ऐसे वाक्यों में लृट् का ही प्रयोग होगा— "अद्याहं गमिष्यामि"। पर जहाँ अद्यतनता अथवा अनद्यतनता वाक्य प्रयोग से स्पष्ट प्रतीत न हो रही हो, वहाँ सामान्यतः लृट् लकार का ही प्रयोग किया जाना चाहिये, जैसे 'ते गमिष्यन्ति' इस वाक्य द्वारा अद्यतनता एवं अनद्यतनता की प्रतीति नहीं होती अतः यहाँ लृट् का ही प्रयोग होगा।

भू धातु से, सामान्य भविष्यत् काल में प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में में 'लृट् शेषे च' सूत्र से लृट् लकार, लृट् के स्थान में तिप् प्रत्यय, 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से 'स्य' प्रत्यय, 'आर्धधातुकं शेषः, सूत्र से 'स्य' की आर्धधातुक संज्ञा होने से बलादि आर्धधातुक 'स्' के आगे रहते 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः, सूत्र से इट् (इ) का आगम,

(३७) लोट् च ।३।३।१६२।।

विध्याद्यर्थेषु धातो र्लोट् ।

(३८) आशिषि लिङ् लोटौ ।३।३।१७३।।

आशिष्यपि लिङ् लोटौ स्तः । आशीः अप्राप्तेष्टप्राप्तीच्छा ।

(३९) एरुः ।३।४।८६।।

लोट इकारस्य उः ।

भवतु ।

(४०) तुह्योस्तातङाशिष्यन्तरस्याम् ।७।१।३५।।

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा ।

अकार को गुण-अवादेश, 'भविष्यति' इस स्थिति में 'आदेश प्रत्ययोः' सूत्र से सकार को मूर्धन्यादेश करके **'भविष्यति** रूप होगा ।

द्विवचन में इसी प्रकार लृट्-तस्-स्य-इट्-गुण-अवादेश, षत्व सकार को रुत्व-विसर्ग करके 'भविष्यतः' बहुवचन में लृट्-झि (अन्ति) स्य-इट्-गुण-अवादेश-षत्व करके 'भविष्यन्ति' रूप बनेगा ।

लृट् लकार मध्यम पुरुष एक वचन में पूर्ववत् सिप् स्य-इट्-गुण-अवादेश-षत्व करके 'भविष्यसि' द्विवचन में लृट्-थस्-स्य-इट्-गुण-अवादेश-षत्व करके **'भविष्यथः'** बहुवचन में लृट्-थ-स्य-इट्-गुण-अवादेश-षत्व करके **'भविष्यथ'** रूप बनेंगे ।

लृट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में मिप्-स्य-इट्-गुण-अवादेश-षत्व करके 'भविष्य मि' इस स्थिति में यञादि सार्वधातुक मिप् प्रत्यय के आगे रहते 'अतो दीर्घो-यञि' सूत्र से यकार के अकार को दीर्घ होकर **'भविष्यामि'** रूप बनेगा ।

द्विवचन में लृट्-वस्-स्य-इट्-गुण-अवादेश-षत्व तथा 'अतो दीर्घो यञि' से दीर्घ, सकार को षत्व विसर्ग होकर **'भविष्यावः'** बहुवचन में भी इसी प्रकार लृट्-मस-स्य-इट्-गुण-अवादेश-षत्व-दीर्घ-रुत्व विसर्ग करके **'भविष्यामः'** रूप होगा ।

लोट् चेति – विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार हो ।

विधि आदि छः अर्थ हैं—विधि, निमन्त्रण; आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न, प्रार्थना – इन सबका सामान्य अर्थ तो 'प्रेरणा' है, पर इनका विशेष अर्थ तथा इनका पारस्परिक अन्तर लिङ् लकार की व्याख्या के समय आगे स्पष्ट किया जायेगा, क्योंकि लोट् लकार तथा लिङ् लकार इन दोनों का प्रयोग उक्त छः अर्थों में होता है।

आशिषीति - आशीर्वाद अर्थ में भी लोट् लकार तथा लिङ् लकार का प्रयोग होता है ।

एरुरिति—लोट् लकार के स्थानिक इकार को उकार हो ।

तुह्योरिति—आशीर्वाद अर्थ में लोट् लकार के तु और हि को तातङ आदेश हो विकल्प से ।

परत्वात् सर्वादेशः—भवतात् ।

(४१) लोटो लङ्वत् ।३।४।८५।।

लोटस्तामादयः, सलोपश्च ।

(४२) तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ।३।४।१०१।।

ङितश्चतुर्णां तमादयः क्रमात् स्युः ।

भवताम् । भवन्तु ।

(४३) सेर्ह्यपिच्च ।३।४।८७।।

लोटः से र्हिः, सोऽपिच्च ।

(तातङ् में तात् शेष रहता है अङ् की इत् संज्ञा तथा उसका लोप हो जाता है)

भू धातु से आशीर्वाद अर्थ में लोट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में लोट् के स्थान में तिप् (ति) प्रत्यय, 'भू+ति' इस स्थिति में सार्वधातुक संज्ञा होने से 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् (अ) प्रत्यय, पुनः सार्वधातुक निमित्तक गुण अवादेश होकर 'भवति' इस स्थिति में 'एरुः' सूत्र से 'ति' के इकार को उकार आदेश, होकर 'भवतु' ऐसा रूप बन जाने पर, सूत्र संख्या ४० से सम्पूर्ण 'तु' के स्थान में 'तातङ्' (तात्) आदेश होकर 'भवतात्' रूप बनेगा, जब तातङ् आदेश वैकल्पिक होने के कारण, न होगा, तब 'भवतु' इस प्रकार प्रथम पुरुष एकवचन में 'भवतु और भवतात्' ये दो रूप होंगे ।

तातङ् आदेश ङित् आदेश है, अतः 'ङिच्च' सूत्र के अनुसार यह आदेश अन्त्य अल् के स्थान में प्राप्त होता है, सम्पूर्ण 'तु' के स्थान में नहीं । किन्तु यह आदेश, अनेकाल् भी है अतः 'अनेकाल् शित् सर्वस्य' सूत्र के अनुसार सम्पूर्ण 'तु' के स्थान में भी प्राप्त होता है, दोनों ही सूत्र अन्यत्र चरितार्थ होने तुल्यबल भी हैं, अतः यहाँ "विप्रतिषेधे परं कार्यम्" सूत्र के नियमानुसार पर सूत्र का कार्य होगा, 'अनेकाल् शित् सर्वस्य' सूत्र 'ङिच्च' सूत्र की अपेक्षा पर है, अतः 'परत्वात् सर्वादेशः' अर्थात् 'अनेकाल् शित्सर्वस्य' सूत्र के पर होने से सर्वादेश ही होगा, अतएव यहाँ सम्पूर्ण 'तु' के स्थान में तातङ् (तात्) आदेश होकर भवतात् रूप बनेगा ।

यहाँ 'ङिच्च' सूत्र के निरवकाश होकर अपवाद होने की आशंका नहीं होनी चाहिए, क्योंकि तातङ् के ङित् करने का प्रयोजन केवल अन्त्यादेश विधान ही नहीं है उसके अन्य प्रयोजन भी हैं, जैसे 'युतात्' में ङित्वात् गुण का निषेध तथा 'इज्यात्' आदि में संप्रसारण विधि आदि, अतः ङिद्विधान के अन्यत्र चरितार्थ होने से, इसका केवल फल अन्त्यादेश विधान मात्र नहीं है, 'ङिच्च' भी निरवकाश नहीं है, क्योंकि वह 'अनङ्' आदि में चरितार्थ हो चुका है, जहाँ ङिद्विधान का केवल अन्त्यादेश

अतो हेः ।६।४।१०५।।

अतः परस्य हेर्लुक् ।

भव, भवतात्, भवतम्, भवत ।

मेर्निः ।३।४।८९।।

लोटो मेर्निः स्यात्

आडुत्तमस्य पिच्च ।३।४।९२।।

लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च ।

भवानि ।

हिन्योरुत्वं न, इस्वोच्चारणसामर्थ्यात् ।

करना ही प्रयोजन है । इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में 'ङिच्च' के निरवकाश होकर अपवाद होने की आशंका नहीं होनी चाहिए ।

लोट इति—लोट् लकार के स्थान में लङ् लकार के समान कार्य हो, अर्थात् लङ् लकार में जैसे तस् आदि प्रत्ययों को ताम् आदि आदेश होते हैं, वैसे ही लोट् लकार में हों, और सलोप भी ।

तस्थस्थमिपामिति—ङित् लकारों—अर्थात् लङ् लिङ् लुङ् और लृङ् लकारों के स्थान में होने वाले तस् थस् थ मिप् प्रत्ययों को क्रमशः ताम् तम् त और अम् आदेश हों, अर्थात् तस् को ताम्, थस् को तम्, थ को त और मिप् को अम् आदेश हो ।

(लोट् लकार यद्यपि ङित् लकार नहीं है, फिर भी सूत्र संख्या ४१ से इसे लङ् वत् बना लिया गया है, अतः इस लकार के भी उक्त प्रत्ययों को ताम् आदि आदेश होंगे । इन ताम् आदि आदेशों का विधान करने वाला सूत्र "तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः" है)

भू धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में तस् प्रत्यय, 'लोटो लङ्वत्' सूत्र से लोट् को लङ्वत् करके 'तस्थस्थमिपामित्यादि सूत्र से तस् को ताम् आदेश, तथा पूर्ववत् सार्वधातुक होने से शप् (अ) गुण अवादेश करके भवताम् रूप बनेगा ।

बहुवचन में झि प्रत्यय, झ् को अन्तादेश, पूर्ववत् शप् गुण अवादेश होकर 'भवन्ति' बन जाने पर 'एरुः' सूत्र से इकार को उकार आदेश करके भवन्तु रूप बनेगा ।

भू धातु से मध्यम पुरुष एकवचन में सिप् प्रत्यय, 'भू+सि' इस स्थिति में—

सेर्हीति—लोट् लकार के 'सि' को 'हि' आदेश हो, और वह अपित् हो ।

(सिप् वस्तुतः पित् प्रत्यय है, पर इसके स्थान में होने वाले 'हि' आदेश को प्रस्तुत सूत्र अपित् करता है, जिसका फल यह होता है कि 'सार्वधातुकमपित्' सूत्र से

ते प्राग्धातोः ।१।४।८०।।

ते गत्युपसर्गसंज्ञकाः धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः ।

आनि लोट् ।८।४।१६।।

उपसर्ग स्थान्निमित्तात् परस्य लोडादेशस्य आनि इत्यस्य नस्य णः स्यात् ।

(वा०) दुरः षत्वणत्वयो रूपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः ।

दुःस्थितिः । दुर्भवानि ।

(वा०) अन्तः शब्दस्याङ् किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम् ।

अन्तर्भवाणि ।

वह ङिद्वत् मान लिया जाता है, फलतः 'स्तुति' आदि उदाहरणों में ङित्व प्रयुक्त गुण निषेध आदि कार्य होते हैं ।)

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से सि को हि आदेश, शप् (अ) सार्वधातुकत्वात् गुण अवादेश होकर 'भव हि' इस स्थिति में 'तुह्योरिति' सूत्र से हि के स्थान में तातङ् (तात्) आदेश होकर 'भवतात्' रूप बनता है। तातङ् आदेश वैकल्पिक है अतः तातङ् के अभाव पक्ष में 'भव हि' इस स्थिति में—

अत इति—अदन्त अंग से परे हि का लोप हो। उक्त स्थिति में अदन्त अंग भव से परे हि का, प्रस्तुत सूत्र से लोप होकर 'भव' यह रूप बनेगा। इस प्रकार मध्यम पुरुष एकवचन में 'भवतात् और भव' ये दो रूप होंगे ।

(अदन्त अंग से परे 'हि' केवल भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि गणों में ही मिलता है, यहीं पर हि का 'अतो हेः' सूत्र से लोप होता है, अन्य गणों में 'हि' वाला ही रूप रहता है, जैसे जहि, देहि आदि ।

मध्यम पुरुष द्विवचन में थस् प्रत्यय को पूर्वोक्त सूत्र से तम् आदेश, शप् गुण अवादेश करके 'भवतम्' तथा बहुवचन में थ प्रत्यय को पूर्वोक्त सूत्र से त आदेश, शप् गुण अवादेश करके भवत रूप होगा ।

उत्तम पुरुष एकवचन में मिप् प्रत्यय करके 'भू+मि' इस स्थिति में—

मेर्निरिति—लोट् लकार के मि को नि आदेश हो, उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से मि को नि आदेश करके, शप् गुण अवादेश होकर 'भव नि' इस स्थिति में—

आडिति—लोट् लकार के उत्तम पुरुष को आट् का आगम हो और वह पित् हो ।

(आट् में ट् की इत्संज्ञा और उसका लोप होने पर 'आ' शेष बचता है, अतएव टित् होने के कारण यह आदेश प्रत्यय के आदि में होता है, अतः 'भव+आनि' इस स्थिति में 'अकःसवर्णे दीर्घः' से दीर्घ कर 'भवानि' यह रूप बनता है ।

हिन्योरिति—सि के स्थान में हुए 'हि' आदेश के तथा 'मि' के स्थान में हुए 'नि' आदेश के इकार को 'एरुः' सूत्र से उकार नहीं होता, इनमें इकार के उच्चारण

नित्यं ङितः ।३।४।९९॥

सकारान्तस्य' ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः ।

'अलोऽन्त्यस्य' इति सलोपः भवाव । भवाम ।

के सामर्थ्य से, यदि इकार को उकार ही होना था तब तो लाघवात् 'हु और नु' ही आदेश करना उचित था, पर ऐसा नहीं किया गया है अतः इकारोच्चारणबल से यहाँ इन दोनों में इकार को उकार न होगा, हि और नि ही रहेंगे ।

ते, इति—उन गति संज्ञक और उपसर्ग संज्ञक, प्र, परा, अनु, अव आदि शब्दों का प्रयोग धातु के पूर्व में ही किया जाना चाहिए ।

फलतः प्रभवति, अनुभवति, पराभवति आदि उदाहरणों में प्र परा आदि का प्रयोग धातु के पूर्व ही देखा जाता है । क्रिया के योग में इन शब्दों की, 'उपसर्गाः क्रियायोगे' सूत्र से उपसर्ग संज्ञा होती है । अतएव प्रस्तुत सूत्र के अनुसार इनका प्रयोग धातु के पूर्व किया गया है ।

आनीति—उपसर्ग में स्थित जो णत्व का निमित्त रेफ (र) उससे परे जो लोट् लकार के स्थान में हुआ आदेश 'आनि' उसके नकार को णकार हो ।

'प्र-भवानि' इस स्थिति में क्रियायोग में 'प्र' की उपसर्ग संज्ञा है और वह सूत्र सं० ४७ के अनुसार धातु के पूर्व में प्रयुक्त भी है, इस 'प्र' उपसर्ग में णत्व का निमित्त 'र्' भी है, इससे आगे 'आनि' के नकार को प्रस्तुत सूत्र से णत्व होकर 'प्रभवाणि' यह प्रयोग बनेगा ।

(यहाँ 'अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि' से णत्व नहीं हो सकता था, क्योंकि यहाँ प्र उपपद रहते भवानि शब्द के साथ 'उपपदमतिङ्' सूत्र से समास होकर 'प्र भवानि' ये दो पद एक साथ मिलते हैं, अतः 'प्रभवानि' यह एक अखण्ड पद नहीं है, अतः उक्त सूत्र से यहाँ णत्व सम्भव न था, इसीलिए प्रस्तुत सूत्र द्वारा यहाँ णत्व विधान किया गया है)

(वा०) दुर इति—षत्व और णत्व विधि के विषय में 'दुर्' शब्द के उपसर्गत्व का प्रतिषेध कहना चाहिए ।

अर्थात् 'दुर्' के र् को निमित्त मानकर जहाँ णत्व या षत्व करना होगा, वहाँ दुर् को उपसर्ग नहीं माना जायेगा, फलतः उपसर्गस्थ निमित्त 'र्' के न मिलने से दुर् के आगे न को णत्व न होगा और न षत्व ही होगा—

जैसे—'दुर्+स्थितिः' इस उदाहरण में दुर् उपसर्ग से परे स्था धातु के सकार को 'उपसर्गात् सुनोति' इत्यादि सूत्र से षत्व प्राप्त था, पर प्रस्तुत वार्तिक द्वारा 'दुर्' के उपसर्गत्व का प्रतिषेध कर देने से दुर् के उपसर्गत्व के अभाव में यहाँ षत्व न होकर 'दुःस्थितिः' ऐसा ही प्रयोग होगा ।

इसी प्रकार 'दुर्भवानि' इस उदाहरण में दुर् उपसर्ग के र् से परे आनि के नकार को 'आनि लोट्' सूत्र से णत्व प्राप्त होता है, पर प्रस्तुत वार्तिक द्वारा 'दुर्' के

अनद्यतने लङ् ।३।२।१११।।

अनद्यतनभूतार्थवृत्ते र्धातो लँङ् स्यात् ।

लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्तः ।६।४।७१।।

एष्वङ्गस्याट् ।

उपसर्गत्व का प्रतिषेध हो जाने से उपसर्गस्थ निमित्त के अभाव में णत्व नहीं होता, अत: **दुर्भवानि** यही प्रयोग बनता है ।

(वा०) अन्तरिति—अङ्, किविधि और णत्व के विषय में अन्तर् शब्द को उपसर्ग कहना चाहिए ।

अर्थात् उक्त कार्यों के करते समय अन्तर् शब्द को भी उपसर्ग मान लिया जाना चाहिए ।

प्र परा आदि २२ शब्दों की तो क्रिया के योग में 'उपसर्गा: क्रियायोगे' सूत्र से उपसर्ग संज्ञा हो जाती है, पर 'अन्तर्' शब्द इनमें नहीं आता, अत: अन्तर् शब्द की उक्त कार्यों के समय, प्रस्तुत वार्तिक से उपसर्ग संज्ञा का नया विधान किया गया है, अतएव अङ् आदि कार्यों के समय अन्तर् शब्द को भी उपसर्ग मान लिया जाता है, फलत: उपसर्ग संज्ञक अन्तर् उपपद रहते 'धा' धातु से अङ् प्रत्यय करने पर '**अन्तर्धा**' और 'उपसर्गे घो: कि' सूत्र से कि प्रत्यय और आकार का लोप करने पर अन्तर्धि: प्रयोग बनता है । यदि इस 'अन्तर्' को उपसर्ग न माना गया होता तो यहाँ उक्त प्रयोगों में अङ् और कि प्रत्यय नहीं हो सकते थे । णत्व विधि का उदाहरण है—'अन्तर्भवाणि' यहाँ 'अन्तर्+भवानि' इस स्थिति में प्रस्तुत वार्तिक से 'अन्तर्' को उपसर्ग मान लेने पर उपसर्गस्थ निमित्त र् से परे आनि के नकार को, आनि 'लोट्' सूत्र से णत्व होकर 'अन्तर्भवाणि' प्रयोग बनेगा ।

नित्यमिति—ङित् लकारों के—लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्—सकारान्त उत्तम का लोप हो ।

यद्यपि यह सूत्र ङित् लकारों में ही सलोप का विधान करता है, तथापि 'लोटो लङ्वत्' सूत्र से सलोप के विषय में भी लोट् को लङ्वत् मानकर लोट् में भी यह सूत्र सलोप करेगा ।

यहाँ सकारान्त प्रत्यय वस् मस् का पूरा लोप न होकर 'अलोऽन्त्य परिभाषा' के बल से अन्तिम सकार का ही इस सूत्र से लोप होता है ।

लोट् लकार उत्तम पुरुष द्विवचन में वस् प्रत्यय, शप्, गुण, अवादेश, आट् का आगम तथा दीर्घ करके 'भवामस्' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से सकार का लोप होने पर **भवाव** यह रूप बनेगा ।

बहुवचन में मस् प्रत्यय, शप्, गुण, अवादेश, आट् का आगम, सवर्ण दीर्घ करके 'भवामस्' इस स्थिति में 'नित्यं ङित:' सूत्र से मस् के सकार का लोप होकर '**भवाम**' रूप बनेगा ।

इतश्च । ।३।४।१००।।

ङितो लस्य परस्मैपद मिकारान्तं यत्, तदन्तस्य लोपः ।

अभवत्, अभवताम् अभवन् ।

अभवः, अभवतम्, अभवत ।

अभवम्, अभवाव, अभवाम ।

(५३) विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट संप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ।३।३।१३१।।

एष्वर्थेषु धातो लिङ् ।

अनद्यतने इति—अनद्यतन भूतकालिक क्रियार्थवृत्ति धातु से लङ् लकार हो।

लुङिति--लुङ् लङ् और लृङ् लकारों के आगे रहते अंग को अट् का आगम हो।

अट् में 'अ' शेष रहता है अतः टित् होने से यह आगम अंग और धातु का आदि 'अवयव' होगा, अर्थात् धातु के पूर्व में 'अ' का आगम होगा।

इतश्चेति—ङित् लकारों के स्थाने में आदिष्ट हुआ जो इकारान्त परस्मैपद का प्रत्यय उसके अन्त का लोप हो।

भू से धातु से 'अनद्यतने लङ्' सूत्र से लङ् लकार, और 'लुङिति' सूत्र से धातु के पूर्व अट् (अ) का आगम, प्रथम पुरुषैक वचन में लङ् को तिप् प्रत्यय, 'अभू+ति' इस स्थिति में शप् (अ) गुण, अवादेश, 'अभवति' इस स्थिति में 'इतश्च' सूत्र से, लकार के स्थान में हुआ, जो इकारान्त परस्मैपद प्रत्यय 'ति' इसके अन्त्य वर्ण, इकार का लोप होकर, अभवत् रूप बनेगा।

द्विवचन में पूर्ववत् अभू+तस् इस स्थिति में शप्, गुण, अवादेश, 'अभव+तस्' इस स्थिति में 'तस्थस्थमिपाम्-सूत्र से तस् को ताम् आदेश कर **'अभवताम्'** रूप होगा।

बहुवचन में पूर्ववत् अभू+झि, शप्, गुण, अवादेश, झ् को अन्त आदेश। 'अभव अन्ति' इस स्थिति में 'अतो गुणे' सूत्र से अकार का पररुप, 'अभवन्ति' इस स्थिति में 'इतश्च' सूत्र से इकार का लोप, 'अभवन्त्' इस स्थिति में 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र से संयोगान्त तकार का लोप होकर **'अभवन्'** रूप बनेगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् 'अभव+सि' इस स्थिति में 'इतश्चेति' इकार लोप 'अभव स्' इस स्थिति में सकार को रुत्व विसर्ग करके **'अभवः'** द्विवचन में पूर्ववत् 'अभव+थस्' इस स्थिति में 'तस्थस्थ— सूत्र से थस् को तम् आदेश करके **अभवतम्**, बहुवचन में भी इसी प्रकार 'अभव+थ' थ को 'तस्थस्थ—सूत्र से त आदेश करके अभवत रूप होंगे।

(५४) यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ।३।४।१०३।।

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमः, उदात्तो ङिच्च ।

उत्तम पुरुष एक वचन में लङ्, अट्, मिप्, शप्, गुण, अवादेश, मिप् को 'तस्थस्थ—सूत्र से अम् आदेश, 'अभव+अम्' इस स्थिति में 'अतो गुणे' अकार का पर रूप होकर **'अभवम्'** द्विवचन में पूर्ववत् लङ्, अट्, वस्, शप्, गुण, अवादेश होकर 'अभव वस्' इस स्थिति में 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र से दीर्घ, 'नित्यं ङितः' सूत्र से सकार लोप होकर **'अभवाव'** बहुवचन में पूर्ववत् कार्य करके 'अभव मस्' इस स्थिति में 'अतो दीर्घो यञि' से दीर्घ, 'नित्यं ङितः' सकार लोप होकर **'अभवाम'** रूप होंगे।

विधीति—विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न और प्रार्थना इन छः अर्थों में लिङ् लकार हो।

इन विधि आदि अर्थों का सामान्य अर्थ तो 'प्रेरणा' ही होता है, पर फिर भी इनमें परस्पर पर्याप्त अन्तर है।

(१) **विधि**—विधि रूप प्रेरणा, वह प्रेरणा होती है, जिसे 'आज्ञा देना' कहा जाता है। यह आज्ञा अपने से छोटे-निकृष्ट सेवक आदि को दी जाती है, जिसका मानना उनके लिए आवश्यक होता है, न मानने पर वे दण्ड के भागी होते हैं, अतएव विधि का अर्थ है—"भृत्यादे र्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्" (यह ऊपर बताया जा चुका है कि इन्हीं उक्त छः अर्थों में लोट् लकार का भी प्रयोग होता है, अतः यहाँ इन सभी अर्थों के उदाहरणों में लोट् और लिङ् का प्रयोग साथ-साथ दिखलाया जा रहा है) जैसे 'ओदनं पच पचेः वा' 'चावल पकाओ' यहाँ स्वामी अपने सेवक को चावल पकाने की आज्ञा दे रहा है। वेद शास्त्रादि के वचनों में भी इसी विधि अर्थ का प्रयोग देखा जाता है जहाँ मनुष्य को किसी कार्य की आज्ञा दी जाती है, यदि कोई इस शास्त्राज्ञा के अनुसार कार्य नहीं करता तो वह पाप का भागी बनता है, जैसे 'अहरहः संध्या मुपासीत' नित्य प्रतिदिन संध्योपासन करो या करना चाहिये' यहाँ लिङ् लकार का का प्रयोग कर संध्योपासन की आज्ञा दी जाती है।

निमन्त्रण—निमन्त्रण वह प्रेरणा है जो अपने समान बन्धु बान्धवों को दी जाती है, यद्यपि इस प्रेरणा में आज्ञा का भाव इतना प्रबल नहीं रहता जैसा कि विधि में रहता है, तथापि इसका मानना आवश्यक ही होता है, अतएव इस प्रेरणा को आग्रह कहा जाता है "निमन्त्रणं नियोगकरणम्, आवश्यके श्रद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्।" यथा च लोके-भागिनेय ! श्वो भाविनि व्रतोद्यापने त्वमागच्छ, आगच्छे र्वा।

आमन्त्रणम्—आमन्त्रण वह प्रेरणा है जिसमें प्रेर्यमाण व्यक्ति स्वतन्त्र रहता है, चाहे प्रेरक की बात माने अथवा न माने। इसीलिये आमन्त्रण को "कामचारानुज्ञा" कहा जाता है। इस प्रेरणा को अनुरोध कह सकते हैं जैसाकि आज-

(५५) लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ।७।२।७९।।

सार्वधातुक लिङो ऽनन्त्यस्य सस्य लोपः । इति प्राप्ते ।

(५६) अतो येयः ।७।२।८०।।

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् । गुणः ।

(५७) लोपो व्योर्वलि ।६।१।६६।।

वलि यकारवकारयो र्लोपः ।

भवेत् । भवेताम् ।

कल के निमन्त्रण में किया जाता है, जैसे, मित्रवर ! मद्वैवाहिके प्रीतिभोजे भवान् आगच्छतु आगच्छेद् वा ।

अधीष्ट—इस प्रकार की प्रेरणा में उच्चकोटि के लोगों से सत्कारपूर्वक प्रार्थना की जाती है, "अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः" यथा लोके—महोदय ! भवान् मम पुत्र मध्यापयतु अध्यापयेद् वा ।

संप्रश्न—इस प्रेरणा में परामर्श लेने का भाव रहता है। "संप्रधारणं संप्रश्नः" निश्चय करने के लिए कहना जैसे—किं भो वेदमधीयीय, उत् तर्कं भगवन्" मैं वेद पढ़ूँ या न्याय शास्त्र ?

प्रार्थना—यह प्रेरणा सदा बड़ों से की जाती है जिसमें उनसे कुछ माँगने की इच्छा रहती है 'अतएव "प्रार्थनं याचना' कहा गया है, जैसे—"पुस्तकं लभे लभेय वा" मुझे पुस्तक मिल जाय अथवा मुझे पुस्तक दे दीजिए ।

यासुडिति—लिङ् लकार के परस्मैपद प्रत्ययों को यासुट् का आगम हो, और वह उदात्त तथा ङित् भी हो ।

(यासुट् में यास् शेष रहता है, अतः टित् होने के कारण यह प्रत्यय का आदि अवयव होता है । यासुट् के ङित् होने का फल गुणनिषेध आदि है ।)

लिङ इति—सार्वधातुक लिङ् लकार के अनन्त्य सकार का लोप हो, (अनन्त्य=जो अन्त में न हो)

इति प्राप्ते—इस सूत्र के द्वारा सलोप की प्राप्ति होने पर ।

अत इति—अदन्त अंग से परे सार्वधातुक के अवयव यास् को इय् आदेश हो।

गुण—इसके अ+इ को ए गुण होगा ।

लोप इति—वल् प्रत्यसरान्तर्गत वर्णों के आगे रहने पर बकार और यकार का लोप हो ।

(५८) झेर्जुस् ।३।४।१८०।।

लिङो झेर्जुस् स्यात् । भवेयुः ।

भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम ।

(५९) लिङाशिषि ।३।४।११६।।

आशिषि लिङस्तिङ् आर्धधातुकसंज्ञः स्यात् ।

भू धातु से विध्यादि अर्थों में लिङ् लकार, प्रथम पुरुषैक बचन की विवक्षा में लिङ् के स्थान में तिप् प्रत्यय, 'इतश्च' सूत्र से इकार लोप, शप्, गुण, अवादेश, परस्मैपद तिप् प्रत्यय को 'यासुडिति' सूत्र से यासुट् का आगम, तब 'भव यास् त्' इस स्थिति में" लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य, सूत्र से सार्वधातुक लिङ्—यास्त् के अवयव सकार का लोप प्राप्त हुआ, 'अतोयेयः' सूत्र से अदन्त अंग 'भव' से परे सार्वधातुक लिङ् 'यास्त्' के अवयव यास् को इय् आदेश, तब 'भव+इय् त्' इस स्थिति में आद्गुणः सूत्र से अ+इ को एकार गुण, 'भवेय् त्' इस स्थिति में 'लोपो व्योर्वलि' सूत्र से वल् प्रत्याहार त् परे यकार का लोप होकर 'भवेत्' रूप बनेगा ।

(लिङ् लकार सार्वधातुक लकार है, 'भू+ति' इस स्थिति में ही यहाँ सार्वधातुक संज्ञा हो जाती है, यासुट् का आगम टित् होने से लिङ् स्थानिक तिप् का ही अवयव बनता है, क्योंकि 'यदागमास्तद् गुणी-भूता स्तद् ग्रहणेनैव गृह्यन्ते' इस परिभाषा से जो आगम जिसको होता है वह उसी का अवयव बनता है, और 'यास्त्' यह भी स्थानिवद्भाव से लिङ् ही है अतएव सार्वधातुक लिङ् के अनन्त्य सकार का लोप प्राप्त होता है ।

प्रथम पुरुष द्विवचन में पूर्ववत् लिङ्, तस्, शप्, गुण, अवादेश, यास्, तस् को 'तस्थस्थ मिपां' सूत्र से ताम् आदेश, यास् को इय्, गुण, य लोप होकर भवेताम् रूप बनेगा ।

बहुवचन में पूर्ववत्, लिङ्, झि, शप् गुण, अवादेश, यास्, इय्, गुण, "भवेय् झि" इस स्थिति में ।

झेरिति—लिङ् के झि को जुस् आदेश हो ।

उक्त स्थिति में झि को जुस् आदेश, 'चुटू' सूत्र से जकार की इत्संज्ञा—लोप, सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'भवेयुः' रूप बनेगा ।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् 'भवेय्+सिप्' इस स्थिति में इतश्च से इकार लोप 'लोपोव्योर्वलि' यकार लोप, तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर भवेः रूप बनेगा ।

द्विवचन में पूर्ववत् 'भवेय् थस्' थस् को तम् आदेश, यकार लोप होकर भवेतम्, बहुवचन में 'भवेय् थ' थ को 'त' आदेश, यकार लोप होकर भवेत रूप बनता है ।

(६०) किदाशिषि ।३।४।१०४।।

आशिषि लिङो यासुट् कित्

'स्को: संयोगाद्यो:' इति सलोपः ।

(६१) ग्क्ङिति च ।१।१।५।।

गित् कित् ङित् निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः ।

भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः । भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त ।

भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म ।

उत्तम पुरुष एकवचन में मिप्, मिप् को अम् आदेश, 'भवेय्+अम्' इस स्थिति में बल् प्रत्याहार आगे न मिलने से यलोप न होगा, भवेयम्, द्विवचन में 'भवेय् वस्' यलोप, 'नित्यंङितः' प्रत्यय के सकार का लोप होकर भवेव, बहुवचन में मस् प्रत्यय, 'भवेय् मस्' इस स्थिति में यलोप और सलोप होकर, भवेम यह रूप होगा ।

विध्यादि छः अर्थों में प्रयुक्त लिङ् लकार विधि-लिङ् कहा जाता है, और यह सार्वधातुक लकार होता है । किन्तु आशीर्वाद अर्थ में प्रयुक्त लिङ् आशीर्लिङ के नाम से एक पृथक लकार ही कहा जाता है, इस आशीर्लिङ् की आर्धधातुक संज्ञा होती है, और इस लकार में होने वाला यासुट् का आगम भी कित् होता है, अतः इन दोनों लकारों के रूपों में बड़ा अन्तर हो जाता है ।

लिङिति—आशीर्वादार्थ में प्रयुक्त लिङ् के स्थान में होने वाले तिङ् प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा हो ।

किदिति—आशीर्वादार्थ लिङ् में होने वाला यासुट् का आगम कित् हो ।

स्कोरिति—'स्को: संयोगाद्योरन्ते च' सूत्र से पदान्त संयोग के आदि सकार का लोप होता है ।

ग्क्ङिति चेति—गित् कित् और ङित् प्रत्ययों के आगे रहते, इग्लक्षण गुण वृद्धि न हों ।

'सार्वधातुकार्धधातुकयो:' 'पुगन्त लघूपधस्य च' इत्यादि सूत्रों में "इको गुण वृद्धी" सूत्र से 'इकः' की अनुवृत्ति होती है अतः इनके द्वारा विधीयमान गुण तथान्य सूत्रों से विधीयमान वृद्धि इग्लक्षण गुण वृद्धि कहे जाते हैं, जिन सूत्रों में जैसे 'आद्गुणः वृद्धिरेचि' आदि में 'इकः की अनुवृत्ति नहीं होती, वहाँ ये इग्लक्षण गुण वृद्धि नहीं कहलाते, 'ग्क्ङिति' सूत्र केवल इग्लक्षण गुण वृद्धि का ही निषेध करता है, अन्य का नहीं ।'

भू धातु से आशीर्लिङ्, के स्थान में प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय, 'इतश्च' से इकार लोप, 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से यासुट् का आगम, 'लिङाशिषि' सूत्र से आशीर्लिङ् के स्थान में होने वाले तिबादि प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा होती है, और इन्हीं तिबादिक को यासुट् का आगम भी होता है,

(६२) लुङ् ।३।८।११०।।
भूतार्थे धातो र्लुङ् स्यात् ।
(६३) माङि लुङ् ।३।३।१७५।।
सर्वलकारापवादः ।
(६४) स्मोत्तरे लङ् च ।३।३।१७६।।
स्मोत्तरे माङि लङ् स्यात्, चात् लुङ् ।

अतः 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से यहाँ अकार को गुण प्राप्त होता है, किन्तु 'किदाशिषि' सूत्र से आशीर्लिङ् का यासुट् कित् हो जाता है, फलतः 'ग्क्ङितिच' सूत्र से गुण का निषेध हो जाता है। आर्धधातुक संज्ञा होने से यहाँ सार्वधातुक संज्ञा नहीं होती, अतः शप् प्रत्यय भी नहीं होता। फलतः 'भू यास्त्' इस स्थिति में 'स्कोः' सूत्र से सकार का लोप होकर 'भूयात्' यह रूप होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् लिङ्, तस्, यास्, यास् के कित् होने से गुणाभाव, तस् को ताम् आदेश होकर भूयास्ताम्, बहुवचन में पूर्ववत् 'भूयास् झि' इस स्थिति में 'झेर्जुस्' सूत्र से झि को जुस् आदेश, होकर भूयासुः, रूप होगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में 'भूयास् सि' इस स्थिति में 'इतश्च' से इकार लोप, पूर्व सकार का संयोगादि लोप, द्वितीय सकार का रुत्व विसर्ग होकर भूयाः, द्विवचन में 'भूयास् थस्' थस् को तम् आदेश होकर भूयास्तम्, बहुवचन में 'भूयास् थ,' थ को त आदेश होकर भूयास्त रूप होगे।

भूयास्ताम् भूयास्तम् भूयास्त आदि में सकार लोप नहीं होता क्योंकि यद्यपि यहाँ संयोगादि स् है तथापि वह पदान्त नहीं है।

ग्क्ङिति चेति सूत्र में ङित् में गुण निषेध का उदाहरण 'इतः' है इण् धातु से तस् प्रत्यय करने पर सार्वधातुकमपित्' सूत्र से यह तस् ङिद्वत् हो जाता है, अतः यहाँ गुण नहीं होता, गित् का उदाहरण ग्स्नु प्रत्यय है, यहाँ ग् इत्संज्ञक है अतः इस प्रत्यय के परे भी इससे गुण का निषेध होता है।

उत्तम पुरुष एकवचन में 'भूयास् मिप्' मिप् को अम् आदेश होकर भूयासम्, द्विवचन में नित्यं ङितः से वस् प्रत्यय के सकार का लोप होकर 'भूयास्व' बहुवचन में भी सकार लोप होकर भूयास्म रूप बनते हैं।

लुङिति—(सामान्य) भूत कालिक क्रियार्थवृत्ति धातु से लुङ् लकार हो।

माङीति—माङ् उपपद रहते धातु से लुङ् लकार हो।

सर्वेति—यह सूत्र सभी अन्य लकारों का अपवाद होने से बाधक है अर्थात् अन्य लकारों के विषय में भी माङ् उपपद रहते लुङ् लकार ही होता है।

"क्लैव्यं मा स्म गमः, शोकं वृथा मा कृथाः" इन वाक्यों में लोट् और लिङ् के विषय में भी माङ् के योग में लुङ् लकार ही हुआ है, यद्यपि यहाँ भूतकाल नहीं है। माङ् के योग में ही लुङ् लकार का प्रयोग होता है किन्तु जहाँ निषेधार्थक 'मा'

(६५) च्लि लुङि ।३।१।४३।।

शवाप्द्यवादः ।

(६६) च्लेः सिच् ।३।१।४४।।

इचावितौ ।

(६७) गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ।२।४।७७।।

एभ्यः सिचो लुक् स्यात् ।

'गा-पौ' इह इणादेश-पिबती गृह्येते ।

अव्यय का प्रयोग होगा, वहाँ तो लोट् लिङ् आदि अन्य लकार भी होंगे, जैसे— असत्यं मा वद मा वदेत् वा, यहाँ निषेधार्थक 'मा' है, माङ् नहीं, अतः लोट् और लिङ् का प्रयोग है।

स्मोत्तरे इति—स्म परक माङ् उपपद रहते धातु से लङ् लकार हो और चकारात् लुङ् भी हो।

"मा स्म भवत् भूत् वा" इस उदाहरण में स्म परक माङ् उपपद भू धातु से लङ् लकार "भवत् (अभवत्) भी हुआ है और लुङ् लकार भूत् (अभूत्) भी हुआ है। यहाँ भवत् और भूत् ये क्रमशः लङ् एवं लुङ् लकार के प्रथम पुरुषैक वचन के रूप हैं अर्थात् यहाँ इन्हें क्रमशः अभवत् और अभूत् समझना चाहिए, माङ् के योग में धातु के पूर्व अट् का आगम नहीं होता अतएव यहाँ माङ् के योग में अट् रहित भवत् एवं भूत् का प्रयोग है।

च्लि इति—लुङ् लकार परे रहते धातु से च्लि प्रत्यय होता है।

यह च्लि प्रत्यय शप् श श्यन् आदि सभी विकरणों का अपवाद होने से बाधक है। अतः लुङ् लकार में च्लि होने के कारण शप् न होगा।

भू धातु से सामान्य भूत काल में लुङ् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में लुङ् के स्थान में तिप् प्रत्यय 'इतश्च' से इकार लोप, "लुङ् लङ् लृङ् क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से तिप् आदेश होने के पूर्व ही धातु के पूर्व अट् का आगम, 'अभूत्' इस स्थिति में सार्वधातुक तिप् परे रहते प्राप्त शप् को बाधकर 'च्लि लुङि' सूत्र से च्लि प्रत्यय तब 'अ भू च्लि त्' इस स्थिति में—

च्लेः सिजिति—च्लि को सिच् आदेश हो,

इचावितौ—अर्थात् सिच् के इ और च् की इत् संज्ञा और लोप होकर स् शेष रहता है। अतः 'अ भू स् त्' इस स्थिति में—

(६८) भू सुवोस्तिङि ।७।३।८८।।

भू, सू, एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न ।

अभूत्, अभूताम्, अभूवन् ।

अभूः, अभूतम्, अभूत ।

अभूवम्, अभूव, अभूम ।

(६९) न माङ्योगे ।६।४।७४।।

अडाटौ न स्तः ।

मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् । मा स्म भूत् ।

गातीति—गा, स्था, घु संज्ञक धातु, पा और भू धातुओं से परे सिच् का लोप हो ।

गापाविति—सूत्र में 'गा' से इण् धातु के स्थान में होने वाले 'गा' जो कि 'इणो गा लुङि' सूत्र द्वारा लुङ् लकार में इण् के स्थान में होता है, ग्रहण है, अन्य 'गै शब्दे' आदि धातु का नहीं । इसी प्रकार 'पा' शब्द से 'पा पाने' धातु का ही ग्रहण है, जिसका रूप पिबति' बनता है, 'पा' से पा रक्षणे का यहाँ ग्रहण नहीं है, उसका रूप 'पाति' बनता है ।

दा रूप और धा रूप धातुओं की घु संज्ञा होती है । उक्त स्थिति अर्थात् 'अ भू स् त्' में प्रकृत सूत्र से सिच् (स्) का लोप होकर 'अ भू त्' इस स्थिति में यहाँ सार्वधातुक 'त्' परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से गुण प्राप्त होता है, अग्रिम सूत्र गुण का निषेध करता है ।

भूसुवोरिति—भू और सू धातुओं को सार्वधातुक तिङ् परे रहते गुण नहीं होता ।

उक्त स्थिति में गुण का निषेध प्रकृत सूत्र द्वारा होने पर **'अभूत्'** रूप बनता है ।

द्विवचन में पूर्ववत् 'अ भू स् तस्) इस स्थिति में 'गातीति' सूत्र से सिच् का लोप, तस् को ताम् आदेश होकर **'अभूताम्'** बहुवचन में 'अ भू स् झि' इस स्थिति में इकार 'लोप' झ् को अन्त आदेश, सिच् का लोप' 'भुवो वुग् लुङ्लिटोः' सूत्र से वुक् (व्) का आगम, 'अ भू व् अन्त्' इस स्थिति में तकार का संयोगान्त लोप होकर **अभूवन्** रूप बनता है ।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् 'अ भू स् सिप्' इस स्थिति में इकार का लोप, सिच् का लोप, सकार को रुत्व विसर्ग करके अभूः, द्विवचन में थस् को तम् आदेश करके अभूतम्, बहुवचन में थ को त आदेश कर अभूत रूप बनते हैं ।

उत्तम पुरुष एकवचन में अ भू स् मिप्, मिप् को अम् आदेश, सिच् लोप, वुक् (व) का आगम, अभूवम्, द्विवचन में पूर्ववत् 'अ भू स वस्' इस स्थिति में सिच्

(७०) लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ।३।३।३॥

हेतु-हेतु मद् भावादि लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् ।

अभविष्यत्, अभविष्यताम्, अभविष्यन् ।

अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत ।

अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम् ।

सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्—इत्यादि ज्ञेयम् ।

लोप, 'नित्यं ङितः' प्रत्यय के सकार का लोप अभूव, बहुवचन में मस् प्रत्यय, सकार लोप आदि होकर अभूम रूप बनते हैं ।

न माङिति—माङ् के योग में धातु से पूर्व अट् और आट् के आगम नहीं होते हैं ।

"मा भवान् भूत्" यहाँ, माङ् के योग में लुङ् लकार का 'अभूत्' रूप होना था, पर प्रकृत सूत्र से माङ् के योग में अट् का आगम न होने से 'भूत्' यही प्रयोग हुआ है ।

"मा स्म भवत्" यहाँ स्म परक माङ् के योग में लङ् लकार का रूप 'अभवत्' होना चाहिये था पर प्रकृत सूत्र से अट् आगम के निषेध होने से 'भवत्' ही प्रयोग हुआ है ।

"मा स्म भूत्" यहाँ पर स्म परक माङ् के योग में लुङ् लकार का रूप 'अभूत्' होना चाहिये था पर प्रकृत सूत्र से अट् आगम के निषेध होने से 'भूत्' ऐसा ही प्रयोग हुआ है ।

लिङिति—लिङ् लकार का जो निमित्त हेतुहेतुमद्भाव आदि होता है, उसमें यदि क्रिया का भविष्यत् काल में होना प्रकट हो तो धातु से लृङ् लकार हो। यदि क्रिया की अनिष्पत्ति अर्थात् असिद्धि या अपूर्णता प्रतीत होती हो ।

उदाहरणार्थ—"कृष्णं नमेत् चेत् सुखं यायात्" यदि कृष्ण को नमस्कार करे तो सुख प्राप्त करे, इस वाक्य में नमस्कार क्रिया और सुख प्राप्ति क्रिया ये दो क्रियायें हैं, नमस्कार क्रिया, सुख प्राप्ति क्रिया की हेतु है, क्योंकि नमन क्रिया से ही सुख प्राप्त होता है । सुख प्राप्ति क्रिया अतएव सहेतुक क्रिया है, क्योंकि इसकी पूर्णता के लिए एक अन्य हेतु की आवश्यकता है, इस प्रकार नमन क्रिया हेतु है और सुख प्राप्ति क्रिया हेतुमती है, इस प्रकार इन दोनों में हेतुहेतुमद्भाव सम्बन्ध है । जहाँ इस प्रकार का हेतुहेतुमद्भाव सम्बन्ध द्योतित होता है, वहाँ "हेतुहेतुमतोर्लिङ्" सूत्र से लिङ् लकार होता है ।

किन्तु जहाँ हेतुहेतुमद्भाव सम्बन्ध स्थल में भविष्यत् काल और क्रिया की असिद्धि प्रतीत होती हो, तब 'हेतु और हेतुमत्' दोनों ही क्रियाओं से लृङ् लकार होगा । जैसे 'सुवृष्टिः चेत् अभविष्यत् तदा सुभिक्षम् अभविष्यत्' अर्थात् यदि अच्छी वर्षा होगी तो सुकाल होगा । अर्थात् यदि अच्छी वर्षा होगी तो सुकाल होगा" इस

अत सातत्यगमने ॥२॥ अतति ।

(७१) अत आदेः ।७।४।७०॥

अभ्यासस्यादे रतो दीर्घः स्यात् ।

आत, आततुः, आतुः ।

आतिथ, आतथुः, आत ।

आत, आतिव, आतिम ।

अतिता, अतिष्यति, अततु ।

वाक्य में प्रथम क्रिया हेतु है, और द्वितीय हेतुमत्, पर इस स्थल पर भविष्यत् और क्रिया की असिद्धि प्रतीत होती है, अतः यहाँ लृङ् लकार के अभविष्यत् रूपों का दोनों ही वाक्यों में प्रयोग किया गया है।

भू धातु से हेतुहेतुमद्भाव सम्बन्ध में भविष्यदर्थ में लृङ् लकार, "लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्तः" सूत्र से धातु के पूर्व अट् (अ) का आगम, प्रथम पुरुषैक वचन विवक्षा में लृङ् को तिप् आदेश, 'इतश्च' इकार का लोप, शप् प्रत्यय को बाध कर 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से स्य प्रत्यय, आर्धधातुक संज्ञा, वलादि आर्धधातुक परे 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से इडागम 'अ भू इ स्य त्' इस स्थिति में 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से अकार को गुण अवादेश, 'आदेशप्रत्यययोः' सूत्र से सकार को षत्व होकर 'अभविष्यत्' रूप बनेगा।

द्विवचन में पूर्ववत् अभविष्य तस्, तस् को ताम् आदेश, अभविष्यताम्, बहुवचन में अभविष्य + झि, इकार का लोप, झ् को अन्त, तकार का संयोगान्त लोप, अभविष्यन् रूप होगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत्, लृङ्, अट्, स्य, इट, गुण, अवादेश, षत्व, सिप् के इकार को लोप, स् को रुत्व विसर्ग होकर अभविष्यः, द्विवचन में थस् को तम् आदेश कर अभविष्यतम्, बहुवचन में थ को त आदेश कर अभविष्यत, रूप होंगे।

उत्तम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् लृङ् मिप्, अट्, स्य, इट् गुण अवादेश षत्व, मिप् को अम् आदेश होकर अभविष्यम्, द्विवचन और बहुवचन में वस् मस् प्रत्ययों के आगे रहते 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र से दीर्घ, 'नित्यंङितः' सूत्र से प्रत्ययों के सकार का लोप होकर क्रमशः अभविष्याव और अभविष्याम रूप होंगे।

यहाँ तक भू धातु के सभी रूपों की सिद्धि का प्रकार बतलाया गया है, रूप सिद्धि में सूत्रों के पौर्वापर्य का ध्यान रखना आवश्यक होता है, क्योंकि सभी कार्य प्रायः किसी न किसी निमित्त को मानकर ही होते हैं, जैसे अट् का आगम, तिबादि आदेश के पूर्व करना चाहिए, षत्व, लोप आदि विधि अन्त में करना चाहिए, प्रत्येक कार्य का निमित्त देखकर ही उस विधि को करना आवश्यक है।

अत इति—अत धातु सातत्य गमन अर्थात् निरन्तर जाने अर्थ में है। इस धातु का अन्तिम अकार (अनुबन्ध) उदात्त एवं इत्संज्ञक है, जिससे कि यह धातु

(७२) आडजादीनाम् ।६।४।२७।।

अजादेरङ्गस्याट् लुङ् लङ् लृङ् क्षु ।

आतत् । अतेत् । अत्यात्, अत्यास्ताम् ।

लुङि सिचि इडागमे कृते—

(७३) अस्तिसिचोऽपृक्ते ।७।३।९६।।

विद्यमानात् सिचः, अस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईड । गमः ।

(७४) इट ईटि ।८।२।२८।।

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादिटि परे ।

(वा) सिज् लोप एकादेश सिद्धो वाच्यः ।

आतीत्, आतिष्टाम् ।

(७५) सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ।३।४।१०९।।

सिचोऽभ्यस्ताद् विदेश्च परस्यङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस् ।

आतिषुः । आतीः, आतिष्टम्, आतिष्ट । आतिसम्, आतिष्व, आतिष्म ।

आतिष्यत् ।

परस्मैपदी है। यदि अकार अनुदात्त होता तो 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' सूत्र से यह धातु आत्मनेपदी होता। इसी प्रकार सभी धातुओं के अनुबन्धों का कोई न कोई फल होता है।

अत् धातु से वर्तमान में लट्, लट् को तिप्, सार्वधातुक संज्ञा, 'कर्तरि शप्' से शप् (अ) होकर अतति, द्विवचन में तस् प्रत्यय, शप् होकर अततः, बहुवचन में झि प्रत्यय, झ् का अन्तादेश, शप् (अतो गुणे) पर रूप होकर अतन्ति।

मध्यम पुरुषैक वचन में सिप्, शप्, अतसि, द्विवचन में थस् शप् अतथः, बहुवचन में थ, शप्, अतथ।

उत्तम पुरुष एकवचन में मिप्, शप्, 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र से दीर्घ-अतामि, द्विवचन में अतावः, बहुवचन में अतामः (दोनों रूपों में दीर्घ और सकार को रुत्व विसर्ग)।

अत आदेरिति—अत् धातु के अभ्यास के आदि अकार को दीर्घ होता है।

अत् धातु से अनद्यतन परोक्षार्थ में लिट् लकार, लिट् के स्थान में प्रथम पुरुष एकवचन में तिप् प्रत्यय, "परस्मैपदानाम्-इत्यादि सूत्र से तिप् को णल् (अ) आदेश, 'लिटि धातोः' सूत्र से अत् अत् द्वित्व, पूर्व अत् की अभ्यास संज्ञा, "हलादिः शेषः" तकार लोप, अभ्यास के अकार को 'अत आदेः' सूत्र से दीर्घ, पुनः 'अकः सवर्णे दीर्घः' से आ+अ को दीर्घ होकर आत रूप बनेगा।

(यदि "अत आदेः" सूत्र से दीर्घ न होता तो 'अतो गुणे' से पररूप हो जाता) द्विवचन में लिट्, तस्, अतुस्, द्वित्व, अभ्यास, हलादिः शेषः, अत आदेः, दीर्घ होकर

आततुः, बहुवचन में झि को उस् आदेश, पूर्ववत् अन्य सभी कार्य होकर आतुः रूप होगा ।

मध्यम पुरुष एकवचन में सिप् को थल् आदेश, पूर्ववत् 'आत्' बनाकर 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट् होकर **आतिथ**, द्विवचन में थस् को अथुस् होकर आतिथुः, बहुवचन में थ को 'अ' करके **आत**, रूप होंगे ।

उत्तम पुरुष में मिप् को णल् (अ) करके **आत**, द्विवचन और बहुवचन में व और म आदेश, इट् होकर आतिव, आतिम रूप होंगे ।

लुट् लकार एकवचन में तिप् को डा आदेश, इट्, तास् प्रत्यय आदि होकर **अतिता**, द्विवचन में रौ, बहुवचने में रस् आदेश होकर **अतितारौ**, **अतितारः** रूप बनेंगे ।

मध्यम और उत्तम पुरुष में कोई विशेष कार्य नहीं होते, अतः ''अतितासि, अतितास्थः, अतितास्थ । अतितास्मि, अतितास्वः, अतितास्मः । रूप बनते हैं ।

लृट् लकार में स्य प्रत्यय, इट् और षत्व होकर निम्नलिखित रूप बनते हैं--

प्र० पु०	अतिष्यति	अतिष्यतः	अतिष्यन्ति ।
म० पु०	अतिष्यसि	अतिष्यथः	अतिष्यथ ।
उ० पु०	अतिष्यामि	अतिष्यावः	अतिष्यामः ।

लोट् लकार में भी कोई विशेष कार्य नहीं होते—

प्र० पु०	अततु अततात्	अतताम्	अतन्तु ।
म० पु०	अत अततात्	अततम्	अतत ।
उ० पु०	अतानि	अताव	अताम ।

आडिति—लुङ् लङ् और लृङ् लकारों के परे अजादि अंग को आट् का आगम हो ।

यह सूत्र 'लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र का अपवाद होने से बाधक हैं, अतः अजादि धातुओं में तो इस सूत्र से धातु के पूर्व आट् (आ) का आगम होगा, शेष हलादि धातुओं में अट् का आगम ही होगा ।

अत् धातु से लङ् लकार, 'आडजादीनाम्' सूत्र से धातु के पूर्व आट् (आ) का आगम, 'आटश्च' सूत्र से 'आ+अ' को आकार वृद्धिः, शप् (अ) 'इतश्च' सूत्र से तिप् के इकार का लोप, **आतत्**, द्विवचन में तस् को ताम्, **आतताम्**, बहुवचन में झ् को अन्त, 'इतश्च' इकार लोप, त् का संयोगान्त लोप होकर 'आतन्' रूप होंगे ।

मध्यम और उत्तम पुरुष में यथा प्राप्त कार्य ही होंगे—

मध्यम पुरुष	आतः	आततम्	आतत ।
उत्तम पुरुष	आतम्	आताव	आताम ।

षिध गत्याम् ३

(७६) ह्रस्वं लघु ।१।४।१०।।

(७७) संयोगे गुरु ।१।४।११।।

संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात् ।

(७८) दीर्घं च ।१।४।१२।।

गुरु स्यात् ।

(७९) पुगन्त लघूपधस्य च ।७।३।८६।।

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।

'धात्वादेः'—इति—सेधति । षत्वम्—सिषेध ।

विधिलिङ् में यासुट् इय आदेश, यकार लोप आदि कार्य सब पूर्ववत् ही होंगे—

प्र० पु०	अतेत्	अतेताम्	अतेयुः ।
म० पु०	अतेः	अतेतम्	अतेत ।
उ० पु०	अतेयम्	अतेव	अतेम ।

आशीर्लिङ् में भी सब सामान्य कार्य ही होंगे—

प्र० पु०	अत्यात्	अत्यास्ताम्	अत्यासुः ।
म० पु०	अत्याः	अत्यास्तम्	अत्यास्त ।
उ० पु०	अत्यासम्	अत्यास्व	अत्यास्म ।

अत् धातु से लुङ् लकार में आट, च्लि को सिच् (स) और 'आर्धधातुकं शेषः' से सिच् की आर्धधातुक संज्ञा, वलादि आर्धधातुक सकार के परे इट् का आगम - आत् इ स् तिप् (त्) इस स्थिति में—

अस्तीति—विद्यमान सिच् और अस् धातु से परे अपृक्त हल् को ईट् का आगम हो।

उक्त स्थिति में सिच् का स् विद्यमान है और अपृक्त हल है त् इसको ईट् (ई) का आगमन होकर "आत् इ स् ई त्" इस स्थिति में—

इट इति—ईट् परे (रहते) इट् से परे सकार का लोप हो।

उक्त स्थिति में प्रकृत सूत्र से सकार का लोप होकर 'आत्' इ ई त्। इस स्थिति में इ + ई को सवर्ण दीर्घ होकर **आतीत्** रूप बनता है। किन्तु यहाँ यह शंका होती है कि 'इट ईट्' सूत्र त्रिपादी का है अतः दीर्घ करते समय वह असिद्ध हो जायेगा तब सकार के व्यवधान होने से दीर्घ कैसे होगा ? इस शंका के निवारणार्थ अग्रिम वार्तिक है—

(वा०) सिज्लोप इति— एकादेश के विषय में सिच् का लोप सिद्ध रहता है।

दीर्घ एकादेश है क्योंकि इ+ई को 'ई' दीर्घ होता है अतः इस एकादेश दीर्घ के करने पर सिच् का लोप असिद्ध न होगा, तब दीर्घ होकर प्रथम पुरुष एक वचन में **आतीत्** रूप बनेगा।

द्विवचन में तस् प्रत्यय पूर्ववत् आ त् इ स् तस्, तस् को ताम् आदेश, 'आ त् इ स् ता म्' इस स्थिति में षत्व, ष्टुत्वेन तकार को टकार होकर आतिष्टाम् रूप बनता है, यहाँ अपृक्त हल न होने से ईट् का आगम न होगा, और ईट् न होने से सकार का लोप भी न होगा।

अत् धातु से प्रथम पुरुष बहुवचन में झि प्रत्यय, सिच् इट् करने पर 'आत् इ स् झि' इस स्थिति में—

सिजभ्यस्तेति—सिच् प्रत्यय, अभ्यस्त संज्ञक जागृ आदि धातुओं एवं विद् धातु से परे ङित् लकार सम्बन्धी झि प्रत्यय को जुस् आदेश हो।

उक्त स्थिति में सिच् से आगे लुङ् लकार सम्बन्धी झि है, उसको प्रकृत सूत्र से जुस् आदेश, जकार की इत् संज्ञा लोप, षत्व, सकार को रुत्व विसर्ग होकर **आतिषुः रूप** बनेगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् लुङ् सिप्, इकार लोप, इट् स् ईट् आदि करके 'आत् इ स् ई स्' इस स्थिति में 'इट ईट्' से सकार लोप, दीर्घ, स् को रुत्व विसर्ग होकर **आतीः**, द्विवचन में थस् को तम् आदेश, आत् इ स् तम् इस स्थिति में षत्व और ष्टुत्व होकर **'आतिष्टम्'** बहुवचन में पूर्ववत् आत् इ स् थ, थ को त आदेश, षत्व ष्टुत्व होकर **आतिष्ट** रूप बनेंगे।

उत्तम पुरुष में मिप्, मिप् को अम् आदेश, पूर्ववत् आत् इ स् अम्' इस स्थिति में षत्व होकर **आतिषम्**, द्विवचन में वस् प्रत्यय, पूर्ववत् 'आत् इ स् व स्' इस स्थिति में 'नित्य ङितः' सकार लोप, षत्व होकर **आतिष्व**, बहुवचन में इसी प्रकार **आतिष्म** रूप होगा।

लुङ् लकार के सम्पूर्ण रूप इस प्रकार बनेंगे—

प्र० पु०	आतीत्	आतिष्टाम्	आतिषुः
म० पु०	आतीः	आतिष्टम्	आतिष्ट
उ० पु०	आतिषम्	आतिष्व	आतिष्म

लृङ् लकार में 'आडजादीनाम्' से आट् का आगम, तिप् 'इतश्च' इकार लोप, स्य, इट्, षत्व होकर **आतिष्यत्** सम्पूर्ण लकार में सामान्य कार्य ही होंगे—

प्र० पु०	आतिष्यत्	आतिष्यताम्	आतिष्यन्
म० पु०	आतिष्यः	आतिष्यतम्	आतिष्यत
उ० पु०	आतिष्यम्	आतिष्याव	आतिष्याम्

षिध इति—षिध धातु का अर्थ 'जाना' है, इसका भी अकार उदात्त एवं इत्संज्ञक है।

ह्रस्वमिति—ह्रस्व की लघु संज्ञा हो।

संयोग इति—संयोग आगे रहते, ह्रस्व की गुरु संज्ञा हो।

दीर्घमिति—दीर्घ वर्ण की भी गुरु संज्ञा हो।

(८०) असंयोगाल्लिट् कित् ।१।२।५।।

असंयोगात् परोऽपित् लिट् कित् स्यात् ।

सिषिधतुः । सिषिधुः । सिषेधिथ, सिषिधथुः, सिषिध । सिषेध, सिषिधिव, सिषिधिम ।

सेधिता । सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् ।

पुगन्तेति—पुगन्त अर्थात् पुक् आगम जिसके अन्त में हो, तथा लघूपध (लघु) वर्ण जिसकी उपधा में हो, इस प्रकार के पुगन्त एवं लघूपध अंग के इक् को गुण हो, सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्ययों के आगे रहते ।

ह्री धातु से ण्यन्त प्रक्रिया में णि प्रत्यय करने पर "अर्तिह्री" इत्यादि सूत्र से पुक् का आगम होकर 'ह्री प् इ ति' इस स्थिति में 'पुगन्त लघूपधस्य च' सूत्र से गुण होकर "ह्रेपयति" रूप बनता है, यहाँ उपधा में लघु वर्ण न होने के कारण इस सूत्र से गुण नहीं हो सकता था क्योंकि 'ई' दीर्घ वर्ण होने से गुरु है, अतः 'पुगन्त' मानकर ही यहाँ गुण हुआ है । लघूपध का उदाहरण षिध् धातु में मिल जाता है, क्योंकि यहाँ उपधा में 'इ' लघु है ।

धात्वादेरिति—'धात्वादेः षः सः' से धातु के आदि षकार का सकार हो जाता है । षिध् धातु के आदि में मूर्धन्य ष है उसका इस सूत्र से सर्वप्रथम दन्त्य स हो जाता है, अतः प्रयोग में दन्त्य सकार का ही प्रयोग होता है ।

उपदेश में अर्थात् धातु पाठ में इस धातु को षोपदेश करने का फल है, इण् अथवा कवर्ग से परे अपदान्त आदेश रूप सकार को 'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र से षत्व करना, क्योंकि 'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र आदेश रूप सकार को अथवा प्रत्ययावयव सकार को ही षत्व करता है, "सिषेध" इस रूप में इण् से परे आदेश रूप सकार मिलने से ही णत्व होता है, यदि धातु को षोपदेश पढ़कर 'धात्वोदः षः सः' सूत्र से ष को स् न करते तो यहाँ षत्व नहीं हो सकता था, यह स प्रत्यय का अवयव भी नहीं है ।

सिध् धातु से लट् प्रथम पुरुष एक वचन में तिप्, शप् और 'पुगन्तेति' सूत्र से लघूपध इकार को गुण हो कर सेधति रूप बनेगा । इस लकार के अन्य रूपों में सभी सामान्य कार्य लट् शप् गुण होकर निम्नलिखित रूप होंगे—

प्र० पु०	सेधति	सेधतः	सेधन्ति ।
म० पु०	सेधसि	सेधथः	सेधथ ।
उ० पु०	सेधामि	सेधावः	सेधामः ।

लिट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में तिप्, णल् (अ) धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य, पुगन्तेति सूत्र से लघूपध को गुण, सिसेध, यहाँ इण् इ से परे आदेश रूप सिध के सकार को 'आदेश प्रत्यययोः' से षत्व होकर **'सिषेध'** रूप बनता है ।

एवं चिती संज्ञाने ।४।

शुच शोके ।५।

गद व्यक्तायां वाचि ।६।

गदति ।

असंयोगादिति—असंयोग से परे अपित् लिट् कित् होता है ।

तिप् सिप् मिप् ही पित् प्रत्यय हैं, शेष अपित् हैं । यह सूत्र असंयोग से परे लिट् स्थानिक अपित् प्रत्ययों को कित् करता है । फलतः 'क्ङिति च' सूत्र से गुण का निषेध होता है ।

द्विवचन में तस् प्रत्यय को अतुस् आदेश, द्वित्वादि कार्य, तस् स्थानिक अतुस् के प्रकृत सूत्र से कित् होने से गुण निषेध तथा षत्व होकर **सिषिधथुः**, बहुवचन में झि को उस् आदेश, द्वित्वादि कार्य, गुणनिषेध एवं षत्व होकर **सिषिधुः** रूप बनते हैं, इसी प्रकार इस लकार के सभी रूपों में उक्त कार्य होकर शेष रूप निम्नलिखित होंगे—

मध्यम पु०	सिषेधिथ	सिषिधथुः	सिषिध ।
	सिषेध	सिषिधिव	सिषिधिम ।

शेष लकारों के रूप अत् धातु के समान बनेंगे, उनकी सिद्धि भी अत् धातु के रूपों के समान ही होगी । इस धातु में पुगन्तेति सूत्र से केवल गुण की ही विशेषता है—

लुट् लकार	प्र० पु०	सेधिता	सेधितारौ	सेधितारः
	म० पु०	सेधितासि	सेधितास्थः	सेधितास्थ
	उ० पु०	सेधितास्मि	सेधितास्वः	सेधितास्मः
लृट् लकार	प्र० पु०	सेधिष्यति	सेधिष्यतः	सेधिष्यन्ति
	म० पु०	सेधिष्यसि	सेधिष्यथः	सेधिष्यथ
	उ० पु०	सेधिष्यामि	सेधिष्यावः	सेधिष्यामः
लोट् लकार	प्र० पु०	सेधतु, तात्	सेधताम्	सेधन्तु
	म० पु०	सेध, तात्	सेधतम्	सेधत
	उ० पु०	सेधानि	सेधाव	सेधाम
लङ् लकार	प्र० पु०	असेधत्	असेधताम्	असेधन्
	म० पु०	असेधः	असेधतम्	असेधत
	उ० पु०	असेधम्	असेधाव	असेधाम
विधि लिङ्	प्र० पु०	सेधेत्	सेधेताम्	सेधेयुः
	म० पु०	सेधेः	सेधेतम्	सेधेत
	उ० पु०	सेधेयाम्	सेधेव	सेधेम

(८१) नेर्गदनदपत् पद्घुमास्यति हन्ति यातिवाति द्रातिप्साति वपतिवहति शाम्यति चिनोति देग्धिषु च ।८।४।१७।।

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य ने रर्णे गदादिषु परेषु । प्रणिगदति ।

आशी लिङ्	प्र० पु०	सिध्यात्	सिध्यास्ताम्	सिध्यासुः
	म० पु०	सिध्याः	सिध्यास्तम्	सिध्यास्त
	उ० पु०	सिध्यासम्	सिध्यास्व	सिध्यास्म
लुङ् लकार	प्र० पु०	असेधीत्	असेधिष्टाम्	असेधिषुः
	म० पु०	असेधीः	असेधिष्टम्	असेधिष्ट
	उ० पु०	असेधिषम्	असेधिष्व	असेधिष्म
लृट् लकार	प्र० पु०	असेधिष्यत्	असेधिष्यताम्	असेधिष्यन्
	म० पु०	असेधिष्यः	असेधिष्यतम्	असेधिष्यत
	उ० पु०	असेधिष्यम्	असेधिष्याव	असेधिष्याम

एवमिति—इसी प्रकार चिती संज्ञाने (संज्ञान=होश में आना) और शुच शोके (चिन्ता या शोक करना) धातुओं के रूप सिध धातु के समान बनेंगे। सिध् में पुगन्त सूत्र से इकार को ए गुण होता है। इसमें भी इकार को ए गुण होगा, शुच् में उकार को ओ गुण होगा, दोनों ही धातुओं में संयोग न होने से 'असंयोगाल्लिट् कित्' से अपित् लिट् भी कित् होगा, और फलतः गुण निषेध होगा, शेष कार्य दोनों ही धातुओं के सभी लकारों में एक समान होंगे। यहाँ संक्षेपतः इन दोनों धातुओं के प्रत्येक लकार के एक-एक रूप लिखे जाते हैं—

चिती संज्ञाने धातु में दीर्घ ईकार अनुबन्ध है, जिसका फल निष्ठा प्रत्यय परे रहते 'श्वीदितो निष्ठायाम्' सूत्र से इट् का निषेध करना है। अत एव क्त प्रत्यय परे इट् का निषेध होने से 'चित्तम्' रूप बनता है। धातु को ईदित् करने का यहाँ यही फल है—

चिती संज्ञाने—

लट्—चेतति, लिट्—चिचेत, लुट्—चेतिता, लृट्—चेतिष्यति, लोट्—चेततु, लङ्—अचेतत्, विधिलिङ्—चेतेत्, आशीर्लिङ्—चित्यात्, लुङ्—अचेतीत्, लृङ्—अचेतिष्यत्।

शुच शोके—

लट्—शोचति, लिट्—शुशोच, लुट्—शोचिता, लृट्—शोचिष्यति, लोट्—शोचतु, लङ्—अशोचत्, विधिलिङ्—शोचेत्, आशीर्लिङ्—शुच्यात्, लुङ्—अशोचीत्, लृङ्—अशोचिष्यत्।

गद-व्यक्तायां वाचि—अर्थात् गद धातु का प्रयोग स्पष्ट बोलने में अर्थ में होता है, केवल मानव की वाणी के लिए ही इसका प्रयोग होगा, पशु पक्षियों का बोलना अस्पष्ट रहता है।

(८२) कुहोश्चुः ।७।४।६२।।

अभ्यास कवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः ।

(८३) अत उपधायाः ।७।२।११६।।

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे । जगाद, जगदतुः, जगदुः । जगदिथ, जगदथुः, जगद ।

गद-धातु से लट् लकार, लट् के स्थान में प्रथम पुरुष एक वचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय, शप् (अ) होकर **गदति** रूप बनेगा, इस लकार के शेष रूपों में भी पूर्ववत् सामान्य कार्य ही होंगे-यथा—

प्र० पु०	गदति	गदतः	गदन्ति
म० पु०	गदसि	गदथः	गदथ
उ० पु०	गदामि	गदावः	गदामः

नेर्गदेति—उपसर्गस्थ निमित्त र् से परे नि उपसर्ग के नकार को णकार हो, गद आदि सूत्रोक्त धातुओं के आगे रहते ।

प्रस्तुत सूत्र में गद (स्पष्ट बोलना) नद (अस्पष्ट बोलना) पत् (गिरना) पद-(चलना दिवादि) घुसंज्ञक दा, धा, आदि धातु, मा (नापना) षो (नाश करना दिवादि) हन् (मारना अदादि) या (जाना अदादि) वा (बहना अदादि) द्रा (चलना अदादि) प्सा (खाना अदादि) वप् (बोना भ्वादि) वह (ले जाना भ्वादि) शम (शान्त होना दिवादि) चि (चयन करना स्वादि) दिह (लीपना अदादि) इन १७ धातुओं का परिगणन किया गया है । इन धातुओं के पूर्व उपसर्गस्थ निमित्त, र, से आगे 'नि' उपसर्ग के नकार का णकार हो जायेगा । इन धातुओं के ठीक पहलें नि और नि से पूर्व र वाला उपसर्ग 'प्र' होगा तभी णत्व होगा। 'अट्कुप्वाङ्' सूत्र समान पद अर्थात् अखण्ड पद के नकार का ही णत्व करता है, यहाँ अखण्ड पद न होने से उससे णत्व सम्भव न था अतः यह सूत्र णत्व करता है ।

प्रणिगदति—यहाँ प्र नि से आगे गद धातु है, अतः प्रकृत सूत्र से नि के न को ण होकर यह रूप बनेगा, इसी प्रकार शेष १६ धातुओं में भी समझना चाहिए ।

कुहोरिति—अभ्यास के कवर्ग को तथा हकार को चवर्ग हो । कवर्ग के पाँचों वर्णों को तो क्रमशः चवर्ग के ५ वर्ण होंगे पर हकार को झकार होगा । झकार को पुनः 'अभ्यासे चर्च' सूत्र से झ को जश् अर्थात् जकार होगा, "जघान" इसी प्रकार जहाँ इससे ख को छ होगा वहाँ पुनः अभ्यासे चर्च से चर्—च होगा जैसे चखान आदि ।

गद-धातु से लिट् लकार, प्रथम पुरुष एक वचन में तिप्, तिप् को णल् (अ) धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'ग गद् अ' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से ग को ज आदेश, 'जगद् अ' इस स्थिति में—

(८४) णलुत्तमो वा ।७।१।९१।।

उत्तमो णल् वा णित् स्यात् ।

जगाद जगद, जगदिव, जगदिम ।

गदिता, गदिष्यति, गदतु, अगदत्, गदेत्, गद्यात्

(८५) अतो हलादे र्लघोः ।७।२।७।।

हलादे र्लघो रकारस्य वृद्धि र्वा इडादौ परस्मैपदे सिचि । अगादीत् अगदीत् । अगदिष्यत् ।

णद् अव्यक्ते शब्दे ।७।

(८६) णो नः ।६।१।६५।।

धात्वादे र्णस्य नः ।

णोपदेशास्तु-अनर्दनाटिनाथ नाधनन्द नक्क नृ नृतः ।

अत उपधायाः—ञित् णित् प्रत्यय परे रहते, धातु की उपधा अकार को वृद्धि हो ।

उक्त स्थिति में धातु का उपधा अकार है 'ग' में अ, णित् प्रत्यय णल् का 'अ' है, अतः 'अ' को आकार वृद्धि होकर **जगाद** रूप बनेगा ।

द्विवचन में तस्, तस् को अतुस्, पूर्ववत् सामान्य कार्य, **जगदतुः** बहुवचन में झि को उस् करके **जगदुः** ।

मध्यम पुरुष एक बचन में सिप् को थल् आदेश, जगद्+थल् इस स्थिति में 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इट्, **जगदिथ**, द्विवचन में अथुस्—**जगदथुः**, बहुवचन में थ को 'अ' करके **जगद** रूप होंगे ।

उत्तम पुरुष एक बचन में मिप् को णल् (अ) करके, जगद् 'अ' इस स्थिति में णित् प्रत्यय आगे होने से, 'अत उपधायाः, से नित्य वृद्धि के प्राप्त होने पर—

णलिति—उत्तम पुरुष का णल् विकल्प से णित् हो, प्रकृत सूत्र से णल् को णित् करने पर उक्त सूत्र से वृद्धि होकर **जगाद** णिदभाव पक्ष में **जगद** ये दो रूप होंगे । द्विवचन में 'जगद् व' इस स्थिति में इट् करके **जगदिव**, बहुवचन में भी इट् करके **जगदिम**, रूप होंगे ।

लुङ् को छोड़कर शेष लकारों के रूपों में कोई विशेष कार्य न होगा, सभी रूप पूर्ववत् बनेंगे, इनके एक एक रूप इस प्रकार हैं—

लुट्—गदिता, लृट—गदिष्यति, लोट—गदतु—तात्, लङ्—अगदत्, विधिलिङ्-गदेत्—आशीलिङ्—गद्यात् ।

लुङ् लकार में अट्, तिप्, इतश्चेति इकार लोप, च्लि को सिच्, सिच् को इडागम, प्रत्यय के अपृक्त तकार को ईट् का आगम, 'अ गद् इ स् ई त्' इस स्थिति में—

(८७) उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ।७।४।१४।।

उपसर्गस्थान्निनित्तात् परस्य णोपदेशस्य धातो र्नस्य णः

प्रणदति, प्रणिनदति । नदति, ननाद ।

(८८) अत एक हल, मध्येऽनादेशादे लिट् ।६।४।१२०।।

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गम् तदवयवस्यासंयुक्त हल् मध्यस्थस्यात एत्वम्, अभ्यास लोपश्च किति लिटि, नेदतुः, नेदुः ।

(८९) थलि च सेटि ।६।४।१२१।।

प्रागुक्तं स्यात् ।

नेदिथ, नेदथुः, नेद, ननाद ननद, नेदिव, नेदिम ।

अत इति—इडादि परस्मैपद सिच् परे रहते, हलादि अंग के अवयव लघु अकार को वृद्धि विकल्प से हो ।

उक्त स्थिति में हलादि अंग-गद् है उसके आगे इडादि सिच् परस्मैपद भी है, अंगावयव लघु अकार ग में 'अ' है, इसको प्रकृत सूत्र से वृद्धि, तथा 'इट ईट्' से सकार लोप और दीर्घ होकर **'अगादीत्'** वृद्धि के अभाव पक्ष में **'अगदीत्'** ये दो रूप बनेंगे । इस लकार के सभी पुरुषों और बचनों में यह वृद्धि विकल्प होने से सर्वत्र दो दो रूप बनेंगे, पर इन रूपों में कोई विशेष कार्य न होकर उक्त धातुओं के समान सामान्य कार्य ही होंगे—

प्र० पु०—अगादीत्—अगदीत् अगादिष्टाम्—अगदिष्टाम्, अगादिषुः—अगदिषुः
म० पु०—अगादीः—अगदीः, अगादिष्टम्—अगदिष्टम्, अगादिष्ट—अगदिष्ट
उ० पु०—अगादिषम् अगदिषम्, अगादिष्व अगदिष्व, अगादिष्म अगदिष्म ।

लृङ् लकार में अगदिष्यत् आदि पूर्ववत् ही रूप बनेंगे ।

णद इति—णद् धातु अस्पष्ट शब्द करने अर्थ में है, इसका प्रयोग पशु-पक्षियों आदि की बोलियों के लिए होता है ।

ण इति—धातु के आदि णकार को नकार हो ।

प्रकृत सूत्र से णद् धातु के आदि णकार को नकार होकर 'नद' का प्रयोग होगा । यह धातु णोपदेश है जिसका फल है, नकार को णकार होना ।

णोपदेशा इति—निम्नलिखित आठ धातुओं को छोड़कर शेष नकारादि धातुयें णोपदेश हैं, जिनके आदि णकार को 'णो नः' सूत्र से सर्वप्रथम नकार हो जाता है ।

(१) नर्द शब्दे, अस्पष्ट बोलने अर्थ में भ्वादि । (२) नट अवस्कन्दने, नाचने अर्थ में चुरादि । (३) नाथृ याञ्चोपतापैश्वर्याणीःषु-मांगने आदि अर्थ में भ्वादि । (४) नाधृ याञ्चादिषु, याचना करने आदि अर्थों में, (५) टुनदि समृद्धी-आनन्दित होने अर्थ में भ्वादि । (६) नक्क नाशने-चुरादि । (७) नॄ नये-ले जाने अर्थ में भ्वादि क्र्यादि । (८) नृती गात्रविक्षेपे-नाचने अर्थ में दिवादि ।

टुनदि समृद्धौ ।८।

(६०) आदिर्ञिटुडवः ।१।३।५।।

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः ।

(६१) इदितो नुम् धातोः ।७।१।५८।।

नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति । नन्दतु । अनन्दत् । नन्देत् । नन्द्यात् । अनन्दीत् । अनन्दिष्यत् ।

उपसर्गादिति—उपसर्ग में स्थित निमित्त र् से परे णोपदेश धातु के नकार को णकार हो, असमास में भी ।

णद् धातु इन उक्त आठ धातुओं से भिन्न है अतः णोपदेश है, अतएव प्र उपसर्गपूर्वक नद् धातु के प्रथम पुरुष एक वचन लट के रूप 'नदति' के आगे रहते प्रकृत सूत्र से नकार को णकार होकर **प्रणदति** रूप बनता है । यदि यह धातु णोपदेश न होता, तो यहाँ न का ण नहीं हो सकता था ।

प्रणिनदति—यहाँ उपसर्ग निमित्त प्र से आगे नि उपसर्ग है और आगे नद धातु का रूप है, अतः "नें र्गदनद—इत्यादि सूत्र से यहाँ नि के न को ण होकर यह रूप बनेगा ।

नद-धातु से लट् लकार में तिप् शप् होकर **नदति** रूप होगा, इस लकार के शेष रूप गद धातु के समान ही, नदति, नदतः, नदन्ति । नदसि, नदथः, नदथ । नदामि, नदावः, नदामः । बनेंगे ।

नद धातु से लिट् लकार, प्रथम पुरुष एक वचन में तिप्, तिप् का णल् (अ) धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'ननद् अ' इस स्थिति में "अत उपधायाः" सूत्र से वृद्धि होकर **ननाद** रूप बनेगा ।

मध्यम पुरुष द्विवचन में तस्, तस् को अतुस्, धातु को द्वित्व, 'नद् नद् अतुस्, इस स्थिति में—

अत इति—जिस अंग के आदि वर्ण के स्थान में लिट् लकार को निमित्त मानकर कोई आदेश न हुआ हो, उसका अवयव, संयोग रहित हल् के साथ वर्तमान जो ह्रस्व अकार उसको एत्व हो, और अभ्यास का लोप भी हो, कित् लिट् आगे रहते ।

इस सूत्र की प्रवृत्ति वहीं होगी जहाँ लिट् को निमित्त मानकर कोई आदेश न हुआ हो, अतएव 'जगदतुः' में यह सूत्र नहीं प्रवृत्त होता, क्योंकि वहाँ ग का ज लिट् लकार को निमित्त मानकर ही हुआ है, नद् धातु में इसकी प्रवृत्ति होगी, क्योंकि यहाँ जो 'णो नः' से ण को न हुआ है, वह निमित्तक है, इसी प्रकार 'धात्वादेः षः स' से जहाँ ष को स होता है, वहाँ भी वह निमित्तिक हो होता है । प्रस्तुत उदाहरण में तस् स्थानिक अतुस् आदेश अपित् होने से 'असंयोगाल्लिट कित्' से कित् है अतः यहाँ

कित् लिट् भी आगे है। अंगावयव असंयुक्त अनादिष्ट हल् मध्यस्थ ह्रस्व अकार भी है, अतः उक्त स्थिति में अभ्यास का लोप तथा अकार का एत्व, प्रकृत सूत्र से होकर, **नेदतुः** रूप बनेगा।

बहुवचन में 'नद् नद् उस्' इस स्थिति में पूर्ववत् अभ्यास लोप और अकार को एत्व होकर **नेदुः** रूप बनेगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में सिप् के स्थान में थल् आदेश, (सिप् स्थानिक होने के कारण थल् आदेश अपित् न होने से कित् नहीं है, अतः यहाँ प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति न होगी) 'नद् नद् थल्' इस स्थिति में—

थलीति—सेट् अर्थात् इट् युक्त थल् परे रहते भी (अत एक—सूत्र द्वारा बतलाई गई स्थिति में) अभ्यास लोप और अकार को एत्व भी होता है।

उक्त स्थिति में वलादि आर्धधातुक थ परे रहते इट् का आगम, 'नद् नद् इ थ' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से सेट थल् परे अभ्यास का लोप और अकार को एत्व होकर **नेदिथ** रूप होगा।

द्विवचन में पूर्वोक्त प्रकार से नद् नद् अथुस् इस स्थिति में (अत एक—इत्यादि सूत्र से, अभ्यास लोप एवं अकार को एत्व होकर **नेदथुः**, बहुवचन में पूर्वोक्त प्रकार से एत्व अभ्यास लोप होकर **नेद** रूप बनेगा।

उत्तम पुरुष एकवचन में मिप् को णल् (अ) धातु को द्वित्व, 'नद् नद् अ' इस स्थिति में कित् न होने के कारण एत्वाभ्यास लोप न होगा, तब अभ्यास कार्य होकर 'न नद् अ' इस स्थिति में 'णलुत्तमो वा' सूत्र से विकल्पतः णित् होने के कारण 'अत उपधायाः' सूत्र से वृद्धि होने पर **ननाद,** अभाव पक्ष में **ननद** ये दो रूप होंगे। द्विवचन में 'नद् नद् व' यहाँ अपित् होने से कित् लिट् परे मिल जाने से, इट् का आगम होकर एत्वाभ्यास लोप होकर **नेदिव** इसी प्रकार बहुवचन में **नेदिम** रूप बनेंगे।

लुट्, लृट्, लोट, लङ्, विधि लिङ्, आशीर्लिङ् के रूपों में कोई विशेषता नहीं है, इनके रूप तथा सिद्धि गद धातु के समान ही होगी, इनके क्रमशः एक एक रूप इस प्रकार बनेंगे—

नदिता, नदिष्यति, नदतु, अनदत्, नदेत्, नद्यात्।

लुङ् लकार में गद धातु के समान ही 'अ नद् इ स् ई त्' इस स्थिति में 'अतोहलादेः,—सूत्र से विकल्पतः वृद्धि होकर अनादीत् और अनदीत् दो रूप बनेंगे, इसके शेष रूप गद धातु के समान होंगे। लृङ् लकार में अनदिष्यत् आदि रूप होंगे।

टुनदि समृद्धौ—इस धातु का अर्थ आनन्दित होना है।

आदिरिति—उपदेश में धातु के आदि में स्थित ञि टु डु की इत् संज्ञा हो (इत्संज्ञा होने से इनका लोप हो जाता है।)

टुनदि धातु में आदि में 'टु' है, अतः प्रकृत सूत्र से इसका लोप हो जायेगा। इस अनुबन्ध का फल है, 'ट्वितोऽथुच्' सूत्र से कृदन्त में अथुच् प्रत्यय होना जिससे कि 'नन्दथुः' रूप बनता है।

अर्च पूजायाम् ।६।

अर्चति ।

(६२) तस्मानुड् द्विहलः ।७।४।७१।।

द्विहलो दीर्घीभूतात् अकारात् परस्य नुट् स्यात् ।

आनर्च, आनर्चतुः ।

अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चतु । आर्चत् । अर्चेत् । अर्च्यात् ।

आर्चीत् । आर्चिष्यत् ।

इस धातु में दूसरा अनुबन्ध है, इकार, इसकी भी इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। इसका फल अग्रिम सूत्र द्वारा बतलाया गया है, इस प्रकार इसमें 'नद्' शेष रहता है।

इदित इतिं—इदित् अर्थात् जिसके इकार की इत् संज्ञा हुई हो, ऐसी धातु को नुम् का आगम हो।

नुम् में उकार मकार की इत्संज्ञा लोप होने से यह मित् आगम है, अतः यह 'मिदचोऽन्त्यात् परः' सूत्र के नियमानुसार धातु के अन्तिम स्वर अर्थात् अकार के बाद होगा, अतः धातु का स्वरूप नन्द् बन जायेगा।

लट् तिप् शिप् होकर नन्दति, नन्दतः नन्दन्ति, नन्दसि, नन्दथः, नन्दथ। नन्दामि, नन्दावः, नन्दामः। रूप होंगे।

लिट् लकार में नुम् हो जाने पर शेष कार्य पूर्ववत् होकर एकवचन में **ननन्द,** द्विवचन में नन्द+अतुस् यहाँ असंयोग न मिलने से एत्वाभ्यास लोप न होगा, शेष अभ्यास कार्य होकर ननन्दतुः आदि रूप होंगे। यथा—

प्र० पु०	ननन्द	ननन्दतुः	ननन्दुः
म० पु०	ननन्दिथ	ननन्दथुः	ननन्द
उ० पु०	ननन्द	ननन्दिव	ननन्दिम।

उपधा में अकार न मिलने के कारण यहाँ अत उपधायाः से वृद्धि भी नहीं होगी।

लुट्—नन्दिता, लृट्—नन्दिष्यति, लोट्—नन्दतु, लङ्—अनन्दत्, लिङ्— नन्देत्, नन्द्यात्।

लुङ में 'अ नन्द् इ स् ई त्' इस स्थिति में लघु अकार न मिलने से (क्योंकि यहाँ संयोग होने से 'त' गुरु हो गया है) "अतो हलादेः' सूत्र से वृद्धि न होगी, 'इट् ईट्' सूत्र से 'स्' लोप होकर एक अनन्दीत् रूप बनेगा। शेष रूप इस प्रकार होंगे—

प्र० पु०	अनन्दीत्	अनन्दिष्टाम्	अनन्दिषुः।
म० पु०	अनन्दीः	अनन्दिष्टम्	अनन्दिष्ट।
उ० पु०	अनन्दिषम्	अनन्दिष्व	अनन्दिष्म।

लृङ् लकार में अनन्दिष्यत् आदि रूप बनेंगे।

अर्च पूजायाम्—अर्च धातु पूजा करने अर्थ में है।

व्रज् गतौ ।१०।।

व्रजति । वव्राज । व्रजिता । व्रजिष्यति । व्रजतु । अव्रजत् । व्रजेत् । व्रज्यात् ।

(६३) वदव्रज हलन्तस्याचः ।७।२।३।।

एषा मचो वृद्धि : सिचि परस्मैपदेषु ।

अव्राजीत् । अव्रजिष्यत् ।

लट् लकार में लट् तिप् शप् होकर—अर्चति, अर्चतः, अर्चन्ति । अर्चसि, अर्चथः, अर्चथ । अर्चामि, अर्चावः अर्चामः ।

तस्मादिति—दो हल वर्ण वाली धातु के दीर्घ हुए अकार से पर को नुट् का आगम हो ।

यहाँ दीर्घ हुए अकार से तात्पर्य है कि जिस धातु में 'अत आदेः' सूत्र से दीर्घ हुआ हो । इसी प्रकार द्विहल् से तात्पर्य है, कि जहाँ एक से अधिक दो या अनेक हल् वर्ण हो । अर्च धातु में र् और च् दो हल हैं ।

लिट् लकार में तिप् को णल् (अ) अर्च को द्वित्व, अभ्यास कार्य होकर 'अ अर्च् अ' इस स्थिति में 'अत आदेः' सूत्र से अभ्यास के अकार को दीर्घ, 'आ अर्च् अ' इस स्थिति में दीर्घ आकार से पर प्रकृत सूत्र से नुट् (न्) का आगम, नुडागम, टित् होने से अर्च् के पूर्व होगा, अतः **आनर्च** यह रूप बनेगा । लिट् लकार के अन्य सभी रूपों में अतुस् आदि आदेश, द्वित्व, अभ्यास कार्य, दीर्घ, नुट् का आगम, ये सभी कार्य यथाक्रम होंगे । थल् व और म आदेशों के परे इट् भी होगा । इस प्रकार इस लकार के रूप निम्नलिखित होंगे—

प्र० पु०	आनर्च	आनर्चतुः	आनर्चुः
म० पु०	आनर्चिथ	आनर्चथुः	आनर्च
उ० पु०	आनर्च	आनर्चिव	आनर्चिम ।

लुट् आदि लकारों में भी पूर्ववत् सामान्य कार्य ही होंगे—लुट्-अर्चिता । लृट्—अर्चिष्यति । लोट्—अर्चतु । लङ्—आर्चत् । लिङ्—अर्चेत्—अर्च्यात् ।

लुङ् लकार में 'आडजादीनाम्' सूत्र से आट् का आगम, वृद्धि, सिच्, इट्, ईट् आदि करने पर ''आर्च् इ स् ई त्' इस स्थिति में इट ईट् से सलोप, दीर्घ होकर आर्चीत् रूप होगा । इसके शेष रूप पूर्ववत् बनेंगे—

प्र० पु०	आर्चीत्	आर्चिष्टाम्	आर्चिषुः
म० पु०	आर्चीः	आर्चिष्टम्	आर्चिष्ट
उ० पु०	आर्चिषम्	आर्चिष्व	आर्चिष्म

लृङ् लकार में आर्चिष्यत् आदि रूप होंगे ।

व्रज गतौ—व्रज् धातु जाने अर्थ में है ।

लट् में तिप् शप् होकर व्रजति, व्रजतः, व्रजन्ति । आदि पूर्ववत् रूप होंगे ।

कटे वर्षावरणयोः ।११।।

कटति । चकाट, चकटतुः । कटिता । कटिष्यति । कटतु, अकटत् । कटेत् । कट्यात् ।

(६४) ह्म्यन्तक्षणश्वस् जागृणिश्व्येदिताम् ।७।२।५।।

ह्म्यन्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धि र्नेडादौ सिचि । अकटीत् । अकटिष्यत् ।

लिट् में तिप् को णल् (अ) धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'व व्रज् अ' इस स्थिति में उपधा वृद्धि होकर वव्राज रूप होगा, इस लकार के शेष रूपों में सामान्य कार्य ही होंगे, थल्, व, म, परे इट् भी होगा । यहाँ 'वव्रजतुः आदि में असंयोग न होने से एत्वाभ्यास लोप भी न होगा—यथा—

वव्राज, वव्रजतुः, वव्रजुः । वव्रजिथ, वव्रजथुः, वव्रज । वव्राज वव्रज, वव्रजिव, वव्रजिम ।

लुट् आदि लकारों में भी कोई विशेष कार्य न होंगे—

व्रजिता । व्रजिष्यति । व्रजतु । अव्रजत् । व्रजेत् । व्रज्यात् ।

वद व्रजेति—वद व्रज् और हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि हो, परस्मैपद-परक सिच् परे रहते ।

सूत्र पठित वद् व्रज् धातु भी यद्यपि हलन्त हैं, हलन्त धातुओं से इन दोनों का भी ग्रहण हो सकता था तथापि इनका ग्रहण यहाँ इसलिए किया गया है कि 'नेटि' सूत्र से जो वृद्धि का निषेध होता है उसका इससे बाध हो सके और वृद्धि हो सके ।

लुङ् लकार में 'अ व्रज् इ स् ई त्' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से वृद्धि होकर तथा इट ईट् से स लोप होकर अव्राजीत् रूप बनता है । शेष रूप—

अव्राजीत्, अव्राजिष्टाम्, अव्राजिषुः । अव्राजीः, अव्राजिष्टम्, अव्राजिष्ट । अव्राजिषम्, अव्राजिष्व, अव्राजिष्म । लृङ् लकार में अव्रजिष्यत् आदि रूप होंगे ।

कटे वर्षावरणयोः—कट् धातु का अर्थ वर्षा और ढकना है । लट् में तिप् शप् होकर कटति आदि रूप बनेंगे । लिट् में तिप् णल् (अ) द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'क कट् अ' इस स्थिति में 'कुहोश्चुः' से अभ्यास के क को च होकर वृद्धि होकर चकाट । 'चकटतुः' आदि में एत्वाभ्यास लोप इसलिए नहीं होता, क्योंकि यहाँ लिट् निमित्तक अभ्यास के क को च होता है । थल्, व, म परे इट्. उत्तम पुरुष एकवचन में वैकल्पिक णित् होने से चकाट चकट दो रूप होंगे—यथा—

चकाट, चकटतुः, चकटुः । चकटिथ, चकटथुः, चकट । चकाट, चकट, चकटिव, चकटिम ।

गुपू रक्षणे । १२।

(६५) गुपू धूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः । ३।१।२८।।

एभ्यः 'आय' प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे ।

(६६) सनाद्यन्ता धातवः । ३।१।३२।।

सनादयः कमे णिङन्ताः प्रत्ययाः अन्ते येषान्ते धातुसंज्ञकाः । धातुत्वाल्लडादयः गोपायति ।

(६७) आयादय आर्धधातुके वा । ३।१।३१।।

आर्धधातुकविवक्षाया मायादयो वा स्युः ।

(वा०) कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः ।

आस्कासोराम् विधानान्मस्य नेत्वम् ।

शेष लकारों में सामान्य कार्य होकर "कटिता । कटिष्यति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् । रूप होंगे ।

ह्म्यन्तेति—हकारान्त, मकारान्त और यकारान्त धातु तथा क्षण् श्वस्, जागृ, ण्यन्त, श्वि, तथा एदित् धातु के अच् को वृद्धि न हो, इडादि सिच् परे रहते ।

हकारान्त यथा मह पूजायाम् लुङि वृद्धि निषेध अमहीत् । मकारान्त—यथा क्रमु पादविक्षेपे लुङि अक्रमीत् । यकारान्त हय गतौ, लुङि—'अहयीत्' इस सूत्र से वृद्धि निषेध । क्षण, हिंसायाम्—लुङि वृद्धि निषेध—अक्षणीत् । श्वस् प्राणने-सांस लेना, वृद्धि निषेध—अश्वसीत् । जागृ निद्राक्षये—जागना, लुङि वृद्धि निषेध—अजागरीत् । ण्यन्त धातुओं से सर्वत्र च्लिको चङ् आदेश होता है, अतः सिच् परे मिलता नहीं, अतः इसके लिए 'णि' ग्रहण व्यर्थ प्रतीत होता है, वेद में अवश्य चङ् का निषेध होने से सिच् मिलता है। अतः इसकी उपयोगिता वहीं है, लोक में नहीं। एदित्—कटे धातु है। श्वि गतिवृद्ध्योः, वृद्धि निषेध—अश्वयीत् ।

लुङ में 'अ कट् इ स् ई त्' इस स्थिति में 'वदव्रज—सूत्र' से प्राप्त वृद्धि का प्रस्तुत सूत्र से निषेध होकर, सलोप—अकटीत्, लृङ् में अकटिष्यत् आदि रूप होंगे।

गुपू रक्षणे—इस धातु का अर्थ रक्षा करना है।

गुपू इति—गुप् (रक्षा करना) धूप्—तप्त करना, विच्छि (जाना) पण और पन (व्यवहार और स्तुति अर्थ) इन धातुओं से आय प्रत्यय हो स्वार्थ में । जो 'प्रत्यय, प्रकृति के अर्थ में कोई विशेषता उत्पन्न नहीं करते, वे स्वार्थिक प्रत्यय कहे जाते हैं आय प्रत्यय भी स्वार्थिक प्रत्यय है । इससे धात्वर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

आय प्रत्यय स्वार्थिक होने से निर्निमित्तक भी है अतः यह अकारान्त प्रत्यय धातु से सबसे पहले आयेगा । तिङ् शित् से भिन्न होने के कारण इस आय प्रत्यय की 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा भी होती है, अतः आर्धधातुक आय प्रत्यय परे

(९८) अतो लोपः । ६।४।४८।।

आर्ध धातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके ।

(९९) आमः । २।४।८१।।

आमः परस्य लुक् ।

(१००) कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि । ३।१।४०।।

आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनु प्र युज्यन्ते । तेषां द्वित्वादि ।

(१०१) उरत् । ७।४।६६।।

अभ्यास ऋवर्णस्यात् स्यात् ।

वृद्धिः । गोपायाञ्चकार । द्वित्वात् परत्वात् यणि प्राप्ते—

(१०२) द्विर्वचनेऽचि । १।१।५९।।

द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये ।

गोपायाञ्चक्रतुः । गोपायाञ्चक्रुः ।

रहते गुप् धातु (गुपू का दीर्घ ऊकार इत् संज्ञक है) के लघूपध उकार को 'पुगन्तेति' सूत्र से गुण होकर 'गोपाय' बन जाने पर—

सनाद्यन्तेति—सन् प्रत्यय से लेकर 'कर्मेणिङ् सूत्र से विहित णिङ् प्रत्यय तक जो १२ प्रत्यय होते हैं, वे जिनके अन्त में होते हैं, उनकी धातु संज्ञा होती है ।

इन बारह प्रत्ययों में आय प्रत्यय भी है, और वह गुप् के अन्त में है, अतः प्रकृत सूत्र से 'गोपाय' को धातु संज्ञा, धातु संज्ञा होने के कारण 'गोपाय' से लट् आदि लकार होंगे ।

गोपाय से धातु संज्ञा, लट् प्रथम पुरुष एकवचन में तिप् प्रत्यय शप् (अ) 'अतो गुणे' से अ+अ को पररूप एकादेश होकर **गोपायति** रूप बनता है। इस लकार के अन्य सभी रूपों की यही प्रक्रिया होगी, शेष सामान्य कार्य होकर "गोपायति, गोपायतः, गोपायन्ति । गोपायसि, गोपायथः, गोपायथ । गोपायामि, गोपायावः, गोपायामः । रूप बनेंगे ।

इसी प्रककार सभी सार्वधातुक लकारों—लट्, लोट्, लङ् और विधि लिङ् में गोपाय की धातु संज्ञा करके लकारों का प्रयोग और तिबादि प्रत्यय होंगे ।

आयादय इति—आर्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में आय प्रत्यय विकल्प से हो ।

(वा) कास्यनेकाच इति—कास् और अनेकाच् धातुओं से आम् हो ।

आसकासोरिति—आस् और कास् को आम् विधान करने से आम् के मकार की इत्संज्ञा नहीं होती ।

इस वचन का तात्पर्य यह है कि यदि **आम्** के मकार की इत् संज्ञा हो जाती तो 'आम्' का आगम मित् कहलाता, फलतः 'मिदचोऽन्त्यात् परः' सूत्र के

नियम के अनुसार आम् का आगम अन्तिम अच् से परे होता, आस् और कास् धातुओं में यदि यह आम् उक्त स्थिति में अन्तिम अच् अर्थात् 'आ' के बाद होता तो 'आ आस्', का 'आ स्' इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ होकर पुनः आस् और कास् ही रहते अर्थात् आम् विधान करना ही व्यर्थ जाता, अतः उक्त वचन से सिद्ध होता है कि आस् और कास् धातुओं से आम् विधान करने से आम् के म् की इत्संज्ञा नहीं होती फलतः मित् न होने के कारण आम् स् के बाद होता है।

गुप् धातु से लिट् लकार की विवक्षा मात्र में 'गुपू-धूप' आदि सूत्र से आय प्रत्यय, पुगन्तेति गुण, 'गोपाय' की धातु संज्ञा, तब लिट् लकार, 'गोपाय' यह धातु अनेकाच् है, अतः 'कास्यनेकाच्' वार्तिक से आम् प्रत्यय। 'लिट् च' सूत्र से लिट् लकार आर्धधातुक है। और तिङ् शित् से भिन्न होने के कारण आम् की भी आर्ध-धातुक संज्ञा है। अतः उक्त स्थिति "गोपाय आम् लिट्" में—

अत इति—आर्धधातुक के उपदेश काल में जो अदन्त अंग, उसका अवयव जो अकार उसका लोप हो।

'लिट् या आम्' इस अर्धधातुक के उपदेश काल में 'गोपाय' यह अदन्त अंग है, इसका अवयव यकारोत्तरवर्ती अकार है, उसका प्रकृत सूत्र से लोप हो जायेगा तब 'गोपाय् आम् लिट्' इस स्थिति में—

आमः इति—आम् से परे लिट् का लोप हो।

प्रकृत सूत्र से लिट् लकार का लोप होने पर 'गोपायाम्' इस स्थिति में—

कृञ् इति—आम् जिसके अन्त में हो उसके परे लिट् परक कृ भू और अस् धातुओं का प्रयोग हो।

तेषामिति—और उन अनुप्रयुक्त (आमन्त के बाद में प्रयुक्त किये गये) कृ भू अस् का द्वित्व आदि कार्य हों। कृ का अनुप्रयोग होने से 'गोपायाम् कृ लिट्' इस स्थिति में लिट् को तिप् और तिप् को णल् (अ) तथा 'लिटिधातोः' सूत्र से कृ कृ द्वित्व करके 'गोपायाम् कृ कृ अ' इस स्थिति में—

उरदिति—अभ्यास के अवयव ऋवर्ण को अत् (अ) आदेश हो।

अतः प्रकृत सूत्र से ऋ को 'अ' और रपर होकर 'हलादिः शेषः से र का लोप होकर 'गोपायाम् क कृ अ' इस स्थिति में 'कुहोश्चुः' सूत्र से क को च आदेश, म् को 'नश्चापदान्तस्य झलि' सूत्र से अनुस्वार और अनुस्वार को 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' सूत्र से चवर्ग के योगमें ञ्, 'गोपायाञ्चकृ अ' इस स्थिति में ऋकार को आर् वृद्धि होकर **'गोपायाञ्चकार'** रूप बनेगा।

द्विवचन में 'गोपायाम् कृ अतुस्' इस स्थिति में कृ को द्वित्व, और ऋ+अ को यण् प्राप्त होता है। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' सूत्र के नियमानुसार, द्वित्व की अपेक्षा यण् के पर होने से, यण् के ही प्राप्त होने पर—

द्विर्वचनेऽचीति—द्वित्वनिमित्तक अच् अर्थात् अजादि प्रत्यय, आगे रहते, यदि द्वित्व कर्तव्य हो, तो अच् के स्थान में आदेश अर्थात् अजादेश न हो।

यण् आदेश अजादेश है, क्योंकि वह इक् के स्थान में होता है।

(१०३) एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ।७।२।१०।।

उपदेशे यो धातु रेकाच्, अनुदात्तश्च तदार्धधातुकस्येण् न ।

उक्त स्थिति में यहाँ द्वित्वनिमित्तक अजादि प्रत्यय अतुस् है, द्वित्व की कर्तव्यता भी है, अतः अजादेश यण् न होगा। तब 'लिटि धातोः' सूत्र से द्वित्व हो जायेगा, द्वित्व होने पर पूर्ववत् 'उरत्' 'हलादिः शेषः' 'कुहोश्चु' मकार को अनुस्वार पर सवर्ण होकर 'गोपायञ्चकृ अतुस् इस स्थिति में यण् होकर (ऋ को र्) **गोपायाञ्चक्रतुः** रूप बनेगा।

यदि द्वित्व से पूर्व यण् हो जाता तो 'क् र' बन जाने पर यह एकाच न रहता क्योंकि यहाँ क् र् दोनों ही हल हैं, एकाच् न रहने से फिर द्वित्व न हो सकता अतः यण् निषेध करना आवश्यक था।

बहुवचन में 'गोपायाञ्चकृ उस् इस स्थिति में यण्, सकार को रुत्व विसर्ग होकर **'गोपायाञ्चक्रुः'** रूप बनेगा।

मध्यम पुरुप एकवचन में पूर्ववत् अन्य यथाप्राप्त सब कार्य कर लेने पर 'गोपायाञ्चकृ थ' इस स्थिति में वलादि आर्धधातुक परे इट् का आगम प्राप्त होने पर—

एकाच इति—उपदेश अवस्था में जो धातु एकाच् तथा अनुदात्त हो, उससे परे आर्धधातुक को इट् का आगम न हो।

प्रस्तुत उदाहरण में कृ धातु एकाच् भी है और अनुदात्त भी है अतः प्रकृत सूत्र से इट् का निषेध होकर, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से ऋकार को अर् गुण होकर **'गोपायाञ्चकर्थ'** रूप बनेगा।

सूत्र सं० १०३ में कृ धातु को एकाच और अनुदात्त बतलाया गया है, 'कृ' धातु तो स्वरूपतः एवं गण पाठतः एकाच् है, पर इसके अनुदात्त होने का कोई प्रमाण नहीं है, धातु पाठ में उदात्तादि स्वरों का निर्देश नहीं मिलता है, अतः धातुओं के उदात्तादि स्वरों के विषय में भाष्यकारादि के वचन ही प्रमाण हैं, इसी के अनुसार निम्नलिखित कारिका में उन अजन्त धातुओं का परिगणन किया गया है, जो कि अजन्त होते हुये भी अनुदात्त नहीं हैं, इससे यह ज्ञात हो जाता है कि कारिका में पठित धातुओं के अतिरिक्त अन्य सभी अजन्त एकाच् धातु अनुदात्त हैं, कृ धातु का इसमें परिगणन नहीं है अतः वह एकाच् एवं अनुदात्त है।

> "ऊदॄदन्तै यौंतिरुक्ष्णु शीस्नु क्षुविडीङ्श्रिभिः ।
> वृङ् वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥"

अर्थात् ऊकारान्त और ॠकारान्त धातु, यु आदि १८ धातुओं को छोड़कर शेष अजन्त एकाच् धातु अनुदात्त कहे गये हैं।

यु आदि १२ धातु निम्नलिखित हैं—

१—यु मिश्रणामिश्रणयोः (मिलाना या अलग करना, अदादि)

२—रु शब्दे (शब्द करना अदादि)
३—क्ष्णु तेजने (तेज करना)
४—शीङ् स्वप्ने (सोना)
५—स्नु प्रस्रवणे (चुवना)
६—नु स्तुतौ (स्तुति करना)
७—टुक्षु शब्दे (शब्द करना छींकना)
८—टुओश्वि गतिवृद्धयोः।
९—डीङ् विहायसागतौ (उड़ना)
१०—श्रिञ् सेवायाम्।
११—वृङ् संभक्तौ (सेवा करना)
१२—वृञ् वरणे (स्वीकार करना)

इसी प्रकार निम्नलिखित हलन्त एकाच धातु भी अनुदात्त हैं—

कान्तेषु—(क् जिनके अन्त में है) **१**—शक्लृ शक्तौ स्वादि।

चान्तेषु ६—धातु—पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्।

छान्तेषु—**१** धातु—प्रच्छ्।

जान्तेषु—**१५** धातु—त्यज्, निजिर्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्ज्, सञ्ज्, सृज्।

दान्तेषु—**१६** धातु—अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्य, भिद्, विद्यति, विनद्, विन्द, शद्, सद्, स्विद्य, स्कन्द्, हद्।

धान्तेषु—**११** धातु—क्रुध्, क्षुध्, बुध्, बन्ध्, युध्, रुध्, राध्, व्यध्, शुध्, साध्, सिध्य।

नान्तेषु—**२** धातु—मन्य, हन्।

पान्तेषु—**१३** धातु—आप्, क्षुप्, क्षिप्, तप्, तिप्-तृप्य, दृप्य, लिप्, लुप्, वप्, शप्, स्वप्, सृप्।

भान्तेषु—**३** धातु—यभ, रभ, लभ्।

मान्तेषु—**४** धातु—गम्, नम्, यम्, रम्।

शान्तेषु—**१०** धातु—क्रुश्, दंश्, दिश्, दृश्, मृश्, रिश्, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश्।

षान्तेषु—**११** धातु—कृष्, त्विष्, तुष्, द्विष्, दुष्, पुष्य, पिष्, विष्, शिष्, शुष्, श्लिष्।

सान्तेषु—**२** धातु—घस्, बसती।

हान्तेषु—**८** धातु—दह, दिह्, दुह्, नह्, मिह्, रुह्, लिह्, वह्।

इस प्रकार हलन्त एकाच् धातुओं में १०३ धातु अनुदात्त हैं।

मध्यम पुरुष एकवचन में उक्त प्रकार से इट् के अभाव में **गोपायाञ्चकर्थ**, द्विवचन में अपित् लिट् कित् होने से गुण न होगा अतः यण् होकर **'गोपायाञ्चक्रथुः**, बहुवचन में भी इसी प्रकार गुणाभाव होकर **"गोपायाञ्चक्र"** रूप बनेगा।

(१०४) स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ।७।२।४४।।

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड् वा । जुगोपिथ, जुगोप्थ । गोपायिता गोपिता गोप्ता । गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् । गोपाय्यात्, गुप्यात् । अगोपायीत् ।

उत्तम पुरुष एकवचन में णल्, पूर्ववत् "गोपायाञ्चक्+अ 'णलुत्तमो वा' सूत्र से विकल्पतः णित् होने से वृद्धि पक्ष में **'गोपायाञ्चकार,** अभाव पक्ष में गुण होकर **'गोपायाञ्चकर'**। द्विवचन और बहुवचन में व, म परे **"गोपायाञ्चकृव, गोपायाञ्चकृम"** रूप होंगे।

जब गोपायाम् के आगे भू का अनुप्रयोग होगा तब 'बभूव' पूर्ववत् रूप बनकर सम्पूर्ण रूप 'गोपायाम्बभूव इत्यादि रूप बनेंगे।

जब गोपायाम् के आगे अस् का प्रयोग होगा तब अस् धातु के रूप अत् धातु के समान बनेंगे अर्थात् आस आसतुः आसुः आदि, इनको 'गोपायाम् के साथ जोड़ने से 'गोपायामास आदि रूप बनेंगे।

गुपू धातु के ये तीन प्रकार के रूप उस पक्ष में बनते हैं जबकि आय प्रत्यय होता है, वैकल्पिक होने से जब आय प्रत्यय न होगा तब गुप् धातु को द्वित्व हलादिः शेषः से पकार लोप, 'गु गुप् अ' इस स्थिति में ग को चवर्ग ज तथा उपधा के उ को गुण होकर **जुगोप** रूप बनेगा।

द्विवचन में अतुस् और बहुवचन में उस् प्रत्यय के आगे रहते, अपित् के कित् होने से गुण न होगा, अतः क्रमशः जुगुपतुः और जुगुपुः रूप बनेंगे।

मध्यम पुरुष एक वचन में थल् होने पर, गुण होकर 'जुगोप्—थ" इस स्थिति में—

स्वरतीति—स्वृ धातु (शब्द करना और दुःख देना) सूङ् धातु (पैदा करना, अदादि) सूङ् प्राणि प्रसवे—(पैदा करना दिवादि) धूञ् कम्पने और ऊदित् जिनका ऊकार इत् संज्ञक हो जैसे गुपू आदि, इन सभी धातुओं से वलादि आर्धधातुक परे इट् विकल्प से हो।

प्रकृत सूत्र से इट् होने पर जुगोपिथ, इट् के अभाव में जुगोप्थ रूप बनेंगे।

इसी प्रकार व और म प्रत्ययों के आगे रहते इस सूत्र से विकल्पतः इट् होने से जुगुत्व जुगुप्व, तथा जुगुपिम, जुगुप्म रूप होंगे।

इसके सम्पूर्ण रूप इस प्रकार होंगे—

प्र० पु०	जुगोप	जुगुपतुः	जुगुपुः
म० पु०	जुगोपिथ, जुगोप्थ	जुगुपथुः	जुगुप
उ० पु०	जुगोप, जुगुपिव—जुगुप्व, जुगुपिम—जुगुप्म।		

लुट् लकार और लृट् लकार में क्रमशः तास् और स्य प्रत्यय होते हैं, ये दोनों आर्धधातुक हैं। अतः यहाँ आय प्रत्यय विकल्प से होगा, जब आय प्रत्यय होगा तब

(१०५) नेटि ।७।२।४।।

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धि र्न ।

अगोपीत् । अगौप्सीत् ।

(१०६) झलो झलि ।८।२।२६।।

झलः परस्य सस्य लोपो झलि ।

अगौप्ताम् । अगौप्सुः । अगौप्सीः, अगौप्तम्, अगौप्त ।

अगौप्सम्, अगौप्स्व, अगौप्स्म ।

अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत् ।

'गोपाय' की धातु संज्ञा होगी और धातु के सेट् (इट् सहित) होने से बलादि आर्धधातुक तास् और स्य को इट् होगा। 'अतोलोपः' से यकार के अकार का लोप होगा और जब दोनों लकारों में आय प्रत्यय नहीं होगा, तब बलादि आर्धधातुक तास् और स्य प्रत्यय परे गुपू धातु के ऊदित होने के कारण 'स्वरतीति' सूत्र से विकल्पतः, इट् होगा तब दो रूप बनेंगे, इस प्रकार इन दोनों लकारों में तीन-तीन रूप होंगे, इन रूपों की सिद्धि में पूर्वोक्त सामान्य कार्य ही होंगे—

लुट् लकार में—गोपायिता, गोपिता, गोप्ता इत्यादि ।

लृट लकार में—गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति—आदि ।

लोट् लङ् और विधि लिङ् ये तीनों ही सार्वधातुक लकार हैं, अतः इनमें आय प्रत्यय का विकल्प न होने से केवल लट् लकार की तरह एक-एक ही रूप बनेगा और इनकी सिद्धि भी लट् लकार के रूप की भाँति सामान्य यथाप्राप्त विधि से होगी—

लोट्—गोपायतु, **लङ्**—अगोपायत्, **विधिलिङ्**—गोपायेत् ।

आशीर्लिङ् यद्यपि आर्धधातुक है, तथापि यहाँ यासुट् प्रत्यय के बलादि न होने से इट् का विकल्प न होगा, केवल आय का ही विकल्प होगा, अतः केवल दो रूप बनेंगे, आय पक्ष में 'अतो लोपः' सूत्र से यकार के अकार का लोप होगा—

आशीर्लिङ्—गोपाय्यात् गोपाय्यास्ताम् गोपाय्यासुः । आय के अभाव पक्ष में यासुट् के 'किदाशिषि' सूत्र से कित् होने से कित्वात् गुण निषेध भी होगा—फलतः—गुप्यात् गुप्यास्ताम् गुप्यासुः आदि रूप होंगे ।

लुङ लकार में आर्धधातुक होने से आय और इट् दोनों के विकल्प के कारण तीन-तीन रूप बनते हैं।

लुङ् में आय पक्ष में 'गोपाय' की धातु संज्ञा, अट् का आगम, च्लि को सिच्, इट्, ईट्, सिच् के सकार का लोप होकर अगोपायीत् (आय के अन्तिम अकार का अतो लोपः से लोप हो जाता है। अगोपायिष्टाम् अगोपायिषुः । आदि रूप बनेंगे ।

आय के अभाव पक्ष में स्वरतीति सूत्र से जब इट् होगा, तब इडादि सिच् परे रहते, 'वदव्रज हलन्तस्याचः' सूत्र से वृद्धि प्राप्त होगी, उसका अग्रिम सूत्र से निषेध ।

क्षि क्षये ।१३॥

क्षयति । चिक्षाय, चिक्षियतुः, चिक्षियुः ।

एकाचः-इति निषेधे प्राप्ते—

(१०७) कृ सृ भृ वृ स्तु द्रु स्रु श्रुवो लिटि । ७।२।१३॥

क्रादिभ्य एव लिट इण् न स्यात, अन्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ।

(१०८) अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम् ।२।७।६१॥

उपदेशोऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततः परस्य थल इण् न ।

(१०९) उपदेशेऽत्वतः ।७।२।६८॥

उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण् न ।

(११०) ऋतो भारद्वाजस्य ।७।३।६३॥

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेट्, भारद्वाजस्य मतेन । तेन अन्यस्य स्यादेव ।

नेटीति—इडादि सिच् परे रहते हलन्त धातु के अच् को वृद्धि न हो—

प्रकृत सूत्र से वृद्धि के निषेध होने पर 'पुगन्त' सूत्र से गुण होकर अगोपीत्, अगोपिष्टाम् आदि रूप बनेंगे ।

इट् के अभाव पक्ष में 'इट ईट्' सूत्र से सिच् के सकार का लोप न होगा । इडादि सिच् न मिलने से (नेटि) सूत्र से वृद्धि का निषेध भी न होगा, फलतः 'वदव्रज' सूत्र से वृद्धि होकर **अगौप्सीत्** रूप बनेगा ।

द्विवचन में 'अगौप् स् ताम्' इस स्थिति में ।

झलो झलीति—झल् परे रहते, झल् से परे सकार का लोप हो ।

यहाँ झल् वर्ण प् से परे, स् है उसका प्रकृत सूत्र से झल वर्ण तकार परे रहते लोप होकर **"अगौप्ताम्"** ।

बहुवचन में 'सिजभ्यस्तेति' सूत्र से झि को जुस् होकर **अगौप्सुः** (यहाँ आगे झल वर्ण न मिलने से सकार लोप नहीं होता ।

मध्यम पुरुष एकवचन में सिप्, इकार लोप, ईट् और वृद्धि होकर **अगौप्सीः**, तम् और त प्रत्यय परे झल् वर्ण मिल जाने से सकार का लोप होकर **अगौप्तम्, अगौप्त,** रूप होंगे ।

उत्तम पुरुष एकवचन में मिप् अम् करने पर झल् वर्ण न मिलने से सकार का लोप न होगा, अतः **अगौप्सम्** वस् मस् परे सकार का लोप होकर, व म आगे रहते भी झलो झलि से सिच् के स् को लोप न होगा अतः **अगौप्स्व** और **अगौप्स्म** रूप बनेंगे ।

लृङ् लकार में आर्धधातुक प्रत्यय 'स्य' होता है अतः यहाँ आय का विकल्प तथा स्य के वलादि होने से इट् का भी विकल्प होगा अतः यहाँ तीन-तीन रूप होंगे—

अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत् इत्यादि ।

क्षि क्षये—क्षि धातु का अर्थ नाश होना है।

यह इकारान्त अजन्त धातु है अतः इस धातु के लट् लकार में भू धातु के समान रूप बनेंगे। भू में तो उ को ओ गुण होकर अवादेश होता है, पर इसमें इ को ए गुण होकर अयादेश होगा, तिबादि प्रत्ययों के आगे रहते शप् प्रत्यय होगा, अतः लट् लकार के रूप इस प्रकार होंगे—

प्र० पु०	क्षयति	क्षयतः	क्षयन्ति।
म० पु०	क्षयसि	क्षयथः	क्षयथ।
उ० पु०	क्षयामि	क्षयावः	क्षयामः।

चिक्षाय--लिट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन में णल् (अ) धातु को द्वित्व, 'हलादिः शेषः' से ष् का लोप 'कि क्षि अ' इस स्थिति में 'कुहोश्चुः' से कवर्ग को चवर्ग 'अचो ञ्णिति' से क्षि के इकार को ऐ वृद्धि, ऐ को आय् आदेश होकर **'चिक्षाय'** रूप बनेगा। द्विवचन में अतुस् परे, कित् होने से गुण का निषेध हो जाने के कारण 'अचिश्नु इत्यादि सूत्र से इकार को इयङ् करके **चिक्षियतुः**, बहुवचन में इसी प्रकार उस् परे इयङ् **'चिक्षियुः'** रूप होगा।

मध्यम पुरुष एक वचन में 'चिक्षिथं' इस स्थिति में क्षिधातु के उपदेश में एकाच् और अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' सूत्र से बलादि आर्धधातुक सूत्र से प्राप्त इट् का निषेध प्राप्त होता है। इस विषय के निर्णायक सूत्र आगे लिखे गये हैं—

कृ सृ इत्यादि—कृ सृ आदि सूत्र में परिगणित धातुओं से ही परे लिट् को इट् न हो, इनसे भिन्न धातुओं से तो इट् हो, चाहे वे भले ही अनिट् हों और अनुदात्त भी हों।

बस्तुतः यह नियम सूत्र है, क्योंकि, इस सूत्र में परिगणित कृ सृ आदि धातुओं में तो एकाच—सूत्र से स्वतः ही इण्निषेध सिद्ध है, तो फिर इस सूत्र द्वारा इन धातुओं में इण्निषेध विधान करना व्यर्थ है, अतः व्यर्थ होकर यह सूत्र नियम करता है कि लिट् को यदि 'इण् निषेध हो तो इस सूत्र में परिगणित धातुओं को ही हो, अन्य धातुओं को, चाहे वे अनिट् अनुदात्त ही क्यों न हों, इट् निषेध न हो, अर्थात् वहाँ इट् हो जाय।

क्षि धातु, कृ सृ आदि आठ धातुओं में नहीं है, उनसे भिन्न है, तथा इसका परिगणन 'ऊद्धदन्तैः' आदि कारिका में पठित सेट् अजन्त धातुओं में भी नहीं हैं, अतः यह अनिट् अनुदात्त भी है, अतः यहाँ बलादि आर्ध धातुक इट् प्राप्त होता है, 'कृ सृ' इत्यादि सूत्र नियम इसमें बाधक न होगा, क्योंकि यह उसके विषय से परे है।

लिट् लकार में 'थल् व म' इन तीन प्रत्त्ययों के आगे रहते बलादि आर्धधातुक इट् प्राप्त होता है, इन तीनों ही स्थलों के लिये यह नियम है। किन्तु थल् प्रत्यय परे इट् के विषय में कुछ और विशेष नियम हैं जिनका निर्देश अग्रिम सूत्रों द्वारा किया जा रहा है।

अच इति—उपदेश में जो अजन्त धातु तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् हो उससे परे थल् को इट् न हो।

वस्तुतः 'कृ' आदि नियम सूत्र से प्राप्त इट् का यह निषेधक सूत्र है, प्रकृत में क्षि धातु भी उपदेश में अजन्त है तथा तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् भी हैं, अतः इससे परे थल् को इट् का निषेध प्रकृत सूत्र से प्राप्त होता है।

उक्त सूत्र में अजन्त धातु का ग्रहण होने से 'बिभेदिथ' में यह सूत्र निषेध नहीं करता, क्योंकि भिद् धातु अजन्त नहीं है। यहाँ इट् हो जाता है।

उपदेश में अजन्त कहने का फल यह है कि 'जह्वर्थ' में इस सूत्र से इट् का निषेध हो जाता है, ह्वृ धातु यद्यपि उपदेश में अजन्त है—तथापि गुण करने पर यह अजन्त नहीं रह जाता, फिर भी इसके उपदेश में अजन्त होने के कारण यहाँ इससे इट् निषेध हो जाता है।

यह सूत्र उसी उपदेश में अजन्त धातु से परे थल् को इट् का निषेध करता है जो कि तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् हो, फलतः 'स्वरतीति' सूत्र से जहाँ तास् परे वैकल्पिक इट् होता है, वहाँ यह सूत्र निषेध नहीं करता।

तास् प्रत्यय परे अनिट् होने पर ही यह सूत्र थल् परे इट् निषेध करता है, यदि तास् परे कोई धातु अनिट् नहीं है तो अन्यत्र अनिट् भले ही हो, यह सूत्र निषेध न करेगा। जैसे भू धातु सन् प्रत्यय परे 'सनिग्रह गुहोश्च' से इट् निषेध होने से अनिट् हो जाता है अतः बुभूषति रूप बनता है, 'श्र्युकः किति' से निषेध होने पर 'भूत्वा' बनता है, किन्तु तास् प्रत्यय परे यह अनिट् नहीं होता अतः 'भविता' बनता है, इसीलिए इस धातु के 'बभूविथ' में इट् हो जाता है, यह सूत्र निषेध नहीं करता। इसी प्रकार 'जघसिथ' में भी यह निषेध नहीं करता क्योंकि वहाँ घस् का तास् में प्रयोग ही नहीं होता। थल में ही यह निषेध करता है अतः क्षि धातु से व म परे इट् होकर **चिक्षयिव चिक्षयिम** रूप बनते हैं।

उपदेश इति—उपदेश में जो धातु अकारवान् हो तथा तास् परे नित्य अनिट् हो उससे परे थल् को इट् न हो।

पच् धातु उपदेश में अकारवान् एवं तास् परे नित्य अनिट् है अतः थल् परे इट् का निषेध होकर 'पपक्थ' रूप बनता है, कृष धातु उपदेश में ऋकारवान् है, अकारवान् नहीं, यद्यपि वह 'चकर्षिथ' में गुण होने पर अकारवान् बन गया है तथापि यहाँ इट् का निषेध न होगा। अकारवान् में ही इट् का निषेध होता है, अतएव 'बिभेदिथ' एवं 'रराधिथ' में इट् का निषेध नहीं होता।

तास् परे नित्य अनिट् होने पर ही इट् का निषेध होता है अतः 'जग्रहिथ' में इट् निषेध नहीं होता, ग्रह धातु तास् परे अनिट् नहीं है।

अयमत्र संग्रह :—

अजन्तोऽकारवान वा यस्तास्यनिट् थलिवे ड्यम् ।
ऋदन्त ईडङ् नित्यानिट्, क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥

यद्यपि यह उपदेश में अकारवान् है। सन् प्रत्ययान्त 'जिघृक्षति' में भले ही अनिट् हो गया है। चक्रमिथ में भी इट् हो जाता है, क्योंकि क्रम् धातु तास् में नित्य अनिट् नहीं है, तास् परे आत्मनेपद में तो निषेध होता है पर परस्मैपद में नहीं अतः नित्य अनिट् नहीं है।

यद्यपि इन सूत्रों की क्षि धातु में तो कोई उपयोगिता नहीं है तथापि थल् परे इट् की व्यवस्था के प्रसंग में यहाँ इन सूत्रों का उल्लेख किया गया है।

ऋत इति—भारद्वाज के मत से, तास् में नित्य अनिट् ऋदन्त धातु से परे ही थल् को इट् न हो।

'अचस्तास्वत्' सूत्र से तो सभी अजन्त धातुओं से थल् परे, पाणिनि के मत में, इट् का निषेध होता है, पर भारद्वाज के मत से केवल ऋदन्त धातुओं से ही थल् परे इट् निषेध होता है।

अयमिति—थल् परे इट् के निषेध के विषय में उक्त चार सूत्रों द्वारा जो नियमोपनियम कहलाये गये हैं, संक्षेप की दृष्टि से निम्नलिखित कारिका में उन सबका संग्रह कर दिया गया है :—

अजन्त अथवा अकारवान् जो धातु तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् हो उसको थल् परे इट् विकल्प से होता है और तास् परे नित्य अनिट् यदि ऋदन्त धातु हो तो उसको थल् परे इट् का नित्य निषेध हो, 'कृ सृ' आदि आठ धातुओं से भिन्न अनिट् धातुओं को लिट् लकार के व और म प्रत्यय परे इट् अवश्य हो।

इस सबका कुल निष्कर्ष इतना ही निकलता है, कि ऋदन्त धातुओं को छोड़-कर, सभी अजन्त, हलन्त तथा अकारान्त धातुओं से थल् परे विकल्पतः इट् होता है, ऋदन्त धातुओं से थल् परे इट् कभी भी नहीं होता। कृ सृ आदि आठ धातुओं को छोड़कर सभी अनिट् धातुओं से व और म (लिट् के) परे रहते इट् अवश्य होता है।

अनिट् और सेट् धातुओं को जानने के लिये स्थूल रूप से केवल यह व्यवस्था हो सकती है कि यदि धातु अनेकाच् है अर्थात् उपदेश में ही उसे जागृ चकासृ की तरह अनेकाच् पढ़ा गया है तो वह सेट् होगा और यदि उसे ण्यन्त सन्नन्त आदि में अनेकाच्त्व प्राप्त हो गया है, तब भी वह सेट् होगा। "सनाद्यन्ता धातवः" से जिनकी धातु संज्ञा होती है वे भी प्रायः सेट् ही होते हैं। इन सभी धातुओं से थल् परे इट् हो जायेगा।

एकाच् धातुओं में सबसे पहले "ऊद्धदन्तैः" इत्यादि कारिका से धातु के अनिट् होने का पता कर लेना चाहिये, यदि वह अनिट् है तो थल परे उक्त नियमानुसार विकल्पतः और व म परे नित्य इट् करना चाहिए। कृ सृ आदि आठ धातुओं में तो कहीं भी इट् न होगा, इन आठ से यदि भिन्न हो तो व म में इट् होगा, ऋदन्त

(१११) अकृत् सार्वधातुकयोः ।७।४।२५।। अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यय परे, न तु कृत्सार्वधातुकयोः ।

क्षीयात् ।

(११२) सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु ।७।२।१।।

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि ।

अक्षैसीत् । अक्षेष्यत् ।

धातुओं में थल् परे कहीं भी इट् न होगा । अनिट् धातुओं में ही यह इट् की व्यवस्था देखनी है, सेट् धातुओं में तो सर्वत्र इट् हो ही जाता है । थल् परे भी अजन्त अकारवान् धातुओं में इट् का विकल्प है, इनसे भिन्न में तो नित्य इट् होता ही है ।

क्षि धातु अजन्त एवं अनिट् है अतः थल परे विकल्प से इट् होकर चिक्षयिथ और चिक्षेथ रूप बनते हैं, यहाँ दोनों रूपों में कित् न होने से गुण हो जाता है, अथुस् परे कित् होने से गुण न होकर इयङ् होगा—चिक्षियथुः, अ परे चिक्षिय रूप होंगे ।

उत्तम पुरुष एक बचन में 'अ' परे 'णलुत्तमो वा' से विकल्पतः णित् होने से वृद्धि के विकल्प से चिक्षाय और चिक्षय रूप होंगे, अर्थात् वृद्धि के अभाव में गुण अयादेश हो जायेगा । व और म परे कित् होने से, गुण के अभाव में इट् और इयङ् होकर **चिक्षियिव** और **चिक्षियिम** रूप बनेंगे ।

प्र० पु०	चिक्षाय	चिक्षियतुः	चिक्षियुः ।
म० पु०	चिक्षयिथ चिक्षेथ,	चिक्षियथुः	चिक्षिय ।
उ० पु०	चिक्षाय चिक्षय,	चिक्षियिव	चिक्षियिम ।

लुट् लकार में 'एकाच उपदेशोऽनुदात्तात्' सूत्र से इट् का निषेध होने से आर्धधातुक गुण होकर क्षेता आदि रूप बनते हैं ।

लृट् में भी इट् का पूर्ववत् निषेध एवं गुण होकर क्षेष्यति आदि रूप बनेंगे ।

लोट् लकार में लट् वत् तिबादि प्रत्यय परे सार्वधातुक संज्ञा, शप्, गुण और अयादेश होकर क्षयतु आदि रूप बनेंगे ।

लङ् में भी तिबादि प्रत्यय, शप्, गुण अयादेश, आदि होकर 'अक्षयत्' आदि रूप होंगे ।

विधिलिङ् में 'क्षि यास् त्' इस स्थिति में पूर्ववत् शप्, गुण, इय् यकार लोप आदि होकर क्षयेत् आदि रूप बनेंगे ।

आशीर्लिङ् में 'क्षियात्' इस स्थिति में—

अकृदिति—यकारादि प्रत्यय परे रहते अजन्त अंग को दीर्घ हो, कृत् और सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते न हो ।

'लिङाशिषि' सूत्र से आशीर्लिङ् आर्धधातुक होता है, अतः उस स्थिति में दीर्घ होकर क्षीयात् क्षीयास्ताम् आदि रूप बनेंगे ।

कृत् प्रत्यय परे गुण न होने से 'संचित्य' आदि में दीर्घ नहीं होता, यद्यपि यहाँ

तप् सन्तापे ।१४।।

तपति । ततापा तेपतुः तेपुः । तेपिथ ततप्थ ।

तप्ता । तप्स्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अतप्स्यत् ।

क्रमु पाद विक्षेपे ।१५।।

(११३) वा भ्राश् म्लाश् भ्रमु क्रमु क्लमु त्रसि त्रुटिलषः ।३।१।७०।।

एभ्यः श्यन् वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् ।

ल्यप् होकर यकारादि प्रत्यय मिल जाता है, तथापि कृत् प्रत्यय होने से दीर्घ नहीं होता, विधि लिङ् सर्वत्र सार्वधातुक होता है, अतः इससे कहीं भी दीर्घ नहीं होता।

सिचीति—परस्मैपद सिच् परे रहते इगन्त अंग को वृद्धि हो।

अलोऽन्त्य परिभाषा से यह वृद्धि अंग के अन्तिम इक् को ही होगी।

लुङ् लकार में 'अट्, क्षि, त्' इस स्थिति में च्लि को सिच्, अनिट् होने से इट् न होगा, अस्तिसिचोऽपृक्ते' से ईट् का आगम, 'अ क्षि स् त्' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से 'इ' को ऐ वृद्धि, षत्व होकर 'अक्षैषीत्' रूप बनेगा।

द्विवचन में तस् को ताम्, अतः अपृक्त न मिलने से ईट् का आगम न होगा, सिच् के स् को षत्व त को ष्टुत्वेन टकार होकर **'अक्षैष्टाम्'** बहुवचन में 'सिजभ्यस्तेति सूत्र से झि को जुस्—**अक्षैषुः** आदि रूप सामान्य कार्य विधि से ही बनेंगे—

प्र० पु०	अक्षैषीत्	अक्षैष्टाम्	अक्षैषुः
म० पु०	अक्षैषीः	अक्षैष्टम्	अक्षैष्ट
उ० पु०	अक्षैषम्	अक्षैष्व	अक्षैष्म

लृङ् लकार में स्य और गुण होकर अक्षेष्यत् आदि रूप होंगे।

तप सन्तापे—तप् धातु का अर्थ सन्तप्त होना या जलना है।

लट् में तिबादि प्रत्यय, शप् आदि सामान्य कार्य होकर—तपति, तपतः तपन्ति आदि रूप बनेंगे।

लिट् लकार में तिप् णल् (अ) धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य 'त तप् अ' इस स्थिति में 'अत उपधायाः' से वृद्धि होकर **ततापा**, द्विवचन में अतुस् परे, त तप् अतुस् इस स्थिति में 'अत एक हल मध्येऽनादेशादेर्लिटि' सूत्र से एत्व और अभ्यास लोप होकर **तेपतुः**, बहुवचन में उस् परे भी एत्वाभ्यास लोप होकर **'तेपुः'**।

थल् परे तप् धातु के तास् प्रत्यय परे अनिट अकारवान् होने विकल्पतः इट् होगा, इट् पक्ष में तो 'थलि च सेट् सूत्र से एत्वाभ्यास लोप होकर **तेपिथ** रूप बनेगा, इड भाव पक्ष में **ततप्थ** रूप होगा।

शेष रूप नद धातु के समान **तेपथुः तेप, ततापा, ततप** 'णलुत्तमो वा' **तेपिव तेपिम** इन दोनों रूपों में नित्य इट् होगा।

अनिट् धातु होने से लुट् में तप्ता, लृट में तप्स्यति आदि रूप होंगे। लोट्, लङ्, विधिलिङ् और आशीर्लिङ् में सामान्य कार्य होकर, तपतु। अतपत्। तपेत्। तप्यात् आदि रूप बनेंगे।

(११४) क्रमः परस्मैपदेषु ।७।३।७६।।

क्रमो दीर्घः परस्मैपदे शिति ।

क्राम्यति क्रामति । चक्राम । क्रमिता । क्रमिष्यति । क्राम्यतु । क्रामतु । अक्राम्यतु अक्रामत् । क्राम्येत् क्रामेत् । क्रम्यात् ।

अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् ।

पा पाने ।१६।।

(११५) पा घ्राध्मा स्थाम्ना दाण् दृश्यर्तिसर्तिशद् सदां पिब जिघ्रधम तिष्ठ मन् यच्छ पश्यर्च्छ धौशीय सीदाः ।७।३।७८।।

पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञक शादौ प्रत्यये परे ।

पिबादेशोऽदन्तः तेन न गुण :—पिबति ।

लुङ् लकार में 'अट्, तप् त्' इस स्थिति में सिच्, ईट् होकर 'अ तप् स् ई त्' इस स्थिति में 'वदव्रज हलन्तस्याचः' से वृद्धि होकर **'अताप्सीत्'** रूप होगा। द्विवचन में ताम् होने पर ईट न होगा, अतः **अताप्ताम्,** झि को जुस् होने पर **अताप्सुः** आदि रूप होंगे। यथा—

अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सुः। अताप्सीः, अताप्तम्, अताप्त। अताप्सम्, अताप्स्व, अताप्स्म।

लृङ् लकार में सामान्य विधि से अतप्स्यत् आदि रूप होंगे।

क्रमु पादविक्षेपे—क्रमु धातु का अर्थ चलना है।

वेति—भ्राश् भ्लाश् (चमकना) भ्रम (घूमना) क्रम् (चलना) क्लम् (खिन्नता प्राप्त करना) त्रस् (डरना) त्रुट् (टूटना) और लष् (इच्छा करना) इन धातुओं से कर्तृवाच्य सार्वधातुक परे रहते श्यन् प्रत्यय हो विकल्प से और श्यन् के अभाव पक्ष में शप् प्रत्यय भी हो।

क्रम इति—परस्मै पद शित् प्रत्यय परे रहते क्रम धातु के अच् (स्वर) अर्थात् अकार को दीर्घ हो।

श्यन् और शप् दोनों ही शित् प्रत्यय है अतः दोनों ही प्रत्ययों के परे प्रस्तुत सूत्र दीर्घ होगा।

. श्यन् प्रत्यय का 'य' शेष रहता है और शप् का 'अ'। शित् होने से दोनों ही सार्वधातुक हैं "तिङ् शित् सार्वधातुकम्"। इस प्रकार इस धातु के सार्वधातुक लकारों—लट् लोट् लङ् और विधि लिङ् में दो-दो रूप बनेंगे, शेष लकारों में एक एक। यह धातु सेट् हैं, अतः लिट् लकार के थल्, व, म परे नित्य इट् होगा शेष साधन प्रकार सामान्य ही रहेगा।

लट् लकार में तिप् प्रत्यय 'वा भ्राश्' सूत्र से श्यन् (य) प्रत्यय, 'क्रम् य ति' इस स्थिति में 'क्रमः परस्मै पदेषु' से अकार को दीर्घ होकर क्राम्यति, श्यन् के अभाव पक्ष में दीर्घ होकर क्रामति, ये दो रूप होंगे, शेष रूपों में सामान्य कार्य ही होंगे।

(११६) आत औ णलः ।७।१।३४।।

आदन्ताद् धातोर्णल औकारादेशः स्यात् । पपौ ।।

(११७) आतो लोप इटि च ।६।४।६४।।

अजाद्यो रार्धधातुकयोः क्ङिटोः परयोरातो लोपः ।

पपतुः पपुः । पपिथ पपाथ, पपथुः, पप । पपौ, पपिव, पपिम । पाता । पास्यति । पिबतु । अपिबत् । पिबेत् ।

(११८) एर्लिङि ।६।४।११०।।

घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यात् आर्धधातुके किति लिङि । पेयात् ।

गातिस्था—इति सिचो लुक्—अपात्, अपाताम् ।

(११९) आतः ।३।४।११०।।

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस् ।

(१२०) उस्य पदान्तात् ।६।१।९६।।

अपदान्तादकाराद् उसि पररूप मेकादेशः । अपुः । अपास्यत् ।

लिट् में तिप् णल् (अ) धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य, कुहोश्चुः' क को च, 'अत उपधायाः' से वृद्धिः **चक्राम चक्रमतुः चक्रमुः ।** थल् परे नित्य इट् **चक्रमिथ चक्रमथुः चक्रम ।** 'णलुत्तमो वा' **चक्राम चक्रम, चक्रमिव, चक्रमिम ।**

लुट् और लृट् में सेट् होने से इट् शेष सामान्य कार्य होकर क्रमिता । क्रमिष्यति ।

लोट् आदि सार्वधातुक लकारों में श्यन् शप् का विकल्प होने से क्राम्यतु क्रामतु । अक्राम्यत् अक्रामत् । क्राम्येत, क्रामेत् इत्यादि रूप बनेंगे ।

लुङ् लकार में 'अ क्रम् इ स् ई त्' इस स्थिति में "इट् ईट् से सलोप दीर्घ, यहाँ हलन्तत्वात् प्राप्त वृद्धि का मान्त होने के कारण" ह्म्यन्तक्षण—इत्यादि सूत्र से निषेध होकर अक्रमीत् **अक्रमिष्टाम् अक्रमिषुः, अक्रमीः अक्रमिष्टम् अक्रमिष्ट । अक्रमिषम् अक्रमिष्व अक्रमिष्म** रूप बनेंगे ।

लृङ् लकार में सामान्यतः अक्रमिष्यत् आदि रूप होंगे ।

पा पाने—पा धातु पीने अर्थ में है ।

पाघ्रेति—पा आदि सूत्रोक्त धातुओं को क्रमशः पिब आदि आदेश हों, इत् संज्ञक शकारादि प्रत्यय परे रहते ।

पा को पिब (पीना) । घ्रा को जिघ्र (सूँघना) ध्मा को धम (शंख आदि फूँकना बजाना) । स्था को तिष्ठ (ठहरना(, म्ना को मन (अभ्यास करना) सद् को सीद (जाना नष्ट होना आदि) । दाण् को यच्छ (देना) दृश् को पश्य (देखना) ऋ को ऋच्छ (जाना) सृ को धौ (दौड़ना) शद् को शीय् (नष्ट होना) ।

पिबादेश इति—पा धातु का पिब आदेश अदन्त है अतः लघूपध न होने से यहाँ कहीं भी पिबादेश होने पर गुण नहीं होता, शेष सामान्य कार्य होते हैं।

लट् तिप् शप् ति होने पर प्रकृत सूत्र से पा को पिब आदेश, 'पिब अ ति' इस स्थिति में 'अतोगुणे' सूत्र से अ+अ को पर रूप होकर **पिबति**, तस् परे इसी प्रकार **पिबतः**, झि परे झ् को अन्तादेश,' पिब अ अन्ति' इस स्थिति में पहले अ+अ को पर रूप होकर 'पिब् अ अन्ति' इस स्थिति में पुनः 'अतो गुणे' से अ+अ को पर रूप होकर **पिबन्ति** रूप होगा। इसी प्रकार अन्य रूप **'पिबसि, पिबथः, पिबथ, पिबामि, पिबावः, पिबामः'** बनेंगे।

आत इति—आकारान्त धातु से परे णल् के स्थान में 'औ' आदेश हो।

लिट् लकार में पा धातु से लिट् को तिप्, तिप् को णल् करने पर 'पा णल्' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से णल् को 'औ' आदेश, धातु को द्वित्व, अभ्यास संज्ञा, 'ह्रस्वः' से अभ्यास को ह्रस्व होकर 'पपा औ' इस स्थिति में वृद्धि रूप एकादेश होकर **'पपौ'** रूप बनेगा।

आतो लोप इति—आर्धधातुक जो कित् ङित् अजादि प्रत्यय, तथा आर्धधातुक जो इट्, इनके परे रहते धातु के अवयव आकार का लोप हो।

द्विवचन में पपा अतुस् इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से आकार का लोप होकर **पपतुः** रूप बनेगा।

प्रस्तुत उदाहरण में तस् प्रत्यय स्थानिक अतुस् "असंयोगाल्लिट् कित्" सूत्र से कित् है और अजादि भी है अतः आकार का लोप हुआ है।

बहुवचन में झि को उस्, उस् भी कित् अजादि है अतः उसके परे भी आकार का लोप होकर **'पपुः'** रूप होगा।

मध्यम पुरुष में थल् परे, धातु के अजन्त और अनिट् होने से विकल्पतः इट् होगा, इट् पक्ष में आर्धधातुक इट् परे भी आकार का लोप होकर **पपिथ** रूप होगा, इडभाव पक्ष में **पपाथ** रूप बनेगा।

अथुस् परे पूर्ववत् पपथुः और 'अ' परे **पप** इन दोनों में भी आकार का लोप होकर रूप बनेगा।

उत्तम पुरुष एकवचन में णल् को 'आत औ' सूत्र से 'औ' आदेश कर **पपौ**, व और म परे नित्य इट् और आकार का लोप होकर पपिव, पपिम रूप होंगे।

लुट् लकार में यथा क्रम प्राप्त नियमों से पाता, लृट् में पास्यति आदि रूप होंगे—

लोट् लङ् विधिलिङ् में लट् की ही भाँति पिब आदेश होकर सामान्य नियमानुसार पिबतु। अपिबत्। पिबेत् आदि रूप होंगे।

ए लिंङीति—घु संज्ञक (दा रूप तथा धा रूप धातु) तथा मास्थादि—मा, स्था, गा, पा, हा, सन्—धातुओं को एत्व हो, आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते।

यह एत्व 'अलोऽन्त्य' परिभाषा नियम से अन्त्य वर्ण को होगा।

ग्लै हर्षक्षये ।१७।।

ग्लायति ।

(१२१) आदेच उपदेशेऽशिति ।६।४।४५।।

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वम्, न तु शिति । जग्लौ । ग्लाता । ग्लास्यति । ग्लायतु । अग्लायत । ग्लायेत् ।

(१२२) वान्यस्य संयोगादेः ।६।४।६८।।

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वार्धधातुके किति लिङि ।

ग्लेयात् ग्लायत् ।

आशीर्लिङ् लकार में, लकार के स्थान में हुये तिबादि आदेश आर्धधातुक होते हैं और उनको हुआ यासुट् का आगम 'किदाशिषि' से कित् होता है, अतः आर्धधातुक कित् लिङ् 'यात्' परे पा धातु के आकार को प्रकृत सूत्र से एत्व होकर पेयात् रूप बनेगा । इसके शेष रूप—पेयास्ताम्, पेयासुः । पेयाः, पेयास्तम्, पेयास्त । पेयासम्, पेयास्व । पेयास्म ।

पा धातु से लुङ्, तिप्, 'इतश्च' इकार लोप अट्, च्लि और च्लि को सिच्, धातु के अनिट् होने से इट् न होगा । ''गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु'' सूत्र से सिच् का लोप होकर अपात्, अपाताम् ।

आत इति—जहाँ सिच् का लोप हुआ हो, वहाँ आदन्त धातु से ही परे झि को जुस् आदेश हो ।

लुङ् लकार बहुवचन में ''सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' सूत्र से झि को जुस् प्राप्त था । उसके लिए यह सूत्र नियम करता है कि सिच् के लोप होने पर आकारान्त धातुओं से ही झि को जुस् हो, अन्यत्र न हो, फलतः 'अभूवन्' में यद्यपि सिच् का लोप होता है तथापि आकारान्त न होने से झि को जुस् नहीं होता ।

पा धातु से झि को प्रस्तुत सूत्र से जुस् होकर, 'अपा उस्, इस स्थिति में

उस्य पदान्तात्—अपदान्त अवर्ण से उस् परे पर रूप एकादेश हो ।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से 'आ+उ' को पररूप एकादेश होकर अपुः रूप बनेगा ।

इस लकार के शेष रूप—अपाः अपास्तम् अपास्त, अपासम् अपास्व अपास्म । लृङ् में अपास्यत् आदि रूप होंगे ।

ग्लै हर्षक्षये—ग्लै धातु हर्षक्षय अर्थात् ग्लानि करने अर्थ में है ।

लट् लकार में तिबादि प्रत्यय होकर तथा शप् (अ) ऐ को 'आय्' आदेश होकर 'ग्लायति' आदि रूप बनेंगे । ग्लायति, ग्लायतः, ग्लायन्ति । ग्लायसि, ग्लायथः, ग्लायथ, ग्लायामि, ग्लायावः, ग्लायामः ।

आदेच इति—उपदेश में एजन्त जो धातु उसको आत्व हो, शित् प्रत्यय परे रहते न हो ।

(१२३) यमरमनमातां सक च ।७।२।७३।।

एषां सक्-स्यात्, एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु । अग्लासीत् । अग्लास्यत् ।

ह्वृ कौटिल्ये ।१८।।

(१२४) ऋतश्च संयोगादे र्गुणः ।७।४।१०।।

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि ।

उपधावृद्धिः जह्वार, जह्वरतुः, जह्वरुः । जह्वर्थ, जह्वर्थुः, जह्वर । जह्वार जह्वर, जह्वरिव, जह्वरिम । ह्वर्ता ।

अलोऽन्त्य परिभाषा से धातु के अन्तिम वर्ण ऐ को आत्व होगा । ग्लै धातु उपदेश अवस्था में एजन्त है, अतः इसके ऐ को आत्व होगा । यह आत्व सार्वधातुक लकारों—लट् लोट् लङ् विधिलिङ् में शप् होने से नहीं होता, क्योंकि शप् शित् प्रत्यय है । लिट् आदि शेष छः लकारों में इससे आत्व होता है, क्योंकि वहाँ शप् नहीं होता । आर्धधातुक छः लकारों में आत्व हो जाने से धातु आकारान्त बन जाता है अतः इनमें आकारान्त धातुओं के समान कार्य होते हैं, सार्वधातुक लकारों में ऐ को आय् होकर शेष कार्य पूर्ववत् होते हैं ।

लिट् लकार में लिट् को तिप्, तिप् को णल् होकर, 'आदेच' सूत्र से धातु को आत्व, द्वित्व अभ्यास कार्य, ग ग्ला णल्' इस स्थिति में 'कुहोश्चुः' सूत्र से ग को ज आदेश, 'आत औ णलः' सूत्र से णल् को 'औ' आदेश होकर जग्लौ, अतुस् परे 'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप होकर 'जग्लतुः' झि को उस्, अकार लोप होकर जग्लुः ।

थल् परे वैकल्पिक इट् आकार लोप होकर जग्लिथ इडभाव में जग्लाथ, जग्लथुः, जग्ल । जग्लौ (णल् को औ) इट् होकर जग्लिव, जग्लिम । रूप बनेंगे ।

लुट् लकार में ऐ को आत्व होकर ग्लाता आदि रूप, लृट् में ऐ को आत्व होकर ग्लास्यति आदि रूप बनेंगे । लोट् लकार में ऐ को आय् आदेश होकर ग्लायतु आदि, लङ में शप्, ऐ को आय्, अट् होकर अग्लायत् आदि तथा विधिलिङ् में शप्, आय् यासुट् इय् यकार लोप आदि होकर ग्लायेत् आदि रूप बनेंगे ।

वान्यस्येति—घुसंज्ञक और मास्थादि धातुओं से भिन्न, संयोगादि धातु के आकार को एत्व विकल्प से हो, आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते ।

ग्लै धातु घुसंज्ञक आदि धातुओं से भिन्न है, संयोगादि भी है और 'आदेच' सूत्र से ऐ को आकार होने पर आकारान्त भी बन जाता है, अतः आर्शीलिङ् में या सुट् करने पर 'कित् लिङ् अर्धधातुक परे रहते प्रकृत सूत्र से आकार को एत्व होकर ग्लेयात् आदि रूप बनेंगे, जब एत्व न होगा तो ग्लायात् आदि रूप होंगे । इस प्रकार आशीर्लिङ में दो रूप बनेंगे ।

(१२५) ऋद्धनोः स्ये ।७।२।७०॥

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् । ह्वरिष्यति । ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत् ।

यमरमेति—यम् (निवृत्त होना) रम (क्रीड़ा करना) नम् (प्रणाम करना) और आकारान्त धातुओं को सक् का आगम हो, तथा इनसे परे सिच् को इट् भी हो, परस्मैपद में।

सक् में केवल 'स्' शेष रहता है और सिच् में भी स् शेष रहता है, किन्तु सक् धातु का अवयव होता है पर इट् सदा सिच् को होता है, ग्लै के ऐ को यहाँ भी 'आदेच' सूत्र से आत्व होकर ग्ला बन जाता है।

लुङ् लकार में 'अ ग्ला त्' इस स्थिति में सिच् और "अस्ति सिचोऽपृक्ते' से ईट् का आगम होकर, 'अ ग्ला स् ई त्' इस स्थिति में 'यमरमेति' सूत्र से सक् का आगम और सिच् को इट् होकर 'अ ग्ला स् इ स् त्' इस स्थिति में 'इट ईट्' सूत्र से सिच् के सकार का लोप, दीर्घ होकर 'अग्लासीत्' रूप बनता है। (ग्लै धातु के अनिट होने से सिच् को इट् नहीं हो सकता था अतएव यहाँ इस सूत्र से इट् हुआ है।

द्विवचन में 'अ ग्ला स् इ स् ताम्' इस स्थिति में षत्व, ष्टुत्वेन त को ट करके **अग्लासिष्टाम्** रूप बनेगा।

वस्तुतः प्रथम रूप अर्थात् लुङ् लकार के प्रथम पु० एकवचन में **अग्लासीत्** रूप में सक् और सिच् के पूर्व इट् करके 'इट ईट्, से सिच् लोप करने की अपेक्षा, इसी बात में लाघव था कि सक् और इट् दोनों ही न करते तब भी अनिट् होने के कारण सिच् के लोप के न होने से अग्लासीत् तो रूप बन ही जाता और साधन प्रक्रिया में भी लाघव होता, किन्तु यदि यमरमेति सूत्र से सक् और इट् न किया जाता तो द्विवचन का रूप 'अग्लासिष्टाम्' नहीं बन सकता था, अतः सूत्र की तो आवश्यकता थी ही, अतः उसे एकवचन में भी प्रवृत्त कर दिया गया है, इसमें गौरव और लाघव का कोई प्रश्न नहीं उठता।

बहुवचन में भी उस् परे रहते पूर्ववत् सिच्, सक् इट् सिच् लोप करके अग्लासिषुः रूप बनेगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में सिप् के स् को रुत्व विसर्ग कर अग्लासीः (यहाँ 'इट ईट्' से सिच् लोप होगा)।

द्विवचन और बहुवचन में तम् और त परे' पूर्ववत् सक् इट् सिच् षत्व ष्टुत्व आदि होकर 'अग्लासिष्टम्' अग्लासिष्ट रूप होंगे।

उत्तम पुरुष में भी सभी कार्य सामान्य रूप से होंगे—

प्र० पु०	अग्लासीत्	अग्लासिष्टाम्	अग्लासिषुः
म० पु०	अग्लासीः	अग्लासिष्टम्	अग्लासिष्ट
उ० पु०	अग्लासिषम्	अग्लासिष्व	अग्लासिष्म।

(१२६) गुणोऽर्ति संयोगाद्योः ।७।४।२९।।

अर्तेः संयोगादे ऋदन्तस्य च गुणः स्यात्, यकि यादावार्धधातुके लिङि च। ह्वर्यात् ।

अह्वार्षीत् । अह्वरिष्यत् ।

लृङ् लकार में अग्लास्यत् आदि रूप बनेंगे ।

ह्वृ कौटिल्ये—ह्वृ धातु कुटिल आचरण करने अर्थ में है । लट् लकार में तिबादि प्रत्यय, शप् (अ) तथा 'सार्वधातुक गुण (ऋ को अर्) करके ह्वरति ह्वरतः ह्वरन्ति । ह्वरसि, ह्वरथः ह्वरथ: ह्वरामि, ह्वरावः, ह्वरामः, रूप बनते हैं ।

ऋतश्चेति—ऋदन्त जो संयोगादि अंग उसे गुण हो लिट् परे रहते । (अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्तिम अल् को गुण होगा)

ह्वृ धातु ऋदन्त भी है और संयोगादि भी है, अतः प्रकृत में इसके अन्त्य वर्ण ऋ को लिट् परे रहते ('अर्) गुण होगा ।

ह्वृ धातु से लिट् प्र० पु० एकवचन में लिट् को तिप् और तिप् को णल् (अ) करने पर 'अचो ञ्णिति' सूत्र से यहाँ ऋ को वृद्धि प्राप्त होती है, परत्वात् उसे बाध कर 'ऋतश्चेत्यादि सूत्र से यहाँ ऋ को अर् गुण होकर 'ह्वर्' बन जाता है, द्वित्व और अभ्यास कार्य होने पर 'ह ह्वर् अ' इस स्थिति में, 'कुहोश्चुः' सूत्र से हकार को 'झ' और 'अभ्यासे चर्चे' सूत्र से झ को जश्त्व जकार होकर 'जह्वर् अ' इस स्थिति में ''अत उपधायाः'' सूत्र से उपधा वृद्धि होकर **'जह्वार'** रूप बनता है ।

वस्तुतः यहाँ इस सूत्र द्वारा गुण के अभाव में वृद्धि कर लेने पर भी 'ह्रस्वः' सूत्र से ह्रस्व करके जह्वार ही रूप बन सकता था, अतः इस उदाहरण में यद्यपि इस गुण विधायक सूत्र की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती तथापि इस सूत्र की उपयोगिता 'जह्वरतुः' आदि कित् लिट् परे है, वहाँ गुण के अभाव में 'जह्वरतुः' रूप नहीं बन सकता था। सूत्र की इस उदाहरण में भी प्राप्ति होने से उसका इसमें भी प्रयोग किया गया है ।

अतुस्, उस् अथुस्, अ आदि में अपित् लिट् के कित् होने से, यहाँ आर्धधातुक गुण के निषेध हो जाने से, प्रकृत सूत्र द्वारा ही यहाँ गुण होकर जह्वरतुः, जह्वरुः रूप बनते हैं ।

ह्वृ धातु ऋदन्त है और तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् भी है, अतः 'अचस्ता-स्वत् थल्यनिटो नित्यम्' सूत्र के नियम के अनुसार, तथा ऋदन्त होने से भारद्वाज के मत के अनुसार भी इस धातु से थल् परे रहते इट् नहीं होता, किन्तु इसी धातु के व और म परे रहते क्रादिनियम से नित्य इट् होता है ।

'जह्वर्+थ' इस स्थिति में इट् न होने से **'जह्वर्थ'** रूप बनता है। यद्यपि यहाँ सिप् के पित होने से, कित् न होने के कारण आर्धधातुक गुण हो सकता था, तथापि परत्वात् 'ऋतश्च' सूत्र से ही सर्वप्रथम गुण होता है ।

श्रु श्रवणे ।१६।।

(१२७) श्रुवः शृ च ।३।१।७४।।

श्रुवः 'शृ' इत्यादेशः स्यात् 'श्नु' प्रत्ययश्च । शृणोति ।

(१२८) सार्वधातुकमपित् ।१।२।४।।

अपित् सार्वधातुक ङित् वत् । शृणुतः ।

द्विवचन और बहुवचन में **'जह्वरथुः, जह्वर'** रूप होंगे ।

उत्तम पुरुष एकवचन में 'णलुत्तमो वा' सूत्र से वैकल्पिक णित् होने से, वृद्धि के विकल्प से **जह्वार** और **जह्वर** ये दो रूप होंगे ।

द्विवचन और बहुवचन में व और म परे इट् होकर **जह्वरिव** और **'जह्वरिम'** रूप होंगे ।

लुट लकार में धातु के अनुदात्त अनिट् होने से इट् के अभाव में आर्धधातुक गुण होकर 'ह्वर्ता' आदि रूप सामान्यतः बनते हैं ।

ऋद्धनोरिति—ऋकारान्त (ह्रस्व ऋकारान्त क्योंकि ऋत् में तपर करण है) और हन् धातुओं से परे 'स्य' प्रत्यय को इट् हो ।

ह्वृ धातु ह्रस्व ऋकारन्त है, 'ऊदृदन्तैरित्यादि कारिका में भी पठित नहीं है, अतः यह अनिट् है और हन् धातु हलन्त होने से अनुदात्तों में पठित है अतः यह भी अनिट् है, इसलिये यहाँ स्य प्रत्यय परे इट् सम्भव न था अतः प्रस्तुत सूत्र से इनको इट् का विधान किया गया है ।

लृट् लकार में ह्वृ से तिबादि प्रत्यय, तथा स्य प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से इट् और आर्धधातुक गुण करने पर ह्वरिष्यति आदि रूप बनेंगे ।

सार्वधातुक लकारों—लोट्, लङ्, विधिलिङ् में यथाक्रम सार्वधातुक गुण शप् होकर क्रमशः इन लकारों में 'ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत्' आदि रूप बनेंगे ।

गुण इति—ऋ गतौ धातु और संयोगादि ऋदन्त धातुओं के (अन्त्य अल्) को गुण हो, यक् प्रत्यय परे तथा यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे रहते ।

प्रस्तुत सूत्र द्वारा गुण विधान करने का यह कारण है कि यकारादि आर्धधातुक लिङ् कित् होता है अतः कित्त्वात् यहाँ आर्धधातुक गुण सम्भव न था, क्योंकि आशीर्लिङ् के तिबादि प्रत्ययों की ''किदाशिषि' सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा होती है, अतः लिङ् भी आर्धधातुक ही कहा जायेगा ।

आशीर्लिङ् में 'ह्वृ यात्' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से गुण होकर 'ह्वर्यात्' आदि रूप में बनेंगे ।

लुङ् लकार में 'अ ह्वृ स् ई त्' इस स्थिति में 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' सूत्र से ऋकार को आर् वृद्धि तथा 'आदेशप्रत्यययोः' सूत्र से षत्व होकर 'अह्वार्षीत्' रूप बनेगा । अह्वार्ष्टाम् अह्वार्षुः । अह्वार्षी, अह्वर्ष्टम्, अह्वार्ष्ट, अह्वार्षम्, अह्वार्ष्व, अह्वार्ष्म'' होंगे ।

(१२९) हुश्नुवोः सार्वधातुके ।६।४।८७।।

हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके ।

शृण्वन्ति । शृणोषि, शृणुथः, शृणुथ । शृणोमि ।

(१३०) लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ।६।४।१०७।।

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययस्योकारस्य लोपो वा म्वोः परयोः । शृण्वः शृणुवः, शृण्मः शृणुमः ।

लृङ् लकार में ''ऋद्धनोः स्ये' सूत्र से इट् होकर अह्वरिष्यत् आदि रूप बनेंगे ।

श्रु श्रवणे—श्रु धातु का अर्थ सुनना है ।

श्रुवः-इति—श्रु धातु को 'शृ' आदेश हो और श्नु प्रत्यय भी हो ।

श्नु प्रत्यय के श् की इत् संज्ञा होकर 'नु' शेष रहता है, अतः यह प्रत्यय शित् है, शित् होने से 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से यह सार्वधातुक है, अतएव सार्वधातुक लकारों में ही—लट् लोट् लङ् और विधिलिङ् में ही—प्रकृत सूत्र से श्रु को शृ आदेश और श्नु प्रत्यय भी होगा, अन्य लकारों में नहीं ।

श्नु प्रत्यय शप् प्रत्यय का अपवाद है, अतः शप् को बाधकर इन लकारों में श्नु होगा ।

श्रु धातु से लट् के स्थान में प्र० पु० एकवचन में तिप् प्रत्यय, 'श्रुवः शृ च' सूत्र से श्रु को शृ आदेश और श्नु (नु) प्रत्यय तथा तिप् प्रत्यय के सार्वधातुक होने से सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से उ को ओकार गुण और 'ऋवर्णान्तस्य णत्वं वाच्यम्' वार्तिक से नकार को णकार करके **'शृणोति'** रूप बनता है ।

यहाँ यह शंका होती है कि श्नु प्रत्यय भी तो सार्वधातुक है, अतः उसे निमित्त मानकर शृ के ऋकार को गुण क्यों नहीं होता ? इसका समाधान यह है कि श्नु प्रत्यय अपित् है और 'सार्वधातुकमपित्' सूत्र से वह ङिद्वत् हो जायेगा और फलतः 'क्ङिति च' सूत्र से गुण का निषेध हो जायेगा । इस लकार में सर्वत्र ही ऋकार को गुण न होने का यही समाधान है ।

द्विवचन में तस् प्रत्यय परे 'शृ नु तस्' इस स्थिति में तस् को सार्वधातुक निमित्त मान कर सार्वधातुक गुण नहीं होता क्योंकि—

सार्वधातुकेति—पित् भिन्न सार्वधातुक ङिद् वत् होता है ।

अतः ''क्ङिति च'' से यहाँ गुण का निषेध होने से, सकार का रुत्व विसर्ग होकर 'शृणुतः' रूप बनता है ।

बहुवचन में झि प्रत्यय, झ् को अन्त आदेश, धातु को शृ आदेश श्नु (नु) प्रत्यय होकर 'शृ नु अन्ति' इस स्थिति में—

हुश्नुवोरिति—हु धातु तथा अनेकाच् श्नु प्रत्ययान्त अंग के असंयोगपूर्व उवर्ण को यण् आदेश हो, अजादि सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते ।

शुश्राव, शुश्रुवतुः शुश्रुवुः । शुश्रोथ, शुश्रुवथुः, शुश्रुव । शुश्राव, शुश्रव, शुश्रुव शुश्रुम ।

श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु शृणुतात्, शृणुताम्, शृण्वन्तु ।

(१३१) उतश्च प्रत्ययाद संयोगपूर्वात् ।६।४।१६०॥

असंयोगपूर्वात् प्रत्ययात् उतो हे लुक् ।

शृणु, शृणुतात्, शृणुतम्, शृणुत । गुणावादेशौ-शृणवानि, शृणवाव शृणवाम ।

अशृणोत् अशृणुताम्, अशृण्वन् । अशृणोः, अशृणुतम्, अशृणुत ।

अशृणवम्, अशृण्व अशृणुव, अशृण्म अशृणुम ।

शृणुयात्, शृणुयाताम्, शृणुयुः । शृणुयाः, शृणुयातम्, शृणुयात ।

शृणुयाम्, शृणुयाव शृणुयाम । श्रूयात् । अश्रौषीत्, अश्रोष्यत् ।

उक्त स्थिति में 'अन्ति' अपित् सार्वधातुक है, अतः 'सार्वधातुकमपित्' सूत्र से इसके ङिद् वत् होने से यहाँ गुण का निषेध हो जायेगा। तब यहाँ 'अचिश्नु धातु भ्रुवामित्यादि सूत्र से श्नु के उकार को उवङ् आदेश प्राप्त होगा, इसका निषेधक अग्रिम सूत्र है "हुश्नुवोः' इति, इससे उवङ् को रोक कर उकार को स्वर परे यण् आदेश होकर, तथा नकार को णकार होकर **शृण्वन्ति** रूप बनेगा।

प्रस्तुत उदाहरण में 'शृ नु' यह अनेकाच् श्नु प्रत्ययान्त अंग है, इसका अवयव नु में उ है जो कि संयोगपूर्व भी नहीं है, अजादि सार्वधातुक प्रत्यय अन्ति आगे है, अतः इससे यण् होकर उक्त रूप बनेगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् 'शृ नु सि' इस स्थिति में सिप् के पित् होने के कारण यहाँ नु के 'उ' को सार्वधातुक गुण, न का ण, और स को षत्व होकर **"शृणोषि"** रूप बनेगा।

थस् प्रत्यय के अपित् होने से ङित्वत् होने के कारण सार्वधातुक गुण न होगा अतः **शृणुथः**, थ प्रत्यय परे भी इसी प्रकार **शृणुथ** रूप होगा।

मिप् प्रत्यय परे पित् होने के कारण गुण होकर 'शृणोमि' रूप बनेगा।

लोपश्चेति—वकार और मकार परे रहते, प्रत्यय के असंयोग पूर्व उकार का विकल्प से लोप हो।

द्विवचन और बहुवचन में वस् मस् प्रत्यय परे रहते 'शृ' आदेश और श्नु प्रत्यय होकर 'शृ नु वस्' और 'शृ नु मस्' इस स्थिति में अपित् होने से गुण न होकर शृणुवः और शृणुमः बन जाने पर प्रकृत सूत्र से 'नु' के उकार का लोप होकर शृण्वः लोप भावपक्ष में शृणुवः, और शृण्मः शृणुमः। ये दो-दो रूप बनते हैं।

इस लकार के सम्पूर्ण रूप इस प्रकार होंगे—

प्र० पु०	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
म० प्र०	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृण्वः शृणुवः	शृण्मः शृणुमः।

गम्लृ गतौ ।२०।।

(१३२) इषुगमियमां छः ।७।१।७७।।

एषां छः स्यात् शिति । गच्छति । जगाम ।

लिट् लकार में तिप् णल्, धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य 'शु श्रु अ' इस स्थिति 'अचोञ्णिति' से उ को औकार वृद्धि आवादेश होकर **शुश्राव,** द्विवचन और बहुवचन में शुश्रु+अतुस, शुश्रु+उस् इस स्थिति में उभयत्र ''अनिश्चु'' सूत्र से 'उ' को उवङ् आदेश कर **शुश्रुवतुः और शुश्रुवुः** रूप होंगे ।

थल् परे पित् होने से आर्धधातुक गुण होकर 'शुश्रो+थ' इस स्थिति में 'कृ सृ' सूत्र में श्रु धातु का पाठ होने से इट् का निषेध होने से **'शुश्रोथ'** रूप बनेगा। द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् **'शुश्रुवथुः** और **शुश्रुव'** रूप होंगे । यहाँ अपित् होने से गुण न होकर 'अचिश्नु' सुत्र से उवङ् होगा ।

उत्तम पुरुष एकवचन में 'णलुत्तमो वा' से णित् विकल्प होने से वृद्धि पक्ष में **शुश्राव** और अभाव पक्ष में **शुश्रव** रूप होंगे । द्विवचन और बहुवचन में व और म परे भी क्रादिनियम से इट् न होगा अतः **शुश्रुव** और **शुश्रुम** रूप बनेंगे ।

लुट् लकार में धातु के अनिट् होने से इट् न होगा, तास् इस आर्धधातुक प्रत्यय परे गुण होकर **श्रोता** आदि रूप बनेंगे ।

लृट् लकार में भी स्य प्रत्यय परे गुण और षत्व होकर श्रोष्यति आदि रूप बनेंगे ।

लोट् लकार में पूर्ववत् :शृ नु ति' इस स्थिति में सार्वधातुक गुण, णत्व होकर **शृणोतु,** तातङ् पक्ष में तातङ् के ङित् होने से गुण न होकर **शृणुतात्,** तस् आदि के अपित् होने से ङित् वत् हो जाने से गुण न होकर तामादि आदेश होकर द्विवचन में **शृणुताम्** बहुवचन में 'हुश्नुवोः' सूत्र से यण् होकर **शृण्वन्तु,** रूप होंगे ।

मध्यम पुरुष एकवचन में 'शृणु सि' इस स्थिति में 'सेर्ह्यपिच्च' सूत्र से सि को हि आदेश तथा इसके अपित् होने ङित् वत् हो जाने से गुण निषेध होकर,

उतश्चेति—असंयोग पूर्व जो प्रत्यय का उकार तदन्त अंग से परे हि का लोप हो ।

प्रकृत सूत्र से हि का लोप होकर **'शृणु'** रूप बनेगा, तातङ् पक्ष में ङित् होने से गुणा भाव—**शृणुतात्,** द्विवचन और बहुवचन में अपित् होने से गुणाभाव तमादि आदेश होकर **शृणुतम्, शृणुत** रूप बनेंगे ।

उत्तम पुरुष एकवचन में मिप् के पित होने से गुण, मि को नि आदेश, 'आडुत्तमस्य पिच्च' से आट् का आगम होकर, 'शृणु आनि' इस स्थिति में उकार को ओ गुण, अवादेश होकर **शृणवानि,** इसी प्रकार द्विवचन में पित् होने से आट् गुणावादेश होकर **शृणवाव,** बहुवचन में गुणावादेश होकर **शृणवाम** रूप बनेंगे ।

लङ् लकार में श्रु को शृ आदेश श्नु प्रत्यय, अट्, इतश्चेति इकार लोप, गुण होकर **अशृणोत्**, द्विवचन में गुणा भाव—अश्रृणुताम्, बहुवचन में झ को अन्तादेश, 'हुश्नुवोः' सूत्र से उकार को यण् होकर, **अश्रृण्वन्**, रूप होंगे।

मध्यम पुरुष एकवचन में सिप् के पित् होने से गुण, सकार को रुत्व विसर्ग होकर **अशृणोः**, द्विवचन और बहुवचन में तमादि आदेश, अपित् होने से गुणाभाव **अशृणुतम्, अशृणुत** रूप होंगे।

उत्तम पुरुष एकवचन में मिप् को अमादेश, पित् होने से गुणावादेश होकर **अशृणवम्**, द्विवचन और बहुवचन में लोपश्चेति सूत्र द्वारा विकल्पतः उकार लोप करने से **अशृण्व, अशृणुव, अश्रृण्म, अशृणुम**, रूप होंगे।

विधिलिङ् में शृ आदेश, श्नु प्रत्यय, यासुट् के ङित् होने से गुणाभाव, **श्रृणुयात्, श्रृणुयाताम् 'झेर्जुस्' श्रृणुयुः। श्रृणुयाः श्रृणुयातम्, श्रृणुयात्। शृणुयाम, शृणुयाव, श्रृणुयाम।**

आशीलिङ् में 'श्रु यात्' इस स्थिति में 'अकृत् सार्वधातुकयोः' सूत्र से दीर्घ होकर **श्रूयात्, श्रूयास्ताम्, श्रूयासुः, श्रूयाः श्रूयास्तम्**, श्रूयास्त। **श्रूयासम्, श्रूयास्व**, श्रूयास्म।

लुङ् लकार में अडागम, 'अ श्रु सिच् (स्) ईट् त्' इस स्थिति में ''सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' से उ को औ वृद्धि, षत्व **'अश्रौषीत्**, ईट् न होने से षत्व ष्टुत्व होकर **अश्रौष्टम्, अश्रौषुः अश्रौषीः, अश्रौष्टम्, अश्रौष्ट, अश्रौषम् अश्रौष्व अश्रौष्म।**

लृङ् लकार में आर्धधातुक निमित्तक गुण होकर **अश्रोष्यत्** आदि रूप बनेंगे।

गम्लृ गतौ—गम् धातु जाने अर्थ में है, इसका 'लृ' इत्संज्ञक है, अतः यह लृदित् धातु कहलाता है।

इसका फल लुङ् लकार में च्लि को अङ् होना है।

इषुगमीति—इष् (इच्छा अर्थ में) **गम्** और **यम्** धातुओं (के अन्त्य वर्ण को) छकार आदेश हो शित् प्रत्यय परे रहते।

शित् प्रत्यय केवल सार्वधातुक लकारों में शप् होने के कारण मिलता है, अतः इन्हीं चार लकारों में गम् धातु के मकार को इस सूत्र से छकार होता है, अन्य लकारों में गम् रूप ही रहता है।

लट् लकार में गम् धातु से तिप् शप् प्रकृत सूत्र से मकार को छकार आदेश, 'छे च' सूत्र से छकार को तुक् (त्) का आगम, श्चुत्वेन तकार को चकार आदेश होकर 'गच्छति' रूप बनता है, इसके शेष रूपों में इसी प्रकार सब कार्य होकर **गच्छतः, गच्छन्ति। गच्छसि, गच्छथः, गच्छथ। गच्छामि, गच्छावः, गच्छामः'** रूप बनते हैं।

लिट् लकार में गम् धातु से तिप्, णल् (अ) धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'ग गम् अ' 'कुहोश्चुः' ग को ज आदेश, 'जगम् अ' इस स्थिति में 'अत उपधायाः' से वृद्धि होकर **जगाम** रूप बनेगा।

(१३३) गम हन जन खन घसां लोपः क्ङित्यनङि ।६।४।९८।।

एषामुपधाया लोपोऽजादौ किङ्ति. न त्वङि ।

जग्मतुः जग्मुः । जगमिथ जगन्थ जगमथुः जग्म, जगाम जगम, जग्मिव, जग्मिम । गन्ता ।

(१३४) गमेरिट् परस्मैपदेषु ।७।२।५८।।

गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् ।

गमिष्यति । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् ।

(१३५) पुषादि द्युतादिलृदितः परस्मैपदेषु ।३।१।५५।

श्यन्विकरण पुषादे र्द्युतादे लृदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु, । अगमत्, अगमिष्यत् ।

द्विवचन में अतुस्, धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य, ग को ज आदेश, 'जगम् अतुस्' इस स्थिति में—

गमहनेति—गम् हन् जन (पैदा होना) खन् (खोदना) और घस् (खाना) इन धातुओं की उपधा का लोप हो, अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते, किन्तु अङ् परे रहते न हो ।

उक्त स्थिति में प्रकृत सूत्र से उपधा अकार को लोप होकर **जग्मतुः, जग्मुः** ।

थल् प्रत्यय परे गम् धातु के तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् एवं अकारवान् होने से, इट् विकल्प से होगा । इट् पक्ष में पूर्ववत् **जगमिथ,** इडभाव पक्ष में **जगन्थ** रूप होगा, इस रूप में 'नश्चापदान्तस्य झलि' सूत्र से म् का अनुसार और 'अनुस्वारस्य-ययि—सूत्र से अनुस्वार का पर सवर्ण नकार होकर उक्त रूप बनेगा । द्विवचन और बहुवचन में उपधा का लोप होकर **जग्मथुः, जग्म** ।

उत्तम पुरुष एकवचन में 'णलुत्तमो वा' से णित् विकल्पतः वृद्धि विकल्प होकर **जगाम जगम,** व और म परे क्रादिनियम से नित्य इट् होकर **जग्मिव, जग्मिम** रूप होंगे ।

लुट् लकार में गम् धातु के एकाच् और अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' सूत्र से इट का निषेध होने से, 'गन्ता' रूप बनेगा, शेष रूप पूर्ववत् होंगे ।

लृट् लकार में, धातु के अनिट् होने से इट् सम्भव न था अतः यहाँ अग्रिम इट् करने वाला सूत्र है—

गमेरिति—गम् धातु से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् का आगम हो ।

प्रकृत सूत्र से इट् होकर षत्व—**गमिष्यति,** इसके शेष रूपों की सिद्धि का प्रकार पूर्ववत् है ।

लोट् लकार में 'इषुगमीति' से मकार को छ आदेश तुक्—श्चुत्व होकर **गच्छतु-गच्छतात्, गच्छताम्, गच्छन्तु** । मध्यम पुरुष एकवचन में सि को हि आदेश

होकर पूर्ववत् छकारादेश और श्चुत्व कर 'गच्छ हि' इस स्थिति में 'अतो हेः' सूत्र से हि का लोप होकर गच्छ, गच्छतम्, गच्छत, गच्छानि, गच्छाव, गच्छाम ।

लङ् लकार में अडागम, पूर्ववत् मकार को छकार, तुक् श्चुत्व होकर **अगच्छत् अगच्छताम्, अगच्छन् । अगच्छः अगच्छतम् अगच्छत । अगच्छम्, अगच्छाव,** अगच्छाम ।

विधि लिङ् में पूर्ववत् शप् छकारादेश, यासुट्, इय्, गुण, यकार लोप होकर **गच्छेत्** गच्छेताम्, गच्छेयुः । **गच्छेः, गच्छतम् गच्छेत । गच्छेयम् गच्छेव, गच्छेम् ।**

'आशी लिङ्' में गम् यासुट्—**गम्यात् गम्यास्ताम् । गम्यासुः, गम्याः गम्यास्तम् गम्यास्त । गम्यासम्, गम्यास्व, गम्यास्म ।**

लुङ् लकार में अट्, गम् से च्लि प्रत्यय, च्लि को अग्रिम सूत्र से अङ् आदेश होकर **अगमत्** रूप बनता है ।

पुषादीति—दिवादिगण के पुष् आदि धातु तथा द्युत आदि धातु एवं लृदित् धातु इनसे परे च्लि को अङ् आदेश हो परस्मैपद में ।

अङ् में 'अ' शेष रहता है । शेष रूप सामान्य विधि से बनते हैं—**अगमत अगमताम् अगमन् । अगमः, अगमतम्, अगमत । अगमम् अगमाव अगमाम ।**

लृङ् में 'गमेरिट्' सूत्र से इट् षत्व होकर **अगमिष्यत्** आदि रूप बनते हैं ।

इति परस्मैपदिनो धातवः ॥

। अथ आत्मनेपदिनो धातवः ।

(२१) एध वृद्धौ ॥१॥

(१३६) टित आत्मनेपदानां टेरे ।६।४।७९॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम् । एधते ।

(१३७) आतो ङितः ।७।२।८१॥

अतः परस्य ङितामाकारस्य 'इय्' स्यात् । एधेते, एधन्ते ।

अब यहाँ से आत्मनेपदी धातुओं का सिद्धि प्रकार बतलाया जाता है। इन धातुओं में—

एध वृद्धौ—धातु का अर्थ बढ़ना है।

एध का अकार अनुदात्त एवं इत् संज्ञक है। अतः 'अनुदात्त ङित आत्मनेपदम्' सूत्र नियम से इस आत्मनेपदी धातु से लकारों के स्थान में 'तिप् तस् झि' आदि नौ प्रत्यय न होकर 'त आताम् झ' आदि नौ प्रत्यय होंगे।

टित इति—टित् लकारों के स्थान में आदिष्ट हुये त आताम् झ आदि आत्मनेपद प्रत्ययों की 'टि' को 'ए' हो।

'लट् लिट् लुट् लृट्, लोट् ये ५ टित् लकार हैं क्योंकि इनके ट् की इत् संज्ञा होती है और लोप होता है, शेष लकार ङित् लकार हैं।

प्रस्तुत सूत्र टित् लकारों में ही लकार स्थानीय प्रत्ययों की 'टि' को 'ए' करता है। "अचोऽन्त्यादिटि" सूत्र से "अचों के मध्य जो अन्तिम अच् वह जिसके आदि में हो उस समुदाय की 'टि' संज्ञा होती है।" 'त' प्रत्यय में (अ) यह, इस सूत्र से टि संज्ञक है और 'आताम्' प्रत्यय में 'आम्' इतना टि संज्ञक है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

एध धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष एक वचन की विवक्षा में लट् के स्थान में 'त' प्रत्यय 'एध त' इस स्थिति में 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा, 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् (अ) प्रत्यय, 'एध् अ त' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से त प्रत्यय के 'टि' संज्ञक 'अ' को 'ए' होकर **'एधते'** रूप बनेगा।

(१३८) थासः से। टितो लस्य थासः से स्यात्। एधसे, एधेथे, एधध्वे। अतो गुणे—एधे, एधावहे, एधामहे।

(१३९) इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ।३।१।३६।।

इजादि यो धातु र्गुरुमान् ऋच्छत्यन्यः तत आम् स्याल्लिटि।

(१४०) आम् प्रत्ययवत् कृञोऽनु प्रयोगस्य ।१।३।६३।।

आम् प्रत्ययो यस्मात् इत्येतदगुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। आम् प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मने पदम्।

(१४१) लिटस्तझयोरे शिरेच् ।३।४।८१।।

लिडादेशयोस्तझयोः एश् इरेच् एतौ स्तः।

एधाञ्चक्रे। एधाञ्चक्राते। एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे। एधाञ्चक्राथे—

द्विवचन में लट् के स्थान में आताम् प्रत्यय, शप् (अ) 'एध् अ आताम्' इस स्थिति में—

आत इति—अकार से परे ङित् प्रत्ययों के आकार को इय् आदेश हो।

उक्त स्थिति में आताम् प्रत्यय के, अपित् सार्वधातुक होने से ङित् वत् होने से, तथा शप् के अकार से परे होने से, आकार को प्रस्तुत सूत्र से 'इय्' आदेश होकर 'एध् अ इय् ताम्' इस स्थिति में अ+इ को एकार गुण तथा बल प्रत्या हारान्तर्गत वर्ण 'त' के आगे रहते, 'लोपो व्यो र्वलि' सूत्र से यकार का लोप। तथा 'टित आत्मनेपदानां टेरे' सूत्र से 'आम्' इस टि को एत्त्व होकर **'एधेते'** रूप बनेगा।

बहुवचन में एध धातु से लट् के स्थान में 'झ' प्रत्यय, 'झोऽन्तः' सूत्र से झ को अन्त आदेश, शप् आदि कार्य तथा अन्त आदेश के त के 'अ' इस टि को 'टित' सूत्र से 'ए' आदेश करके **'एधन्ते'** रूप होगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में लट् के स्थान में थास् प्रत्यय, धातु के आगे शप् (अ) प्रत्यय, 'एध् अ थास्' इस स्थिति में—

थासः से इति—टित् लकारों के थास् को **से** आदेश हो।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से थास् को से आदेश करके **एधसे,** द्विवचन में आथाम् प्रत्यय, शप् 'अ' होकर 'एध् अ आथाम्' इस स्थिति में, प्रत्यय के आकार को, 'आतो ङितः, सूत्र इय् आदेश होकर, अ+इ को ए गुण, यकार का लोप, और प्रत्यय के 'आम्' इस टि को एकार होकर **'एधेथे'** बहुवचन में ध्वम् प्रत्यय शप् (अ) प्रत्यय, 'एध् अ ध्वम्। इस स्थिति में प्रत्यय के 'अम्' इस टि को एत्त्व करके **एधध्वे** रूप बनेगा।

उत्तम पुरुष एकवचन में इट् प्रत्यय 'एध् अ इट्' इस स्थिति में 'इ' इस 'टि' को एत्व करके 'एध् अ ए' इस स्थिति में 'अतो गुणे सूत्र से अकार का पररूप होकर **एधे,** द्विवचन में वहि प्रत्यय, शप् 'एध अ वहि' इस स्थिति में प्रत्यय के 'टि' इकार को एत्व, 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र से दीर्घ होकर **एधावहे,** बहुवचन में महिङ् प्रत्यय,

(१४२) इणः षीध्वं लुङ् लिटां धोऽङ्गात् ।८।३।७८।।

इण्णन्तादङ्गात् परेषां षीध्वं लुङ् लिटां च धस्य ढः स्यात् । एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्रे, एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास ।

शप्, 'एध् अ महि' इस स्थिति में प्रत्यय के इकार को 'टि' होने से 'एत्व' अतो दीर्घो सूत्र से दीर्घ होकर **एधामहे** रूप बनेगा।

इजादेरिति—ऋच्छ-धातु से भिन्न, गुरुमान् अर्थात् गुरु वर्ण वाले इजादि (इच् वर्ण जिसके आदि में हो) धातु से लिट् लकार परे रहते 'आम्' का आगम हो।

एध धातु इजादि और गुरुमान् भी है क्योंकि इसके आदि में इच् वर्णो में ए है और यह गुरु वर्ण भी है, अतः इस धातु से लिट् लकार होने पर प्रस्तुत सूत्र से आम् का आगम होकर 'एधाम् लिट्' इस स्थिति में 'आमः' सूत्र से लिट् का लोप होगा। तब 'एधाम्' यह आमन्त स्थिति बनेगी। आमन्त होने से 'कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि' सूत्र से इसके आगे लिट् सहित कृ भू अस् धातुओं का प्रयोग होगा, अतः 'एधाम् कृ लिट्। इस स्थिति में लिट् के स्थान में परस्मैपद के तिबादि प्रत्यय प्राप्त होते हैं इसके लिए अग्रिम सूत्र है जो कि आत्मनेपद के प्रत्ययों का नियम करता है।

आम्प्रत्ययवदिति—धातु की जिस प्रकृति से आम् होता है उसी प्रकृति के समान ही अनुपयुज्यमान कृञ् धातु से भी आत्मनेपद होता है।

सूत्र के '**आम्प्रत्ययवत्**' पद में 'वत्' 'इव' के अर्थ में है और इस पद में अतदगुण संविज्ञान बहुव्रीहि समास है। अर्थात् आम् प्रत्ययो यस्मात् (आम् प्रत्यय) जिससे हुआ है, उस धातु की प्रकृति के समान ही अनुप्रयुक्त कृञ् से भी प्रत्यय हो। प्रकृत में धातु की प्रकृति 'एध' है जो अनुदात्तेत् होने के कारण आत्मनेपदी है, इसी से आम् प्रत्यय भी हुआ है, अतः इसके आगे अनुप्रयुक्त कृञ् धातु से भी आत्मनेपद के ही प्रत्यय होंगे, परस्मैपद के नहीं।

कृञ् धातु ञित् होने से उभयपदी है। अतः कर्तृ भिन्न परगामी क्रियाफल की विवक्षा में इससे परस्मैपद के ही प्रत्यय होने चाहिए थे, पर, यह सूत्र नियम करता है कि मूलधातु की प्रकृति आत्मनेपद या परस्मैपद जैसी भी हो, उससे आम् प्रत्यय होने पर अनुप्रयुक्त कृञ् से भी वही पद हो, यदि धातु परस्मैपद है तो कृञ् से भी परस्मैपद हो जैसा कि परस्मैपदी गुपू रक्षणे धातु से आम् के बाद अनुप्रयुक्त कृञ् से परस्मैपद के प्रत्यय होने पर गोपायाञ्चकार आदि रूप बनते हैं और यदि धातु आत्मनेपदी है तो उससे आत्मनेपद के ही त आताम् झ आदि प्रत्यय ही होने चाहिये। इस दृष्टि से एध धातु के आत्मनेपदी होने से, इससे अनुप्रयुक्त कृञ् से भी आत्मनेपद के ही प्रत्यय होंगे।

उक्त स्थिति में इस सूत्र के नियमानुसार प्रथम पुरुष एकवचन में लिट् के स्थान में त प्रत्यय होकर, 'एधाम् कृ त' इस स्थिति में—

एधिता, एधितारौ, एधितारः । एधितासे, एधितासाथे—

(१४३) धि च ।८।२।८५।।

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः ।एधिताध्वे ।

(१४४) ह एति ।७।४।५५।।

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे ।

एधिताहे, एधितास्वहे, एधितास्महे ।

लिट इति—लिट् के स्थान में आदिष्ट हुये त और झ प्रत्ययों को क्रमशः एश् और इरेच् आदेश हों।

(एश् का श् इत् संज्ञक है, अतः शित् होने से 'अनेकालशित् सर्वस्य' सूत्र से सम्पूर्ण त के स्थान में एश् आदेश होगा। इरेच् आदेश में च् इत् संज्ञक है, 'इरे' शेष रहता है अतः अनेकाल् होने से यह आदेश भी सम्पूर्ण 'झ' के स्थान में होता है)

प्रकृत सूत्र से उक्त स्थिति में त के स्थान में एश् आदेश होकर 'एधाम् कृ ए' इस स्थिति में, कृ धातु को द्वित्व, 'उरत्' सूत्र से अभ्यास के कृ के 'ऋ' को रपरक 'अ' होकर 'एधाम् कर् कृ ए' इस स्थिति में 'हलादिः शेषः' से र् का लोप, 'कुहोश्चुः' सूत्र से क को च, एधाम् के म् को अनुस्वार, और चवर्ग परे रहते उस अनुस्वार को ञ् परसवर्ण होकर 'एधाञ्चकृ ए' इस स्थिति में यण् अर्थात् ऋ को र् करने पर **'एधाञ्चक्रे'** रूप बनेगा।

इस लकार के शेष रूपों की भी सिद्धि करते समय इसी प्रक्रिया से 'एधाञ्चकृ' इतना रूप बनाकर प्रत्ययों को आत्मनेपद के अन्य कार्यों के साथ जोड़ देना चाहिये। यथा—द्विवचन में 'एधाञ्चकृ-आताम्' इस स्थिति में आम् इस टि को एकार, तथा यण् होकर **'एधाञ्चक्राते'** बहुवचन में 'एधाचकृ-झ' इस स्थिति में झ को प्रस्तुत सूत्र से इरेच् (इरे) आदेश, तथा ऋकार को पूर्ववत् यण् करके **'एधाञ्चक्रिरे'** रूप बनेगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में 'एधाञ्चकृ-थास्' इस स्थिति में 'थासः से' सूत्र से थास् को से आदेश, तथा ऋकार इस इण् से परे सकार को मूर्धन्यादेश, वलादि आर्धधातुक को प्राप्त इट् का 'कृ सृ' सूत्र नियम से वारण करके, **एधाञ्चकृषे,** द्विवचन में 'एधाञ्चकृ-आथाम्' इस स्थिति में पूर्ववत् आम् इस टि को एकार तथा यण् होकर **एधाञ्चक्राथे,** और बहुवचन में 'एधाञचकृ-ध्वम्' इस स्थिति में 'अम्' इस टि को एकार होकर 'एधाञ्चकृध्वे' इस स्थिति में—

इण इति—इणन्त अंग से परे षीध्वम् तथा लुङ् और लिट् के धकार को ढकार हो।

प्रस्तुत सूत्र से ध् को ढ् होने पर **'एधाञ्चकृढ्वे'** रूप बनेगा।

उत्तम पुरुष एकवचन में 'एधाञ्चकृ-इट्' इस दशा में इट् के इकार को एकार और यण् होकर **'एधाञ्चक्रे'** द्विवचन में 'एधाञ्चकृ-वहि' इस स्थिति में, इकार इस

एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते। एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे। एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे।

(१४५) आमेतः ।३।४।९०।।

लोट एकारस्याम् स्यात् ।

एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम् ।

(१४६) सवाभ्यां वाऽमौ ।३।४।९१।।

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् वाऽमौ स्तः ।

एधस्व, एधेथाम्, एधध्वम् ।

(१४७) एत ऐ ।३।४।९३।।

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् ।

एधै, एधावहै, एधामहै ।

टि को एकार करके **'एधाञ्चकृवहे'** और बहुवचन में 'एधाञ्चकृ-महिङ्' इस दशा में महिङ् के इकार इस टि को एकार करके **'एधाञ्चकृमहे'** रूप बनेगा।

जब एधाम् के बाद भू धातु का अनुप्रयोग होगा, तब भू धातु के परस्मैपदी होने से इससे परस्मैपद के ही तिप् तस् झि आदि प्रत्यय होंगे अतः इससे उक्त भू धातु के लिट् लकार के रूपों के समान 'बभूव' आदि रूप ही होंगे—अर्थात् तब 'एधाम्बभूव' आदि रूप बनेंगे। इसी प्रकार जब इसके आगे अस् धातु का अनुप्रयोग होगा तब इसके आगे आस आसतुः आसुः जैसे रूप आयेंगे अर्थात् 'एधामास एधामासतुः एधामासुः' आदि रूप होंगे।

लुट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन द्विवचन और बहुवचन में भू धातु के लुट् लकार के रूपों के समान ही एध धातु के भी रूप **'एधिता, एधितारौ, एधितारः'** बनेंगे अर्थात् इस लकार के प्रथम पुरुष के तीनों वचनों में क्रमशः 'त आताम झ' को डा रौ रस् आदेश होंगे। धातु को तास् प्रत्यय, और इट् का आगम, डित्व सामर्थ्यात् टि लोप, रादि प्रत्यय परे सकार लोप आदि होकर पूर्ववत् **'एधिता, एधितारौ'** एधितारः रूप बनेंगे।

मध्यम पुरुष एक वचन में थास् को से आदेश, 'एधितास् से। इस दशा में 'तासस्त्यो र्लोपः। सूत्र से सकार का लोप होकर, **एधितासे**, द्विवचन में 'एधितास् आथाम्' इस दशा में आम् इस 'टि' को एकार होकर, **'एधितासाथे'** और बहुवचन में 'एधितास् ध्वम्' इस स्थिति में अम् इस टि को एकार होकर 'एधितास् ध्वे' इस दशा में—

धि चेति—धकारादि प्रत्यय परे रहते सकार का लोप हो। उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से तास् प्रत्यय के सकार का लोप होकर **'एधिताध्वे'** रूप बनेगा। उत्तम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् 'एधितास् इट्' इस दशा में इकार इस टि को एकार करने पर—

आटश्च

ऐधत, ऐधताम्, ऐधन्त । ऐधथाः, ऐधेथाम्, ऐधध्वम् । ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि ।

ह एतीति—तास् और अस् धातु के सकार को हकार हो, एकार परे रहते ।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से सकार को हकार करके **'एधिताहे'** द्विवचन में एधितास् वहि इस स्थिति में इकार को एकार करके **'एधितास्वहे'** और बहुवचन में भी महिङ् के इकार इस टि को एकार करके **एधितास्महे** रूप बनेगा ।

इस धातु के लृट् लकार के रूपों में वस्तुतः कोई विशेष कार्य नहीं होता । सभी कार्य अर्थात् स्य प्रत्यय, इट् का आगम और इकार से परे षत्व आदि परस्मैपद के समान होते हैं, केवल प्रत्ययों के टि को एकार आदेश तथा आताम् और आथाम् में आकार को इय् करना ही आत्मनेपद का विशेष कार्य समझना चाहिये । यथा—

प्रथम पुरुष एक वचन में लृट् के स्थान में त प्रत्यय, धातु के आगे 'स्य' प्रत्यय, इट् का आगम, षत्व होकर 'एधिष्य त' इस स्थिति में, प्रत्यय के अकार 'टि' को एत्व होकर, **एधिष्यते,** द्विवचन में 'एधिष्य आताम्' इस दशा में आकार को इय् आदेश, गुण, य लोप, आम् इस 'टि' को एकार होकर **'एधिष्येते'** बहुवचन में झ को अन्तादेश, टि को एकार होकर **'एधिष्यन्ते'** रूप होंगे ।

मध्यम पुरुष एकवचन में थास् को से आदेश होकर **'एधिष्यसे'** द्विवचन में आथाम् के 'आ' को 'इय्' आदेश, यलोप और 'आम्' इस टि को एत्व होकर, **एधिष्येथे,** बहुवचन में ध्वम् की टि 'अम्' को एत्व होकर **एधिष्यध्वे** रूप होंगे ।

उत्तम पुरुष एकवचन में इट् प्रत्यय के इकार को एत्व होकर **'एधिष्ये'** द्विवचन में वहि की इकार को एत्व तथा दीर्घ होकर **एधिष्यावहे,** बहुवचन में महि की इकार को एत्व और दीर्घ होकर **'एधिष्यामहे'** ये रूप होंगे ।

आमेत इति—लोट् लकार के एकार को आम् आदेश हो ।

एध् धातु से लोट्, प्रथम पुरुष एकवचन में 'त' प्रत्यय, शप् (अ) त के 'टि' अकार को एत्व होकर 'एधते' इस दशा में 'आमेतः' सूत्र से एकार को आम् आदेश करके **एधताम्,** द्विवचन में आताम् के 'आ' को इय्, गुण, यलोप, आम् इस 'टि' को एत्व होकर 'एधेते' इस दशा में 'आमेतः' सूत्र से एकार को आम् आदेश होकर **'एधेताम्'** बहुवचन में झ को अन्त आदेश, शप् (अ) त के अकार की एत्व होकर 'एधन्ते' इस दशा में एकार को 'आमेतः' सूत्र से आम् आदेश होकर **'एधन्ताम्'** रूप होंगे ।

मध्यम पुरुष एकवचन में थास् प्रत्यय को से, आदेश, शप् (अ) ।

'एध से' इस स्थिति में 'आमेतः' से एकार को आम् प्राप्त होने पर—

सवाभ्यामिति—सकार और वकार से परे लोट् के एकार को क्रमशः व और अम् आदेश हों ।

(१४८) लिङः सीयुट् ।३।४।१०२।।

लिङात्मनेपदस्य सीयुडागमः स्यात् । सलोपः । एधेत, एधेयाताम् ।

(१४९) झस्य रन् ।३।४।१०५।।

लिङो झस्य रन् स्यात् । एधेरन् । एधथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम् ।

उक्त स्थिति में आम् आदेश को बाधकर प्रस्तुत सूत्र से सकार को 'व' आदेश होकर **'एधस्व'** द्विवचन में 'एध आथाम्' इस स्थिति में आकार को इय्, गुण, यलोप, आम् इस 'टि' को एकार होकर, पुनः 'आमेतः' से एकार को आम् आदेश कर **एधेथाम्**, 'एध ध्वम्' इस दशा में अम् इस 'टि' को एत्व करने पर 'आमेतः' से प्राप्त आम् आदेश को बाधकर प्रस्तुत सूत्र से एकार को अम् आदेश होकर, **एधध्वम्** रूप होंगे ।

उत्तम पुरुष एक वचन में एध इट् इस दशा में शप् (अ) इट् के इकार 'टि' को एकार, 'आडुत्तमस्य पिच्च' सूत्र से आट् का आगम होकर 'एध् अ आ ए' इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ होकर 'एधा ए' इस दशा में—

एत इति—लोट् लकार में उत्तम पुरुष के एकार को ऐ हो ।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से 'ए' को ऐ करके आ + ऐ को वृद्धि रूप एकादेश करके **एधै** रूप बनेगा ।

यद्यपि यहाँ टित् लकार होने से इकार को एकार करने पर 'आमेतः' से आम् आदेश प्राप्त था, तथापि प्रस्तुत सूत्र अपवाद होने से उसे बाधकर 'ऐ' आदेश कर देता है ।

द्विवचन में पूर्ववत् शप् आट् होकर 'एध् अ आ वहि' इस स्थिति में, तथा बहुवचन में भी इसी प्रकार एध् अ आ महि, इस स्थिति में उभयत्र सवर्ण दीर्घ, और इकार को एकार करके, एधावहे और एधामहे बन जाने पर 'आमेतः' सूत्र से प्राप्त आम् आदेश को अपवादत्वाद् बाध कर प्रस्तुत सूत्र से एकार को ऐ आदेश कर एधावहै, और एधामहै, रूप बनेंगे ।

आटश्चेति—लङ् लकार ङित् लकार है, टित् नहीं, अतः यहाँ 'टित आत्मनेपदानां टेरे' सूत्र से कहीं भी डि को एत्व नहीं होता । एध धातु अजादि धातु है, अतः यहाँ सर्वत्र धातु के पूर्व 'आडजादीनाम्' सूत्र से आट् का आगम और 'आटश्च' सूत्र से आ + ए को ऐ वृद्धि होकर सर्वत्र 'ऐध' रूप बन जाता है, शप् (अ) और त आदि प्रत्यय पूर्ववत् होते हैं, अन्य कोई इसमें विशेष कार्य नहीं होता । यथा—लङ् प्रथम पुरुष एकवचन में 'आट् एध् अ त' इस स्थिति आटश्च सूत्र से वृद्धि होकर **'ऐधत'** द्विवचन में भी पूर्ववत् आट् वृद्धि शबादि कर आताम् के आकार को इय्, गुण, यलोप होकर **ऐधेताम्**, बहुवचन में पूर्ववत् आट् वृद्धि शप् आदि होकर **ऐधन्त** रूप होंगे ।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् आट् शप् थास् प्रत्यय के सकार को रुत्व

(१५०) इटोऽत् ।३।४।१०६।।

लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात् । एधेय, एधेवहि, एधेमहि ।

(१५१) सुट् तिथोः ।३।४।१०७।।

लिङस्तथोः सुट् । यलोपः । आर्धधातुकत्वात् सलोपो न ।

एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः, ।

एधिषीयास्याम्, एधिषीध्वम् । एधिषीय, एधिषीवहि, एधिषीमहि ।

विसर्ग होकर ऐधथाः, द्विवचन में पूर्ववत् शप् आथाम् के 'आ को इय्' गुण, यलोप **ऐधेथाम्**, बहुवचन में पूर्ववत् आट् शप् वृद्धि आदि होकर **ऐधध्वम्** रूप होंगे।

उत्तम पुरुष एकवचन में लङ् आट् वृद्धि इट् शप् होकर 'ऐध् अ इ' इस स्थिति में इ को गुण होकर **ऐधे**, द्विवचन में और बहुवचन में वहि और महि प्रत्यय परे ऐध् अ वहि और ऐध् अ महि इस स्थिति 'अतो दीर्घो' यञि् सूत्र से दीर्घ होकर ऐधावहि ऐधामहि रूप होंगे।

लिङ इति—लिङ् लकार के स्थान में होने वाले प्रत्ययों को सीयुट् का आगम हो।

(सीयुट् में उकार और टकार की इत् संज्ञा एवं उनका लोप होकर 'सीय्' शेष रहता है)।

सलोप इति—अर्थात् विधि लिङ् लकार के सार्वधातुक होने से 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' सूत्र से सीयुट् के सकार का सर्वत्र लोप हो जाता है।

एध् धातु से लिङ्, प्रथम पुरुष एकवचन में लिङ, को 'त' प्रत्यय, 'लिङः सीयुट्' सूत्र से 'त' प्रत्यय के आदि में टित्वात् सीयुट् (सीय्) का आगम होकर 'एध् अ सीय् त, इस स्थिति में 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' सूत्र से सकार का लोप, अ+इ को ए गुण, 'लोपो व्यो र्वलि' सूत्र से त परे रहते यकार लोप होकर **'एधेत'** रूप होगा।

द्विवचन में पूर्ववत् 'एध् अ सीय् आताम्' इस स्थिति में सलोप और गुण होकर **एधेयाताम्** रूप होगा। यहाँ वल् प्रत्याहार परे न मिलने से यकार लोप न होगा।

बहुवचन में पूर्ववत् 'एध् अ सीय् झ' इस दशा में—

झस्येति—लिङ् लकार के झ को रन् आदेश हो।

उक्त स्थिति में झ को रन् आदेश होने पर, सलोप, यलोप और गुण होकर **एधेरन्** रूप बनेगा।

मध्यम पुरुष एक वचन में थास् प्रत्यय, 'एध् अ सीय् थास्' इस स्थिति में पूर्ववत् सलोप, यलोप, गुण, सकार को रुत्व विसर्ग होकर **एधेथाः**, आथाम् पर द्विवचन में 'एध् अ सीय् आथाम्' इस स्थिति में सलोप और गुण होकर **एधेयाथाम्**, बहुवचन में 'एध अ सीय् ध्वम्' इस स्थिति में सलोप, यलोप, गुण होकर **एधेध्वम्** रूप होगा।

ऐधिष्ट, ऐधिषाताम् ।

(१५२) आत्मनेपदेष्व नतः ।७।१।५।।

अनकारात् परस्यात्मनेपदेषु झस्य 'अत' इत्यादेशः स्यात् ।

ऐधिषत । ऐधिष्ठाः, ऐधिषाथाम्, ऐधिढ्वम् । ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि ।

ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, एधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि ।

उत्तम पुरुष एकवचन में 'एध् अ सीय् इट्' इस स्थिति में—

इटोऽत् इति—लिङादेश इट् को अत् हो । (अत् में अ शेष रहता है) ।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से इट् को अत् (अ) 'अ' करने पर सलोप, गुण होकर **एधेय** रूप होगा (वल प्रत्याहार आगे न मिलने से यलोप न होगा) ।

द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् 'एध् अ सीय् वहि' और 'एध् अ सीय् महि' इस स्थिति में उभयत्र सलोप, यलोप और गुण होकर **'एधेवहि और एधेमहि'** रूप होंगे ।

आशीर्लिङ् आर्धधातुक लकार है, अतः इस लकार में कहीं भी 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' सूत्र से सलोप नहीं होता, वल् प्रत्याहार् आगे रहने पर यलोप हो जाता है । सीयुट् का आगम करने से इस लकार में सर्वत्र वलादि आर्धधातुक मिल जाने से 'सीय्' के पूर्व इट् का आगम हो जाता है । इस लकार में तकारादि और थकारादि प्रत्यय आगे रहते सुट् का आगम भी होता है ।

सुट् तिथोः इति=लिङ् लकार के तकार और थकार को सुट् का आगम हो ।

(सुट् में स् शेष रहता है, टित् होने से यह आगम, तकार और थकार के पूर्व होता है ।

एध् धातु से आशीर्लिङ् में प्रथम पुरुष एकवचन में त प्रत्यय सीयुट् का आगम, और सीयुट् के पूर्व इट् का आगम होकर 'एध् इ सीय् त' इस दशा में 'सुट् तिथोः' सूत्र से 'त' के पूर्व सुट् (स्) का आगम होकर 'एध् इ सीय् स् त' इस स्थिति में, यकार का लोप, इण् से परे दोनों प्रत्ययावयव सकारों को मूर्धन्यादेश, तथा ष्टुत्वेन तकार को टकार होकर **'एधिषीष्ट'** रूप होगा ।

द्विवचन में 'एध् इ सीय् आताम्' इस स्थिति में वल् वर्ण न होने से यलोप न होगा, षत्व, तकार को सुट् (स्) का आगम होकर **एधिषीयास्ताम्,** बहुवचन में झ प्रत्यय, 'झस्य रन्' सूत्र से झ को रन् आदेश, 'एध् इ सीय् रन्' इस स्थिति में, यलोप और षत्व होकर **एधिषीरन्** रूप बनेगा ।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् 'एध् इ सीय् थास्' इस स्थिति में, यलोप, 'थ' के पूर्व सुट् (स्) का आगम, षत्व, ष्टुत्व और सकार को रुत्व विसर्ग होकर **एधिषीष्ठाः** रूप होगा ।

द्विवचन में 'एध् इ सीय् आथाम्' इस स्थिति में थकार के पूर्व सुट् (स्) का आगम, षत्व होकर **एधिषीयास्थाम्** और बहुवचन में 'एध् इ सीय् ध्वम्' इस स्थिति में यकार का लोप, षत्व होकर **एधिषीध्वम्** रूप बनेगा।

यद्यपि यहाँ एध् धातु से षीध्वम् परे है तथापि यहाँ "इणः षीध्वम्" सूत्र से ध्वम् के ध् को ढ् न होगा, क्योंकि यहाँ षीध्वम् इण्णन्त अंग से परे नहीं है, इट् का आगम सीयुट् को होता है, और वह उसी का अवयव बनता है न कि धातु का, अतः यहाँ तो 'एध्' इतना ही अंग है, जो कि इण्णन्त नहीं है, अतः इण्णन्त अंग से परे षीध्वम् न मिलने से ढत्व न होगा।

उत्तम पुरुष एकवचन में इट् प्रत्यय परे यकार लोप न होगा शेष कार्य पूर्ववत् होकर 'एधिषीय् इट्' इस दशा में 'इटोऽत्' सूत्र से इट् को अत् (अ) आदेश करके **एधिषीय,** द्विवचन में और बहुवचन में वहि महि प्रत्ययों के परे, य लोप, षत्व होकर क्रमशः **एधिषीवहि 'एधिषीमहि'** रूप बनेंगे।

लुङ् लकार में धातु के अजादि होने के कारण सर्वत्र 'आडजादीनाम्' सूत्र से आट् का आगम् और 'आटश्च' सूत्र से वृद्धि होकर 'ऐध्' रूप बन जायेगा। सर्वत्र च्लि को सिच् आदेश होगा, इट् के आगे जहाँ भी सकार मिलेगा वहाँ षत्व हो जायेगा—यथा—

एध् धातु से लुङ् लकार, आट्, 'आटश्च' सूत्र से वृद्धि, च्लि को सिच्, इट्, षत्व, तथा ष्टुत्व होकर **ऐधिष्ट** द्विवचन में आताम् परे पूर्ववत् इडादि होकर **'ऐधिषाताम्'** बहुवचन में पूर्ववत् 'ऐध् इ ष् झ' इस स्थिति में—

आत्मनेपदेष्वनतः—आत्मने पद के झ को अत हो, अकार से भिन्न वर्ण परे रहते।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से झ को अत करने पर **ऐधिषत** रूप बनेगा।

यहाँ वस्तुतः 'झोऽन्तः' सूत्र से झ को अन्तादेश प्राप्त था, पर यह सूत्र अपवादत्वात् उसे बाधकर झ को अत आदेश करेगा।

मध्यम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् 'ऐधि स् थास्' इस स्थिति में षत्व, ष्टुत्व, सकार को रुत्व विसर्ग होकर **ऐधिष्ठाः** द्विवचन में पूर्ववत् 'ऐधि स् आथाम्' इस स्थिति में षत्व होकर **ऐधिषायाम्** बहुवचन में 'एधि स् ध्वम्' इस स्थिति में 'धिच्' सूत्र से सकार का लोप, 'इणः षीध्वम्' सूत्र से ध को ढ आदेश होकर **एधिढ्वम्** रूप बनेगा। एधिढ्वम् में 'ऐध् इ स् ध्वम्' इस स्थिति में सिच् का आगम धातु को होता है अतः सिच् धातु का ही अवयव बनता है अतः सकार का लोप होने पर 'ऐधि' इतना इण्णन्त अंग बन जाता है अतः इण्णन्त अंग से परे लुङ् सम्बन्धी लकार परे मिल जाने से ढत्व हो जाता है।

उत्तम पुरुष एकवचन में पूर्ववत् 'ऐधि स् इट्' इस स्थिति में षत्व होकर **ऐधिषि,** द्विवचन और बहुवचन में वहि, महि पर 'ऐधि स् वहि और ऐध् इ स् महि' इस स्थिति में उभयत्र षत्व होकर 'ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि' रूप बनेंगे।

कमु कान्तौ ।२।।

(१५३) कमे र्णिङ् ३।१।३०।।

स्वार्थे ।

ङित्त्वात्तङ्—कामयते ।

(१५४) अयामन्ताऽऽल्वाऽऽय्येत्न्विष्णुषु ६।४।५३।।

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु, इष्णु—एषु णेरयादेशः स्यात् ।

कामयाञ्चक्रे ।

'आयादयः' इति णिङ् वा—चकमे, चकमाते, चकमिरे । चकमिषे, चकमाथे, चकमिध्वे । चकमे, चकमिवहे, चकमिमहे । कामयिता, कमिता । कामयितासे । कामयिष्यते कमिष्यते । कामयताम् । अकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट ।

लृङ् लकार के रूपों में सर्वत्र आट् का आगम, 'आटश्च' सूत्र से वृद्धि, स्य प्रत्यय, इट् षत्व होकर सर्वत्र 'ऐधिष्य' रूप बन जायेगा । ङित् लकार होने से टि को एत्व भी न होगा । आताम् और आथाम् परे 'आतोङितः' सूत्र से आकार को इय् होता है । झ को अन्तादेश होता है—उत्तम पुरुष में वहि महि परे दीर्घ होता है, शेष सामान्य कार्य होते हैं—यथा—

उत्तम पुरुष एकवचन में **ऐधिष्यत,** द्विवचन में **ऐधिष्येताम्,** बहुवचन में **ऐधिष्यन्त** । म० पु० एकवचन में **ऐधिष्यथाः,** द्विवचन में **ऐधिष्येथाम्,** बहुवचन में **ऐधिष्यध्वम्** । उ० पु० एकवचन में **ऐधिष्ये,** द्विवचन में **ऐधिष्यावहि,** बहुवचन में **ऐधिष्यामहि** रूप बनेंगे ।

कामु-इति—कम् धातु 'इच्छा करने' अर्थ में है ।

कमेरिति—कम् धातु से णिङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में ।

अर्थात् णिङ् प्रत्यय स्वार्थिक प्रत्यय है, अतः इस प्रत्यय के करने पर धातु के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता । 'णिङ्' प्रत्यय के ण् की इत्संज्ञा होने से यह णित् कहलायेगा जिससे वृद्धि आदि कार्य होंगे । इसमें ङ् की भी इत् संज्ञा है, अतः ङित् होने से इससे आत्मने पद के प्रत्यय होंगे ।

कम् धातु से सर्वप्रथम प्रस्तुत सूत्र से णिङ् प्रत्यय करने पर णित्वात् उपधा वृद्धि करने पर 'कामि' बन जाता है, तब इसको 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातु संज्ञा होती है, तदनु इससे लकारों का प्रयोग होता है ।

कम् धातु से णिङ् प्रत्यय—'कामि' इसकी धातु संज्ञा, लट् लकार, प्रथम पुरुषैक वचन की विवक्षा 'त' प्रत्यय, शप् (अ), गुण अयादेश, टित आत्मनेपदानाम्—इत्यादि सूत्र से प्रत्यय के अकार (टि) को एत्व होकर **'कामयते'** रूप बनता है । शेष रूप, 'एध' धातु के समान **'कामयेते, कामयन्ते' कामयसे, कामयेथे, कामयध्वे । 'कामये, कामयावहे, कामयामहे'** बनेंगे ।

अयिति—आम् अन्त आलु आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्ययों के परे रहते, णि को अय् आदेश हो।

यह सूत्र "णेरनिटि" सूत्र से प्राप्त 'णि' के लोप का अपवाद होने से बाधक है।

कम् धातु से णिङ् प्रत्यय और वृद्धि करने पर, 'कामि' की धातु संज्ञा, लिट् लकार, अनेकाच् होने से "कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः" से आम् का आगम, आमः से लिट् लकार का लोप, सूत्र १३३ से णि को अय् आदेश, "कामयाम्" से पुनः लिट् सहित 'कृ' का अनुप्रयोग, द्वित्व अभ्यास कार्य, लिट् के स्थान में 'त' उसको लिटस्त-झयोः—सूत्र से एश् (ए) आदेश, 'कामयाञ्च कृ+ए' इस स्थिति में यण् होकर, **कामयाञ्चक्रे** रूप बनता है। इस लकार के शेष रूप एध धातु के लिट् के समान—**कामयाञ्चक्राते, कामयाञ्चक्रिरे। कामयाञ्चकृषे, कामयाञ्चक्राथे, कामयाञ्चकृढ्वे। कामयाञ्चक्रे, कामयाञ्चकृवहे, कामयाञ्चकृमहे'** बनेंगे।

आयादय इति—'आयादय आर्धधातुके वा' सूत्र से णिङ् प्रत्यय विकल्प से होगा। णिङ् पक्ष में तो 'कामयाञ्चक्रे' इत्यादि रूप बनेंगे, किन्तु णिङ् के अभाव पक्ष में 'कम् धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य 'कुहोश्चुः' क को च, चकम्+ए=**चकमे** रूप बनेगा।

शेष रूपों में कोई विशेषता नहीं है—थास्, ध्वम्, वहि, महि प्रत्ययों के आगे रहते इट् होगा, शेष सामान्य कार्य ही होंगे—**चकमाते, चकमिरे। चकमिषे, चकमाथे, चकमिध्वे। चकमे, चकमिवहे, चकमिमहे।**

इसी प्रकार सभी आर्धधातुक लकारों में णिङ् विकल्प से होगा, फलतः इन लकारों में दो-दो रूप बनेंगे।

लुट् लकार में णिङ् पक्ष में इट् होकर **'कामयिता, कामयितारौ कामयितारः। कामयितासे** आदि रूप होंगे, णिङ् के अभाव पक्ष में—**कमिता, कमितारौ, कमितारः। कमितासे** आदि रूप बनेगा।

इसी प्रकार लृट् लकार में णिङ् पक्ष में **कामयिष्यते** आदि तथा अभाव पक्ष में **कमिष्यते** आदि रूप होंगे।

सार्वधातुक लकारों में लोट् लङ् विधिलिङ् में णिङ् नित्य होगा तथा शप् (अ) गुण अयादेश तथा सामान्य कार्य होकर—**कामयताम्** आदि रूप एध धातु के समान ही बनेंगे।

लङ् लकार में अट् का आगम, शेष कार्य सामान्य विधि के अनुसार होंगे, फलतः—**अकामयत, अकामयेताम्** आदि रूप होंगे।

विधिलिङ् में भी सभी एध धातु के समान, सामान्य कार्य होंगे अतः **कामयेत** आदि रूप बनेंगे।

आशीर्लिङ् में आर्धधातुक होने से णिङ् विकल्पतः होगा, फलतः णिङ् पक्ष में—**कामयिषीष्ट,** अभाव पक्ष में **कमिषीष्ट** आदि रूप बनेंगे।

(१५५) विभाषेटः ८।३।७९॥

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वं लुङ्लिटां धस्य वा ढः ।

कामयिषीढ्वम्, कामयिषीध्वम् ।

कमिषीष्ट, कमिषीध्वम् ।

(१५६) णि श्रिद्रु स्रुभ्यः कर्तरि चङ् ३।१।४८॥

ण्यन्तात् श्रयादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे ।

(१५७) णेरनिटि ६।४।५१॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात् ।

(१५८) णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७।४।१॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात् ।

विभाषेट इति—इण् से परे जो इट् उससे परे षीध्वम्, लुङ् और लिट् के लकार को ढकार विकल्प से हो।

आशीर्लिङ् में णिङ् पक्ष में ध्वम् प्रत्यय परे **"कामयिषीध्वम्"** इस रूप में इण्—यकार से परे इट् है और उससे परे षीध्वम् है अतः प्रस्तुत सूत्र से विकल्पतः 'ध्' को 'ढ्' होकर **कामयिषीढ्वम्** और **'कामयिषीध्वम्'** ये दो रूप बनते हैं। णिङ् के अभाव पक्ष में कमिषीध्वम्, यह एक ही रूप बनेगा, प्रस्तुत सूत्र से ढत्व न होगा, क्योंकि यहाँ इण् से परे इट् नहीं है। अतः एव "इणः षीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गात्' इस सामान्य सूत्र से भी ढत्व न होगा, क्योंकि यहाँ भी इण् से परे इट् नहीं है, क्योंकि इट् तो सीयुट को होता है, यहाँ केवल 'कम्' यह अंग है जो कि इणन्त नहीं है।

णि श्रि-इति—ण्यन्त तथा श्रि द्रु स्रु धातुओं से परे च्लि को चङ् आदेश हो, कर्तृ वाच्य लुङ् परे रहते।

णेरनिटीति—जिसके आदि में इट् न हो, ऐसे आर्धधातुक परे रहते णि का लोप हो।

णाविति—चङ् परक णि परे जो अंग, उसकी उपधा को ह्रस्व हो।

लुङ् लकार में प्रथम पुरुषैक वचन विवक्षा में, णिङ् पक्ष में अट् का आगम, लुङ् के स्थान में त प्रत्यय, एवं च्लि प्रत्यय करने पर, 'अ काम इ च्लि त' इस स्थिति में सूत्र सं० १३५ से च्लि को चङ् आदेश, (चङ् में केवल 'अ' शेष रहता है) चङ् प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होती है। अतः अनिडादि आर्धधातुक चङ् परे रहते—सूत्र सं० १३६ से णि का लोप होकर "अ काम् अ त" इस स्थिति में यहाँ चङ् परक णि का अंग है 'काम्' अतः इसकी उपधा अर्थात् आकार का, सूत्र सं० १३७ से ह्रस्व होकर अ कम् अ त यह स्थिति होगी।

(१५९) चङि ६।१।११॥

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः, अजादे द्वितीयस्य ।

(१६०) सन्वल्लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे ७।४।९३॥

चङ् परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः तस्य सनीव कार्यं स्यात्, णावग्लोपे सति ।

(१६१) सन्यतः ७।४।७९॥

अभ्यासस्यात इत् स्यात् सनि ।

(१६२) दीर्घो लघोः ७।४।९४॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये ।

अचीकमत ।

णिङभाव पक्षे—

(वा०) कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः । अचकमत ।

अकामयिष्यत, अकमिष्यत ।

चङीति—चङ् परे अभ्यास रहित धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व हो किन्तु अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को द्वित्व हो ।

उक्त स्थिति में धातु का अवयव प्रथम एकाच् 'कम्' है, अतः प्रस्तुत सूत्र से कम् को द्वित्व अभ्यास कार्य, 'कुहोश्चुः' क को च होकर 'अ च कम् अ त' यह स्थिति होगी ।

सन्वदिति—चङ् परक णि परे रहते जो अंग उसका अवयव जो लघुपरक अभ्यास उसको सन् प्रत्यय परे रहने के समान ही कार्य हो अर्थात् सन् परे जो-जो कार्य होते हैं वे यहाँ भी हो, णि को निमित्त मानकर यदि अंग के 'अक्' का लोप न हुआ हो ।

उक्त स्थिति में स्थानिवद्भाव से चङ् परक णि परे अङ्ग है—'अ च कम्' और इसका अवयव अभ्यास का 'च' है, जो कि लघुवर्ण 'क' परक भी है, अतः उक्त स्थिति में इस सूत्र से यहाँ सन् प्रत्यय वत् कार्य होंगे । इस प्रकार उक्त स्थिति में सर्वप्रथम, सन्वत् कार्य—

सन्यत इति—सन् परे रहते अभ्यास के अकार को इकार हो ।

उक्त स्थिति में सन्वद्भाव होने से अभ्यास के अकार अर्थात् चकार के अकार को प्रस्तुत सूत्र से इकार होकर, 'अ चि कम् अ त' इस स्थिति में—

दीर्घ इति—सन्वद्भाव के विषय में अभ्यास के लघुवर्ण को दीर्घ हो—

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से दीर्घ होकर **'अचीकमत'** रूप बनेगा । इसके शेष रूपों में इसी प्रकार णि, चङ्, द्वित्व, सन्वद्भाव, इकार, उसको दीर्घ आदि कार्य तथान्य सामान्य कार्य होकर **'अचीकमेताम्, अचीकमन्त । अचीकमथाः, अचीकमेथाम्, अचीकमध्वम् । अचीकमे, अचीकमावहि, अचीकमामहि'** रूप होंगे ।

अय गतौ ।३।।

अयते ।

(१६३) उपसर्गस्याऽयतौ ८।२।१९।।

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् ।

प्लायते । पलायते ।

(१६४) दयाऽयाऽऽसश्च ३।१।३७।।

दय अय आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि । अयाञ्चक्रे । अयिता । अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिषीष्ट । विभाषेटः—अयिषीढ्वम्, अयिषीध्वम् । आयिष्ट, आयिढ्ध्वम् आयिध्वम् । आयिष्यत ।

लुङ् लकार आर्धधातुक लकार है अतः यहाँ णिङ् प्रत्यय विकल्प से होगा, णिङ् पक्ष में तो उक्त रूप होंगे, किन्तु णिङ् के अभाव पक्ष में—

(वा०) **कमेरिति**—कम् धातु से परे च्लि को चङ् हो। इससे च्लि को चङ (अ) करने पर 'अ कम् अ त' इस स्थिति में कम् कम् द्वित्व, अभ्यास कार्य क को च करने पर णिङ् प्रत्यय के अभाव में सन्वद्भाव न होने से यहाँ अन्य कोई कार्य न होंगे, इस प्रकार **'अचकमत'** यह दूसरा रूप बनेगा। इसके शेष रूपों में सामान्य कार्य ही होंगे और अचकमेताम् अचकमन्त आदि रूप होंगे।

लृङ् लकार भी आर्धधातुक लकार है, अतः यहाँ भी णिङ् विकल्प से होगा। णिङ् होने पर वृद्धि, स्य इट् आदि सामान्य कार्य होकर **अकामयिष्यत** आदि रूप होंगे। णिङ् के अभाव पक्ष में सामान्य कार्य होकर **अकमिष्यत** आदि रूप बनेंगे।

'अय' धातु का अर्थ 'जाना' है।

लट् लकार में सामान्य कार्य होकर अयते, अयेते, अयन्ते आदि रूप बनेंगे।

उपसर्गस्येति—अय धातु परक उपसर्गस्थ रेफ को लकार आदेश हो।

अय धातु से लट् त शप्, प्रत्यय के तकार के अकार 'टि' को एत्व करने पर **अयते अयेते अयन्ते** आदि रूप बनेंगे।

प्र० उपसर्गपूर्वक 'प्र+अयते' इस स्थिति में उपसर्गस्थ रेफ को प्रस्तुत सूत्र से लकार करने पर प्लायते और परा+अयते इस स्थिति में लत्व करने पर पलायते रूप बनते हैं। प्लायते और पलायते का अर्थ "भागता है" है।

दायिति—दय् अय् और आस् धातुओं से लिट् परे रहते आम् का आगम हो।

अयाञ्चक्रे—अय् धातु से लिट् लकार में प्रकृत सूत्र से आम् का आगम, लिट् का लोप, पुनः "कृञ् चानुप्रयुज्यते"—से लिट् सहित कृ का प्रयोग, कृ कृ द्वित्व अभ्यास कार्य, अनुस्वार पर सवर्ण, त को एश्, यण् करने पर **अयाञ्चक्रे** रूप बनेगा, इस लकार के शेष रूप अयाञ्चक्राते आदि भी इसी प्रकार बनेंगे।

लुट् लकार में अयिता, लृट् में अयिष्यते रूप होंगे, यहाँ इट् तथान्य सामान्य कार्य ही होंगे।

द्युत दीप्तौ ।।४।।

द्योतते ।

(१६५) द्युतिष्वाप्योः संप्रसारणम् । ७।४।६७।।

अभ्यासस्य । दिद्युते ।

(१६६) द्युद्भ्यो लुङि १।३।९१।।

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् ।

पुषादि—इत्यङ् । अद्युतत, अद्योतिष्ट । अद्योतिष्यत ।

लुट्			लृट्		
अयिता	अयितारौ	अयितारः ।	अयिष्यते	अयिष्येते	अयिष्यन्ते
अयितासे	अयितासाथे	अयिताध्वे ।	अयिष्यसे	अयिष्येथे	अयिष्यध्वे
अयिताहे	अयितास्वहे	अयितास्महे ।	अयिष्ये	अयिष्यावहे	अयिष्यामहे

लोट् लङ् विधिलिङ् में सर्वत्र आत्मने पद के सामान्य कार्य ही होंगे ।

लोट्			लङ्		
अयताम्	अयेताम्	अयन्ताम् ।	आयत	आयेताम्	आयन्त
अयस्व	अयेथाम्	अयध्वम् ।	आयथाः	आयेथाम्	आयध्वम्
अयै	अयावहै	अयामहैं ।	आये	आयावहि	आयामहि

विधिलिङ्			आशीर्लिङ्		
अयेत	अयेयाताम्	अयेरन् ।	अयिषीष्ट	अयिषीयास्ताम्	अयीषीरन्
अयेथाः	अयेयाथाम्	अयेध्वम् ।	अयिषीष्ठाः	अयिषीयास्थाम्	अयिषीढ्वम् ध्वम्
अयेय	अयेवहि	अयेयहि ।	अयिषीय	अयिषीवहि,	अयिषीमहि ।

आशीर्लिङ् के ध्वम् प्रत्यय परे "विभाषेटः' सूत्र से ध को ढ विकल्प से होता है, क्योंकि यहाँ इण् यकार से परे इट् है ।

लुङ् लकार में आट्, सिच्, इट् षत्व ष्टुत्व होकर **आयिष्ट** रूप बनता है । ध्वम् परे विकल्पतः ढत्व होने से आयिढ्वम् और आयिध्वम् । ये दो रूप बनते हैं ।

लृङ् लकार में आट् इट् ष्य आदि होकर सामान्य कार्य ही होंगे, अतः आयिष्यत आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् लकार—आयिष्ट, आयिषाताम्, आयिषत । आयिष्ठाः आयिषाथाम्, आयिढ्वम् आयिध्वम् । आयिषि, आयिष्वहि आयिष्वमहि ।

द्युत दीप्तौ—द्युत धातु का अर्थ 'चमकना' है ।

लट् लकार में त शप् गुण एत्व होकर **'द्योतते'** आदि रूप बनते हैं ।

द्युतीति—द्युत और स्वप् धातु के अभ्यास को संप्रसारण हो ।

लिट् लकार में प्रथम पुरुषैकवचन में द्युत् द्युत् द्वित्व अभ्यास कार्य, द्यु द्युत् इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से अभ्यास के यकार को 'इ' संप्रसारण' "संप्रसारणाच्च"

एवम्—श्विता वर्णे ।५।। ञिमिदा स्नेहने ।६।। ञिष्विदा स्नेहन-मोचनयोः ।७।। मोहनयो रित्येके । ञिक्ष्विदा चेत्येके । रुच दीप्तौ अभिप्रीतौ च ।८।। घुट परिवर्तने ।९।। शुभ दीप्तौ ।१०।। क्षुभ संचलने ।११।। णभ हिंसायाम् ।१२।। तुभ हिंसायाम् ।१३।। स्रंसु ।१४।। भ्रंसु ।१५।। ध्वंसु अवस्रंसने ।१६।। ध्वंसु गतौ च ।१७।। स्रम्भु विश्वासे ।१८।। वृतु वर्तने ।१९।।

वर्तते, ववृते । वर्तिता ।

सूत्र से उकार का पूर्व रूप, शेष सामान्य कार्य करने पर '**दिद्युते**' रूप बनेगा । इसके शेष रूपों में संप्रसारण तथान्य सामान्य कार्य ही होकर निम्नलिखित रूप होंगे ।

दिद्युते, 'दिद्युताते, दिद्युतिरे । दिद्युतिषे, दिद्युताथे, दिद्युदिध्वे । दिद्युते, दिद्युतिवहे, दिद्युतिमहे ।

लुट्—द्योतिता । लृट्—द्योतिष्यते । लोट्—द्योतताम् । लङ्—अद्योतत । लिङ्—द्योतेत, आ० लिङ्—द्योतिषीष्ट ।

द्युद्भ्य इति—द्युत आदि धातुओं से परे लुङ् को परस्मैपद विकल्प से हो ।

प्रस्तुत सूत्र से लुङ् लकार में परस्मैपद होने पर द्युत से अट्, "पुषादि-द्युतादि—सूत्र से च्लि को अङ्, अङ् के ङित् होने से गुणाभाव होकर **अद्युतत्** आदि रूप बनेंगे ।

परस्मैपद के अभाव पक्ष में आत्मने पद में च्लि को सिच् इट् गुण षत्व ष्टुत्व होकर **अद्योतिष्ट, अद्योतिषाताम् अद्योतिषत । अद्योतिष्ठाः, अद्योतिषाथाम्, अद्योतिध्वम् । अद्योतिषि, अद्योतिष्वहि, अद्योतिष्महि;** रूप बनेंगे ।

लृङ् लकार में सामान्य कार्य होकर **अद्योतिष्यत** आदि रूप बनेंगे ।

एवमिति—इसी प्रकार "श्विता वर्णे" आदि द्युतादि गण में १७ धातुयें हैं जिनके रूप 'द्युत' धातु की ही तरह बनेंगे ।

श्विता वर्णे—।५।। श्वित धातु 'श्वेत रंग से रंगने' अर्थ में है, इस गण की प्रायः सभी धातुओं के साथ ञ् आ आदि अनुबन्ध जुड़े हुये हैं, प्रयोगावस्था में इनका लोप हो जाता है । इस श्वित धातु के रूप द्युत धातु के समान ही सर्वत्र बनेंगे, लिट् लकार में सम्प्रसारण एवं लुङ् लकार में विकल्पतः परस्मैपद भी होगा, शेष सब सामान्य कार्य होंगे। संक्षेपतः इसके रूप इस प्रकार बनेंगे ।

श्वेतते । शिश्विते । श्वेतिता । श्वेतिष्यते । श्वेतताम् । अश्वेतत । श्वेतेत । श्वेतिषीष्ट । अश्वितत, अश्वेतिष्ट । अश्वेतिष्यत । ञिमिदा स्नेहने ।६।। मिद् धातु 'चिकना होना' अर्थ में है । इसके रूप भी पूर्ववत् बनेंगे—

मेदते । मिमिदे । मेदिता । मेदिष्यते । मेदताम् । अमेदत । मेदेत । मेदिषीष्ट । अमिदत् अमेदिष्ट । अमेदिष्यत ।

ञिष्विदा स्नेहन मोचनयोः ।७।।—स्विद् धातु स्विन्न होने और त्यागने अर्थ में है । कोई आचार्य इसका अर्थ 'मोचनयोः' के स्थान पर मोहनयोः पाठ मान कर 'मोहित होना' मानते हैं ।

(१६७) वृद्भ्यः स्यसनोः ।१।३।९२।।

वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्यात् स्ये सनि च ।

(१६८) न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ।७।२।५९।।

वृतु वृधु शृधु स्यन्दुभ्यः सकारादेरार्धधातुक स्येण् न स्यात् । तङानयो रभावे । वर्त्स्यति, वर्तिष्यते । वर्तताम् । अवर्तत । वर्तेत । वर्तिषीष्ट । अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत् अवर्तिष्यत ।

कोई आचार्य ञिष्वदा के स्थान पर ञिक्ष्वदा पाठ मानते हैं। स्विद् धातु के रूप भी द्युत धातु के समान ही बनेंगे—

स्वेदते, सिस्विदे । स्वेदिता । स्वेदिष्यते । स्वेदताम् । अस्वेदत । स्वेदेत, स्वेदिषीष्ट । अस्विदत् अस्वेदिष्ट । अस्वेदिष्यत । रुच दीप्तौ अभिप्रीतौ च ।८।। रुच् धातु का अर्थ 'चमकना और पसन्द करना' है—

रोचते । रुरुचे । रोचिता । रोचिष्यते । रोचताम् । अरोचत । रोचेत । रोचिषीष्ट । अरुचत् अरोचिष्ट । अरोचिष्यत । घुट परिवर्तने ।९।। घुट धातु का अर्थ 'घोंटना' है—

घोटते । जुघुटे । घोटिता । घोटिष्यते । घोटताम् । अघोटत । घोटेत । घोटिषीष्ट । अघुटत् अघोटिष्ट । अघोटिष्यत ।

इसी प्रकार शेष द्युतादिगण की धातुओं के भी रूप बनेंगे इनके मुख्य-मुख्य रूप इस प्रकार होंगे—

शुभ दीप्तौ ।१०।। शुभ धातु का अर्थ 'चमकना या शोभा पाना है । **शोभते । शुशुभे । शोभिता । शोभिष्यते । शोभताम् । अशोभत । शोभेत । शोभिषीष्ट । अशुभत् अशोभिष्ट । अशोभिष्यत ।**

क्षुभ संचलने ।११।। क्षुभ धातु का अर्थ व्याकुल या क्षुब्ध होना है । **क्षोभते । चुक्षुभे । क्षोभिता । क्षोभिष्यते । क्षोभताम् । अक्षोभत । क्षोभेत । क्षोभिषीष्ट । अक्षुभत् अक्षोभिष्ट । अक्षोभिष्यत ।**

णभ हिंसायाम् ।१२।। नभ धातु का अर्थ हिंसा करना है। **नभते । नेभे । नभिता । नभताम् । अनभत् । अनभिष्ट । अनभिष्यत ।**

तुभ हिंसायाम् ।१३।। तुभ धातु का अर्थ हिंसा करना है। **तोभते । तुतुभे । तोभिता । तोभिषीष्ट । अतुभत् अतोभिष्ट ।**

स्रंसु अवस्रंसने ।१४।। स्रंस् धातु का अर्थ गिरना है। **स्रंसते । सस्रंसे । स्रंसिता स्रंसिषीष्ट । अस्रसत् अस्रंसिष्ट ।**

इस धातु के लुङ् लकार में च्लि को अङ् होने पर ङित्वात् 'अनिदितां हल उपधायाः—सूत्र धातु से नकार का लोप हो जाता है। इसी प्रकार ध्रंसु, ध्वंसु, स्रम्भु धातुओं में भी च्लि को अङ् करने पर धातु के नकार का लोप हो जायेगा ।

दद दाने ।२०॥

ददते ।

(१६६) न शस दद वादिगुणानाम् ।६।४।१२६॥

शसे ददे वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारः, तस्य च एत्वाभ्यास लोपो न ।

ददते, ददहाते, ददहिरे ।

ददिता । ददिष्यते । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत ।

त्रपूष् लज्जायाम् ।२१॥

त्रपते ।

भ्रंसु अवस्रंसने ।१५॥ भ्रंसु धातु का अर्थ 'गिरना' है। **भ्रंसते । बभ्रंसे । भ्रंसिषीष्ट । अभ्रसत अभ्रंसिष्ट । अभ्रंसिष्यत ।**

ध्वंसु अवस्रंसने ।१६॥ ध्वंसु धातु का अर्थ 'गिरना या नाश होना' है। **ध्वंसते । दध्वंसे । ध्वंसिता । अध्वसत् अध्वंसिष्ट ।**

ध्वंसु गतौ च ।१७॥ ध्वंस् धातु का अर्थ 'जाना' भी है।

स्रम्भु विश्वासे ।१८॥ स्रंम्भ् धातु का अर्थ 'विश्वास करना है। **स्रम्भते । सस्रम्भे । स्रंम्भिता । अस्रभत् अस्रम्भिष्ट ।**

इस धातु के पूर्व 'वि' उपसर्ग अनिवार्यतः जोड़ा जाता है, तभी इसका अर्थ विश्वास करना होता है।

वृतु वर्तने ।१९॥ वृत् धातु का अर्थ 'होना' है।

इस धातु के लट् लकार में **वर्तते,** लिट् में **ववृते**, लुट् में **वर्तिता** रूप बनते हैं, जिनमें सामान्य कार्य ही होते हैं। लट् और लुट् में तो गुण हो जाता है, किन्तु लिट् में "ग्किङिति च" से निषेध हो जाने से गुण नहीं होता, क्योंकि यहाँ पर "ॠदुपधेभ्यो लिटः कित्वं गुणात् पूर्वविप्रतिषेधेन" इस वार्तिक से गुण होने के पहले ही लिट् कित् हो जाता है।

वृद्भ्य इति—वृतु वर्तने, वृधु वृद्धौ, श्रधु शब्द कुत्सायाम् (कुत्सित शब्द करना—अपान वायु का शब्द) स्यन्दू प्रस्रवणे (बहना) क्रृप् सामर्थ्ये (समर्थ होना) इन पाँच धातुओं से विकल्पतः परस्मैपद हो, स्य और सन् प्रत्यय के विषय में।

न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः—वृत् वृध् श्रध् तथा स्यन्द इन चार धातुओं से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् न हो। तङ् प्रत्यय और आन (शानच् और कानच् प्रत्यय) के अभाव में अर्थात् परस्मैपद में।

वृत् धातु लृट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में स्य प्रत्यय, "वृद्भ्यः स्यसनोः" से परस्मैपद करने पर 'वृत् स्यति' इस स्थिति में, आर्धधातुक 'स्य' प्रत्यय परे

(१७०) तॄफलभजत्रपश्च । ६।४।१२२॥

एषामत एत्व मभ्यास लोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च । त्रेपे । त्रपिता, त्रप्ता । त्रपिष्यते, त्रप्स्यते । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत । त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट, अत्रप्त । अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत ।

इत्यात्मनेपदिनो धातवः ।

'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से इट् प्राप्त होता है, किन्तु सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय परे 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' से उसका निषेध हो जाता है, तब गुण होकर **वर्त्स्यति** आदि रूप बनते हैं। जब वैकल्पिक होने के कारण परस्मैपद नहीं होता तब 'वृत् स्यते' इस स्थिति में इट् और गुण तथा षत्व होकर **वर्तिष्यते** आदि रूप बनते हैं।

लोट् लङ् विधिलिङ् में गुण आदि सामान्य कार्य होकर वर्तताम् । अवर्तत । वर्तेत आदि रूप बनते हैं। आशीर्लिङ् में इट् तथा सामान्य कार्य होकर **वर्तिषीष्ट** आदि रूप होंगे। लुङ् लकार में सिच् गुण षत्व आदि होकर **अवर्तिष्ट** आदि रूप होंगे। लृङ् लकार में लृट् लकार की भाँति 'स्य' करने पर पाक्षिक परस्मैपद होने पर प्राप्त इट् का निषेध तथा गुण होकर **'अवर्त्स्यत्'** आदि रूप बनेंगे। परस्मैपद न होने पर इट् गुण होकर **अवर्तिष्यत** आदि रूप बनेंगे।

वृध् आदि शेष धातुओं के रूप सर्वथा वृत् धातु के समान ही बनते हैं, परस्मैपद भी 'स्य' प्रत्यय परे विकल्पतः होता है, और परस्मैपद में इट् का निषेध भी—

वृध—वर्धते । ववृधे । वर्धिता । वर्त्स्यति, वर्धिष्यते । वर्धताम् । अवर्धत । वर्धेत । वर्धिषीष्ट । अवर्धिष्ट । अवर्त्स्यत्, अवर्धिष्यत ।

शृध्—शर्धते । शशृधे । शर्धिता । शर्त्स्यति, शर्धिष्यते । शर्धताम् । अशर्धत । शर्धेत । शर्धिषीष्ट । अशर्धिष्ट । अशर्त्स्यत्, अशर्धिष्यत । इसी प्रकार स्यन्द् आदि के भी रूप बनेंगे।

दद दाने—दद धातु का अर्थ देना है।

लट् लकार में त शप् आदि सामान्य कार्य होकर **'ददते'** आदि रूप बनेंगे।

न शसददेति—शस (हिंसायाम्) दद दाने तथा वकारादि धातुओं को और गुण शब्द से विहित अकार को एत्व और अभ्यास लोप न हो।

दद धातु से लिट् लकार में 'असंयोगाल्लिट् कित्' सूत्र से लिट् लकार के सभी प्रत्ययों के अपित् होने से कित् होने के कारण, धातु को द्वित्व और अभ्यास कार्य करने पर "अत एक हल् मध्येऽना देशादे लिटि" सूत्र से एत्व और अभ्यास का लोप प्राप्त होता है, उसका "न शस ददेति" सूत्र से निषेध हो जाता है, अतः इस लकार के सभी रूपों में सामान्य कार्य ही होकर **दददे, दददाते, दददिरे** आदि रूप बनेंगे। लुट् आदि लकारों में भी सामान्य कार्य ही होते हैं—**ददिता । ददिष्यते । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत ।**

त्रपूष् लज्जायाम्—त्रप् धातु का अर्थ 'लज्जित होना' है। इसके अकार और सकार इत् संज्ञक है।

लट् लकार में त शप् आदि सामान्य कार्य होकर **त्रपते** आदि रूप बनते हैं।

तॄफलेति—तॄ (तैरना) फल् (फलना) भज् (सेवा करना) और त्रप् धातुओं को एत्व और अभ्यास लोप हो कित् लिट् और सेट् थल् परे रहते।

त्रप् धातु के आत्मनेपदी होने के कारण लिट् लकार कित् होता है। अतः इस लकार में "तॄफलेति" सूत्र से सर्वत्र एत्वाभ्यास लोप होता है, अतः **त्रेपे, त्रेपाते, त्रेपिरे। त्रेपिषे, त्रेपाथे, त्रेपिध्वे। त्रेपे, त्रेपिवहे त्रेप्वहे, त्रेपिमहे त्रेप्महे।** रूप बनते हैं। इनकी सिद्धि सामान्य नियमानुसार ही होती है। वहि महि प्रत्ययों के परे इट् के विकल्प का कारण धातु का 'ऊदित्' होना है, इसीलिये लुट् लृट् आशीर्लिङ् लुङ् लृङ् लकारों में भी इट् का विकल्प होता है। "स्वरतिसूतिसूयति धूञूदितो वा" सूत्र इट् का विकल्पतः विधान करता है। इस विकल्प के कारण उक्त लकारों में दो-दो रूप बनते हैं।

लुट्—त्रपिता त्रप्ता। लृट्—त्रपिष्यते त्रप्स्यते। लोट्—त्रपताम्। लङ्—अत्रपत। विधिलिङ्—त्रपेत। आशीर्लिङ्—त्रपिषीष्ट त्रप्सीष्ट। लुङ्—अत्रपिष्ट अत्रप्त। लृङ्—अत्रपिष्यत अत्रप्स्यत।

इत्यात्मनेपदिनो धातवः

अथोभयपदिनो धातवः

श्रिञ् सेवायाम् ।१।।

श्रयति, श्रयते । शिश्राय, शिश्रिये । श्रयिता । श्रयिष्यति, श्रयिष्यते । श्रयतु, श्रयताम्, अश्रयत्, अश्रयत । श्रयेत्, श्रयेत । श्रीयात् श्रयिषीष्ट । चङ्—अशिश्रियत्, अशिश्रियत । अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत ।

श्रिञ् सेवायाम् ।१।। श्रि धातु 'सेवा करने' अर्थ में है। ञित् होने से यह उभयपदी है, इसके सभी लकारों के रूप परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों में बनेंगे।

लट् लकार में परस्मैपद में तिप् शप् (अ) गुण अयादेश होकर **श्रयति, श्रयतः** आदि रूप बनेंगे। आतमने पद में त, शप् गुण अयादेश होकर **श्रयते, श्रयेते** आदि रूप बनेंगे।

लिट् लकार परस्मैपद में तिप् णल्, धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य—शिश्रि णित् होने से इकार को 'ऐ' वृद्धि, आय् आदेश होकर **शिश्राय,** द्विवचन में अतुस् के कित् होने से वृद्धि निषेध, 'शिश्रि अतुस्' इस स्थिति में इकार को इयङ् आदेश, सकार को रुत्व विसर्ग होकर **शिश्रियतुः,** उस् परे भी इयङ् होकर **शिश्रियुः** । म० पु० एकवचन में 'शिश्रि+थल्' इस स्थिति में 'ऊद्दन्तै' रित्यादि कारिका में श्रि धातु का ग्रहण होने से, यहाँ इट् का निषेध होगा अतः इट् करने पर 'शिश्रि इ थ' इस स्थिति में सिप् स्थानिक थल् के पित् होने से इकार को ए गुण अयादेश होकर **शिश्रयिथ,** इयङ्—**शिश्रियथुः, शिश्रिय** । णलुत्तमो वा—**शिश्राय, शिश्रय,** इट् इयङ्— **शिश्रियिव, शिश्रियिम** ।

लिट् लकार आत्मने पद में सभी प्रत्ययों के कित् होने से गुण वृद्धि न होंगे अपितु सर्वत्र इयङ् और सामान्य कार्य होकर **शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे । शिश्रियिषे, शिश्रियाथे, शिश्रियिध्वे । शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे ।**

लुट् लकार

परस्मैपद			आत्मनेपद		
श्रयिता	**श्रयितारौ**	**श्रयितारः ।**	**श्रयिता**	**श्रयितारौ**	**श्रयितारः ।**
श्रयितासि	**श्रयितास्थः**	**श्रयितास्थ ।**	**श्रयितासे**	**श्रयितासाथे**	**श्रयिताध्वे ।**
श्रयितास्मि	**श्रयितास्वः**	**श्रयितास्मः ।**	**श्रयिताहे**	**श्रयितास्वहे**	**श्रयितास्महे ।**

भृञ् भरणे ।२।।

भरति, भरते । **बभार, बभ्रतुः बभ्रुः । बभर्थ, बभृव, बभृम । बभ्रे, बभृषे । भर्तासि, भर्तासि । भरिष्यति, भरिष्यते । भरतु, भरताम् । अभरत्, अभरत, भरेत्, भरेत ।**

(१७१) रिङ् शयग्लिङ्क्षु ७।४।२८।।

शे यकि यादावार्धधातुके लिङ् च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात् ।

लृट् लकार के दोनों पदों में सामान्य कार्य स्य इट् गुण होकर **श्रयिष्यति, श्रयिष्यते** आदि रूप बनेंगे ।

लोट् और लङ् में सामान्य कार्य होकर— **श्रयतु, श्रयताम् । अश्रयत्, अश्रयत** आदि रूप होंगे । विधिलिङ् में— **श्रयेत्, श्रयेत** आदि रूप होंगे ।

आशीलिङ् परस्मैपद में 'अकृत सार्वधातुकयोः' सूत्र से दीर्घ होकर **श्रीयात् श्रीयास्ताम् श्रीयासुः** आदि रूप होंगे । आत्मने पद में इट् गुण होकर **श्रयिषीष्ट** आदि रूप बनेंगे । लुङ् लकार में "णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्" सूत्र से च्लि को चङ् आदेश, 'चङि' सूत्र से धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'अशिश्रि अ त्' इस स्थिति में इयङ् होकर **'अशिश्रियत्, अशिश्रियत** आदि रूप होंगे । लृङ् में **अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत् ।**

भृञ् भरणे ।८।। भृ धातु 'भरण पोषण करने' अर्थ में उभयपदी है ।

लट् में—तिप् शप् गुण होकर तथा आत्मने पद में प्रत्यय के अकार को एत्व होकर 'भरति, भरते' इत्यादि रूप बनेंगे ।

लिट् में भृ भृ द्वित्व अभ्यास कार्य बभृ+णल् का अ, वृद्धि **"बभार"** बभृ+अतुस् तथा उस् में यण्—**बभ्रतुः बभ्रुः ।** थल् परे गुण होकर **बभर्थ**—यहाँ "कृ सृ भृ स्तु द्रु स्रु श्रुवो लिटि" सूत्र से इट् का निषेध होता है, **बभ्रथुः बभ्र । बभार बभर, बभृव, बभृम** यहाँ भी उक्त सूत्र से इट् का निषेध होता है । आत्मनेपद में 'बभृ+ए= यण् होकर **बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे । बभृषे, बभ्राथे, बभृढ्वे । बभ्रे,** बभृवहे, बभृमहे । लुट् में गुण होकर **भर्तासि-भर्तासि ।।** 'ऋद्धनोःस्ये' से इट् होकर लृट् में **भरिष्यति भरिष्यते ।** लोट् में—**भरतु, भरताम् ।** लङ् में अभरत अभरत् । **भरेत् भरेत ।** आशीलिङ् में भृ यात् इस स्थिति में 'अकृत् सार्वधातुकयो दीर्घः' सूत्र से दीर्घ प्राप्त होने पर—

रिङ् शेति—श प्रत्यय तथा यक् एवं यकरादि आर्धधातुक लिङ् परे रहते ऋकार को रिङ् आदेश हो ।

(रिङ् में 'ङ्' की इत् संज्ञा है)

प्रस्तुत सूत्र ऋकार को रिङ् (रि) आदेश करने पर **भ्रियात्** रूप बनता है ।

रीङि प्रकृते रिङ् विधान सामर्थ्याद दीर्घो न—भ्रियात् ।

(१७२) उश्च १।२।१२॥

ऋवर्णात् परौ झलादी लिङ् सिचौ कितौ स्तस्तङि ।

भृषीष्ट, भृषीयास्ताम् । अभार्षीत ।

(१७३) ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७॥

सिचो लोपो झलि ।

अभृत, अभृषाताम् । अभरिष्यत्, अभरिष्यत ।

हृञ् हरणे ॥३॥

हरति, हरते । जहार, जहर्थ, जह्रिव, जह्रिम । जह्रे, जह्रिषे । हर्ता ।
हरिष्यति, हरिष्यते । हरतु, हरताम् । अहरत्, अहरत । हरेत्, हरेत ।
ह्रियात् हृषीष्ट, हृषीयास्ताम् । अहार्षीत् अहृत । अहरिष्यत्, अहरिष्यत ।

धृञ् धारणे ।४॥

धरति, धरते ।

रीङि प्रकृते इति—यहाँ 'रीङ् ऋतः' सूत्र से रीङ् को अनुवृत्ति हो सकती थी, फिर भी जो यहाँ ह्रस्व रिङ् का प्रस्तुत सूत्र में विधान किया गया है, इस सामर्थ्य से रिङ् करने के बाद 'अकृत् सार्वधातुकयोः—सूत्र से दीर्घ नहीं होता, यदि रिङ् करने के बाद दीर्घ ही होना था तब तो यहाँ रिङ् विधान की कोई आवश्यकता ही न थी । अतः **भ्रियात्** में रिङ् करने के बाद दीर्घ नहीं होता ।

उश्चेति—ऋवर्ण से परे झलादि लिङ् और सिच् कित् होते हैं । तङि अर्थात् आत्मनेपद में ।

आशीर्लिङ् के आत्मनेपद में 'भृ सी स् त' इस स्थिति में यहाँ झलादि लिङ् सीयुट् का 'स' है अतः प्रस्तुत सूत्र से वह कित् हो जायेगा, कित् होने से गुण न होगा । तब षत्व ष्टुत्व होकर **भृषीष्ट भृषीयास्ताम्** आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् परस्मैपद में 'अ भृ स् (सिच्) (ईट) (ई) त्' इस स्थिति में अनिट् धातु होने से इट् न होने से 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' सूत्र से ऋ को आर् वृद्धि होकर **'आभार्षीत्'** रूप बनेगा । इसके शेष रूप इस प्रकार होंगे ।

अभार्ष्टाम्, अभार्षुः । अभार्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट । अभार्षम्, अभार्ष्व, अभार्ष्म ।

आत्मनेपद में 'अ भृ (सिच्) स् त' इस स्थिति में 'उश्च' से झलादि सिच् के कित् होने से गुण नहीं होगा । तब 'अ भृ स् त' इस स्थिति में—

ह्रस्वादिति—ह्रस्वान्त अंग से परे सिच् का लोप हो, झल् परे रहते ।

उक्त स्थिति में ह्रस्वान्त अङ्ग—अभृ से परे सिच् है और उसके आगे झल् तकार है, अतः प्रस्तुतः सूत्र से सिच् का लोप होने पर **'अभृत'** रूप बनेगा । द्विवचन में झल् परे न होने से सिच् का लोप न होगा, षत्व होकर **'अभृषाताम्'** रूप बनेगा । इसके शेष रूप इस प्रकार होंगे—

णीञ् प्रापणे ।५।।

नयति, नयते ।

डुपचष् पाके ।६।।

पचति, पचते । पपाच, पेचिथ पपक्थ । पेचे । पक्ता ।

अभृषत । अभृथाः । अभृषाथाम्, अभृड्ढ्वम् । अभृषि, अभृष्वहि, अभृष्महि ।

लृङ् लकार में 'ऋद्धनोः स्ये' से इट् गुण होकर **अभरिष्यत् अभरिष्यत** आदि रूप बनेंगे ।

हृञ् हरणे—हृ धातु 'हरण करने' अर्थ में है ।

लट् में शप् गुण होकर **हरति, हरते** आदि रूप बनेंगे ।

लिट् में हृ हृ द्वित्व, अभ्यास कार्य, अभ्यासे चर्च, 'जहृ+अ' इस स्थिति में णित्वात् ऋकार को आर् वृद्धि **जहार जह्रतुः जह्रुः** (यहाँ णित् प्रत्यय न होने से वृद्धि न होगी यण् होगा) थल् परे गुण होकर **जहर्थ, जह्रथुः, जह्र,** जहार जहर, **जह्रिव जह्रिम** यहाँ क्रादि नियम से इट् हो जायेगा । आत्मनेपद में **जह्रे जह्राते जह्रिरे** (इरेच्) **जह्रिषे** (यहाँ क्रादि नियम से इट और षत्व होगा) इसी प्रकार वहि महि परे भी क्रादि नियम मे इट् होकर **जह्रिवहे, जह्रिमहे,** रूप होंगे । लुट् में अनिट् होने से **हर्तासि, हर्तासे** । 'ऋद्धनोः स्ये' **हरिष्यति, हरिष्यते, हरतु, हरताम्** । **अहरत् अहरत । हरेत् हरेत** । रिङ्—**ह्रियात,** 'उश्च' **हृषीष्ट,** लुङ् परस्मैपद—**अहार्षीत्,** आत्मनेपद 'ह्रस्वादङ्गात्' **अहृत, अहृषाताम्** लृङ्—**अहरिष्यत्, अहरिष्यत ।**

धृञ् धारणे—धृ धातु 'धारण करने, अर्थ में ञित् होने से उभयपदी है ।

इस धातु के सभी रूप 'हृ' धातु के समान बनते हैं. धातु के अनिट् होने से लिट् लकार में इडादि कार्य भी 'हृ' धातु के समान ही होंगे । यथा—

धरति, धरते । दधार, दध्रतुः, दधर्थ, दध्रिव, दध्रिम । दध्रे, दध्रिवे, दध्रिवहे, दध्रिमहे । धर्तासि, धर्तासे । धरिष्यति, धरिष्यते, धरतु, धरताम । अधरत् अधरत । धरेत् धरेत । ध्रियात्, धृषीष्ट (यहाँ रिङ् और 'उश्च' सूत्र के कार्य होंगे) लुङ्—**अधार्षीत्, अधृत अधृषाताम् ।** लृङ्—**अधरिष्यत् अधरिष्यत ।**

णीञ् प्रापणे—नी धातु का अर्थ 'ले जाना' है ।

लट् में शप् गुण अयादेश होकर **नयति, नयते** आदि रूप होंगे । लिट् में धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य ह्रस्व, 'निनी + अ' वृद्धि और आय् आदेश होकर **निनाय,** निनी + अतुस्-यण्—**निन्यतुः, निन्युः** । अजन्त अनिट् होने से 'अजन्तोऽकारवान्वायः तास्यनिट् थलि वेडयम्' कारिका के अनुसार, थल् परे विकल्पतः इट् **निनयिथ निनेथ, निन्यथुः,** निन्य । **निनाय, निनय,** व और म परे क्रादि नियम से नित्य इट्—**निन्यिव, निन्यिम** । आत्मनेपद में **निन्ये, निन्याते, निन्यिरे** । क्रादि नियम से ध्वम् वहि और

भज सेवायाम् ॥७॥

भजति, भजते । बभाज, भेजे । भक्ता भक्ष्यति, भक्ष्यते ।
अभाक्षीत् अभक्त, अभक्षाताम् ।

महि प्रत्यय परे नित्य इट्—**निन्यिषे, निन्याथे, निन्यिध्वे । निन्ये, निन्यिवहे, निन्यिमहे ।** रूप बनेंगे—

लुट् में अनिट् होने से—**नेतासि, नेतासे, नेष्यति नेष्यते । नयतु, नयताम् । अनयत् अनयत । नयेत् नयेत ।** आशीलिङ्—**नीयात् नेषीष्ट ।** लुङ्—**अनैषीत्, अनैष्ट । अनेष्यत् अनेष्यत ।**

डुपचष् पाके—पच् धातु का अर्थ 'पकाना' है और स्वरितेत् होने के कारण यह उभयपदी है।

लट् लकार में शप् (अ) होकर—**पचति, पचते** आदि रूप बनेंगे। लिट् लकार में द्वित्व, उपधावृद्धिः, **पपाच,** 'पपच् अतुस्' इस स्थिति में 'अत एकहल्मध्ये—सूत्र से एत्वाभ्यास लोप होकर **पेचतुः**, पेचुः यह धातु अनिट् अकारवान् है, अतः थल् प्रत्यय परे 'अजन्तोऽकारवान्वा यः इत्यादि कारिका के अनुसार विकल्पतः इट् होगा । इट् पक्ष में 'थलि च सेटि' सूत्र से एत्व और अभ्यास लोप होकर **पेचिथ,** इडभाव पक्ष में 'चोः कु, सूत्र से च् को क् होकर **पपक्थ** रूप बनेगा ।

पेचथुः, पेच । पपाच पपच, इट्—पेचिव, पेचिम । आत्मनेपद में सभी प्रत्ययों के कित् होने से सर्वत्र एत्वाभ्यास लोप तथा क्रादि नियम से, से, ध्वम्, वहि, महि प्रत्यय परे इट् होगा—**पेचे पेचाते पेचिरे । पेचिषे, पेचाथे, पेचिध्वे । पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे ।**

लुट् में—अनिट् होने से इडभाव, कुत्व होकर **पक्तासि,** पक्तासे । लृट् में 'पच् स्यति' इस स्थिति में 'चोः कुः' से च् को क्, इण् ककार से परे 'स्य' के स् को षत्व और क्+ष् के संयोग में 'क्ष' होकर **पक्ष्यति, पक्ष्यते । पचतु, पचताम् । अपचत् अपचत । पचेत् पचेत ।**

आ० लिङ्—पच्यात्, 'पच् सी स् त' इस स्थिति में कुत्व षत्व ष्टुत्व होकर **पक्षीष्ट ।** लुङ् में 'अपच् स् (सिच) ई (ईट्) त् । इस स्थिति में कुत्व, षत्व, क+ष् संयोगे क्ष, **अपाक्षीत्** । यहाँ 'वदव्रजहलन्तस्याचः' से वृद्धि होगी । 'झलो झलि' सकार लोप—**अपाक्ताम् अपाक्षुः । अपाक्षीः** सलोप— **अपाक्तम्, अपाक्त । अपाक्षम्, अपाक्ष्व अपाक्ष्म ।** आत्मनेपद में, त, थास्, ध्वम् प्रत्यय परे झल् मिल जाने से सिच् के सकार का लोप हो जाता है, शेष स्थलों पर क्+ष=क्ष होता हैं—**अपक्त, अपक्षाताम् अपक्षत । अपक्थाः, अपक्षाथाम्, अपग्ध्वम् । अपक्षि,** अपक्ष्वहि, **अपक्ष्महि ।** लृङ् लकार के रूपों में सर्वत्र क+ष=क्ष हो जाता है—अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत आदि रूप बनते हैं ।

भज सेवायाम्—भज धातु 'सेवा करने' अर्थ में है, और स्वरितेत् होने से उभय पदी भी है ।

यज देवपूजा संगतिकरणदानेषु ।८।।

यजति, यजते ।

(१७३) लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ।६।१।१७।।

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य संप्रसारणं लिटि ।

इयाज ।

(१७४) वचिस्वपियजादीनां किति ।६।१।१५।।

वचिस्वाप्यो र्यजादीनां च संप्रसारणं स्यात् किति ।

ईजतुः, ईजुः, इयजिथ, इयष्ठ । ईजे । यष्टा ।

(१७५) षढोः कः सि ।८।२।४१ ।।

यक्ष्यति, यक्ष्यते । इज्यात्, यक्षीष्ट । अयाक्षीत्, अयष्ट ।

लट् में शप् होकर—**भजति, भजते** आदि रूप बनेंगे । लिट् में धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य, "अभ्यासे चर्च" से भ को बकार एवं उपधा वृद्धि होकर **बभाज** आदि रूप बनेंगे । **भेजतुः भेजुः** आदि में एत्वाभ्यास लोप । थल् परे अनिट् अकारवान् होने से विकल्पतः इट् और "थलि च सेटि" से इट् पक्ष में **भेजिथ** और इडभावपक्ष में **बभक्थ** (चोःकुः) से ज् को ग्, पुनः (खरि च) से ग् को क् होगा । **भेजथुः भेज, बभाज बभज, भेजिव भेजिम ।**

आत्मनेपद में सभी प्रत्ययों के कित् होने से सर्वत्र एत्वाभ्यास लोप, तथा क्रादि नियम से, से, ध्वम् वहि, महि प्रत्ययों के परे नित्य इट् होता है। शेष सभी कार्य पच् धातु के समान ही होते हैं। **भेजे, भेजाते, भेजिरे । भेजिषे, भेजाथे, भेजिध्वे । भेजे, भेजिवहे, भेजिमहे ।**

लुट् में अनिट् होने से इडभाव, चोःकुः से कुत्व, खरि च से चर्त्व होकर **भक्तासि, भक्तासे** । लृट् में 'भज् स्यति' इस स्थिति में ज् को ग्, ग् को क् षत्व, क+ष=क्ष होकर **भक्ष्यति, भक्ष्यते** । लोट्—**भजतु भजताम्** । लङ्—**अभजत्, अभजत** । वि-लिङ्—भजेत्, भजेत । आ० लिङ्—**भज्यात्**, भज् सी स् त इस स्थिति में कुत्व, चर्त्व षत्व ष्टुत्व होकर **भक्षीष्ट** । लुङ् में—अ भज् (सिच्) स् ईट् त्' इस स्थिति में वदव्रजहलन्तस्याचः—से वृद्धि, कुत्व चर्त्व षत्व क+ष+क्ष होकर **अभाक्षीत्**, झलो झलि—सकार लोप, **अभाक्ताम्, अभाक्षुः । अभाक्षीः, अभाक्तम् अभाक्त । अभाक्षम् अभाक्ष्व अभाक्ष्म ।**

आत्मने पद में त, थास्, ध्वम् प्रत्ययों के परे सिच् के सकार का लोप होकर, शेष स्थलों पर क+ष=क्ष होकर **अभक्त, अभक्षाताम् अभक्षत । अभक्थाः अभक्षाथाम् अभग्ध्वम्, अभक्षि, अभक्ष्वहि अभक्ष्महि** । लृङ् में—अभक्ष्यत् अभक्ष्यत ।

यज् देवपूजा संगति करणदानेषु—यज् धातु देव पूजा आदि अर्थों में है और स्वरितेत् होने से उभयपदी भी है ।

लट् लकार में शप् होकर **यजति, यजते** आदि रूप बनेंगे।

लिट्यभ्यासस्येति—लिट् लकार परे रहते, वच् आदि तथा ग्रह आदि दोनों गणों की धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होता है। (वच् आदि धातु 'वचिस्वपियजादीनां किति' सूत्र में तथा ग्रह् आदि धातु 'ग्रहिज्या वयिव्यधिवष्टि विचति वृश्चति पृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च' सूत्र में बतलाये गये हैं। इन सभी धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होता है—अर्थात् र् को ऋ, य को इ, और व को उ होता है।

वचीति—वच् (बोलना) स्वप् (सोना) और यज आदि धातुओं को कित् प्रत्यय परे संप्रसारण होता है। (यज् आदि नौ धातुयें हैं—यजिर्वपिर्वहिश्चैव, वसिवेञ् व्येञ् इत्यपि ह्वेञ् बदी श्वयतिश्चेति, यजाद्याः स्युरिमे नव") लिट् लकार में यज् धातु से परस्मैपद में तिप् णल् (अ) द्वित्व अभ्यास कार्य 'य यज् अ' इस स्थिति में "लिट्यभ्यासस्येति सूत्र से अभ्यास के यकार को 'इ' संप्रसारण, 'संप्रसारणाच्च' सूत्र से अकार का पूर्वरूप, उपधा वृद्धि होकर **'इयाज'** रूप बनता है द्विवचन में कित् लिट् अतुस् परे 'वचीति' सूत्र से यकार को संप्रसारण और 'संप्रसारणाच्च सूत्र से अकार का पूर्व रूप होकर इज् बन जाने पर द्वित्व अभ्यास कार्य, 'इ इज अतुस्' इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ होकर **ईजतुः,** इसी प्रकार उस् परे **ईजुः** रूप बनेंगे।

(धातु को द्वित्व होने से पूर्व ही परत्वात् संप्रसारण और तदाश्रय कार्य—अकार का पूर्व रूप, हो जाता है, तब द्वित्व आदि कार्य होते हैं, इसीलिए कहा गया है—(संप्रसारणं तदाश्रयं कार्यं च बलवत्) म० पु० एकवचन में सिप् स्थानिक थल् परे, धातु के अनिट् अकारवान् होने से वैकल्पिक इट् होता है, इट् पक्ष में 'लिट्यभ्यासस्येति से संप्रसारण होकर **इयजिथ** रूप बनता है, इडभाव पक्ष में 'इयज् थ, इस स्थिति में व्रश्चेति सूत्र से जकार को मूर्धन्यादेश षकार तथा ष्टुत्व होकर **इयष्ठ** रूप बनेंगा। **ईजथुः, ईज। इयाज, इयज, ईजिव, ईजिम,** रूप होंगे।

आत्म ने पद में सभी प्रत्ययों के कित् होने से सर्वत्र द्वित्व से पहले संप्रसारण होगा, तदनु इज् इज् द्वित्व अभ्यास कार्य, सवर्ण दीर्घ होकर रूप बनेंगे। से, ध्वम्, वहि, महि प्रत्ययों के परे इट् भी होगा —**ईजे ईजाते ईजिरे। ईजिषे, ईजाथे, ईजिध्वे। ईजे, ईजिवहे, ईजिमहे,** रूप बनेंगे।

लुट् में अनिट् होने के कारण इट् न होगा, व्रश्चेति सूत्र से जकार को षकार और ष्टुत्व होकर यष्टासि, यष्टासे आदि रूप होंगे।

लृट् में 'यज् स्य ति' इस स्थिति में व्रश्चेति सूत्र से जकार को षकार करने पर 'यष् स्य ति' इह स्थिति में—

षढोरिति—षकार और ढकार को ककार होता है। सकार परे रहते।

उक्त स्थिति में षकार के आगे सकार है अतः प्रस्तुत सूत्र से षकार को ककार करने पर, ककार इण् से परे प्रत्यय 'स्य' के सकार को मूर्धन्य षकार होकर क्+ष्+क्ष होकर **यक्ष्यति** रूप बनेगा, आत्मने पद में भी इसी प्रकार **यक्ष्यते** आदि रूप होंगे।

वह् प्रापणे ।६॥

वहति, वहते । उवाह, ऊहतुः ऊहुः उवहिथ ।

(१७६) झषस्तथो र्धोऽधः ।८।२।४०॥

झषः परयोस्तथो र्धः स्यात् न तु दधातेः ।

(१७७) ढो ढे लोपः । ढो लोपः स्यात् ढे परे

(१७८) सहिवहोरोदवर्णस्य ।६।३।११२॥

अनयोरवर्णस्य ओत् स्यात् ढ लोपे । उवोढ । ऊहे । वोढा । वक्ष्यति । अवाक्षीत् अवोढाम्, अवाक्षुः । अवाक्षीः । अवोढम्, अवोढ, अवाक्षम्, अवाक्ष्व, अवाक्ष्म । अवोढ, अवक्षाताम्, अवक्षत । अवोढाः, अवक्षाथाम् अवोढ्वम् । अवक्षि, अवक्ष्वहि अवक्ष्महि । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत ।

इत्युभयपदिनो धातवः

इतिभ्वादयः

लोट्—यजतु, यजताम् । लङ्—अयजत् अयजत । वि० लिङ्—यजेत् यजेत् । आ० लिङ् में परस्मैपद में यासुट् के कित् होने से 'वचिस्वपियजादीनां किति' सूत्र से यकार को संप्रसारण तथा अकार का पूर्व रूप होकर इज्यात् आदि रूप होंगे । आत्म ने पद में यज् सीयुट त इस स्थिति में व्रश्चेति सूत्र से जकार को षकार 'षढोः कः सि, सूत्र से, सीयुट् के सकार के आगे होने से, षकार को ककार, ककार इण् से परे सकार को मूर्धन्य षकार, क्+ष् =क्ष, तथा सुट् एवं ष्टुत्व होकर **यक्षीष्ट** रूप बनेगा, इस लकार के शेष रूप इस प्रकार होंगे—

यक्षीष्ट, यक्षीयास्ताम्, यक्षीरन् । यक्षीष्ठाः, यक्षीयास्थाम्, यक्षीध्वम् । यक्षीय, यक्षीवहि, यक्षीमहि ।

लुङ् लकार में परस्मैपद में "अ यज् स ई त्" इस स्थिति में जकार को षकार, षकार को ककार, षत्व, ष्टुत्व, वृद्धि होकर **अयाक्षीत्** रूप बनता है, इसके शेष रूप इस प्रकार हैं—**अयाक्षीत्, अयाष्टाम् अयाक्षुः । अयाक्षीः, अयाष्टम् अयाष्ट । अयाक्षम्, अयाक्ष्व, अयाक्ष्म ।**

अयाष्टाम् अयाष्टम् अयाष्ट आदि रूपों में ताम् तम् त परे रहते यज् धातु के जकार को षकार और सिच् के सकार का झल् परे लोप हो जायेगा, तब तकार के साथ ष्टुत्व होकर उक्त रूप बनेंगे । जहाँ झल् परे नहीं होगा, वहाँ अयाक्षीत् की भाँति षकार, ककार, षत्व, क्+ष=क्ष होकर रूप बनेंगे ।

आत्मने पद में 'अयज् स त' इस स्थिति में झल् परे सकार लोप, जकार को षकार और ष्टुत्व होकर **अयष्ट** रूप होगा, इसके शेष रूपों में जहाँ झल् परे न मिलेगा सकार लोप न होगा, तब जकार को षकार, षकार को ककार और सकार को षत्व, क्+ष=क्ष होकर **अयक्षाताम् अयक्षत । अयष्ठाः, अयक्षाथाम् अयड्ढ्वम्, अयक्षि, अयक्ष्वहि अयक्ष्महि ।** रूप बनेंगे ।

लृङ् लकार में 'अयज् स्य त्' इस स्थिति में ज् को ष्, ष को क्, स् का षत्व, क्+ष=क्ष होकर **अयक्ष्यत्**, अयक्ष्यत आदि रूप बनेंगे।

वह् प्रापणे—वह्-धातु का अर्थ वहना और ले जाना है। स्वरितेत् होने से यह भी उभय पदी है।

लट में शप् होकर **वहति वहते** आदि रूप बनेंगे।

लिट् में धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य 'व वह् अ' इस स्थिति में 'लिट्यभ्यास-स्येति' सूत्र से अभ्यास के वकार को उ संप्रसारण, पूर्व रूप, उपधा वृद्धि होकर **उवाह**, द्विवचन में तस् स्थानिक अतुस् के कित् होने से द्वित्व के पूर्व ही, वचीति सूत्र से संप्रसारण पूर्व रूप होकर उह् उह् को द्वित्व अभ्यास कार्य, सवर्ण दीर्घ होकर **ऊहतुः** इसी प्रकार उस् परे ऊहुः रूप बनेंगे। थल् परे अनिट् अकारवान् होने से वैकल्पिक इट्, इट् पक्ष में **उवहिथ**, इडभाव पक्ष में 'उवह् थ' इस स्थिति में—

झष इति—झष् प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों के परे तकार और थकार को धकार हो, पर 'धा' धातु से न हो।

उक्त स्थिति में, सबसे पहले हकार को ढकार होकर उवढ थ, इस स्थिति में झष् वर्ण 'ढ' से परे थकार को प्रस्तुत सूत्र से धकार तदनु ष्टुत्वेन धकार को भी ढकार होकर 'उवढ ढ' इस स्थिति में—

ढो ढ इति—ढकार परे रहते ढकार का लोप हो।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से प्रथम ढकार का लोप होकर 'उव ढ' इस स्थिति में—

सहिवहो रिति— सह्-और वह्-धातुओं के अवर्ण को ओकार होता है, ढकार परे रहते।

उक्त स्थिति में ढकार परे, धातु के वकार के अकार को ओकार होकर **उवोढ** रूप बनेगा।

(वस्तुतः यह सूत्र 'ढ्र लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' सूत्र से ढ लोप होने पर प्राप्त दीर्घ का अपवाद है) द्विवचन में **ऊहथुः**, ऊह। **उवाह, उवह**, ऊहिव, **ऊहिम**। व म परे क्रादिनियम से नित्य इट् होता है।

आत्मने पद में सभी प्रत्ययों के कित् होने से, द्वित्व से पूर्व ही वचीति सूत्र से संप्रसारण और पूर्व रूप होकर उह्—को द्वित्व अभ्यास कार्य दीर्घ होकर **ऊहे, ऊहाते,** ऊहिरे। **ऊहिषे, ऊहाथे, ऊहिध्वे। ऊहे, ऊहिवहे, ऊहिमहे,** रूप होंगे। लुट् लकार में अनिट् होने से 'वह्-तास् ति' इस स्थिति में पूर्ववत् ढत्व, धत्व, ष्टुत्व, ढलोप, एवं ओत्व होकर **वोढा, वोढारौ, वोढारः, वोढासि** आदि रूप होंगे, आत्मने पद में भी इसी प्रकार, **वोढासे** आदि रूप बनेंगे।

लृट् लकार में 'वह स्य ति' इस स्थिति में भी पूर्ववत् ढत्व, षढोः कः सि' से ढकार को ककार, 'स्य' के सकार को षत्व, क्+ष्=क्ष् होकर **वक्ष्यति** आत्मने पद में **वक्ष्यते** आदि रूप बनेंगे।

लोट्—वहतु वहताम्, लङ्—अवहत् अवहत। वि० लिङ्—वहेत् वहेत। आ० लिङ्—'वह्-यात्' इस स्थिति में यासुट् के कित् होने से 'वचीति' सूत्र से वकार को उ संप्रसारण और पूर्व रूप होकर **उह्यात्** आदि रूप होंगे। आत्मने पद में 'वह्-सीष्ट' यहाँ भी पूर्ववत् ढत्व कत्व, षत्व, क्षत्व होकर **वक्षीष्ट, वक्षीयास्ताम् वक्षीरन्, वक्षीष्ठाः वक्षीयास्थाम् वक्षीध्वम् वक्षीय वक्षीवहि वक्षीमहि** रूप बनेंगे।

लुङ् लकार परस्मैपद में 'अ वह-(सिच) स ई त्' इस स्थिति में पूर्ववत् ढत्व कत्व, षत्व और क्षत्व तथा वृद्धि होकर **अवाक्षीत्**, द्विवचन में 'अ वह् स् ताम्' इस स्थिति में झल् वर्ण तकार परे रहते 'झलो झलि' से सकार लोप, ढत्व, धत्व, ढो ढे लोपः—ढलोप, और ओत्व होकर **अवोढाम**, बहुवचन में उस् परे, ढत्व, कत्व, षत्व क्षत्व वृद्धि होकर **अवाक्षुः। अवाक्षीः, अवोढम्, अवोढ। अवाक्षम् अवाक्ष्व अवाक्ष्म।**

जहाँ स्वरादि प्रत्यय आगे होता है वहाँ झल परे न मिलने पर सकार लोप नहीं होता, यदि स्वरादि प्रत्यय नहीं भी है, पर झल् वर्ण परे नहीं है तो भी सकार लोप न होगा, वहाँ तो क्रमशः ढत्व, कत्व, षत्व और क्षत्व होता है। किन्तु सकार लोप होने पर क्रमशः ढत्व, धत्व, ष्टुत्व, ढलोप ओत्व होता है, इन रूपों में यही प्रक्रिया सर्वत्र होती है। आत्मने पद में 'अ वह् स त' इस स्थिति में झल् परे सकार लोप, ढत्व, धत्व, ष्टुत्व ढलोप ओत्व होकर **अवोढ,** द्विवचन में 'अ वह्-स आताम्' इस स्थिति में स लोप न होगा। ढत्व, कत्व, षत्व, क्षत्व होकर **अवक्षाताम्** इसी प्रकार **अवक्षत,** शेष रूपों की भी सिद्धि इसी प्रक्रिया से होगी—

अवोढ अवक्षाताम् अवक्षत। अवोढाः अवक्षाथाम् अवोढ्वम्। अवक्षि, अवक्ष्वहि, अवक्ष्महि।

लृङ् लकार में। अवह् स्य त्, इस स्थिति में सर्वत्र ढत्व कत्व षत्व क्षत्व हो कर अवक्ष्यत् एवं अवक्ष्यत आदि रूप बनेंगे।

इन नौ उभय पदी धातुओं में केवल श्रिञ् धातु ही सेट् है, शेष सभी अनिट् है।

इत्युभयपदिनो धातवः

इति भ्वादिप्रकरणम्

अथ अदादिगणः

अद भक्षणे ।१॥

(१७६) अदिप्रभृतिभ्यः शपः ।२।४।७२॥

लुक् स्यात् । अत्ति, अत्तः, अदन्ति । अत्सि:, अत्थः' अत्थ । आद्मि, अद्वः, अद्मः ।

(१८०) लिट्यन्तरस्याम् ।२।४।४०॥

अदो घस्लृ वा स्यात् लिटि । जघास । उपधा लोपः ।

(१८१) शासिवसिघसीनां च ।८।३।६०॥

इण् कुम्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात् । घस्य चर्त्वम्- जक्षतु, जक्षुः । जघसिथ, जक्षथुः, जक्ष । जघास, जघस, जक्षिव, जक्षिम । आद, आदतुः आदुः ।

अद् भक्षणे—राक्षसादि के द्वारा 'खाने' के अर्थ में है ।

अदिप्रभृतिभ्य इति—अदादिगण की धातुओं से परे शप् प्रत्यय का लोप हो ।

लट् लकार में तिप् शप् करने पर प्रस्तुत सूत्र से शप् प्रत्यय का लोप होकर, 'खरि च' सूत्र से दकार को तकार होकर **अत्ति, अत्तः, अदन्ति** । सिप् परे चर्त्व होकर **अत्सि अत्थः, अत्थ** । चर्त्व होकर—**अद्मि, अद्वः, अद्मः,** रूप बनेंगे ।

लिटीति—लिट् परे रहते, अद धातु को घस्लृ आदेश विकल्प से हो । (घस् शेष बचता है, लृ इत् संज्ञक है)

लिट् लकार परे अद् धातु को प्रस्तुत सूत्र से घस् आदेश, घस् घस् द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'कुहोश्चुः' सूत्र से घकार को चवर्ग झकार, 'अभ्यासे चर्च' सूत्र से झकार को जश् जकार, उपधा वृद्धि होकर **'जघास'** रूप बनेगा ।

अतुस् परे, 'जघस् अतुस्' इस स्थिति में "गम् हन् जन, खन् घसां लोपः क्ङित्यनङि" सूत्र से उपधा के अकार का लोप, 'ज घ् स् अतुस्' इस स्थिति में—

शासीति —इण् और कवर्ग से परे शाक्ष् वस् और घस् धातुओं के अवयव स् को षत्व हो ।

(१८२) इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् ।७।२।६६।।

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् । आदिथ । अत्ता । अत्स्यति । अत्तु, अत्तात्, अत्ताम्, अदन्तु ।

(१८३) हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१।।

हो झलन्तेभ्यश्च हेर्धिःस्यात् । अद्धि अत्तात्, अत्तम्, अत्त । अदानि, अदाव, अदाम ।

(१८४) अदः सर्वेषाम् ७।३।१००।।

अदः परस्यापृक्त सार्वधातुक स्याट् स्यात् सर्वमतेन ।

आदत्, आत्ताम्, आदन् । आदः, आत्तम्, आत्त । आदम, आद्व, आद्म ।

अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः । अद्यात् । अद्यास्ताम्, अद्यासुः ।

(१८५) लुङ् सनोर्घस्लृ ।२।४।३७।।

अदो घस्लृ स्यात् लुङि सनि च ।

लृदित्वादङ्—अघसत् । आत्स्यत् ।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से सकार को षत्व होने पर 'खरि च' सूत्र से 'घ्' को चर्त्व ककार होगा; तब 'ज क् ष् अतुस्' इस स्थिति में क+ष्=क्ष् होकर 'जक्षतुः' रूप बनेगा, इसी प्रकार उस् परे रहते **जक्षुः** रूप होगा।

(यहाँ 'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र से सकार को षत्व नहीं हो सकता था क्योंकि इन धातुओं का सकार न तो आदेश रूप ही है और न प्रत्ययावयव ही है। यद्यपि अद् को घस् आदेश होता है और यहाँ सकार इस प्रकार आदेश का अवयव हो जाता है, तथापि उक्त सूत्र केवल आदेश रूप सकार को षत्व करता है न कि आदेश के अवयव सकार को, अतः यहाँ प्रस्तुत सूत्र से षत्व का विधान किया गया है) थल् परे 'जघस् थल्' इस स्थिति में नित्य इट् होकर **'जघसिथ'** केवल एक रूप बनता है।

(यद्यपि घस् अकारवान् है तथापि यह तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् नहीं है, क्योंकि अद् को घस्लृ आदेश केवल लिट् और लुङ् में ही होता है, तास् प्रत्यय परे नहीं, अद् धातु का तास् प्रत्यय परे 'अत्ता' रूप बनता है, अतः अद् धातु तो तास् परे नित्य अनिट् है पर घस् नहीं, अतः यहाँ नित्य इट् होता है, अतएव क्रादिनियम से 'व, म' परे भी नित्य इट् होता है। इस लकार के अन्य शेष रूप पूर्ववत् बनते हैं— **जक्षथुः, जक्ष । जघास जघस, जक्षिव, जक्षिम ।**

लिट् लकार में घस्लृ आदेश विकल्पतः होता है, अतः घस्लृ आदेश के अभाव पक्ष में, अद् अद् द्वित्व, अभ्यास कार्य, दीर्घ, होकर **आद, आदतुः, आदुः** रूप बनेंगे। थल् परे 'आद्+थ' इस स्थिति में—

इडिति—अद् धातु, ऋ धातु (जाना) व्येञ् (आच्छदनार्थक) धातुओं से थल् परे नित्य इट् हो।

उक्त स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से नित्य इट् होकर केवल एकरूप **'आदिथ'** बनता है।

(यद्यपि यह अद् धातु अकारवान् और तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् भी है, अतः 'अजन्तोऽकारवान् वा यः'' इस कारिका के नियमानुसार इसमें विकल्पतः इट् होना था, तथापि प्रस्तुत सूत्र से यहाँ नित्य इट् का विधान होने से नित्य इट् होकर एक ही रूप बनेगा) इस लकार के शेष रूप, पूर्ववत् **आदथुः आद**। आद आदिव **आदिम** होंगे। व, म परे क्रादिनियम से नित्य इट् होगा। लुट् लकार में अनिट् होने से दकार को चर्त्व तकार होकर **अत्ता** आदि रूप होंगे।

लृट् में 'अद् स्य ति' इस स्थिति में दकार को चर्त्वेन तकार होकर **'अत्स्यति'** आदि रूप बनेंगे।

लोट् लकार में शप् प्रत्यय का लोप होने पर, चर्त्वेन दकार को तकार होकर **अत्तु अत्तात्, अत्ताम्, अदन्तु,** रूप होंगे, सिप् परे, सि को 'सेर्ह्यपिच्च' से हि आदेश होने पर 'अद् हि' इस स्थिति में—

हुझल्भ्यो हेर्धिः—हु (हवन करना आदि) तथा झलन्त धातुओं से परे हि को धि आदेश हो।

उक्त स्थिति में झल् वर्ण अद् के द् से परे हि है, अतः प्रस्तुत सूत्र से हि को धि आदेश करने पर, **'अद्धि'** रूप बनता है, शेष रूप—**अत्तात् अत्तम् अत्त। अदानि अदाव, अदाम** होंगे—उत्तम पुरुष में शप् लोप होने पर ''आडुत्तमस्य पिच्च' सूत्र से सर्वत्र 'आट्' का आगम हो जाता है।

लङ् लकार में 'आडजादीनाम्' सूत्र से आट् का आगम होने पर **'आद् त्'** इस स्थिति में—

अदः सर्वेषाम्—अद् धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक को 'अट्' का आगम हो, सभी आचार्यों के मत में।

उक्त स्थिति में अपृक्त सार्वधातुक 'त्' के परे अद् धातु से 'अट्' का प्रस्तुत सूत्र से आगम होकर आदत् रूप बनेगा। ताम् आगे रहते अपृक्त हल् न होने से अट् न होगा, अतः आत्ताम् रूप होगा, झि परे अन्तादेश होकर तकार का संयोगान्त लोप होने पर आदन् रूप होगा। सिप् परे भी केवल सकार शेष रहने से अपृक्त हल् परे 'अट्' होकर आदः रूप होगा। **आत्तम् आत्त** यहाँ अट् न होगा, क्योंकि अपृक्त हल् नहीं है। मिप् परे मिप् को अम् आदेश होने से अट् नहीं होता, अतः **'आदम्'** वस् मस् परे केवल चर्त्व होकर **आद्व आद्म** रूप बनते हैं, यहाँ अपृक्त हल न होने से अट् नहीं होता।

विधिलिङ् में अद् से शप् होने पर उसका लोप हो जाता है। अतः यासुट् होने पर अकार से परे न मिलने के कारण 'अतो येयः' से यास् को 'इय्' आदेश नहीं होता, सार्वधातुक लकार परे होने से 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' सूत्र से सकार का लोप

हन् हिंसागत्योः ॥२॥

हन्ति ।

(१८६) अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ।६।४।३७॥

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्यात्, झलादौ किति ङिति परे ।
यमि रमि नमि गमि हनि मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः ।
तनु क्षणु क्षिणु ऋणु तृणु वनु मन तनोत्यादयः ।
हतः, घ्नन्ति । हंसि, हथः, हथ । हन्मि, हन्वः, हन्मः ।
जघान । जघ्नतुः, जघ्नुः ।

(१८७) अभ्यासाच्च ।७।३।५५॥

अभ्यासात् परस्य हन्ते र्हस्य कुत्वं स्यात् । जघनिथ, जघन्थ, जघ्नथुः, जघ्न । जघान जघन, जघ्निव, जघ्निम ।

हन्ता । हनिष्यति । हन्तु हतात्, हताम्, घ्नन्तु ।

हो जाता है, अतः **अद्यात् अद्याताम्, अद्युः, अद्याः, अद्यातम् अद्यात । अद्याम, अद्याव, अद्याम,** रूप बनते हैं ।

आशीलिङ् में आर्धधातुक लकार होने से सकार का लोप नहीं होता, अतः **अद्यात्** रूप बनता है किन्तु यहाँ संयोग आदि में होने के कारण तथा पदान्त झल् परे होने के कारण, 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' सूत्र से सकार लोप हो जाता है । द्विवचन में 'अद्या स् ताम्' इस स्थिति में पदान्त झल् परे न होने से 'स्कोः' सूत्र से स लोप नहीं होता, अतः **अद्यास्ताम्** रूप बनता है, इसी प्रकार जुस् आदि होने पर अजादि प्रत्ययों के परे भी पदान्त झल् न मिलने से 'स्कोः' सूत्र से सलोप नहीं होता, अतः **अद्यासुः, अद्याः, अद्यास्तम्, अद्यास्त, अद्यासम् अद्यास्व अद्यास्म,** व म परे भी पदान्त झल् न मिलने से सलोप नहीं होता ।

लुङ इति—लुङ् और सन् परे रहते अद् धातु को घस्लृ आदेश हो ।

लुङ् लकार में प्रस्तुत सूत्र से अद् धातु को घस् आदेश, अट् का आगम, च्लि प्रत्यय होने पर 'अघस् च्लि त्' इस स्थिति में लृदित् होने के कारण, "पुषादिद्युताद्लृदितः परस्मैपदेषु" सूत्र से च्लि को अङ् आदेश होने पर'अघसत्' रूप बनता है इस लकार के शेष रूप गम् धातु के लुङ् लकार के रूपों के समान—अघसत् **अघसताम् अघसन् । अघसः, अघसतम्, अघसत । अघसम् अघसाव अघसाम्,** बनेंगे ।

लृङ् में आडजादीनाम् से आट् होकर, स्य प्रत्यय, चर्त्वेन द् को तकार होकर **आत्स्यत्** आदि रूप बनेंगे ।

हन् हिंसागत्योः— हन् धातु हिंसा करना और गति अर्थ में है । लट् लकार में हन् धातु से तिप्, शप्, शप् का 'अदः प्रभृतिभ्यः' सूत्र से लोप, 'नश्चापदान्तस्य झलि'

सूत्र से अपदान्त नकार का अनुस्वार, 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' सूत्र से परसवर्ण अर्थात् पर तकार का सवर्ण अनुनासिक वर्ण, नकार होकर **'हन्ति'** रूप बनेगा। द्विवचन में 'हन् तस्' इस स्थिति में, तस्, अपित् सार्वधातुक होने से 'सार्वधातुकमपित्' सूत्र से ङिद्वत् होता है और यह झलादि भी है, अतः—

अनुदात्तेति—अनुदात्तोपदेश, तनादिगण की अनुनासिकान्त धातुओं एवं वन् धातु के अन्त्य अनुनासिक वर्ण का लोप हो, झलादि कित् और ङित् प्रत्यय परे रहते। (अनुदात्तोपदेश अर्थात् उपदेश में अनुदात्त निम्नलिखित छः धातु हैं—

यम उपरमे (निवृत्त होना) रम् क्रीडायाम्, णम् प्रह्वत्वे, गम् गतौ, हन् हिंसागत्योः, मन् ज्ञाने (दिवादि)।

तन् आदि अनुनासिकान्त निम्नलिखित ८ धातुयें हैं—तनु विस्तारे, क्षणु हिंसायाम्, क्षिणु हिंसायाम्, ऋणु गतौ, तृणु अदने (खाना) घृणु दीप्तौ, मनु अवबोधने (जानना) वनु याचने।

उक्त स्थिति में झलादि ङित् परे रहते 'अनुदात्तेति' प्रस्तुत सूत्र से अनुनासिक वर्ण नकार का लोप होकर **"हतः"** रूप बनेगा बहुवचन में झि प्रत्यय परे (झि भी अपित् होने से ङित् वत् है) अतः 'गम हन् जनेत्यादि सूत्र से उपधा अकार का लोप होकर 'ह् न् अन्ति' इस स्थिति में 'हो हन्तेरित्यादि सूत्र से हकार को कवर्ग—घकार होकर **घ्नन्ति** रूप बनता है। सिप् परे नकार को अनुस्वार होकर **हंसि, हथः, हथ** (यहाँ झलादि ङित् प्रत्यय परे होने से अनुनासिक नकार का लोप होगा। **हन्मि, हन्वः, हन्मः।**

लिट् लकार में तिप् णल् (अ) द्वित्व अभ्यास कार्य, 'ह हन् अ' इस स्थिति में 'कुहोश्चुः' सूत्र से अभ्यास के हकार को घकार, 'अभ्यासे चर्च' सूत्र से घकार को जश्त्व जकार, उपधा वृद्धि, 'जहान् अ' इस स्थिति में "हो हन्तेः" सूत्र से णित् प्रत्यय परे हकार को घकार होकर **जघान** रूप बनेगा।

द्विवचन में पूर्ववत् "जहन् अतुस्" इस स्थिति में गम हन् जनेत्यादि सूत्र से उपधा अकार का लोप, 'हो हन्तेः' सूत्र से कुत्वेन हकार को घकार होकर **जघ्नतुः,** उस् परे **जघ्नुः।**

अभ्यासाच्चेति—अभ्यास से परे हन् धातु के हकार को कुत्व घकार हो।

थल् प्रत्यय परे, 'जहन् थ' इस स्थिति में भारद्वाज नियम से इट् पक्ष में 'जहन् इ थ' इडभाव पक्ष में 'जहम् थ' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से अभ्यास से परे हकार को कुत्व घकार होकर **जघनिथ,** तथा नकार को अनुस्वार परसवर्ण होकर **जघन्थ** रूप बनते हैं।

इन दोनों उदाहरणों में ञित् णित् अथवा नकार परे न होने से 'हो हन्तेः' सूत्र से कुत्व नहीं हो सकता था, अतः इस सूत्र से कुत्व विधान किया गया है। अथुस् और अ परे 'गम हन' सूत्र से उपधा अकार का लोप और 'हो हन्तेः' से कुत्व होकर

(१८८) हन्तेर्जः ।६।४।३६।।

हौ परे ।

(१८९) असिद्धवदत्राभात् ।६।४।२२।।

इत ऊर्ध्वमापादसमाप्तेराभीयम् । **समानाश्रये तस्मिन् कर्तव्ये तद् असिद्धम् ।** इति जस्यासिद्धत्वान्न हे लुक्—जहि हतात्, हतम्, हत । हनानि, हनाव, हनाम । अहन्, अहतम्, अघ्नन् । अहन्, अहतम्, अहत । अहनम्, अहन्व, अहन्म । हन्यात् ।

(१९०) आर्धधातुके ।२।४।३५।।

इत्यधिकृत्य ।

(१९१) हनोवध लिङि ।२।४।४२।।

हनो वध इत्यादेशः स्यात् आर्धधातुके लिङि ।

(१९२) लुङि च ।२।४।४३।।

वधादेशोऽदन्तः । आर्धधातुके इति विषय सप्तमी ।

तेनार्धधातुकोपदेशेऽदन्तत्वाद् अतो लोपः—वध्यात्, वध्यास्ताम् । अवधीत् । अहनिष्यत् ।

जघ्नथुः, जघ्न रूप बनेंगे, उत्तम पु० में 'णलुत्तमो वा—**जघान जघन,** व म परे क्रादिनियम से नित्य इट् और 'हो हन्तेः' से कुत्व होकर **जघ्निव जघ्निम** रूप बनेंगे ।

लुट् लकार में, धातु के अनुदात्तोपदेश होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' से निषेध होने के कारण इट् न होगा, अनुस्वार परसवर्ण होकर **हन्ता** आदि रूप बनेंगे ।

लृट् लकार में 'ऋद्धनोः स्ये' सूत्र से इट् होकर **हनिष्यति** आदि रूप बनेंगे ।

लोट् लकार में अनुस्वार परसवर्ण होकर, **हन्तु,** "अनुदात्तोप-देश" सूत्र से नकार लोप—**हतात् हताम्,** झि परे उपधा अकार का लोप, हो हन्तेः—कुत्व-घ्नन्तु रूप बनेंगे ।

हन्तेरिति—हि परे रहते हन-धातु को 'ज' आदेश हो । म० पु० एकवचन में सि को हि आदेश, 'हन् हि' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से हन् को ज आदेश होकर **जहि** रूप बनता है ।

ज आदेश होने पर अकारान्त से परे 'अतो हेः" सूत्र से 'हि' का लोप प्राप्त होने पर—

असिद्धेति—समानाश्रय आभीय कार्य करने पर पहले किया हुआ कार्य असिद्ध होता है ।

इत इति—यहाँ से अर्थात् षष्ठ अध्याय के चतुर्थ पाद के २२वें सूत्र से लेकर इस चतुर्थ पाद की समाप्ति तक के सूत्रों से विहित कार्य 'आभीय' कहे जायेंगे ।

समानाश्रय का अर्थ है समान निमित्त वाले कार्य ।

'जहि' इस उदाहरण में 'ज' आदेश का निमित्त (आश्रय) हन् धातु तथा हि प्रत्यय है, 'अतो हेः' सूत्र का निमित्त भी हन् अर्थात् अदन्त अंग ज है और हि प्रत्यय भी, इस प्रकार दोनों समानाश्रय आभीय है, प्रथम आभीय 'ज' आदेश है, अतः वह पूर्व का होने के कारण, बाद में होने वाले 'अतो हेः' सूत्र की दृष्टि में, प्रस्तुत सूत्र के नियमानुसार, असिद्ध हो जायेगा, तब अदन्त अंग न मिलने से हि का लोप प्राप्त न होगा, इस प्रकार 'जहि' यही रूप बनेगा। 'अनुदात्तोपदेश' सूत्र से न लोप होकर—**हतात्**, **हतम्**, **हत**, रूप होंगे। उत्तम पु० में आट् का आगम होकर—**हनानि**, **हनाव**, **हनाम** रूप बनेंगे।

लङ् लकार में 'अट् शप् (अ) ति' होने पर, शप् और इकार का लोप हो जाने पर 'अहन् त्' इस स्थिति में 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल' सूत्र से अपृक्त हल् तकार के हल् (नकार) से परे होने के कारण तकार का लोप होकर, **अहन्** रूप बनेगा। ''अनुदात्तोपदेश से नकार लोप होकर **अहताम्**, 'अहन् अन्ति' इस स्थिति में अजादि ङित् प्रत्यय परे 'गम् हन्' सूत्र से उपधा अकार लोप, 'हो हन्तेः' सूत्र से नकार परे हकार को कुत्व घकार, संयोगान्त लोप होकर **अघ्नन्**, सिप् परे इकार लोप शप् लोप होकर 'हल्ङ्याब्भ्यः' सूत्र से अपृक्त हल् सकार का लोप होकर **अहन्**, 'अनुदात्तोपदेश' से नकार लोप—**अहतम्**, **अहत्**। **अहनम्** **अहन्व** **अहन्म** रूप होंगे।

विधिलिङ् में यासुट् होकर और सलोप (लिङः सलोपो सूत्र से) होने पर **हन्यात्** **हन्याताम्** **हन्युः** आदि रूप होंगे।

आर्धधातुक इति—आर्धधातुके यह अधिकार सूत्र आगे के सूत्रों से मिलकर चरितार्थ होगा।

हन इति—आर्धधातुक लिङ् के विषय में हन् धातु को वध आदेश हो।

लुङीति—लुङ् लकार के विषय में भी हन् को वध आदेश हो।

वधादेश इति—लिङ् और लुङ् में होने वाला वध आदेश अदन्त है।

आर्धधातुक इति—'आर्धधातुके' शब्द में विषय सप्तमी है पर सप्तमी नहीं, अर्थात् आर्धधातुक प्रत्यय परे होने की आवश्यकता नहीं, केवल आर्धधातुक के विषय में ही वध आदेश होता है, अर्थात् आर्धधातुक प्रत्यय के आने के पूर्व ही हन् को वध आदेश हो जाता है, फलतः 'वध' से आर्धधातुक प्रत्यय होते हैं। फलतः आर्धधातुक के उपदेश काल में ही वध के अदन्त होने से 'अतो लोपः' से अकार का लोप हो जाता है। यदि यहाँ पर सप्तमी मानते तो आर्धधातुक के उपदेश में वध आदेश के न होने से 'अतो लोपः' से अकार लोप न होता अतः अकार लोप ही विषय सप्तमी मानने का फल है। इसी प्रकार लुङ् लकार में अकार लोप एवं अदन्त वधादेश का फल है 'अतो हलादे र्लघोः' सूत्र से वैकल्पिक वृद्धि का न होना, अन्यथा अकार लोप के स्थानिवद्भाव से उपधा में अकार मिल जाने से वैकल्पिक वृद्धि हो जाती, इस प्रकार विषय सप्तमी तथा वधादेश के अदन्त होने का फल दोनों लकारों में देखा जा सकता है।

यु मिश्रणामिश्रणयोः ।३।।

(१९३) उतो वृद्धि लुकि हलि ।७।३।८९।।

लुग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके, नत्वभ्यस्तस्य ।

यौति, युतः, युवन्ति । यौषि, युथः, युथ । यौमि, युवः, युमः । युयाव ।

यविता । यविष्यति । यौतु युतात् । अयौत्, अयुताम् अयुवन् ।

युयात्—इह उतो वृद्धि र्न, भाष्ये ङिच्च पिन्न, पिच्च ङिन्न इति व्याख्यानात्, युयाताम्, युयुः । यूयात्, यूयास्ताम्, यूयासुः ।

अयावीत् । अयविष्यत ।

आशीर्लिङ् में 'हनो वध लिङि' सूत्र से वध आदेश होकर वध्यात् वध्यास्ताम् आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् लकार में वध आदेश, "अट् वध इट् सिच् ईट् त्" इस स्थिति में सिच् का लोप होकर अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः । अवधीः, अवधिष्टम्, अवधिष्ट । अवधिषम्; अवधिष्व, अवधिष्म । केवल तिप् और सिप् परे रहते ही 'अस्ति सिचोऽपृक्ते' सूत्र से ईट् तथा 'इट ईटि' से सिच् के सकार का लोप होता है, शेष स्थलों में अपृक्त हल न मिलने ईट् नहीं होता, अतः सकार लोप भी नहीं होता। लृङ् लकार में 'ऋद्धनोः स्ये' सूत्र से इट् होकर अहनिष्यत् आदि रूप बनेंगे ।

यु मिश्रणा मिश्रणयोः—यु धातु मिलाना और अलग करने अर्थ में है ।

उत इति—लुक् के विषय में (अर्थात् अदादिगण में जहाँ शप् का लुक् होता है, लुक् के अभाव रूप होने से लुक् परे कहना सम्भव न था अतः 'लुकि' यह विषय सप्तमी है।) पित् हलादि सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते, धातु के उकार को वृद्धि हो ।

पित् सार्वधातुक प्रत्यय तिप् सिप् मिप् हैं, इन्हीं प्रत्ययों के आगे रहते प्रस्तुत सूत्र से वृद्धि होती है, फलतः गुण नहीं हो पाता। शेष अपित् प्रत्ययों के 'सार्वधातुक मपित्' से ङित् वत् होने स्वतः गुण का निषेध हो जाता है, अतः गुण कहीं भी नहीं होता। शप् का लुक् होने के बाद ही वृद्धि होती है ।

लट् में—तिप् शप् लुक् प्रस्तुत सूत्र से वृद्धि होकर **यौति**, तस् परे अपित् होने से न वृद्धि और न गुण ही। **युतः**, झि परे अन्तादेश और उवङ् होकर **युवन्ति**, षत्व—**यौषि, युथः युथ, यौमि, युवः युमः** रूप बनेंगे ।

लिट् में द्वित्व वृद्धि, अवादेश होकर **युयाव**, उवङ्—**युयुवतुः, युयुवुः** । गुण अवादेश—**युयविथ**, उवङ्—**युयुवथुः, युयुव । युयाव युयव**, उवङ् इट्—**युयुविव, युयुविम** । "ऊहृदन्तै यौति" आदि कारिका में पठित होने के कारण यह धातु सेट् है, अतः थल् व म प्रत्यय परे नित्य इट् होगा ।

लुट् तथा लृट् में इट् गुण अवादेश—**यविता । यविष्यति** आदि रूप बनेंगे । लोट् में तु पक्ष में पित् होने से यौतु, तातङ् पक्ष में ङित् होने से न वृद्धि और न

या प्रापणे ।४।। याति, यातः, यान्ति । ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात्, अयाताम् ।

(१६४) लङः शाकटायनस्यैव ।३।४।१११।

आदन्तात् परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् ।

अयुः अयान् । यायात्, यायाताम्, यायुः । यायात्, यायास्ताम्, यायासुः । अयासीत् । अयास्यत् ।

वा गति गन्धनयोः ।५।। भा दीप्तौ ।६।। ष्णा शौचे ।७।। श्रा पाके ।८।। द्रा कुत्सायां गतौ ।९।। प्सा भक्षणे ।।१०।।

गुण—युतात्, युताम्—उवङ्—युवन्तु । युहि (हि के अपित् होने से वृद्ध्यभाव । युतात्, युताम्, युत । यवानि यवाव, यवाम—उत्तम पुरुष में आट् गुण अवादेश होता है । यद्यपि आट् पित् होता है, तथापि हलादि प्रत्यय आगे न होने वृद्धि नहीं होती, आट् का आगम प्रत्यय को होता है ।

लङ् लकार में तिप् और सिप् परे तो वृद्धि हो जायेगी । मिप् को अवादेश होने पर हलादि प्रत्यय न मिलने से वृद्धि न होगी, अपि तु गुण अवादेश होगा । शेष स्थलों के अपित् होने से वृद्धि न होगी । अतः—**अयौत्** **अयुताम्**, उवङ्—**अयुवन्** । **अयौः**, **अयुतम्**, **अयुत** । **अयवम्**, **अयुव**, **अयुम**, रूप बनेंगे ।

विधि लिङ् में कहीं भी वृद्धि नहीं होती, क्योंकि यासुट् ङित् होता है ('यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' ।) यद्यपि यासुट् तिप् को होता है, अतः उसे पित् होना चाहिये था, तथापि यासुट् को सूत्र द्वारा विशेष रूप से ङित् किया गया है । अतः उससे सामान्य पित्त्व बाध हो जायेगा, जैसा कि भाष्यकार का व्याख्यान है, कि ङित् पित् नहीं होता, और न पित् ही कभी ङित् होता है । अतः इस लकार के रूप—**युयात् युयाताम् युयुः** इत्यादि बनेंगे ।

आशीर्लिङ् में 'अकृत् सार्वधातुकयोः' सूत्र से सर्वत्र दीर्घ होकर, यूयात् यूयास्ताम् यूयासुः आदि रूप बनेंगे । लुङ् लकार में 'अ यु इट् सिच् ईट् त्' इस स्थिति में सिच् के सकार का लोप, 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' सूत्र से उकार को औ वृद्धि आवादेश होकर **अयावीत्, अयाविष्टाम्, अयाविषुः । अयावीः, अयाविष्टम्, अयाविष्ट, अयाविषम्, अयाविष्व, अयाविष्म** । तिप् और सिप् प्रत्यय परे अपृक्त हल मिलने से ईट् और सिच् के सकार का लोप होता है । शेष स्थलों में अपृक्त हल् के अभाव में ईट नहीं होता, फलतः सकार का लोप भी नहीं होता । इकार से परे अन्यत्र षत्व हो जाता है । लृट् लकार में इट् स्य गुण अवादेश होकर **अयविष्यत्** आदि रूप बनते हैं ।

या प्रापणे—या धातु पहुँचना या जाना अर्थ में है । लट् में **याति यातः यान्ति** आदि रूप बनेंगे ।

रा दाने ।११। ला आदाने ।१२।। दाप् लवने । १३।। पा रक्षणे ।१४।। ख्या प्रकथने ।१५।। अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः ।

विद ज्ञाने । १६।।

(१९५) विदो लटो वा ।३।४।८३।।

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः । वेद, विदतुः, विदुः । वेत्थ, विदथुः, विद । वेद, विद्व, विद्म । पक्षे-वेत्ति, वित्तः, विदन्ति ।

लिट् में द्वित्व अभ्यास को ह्रस्व 'आत औ णलः' से णल् को 'औ' होकर, वृद्धि होने पर **ययौ,** अतुस उस् परे अजादि कित् होने से 'आतो लोप इटि च' से आकार लोप होकर **ययतुः, ययुः ।** अजन्त अनिट् होने से थल् परे विकल्पतः इट् और इट् परे आकार लोप होकर **ययिथ,** इडभाव में **ययाथ,** आकार लोप—**ययथुः, यय । ययौ,** नित्य इट् आकार लोप—**ययिव, ययिम ।** अनिट् होने से लुट् में **याता** आदि, लृट् में **यास्यति** आदि रूप बनेंगे । लोट् में **यातु यातात्, याताम्** आदि रूप होंगे । लङ् लकार में **अयात् अयाताम् ।**

लङ इति—आकारान्त धातुओं से लङ् के झि का जुस् विकल्प से हो ।

'अया झि' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से झि को जुस् (उस्) होने पर 'उस्य पदान्तात्' सूत्र से धातु के आकार का पर रूप होने पर **अयुः** जुस् आदेश अभाव पक्ष में झ् को अन्त आदेश, तकार का संयोगान्त लोप होकर **अयान्** रूप बनेगा । अयाः अयातम् अयात आदि शेष रूप भी होंगे । विधि लिङ् में सामान्य कार्य—**यायात् यायाताम्, यायुः, यायाः यायातम् यायात** आदि रूप होंगे । आशीर्लिङ् में यायात् यायास्ताम् यायासुः आदि रूप बनेंगे । लुङ् लकार में अट् सिच् अपृक्त हल परे होने से ईट् करके, 'अ या स ई त्' इस स्थिति में "यमरमनमातां सक् च" सूत्र से धातु को सक् (स) का आगम, और सिच् को इट् होने पर 'अ या स् इ स् ई त्' इस स्थिति में 'इट् ईटि' से सिच् लोप, और सवर्ण दीर्घ होकर **अयासीत्**—अपृक्त हल न होने से ईट् न होगा, इकार से पर सकार को षत्व और तकार को ष्टुत्व होकर **अयासिष्टाम्,** इसी प्रकार **अयासिषुः । अयासीः, अयासिष्टम् अयासिष्ट । अयासिषम् अयासिष्व, अयासिष्म ।** तिप् और सिप् परे ही अपृक्त हल् मिलने से ईट् होता है, फलतः सिच् लोप भी हो जाता है, अन्यत्र सिच् बना रहता है और सक् तथा इट् भी । लृङ् में **अयास्यत् ।**

वा गतिगन्धनयोः—वा धातु का प्रयोग हवा के चलने अर्थ में होता है । इसके सभी रूप या धातु के समान ही बनते हैं और उन सब की सिद्धि भी या धातु के रूपों की भाँति ही होती है, कहीं कोई अन्तर नहीं है, लुङ् में सक् इट् भी होता है और लङ् प्र० पु० बहुवचन में भी दो रूप बनते हैं ।

(१९६) उषविद जागृभ्योऽन्यतरस्याम् ।३।१।३८।।

एभ्यो लिटि आम् वा स्यात् । विदेरदन्तप्रतिज्ञानादामि न गुणः—विदाञ्चकार विविदे । वेदिता । वेदिष्यति ।

(१९७) विदाङ् कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ।३।१।४१।।

वेत्तेर्लोटि आम्, गुणाभावो लोटो लुक्, लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । पुरुष वचने न विवक्षिते । ।

(१९८) तनादिकृञ्भ्य उः ।३।१।७९।।

तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादः । विदाङ् करोतु ।

यथा—**वाति । ववौ । वाता । वास्यति । वातु । अवात्, अवाताम्, अवुः** और **अवान् ।**

वायात्, वायाताम् । वायात् वायास्ताम् । अवासीत् । अवास्यत् ।

भा दीप्तौ—भा धातु का अर्थ चमकना है । इसके भी रूप वा धातु के समान होंगे ।

भाति । अभ्यासे चर्च—**बभौ । भाता । भास्यति । भातु । अभात् अभाताम् अभुः-अभान् । भायात्, भायाताम् । भायात्, भायास्ताम् । अभातीत् ।** अभास्यत् ।

ष्णा शौचे—स्ना धातु का अर्थ शुद्धि करना स्नान करना है । **स्नाति । सस्नौ । स्नाता । स्नास्यति । स्नातु । अस्नात् । स्नायात् ।** आ० लिङ् में **स्नेयात्** और **स्नायात् ।** धातु के संयोगादि होने से "वान्यस्य संयोगादेः" सूत्र से विकल्पतः एत्व होता है ।) **अस्नासीत् । अस्नास्यत् ।**

श्रा पके—श्रा धातु का अर्थ-पकाना है ।

श्राति । शश्रौ । श्राता । श्रास्यति । श्रातु । अश्रात् । श्रायात् । श्रेयात् श्रायात्। अश्रासीत् । अश्रास्यत् ।

द्रा कुत्सायां गतौ—द्रा धातु का अर्थ बुरी चाल चलना है । द्राति । दद्रौ । द्राता । द्रास्यति, द्रातु । अद्रात् । द्रायात्। द्रेयात्—द्रायात्। अद्रासीत् । अद्रास्यत् । नि उपसर्ग पूर्वक इस धातु का अर्थ 'सोना' होता है—निद्राति, निदद्रौ ।

प्सा भक्षणे—प्सा धातु का अर्थ खाना है ।

प्साति । पप्सौ । प्साता । प्सास्यति प्सातु । अप्सात् प्सायात् । प्सेयात्—प्सायात् । अप्सासीत् । अप्सास्यात् ।

रा दाने—रा धातु का अर्थ देना है ।

राति । ररौ । राता । रास्यति । रातु । अरात् । रायात् । रायात्, रायास्ताम् अरासीत् अरास्यत् ।

ला आदाने—ला धातु का अर्थ लाना है ।

लाति । ललौ । लाता । लास्यति । लातु । अलात् । लायात् । लायात् लायास्ताम् । अलासीत् । अलास्यत् ।

दाप् लवने—दाप् धातु का अर्थ काटना है। प् इत्संज्ञक है। दा रूप होने पर भी ''दाधाघ्वदाप्'' सूत्र से निषेध होने से 'दाप्' की घुसंज्ञा नहीं होती, अतः 'एर्लिङि, सूत्र से यहाँ एत्व नहीं होता अतः **दाति। ददौ। दाता। दास्यति। दातु। अदात्। दायात्। दायात्, दायास्ताम्। अदासीत्। अदास्यत्।**

पा रक्षणे—पा धातु का अर्थ रक्षा करना है। घुमास्थेति सूत्र में भ्वादि पा पाने का ही ग्रहण होने से यहाँ एत्व नहीं होता, अतः **पेयात्** रूप नहीं बनता।

पाति। पपौ। पाता। पास्यति। पातु। अपात्। पायात्। पायात् पायास्ताम्। अपासीत्। अपास्यत्।

ख्या प्रकथने—ख्या धातु का अर्थ कहना है, वि+आङ् पूर्वक व्याख्यान देना तथा वि पूर्वक विख्यात एवं प्र पूर्वक प्रख्यात आदि प्रयोग बनते हैं। इस धातु का सार्वधातुक लकारों में ही प्रयोग करना चाहिए। अतः **ख्याति। ख्यातु। अख्यात्। ख्यायात्** रूप होंगे।

विद ज्ञाने—विद् धातु का अर्थ जानना है।

विद इति—विद् धातु से परे लट् लकार के परस्मैपद प्रत्ययों को क्रमशः णल् आदि आदेश विकल्पतः हों।

लट् में तिप् प्रत्यय को प्रस्तुत सूत्र से णल् (अ) आदेश और लघूपध गुण होकर **वेद**, इसी प्रकार तस् आदि को अतुस् उस् आदि आदेश करके **विदतुः, विदुः। वेत्थ, विदथुः विद। वेद विद्व विद्म।** आदेशाभाव पक्ष में चर्त्व होकर **वेत्ति वित्तः, विदन्ति। वेत्सि, वित्थः, वित्थ, वेद्मि, विद्वः, विद्मः।** णलादि आदेश होने पर भी धातु को द्वित्व नहीं होता क्योंकि द्वित्व केवल लिट् में ही होता है।

उषविदेति—लिट् लकार परे रहते उष (जलाना) विद् (जानना) जागृ धातुओं से विकल्पतः आम् हो।

विदे रिति—विद् धातु को अकारान्त मानने से 'अतो लोपः, से अकार का लोप हो जाता है, इस अकार लोप के स्थानिवद्भाव होने से, धातु लघूपध नहीं रह जाता, अतः इसके लिट् लकार में आम् परे गुण नहीं होता।

लिट् लकार परे प्रस्तुत सूत्र से आम् होने पर 'कृञ् चानु प्रयुज्यते लिटि' से कृ का अनुप्रयोग होगा, तब 'विदाम् कृ' इस स्थिति में कृ कृ द्वित्व, अभ्यास संज्ञा, 'उरत्' 'हलादिःशेषः - कुहोश्चु' से कुत्व होकर, तिप् को णल् और मकार को अनुस्वार परसवर्ण करने पर 'विदाञ्चकृ' इस स्थिति में वृद्धि ऋ का आर् होकर 'विदाञ्चकार-अतुस् उस् परे यण होकर **विदाञ्चक्रतुः विदाञ्चक्रुः, विदाञ्चकर्थ विदाञ्चक्रथुः विदाञ्चक्र**, णलुत्तमो वा-**विदाञ्चकार विदाञ्चकर विदाञ्चकृव विदाञ्चकृम** रूप बनेंगे।

आम् के वैकल्पिक होने से आम् के अभाव पक्ष में विद धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य गुण होकर **विवेद, विविदतुः विविदुः।** यह अदादि गण का विद् धातु

(१९९) अत उत्सार्वधातुके ।६।४।११०।।

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत सार्वधातुके क्ङिति । विदाङ्कुरुतात्, विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु, विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाणि । अवेत, अवित्ताम् अविदुः ।

(२००) दश्च ।८।२।७५।।

धातो र्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा । अवेः—अवेत् । विद्यात्, विद्याताम् । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिस्यत् ।

सेट् है, दिवादिगण का विद् सत्तायाम् धातु ही अनिट् कारिका में गृहीत है, अतः यहाँ लिट् में नित्य ही इट् होकर—**विवेदिथ विविदथुः विविद, विवेद, विवेदिव, विवेदिम** रूप बनेंगे ।

तास् और स्य परे भी नित्य इट्—वेदिता । वेदिष्यति आदि रूप बनेंगे ।

विदामिति—लोट् लकार परे रहते विद धातु को आम् होता है लघूपध गुण नहीं होता, लोट् लकार का लुक-होता है और लोडन्त कृ का अनुप्रयोग भी निपातनात् विकल्प से होते हैं ।

सूत्र पठित 'विदाङ्कुर्वन्तु' शब्द में पुरुष और वचन विवक्षित नहीं हैं, अर्थात् उक्त शब्द प्रयोग से यह न समझना चाहिये, कि ये निपातित चारों ही कार्य केवल प्रथम पुरुष बहुवचन में ही होते हैं, पुरुष वचन अविवक्षित मानने से ये चारों ही कार्य सम्पूर्ण लोट् लकार में होंगे ।

तनादीति—तनादि धातुओं और कृञ् धातु से उप्रत्यय हो । यह उप्रत्यय शप् प्रत्यय का अपवाद है ।

सूत्र सं० १७७ से लोट् लकार में आम् प्रत्यय, गुणाभाव, लोट् का लुक् और लोडन्त कृ का अनुप्रयोग होने पर, मकार का अनुस्वार पर सवर्ण करने से विदाङ्कृ लोट्'' इस स्थिति में शप् को बाध कर 'तनादिकृञ्भ्य उः सूत्र से उ प्रत्यय, ''विदाङ्कृ उ 'तु' इस स्थिति में उप्रत्यय के आर्धधातुक होने से ऋकार को आर्धधातुक निमित्तक अर् गुण, सार्वधातुक 'तु' परे उकार को सार्वधातुक निमित्तक ओ गुण होकर **'विदाङ्करोतु'** रूप बनता है ।

अत इति—उप्रत्ययान्त कृ धातु के अकार को उकार हो, कित् ङित् सार्वधाधातुक परे रहते ।

तातङ्पक्ष में विदङ्कृ उ तात्' इस स्थिति में, उ प्रत्यय परे ऋकार को आर्धधातुक निमित्तक अर् गुण, तातङ् के ङित् होने से उकार को गुण न होगा, तब 'विदाङ्कर् उ तात् । इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से अकार को उकार होने पर **विदाङ्कुरुतात्**, ताम् परे भी अपित् सार्वधातुक के ङित् वत् होने से उकार को गुण न होगा, अपितु प्रस्तुत सूत्र से अकार को उकार होकर ''**विदाङ्कुरुताम्**, इसी प्रकार झि परे अन्तु होने पर 'विदाङ्कुरु अन्तु'' इस स्थिति में यण् होकर **'विदाङ्कुर्वन्तु'** । सिप् परे सि को हि आदेश, 'विदाङ्कुरु हि' इस स्थिति में 'उतश्च प्रत्ययाद संयोग-

अस् भुवि ।१७।। अस्ति ।

(२०१) श्नसोरल्लोपः ।६।४।१११।।

श्नस्य अस्तेश्च अतो लोपः सार्वधातुके क्ङिति ङिति । स्तः, सन्ति । असि, स्थः स्थ । अस्मि, स्वः, स्मः ।

पूर्वात्' सूत्र से हि का लोप होने पर **विदाङ्कुरु**, पूर्ववत्-**विदाङ्कुरुतम् । विदाङ्कुरुत ।** उत्तम पुरुष एक वचन में 'विदाङ्कर् उ नि' इस स्थिति में 'आडुत्तमस्य पिच्च' से आट् होने पर, और आट् के पित् होने से, अकार को उकार नहीं होगा, बल्कि पित् होने से उकार को ओ गुण अवादेश तथा णत्व होकर **विदाङ्करवाणि**, इसी प्रकार **विदाङ्करवाव, विदाङ्करवाम** रूप बनेंगे ।

लङ् लकार में एक वचन में पित् होने से गुण और अट् होकर 'अवेद् त्' इस स्थिति में 'हल्ङयाब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से हल् वर्ण दकार से परे अपृक्त हल् तकार का लोप होकर 'वावसाने' सूत्र से वैकल्पिक चर्त्व होकर **अवेत् अवेद्** रूप बनेंगे । द्विवचन में अपित् सार्वधातुक होने से गुण न होगा तब चर्त्व होकर **अवित्ताम्**, 'सिजभ्यस्त विदिभ्यश्च से झि को जुस् होकर **अविदुः**, मध्यम पुरुष एक वचन में 'अवेद् स्' इस स्थिति में अपृक्त सकार का हल्ङयादि लोप होकर 'अवेद्' इस स्थिति में—

दश्चेति—सिप् परे रहते धातु के पदान्त दकार को वैकल्पिक रु तथा र् को विसर्ग होकर **अवेः**, अभाव पक्ष में वैकल्पिक चर् होकर **अवेत् अवेद्**, ये तीन रूप बनेंगे । पूर्ववत् **अवित्तम् अवित्त** । मिप् परे अम् गुण होकर **अवेदम्, अविद्व अविद्म ।** रूप बनते हैं ।

विधिलिङ् में यासुट् होकर विद्यात् विद्याताम् आदि रूप होंगे। आशीर्लिङ् में विद्यात् विद्यास्ताम् विद्यासुः आदि रूप बनेंगे । लुङ में 'अ विद् इ स ई त्' इस स्थिति में 'इट ईटि' से स लोप, दीर्घ होकर **अवेदीत्, अवेदिष्टाम् अवेदिषुः । अवेदीः, अवेदिष्टम् अवेदिष्ट । अवेदिषम्, अवेदिष्व, अवेदिष्म ।** लृङ् में गुण **अवेदिष्यत्** आदि रूप बनेंगे ।

अस् भुवि—अस् धातु होने अर्थ में है ।

लट् लकार में तिप्, शप् का लुक्, अस्ति ।

श्नसोरिति—श्ना और अस् धातु के अकार का लोप हो, सार्वधातुक कित् ङित् प्रत्यय परे रहते ।

द्विवचन में 'अस् तस्' इस स्थिति में सार्वधातुक ङित् परे अकार का लोप होकर **स्तः**, 'अस् अन्ति' इस स्थिति में भी अकार का लोप होकर **सन्ति** । 'अस् सि' इस स्थिति में "तासस्त्यो र्लोपः' से सकार का लोप होकर **'असि'** पूर्ववत् धातु के अकार का लोप—**स्थः**, **स्थ** । ङित् परे न होने से अकार का लोप न होने से—**अस्मि,** अकार लोप—**स्वः, स्मः** । रूप बनते हैं ।

(२०२) उपसर्ग प्रादुर्भ्यामस्ति र्यच्परः ।८।३।८७।।

उपसर्गेण: प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रनिषन्ति । प्रादुः षन्ति । यच् परः किम्—अभिस्तः ।

(२०३) अस्ते र्भूः ।२।४।५२।।

आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु-स्तात्, स्ताम्, सन्तु ।

(२०४) घ्वसोरेद्धावभ्यास लोपश्च ।६।४।११९।।

घोरस्तेश्च एत्वं स्यात् हौ परे अभ्यासलोपश्च । एत्वस्या-सिद्धत्वाद् हेर्धिः । श्नसोः इत्यल्लोपः । तातङ् पक्षे—एत्वं न, परेण तातङा बाधात् । एधि-स्तात्, स्तम्, स्त । असानि, असाव, असाम । आसीत्, आस्ताम् आसन् । स्यात्, स्याताम्, स्युः । भूयात् । अभूत् । अभविष्यत् ।

उपसर्गेति—उपसर्ग के इण् और प्रादुस् अव्यय से परे अस् धातु के सकार को षकार हो, यकार और अच् परे रहते ।

निष्यात्—नि+स्यात् (विधि लिङ् अस् धातु का रूप) इस स्थिति में, यकार परे रहते उपसर्ग के इण् नि से परे प्रस्तुत सूत्र से धातु के सकार को षकार होकर निष्यात् रूप बनता है ।

प्रनिषन्ति—यहाँ 'प्रनि सन्ति' इस स्थिति में उपसर्ग इण् प्रनि से परे धातु के सकार स् को षत्व होगा, यहाँ अकार अच् परे है ।

प्रादुः षन्ति—'प्रादुः सन्ति' इस स्थिति में प्रादुस् अव्यय से अकार परे धातु के सकार को षत्व होकर 'प्रादुः षन्ति' बनेगा सकार से परे यकार या अच् होना चाहिये, वहाँ प्रस्तुत सूत्र से षत्व होगा, अतः 'अभि+स्तः' यहाँ सकार से परे न यकार है और न अच् ही, अतः षत्व न होगा, 'अभिस्तः' ही बनेगा ।

अस्तेरिति—आर्धधातुक के विषय में अस् धातु को भू आदेश हो ।

अस् को भू आदेश होने से लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, और लृङ् लकारों में आर्धधातुक के विषय में भू धातु के समान ही रूप बनेंगे ।

लिट्—बभूव । लुट्—भविता । लृट्—भविष्यति । लुङ्—अभूत्, लृङ्—अभविष्यत् ।

लोट् लकार में—एकवचन में— **अस्तु**, तातङ् पक्ष में ङित् होने से 'श्नसोः' सूत्र से अकार लोप होकर, **स्तात्**, अकार लोप— **स्ताम्, सन्तु ।**

घ्वसोरिति—'हि' परे रहते, घु संज्ञक, (दा धा रूप) धातुओं तथा अस् धातु को एकार हो और अभ्यास लोप भी हो ।

प्रस्तुत सूत्र में अलोऽन्त्य परिभाषा सूत्र से अस् के अन्तिम वर्ण सकार को एत्व होगा । अभ्यास लोप का सम्बन्ध केवल घु संज्ञक धातुओं के साथ ही है, अस् में यह सम्भव नहीं है ।

इण् गतौ ।१७।। एति । इतः ।

(२०५) इणो यण् ।६।४।८१।।

अजादौ प्रत्यये परे । यन्ति ।

(२०६) अभ्यासस्यासवर्णे ।६।४।७८।।

अभ्यासस्येवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि । इयाय ।

(२०७) दीर्घ इणः किति ।७।४।६९।।

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि । ईयतुः । ईयुः । इयथिथ, इयेथ । एता । एष्यति । एतु । ऐत्; ऐताम्, आयन् । इयात् । ईयात् ।

(२०८) एतेर्लिङि ।७।४।२४।।

उपसर्गात् परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि । निरियात् । (परिभाषा) 'उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्' आभीयात् । अणः किम्—समेयात् ।

(२०९) इणो गा लुङि ।२।४।४५।।

गातिस्था—सिचो लुक्—अगात् । ऐष्यत् ।

मध्यम पुरुष एकवचन में सिप् को 'हि' होने पर 'अस् हि' इस स्थिति में "हुझल्भ्यो हे धिः" सूत्र से झल् से परे होने के कारण हि को धि आदेश प्राप्त होता हैं, किन्तु यहाँ परत्वात् प्रस्तुत सूत्र उसे वाध कर अन्तिम वर्ण सकार को एत्व कर देता है। तब 'अ ए हि' इस स्थिति में आभीय होने के कारण एत्व विधान असिद्ध हो जाता है, अतः झल् से परे मिल जाने से 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' सूत्र से पुनः हि को 'धि' हो जाता है, और 'श्नसोः' सूत्र से अकार लोप होकर **एधि** रूप बनता है। तातङ् पक्ष में एत्व नहीं हो पाता क्योंकि तातङ् आदेश परत्वात् इसे वाध लेता है, जब तातङ् आदेश हो जाता है, तब हि परे न मिलने से एकार नहीं हो पाता, अतः **स्तात्** ही रूप बनता है, ङित् होने के कारण अकार लोप हो जाता है। **स्तम्, स्त**—(यहाँ ङित् वत् होने से अकार लोप होता है) उत्तम पुरुष में आट् आगम के पित् होने से अकार लोप नहीं होता है, अतः **असानि, असाव, असाम** रूप बनते हैं।

लङ् लकार में आडजादीनाम्—आट्—'आ अस् त्' इस स्थिति में 'अस्ति सिचोऽपृक्ते' सूत्र से इट् होकर **आसीत्**, द्विवचन में 'आ अस् ताम्' इस स्थिति में 'श्नसोः' से धातु के अकार का लोप होकर **आस्ताम्** इसी प्रकार **आसन्**, अन्ति होने पर इकार का लोप तथा त् का संयोगान्त लोप होता है। म० पु० एकवचन में सिप् के इकार पकार का लोप होने पर अपृक्त हल् स् परे 'अस्ति सिचः' सूत्र से ईट् तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर **आसीः**, अकार लोप—**आस्तम् आस्त, आसम्, आस्व, आस्म** रूप बनेंगे।

विधिलिङ् में यासुट् के ङित् होने से सर्वत्र अकार लोप होकर—**स्यात् स्याताम् स्युः । स्याः, स्यातम्, स्यात । स्याम, स्याव, स्याम,** रूप बनेंगे । शेष लकारों के रूप भू धातु के समान होंगे ।

इण् गतौ—इण् धातु का अर्थ जाना है ।

लट् में शप्, लोप, सार्वधातुक गुण—इकार को एकार होकर, **एति,** अपित् सार्वधातुक के ङित्वत् होने से गुणाभाव होकर **इतः**—बहुवचन में झि को अन्तादेश—'इ अन्ति' इस स्थिति में—

इण इति—अजादि प्रत्यय परे रहते, इण् धातु में इकार को यण् हो । उक्त स्थिति में इकार को यण्-यकार होकर **'यन्ति'** रूप बनेगा ।

वस्तुतः यहाँ 'अचिश्नु' सूत्र से इकार को इयङ् प्राप्त था, उसे अपवादत्वात् बाध कर इस सूत्र से यण् होता है ।

गुण होकर **एषि, इथः, इथ,** गुण—**एमि, इवः, इमः** रूप बनेंगे ।

लिट् लकार में तिप् को णल् 'अ' धातु को द्वित्व, 'इ इ अ' इस स्थिति में 'अचोञ्णिति' सूत्र से द्वितीय इकार को ऐ **वृद्धि** आयादेश होकर 'इ आय् अ' इस स्थिति में—

अभ्यासस्येति—अभ्यास के इ वर्ण और उ वर्ण को क्रमशः इयङ् और उवङ् आदेश हों असवर्ण स्वर परे रहते—

उक्त स्थिति में असवर्ण स्वर अकार परे होने से प्रस्तुत सूत्र से इकार को इयङ् (इय) होकर **'इयाय'** रूप होगा ।

दीर्घ इति—इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ हो कित् लिट् परे रहते । अतुस् परे कित् लिट् होने पर, 'इ इ अतुस्' इस स्थिति में गुणाभाव, और 'इणो यण' सूत्र से अभ्यासोत्तर इकार को यण् होकर 'इ य् अतुस्' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से अभ्यास इकार को दीर्घ होकर **ईयतुः,** उस् परे इसी प्रकार **ईयुः** थल् परे 'इ इ थ' इस स्थिति में पित् होने से अभ्यासोत्तर इकार को ए गुण 'इ ए थ' इस स्थिति में अजन्त अनिट् धातु होने से वैकल्पिक इट् 'इ ए इ थ' इस स्थिति में अभ्यासस्य' सूत्र से अस वर्ण अच् एकार परे रहते अभ्यास इकार को इयङ् (इय) होकर, ए को अयादेश करने पर **'इययिथ'** इडभाव पक्ष में 'ए' को अय् आदेश न होगा, शेष सब कार्य पूर्ववत् होकर **इयेथ** रूप बनेगा । 'इ इ अथुस्' इस स्थिति में कित्वात् गुणाभाव, अभ्यासोत्तर इकार को 'इणो यण्' से यण्, 'दीर्घ यणः किति' से दीर्घ होकर **ईयथुः** ईय । णलुत्तमो वा—**इयाय इयय,** नित्य **इट् ईयिव, ईयिम ।**

लुट् में गुण **एता** आदि, लृट् में गुण, षत्व, एष्यति आदि रूप होंगे । लोट् में गुण—**एतु,** गुणाभाव—इतात्, इताम्, यन्तु । सि को हि करने पर अपित् हो जाने से ङित्वत् होने से गुणाभाव, **इहि, इतात्, इतम्, इत ।** उत्तम पुरुष में आट् के पित् होने से गुण एकार को अयादेश—**अयानि, अयाव, अयाम** रूप बनेंगे । लङ् में आडजादीनाम् आटश्च—**ऐत्, ऐताम्,** झ को अन्त, इकार लोप, **'इणो यण्'** से इकार को **यण्**

शीङ् स्वप्ने ।१८।।

(२१०) शीङः सार्वधातुके गुणः ।७।४।२१।।

क्ङिति च – इत्यस्यापवादः । शेते, शयाते ।

(२११) शीङो रुट् ।७।१।७।।

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात् । शेरते । शेषे, शयाथे, शेध्वे । शये, शेवहे, शेमहे । शिश्ये शिश्याते, शिश्यिरे । शयिता, शयिष्यते । शेताम्, शयाताम्, शेरताम् । अशेत, अशयाताम् अशेरत । शयीत । शयीयाताम्, शयीरन् । शयिषीष्ट । अशयिष्ट । अशयिष्यत ।

संयोगान्त लोप होकर आयान् (यहाँ अजादि प्रत्यय मिल जाने पर पहले यण् हो जाता है, फिर आभीय होने के कारण यण् के असिद्ध होने से आट् का आगम भी होता है) **ऐः, ऐताम्, ऐत,** पहले इकार को यण्, 'य् अम्' यहाँ यण् के असिद्ध हो जाने से आट् का आगम होकर **अयाम्, ऐव,** ऐम, रूप बनेंगे ।

विधिलिङ् में यासुट् स लोप—**इयात् इयाताम् इयुः । इयाः, इयातम्, इयात । इयाम्, इयाव, इयाम ।** आशीलिङ् में ''अकृत् सार्वधातुकयोः—दीर्घ—ईयात् इयास्ताम् ईयासुः आदि रूप होंगे ।

एतेरिति—उपसर्ग से परे इण् धातु के अण् को ह्रस्व हो, आर्धधातुक कित् लिङ् परे ।

'निर् ईयात्' इस स्थिति में आर्धधातुक कित् लिङ् परे होने से और निर् उपसर्ग से परे धातु के अण् ईकार को प्रस्तुत सूत्र से ह्रस्व होकर **निरियात्** रूप सिद्ध होगा ।

'अभि ईयात्' इस स्थिति में (उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्' परिभाषा से ह्रस्व नहीं होता, आभीय होने के कारण । तब दीर्घ होकर **अभीयात्** रूप होता है । दीर्घ होने पर यहाँ यदि 'अन्तादिवच्च' सूत्र से 'अभी' में पूर्वान्तवद्भाव से उपसर्गत्व लाया जाय तब शेष बचे 'यात्' में इण् धातुत्व न मिलेगा, यदि 'ईयात्' में परादिवद्भाव से इण् धातुत्व लाया जाय, तब शेष बचे 'अभ्' में उपसर्गत्व न मिलेगा । यदि एकादेश युक्त पूरे 'अभी' में पूर्वान्तवद्भाव से उपसर्गत्व एवं भी यात् में परादिवद्भाव से एक साथ इण् धातुत्व भी लाया जाय तो ''उभयतः आश्रयणे नान्तादिवत्'' परिभाषा से उसका विरोध होगा, क्योंकि परस्पर विरोधी दो कार्यों को एक साथ नहीं किया जा सकता । अतः यहाँ ह्रस्व नहीं हो सकता ।

इण् धातु के अण् को ही ह्रस्व होता है, अतः सम्+आ+ईयात् इस स्थिति में 'आ+ई' को गुण होकर **समेयात्** बनेगा, यद्यपि यहाँ सम् उपसर्ग भी है और एयात् में 'आन्तादिवच्च' से परादिवद्भाव से इण् धातुत्व भी है, तथापि पूर्व में अण् न होने से ह्रस्व नहीं होता ।

इण इति—लुङ् के विषय में इण् धातु को 'गा' आदेश हो। लुङ् लकार में प्रस्तुत सूत्र से इण् को 'गा' आदेश करने पर अट् सिच् होकर 'अ गा स् त्' इस स्थिति में 'गातिस्था—सूत्र से सिच् लोप होकर अगात् अगातम् अगुः। अगाः अगातम् अगात। अगाम्, अगाव, अगाम रूप बनेंगे।

लृङ् में आट् वृद्धि—**ऐष्यत्, ऐष्याताम्, ऐष्यन्। ऐष्यः, ऐष्यतम्, ऐष्यत। ऐष्यम्, ऐष्याव, ऐष्याम** रूप होंगे।

शीङ् स्वप्ने—शी धातु सेट् आत्मने पदी है और इसका अर्थ सोना है।

शीङ इति—सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते शीङ् धातु को गुण हो। आत्मनेपद के त आदि प्रत्यय अपित् होने से 'सार्वधातुकमपित्' सूत्र से सार्वधातुक लकारों में ङित्वद् होते हैं, अतः इन प्रत्ययों के परे 'क्ङिति च' से गुण निषेध प्राप्त होता है, यह सूत्र 'क्ङिति च' का अपवाद होने से बाधक है अतः सार्वधातुक लकारों में गुण हो जाता है।

लट् में त प्रत्यय परे ईकार को गुण, शप् का लुक्, त के टि को एत्व होकर **शेते**, आताम् परे भी गुण अयादेश, टि को एत्व होकर **शयाते**, झ परे 'आत्मनेपदेष्वनतः' से अत् आदेश, अकार टि को एत्व, ईकार को उक्त सूत्र से 'ए' गुण, 'शे अते' इस स्थिति में—

शीङ इति—शीङ् धातु से परे जो आदेश उसके अकार को रुट् 'र्' का आगम हो।

प्रस्तुत सूत्र से रुट् (र्) का आगम होकर **'शेरते'** रूप होगा। थास् परे 'थासः से'—षत्व गुण—**शेषे**, गुणायादेश—**शयाथे**, गुण—**शेध्वम्**, इट् को एत्व, गुणायादेश—**शये, शेवहे, शेमहे**। लिट् में शी शी द्वित्व, ह्रस्व, लिप्स्तझयोरेशिरेच्—त को एश् **शिश्ये**, यण्—**शिश्याते, शिश्यिरे**। इट्—**शिश्यिषे, शिश्याथे, शिश्यिढ्वे, शिश्ये, शिश्यिवहे, शिश्यिमहे**। ध्वम् परे रहते, इण् यकार से आगे इट् परे मिलने से 'विभाषेटः' सूत्र से वैकल्पिक इट् होने से **शिश्यिध्वे** भी एक रूप बनेगा।

सेट् धातु होने से गुणायादेश होकर लुट् में शयिता शयितासे आदि रूप तथा लृट् में इट् गुणायादेश-शयिष्यते आदि रूप होंगे। लोट् लकार में 'शीङः' सार्वधातुके—सूत्र से गुण होकर **शेताम्, शयाताम्, रुट्-शेरताम्, शेष्व, शयाथाम्, शेध्वम्। शयै, शयावहै, शयामहै**। लङ् में भी उक्त सूत्र से गुण, अट् होकर **अशेत, अशयाताम्**, रुट्—**अशेरत। अशेथाः अशयाथाम्. अशेध्वम्, अशयि, अशेवहि, अशेमहि**। विधिलिङ्—उक्त सूत्र से गुण, सीयुट् अयादेश- **शयीत शयीयाताम्**, झस्य रन्—**शयीरन्। शयीथाः, शयीयाथाम्, शयीध्वम्, शयीय, शयीवहि, शयीमहि**। आशीर्लिङ् में—सीयुट्, सुट्, इट्, गुण, अयादेश, षत्व ष्टुत्व—**शयिषीष्ट, शयिषीयास्ताम्, शयिषीरन्। शयिषीष्ठाः, शयिषीयास्थाम्, शयिषीढ्वम् शयिषीध्वम्। शयिषीय, शयिषीवहि शयिषीमहि**। लुङ् लकार में 'अ शी इट् सिच् त' इस स्थिति में गुणायादेश, षत्व

इङ् अध्ययने ।१६।। इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः ।

अधीते, अधीयाते, अधीयते ।

(२१२) गाङ् लिटि ।२।४।४६।।

इङो गाङ् स्याल्लिटि । अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे । अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम् अधीयाताम् अधीयताम् । अधीष्व, अधीयाथाम्, अधीध्वम्, अध्ययै, अध्ययावहै, अध्ययामहै ।अध्यैत, अध्यैयाताम्, अध्यैयत । अध्यैथाः अध्यैयाथाम्, अध्यैध्वम्, अध्यैयि, अध्यैवहि, अध्यैमहि । अधीयीत, अधीयीयाताम्, अधीयीरन् । अध्येषीष्ट ।

(२१३) विभाषा लुङ् लृङोः ।२।४।५०।।

इङो गाङ् वा स्यात् ।

ष्टुत्व होकर अशयिष्ट, अशयिषाताम्, अशयिषत । अशयिष्ठाः, अशयिषाथाम्, अशयिढ्वम् अशयिध्वम्, अशयिषि, अशयिष्वहि, अशयिष्महि । लृङ्—अशयिष्यत ।

इङ् अध्ययने—इङ् धातु अध्ययने करने अर्थ में है, यह अनिट् आत्मनेपदी है।

इङ् धातु और इक् स्मरणे धातु, अधिउपसर्ग के बिना प्रयुक्त नहीं होते अर्थात् ये दोनों सदा अधि उपसर्ग के साथ ही प्रयोग में आते हैं।

लट् में त प्रत्यय परे टित आत्मनेपदानाम्—से टि को एत्व, सवर्ण दीर्घ—**अधीते**, द्वि० और बहुवचन में आते अते पर 'अचिश्नु' से इयङ् होकर **अधीयाते अधीयते**। दीर्घ षत्व—**अधीषे**, इयङ्—**अधीयाथे, अधीध्वे। अधीये, अधीवहे, अधीमहे।**

गाङिति—लिट् लकार की विवक्षा में इङ् धातु को गाङ् आदेश हो, प्रस्तुत सूत्र से गा आदेश होने पर गा गा द्वित्व, अभ्यास को ह्रस्व, चुत्व तथा त को एश् होकर अजादि प्रत्यय परे मिलने से 'आतो लोप इटि च' सूत्र से अभ्यासोत्तर गा के आकार को लोप होकर **अधिजगे**, आताम् और इरेच् परे रहते भी इसी प्रकार आकार लोप होकर **अधिजगाते, अधिजगिरे** रूप बनेंगे। इसी प्रकार थास् ध्वम् वहे वहे प्रत्ययों के परे क्रादिनियम से इट् होने पर अजादि प्रत्यय मिल जाने से आकार का लोप हो जाता है, आथाम् और इट् प्रत्यय तो स्वतः अजादि हैं अतः वहाँ भी आकार लोप होकर **अधिजगिषे, अधिजगाथे, अधिजगिध्वे। अधिजगे, अधिजगिवहे अधजगिमहे।**

अनिट् होने से लुट् और लृट् में केवल गुण होता है, अतः लुट् में अध्येता अध्येतासे, लृट् में अध्येष्यते आदि रूप होंगे। लोट् लकार में अजादि प्रत्यय परे इयङ् और हलादि प्रत्यय परे केवल दीर्घ होकर—**अधीताम् अधीयाताम् अधीयताम् अधीष्व अधीयाथाम् अधीध्वम्**—उत्तम पुरुष एकवचन में 'अधि इ इट्' इस स्थिति में आट् का आगम, इट् को एत्व, अधि इ आ ए, आ+ए=ऐ वृद्धि—अधि इ ऐ, धातु के इकार को गुण अयादेश—अधि अयै,—यण्—**अध्ययै**, द्विवचने और बहुवचन में

(२१४) गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ।१।२।१॥

गाङादेशात् कुटादिभ्यश्च परे अञ्णितः प्रत्ययाः ङितः स्युः ।

(२१५) घुमास्थागापा जहातिसां हलि ।६।४।६६॥

एषामात ईत् स्यात् हलादौ क्ङित्यार्धधातुके । अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत अध्यैष्यत ।

"अधि इ आ वहै, अधि इ आ महै" इस स्थिति में उभयत्र धातु के इकार को गुण अयादेश 'अधि अयावहै' और 'अधि अयामहै' उपसर्ग के इकार को यण् होकर **अध्ययावहै** और **अध्ययामहै**, रूप बनेंगे।

लङ् लकार में आट् होकर धातु के इकार के साथ 'आटश्च' से वृद्धि होकर 'आधि + ऐत' उपसर्ग इकार को यण् होकर अध्यैत इसी प्रकार आताम् आदि परे भी—**अध्यैयाताम्, अध्यैयत । अध्यैथाः अध्यैयाथाम् अध्यैध्वम् अध्यैयि, अध्यैवहि अध्यैमहि ।**

विधि लिङ् में सीयुट् सकार लोप, अधि इ ईय् त 'लोपो व्योर्वलि—यकार लोप 'अधि इ ईत्, धातु के इकार को इयङ् (क्योंकि सीयुट् अपित् सार्वधातुक होने से ङित् वत् है। अधि इ+यीत—सवर्ण दीर्घ—**अधीयीत**—आताम् परे यलोप न होगा **अधीयीयाताम्**, झ को रन् करने पर यलोप होकर **अधीरन्** यलोप—**अधीयीथाः, अधीयीयाथाम्, अधीयीध्वम, अधीयीय, अधीयीवहि, अधीयीमहि** रूप बनेंगे ।

आशीर्लिङ् में 'त' परे सीयुट् सुट् होकर 'अधि इ सी स् त, इस स्थिति में इकार को आर्धधातुक गुण, यण्, षत्व, ष्टुत्व होकर **अध्येषीष्ट, अध्येषीयास्ताम् अध्येषीरन् । अध्येषीष्ठाः अध्येषीयास्थाम्, अध्येषीढ्वम् । अध्येषीय, अध्येषीवहि । अध्येषीमहि ।**

विभाषेति—लुङ और लृङ् के विषय में इङ् धातु को विकल्पतः गाङ् आदेश हो ।

विषय सप्तमी होने से लुङ् लृङ् लकारों के पूर्व ही गाङ् आदेश हो जाता है ।

गाङिति—इङ् धातु के स्थान में हुआ गाङ् आदेश और कुट् आदि धातुओं से परे ञित् तथा णित् प्रत्ययों से भिन्न अन्य प्रत्यय ङित् हों ।

लुङ् लकार में इङ् को गाङ् आदेश होने पर, अट् का आगम, तथा सिच् होने पर 'अ गा स त्' इस स्थिति में, गाङ् आदेश से परे ञित् णित् भिन्न प्रत्यय सिच् है, वह प्रस्तुत सूत्र से ङित् हो जायेगा—फलतः—

घुमास्थेति—घु संज्ञक (दाप् को छोड़कर 'दा' 'धा' रूप धातु) मा (नापना) स्था (ठहरना) गा, पा (पीना) एवं ओहाक् त्यागे तथा षोऽन्तकर्मणि धातुओं के आकार को ईकार हो, हलादि कित् ङित् आर्धधातुक प्रत्यय परे । उक्त स्थिति में ङित् प्रत्यय सिच् परे है, गा धातु को प्रस्तुत सूत्र से आकार को ईकार होकर 'अगी स् त् ।

दुह प्रपूरणे ॥२०॥ दोग्धि, दुग्धः, दुहन्ति। धोक्षि। दुग्धे, दुहाते, दुहते। धुक्षे, दुहाथे, धुग्ध्वे। दुहे, दुह्वहे, दुह्महे। दुदोह, दुदुहे। दोग्धा। धोक्ष्यति धोक्ष्यते। दोग्धु-दुग्धात्, दुग्धाम्, दुहन्तु। दुग्धि दुग्धात्, दुग्धम्, दुग्ध। दोहानि दोहाव, दोहाम।

इस स्थिति में षत्व और ष्टुत्व होकर अधि उससर्ग के इकार को यण् होने पर **अध्यगीष्ट** रूप बनेगा। इसी प्रकार इसके अन्य रूपों से भी हलादि ङित्-सिच् परे रहते ईकार होकर, **अध्यगीषाताम्, अध्यगीषत। अध्यगीष्ठाः, अध्यगीषाथाम्, अध्यगीढ्वम्, अध्यगीषि, अध्यगीष्वहि, अध्यगीष्महि।**

लुङ् का गाङ् आदेश वैकल्पिक है, अतः गाङादेश के अभाव पक्ष में आट् का आगम, सिच् होकर 'अधि आ इ स् त' इस स्थिति में इकार को ए गुण, आटश्च से आ + इ को ऐ वृद्धि, यण्, षत्व, ष्टुत्व होकर **अध्यैष्ट** रूप बनेगा। इसके शेष रूप भी इसी प्रकार बनेंगे—**अध्यैषाताम्, अध्यैषत, अध्यैष्ठाः, अध्यैषाथाम् अध्यैढ्वम्। अध्यैषि, अध्यैष्वहि, अध्यैष्महि।**

लृङ् लकार में भी गाङ् आदेश विकल्पत; होता है, अतः गाङ् आदेश पक्ष में 'अधि, गा स्य त। इस स्थिति में स्य प्रत्यय के ञ्ति णित् से भिन्न होने से 'गाङ कुटादिभ्यः'—सूत्र से ङित् हो जाने से, घुमास्थेति सूत्र से आकार को ईकार होकर **अध्यगीष्यत, अध्यगीष्येताम् अध्यगीष्यन्त। अध्यगीष्यथाः, अध्यगीष्येथाम्, अध्यगीष्यध्वम्। अध्यगीष्ये, अध्यगीष्यावहि, अध्यगीष्यामहि** रूप बनेंगे और गाङादेशा भाव पक्ष में 'अधि आट् इ स्य त' इस स्थिति में आ+इ=को ऐ वृद्धि, षत्व, उपसर्ग ईकार को यण् होकर **अध्यैष्यत, अध्यैष्येताम् अध्यैष्यन्त।अध्यैष्यथाः अध्यैष्येथाम् अध्यैष्यध्वम्, अध्यैष्ये, अध्यैष्यावहि, अध्यैष्यामहि,** रूप बनेंगे।

दुह प्रपूरणे—दुह धातु दुहने अर्थ में है, स्वरितेत् होने से उभयपदी है।

लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में तिप् परे, 'दुह् ति' इस स्थिति में लघूपध गुण 'दादेर्धातोर्घः सूत्र से धातु के हकार को घ् आदेश, 'झषस्तथोर्धोऽधः। सूत्र से प्रत्यय के तकार को धकार, झलां जश् झशि, सूत्र से घकार को गकार करने पर **'दोग्धि'** तस् परे अपित् सार्वधातुक के ङित् होने से गुण न होगा, पूर्ववत् घत्व धत्व जशत्व हो कर **दुग्धः,** झि परे अन्तादेश होकर **दुहन्ति**। सिप् परे 'दुह् सि' इस स्थिति में, हकार को घकार, और "एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः।" सूत्र से धातु के इकार को भष् भाव होने से धकार, घकार को चर्त्वेन ककार, प्रत्यय सकार को षत्व, गुण, क्+ष=क्ष होकर **धोक्षि, दुग्धः, दुग्ध, दोह्मि, दुह्वः, दुह्मः।** आत्मनेपद में घत्व धत्व गत्व, एत्व होकर दुग्धे दुहाते, दुहते, घत्व भष्भाव, धत्व घकार को ककार, षत्व, क्+ष=क्ष होकर- **धुक्षे, दुहाथे,** ध्वम् परे, घत्व, भष्भाव, घकार को जश्त्वेन गकार—**धुग्ध्वे, दुहे, दुह्वहे, दुह्महे।**

दुग्धाम, दुहाताम्, दुहताम्। धुक्ष्व, दुहाथाम् धुग्ध्वम्। दोहै, दोहावहै, दोहामहै। अधोक्, अदुग्धाम्, अदुहन्। अदोहन्। अदुग्ध, अदुहाताम्, अदुहत। अधुग्ध्वम्। दुह्यात। दुहीत।

(२१६) लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ।१।२।११।।

इक् समीपाद् हलः परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तः तिङि। धुक्षीष्ट।

(२१७) शल इगुपधादनिटः क्सः ।३।१।४५।।

इगुपधो यः शलन्तः, तस्मादनिटश्च्लेः क्स आदेशः स्यात्।

अधुक्षत्।

(२१८) लुग्वा दुह् दिह् लिह् गुहात्मनेपदे दन्त्ये ।७।३।७३।।

एषां क्सस्य लुग्वा स्यात्, दन्त्ये तङि। अदुग्ध अधुक्षत।

(२१९) क्सस्याचि ।७।३।७२।।

अजादौ तङि क्सस्य लोपः। अलोऽन्त्यस्य-इत्यकार लोपः।

अधुक्षाताम् अधुक्षन्त। अदुग्धाः, अधुक्षथाः, अधुक्षाथाम्, अधुग्ध्वम्-अधुक्षध्वम्। अधुक्षि, अदुह्वहि, अधुक्षावहि, अधुक्षामहि। अधोक्ष्यत। अधोक्ष्यत।

वस्तुतः इस धातु के रूपों में "हकार को घकार, घकार को जश्त्व, या कुत्व, भष् भाव, तकार और थकार को धकार होना ही मुख्य कार्य हैं, इनके लिये यह ध्यान रखना चाहिये कि अजादि प्रत्ययों के परे तथा मकारादि और वकारादि प्रत्ययों के परे तो ये कोई भी कार्य नहीं होते, केवल सामान्य कार्य ही होते हैं। केवल दोनों पदों के हलादि प्रत्ययों में ही ये कार्य होते हैं, इसके लिए यह ध्यान रखना है कि झलादि तकारादि और थकारादि प्रत्ययों के परे तो हकार को घकार, घकार को गकार और प्रत्यय के तकार और थकार को धकार अवश्य होता है।

सकारादि प्रत्यय परे, हकार को घकार होने पर, 'एकाचो बशो भष्'—सूत्र से भषभाव अर्थात् धातु के दकार को धकार होता है। आत्मनेपद के थास् को 'से' करने लेने पर वह भी सकारादि प्रत्यय हो जाता है, अतः यहाँ भी घकार और दकार को भष्भाव से धकार होगा। घकार को चर्त्वेन ककार और प्रत्यय के सकार को षत्व करने पर क्+ष्=क्ष हो जाता है।

ध्वम् प्रत्यय परे, हकार को घकार और घकार को जश्त्वेन गकार तथा भषभाव से धातु के दकार को धकार होता है। इन सभी कार्यों का विधान करने वाले सूत्र उदाहरण सहित लट् लकार के रूपों की सिद्धि में दिखलाये गये हैं। अन्य लकारों के रूपों की सिद्धि के समय इन कार्यों पर ध्यान देना आवश्यक है।

लिट् लकार में धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य, गुण होकर **दुदोह, दुदुहतुः, दुदुहुः।** दुदोहिथ, दुदुहथुः, दुदुह। **दुदोह, दुदुहिव, दुदुहिम।** आत्मने पद में—**दुदुहे, दुदुहाते, दुदुहिरे, दुदुहिषे, दुदुहाथे, दुदुहिध्वे। दुदुहे, दुदुहिवहे, दुदुहिमहे।**

लिट् लकार में उक्त कार्य कहीं भी नहीं होंगे, क्योंकि ये सब अजादि प्रत्यय परे बनते हैं, जहाँ हलादि प्रत्यय भी हैं वहाँ इट् हो जाने से ये कार्य नहीं होते।

लुट् लकार में गुण, घत्व, गत्व, धत्व होकर, दोग्धा आदि रूप बनते हैं--

परस्मैपद			आत्मनेपद		
दोग्धा	**दोग्धारौ**	**दोग्धारः।**	**दोग्धा**	**दोग्धारौ**	**दोग्धारः।**
दोग्धासि	**दोग्धास्थः**	**दोग्धास्थ।**	**दोग्धासे**	**दोग्धासाथे**	**दोग्धाध्वे।**
दोग्धास्मि	**दोग्धास्वः**	**दोग्धास्मः।**	**दोग्धाहे,**	**दोग्धास्वहे,**	**दोग्धास्महे।**

लृट् लकार में 'स्य' प्रत्यय सकारादि होने से हकार को घकार, भष्भावेन दकार को धकार, घकार को कुत्वेन ककार, क् से परे सकार को षत्व, कष् संयोगे क्षत्व गुण, होकर धोक्ष्यति, धोक्ष्यते आदि रूप होंगे—

परस्मैपद			आत्मनेपद		
धोक्ष्यति,	**धोक्ष्यतः,**	**धोक्ष्यन्ति।**	**धोक्ष्यते,**	**धोक्ष्येते,**	**धोक्ष्यन्ते।**
धोक्ष्यसि,	**धोक्ष्यथः,**	**धोक्ष्यथ।**	**धोक्ष्यसे,**	**धोक्ष्येथे,**	**धोक्ष्यध्वे।**
धोक्ष्यामि,	**धोक्ष्यावः,**	**धोक्ष्यामः।**	**धोक्ष्ये,**	**धोक्ष्यावहे,**	**धोक्ष्यामहे।**

लोट् लकार में हलादि प्रत्ययों में घकार गकार धकार गुण होकर दोग्धु आदि, रूप बनेंगे। अपित् प्रत्ययों में गुण न होगा। सकारादि प्रत्ययों के परे भषभाव, घकार, ककार, षत्व क्षत्व भी होगा, ध्वम् परे, भष्भाव; घकार और जश्त्व होगा।

परस्मैपद			आत्मनेपद		
दोग्धु-दुग्धात्,	**दुग्धाम्,**	**दुहन्तु।**	**दुग्धाम्,**	**दुहाताम्,**	**दुहताम्।**
दुग्धि-दुग्धात्,	**दुग्धम्,**	**दुग्ध।**	**धुक्ष्व,**	**दुहाथाम्,**	**धुग्ध्वम्।**
दोहानि,	**दोहाव,**	**दोहाम।**	**दोहै,**	**दोहावहै,**	**दोहामहै।**

लङ् लकार में तकारादि सकारादि प्रत्ययों के परे, अर्थात् तिप् और सिप् परे भष्भाव, धकार को कुत्व गत्व, त् स् का हल्ङ्यादि लोप तथा विकल्पतः चर्त्व होकर अधोक् अधोग्, ताम् तम् 'त' परे प्रत्यय तकार को धकार, हकार को घकार तथा जश्त्वेन गकार होगा। आत्मनेपद में ध्वम् परे भषभाव, धकार और जश्त्व होगा—

परस्मैपद			आत्मनेपद		
अधोक् ग्,	**अदुग्धाम्,**	**अदुहन्।**	**अदुग्ध,**	**अदुहाताम्,**	**अदुहत।**
अधोक् ग्,	**अदुग्धम्,**	**अदुग्ध।**	**अदुग्धाः,**	**अदुहाथाम्,**	**अधुग्ध्वम्।**
अदोहम्,	**अदुह्व,**	**अदुह्म।**	**अदुहि,**	**अदुह्वहि,**	**अदुह्महि।**

विधिलिङ् में--यासुट् के ङित् होने से कहीं भी गुण न होगा--शेष सामान्य कार्य ही होंगे—

परस्मैपद			आत्मनेपद		
दुह्यात्,	**दुह्याताम्,**	**दुह्युः।**	**दुहीत,**	**दुहीयाताम्,**	**दुहीरन्।**
दुह्याः,	**दुह्यातम्,**	**दुह्यात।**	**दुहीथाः,**	**दुहीयाथाम्,**	**दुहीध्वम्।**
दुह्याम्,	**दुह्याव,**	**दुह्याम।**	**दुहीय,**	**दुहीवहि,**	**दुहीमहि।**

लिङि सिचाविति—इक् के समीपस्थ हल से परे झलादि लिङ् और सिच् कित् हों, तिङ् प्रत्यय परे। (इक्—दकार में उकार उसके समीप हल हकार है)।

झलादि लिङ्, विधिलिङ् में यासुट् होने से और आत्मनेपद में सीयुट् के सकार का लोप हो जाने से नहीं मिलता, केवल आशीर्लिङ् आत्मनेपद में झलादि लिङ् मिलता है, वहीं यह सू प्रवृत्त होता है, लुङ् में च्लि को सिच् होता ही नहीं, क्स हो जाता है, अतः सिच् का उदाहरण दुह-धातु में नहीं मिलता। आशीर्लिङ् में झलादि लिङ् को प्रस्तुत सूत्र से कित् होने से गुण नहीं होता। परस्मैपद में सामान्य कार्य ही होते हैं, आत्मनेपद में ह् को घ, भषभाव से द को ध, घकार को कुत्व षत्व क्षत्व होता है।

परस्मैपद			आत्मनेपद		
दुह्यात्,	**दुह्यास्ताम्,**	**दुह्यासुः।**	**धुक्षीष्ट,**	**धुक्षीयास्ताम्**	**धुक्षीरन्।**
दुह्याः,	**दुह्यास्तम्,**	**दुह्यास्त।**	**धुक्षीष्ठाः,**	**धुक्षीयास्थाम्,**	**धुक्षीध्वम्।**
दुह्यासम्,	**दुह्यास्व,**	**दुह्यास्म।**	**धुक्षीय,**	**धुक्षीवहि,**	**धुक्षीमहि।**

शल इति—इक् उपधा वाला जो शलन्त धातु, उस अनिट् धातु से परे च्लि को क्स, आदेश हो।

(क्स में क् की इत् संज्ञा लोप होकर अदन्त स बचता है, अतः यह सकारादि प्रत्यय बन जाता है।) दुह् धातु इगुपध शलन्त भी है। सकारादि प्रत्यय परे होने से, हकार को घकार, भषभाव से दकार को धकार, घकार को कुत्वेन ककार, षत्व, क्षत्व होकर **अधुक्षत्, अधुक्षताम्, अधुक्षन्। अधुक्षः, अधुक्षतम्, अधुक्षत। अधुक्षम्, अधुक्षाव, अधुक्षाम।**

लुग्वेति—दुह-दिह् लिह् और गुह् धातुओं के क्स का लुक् विकल्प से हो, दन्त्य तङ् प्रत्यय परे रहते।

तङ् प्रत्यय आत्मनेपद के प्रत्यय होते हैं, इनमें त, थास्, ध्वम् ये तीनों दन्त्य तङ् प्रत्यय होते हैं, इनके परे ही यह सूत्र क्स का वैकल्पिक लोप करता है, वहि परे भी वैकल्पिक क्स का लोप होता है क्योंकि वकारस्य दन्त्योष्ठम्, वकार का दन्त्य स्थान भी होता है।

क्सस्येति—अजादि तङ् परे रहते क्स का लोप हो।

(अलोऽन्त्य परिभाषा से क्स के अन्त्य अकार का लोप होता है।)

लुङ् आत्मनेपद में 'अ दुह् स (क्स) त' इस स्थिति में 'लुग्वा' सूत्र से क्स का लोप होने पर हकार को घकार, तकार का धकार और घकार को जश्त्वेन गकार होकर **अदुग्ध,** लोपाभाव पक्ष में घत्व, भष्भाव, कुत्व, षत्व क्षत्व होकर **अधुक्षत,** आताम् परे 'क्सस्याचि' सूत्र से अजादि प्रत्यय परे क्स् के अकार का लोप होने पर **अधुक्षाताम्,** झ परे, झ को अन्त करने पर क्स के अकार का लोप होकर **अधुक्षन्त।** थास् परे 'लुग्वा' सूत्र से क्स का लोप होने पर घत्व थकार को धकार जश्त्व होकर

एवं दिहि-उपचये ॥२१॥ लिह-आस्वादने ॥२२॥

लेढि, लीढः, लिहन्ति, लेक्षि । लीढे, लिहाते, लिहते । लिक्षे, लिहाथे, लीढ्वे । लिलेह, लिलिहे । लेढासि, लेढासे । लेक्ष्यति, लेक्ष्यते ।

लेढु, लीढाम्, लिहन्तु । लीढि, लेहानि । लीढाम । अलेट्, अलेड् । अलिक्षत्, अलिक्षत, अलीढ । अलेक्ष्यत्, अलेक्ष्यत ।

अदुग्धाः, लोपाभाव पक्ष में **अधुक्षथाः,** क्स के अकार का लोप—**अधुक्षाथाम्,** ध्वम् परे, क्स का लोप होने पर भषभाव घत्व गत्व होकर **अधुग्ध्वम्,** लोपाभाव पक्ष में **अधुक्षध्वम्, अधुक्षि,** वहि परे क्स लोप पक्ष में **अदुह्वहि,** लोपाभाव पक्ष में **अधुक्षावहि, अधुक्षामहि ।** लृङ् में—**अधोक्ष्यत्, अधोक्ष्यत ।**

एवं दिह-उपचये—इसी प्रकार दिह् धातु का अर्थ वृद्धि होना है। इस धातु के रूप भी दुह् धातु के समान ही बनेंगे, और उन सबका सिद्धि प्रकार भी वही होगा, जो कि दुह् धातु का बतलाया गया है। दुह् को तो यथास्थान गुण—उकार को ओकार हुआ था, पर दिहि् में इकार को एकार गुण होगा, शेष सभी कार्य—भषभाव, प्रत्यय तकार थकार को धकार, हकार को घकार, जश्त्व एवं कुत्व, षत्व, क्षत्व आदि सभी कार्य इसमें भी यथास्थान होंगे ।

लिह् आस्वादने—लिह् धातु का अर्थ 'चाटना' है ।

इस धातु के रूप और उनकी सिद्धि का प्रकार भी दुह् धातु जैसा ही है, अन्तर केवल इतना है कि दुह् में तो दकारादि धातु होने से 'भष्भाव' होता है, किन्तु इसमें कहीं भी भष्भाव न होगा, दुह् में हकार को घकार होता है, किन्तु इसमें कहीं भी धकार न होगा, अपितु हकार को "होढः" सूत्र से ढकार होगा ।

अजादि वकारादि एवं मकारादि प्रत्ययों के परे इस धातु में भी कोई विशेष कार्य नहीं होते । केवल शेष हलादि प्रत्ययों में ही विशेष कार्य होते हैं ।

इस धातु में तकारादि तथा थकारादि एवं ध्वम् प्रत्ययों के परे, धातु के हकार को 'होढः' से ढकार, प्रत्यय के तकार और थकार को 'झषस्तथो र्धोऽधः' सूत्र से धकार, ष्टुत्वेन इस धकार को भी ढकार, "ढोढे लोपः" सूत्र से पूर्व ढकार का लोप, इतना करने पर यदि गुण की प्राप्ति होती है तो गुण होगा अर्थात् इकार को ए गुण होगा, यदि गुण की प्राप्ति नहीं है, तो 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' सूत्र से इकार को दीर्घ होता है ।

सकारादि प्रत्ययों के आगे रहते, जैसे—से, स्व, स्य, सि, क्स् आदि 'होढः' से हकार को ढकार, 'षढोः कः सिः' से ढकार को ककार, ककार इण् से परे सकार को षत्व, और क्+ष् संयोगे क्ष् होगा । इस प्रक्रिया को ध्यान में रखने से इस धातु के सभी रूप सरलता से बन जायेंगे । इसमें कोई भी नया सूत्र नहीं है, दुह् धातु के ही सभी सूत्र इसमें काम करते हैं ।

लट् लकार में तिप् परे, शप् का लुक् होने पर, ढत्व, धत्व, ष्टुत्व, ढलोप, एवं गुण होने पर **लेढि**, तस् परे अपित् सार्वधातुक के ङित्वत् होने से गुण न होगा तब 'ढ्रलोपे' सूत्र से दीर्घ होकर **लीढः**, अन्तादेश करने पर अजादि प्रत्यय होने से कोई कार्य न होकर **लिहन्ति**, सिप् परे सकारादि प्रत्यय होने से ढत्व, ढकार को ककार, षत्व, क्षत्व और गुण होकर **लेक्षि लीढः लीढ । लेह्मि, लिह्वः, लिह्मः ।** आत्मने पद में अपित् होने से गुणाभाव, दीर्घ होकर **लीढे लिहाते, लिहते,** थास् को से होने पर ढ् क् ष् क्ष होकर **लिक्षे, लिहाथे**, ढत्व, ष्टुत्व, ढलोप, दीर्घ होकर **लीढ्वे । लिहे, लिह्वहे, लिह्महे ।**

लिट् में—लिलेह । लिलिहे ।

लुट् में—हकार को ढकार, तास् के तकार को धकार, ष्टुत्व, ढलोप, गुण होकर **लेढा लढारौ लेढारः लेढासि**—आत्मने पद में भी इसी प्रकार लेढा-रौ-रः, लेढासे ।

लृट् में—सकारादि स्य परे होने से ढ् क् ष् क्ष् गुण होकर लेक्ष्यति—लेक्ष्यते ।

लोट् लकार में ढ्, ध्, ष्टुत्व, ढलोप, गुण होकर **लेढु-लीढात्, लीढाम्, लिहन्तु ।** सि को हि, हि को धि, ढत्व, ष्टुत्व, ढलोप, दीर्घ—**लीढि, लीढम् लीढ, लेहानि लेहाव लेहाम ।**

आत्मने पद में—ढ् ध् ष्टुत्व ढलोप दीर्घ—**लीढाम् लिहाताम् लिहताम् ।** सकारादि 'स्व' परे, ढ् क् ष्, क्ष्—**लिक्ष्व, लिहायाम्, लीढ्वम् । लेहै, लेहावहै, लेहामहै ।**

लङ् लकार में ति सि प्रत्यय परे इतश्चेति इकार लोप, हल्ङ्यादि लोप, हकार को ढत्व, चर्त्वेन विकल्पतः क् ग् और गुण होकर अलेट् ड्, शेष स्थलों पर यथास्थान ढत्वादि, मिप् परे पित्वात्, गुण होकर—**अलेट् ड्, अलीढाम्, अलिहन्त् । अलेट् ड्, अलीढम्, अलीढ । अलेहम्, अलिह्व, अलिह्म ।** आत्मने पद में—अपित् होने से कहीं भी गुण न होगा, हलादि प्रत्ययों में यथास्थान ढत्वादि होकर—**अलीढ, अलिहाताम्, अलिहत । अलीढाः, अलिहाथाम्, अलीढ्वम् । अलिहि, अलिह्वहि, अलिह्महि ।**

विधिलिङ् परस्मैपद में यासुट्, होने से और आत्मने पद में सीयुट् होने से सामान्य रूप ही बनते हैं, कोई विशेष कार्य नहीं होता—**लिह्यात् लिह्याताम्** आदि, तथा **लिहीत लिहीयाताम् लिहीरन्** आदि रूप बनते हैं ।

आशीर्लिङ् परस्मैपद में सामान्यतः **लिह्यात् लिह्यास्ताम्** आदि रूप बनेंगे । आत्मने पद में कित्वात् कहीं भी गुण न होगा, ढ क ष ष्टुत्व होकर **लिक्षीष्ट, लिक्षीयास्ताम् लिक्षीरन्** आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् में च्लि को क्स होने से सकारादि प्रत्यय आगे रहते, ढत्व, कत्व, षत्व क्षत्व होकर अलिक्षत् अलिक्षताम् अलिक्षन् । अलिक्षः अलिक्षतम् अलिक्षत । अलिक्षम् अलिक्षाव, अलिक्षाम् रूप होंगे । आत्मने पद में दन्त्य तकार परे क्स के लोप होने पर

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ।।२३।।

(२२०) ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ।३।४।८४।।

ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युः, ब्रुवश्चाहादेशः । आह, आहतुः, आहुः ।

(२२१) आहस्थः ।८।२।३५।।

झलि परे । चर्त्वम् –आत्थ, आहथुः ।

(२२२) ब्रुव ईट् ।७।३।९३।।

ब्रुवः परस्य हलादिः पित ईट् स्यात् । ब्रवीति, ब्रूतः, ब्रुवन्ति । ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते ।

ढ, ध, ष्टुत्व, ढलोप, दीर्घ—**अलीढ** लोपाभाव पक्ष में ढ् क् ष् क्ष् होकर **अलिक्षत, अलिक्षाताम्, अलिक्षन्त** । अलीढाः अलिक्षथाः अलिक्षाथाम् अलीढ्वम्-अलिक्षध्वम्, अलिक्षि, अलिह्वहि अलिक्षावहि, अलिक्षामहि रूप होंगे। लृङ् में अलेक्ष्यत् अलेक्ष्यत ।

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—ब्रू धातु स्पष्ट बोलने अर्थ में है ।

ब्रुव इति—ब्रू धातु से परे लट् के स्थान में होने वाले तिप् आदि पाँच प्रत्ययों को क्रमशः णल् अतुस् उस् थल् अथुस् आदेश हों विकल्प से और ब्रू को आह आदेश हो ।

लट् लकार के प्रथम पुरुष में प्रस्तुत सूत्र से तिबादि को क्रमशः णल् अतुस् उस् आदेश और ब्रू को आह आदेश होकर **आह, आहतुः, आहुः** रूप बनेंगे ।

आहस्थ इति—झल् परे रहते आह् को थकार आदेश हो, (अलोऽन्त्य परिभाषा से हकार को थ होगा ।)

'आह थ' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से हकार को थकार, और थकार को चर्त्वेन तकार होकर **आत्थ, आहथुः** ये पाँच रूप बनते हैं ।

ब्रुव इति—ब्रू धातु से परे हलादि पित् प्रत्यय को ईट् का आगम हो ।

हलादि पित् प्रत्यय तिप् सिप् मिप् हैं, इनके परे प्रस्तुत सूत्र से ईट् का आगम तथा सार्वधातुक गुण भी होगा । अपित् सार्वधातुक में गुण न होकर अजादि प्रत्यय परे 'अचिश्नु' से उकार को उवङ् होगा—

इस प्रकार ब्रवीति, ब्रूतः, उवङ्—ब्रुवन्ति । ब्रवीषि, ब्रूथः, ब्रूथ । ब्रवीमि, ब्रूवः, ब्रूमः । आत्मने पद में पित् न मिलने से ईट् न होगा और न गुण ही, अजादि प्रत्ययों के परे उवङ् होगा--**ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते । ब्रूषे ब्रुवाथे, ब्रूध्वे, ब्रुवे, ब्रूवहे, ब्रूमहे ।**

ब्रुव इति—आर्धधातुक प्रत्यय परे ब्रू को वच् आदेश हो ।

लिट् लकार में आर्धधातुक होने से सर्वत्र वच् आदेश होता है, प्र० पु० एकवचन में प्रस्तुत सूत्र से ब्रू को वच् आदेश, द्वित्व, अभ्यास कार्य 'व वच् अ' इस

(२२३) ब्रुवो वचिः ।८।४।५३।।

आर्धधातुके । उवाच, ऊचतुः, ऊचुः; उवचिथ—उवक्थ । ऊचे, वक्ता । वक्ष्यति । वक्ष्यते । ब्रवीतु—ब्रूतात्, ब्रूताम्, ब्रुवन्तु । ब्रूहि, ब्रवाणि । ब्रूताम्, ब्रवै । अब्रवीत्, अब्रूत । ब्रूयात्, ब्रवीत । उच्यात्, वक्षीष्ट ।

(२२४) अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ।३।१।५५।।

एभ्यश्चलेरङ् स्यात् ।

(२२५) वच उम् ।७।४।२०।।

अङि परे । अवोचत् । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत ।

(ग० सू०) चर्करीतं च ।

चर्करीतमिति यङ्लुगन्तम्, तददादौ बोध्यम् ।

स्थिति में "लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्" सूत्र से अभ्यास वकार को 'उ' संप्रसारण, उपधा वृद्धि होकर **उवाच,** अतुस् उस् अथुस् अ व म परे रहते, कित् होने से, 'वचिस्वपियजादीनां किति' सूत्र से, "संप्रसारणं तदाश्रितं कार्यं च बलवत्" परिभाषा के बल से, द्वित्व के पूर्व व को उ संप्रसारण, अकार का पूर्व रूप होकर उच् बन जाने पर द्वित्वादि कार्य होकर **ऊचतुः, ऊचुः** । थल् परे अनिट् अकारवान् होने से वैकल्पिक इट्—**उवचिथ,** इड़भाव पक्ष में 'चोः कुः' से कुत्व होकर **उवक्थ, ऊचथुः, ऊच, उवाच, उवच** ऊचिव, ऊचिम । आत्मने पद के सभी प्रत्यय अपित् होने से 'असंयोगाल्लिट् कित्' से कित् है अतः यहाँ सर्वत्र द्वित्व से पूर्व संप्रसारण होकर **ऊचे ऊचाते ऊचिरे ऊचिषे ऊचाथे ऊचिध्वे, ऊचे, ऊचिवहे, ऊचिमहे** । रूप होंगे ।

लुट् में अनिट् होने से, वक्ता (चोः कुः) कुत्व । वक्तारौ, वक्तारः । वक्तासि, आत्मने पद में वक्तासे आदि रूप होंगे ।

लृट् में 'वच् स्य ति' इस स्थिति में चकार को कुत्व, सकार को षत्व और क्षत्व होकर वक्ष्यति, वक्ष्यते आदि ।

लोट् में तिप् परे ईट् गुण होकर **ब्रवीतु, ब्रूतात् ब्रूताम् ब्रुवन्तु** । सिप् परे हि आदेश के अपित् होने से ईट् और गुण न होंगे--**ब्रूहि, ब्रूतात् ब्रूतम् ब्रूत** । 'आदुत्तमस्य पिच्च' से आट् के पित् होने से गुण तो होगा पर हलादि परे न होने से ईट् न होगा, **ब्रवाणि ब्रवाव ब्रवाम** । आत्मने पद में अजादि प्रत्ययों के परे उवङ्, अपित् होने से गुण कहीं न होगा—**ब्रूताम् ब्रुवाताम् ब्रुवताम्, ब्रूष्व, ब्रुवाथाम्, ब्रूध्वम्** । **ब्रवै, ब्रवावहै ब्रवामहै** । (यहाँ आट् गुण होगा ।)

लङ् के पित् वचनों में ईट्, गुण, मिप् को अम् होने से ईट् न होगा, अन्यत्र अजादि प्रत्यय परे उवङ्—**अब्रवीत् अब्रूताम् अब्रुवन्** । **अब्रवीः अब्रूतम् अब्रूत, अब्रवम्** अब्रूव, अब्रूम । **अब्रूत, अब्रुवाताम् अब्रुवन्त, अब्रूथाः अब्रुवाथाम् अब्रूध्वम्** । **अब्रुवि, अब्रूवहि अब्रूमहि** ।

ऊर्णुञ् आच्छादने ।।२४।।

(२२६) ऊर्णोतेर्विभाषा ।७।३।९०।।

वा वृद्धिः स्याद् हलादौ पिति सार्वधातुके । ऊर्णौति—ऊर्णोति । ऊर्णुतः, ऊर्णुवन्ति । ऊर्णुते, ऊर्णुवाते, ऊर्णुवते ।

(वा०) ऊर्णोतेराम् नेति वाच्यम् ।

विधिलिङ् में—यासुट् परे गुण न होगा, सीयुट् परे उवङ् होगा—**ब्रूयात् ब्रूयाताम् ब्रूयुः । ब्रूयाः ब्रूयातम् ब्रूयात ब्रूयाम् ब्रूयाव ब्रूयाम । ब्रुवीत ब्रुवीयाताम् ब्रुवीरन् । ब्रुवीथाः ब्रुवीयाथाम्, ब्रुवीध्वम् । ब्रुवीय, ब्रुवीवहि, ब्रुवीमहि ।**

आशीर्लिङ् में—यासुट् 'किदाशिषि' से कित् होता है अतः संप्रसारण से व् को उ हो जाता है । आत्मने पद में सीयुट् कित् नहीं होता अतः वहाँ संप्रसारण नहीं होता, अपितु चकार को कुत्व तथा षत्व क्षत्व होता है—

उच्यात्, उच्यास्ताम्, उच्यासुः । उच्याः, उच्यास्तम्, उच्यास्त । उच्यासम्, उच्यास्व, उच्यास्म । वक्षीष्ट, वक्षीयास्ताम्, वक्षीरन् । वक्षीष्ठाः, वक्षीयास्थाम्, वक्षीध्वम् । वक्षीय, वक्षीवहि, वक्षीमहि, रूप बनते हैं ।

अस्यतीति—असु क्षेपणे वच् और ख्या प्रकथने धातुओं से परे च्लि को अङ् आदेश होता है ।

वच इति—वच् को उम् का आगम हो अङ् परे रहते । उमागम में मकार की इत् संज्ञा लोप होने से मित् होने के कारण यह वकारोत्तरवर्ती अकार के आगे होता है ।

लुङ् लकार में आर्धधातुक परे होने से ब्रू को वच् आदेश, अट्, च्लि को अस्यतीति सूत्र से अङ् आदेश, अङ् परे 'वच उम्' सूत्र से उमागम होकर 'अ व उ च् अ त्' इस स्थिति में गुण होकर **अवोचत्** रूप बनता है, इसी प्रकार इसके शेष रूप भी बनेंगे—

अवोचताम्, अवोचन् । अवोचः, अवोचतम्, अवोचत । अवोचम्, अवोचाव, अवोचाम । आत्मने पद में भी इसी प्रकार वचादेश उमागम होकर **अवोचत अवोचेताम् अवोचन्त । अवोचथाः अवोचाथाम् अवोचध्वम् । अवोचि अवोचावहि अवोचामहि ।**

लृङ् लकार में आर्धधातुक होने से वच् आदेश, स्य प्रत्यय, चोः कुः से कुत्व षत्व क्षत्व होकर—**अवक्ष्यत्, अवक्ष्यताम् अवक्ष्यन्** आदि, आत्मने पद में—**अवक्ष्यत अवक्ष्येताम् अवक्ष्यन्त ।** आदि रूप बनेंगे ।

चर्करीतमिति—चर्करीत यङ्लुगन्त कहा जाता है । इसे अदादि गण में समझना चाहिये, अतः अदादि गण में जो कार्य शप् लुक् आदि होते हैं वे यङ्लुगन्त में भी होंगे ।

ऊर्णुञ् आच्छादाने—ऊर्णु धातु आच्छादन अर्थ में है ।

ऊर्णोतेरिति—ऊर्णु धातु को हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे विकल्पतः **वृद्धि हो ।**

(२२७) न न्द्राः संयोगादयः ।६।१।३।।

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्वि र्न भवन्ति, 'नु' शब्दस्य द्वित्वम् । ऊर्णुनाव, ऊर्णुनुवतुः, ऊर्णुनुवुः ।

(२२८) विभाषोर्णोः १।२।३।।

इडादि प्रत्ययो वा ङित् स्यात् । ऊर्णुनुविथ—ऊर्णुनविथ । ऊर्णुविता—ऊर्णविता । ऊर्णुविष्यति—ऊर्णविष्यति । ऊर्णौतु—ऊर्णोतु । ऊर्णवानि, ऊर्णवै ।

(अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्तिम वर्ण उकार को वृद्धि होगी)

लट् लकार में तिप् सिप् मिप् हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे प्रस्तुत सूत्र से विकल्पतः वृद्धि होगी, वृद्धि के अभाव में गुण होकर **ऊर्णौति-ऊर्णोति,** अपित् होने से ङित्वत् होने से गुणाभाव—**ऊर्णुतः,** अजादि प्रत्यय होने से उवङ्—**ऊर्णुवन्ति । ऊर्णौसि-ऊर्णोसि, ऊर्णुथः, ऊर्णुथ । ऊर्णौमि-ऊर्णोमि, ऊर्णुवः, ऊर्णुमः ।** आत्मने पद के सभी प्रत्यय अपित् होने से ङित्वत् होते हैं अतः वृद्धि और गुण न होकर अजादि प्रत्ययों के परे उवङ्—**ऊर्णुते, ऊर्णुवाते, ऊर्णुवते । ऊर्णुषे, ऊर्णुवाथे, ऊर्णुध्वे । ऊर्णुवे, ऊर्णुवहे, ऊर्णुमहे ।**

(वा०) ऊर्णोतिरिति—ऊर्णु धातु से आम् न हो, यह कहना चाहिये, धातु के इजादि गुरुमान् होने से 'इजादेश्च' सूत्र से यहाँ आम् का आगम प्राप्त था, उसका इस वार्तिक से निषेध होगा । अजादि धातु होने से यहाँ द्वितीय एकाच् अर्थात् 'र्णु' को द्वित्व प्राप्त होता है ।

न न्द्रा इति—अच् से परे संयोगादि नकार दकार और रेफ को द्वित्व न हो ।

प्रस्तुत सूत्र के द्वारा निषेध किये जाने पर रेफ रहित केवल 'नु' को द्वित्व होगा । द्वित्व होने पर अभ्यास के नकार को पुनः णकार हो जायेगा, क्योंकि तब वह रेफ से परे होगा, वस्तुतः यह णकार नकार स्थानिक ही है, अभ्यासोत्तर नु को 'अचो-ञ्णिति' से वृद्धि अवादेश होकर **ऊर्णुनाव** रूप बनता है, अतुस् और उस् परे अपित् लिट् के कित् होने से गुण न होकर उवङ्—**ऊर्णुनुवतुः, ऊर्णुनुवुः** रूप होंगे ।

विभाषेति—ऊर्णु धातु से परे इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित् हों । (ङित् होने से गुणाभाव होगा, और स्वर परे मिलने से उवङ् होगा ।) ङित् के अभाव पक्ष में गुण होकर—**ऊर्णुनुविथ,** और **ऊर्णुनविथ** ये दो रूप बनेंगे । उवङ्—**ऊर्णुनुवथुः, ऊर्णुनुव । ऊर्णुनाव ऊर्णुनव,** ङित् विकल्पतः—**ऊर्णुनुविव, ऊर्णुनविव, ऊर्णुनुविम, ऊर्णुनविम ।** आत्मने पद में उवङ्—**ऊर्णुनुवे, ऊर्णुनुवाते, ऊर्णुनुविरे । ऊर्णुनुविषे, ऊर्णुनविषे, ऊर्णुनुवाथे, ऊर्णुनुविध्वे-ढ्वे, ऊर्णुनविध्वे-ढ्वे । ऊर्णुनुवे, ऊर्णुनुविवहे, ऊर्णुनविवहे, ऊर्णुनुविमहे, ऊर्णुनविमहे ।**

ऊर्णु धातु सेट् है अतः लुट् और लृट् लकारों में सर्वत्र इट् होगा, और 'विभाषोर्णोः' सूत्र से इडादि प्रत्यय तास् और स्य परे विकल्पतः ङित् होने से सर्वत्र दो-दो रूप होंगे, ङित् पक्ष में उवङ् होगा, और ङित् के अभाव में गुण होगा—

(२२६) गुणोऽपृक्ते । ७।३।९१।।

ऊर्णोति गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्ध्यपवादः । और्णोत्, और्णोः, ऊर्णुयात् ऊर्णुयाः, ऊर्णुवीत, ऊर्णूयात्, ऊर्णुविषीष्ट ऊर्णविषीष्ट ।

परस्मैपद ङित् पक्ष में— **ऊर्णुविता ऊर्णुवितारौ, ऊर्णुवितारः, ऊर्णुवितासि, ऊर्णुवितास्थः, ऊर्णुवितास्थ, ऊर्णुवितास्मि, ऊर्णुवितास्वः, ऊर्णुवितास्मः ।** ङित् के अभाव पक्ष में गुण— **ऊर्णनविता, ऊर्णवितारौ, ऊर्णवितारः, ऊर्णवितासि, ऊर्णवितास्थः, ऊर्णवितास्थ, ऊर्णवितास्मि, ऊर्णवितास्वः, ऊर्णवितास्मः ।** आत्मने पद ङित् पक्ष में— **ऊर्णुविता, ऊर्णुवितारौ, ऊर्णुवितारः, ऊर्णुवितासे, ऊर्णुवितासाथे, ऊर्णुविताध्वे, ऊर्णुविताहे, ऊर्णुवितास्वहे, ऊर्णुवितास्महे ।** ङित् के अभाव पक्ष में गुण— **ऊर्णविता, ऊर्णवितारौ, ऊर्णवितारः, ऊर्णवितासे, ऊर्णवितासाथे, ऊर्णविताध्वे, ऊर्णविताहे, ऊर्णवितास्वहे, ऊर्णवितास्महे ।**

लृट् परस्मैपद ङित् पक्ष में— **ऊर्णुविष्यति ऊर्णुविष्यतः, ऊर्णुविष्यन्ति । ऊर्णुविष्यसि, ऊर्णुविष्यथः, ऊर्णुविष्यथ ऊर्णुविष्यामि, ऊर्णुविष्यावः, ऊर्णुविष्यामः ।** ङित् के अभाव पक्ष में— **ऊर्णविष्यति, ऊर्णविष्यतः, ऊर्णविष्यन्ति । ऊर्णविष्यसि, ऊर्णविष्यथः, ऊर्णविष्यथ, ऊर्णविष्यामि, ऊर्णविष्यावः, ऊर्णविष्यामः ।** आत्मने पद में ङित् पक्ष में— **ऊर्णुविष्यते, ऊर्णुविष्येते, ऊर्णुविष्यन्ते, ऊर्णुविष्यसे, ऊर्णुविष्येथे, ऊर्णुविष्यध्वे, ऊर्णुविष्ये, ऊर्णुविष्यावहे, ऊर्णुविष्यामहे ।** ङित् के अभाव पक्ष में गुण— **ऊर्णविष्यते, ऊर्णविष्येते, ऊर्णविष्यन्ते, ऊर्णविष्यसे, ऊर्णविष्येथे, ऊर्णविष्यध्वे, ऊर्णविष्ये, ऊर्णविष्यावहे, ऊर्णविष्यामहे ।** लोट् परस्मैपद—(ऊर्णोति-विभाषा)— ऊर्णौतु-ऊर्णोतु, ऊर्णुतात्, ऊर्णुताम्, ऊर्णुवन्तु । ऊर्णुहि-ऊर्णुतात्, ऊर्णुतम्, ऊर्णुत । ऊर्णवानि, ऊर्णवाव, ऊर्णवाम । आत्मने पद में— ऊर्णुताम्, ऊर्णुवाताम्, ऊर्णुवताम् । ऊर्णुष्व, ऊर्णुवाथाम्, ऊर्णुध्वम् । ऊर्णवै, ऊर्णवावहै, ऊर्णवामहै ।

गुण इति—अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ऊर्णु धातु को गुण हो ।

वृद्ध्यपवाद इति—अर्थात् 'ऊर्णोति विभाषा' सूत्र से प्राप्त वृद्धि का अपवाद होने बाधक है ।

लङ् लकार के तिप् और सिप् प्रत्ययों से इकार लोप होने पर अपृक्त हलादि सार्वधातुक मिल जाने से प्रस्तुत सूत्र से यहाँ नित्य गुण होता है, अतः एक ही रूप बनता है, मिप् को अम् आदेश हो जाने से हलादि नहीं मिलता, अतः न वहाँ प्रस्तुत सूत्र से गुण ही होता है और न वृद्धि ही, केवल सामान्यतः सार्वधातुक गुण होता है । आत्मने पद में अजादि प्रत्ययों के परे उवङ् होता है ।

लङ् परस्मैपद— **और्णोत् और्णुताम् और्णुवन् । और्णोः, और्णुतम्, और्णुत । और्णवम्, और्णुव, और्णुम ।**

आत्मने पद में— **और्णुत, और्णुवाताम् और्णुवत । और्णुथाः, और्णुवाथाम्, और्णुध्वम्, और्णुवि, और्णुवहि, और्णुमहि ।**

(२३०) ऊर्णोतेर्विभाषा ।७।२।६।।

इडादौ परस्मैपदे सिचि वा वृद्धिः । पक्षे गुणः । और्णावीत् । और्णवीत्, और्णुवीत्, और्णाविष्टाम् अर्णुविष्टाम् और्णविष्टाम् । और्णुविष्ट, और्णविष्ट । और्णुविष्यत् और्णविष्यत् । और्णुविष्यत, और्णविष्यत ।

विधिलिङ् में यासुट् के ङित् होने से गुण वृद्धि न होंगे, सामान्यतः रूप बनेंगे । सीयुट् परे उवङ् होगा—

परस्मैपद विधि लिङ्—**ऊर्णुयात, ऊर्णुयाताम्, ऊर्णयुः । ऊर्णुयाः, ऊर्णुयातम, ऊर्णुयात, ऊर्णुयाम् ऊर्णुयाव, ऊर्णुयाम ।** आत्मनेपद में—**ऊर्णुवीत, ऊर्णुवीयाताम्, ऊर्णुवीरन्, ऊर्णुवीथाः, ऊर्णुवीयाथाम्, ऊर्णुवीध्वम्, ऊर्णुवीय, ऊर्णुवीवहि, ऊर्णुवीमहि ।**

आशीलिङ् परस्मैपद में 'अकृत् सार्वधातुकयोः' से दीर्घ होकर सामान्यतः रूप होंगे । आत्मनेपद में इट् होने से इडादि प्रत्यय परे विकल्पतः ङित् होने से एक पक्ष में उवङ् और एक पक्ष में गुण होगा—

आशीलिङ—परस्मैपद—**ऊर्णूयात्, ऊर्णूयास्ताम्, ऊर्णूयासुः । ऊर्णूयाः, ऊर्णूयास्तम्, ऊर्णूयास्त, ऊर्णूयासम्, ऊर्णूयास्व, ऊर्णूयास्म ।** आत्मनेपद में ङित् पक्ष में उवङ्—**ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णुविषीयास्ताम्, ऊर्णुविषीरन्, ऊर्णुविषीष्ठाः, ऊर्णुविषीयास्थाम्, ऊर्णुविषीध्वम् । ऊर्णुविषीय, ऊर्णुविषीवहि, ऊर्णुविषीमहि ।** ङित् के अभाव में गुण—**ऊर्णविषीष्ट** आदि रूप बनेंगे ।

ऊर्णोतेरिति—इडादि परस्मैपद सिच् परे रहते ऊर्णु धातु को विकल्पतः वृद्धि हो ।

लुङ् लकार में इडादि प्रत्यय के ङित् विकल्प से दो रूप होंगे, और एक रूप वृद्धि पक्ष में होगा, ङित् पक्ष में उवङ् होगा, ङित् के अभाव पक्ष में गुण को बाधकर प्रस्तुत सूत्र से वृद्धि, और वृद्धि के अभाव में गुण होगा अतः तीन रूप परस्मैपद में बनेंगे—**और्णुवीत्, और्णावीत्, और्णवीत्, और्णुविष्टाम् और्णाविष्टाम् और्णविष्टाम्** इत्यादि । आत्मनेपद में इडादि प्रत्यय के ङित् विकल्प से केवल दो रूप होंगे । **और्णुविष्ट और्णविष्ट** इत्यादि । लृङ लकार में ङित् विकल्प से दो रूप—**और्णुविष्यत् और्णविष्यत् ।** आत्मनेपद में भी—**और्णविष्यत और्णविष्यत ।**

इत्यदादि प्रकरणम्

अथ जुहोत्यादि गणः

हु दानादनयोः ॥१॥

(२३१) जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ।२।४।७५॥

शपः श्लुः स्यात् ।

(२३२) श्लौ ।६।१।१०॥

धातो र्द्वे स्तः । जुहोति, जुहुतः ।

(२३३) अदभ्यस्तात् ।७।१।४॥

झस्यात् स्यात् । 'हुश्नुवोः' इति यण्—जुह्वति ।

(२३४) भी ह्री भृ हुवां श्लुवच्च ।३।१।३९॥

एभ्यो लिटि आम् वा स्यात्, आमि श्लाविव कार्यं च । जुहवाञ्चकार, जुहाव । होता । होष्यति । जुहोतु-जुहुतात्, जुहुताम्, जुह्वतु ।जुहुधि, जुहवानि । अजुहोत्, अजुहुताम् ।

हु दानादनयोः—हु धातु का अर्थ सविध मन्त्रोच्चार पूर्वक अग्नि में हवि डालना और खाना है ।

जुहोत्यादीति—जुहोत्यादि गण पठित धातुओं से परे शप् का श्लु (लोप) हो ।

श्लाविति—श्लु के विषय में धातु को द्वित्व हो ।

लट् लकार में हु धातु से तिप्, शप्, जुहोत्यादि सूत्र से शप् का श्लु (लोप) 'हु ति' इस स्थिति में—'श्लौ' सूत्र से हु धातु को द्वित्व, अभ्यास के हकार को 'कुहोश्चुः' सूत्र से झकार, 'अभ्यासे चर्च' से जश्त्वेन जकार, दूसरे हु को सार्वधातुक गुण होकर **जुहोति** तस् परे अपित् सार्व धातुक को गुण न होगा—**जुहुतः** । हु झि इस स्थिति में :—

अदभ्यस्तात् इति—अभ्यस्त धातुओं से परे झ् को अत् आदेश हो । झोऽन्तः से प्राप्त अन्त् आदेश को बाध कर प्रस्तुत सूत्र से झ् का अत् आदेश, द्वित्व, जुहु अति इस स्थिति में उवङ् को अपवाद त्वात् बाध कर हुश्नुवोः सूत्र से यण्—**जह्वति । जुहोषि जुहुथः जुहुथ । जुहोमि, जुहुवः, जुहुमः ।**

(२३५) जुसि च ।७।३।८३।।

इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि । अजुहवुः । जुहुयात् । हूयात् । अहौषीत् अहोष्यत् ।

भीह्री इति—भी (भये) ह्री (लज्जायाम्) भृ (पालने) हु, इन धातुओं से आम् प्रत्यय हो विकल्प से लिट् परे। तथा श्लु के विषय में जो कार्य (द्वित्वादि) होता है, वह भी हो।

लिट् लकार में हु धातु से प्रस्तुत सूत्र से आम्, और श्लुवत् कार्य द्वित्व अभ्यास कार्य होकर जुहवाम् इस स्थिति में 'आमः' सूत्र से लिट् का लोप, 'कृञ् चानु प्रयु ज्यते लिटि' से लिट् परक कृ का प्रयोग, द्वित्वादि कार्य वृद्धि होकर **जुहवाञ्चकार जुहवाञ्चक्रतुः, जुहवाञ्चक्रुः, जुहवाञ्चकर्थ, जुहवाञ्चक्रथुः जुहवाञ्चक्र, जुहवाञ्चकार जुहवाञ्चकर जुहवाञ्चकृव जुहवाञ्चकृम**। इसी प्रकार भू और अस् का प्रयोग होने पर जुहवाम्बभूव, जुहवामास। आम् के अभाव पक्ष में हु धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य होकर **जुहाव, जुहुवतुः, जुहुवुः जुहोथ जुहविथ, जुहुवथुः जुहुव। जुहाव जुहव, जुहुविव, जुहुविम**। धातु के अनिट् होने से गुण होकर लुट् में **होता होतारौ होतारः**। लृट् में **होष्यति होष्यतः होष्यन्ति**। लोट् में श्लु द्वित्वादि होकर **जुहोतु जुहुतात् जुहुताम् जुह्वतु**। सिप् को हि, हु झल्भ्यो हे र्धिः—**जुहुधि, जुहुतात् जुहुतम् जुहुत**। उत्तम पुरुष में आट् के पित् होने से 'हुश्नुवोः' इति यण् को बाध कर गुण अवादेश—**जुहवानि, जुहवाव, जुहवाम**।

जुसि चेति—अजादि जुस् परे रहते इगन्त अंग को गुण हो। लङ् लकार के तिप् सिप् परे गुण—**अजुहोत्, अजुहुताम्**। 'अजुहु झि' इस स्थिति में 'सिजभ्यस्त-विदिभ्यश्च' सूत्र से झि को अभ्यस्त से परे होने के कारण जुस्, अपित् ङित् वत् होने से गुणभाव, उवङ् प्राप्त होने पर, 'हु श्नु वोः' से उसका बाध होकर यण् प्राप्त होगा उसका प्रस्तुत सूत्र से बाध होकर गुण होगा—**अजुहवुः। अजुहोः, अजुहुतम्, अजुहुत। अजुहवम्, अजुहुव अजुहुम**।

विधिलिङ् में यासुट् ङित् होने से गुणाभाव होकर जुहुयात्, जुहुयाताम्, जुहुयुः। जुहुयाः, जुहुयातम् जुहुयात, जुहुयाम्, जुहुयाव, जुहुयाम्। आशीर्लिङ् में 'अकृत् सार्वधातुकयोः' से दीर्घ—हूयात् हूयास्ताम् हूयासुः इत्यादि रूप बनेंगे।

लुङ् में अनिट् धातु होने से इट् न होगा। सिच् ईट् होकर 'अ हु स् ई त्' इस स्थिति में 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' से उकार को औ वृद्धि होकर—**अहौषीत् अहौष्टाम् अहौषुः**, आदि रूप होंगे।

लृङ में **अहोष्यत् अहोष्यताम् अहोष्यन्** आदि रूप बनेंगे।

ञिभी भये ॥२॥ बिभेति ।

(२३६) भियोऽन्यतरस्याम् ।६।४।११५॥

इकारो वा स्यात्, हलादौ क्ङिति सार्वधातुके । बिभितः-बिभीतः, बिभ्यति । बिभयाञ्चकार, बिभाय । भेता । भेष्यति । बिभेतु, बिभितात् बिभीतात् । अबिभेत् । बिभीयात्-बिभीयात । भीयात् । अभैषीत् । अभेष्यत् ।

ह्री लज्जायाम् ॥३॥ जिह्रेति, जिह्रीतः, जिह्रियति । जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय । ह्रेता । ह्रेष्यति । जिह्रेतु । अजिह्रेत् । जिह्रीयात् । ह्रेयात् । अह्रैषीत् अह्रेष्यत् ।

पॄ पालनपूरणयोः ॥४॥

(२३७) अर्तिपिपर्त्योश्च ।७।४।७७॥

अभ्यासस्येकारान्तादेशः स्यात् श्लौ । पिपर्ति ।

ञिभी भये—भी धातु का अर्थ डरना है ।

लट् में तिप् परे शप् को श्लु, द्वित्व अभ्यासे चर्च, भ को ब, बिभेति । तस् परे बिभी + तस् इस स्थिति में—

भिय इति—हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते, भी धातु को ह्रस्व इकार अन्तादेश हो विकल्प से ।

उक्त स्थिति में हलादि ङित् सार्वधातुक परे प्रस्तुत सूत्र से ईकार को इकारान्तादेश होकर **बिभितः**, अन्तादेश के अभाव पक्ष में **बिभीतः**, अदभ्यस्तात् । यण्—**बिभ्यति । बिभेषि, बिभिथः बिभीथः बिभिथ, बिभीथ । बिभेमि, बिभिवः बिभीवः बिभिमः बिभीमः ।**

लिट् में 'भीह्री—सूत्र से आम्, श्लुवत् कार्य, द्वित्वादि होकर बिभयाम्, आमः, कृ भू अस् का अनुप्रयोग—**बिभयाञ्चकार, बिभयाम्बभूव, बिभयामास,** आदि रूप होंगे ।

आम् के अभाव पक्ष में धातु को द्वित्वादि—**बिभाय, बिभ्यतुः, बिभ्युः । बिभयिथ बिभेथ, बिभ्यथुः बिभ्य, बिभाय, बिभय, बिभ्यिव बिभ्यिम ।** अनिट् होने से केवल गुण होकर लुट् में **भेता** भेतारौ आदि और लृट् में **भेष्यति भेष्यतः** आदि रूप होंगे ।

लोट् में **बिभेतु,** भियोऽन्यतास्याम् से वैकल्पिक इकारान्तादेश होकर **बिभितात् बिभीतात् बिभिताम् बिभीताम् बिभ्यतु । बिभिहि बिभीहि, बिभितात् बिभीतात् बिभितम् बिभीतम्, बिभित बिभीत । बिभयानि बिभयाव बिभयाम,** आट् होने से हलादि के अभाव में इकारान्तादेश न होगा, गुण कर के उत्तम पु० के रूप बनेंगे । लङ् में तिप् सिप् मिप् में गुण, अन्यत्र विकलपतः इकारान्तादेश—**अबिभेत् अबिभिताम् अबिभीताम् अबिभयुः । अबिभेः, अबिभितम् अबिभीतम् अबिभित अबिभीत । अबिभयम् अबिभिव अबिभीव, अबिभिम अबिभीम ।**

(२३८) उदोष्ठ्यपूर्वस्य ।७।१।१०२॥

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋत् तदन्तस्याङ्गस्य उत् स्यात् ।

(२३९) हलि च ।८।२।७७॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि । पिपूर्तः ।पिपुरति । पपार ।

(२४०) शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ।७।४।१२॥

एषां किति लिटि ह्रस्वो वा स्यात् । पप्रतुः ।

(२४१) ऋच्छत्यॄताम् ।७।४।११॥

तौदादिक ऋच्छे ऋ धातो ॠतां च गुणो लिटि । पपरतुः, पपरुः ।

विधिलिङ् में यासुट् के हलादि ङित् सार्वधातुक परे होने से सर्वत्र वैकल्पिक इकारान्तादेश—**विभियात् विभीयात्, विभियाताम् विभीयाताम् विभियुः विभीयुः । विभियाः विभीयाः विभियातम्, विभीयातम्, विभियात विभीयात । विभियाम विभीयाम्, विभियाव विभीयाव, विभियाम विभीयाम,** रूप होंगे ।

आशीलिङ् में भीयात् भीयास्ताम् भीयासुः इत्यादि रूप होंगे ।

लुङ् में सिचि वृद्धिः—से वृद्धि होकर **अभैषीत् अभैष्टाम् अभैषुः अभैषीः अभैष्टम् अभैष्ट । अभैषम् अभैष्व अभैष्म ।** लृङ् में **गुण**—अभेष्यत् अभेष्यताम् आदि रूप बनेंगे ।

ह्री लज्जायाम् ह्री धातु लज्जित होने अर्थ में है—

लट् में पूर्ववत् शप् को श्लु, धातु को द्वित्वादि अभ्यासे चर्च, हकार को झकार झकार को जकार तिप् सिप् मिप् में गुण होकर **जिह्रेति जिह्रीतः**—'जिह्री + अति' इस स्थिति में संयोग पूर्व होने के कारण एरनेकाचः—सूत्र से यण् के अभाव में 'अचिश्नु' से इयङ् होकर **जिह्रियति, जिह्रेषि, जिह्रीथः जिह्रीथ जिह्रेमि जिह्रीवः जिह्रीमः** रूप बनेंगे ।

लिट् में आम् के विकल्प से जिह्रयाञ्चकार और जिह्राय, अनिट् होने से—लुट् में ह्रेता आदि, लृट् में ह्रेष्यति आदि, लोट् में जिह्रेतु । लङ् में अजिह्रेत् । विधि लिङ् में जिह्रियात्, आशीलिङ् में ह्रेयात्, लुङ्—अह्रैषीत, लृङ् में अह्रेष्यत् आदि सभी रूप सामान्य कार्य विधि से बनेंगे ।

पॄ पालनपूरणयोः—पॄ धातु पालन और पूर्ति अर्थ में है ।

यह दीर्घ ऋकारान्त और सेट् धातु है ।

अर्तीति—श्लु के विषय में ऋ और पॄ धातु के अभ्यास को इकार अन्तादेश हो ।

लट् लकार में तिप् शप् को श्लु करने पर 'श्लौ' से धातु को द्वित्व, अभ्यास के पॄ ऋकार के स्थान में प्रस्तुत सूत्र से इकारादेश, रपर, 'पिर् पॄ ति' इस स्थिति में हलादिः शेष से रेफ का लोप, अभ्यासोत्तर ऋकार को सार्वधातुक गुण होकर **पिपर्ति,** '**पॄ पॄ तस्**' इस स्थिति में

(२४२) वृतो वा ।७।२।३८।।

वृङ्‌वृञ्भ्या मृ्दन्ता च्चेटो दीर्घो वा स्यान्नतु लिटि । परीता-परिता । परीष्यति परिष्यति । पिपर्तु । अपिपः अपिपूर्ताम् अपिपरुः । पिपूर्यात् । पूर्यात् । अपारीत् ।

(२४३) सिचि च परस्मैपदेषु ।७।२।४०।।

अत्र इटो न दीर्घः । अपारिष्टाम् । अपरीष्यत् अपरिष्यत् ।

उदोष्ठ्येति—अङ्ग का अवयव, ओष्ठ्यवर्ण जिसके पूर्व में हो ऐसा जो ॠकार तदन्त अंग को उकार अन्तादेश हो ।

हलि चेति—रेफ और वकार जिसके अन्त में हो उस धातु के उपधा इक् को दीर्घ हो हल परे रहते ।

उक्त स्थिति में पहले अभ्यास के ॠ को अर्तीति सूत्र से रपरक इकारान्तादेश, हलादिः शेषः से रेफ का लोप होकर 'पि पॄ तस' इस स्थिति में अपित् सार्वधातुक, के ङित् वद् होने से गुण न होगा, उदोष्ठ्य—सूत्र से ॠकार को रपरक उकार हो जायेगा, क्योंकि यहाँ अंगावयव ओष्ठ्य वर्ण यकार ॠ के पूर्व में है, तब 'पिपुर तस्' इस स्थिति में 'हलिच' सूत्र से रेफान्त धातु की उपधा उकार को दीर्घ होकर **पिपूर्तः** झि को अति होने पर भी उत् आदेश होगा, पर हल—परे न होने से दीर्घ न होगा अतः **पिपुरति** रूप बनेगा । सिप् और मिप् परे गुण, अन्यत्र उदादेश और दीर्घ होकर **पिपर्षि, पिपूर्थः, पिपूर्थ, पिपर्मि, पिपूर्वः, पिपूर्मः ।**

लिट् में तिप् को णल् (अ) वृद्धि होकर **पपार** रूप होगा ।

शृद्ध इति—कित् लिट् परे रहते शृ दृ पृ धातुओं को ह्रस्व विकल्प से हो ।

'प पॄ अतुस्' इस स्थिति में, अपित् होने से, 'असंयोगालिट् कित्' सूत्र से अतुस् आदि कित् होते हैं, अतः कित् प्रत्ययों में सर्वत्र प्रस्तुत सूत्र से ॠकार को वैकल्पिक ह्रस्व, और यण् होकर—पप्रतुः, पप्रुः । पप्रथुः, पप्र, पप्रिव पप्रिम रूप बनेंगे । थल् परे इट् गुण होकर **पपरिथ,** मिप् को णल् करने पर वृद्धि विकल्प से **पपार पपर,** रूप होंगे । ह्रस्व के वैकल्पिक होने से जब कित् प्रत्ययों के परे शॄ दॄ—सूत्र से ह्रस्व न होगा तब—

ऋच्छतीति—तुदादिगण के ऋच्छ् धातु ऋधातु और ॠदन्त धातुओं को गुण हो लिट् परे ।

'प पॄ अतुस्' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से ॠकार को रपरक गुण होकर **पपरतुः, पपरुः । पपरथुः, पपर । पपरिव, पपरिम** रूप होंगे । इस प्रकार तिप् सिप मिप में सामान्य कार्य विधि से एक-एक रूप होगा, शेष कित् प्रत्ययों के परे दो-दो रूप होंगे । यह धातु दीर्घ ॠकारान्त सेट् है अतः 'ऊदृदन्तैः'—आदि कारिका के अनुसार यहाँ नित्य इट् होता है ।

सेट् होने से लुट् और लृट् में भी इट् हो जाता है । इट् होने पर गुण होकर परिता परिष्यति आदि रूप बनते हैं ।

ओहाक् त्यागे ।।५।। जहाति ।

(२४४) जहातेश्च ।६।४।११६।।

इत् वा स्याद् हलादौ क्ङिति सार्वधातुके । जहितः ।

(२४५) ई हल्यघोः ।६।४।११३।।

श्नाऽभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति हलि ।

न तु घोः । जहीतः ।

वृतो वेति—वृङ् और वृञ् तथा दीर्घ ॠकारान्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ विकल्प से हो, किन्तु लिट् परे न हो। लुट् और लृट् में प्रस्तुत सूत्र से इट् को वैकल्पिक दीर्घ होने से, परीता परिता, परीष्यति परिष्यति आदि दो दो रूप होंगे।

लोट् लकार में तिप्, आनि, आव, आम परे तो पित् होने से गुण होगा, ताम् तम् त तात् हि परे उदादेश और 'हलि च' से दीर्घ भी होगा। झि परे अत् हो जाने से हल् परे न मिलने से केवल उत् आदेश होगा दीर्घ न होगा—

पिपर्तु, पिपूर्तात्, पिपूर्ताम्, पिपुरतु । पिपूर्हि, पिपूर्तात्, पिपूर्तम्, पिपूर्त । पिपराणि, पिपराव, पिपराम; रूप बनेंगे।

लङ् लकार में तिप् सिप् और मिप् पर गुण होता है, और इकार लोप होने पर त् स् का तो हलङ यादि लोप हो जाता है और रेफ का विसर्ग होता है, मिप् परे अमादेश होता है। अतः तिप् सिप् परे उभयत्र अपिपः रूप होगा, मिप् परे अपिपरम्। झि परे जुस् और जुसिच से गुण होगा, शेष प्रत्ययों के ङित् होने से गुण न होगा, अपितु उदादेश, और दीर्घ हो जायेगा—

अपिपः, अपिपूर्ताम्, अपिपरुः । अपिपः, अपिपूर्तम्, अपिपूर्त, अपिपरम्, अपि-पूर्व, अपिपूर्म ।

विधिलिङ् में यासुट् के ङित् होने से सर्वत्र उदादेश और दीर्घ—**पिपूर्यात् पिपूर्याताम्, पिपूर्युः । पिपूर्याः, पिपूर्यातम्, पिपूर्यात । पिपूर्याम्, पिपूर्याव, पिपूर्याम ।**

आशीर्लिङ् में भी उदादेश दीर्घ होकर—**पूर्यात्, पूर्यास्ताम्, पूर्यासुः पूर्याः पूर्यास्तम् पूर्यास्त । पूर्यासम् पूर्यास्व पूर्यास्म ।**

लुङ् में सिच् इट् ईट् सलोप, सिचि वृद्धिः से वृद्धि होकर—**अपारीत् अपारिष्टाम् अपारिषुः । अपारीः, अपारिष्टम् अपारिष्ट । अपारिषम् अपारिष्व अपारिष्म ।** लृङ् में इट् होने पर वॄतो वा—से वैकल्पिक दीर्घ होकर—**अपारीष्यत् अपरिष्यत्** आदि दो दो रूप होंगे।

ओहाक् त्यागे—हा धातु छोड़ने अर्थ में है, और यह अनिट् है। लट् में शप् को श्लु, श्लौ से द्वित्वादि होकर तिप् परे **जहाति ।**

जहातेश्चेति—हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते ओहाक् धातु को इकारान्तादेश विकल्प से हो।

'जहा तस्' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से आकार को इकार अन्तादेश होकर जहितः यह रूप होगा। वैकल्पिक होने से जब इकारान्तादेश न होगा, तब—

(२४६) श्नाऽभ्यस्तयोरातः ।६।४।११२।।

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके । जहति । जहौ । हाता । हास्यति । जहातु जहितात् जहीतात् ।

(२४७) आ च हौ ।६।४।११७।।

जहातेर्हौ परे आ स्यात्, चाद् ईदीतौ । जहाहि, जहिहि, जहीहि । अजहात्, अजहुः ।

(२४८) लोपो यि ।६।४।११८।।

जहातेरा लोपो यादौ सार्वधातुके । जह्यात् । ऐलिङि— हेयात् । अहासीत् । अहास्यत् ।

ई हल्यघोरिति—सार्वधातुक कित् ङित् हलादि प्रत्यय परे रहते, श्ना प्रत्यय और अभ्यस्त संज्ञक धातु के अकार को ईकार हो ।

प्रस्तुत सूत्र से अभ्यस्त धातु हा के आकार को ईकार होकर **जहीतः** रूप होगा ।

श्नाभ्यस्तयोरिति—श्ना प्रत्यय और अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार का लोप हो कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते 'जहा अति' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र आकार को लोप होकर **जहति** रूप होगा ।

शेष रूपों में हलादि प्रत्यय परे तो इत, ईत् होंगे और अजादि प्रत्यय परे आकार का लोप होगा— **जहासि, जहिथः जहीथः, जहिथ जहीथ । जहामि, जहिवः जहीवः, जहिमः जहीमः** । ये कार्य केवल पित् भिन्न सार्वधातुक में ही होंगे । लिट् में 'पा' धातु की भांति आत औ णलः—सूत्र से औकार होकर **जहौ जहतुः जहुः, जहिथ जहाथ जहथुः, जह । जहौ जहिव जहिम** । रूप बनेंगे ।

लुट् लृट् में हता हातारौ । हास्यति हास्यतः आदि रूप होंगे । लोट में पूर्ववत् जहातु जहितात् जहीतात् जहिताम् जहीताम् जहतु ।

आ चेति—हि परे रहते हा धातु के आकार को आकार हो और इत् तथा ईत् भी हों—

प्रस्तुत सूत्र से हि प्रत्यय परे जहाहि, जहिहि, जहीहि, जहितात् जहीतात्, जहितम् जहीतम्, जहित जहीत । उत्तम पुरुष में आट् के पित् होने से लोप न होकर सवर्ण दीर्घ होता है, **जहानि, जहाव, जहाम ।**

लङ् में—**अजहात्, अजहिताम् अजहीताम् अजहुः । अजहाः, अजहितम् अजहीतम्, अजहित अजहीत । अजहाम्, अजहिव अजहीव अजहिम अजहीम ।**

लोप इति—यकारादि सार्वधातुक परे हा धातु के आकार का लोप हो ।

विधिलिङ् में 'जहा यात्' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से सर्वत्र आकार को लोप होकर **जह्यात् जह्याताम्, जह्युः, जह्याः, जह्यातम** आदि रूप बनेंगे ।

माङ् माने शब्दे च ।६।।

(२४९) भृञामित् ।७।४।७६।।

भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणा मभ्यासस्य इत् स्यात् श्लौ ।

मिमीते मिमाते मिमते । ममे । माता । मास्यते । मिमीताम् । अमिमीत । मिमीत । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत ।

ओहाङ् गतौ ।। ७।। जिहीते जिहाते जिहते । जहे । हाता । हास्यते । जिहीताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त । अहास्यत ।

आशीर्लिङ् में 'ऐर्लिङि' सूत्र से आकार को एकार होकर **हेयात् हेयास्ताम् हेयासुः** आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् लकार में धातु के आकारान्त होने से 'यमरमेति—सूत्र से सक् और इट् होने पर **अहासीत् अहासिष्टम् अहासिषुः, अहाषीः अहासिष्टम् अहासिष्ट । अहासिषम्, अहासिष्व, अहासिष्म** । लृङ् में **अहास्यत्** आदि रूप होंगे ।

माङ् माने शब्दे च—मा धातु नापना और शब्द करने अर्थ में है । यह ङित् होने सू आत्मने पदी और अनिट् है ।

भृञामिति--भृञ् पालन करना, माङ् नापना, ओहाङ् जाना, इन तीन धातुओं के अभ्यास आकार को इकार हो श्लु के विषय में ।

लट् में तिप् परे शप् को श्लु करने पर, 'श्लौ' से धातु को द्वित्व, प्रकृत सूत्र से अभ्यास आकार को इत् करने पर, अभ्यासोत्तर आकार को 'ईहल्यधोः' सूत्र से ईत् होकर **मिमीते,** हलादि सार्वधातुक न होने से ईत् न होगा, **मिमाते,** 'यहाँ श्नाभ्यसा-योरातः' से अकार लोप हो जाता है । आकार लोप होकर **मिमते, मिमीषे, मिमाथे, मिमीध्वे । मिमे, मिमीवहे, मिमीमहे ।**

लिट् में सामान्य कार्य विधि से —ममे ममाते ममिरे आदि रूप होंगे लुट् में **माता मातारौ** आदि, लृट् में **मास्यते मास्येते** आदि ।

लोट्—**मिमीताम्, मिमाताम् मिमताम् । मिमीष्व, मिमाथाम्, मिमीध्वम् । निमै, मिमावहै,** मिमामहै ।

लङ् में—**अमिमीत अमिमाताम् अमिमत अमिमीथाः, अमिमाथाम् अमि-मीध्वम् । अमिमे अमिमीवहि अमिमीमहि ।**

विधि लिङ् में—**मिमीत, मिमीयाताम् मिमीरन् । मिमीथाः, मिमीयाथाम् मिमीध्वम् । मिमीय, मिमीवहि मिमीमहि ।** आशीर्लिङ् में **मासीष्ट मासीयास्ताम् मासीरन्,** आदि रूप होंगे । लुङ् में **अमास्त अमासाताम् अमासत** आदि रूप बनेंगे । लृङ् में **अमास्यत** आदि रूप होंगे ।

ओहाङ् गतौ—हा धातु का अर्थ 'जाना' है, अनिट् आत्मनेपदी है ।

लट् में 'भृञानित्, ईहल्यधोः—**जिहीते**, आकार लोप--**जिहाते, जिहते**, **जिहीषे, जिहाथे, जिहीध्वे**, **जिहे, जिहीवहे, जिहीमहे ।**

डुभृञ् धारण पोषणयोः ॥८॥ बिभर्ति, बिभृतः, बिभ्रति । बिभृते, बिभ्राते, बिभ्रते । बिभराञ्चकार । बभार, बभर्थ, बभृव । बिभराञ्चक्रे, बभ्रे ।

भर्ता । भरिष्यति भरिष्यते । बिभर्तु, बिभराणि, बिभृताम् । अबिभः, अबिभृताम्, अबिभरुः । अबिभृत । बिभृयात् । बिभ्रीत । भ्रियात्, भृषीष्ट । अभार्षीत्, अभृत । अभरिष्यत् अभरिष्यत ।

लिट् में **जहे जहाते जहिरे जहिषे जहाथे जहिध्वे जहे जहिवहे जहिमहे ।** लुट्—**हाता,** लृट् हास्यते आदि ।

लोट् लकार में—**जिहीताम् जिहाताम् जिहताम् जिहीष्व जिहाथाम् जिहीध्वम्, जिहै जिहावहै जिहामहै ।**

उत्तम पुरुष में आट् के पित् होने से लोप न होकर सवर्ण दीर्घ होता है । इट् प्रत्यय को एत्व करने पर आ+ए=ऐ वृद्धि होती है ।

लङ् में—**अजिहात अजिहाताम् अजिहत अजिहीथाः अजिहाथाम् अजिहीध्वम् अजिहि अजिहीवहि, महि ।**

विधिलिङ्—**जिहीत जिहीयाताम् जिहीरन् जिहीथाः जिहीयाथाम् जिहीध्वम् जिहीय जिहीवहि जिहीमहि ।** आशीर्लिङ् में **हासीष्ट हासीयास्ताम्** आदि रूप होंगे ।

लुङ् में अहास्त अहासाताम् अहासत । अहास्थाः अहासाथाम्, अहाध्वम्, अहासि अहास्वहि अहास्महि ।

अनिट् होने, इडभाव, दीर्घ होने से 'ह्रस्वादङ्गात्' से सिच् के लोप का अभाव रहेगा । लृङ् में अहास्यत आदि रूप होंगे ।

डुभृञ् धारण पोषणयोः—भृ धातु का अर्थ धारण करना और पोषण करना है । ञित् होने से उभयपदी और अनिट् धातु है । सार्वधातुक लकारों में भृञामित् सूत्र से अभ्यास को इकार, पित् प्रत्ययों में गुण आदि सामान्य कार्य होते हैं ।

लट् में श्लु होने से द्वित्व अभ्यास कार्य अभ्यासे चर्च, गुण—**बिभर्ति,** अपित् ङित् होने से गुणाभाव—**बिभृतः,** ङित्त्वात् गुणाभाव, यण्—**बिभ्रति । बिभर्षि, बिभृथः बिभृथ, बिभर्मि बिभृवः बिभृमः । बिभृते, बिभ्राते बिभ्रते, बिभृषे बिभ्राथे बिभृध्वे, बिभ्रे बिभृवहे बिभृमहे ।**

लिट् में 'भीह्रीभृहुवांश्लुवच्च" सूत्र से आम् तथा श्लुवत् कार्य होने से बिभराम्, लिट् लोप, लिट् परक कृ भू अस् का प्रयोग—बिभराञ्चकार बिभराञ्चक्रे आदि रूप बनेंगे । आम् के अभाव पक्ष में भृ को द्वित्वादि कार्य 'बभृ+अ' वृद्धि—**बभार बभ्रतुः, बभ्रुः ।**

कृ सृ भृ—सूत्र से सर्वथा इट् का निषेध होने से **बभर्थ, बभ्रथुः, बभ्र, बभार** बभर, **बभृव बभृम ।** आ० प० में **बभ्रे बभ्राते बभ्रिरे, बभृषे बभ्राथे बभृध्वे, बभ्रे, बभृवहे** बभृमहे ।

डुदाञ् दाने ।।९।। ददाति, दत्तः, ददति । दत्ते, ददाते, ददते । ददौ, ददे । दातासि । दातासे । दास्यति । दास्यते । ददातु ।

(२५०) दाधाघ्वदाप् ।१।१।२०।।

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युः, दाप् दैपौ बिना ।

ध्वसोः—इत्येत्त्वम्-देहि । दत्तम् । अददात् । अदत्त । दद्यात् । ददीत । देयात् । दासीष्ट । अदात्, अदाताम्, अदुः ।

लुट् में भर्तासि भर्तासे, लृट्—ऋद्धनोः स्ये—भरिष्यति, भरिष्यते । लोट्—बिभर्तु बिभृतात् बिभृताम् बिभ्रतु । बिभृहि, बिभृतात् बिभृतम् बिभृत । बिभराणि बिभराव बिभराम । बिभृताम् बिभ्राताम् बिभ्रताम् बिभृष्व, बिभ्राथाम्, बिभृध्वम् । बिभरै बिभरावहै बिभरावहै । यहाँ आट् के पित् होने से गुण तथा आ+ए=ऐ वृद्धिः ।

लङ् में तिप् सिप् परे पित् होने से गुण, इकार लोप, अपृक्त हल त् स् का हल्-ङ्यादि लोप, रेफ को विसर्ग, झि को जुस्, 'जुसि च' से गुण, अन्यत्र ङित् होने से गुण न होगा—अबिभः, अबिभृताम्, अबिभरुः । अबिभः, अबिभृतम् अबिभृत । अबिभरम् अबिभृव अबिभृम । अबिभृत, अबिभ्राताम् आदि आत्मने पद के रूप होंगे । यथा—अबिभ्रत । अबिभृथाः अबिभ्राथाम् अबिभृध्वम्, अबिभ्रि अबिभृवहि, महि । विधिलिङ् परस्मैपद में बिभृयात् बिभृयाताम् बिभृयुः आदि रूप बनेंगे ।

आत्मनेपद में सीयुट् सकार लोप, बिभ्रीत, बिभ्रीयाताम्, बिभ्रीरन् आदि रूप होंगे ।

आशीर्लिङ् परस्मैपद में आर्धधातुक होने से 'रिङ् शयग् लिङ्क्षु' सूत्र से ऋ को रिङ्—भ्रियात् भ्रियास्ताम् भ्रियासुः आदि रूप । आत्मनेपद में सीयुट् के कित् होने से 'उश्च' से गुण निषेध—भृषीष्ट भृषीयास्ताम् भृषीरन् आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् में अनिट् होने इडभाव, सिच् ईट्, सिचि वृद्धिः—सूत्र से वृद्धि—अभार्षीत् अभार्ष्टाम् अभार्षुः अभार्षीः अभार्ष्टम् अभार्ष्ट, अभार्षम् अभार्ष्व अभार्ष्म । आत्मनेपद के झलादि त थास् ध्वम् प्रत्ययों के परे ह्रस्वादङ्गात् सूत्र से सिच् लोप—अभृत अभृषाताम् अभृषत । अभृथाः अभृषाथाम्, अभृध्वम् अभृषि, अभृष्वहि अभृष्महि। लृङ् में ऋद्धनोः स्ये—इट्-अभरिष्यत् अभरिष्यत आदि रूप होंगे ।

डुदाञ् दाने दा धातु देने अर्थ में है, उभय पदी और अनिट् है । लट् में शप् को श्लु, धातु को द्वित्व अभ्यास को ह्रस्व—ददाति, तस् परे ङित् होने से अभ्यासोत्तर आकार का "श्नाभ्यस्तयोः" सूत्र से लोप, चर्त्वेन तकार—दत्तः झि को अत् करने पर श्नाभ्यस्तयोः से आकार लोप ददति, ददासि, दत्थः, दत्थ, ददामि दद्वः दद्मः । आत्मनेपद में अपित् प्रत्ययों के ङित् होने से आकार लोप—दत्ते ददाते ददते दत्से ददाथे, दद्ध्वे, ददे दद्वहे दद्महे ।

(२५१) स्थाघ्वोरिच्च ।१।२।१७।।

अनयोरिदन्तादेशः, सिच्च कित् स्याद् आत्मने पदे। अदित। अदास्यत् अदास्यत।

डुधाञ् धारणपोषणयोः ।।१०।। दधाति।

लुट् में दातासि दातासे, लृट् में **दास्यति दास्यते** रूप होंगे। लिट् में आत् औ णलः—**ददौ ददतुः ददुः ददिथ ददाथ ददथुः दद, ददौ ददिव ददिम**। थल् में भारद्वाज नियमतः विकल्प से, अन्यत्र क्रादि नियम से नित्य इट् होता है, और आतो लोप इटि च से आकार लोप होता है।

लोट् में **ददातु दत्तात् दत्ताम् ददतु**, सामान्य कार्य विधि के अनुसार रूप बनेंगे।

दाधेति—दा रूप और धा रूप धातुओं की घु संज्ञा हो, दाप् और दैप् धातुओं को छोड़कर।

दा रूप—डुदाञ् दाने (जुहोत्यादि) दाण् दाने (भ्वादि) दो अवखण्डने (दिवादि) देङ् रक्षणे (भ्वादि) धा रूप—डुधाञ् धारणपोषणयोः (जुहोत्यादि) धेट् पाने (भ्वादि) ये छः धातुयें हैं, इनकी प्रस्तुत सूत्र से घु संज्ञा होती है, यद्यपि दाप् और दैप् धातुयें भी दा रूप हैं, तथापि प्रस्तुत सूत्र द्वारा उनकी घु-संज्ञा का निषेध किया गया है, उक्त छः धातु ही घु संज्ञक हैं, अतः डुदाञ् दाने धातु भी घु संज्ञक है।

इन धातुओं की घु संज्ञा करने का फल, "गातिस्था—सूत्र से सिच् का लोप, 'एलिङि' सूत्र से कित् लिङ् में एत्व, "घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च" सूत्र से हि परे एत्त्व और अभ्यासलोप, तथा "घुमास्था—सूत्र से कित् प्रत्यय परे ईकारादेश है।

इस प्रकार घुसंज्ञक दा धातु से म० पु० एकवचन में सि को हि करने पर 'ददा हि' इस स्थिति में 'घ्वसोः' सूत्र से आकार को एत्व और अभ्यास के दकार का लोप होकर **देहि** रूप होगा—

इसके शेष रूप—**दत्तात्, दत्तम्, दत्त। ददानि, ददाव, ददाम,** होंगे। आत्मनेपद में कित् प्रत्यय परे होने से 'श्नभ्यस्तयोरातः' सूत्र से आकार लोप—**दत्ताम् ददाताम् ददताम्। दत्स्व ददाथाम् दद्ध्वम्। ददै, ददावहै, ददामहै।**

लङ् लकार में, **अददात्, अदत्ताम्**—'अददा झि' इस स्थिति में "सिजभ्यस्त—सूत्र से झि को जुस्, और 'श्नाभ्यस्तयोः—सूत्र से आकार लोप—**अददुः। अददाः, अदत्तम्, अदत्त। अददम्, अदद्व, अदद्म**। आत्मनेपद में सामान्य कार्य विधि से—**अदत्त, अददाताम्, अददत। अदत्थाः, अददाथाम्, अदद्ध्वम्, अददि, अदद्वहि, महि।** विधिलिङ् परस्मैपद में यासुट् के ङित् होने से, 'श्नाभ्यस्तयोः' सूत्र से आकार लोप—**दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः, दद्याः, दद्यातम्, दद्यात। दद्याम् दद्याव दद्याम।** आत्मनेपद में आकार लोप—**ददीत ददीयाताम् ददीरन् ददीथाः ददीयाथाम् ददीध्वम्। ददीय, ददीवहि ददीमहि।**

(२५२) **दधस्तथोश्च ।८।२।३८॥**

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो वशो भष् स्यात्, तयोः परयोः । स्ध्वोश्च परतः ।

धत्तः, दधति । दधासि, धत्थः, धत्थ । धत्ते, दधाते, दधते । धत्से, धद्ध्वे । 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च'—धेहि ।

अदधात् । अधत्त । दध्यात् दधीत । धेयात्, धासीष्ट । अधात् । अधित । अधास्यत् अधास्यत ।

णिजिर् शौचपोषणयोः ॥११॥

(वा) इर इत्संज्ञा वाच्या ।

आशीलिङ् में घुसंज्ञक दा धातु के आकार को 'एर्लिङि' सूत्र से एत्व होकर—**देयात् देयास्ताम् देयासुः** आदि रूप बनेंगे । आत्मनेपद में सामान्य कार्य विधि से—**दासीष्ट, दासीयास्ताम् दासीरन्, दासीष्ठाः, दासीयास्थाम्, दासीध्वम् । दासीय, दासीवहि, दासीमहि ।** लुङ् परस्मैपद में, धातु के अनिट् होने से इडभाव, गातिस्था—सूत्र से सिच् लोप होकर **अदात्, अदाताम्**—झि परे, सिच् लोप, "आतः" सूत्र से झि को जुस्, 'उस्यपदान्तात्' सूत्र से पररूप होकर **अदुः, अदाः अदातम् अदात । अदाम्, अदाव, अदाम,** रूप बनेंगे ।

स्थाघ्वोरिच्चेति—आत्मनेपद प्रत्यय परे स्था और घु संज्ञक धातुओं के आकार को इकारान्तादेश हो और सिच् को कित् हो । आत्मनेपद में 'अदा स् त' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से धातु के आकार को इकार, और सिच् को कित् होने पर 'त' इस झल् के परे होने से 'ह्रस्वादङ्गात्' सूत्र से सिच् का लोप होकर **अदित** (यहाँ अपित प्रत्यय के ङित् होने से इकार को गुण नहीं होता) । 'अदास् आताम्' इस स्थिति में झल् प्रत्यय परे न होने से सिच् का लोप नहीं होता, पर सिच् कित् होने से इकार को गुण निषेध होता है **आदिषाताम् आदिषत । अदिथाः अदिषाथाम् अदिध्वम् । अदिषि अदिष्वहि अदिष्महि ।** यहाँ सर्वत्र सिच् के कित् होने से गुण निषेध होता है, और आत्मनेपद होने से आकार को इकार होता है ।

लृङ् लकार में अदास्यत् अदास्यत आदि रूप बनेंगे ।

डुधाञ् धारणपोषणयोः—धा धातु का अर्थ धारण और पोषण करना है, यह भी अनिट् और उभय पदी है । लट् में शप् को श्लु, 'श्लौ' से धातु को द्वित्व, ह्रस्व, "अभ्यासे चर्च' से अभ्यास धकार को दकार—**दधाति**—

दधस्तथोश्चेति—कृतद्वित्व झषन्त धा धातु के वश् को भष् हो, तकार थकार सकार और ध्व परे रहते—

लट् लकार के द्विवचन में 'दधा तस्' इस स्थिति में, 'श्नाभ्यस्तयोः—सूत्र से अभ्यासोत्तरवर्ती धा के आकार का लोप होने पर द्विरुक्त झषन्त धा धातु के वश अर्थात् अभ्यास दकार को भष्भावेन धकार, और उत्तरवर्ती धकार को चर्त्वेन तकार होकर **धत्तः** रूप बनता है ।

(२५३) णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ।७।४।७५।।

णिज् विज् विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ । नेनेक्ति, नेनिक्तः, नेनिजति । निनेज । निनिजे । नेक्ता । नेक्ष्यति नेक्ष्यते । नेनेक्तु, नेनिग्ध ।

इस धातु के लट् लङ् लोट् लकारों में इसी प्रकार त, थ, स, ध्व प्रत्यय परे 'श्नाभ्यस्तयोरातः । सूत्र से आकार लोप होने पर 'दधस्तथोश्च सूत्र से अभ्यास दकार को धकार हो जाता है। विधिलिङ् में यासुट् के व्यवधान के कारण त थ स ध्व, न मिलने से यह सूत्र प्रवृत्त नहीं होता। अन्य लकारों में श्लु न होने से द्वित्वाभाव में इसकी प्रवृत्ति नहीं होती। झि परे झ को अत् आकार लोप—**दधति। दधासि,** पूर्ववत्—धत्थः धत्थ (आकार लोप भष्भाव चर्त्व) **दधामि** आदि रूप दा धातु के समान बनेंगे। आत्मने पद में आकार लोप, भष्भाव चर्त्व—**धत्ते, दधाते दधते धत्से दधाथे धद्ध्वे** आदि रूप होंगे।

वस्तुतः दा और धा धातु के रूपों में और सिद्धि प्रकार में केवल भष्भाव का ही अन्तर है, सभी रूप 'दा' के समान ही बनते हैं। यथा—**दधौ, दधे, धातासि, धातासे, धास्यति, धास्यते**। लोट्—दधातु धत्तात् धत्ताम्—'दधा हि' इस स्थिति में घ्वसोः—सूत्र से एत्व अभ्यास लोप—धेहि। लङ् में अदधात्, अधत्त। दध्यात्, दधीत। ऐलिङि—धेयात्, धासीष्ट। अधात्—अधित। अधास्यत् अधास्यत।

णिजिर् शौचपोषणयोः—यह धातु शुद्ध करने एवं पोषण करने अर्थ में है।

(वा०) इर् इत्संज्ञा वाच्या—अर्थात् धातु के इर् की इत्संज्ञा हो, णिजिर् धातु के इर् की इत्संज्ञा इस वार्तिक से होगी, जिसका फल लुङ् लकार में 'इरितो वा' सूत्र से च्लि को अङ् करना है। णिज् शेष रहने पर 'णो नः' सूत्र से णकार का नकार होकर धातु का स्वरूप 'निज्' शेष रहता है।

निजामिति—निज् विज् और विष् धातुओं के अभ्यास को गुण हो श्लु के विषय में—

श्लु को विषय में कहने से यह सूत्र सभी सार्व धातुक लकारों लट् लोट् लङ् विधिलिङ् में प्रवृत्त होगा फलतः सर्वत्र अभ्यास को गुण हो जायेगा। अभ्यासोत्तर नि को यथास्थान लघूपध गुण होगा।

लट् लकार—तिप् शप् को श्लु, 'श्लौ' से धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य—'नि निज् ति' अभ्यासोत्तर नि को लघूपध गुण, 'नि नेज् ति' इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से अभ्यास के इकार को गुण, 'चोः कुः' जकार को गकार और गकार को चर्त्वेन ककार **नेनेक्ति,** तस् परे अपित् सार्वधातुक के ङित् वत् होने से लघूपध गुण न होगा, अभ्यास इकार को प्रस्तुत सूत्र से गुण होकर नेनिक्तः, झि को अति करने पर **नेनिजति**, सिप् परे 'नेनेज् सि' इस स्थिति में ज् को ग्, ग् को क्, षत्व, क्षत्व—**नेनेक्षि, नेनिक्थः नेनिक्थ, नेनेज्मि, नेनिज्वः, नेनिज्मः**। आत्मने पद के प्रत्ययों के अपित् ङित् होने से

(२५४) नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ।७।३।८७।।

लघूपधगुणो न स्यात् । नेनिजानि, नेनिक्ताम् । अनेनेक् अनेनिक्ताम्, अनेनिजुः अनेनिजम् । अनेनिक्त । नेनिज्यात्, नेनिजीत । निज्यात्, निक्षीष्ट ।

(२५५) इरितो वा ।३।१।५७।।

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा स्यात् परस्मैपदेषु । अनिजत् अनैक्षीत् । अनिक्त । अनेक्ष्यत् अनेक्ष्यत ।

। इति जुहोत्यादयः ।

कहीं भी लघूपध गुण न होगा— कुत्व चर्त्व होकर— **नेनिक्ते, निनिजाते, नेनिजते,** पूर्ववत् से परे कुत्व चर्त्व षत्व क्षत्व होकर **नेनिक्षे, नेनिजाथे, नेनिग्ध्वे । नेनिजे, नेनिज्वहे, नेनिज्महे ।**

लिट् में सामान्य कार्य विधि से धातु के अनिट् होने से क्रादि नियम से इट् होगा—**निनेज निनिजतुः निनिजुः । निनेजिथ, निनिजथुः निनिज, निनेज निनिज निनिजिव निनिजिम ।** आत्मने पद में—**निनिजे निनिजाते निनिजिरे निनिजिषे निनिजाथे निनिजिध्वे, निनिजे निनिजिवहे निनिजिमहे ।** अनिट् होने से इडभाव, गुण, कुत्व चर्त्व होकर लुट् लकार में **नेक्तासि, नेक्तासे,** लृट् में कुत्व, चर्त्व, षत्व, क्षत्व होकर **नेक्ष्यति, नेक्ष्यते** आदि रूप होंगे ।

लोट् में—अभ्यास गुण । लघूपध गुण कुत्व चर्त्व होकर—**नेनेक्तु – नेनिक्तात् नेनिक्ताम् नेनिजतु**—हि परे 'नेनिज् हि' झलन्त होने से हि को धि कुत्व—**नेनिग्धि निनिक्तात् नेनिक्तम् नेनिक्त ।**

नाभ्यस्तस्येति--अजादि पित् सार्वधातुक परे रहते अभ्यस्त धातु को लघूपध गुण न हो ।

उ० पु० में 'नेनिज् आ (आट्) नि । इस स्थिति में अजादि पित् सार्वधातुक परे प्रस्तुत सूत्र से लघूपध गुण का निषेध होने से **नेनिजानि नेनिजाव नेनिजाम् ।** आत्मने पद में— **नेनिक्ताम् नेनिजाताम् नेनिजताम् । नेनिक्ष्व नेनिजाथाम् नेनिग्ध्वम् नेनिजै, नेनिजावहै, नेनिजामहै ।**

लङ् लकार में अजादि पित् सार्वधातुक परे तो लघूपध गुण का प्रस्तुत सूत्र से निषेध होगा जैसे 'अनेनिजम्' में, अन्यत्र अपित् होने से ङित् वत् होने के कारण गुण न होगा, तिप् सिप् परे इकार लोप और तकार सकार का हल्ङ्यादि लोप, अभ्यास इकार को लघूपध गुण, कुत्व और चर्त्व होकर—**अनेनेक् अनेनिक्ताम् अनेनिजुः अनेनेक् अनेनिक्ताम् अनेनिक्त अनेनिजम् अनेनिज्व अनेनिज्म ।** आत्मनेपद में अभ्यास इकार को सर्वत्र गुण, अपित् होने से लघूपध गुण न होगा—**अनेनिक्त, अनेनिजाताम् अनेनिजत अनेनिक्थाः अनेनिजाथाम्, अनेनिग्ध्वम् अनेनिजि अनेनिज्वहि अनेनिज्महि ।** विधि लिङ् में परस्मैपद में यासुट् के ङित् होने से लघूपध गुण न होगा, आत्मनेपद में सीयुट् के सकार का लोप होने पर अजादि पित् सार्वधातुक परे नाभ्य-

स्तस्येति सूत्र से लघूपध गुण का निषेध हो जायेगा—अतः सामान्य कार्य विधि से—**नेनिज्यात् नेनिज्याताम् नेनिज्युः नेनिज्याः नेनिज्यातम् नेनिज्यात, नेनिज्याम् नेनिज्याव नेनिज्याम । नेनिजीत नेनिजीयाताम् नेनिजीरन्, नेनिजीथाः नेनिजीयाथाम् नेनिजीध्वम् । नेनिजीय, नेनिजीवहि नेनिजीमहि ।**

आशीर्लिङ् में परस्मैपद में यासुट् के ङित् होने से, आत्मनेपद में 'लिङ् सिचावात्मनेपदेषु' से सीयुट् के कित् होने से कहीं भी लघूपध गुण न होगा, आर्धधातुक लकार होने से अभ्यास इकार को भी कहीं गुण न होगा—**निज्यात् निज्यास्ताम् निज्यासुः** आदि रूप होंगे ।

आत्मनेपद में कुत्व चर्त्व षत्व क्षत्व होकर **निक्षीष्ट, निक्षीयास्ताम् निक्षीरन् निक्षीष्ठाः, निक्षीयास्थाम् निक्षीध्वम् निक्षीय निक्षीवहि निक्षीमहि ।**

इरितो वा इति—परस्मैपद में इरित् धातु से परे च्लि को अङ् हो विकल्प से ।

अङ् के ङित् होने से गुण वृद्धि का निषेध होगा, अङ् के अभाव पक्ष में सिच् होने पर "वदव्रज हलन्तस्याचः" से वृद्धि, कुत्व चर्त्व षत्व क्षत्व होगा । झलादि प्रत्ययों के परे 'झलो झलि' से सकार लोप होकर कुत्व चर्त्व होगा । अङ् पक्ष में **अनिजत् अनिजाताम् अनिजन्, अनिजः अनिजतम् अनिजत । अनिजम् अनिजाव अनिजाम ।** अङभाव पक्ष में **अनैक्षीत् अनैक्ताम् अनैक्षुः । अनैक्षीः, अनैक्तम् अनैक्त अनैक्षम् अनैक्ष्व अनैक्ष्म ।**

आत्मनेपद में **अनिक्त अनिक्षाताम् अनिक्षत आनिक्थाः अनिक्षाथाम् अनिग्ध्वम् अनिक्षि अनिक्ष्वहि अनिक्ष्महि ।** लृङ् में अनेक्ष्यत् अनेक्ष्यत आदि रूप होंगे ।

इति जुहोत्यादिगणः

अथ दिवादिगणः

दिवु क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मदस्वप्न कान्तिगतिषु ॥१॥

(२५६) दिवादिभ्यः श्यन् ।३।१।६९॥

हलि चेति—दीर्घः—दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् ।

एवं षिवु तन्तुसन्ताने ॥२॥ नृती गात्र विक्षेपे ॥३॥

नृत्यति । ननर्त । नर्तिता ।

दिवु— दिव् धातु क्रीड़ा, विजयेच्छा, व्यवहार, चमकना, स्तुति करना, प्रसन्न होना, मस्त होना, सोना इच्छा करना, जाना अर्थों में है । यह सेट् परस्मैपदी है ।

दिवादिभ्य इति—दिवादि गण पठित धातुओं से श्यन् प्रत्यय हो । यह सूत्र शप् प्रत्यय का अपवाद है ।

श्यन् प्रत्यय के शकार नकार की इत् संज्ञा हो जाती है, केवल 'य' शेष रहता है, अतएव यह प्रत्यय शित् होने से सार्वधातुक संज्ञक है ।

दिव् धातु से लट् लकार में तिप् परे प्रस्तुत सूत्र से श्यन् (य्) प्रत्यय, यकार हल् परे होने से वकारान्त धातु की उपधा इकार को 'हलि च' सूत्र से दीर्घ होकर **दीव्यति,** इसी प्रकार अन्यत्र भी श्यन् और दीर्घ होकर **दीव्यतः, दीव्यन्ति** आदि रूप बनेंगे ।

लिट् में धातु के सेट् होने वलादि आर्धधातुक परे सर्वत्र इट् होकर **दिदेव दिदिवतुः दिदिवुः दिदेविथ दिदिवथुः, दिदिव, दिदेव दिदिव दिदिविव दिदिविम ।**

लुट् लृट् में इट् तास् स्य आदि होकर **देविता देवितारौ देवितारः,** आदि तथा **देविष्यति देविष्यतः देविष्यन्ति** आदि रूप होंगे । लोट् में **दीव्यतु दीव्यतात् दीव्यताम् दीव्यन्तु**—अकार से परे होने से 'अतो हेः' सूत्र से हि को लोप—**दीव्य दीव्यतात् दीव्यतम् दीव्यत दीव्यानि दीव्याव दीव्याम ।** लङ् में श्यन् दीर्घ होकर **अदीव्यत् अदीव्यताम् अदीव्यन्** आदि, विधिलिङ् में—अतो येयः—**दीव्येत् दीव्येताम् दीव्येयुः**

(२५७) सेऽसिचि कृत चृत छृत तृद नृतः ।७।२।५७।।

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड् वा ।

नर्तिष्यति । नर्त्स्यति । नृत्यतु । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् ।

अनर्तीत् । अनर्तिष्यत् अनर्त्स्यत् ।

त्रसी उद्वेगे ।।४।। वा भ्राश-इति श्यन् वा—त्रस्यति त्रसति ।

(२५८) वा जॄ भ्रमुत्रसाम् ।६।४।१२४।।

एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा ।

त्रेसतुः, तत्रसतुः । त्रेसिथ तत्रसिथ । त्रसिता ।

आदि । आशीलिङ् में **दीव्यात् दीव्यास्ताम् दीव्यासुः** आदि । लुङ् में 'अ दिव् इ स ई त्' इस स्थिति में इट् ईट्—सलोप, गुण—**अदेवीत् अदेविष्टाम् अदेविषुः अदेवीः अदेविष्टम् अदेविष्ट अदेविषम् अदेविष्व अदेविष्म ।**

लृङ् लकार अदेविष्यत् अदेविष्यताम् अदेविष्यन् आदि रूप होंगे ।

षिवु तन्तुसन्ताने—धात्वादि ष को स हो जायेगा । इसका अर्थ सीना पिरोना आदि है ।

इसके सभी रूप दिव् धातु के समान **सीव्यति । सिसेव । सेविता । सेविष्यति । सीव्यतु । असीव्यत् । सीव्येत् । सीव्यात् । असेवीत् । असेविष्यत् ।** होते हैं, सिद्धि प्रकार भी वही है ।

नृती गात्र विक्षेपे—नृत् धातु का अर्थ नाचना है ।

दिव् षिव् नृत इन धातुओं में लघूपध गुण इसलिए नहीं होता क्योंकि इन सब से श्यन् होता है, और यह श्यन् अपित् सार्वधातुक है अतः ङित्वत् होने से कहीं भी सार्वधातुक लकारों में गुण नहीं होता ।

लट् में श्यन् होकर **नृत्यति नृत्यतः नृत्यन्ति** आदि रूप बनेंगे । लिट् में अपित् लिट् 'असंयोगाल्लिट् कित्' से कित् होने से गुण नहीं होता, पित् में गुण होता है—**ननर्त, ननृततुः, ननृतुः, ननर्तिथ** (सेट् होने से वलादि आर्धधातुक को नित्य इट्) **ननृतथुः ननृत ननर्त ननृतिव ननृतिम ।** लुट् में **नर्तिता नर्तितारौ नर्तितारः** आदि रूप होंगे ।

सेऽसिचीति—कृत चृत छृत तृद नृत इन धातुओं से परे सिच् भिन्न सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय को इट् विकल्पतः हो । (सिच् भिन्न सकारादि प्रत्यय केवल 'स्य' है अतः लृट् और लृङ् में ही यह इट् विकल्प होगा) ।

लृट् में प्रस्तुत सूत्र से इट् पक्ष में नर्तिष्यति नर्तिष्यतः नर्तिष्यन्ति, आदि और इडभाव पक्ष में नर्त्स्यति, नर्त्स्यतः नर्त्स्यन्ति, आदि रूप होंगे । लोट् लङ् विधिलिङ् और आशीलिङ् में क्रमशः **नृत्यतु । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात्** आदि रूप बनेगा ।

शो तनूकरणे ॥५॥

(२५९) ओतः श्यनि ।७।३।७१॥

लोपः स्यात् श्यनि । श्यति, श्यतः, श्यन्ति । शशौ, शशतुः । शाता । शास्यति ।

(२६०) विभाषा घ्राधेट् शाच्छासः ।२।४।७८॥

एभ्यः सिचो लुग्वा स्यात् परस्मैपदे परे । अशात्, अशाताम् अशुः । इट् सकौ—अशासीत् अशासिष्टाम् ।

छो छेदने ॥६॥ छ्यति । षो अन्तकर्मणि ॥७॥ स्यति । ससौ । दो अवखण्डने ॥८॥ द्यति । ददौ । देयात् । अदात् ।

लुङ् में 'अ नृत् इ स् ईत्' इस स्थिति में इट ईट्—सलोप, गुण—अनर्तीत् **अनर्तिष्टाम् अनर्तिषुः । अनर्तीः अनर्तिष्टम् अनर्तिष्ट । अनर्तिषम् अनर्तिष्व अनर्तिष्म ।**

लृङ् "सेऽसिचीति" सूत्र से इट् पक्ष में अनर्तिष्यत्, इडभाव पक्ष में अनर्त्स्यत् आदि रूप होंगे ।

त्रसी उद्वेगे—त्रस् धातु डरने या घबड़ाने अर्थ में है ।

इस धातु के सार्वधातुक—लट् लोट् लङ् विधिलिङ् लकारों में 'वा भ्राशभ्लाश भ्रमु क्रमु क्लमु त्रसित्रुटि लषः' सूत्र से श्यन् प्रत्यय विकल्पतः होता है, श्यन् के अभाव पक्ष शप् प्रत्यय होता है, श्यन् में य शेष रहता है, और शप् में 'अ' अतः इन लकारों में सर्वत्र दो-दो रूप होंगे ।

लट् में त्रस्यति त्रसति आदि रूप होंगे ।

लिट् में धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य उपधा वृद्धि होकर **तत्रास** ।

वा जॄ इति—कित् लिट् और सेट् थल परे रहते जॄ, भ्रमु, और त्रस् धातु से एत्व और अभ्यास का लोप विकल्प से हो ।

यहाँ इन धातुओं में संयोग होने के कारण 'अत एक हल्मध्ये—सूत्र से एत्वाभ्यास लोप प्राप्त नहीं था अतः इस सूत्र द्वारा विकल्पतः विधान किया गया है । अप्राप्त में विकल्पतः विधान करने से यह 'अप्राप्त विभाषा' अतुस् उस्, अथुस्, अ, परे कित् लिट होने से थल् व म परे हैं । सेट् होने से विकल्पतः प्रस्तुत सूत्र से एत्वाभ्यास लोप होने से दो-दो रूप होंगे, उ० पु० एकवचन में 'णलुत्तमो वा' के विकल्प से दो रूप होंगे, केवल प्र० पु० एकवचन में एक रूप होगा—

लिट्—**तत्रास, त्रेसतुः तत्रसतुः । त्रेसुः तत्रसुः । त्रेसिथ तत्रसिथ, त्रेसथुः तत्रसथुः, त्रेस तत्रस । तत्रास तत्रस, त्रेसिव तत्रसिव, त्रेसिम तत्रसिम ।**

सेट् होने से लुट् और लृट् में क्रमशः त्रसिता त्रसिष्यति आदि । लोट् में श्यन् विकल्प से—त्रस्यतु त्रसतु आदि, लङ् में भी अत्रस्यत् अत्रसत्, विधिलिङ्—त्रस्येत् त्रसेत्, आशीर्लिङ् त्रस्यात् । लुङ्—सिच् इट् ईट् सकार लोप, अतोहलादेरित्ति

वैकल्पिक वृद्धि होकर अत्रासीत् और अत्रसीत् रूप होंगे। लृङ् में अत्रसिष्यति आदि रूप बनेंगे।

शो तनूकरणे—शो धातु पतला करना या कम करना अर्थ में है।

ओत इति—श्यन् प्रत्यय परे रहते ओकार का लोप हो प्रस्तुत सूत्र से, श्यन् प्रत्यय परे अर्थात् चारों ही सार्वधातुक लकारों में ओकारान्त धातुओं के ओकार का लोप हो जायेगा।

शो धातु से लट् लकार में प्रस्तुत सूत्र से श्यन् प्रत्यय होने पर ओकार का लोप होकर—**श्यति, श्यतः, श्यन्ति** आदि रूप बनेंगे।

लिट् लकार में 'आदेच उपदेशेऽशिति' सूत्र से ओकार का आकार होने पर यह धातु आकारान्त बन जायेगा अतः इसके रूप पा आदि आकारान्त धातुओं के समान बनेंगे। लिट् के अतिरिक्त अन्य सभी आर्धधातुक लकारों में उक्त सूत्र से यह धातु आकारान्त हो जाता है, अतः इन लकारों में भी इसके रूप आकारान्त धातुओं जैसे बनेंगे—

लिट् **शशौ, शशतुः, शशुः। शशिथ शशाथ** (अनिट् धातु होने से थल् परे विकल्पतः इट् होगा) **शशथुः, शश, शशौ शशिव, शशिम**। लुट् में शाता, लृट् में शास्यति आदि, लोट् में ओकार लोप—**श्यतु, श्यतात्, श्यताम्, श्यन्तु। श्य** (अतो हेः-से—लुक्, **श्यतात् श्यतम् श्यत, श्यानि, श्याव, श्याम** लङ् में ओकार लोप—**अश्यत्, अश्यताम्, अश्यन्, अश्यः, अश्यतम् अश्यत, अश्यम, अश्याव, अश्याम**।

विधिलिङ् में—**श्येत्, श्येताम्, श्युः, श्येः, श्येतम्, श्येत, श्येम, श्येव, श्येम**।

आशीर्लिङ् में ओकार को आकार-शायात् शायास्ताम् आदि।

विभाषेति—घ्रा, धेट्, शो, छो, षो इन धातुओं से परस्मैपद परे रहते सिच् का लोप विकल्प से हो।

लुङ् में ओकार को आकार करने पर सिच् का प्रकृत सूत्र से लोप होकर **अशात् अशाताम्**, 'अशा झि' यहाँ 'आतः' सूत्र से झि को जुस् करने पर उस्य-पदान्तात्' सूत्र से आकार का पररूप होकर **अशुः** आदि रूप बनेंगे, सिच् के लोप के अभाव पक्ष में धातु के आकारान्त वन जाने पर यम रमेति—सूत्र से सक् और इट् होकर, ईट् और सकार लोप होकर **अशासीत् अशासिष्टम् अशासिषुः** आदि रूप बनेंगे। लृङ् में अशास्यत् आदि रूप होंगे।

छो छेदने—छो धातु काटने अर्थ में है।

'ओतः श्यनि' से सार्वधातुक लकारों में ओकार लोप होकर छ्यति। छ्यतु छ्य छ्यानि। अछ्यत्। छ्येत। आर्धधातुक लकारों में शोधातु के समान ही रूप बनेंगे।

षो अन्त कर्मणि—सो धातु नाश करने अर्थ में है।

इस धातु में भी सार्वधातुक लकारों में ओकार लोप होकर शो के समान रूप होंगे, आर्धधातुक लकारों में शो के समान ही रूप होंगे केवल आशीर्लिङ् में आकार होने पर 'एर्लिङि' सूत्र से एत्व होकर सेयात् आदि रूप होंगे।

व्यध ताडने ॥९॥

(२६१) ग्रहिज्या वयिव्यधिवष्टि विचति वृश्चति पृच्छति भृज्जतीनां ङिति च। ६।१।१६॥

एषां संप्रसारण स्यात् किति ङिति च।

विध्यति। विव्याध, विविधतुः विविधुः। विव्यधिथ विव्यद्ध। व्यद्धा। व्यत्स्यति। विध्येत्। विध्यात्। अव्यात्सीत्।

पुष् पुष्टौ ॥१०॥ पुष्यति। पुपोष, पुपोषिथ। पोष्टा। पोक्ष्यति। पुषादि—इत्यङ्—अपुषत्।

शुष् शोषणे ॥११॥ शुष्यति। शुशोष। अशुषत्।

णश अदर्शने ॥१२॥ नश्यति। ननाश, नेशतुः।

दो अवखण्डने—दो धातु का अर्थ तोड़ना है।

इस धातु के सार्वधातुक लकारों में तो ओकार का लोप होने पर शो के समान ही रूप बनते हैं, द्यति द्यतु द्य आदि किन्तु आशीर्लिङ् में इस धातु के घुसंज्ञक होने से एत्व होकर देयात् रूप बनता है और घुसंज्ञक होने ही के कारण लुङ् लकार में 'घुमास्थेति सूत्र से नित्य सिच् का लोप हो जाने से अदात् आदि रूप ही बनते हैं। इन धातुओं के आवश्यक रूप लोट् मध्यम पुरुष एकवचन और लुङ् के ही हैं। षो धातु का प्रयोग प्रायः वि + अव उपसर्ग पूर्वक निश्चय करने अर्थ में देखा जाता है—व्यवस्यति-निश्चय करता है।

व्यध ताडने—व्यध धातु किसी नुकीले अस्त्र से छेदने अर्थ में है।

ग्रहिज्येति—ग्रह-(क्र्यादि) ज्या (क्र्यादि बढ़ना) वेञ् बुनना तन्तु सन्तान अर्थात् बुनने अर्थ में भ्वादिगण। व्यध् ताड़ने, वश (इच्छा करना अदादि) व्यच् तुदादि ठगना। व्रश्च् छेदन अर्थ में तुदादि, प्रच्छ तुदादि पूछना, भ्रस्ज् भूनना, तुदादि, इन सभी धातुओं को संप्रसारण हो कित् और ङित् प्रत्यय परे।

श्यन् प्रत्यय अपित् सार्वधातुक है अतः सभी सार्वधातुक लकारों के ङित् वत् होने से प्रस्तुत सूत्र से यकार को इकार संप्रसारण होगा। आशीर्लिङ का यासुट् भी ङित् होता है अतः वहाँ भी इससे संप्रसारण हो जायेगा।

अतः लट्, लङ्, लोट् और विधिलिङ् में यकार को प्रस्तुत सूत्र से इकार संप्रसारण होकर **विध्यति, अविध्यत, विध्यतु** और **विध्येत्** रूप बनेंगे। आशीर्लिङ में भी **विध्यात विध्यास्ताम्** आदि रूप होंगे।

लिट् में णल् परे पित् प्रत्यय होने से द्वित्व होकर 'व्य व्यध् अ' इस स्थिति में संप्रसारण और वृद्धि होकर **विव्याध** रूप होगा। अतुस् आदि कित् लिट् परे 'सम्प्रसारणं तदाश्रितं च कार्यं 'बलवत्' इस परिभाषा के अनुसार द्वित्व से पहले संप्रसारण होगा तब विध् विध्द्वित्व होकर **विविधतुः** विविधुः रूप होंगे। थल् पर पित् होने से द्वित्व होने पर संप्रसारण तथा वैकल्पिक इट् होकर **विव्यधिथ,** इडभावपक्ष में थकार को

(२६२) रधादिभ्यश्च ७।२।४५।।

रध् नश् तृप् दृप् द्रुह मुह् स्नुह् स्निह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात् । नेशिथ ।

(२६३) मस्जिनशो र्झलि ।७।१।६०।।

नुम् स्यात् । ननंष्ठ । नेशिव नेश्व । नेशिम नेश्म । नशिता नंष्टा । नशिष्यति-नङ्क्ष्यति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् ।

षूङ् प्राणिप्रसवे ।।१३।। सूयते । क्रादिनियमादिट्—सुषुविषे । सुषुविवहे ।

'झषस्तथोरित सूत्र से धकार और धातु के धकार को जश्त्वेन दकार होकर **विव्यद्ध** रूप होगा, उ० पु० णल् परे पहले द्वित्व तदनु संप्रसारण 'णलुत्तमो वा' के अनुसार **विव्याध विव्यध** रूप होंगे, शेष रूप **विविधवुः विविध विविधिव विविधिम,** बनेंगे । अनिट् धातु होने लुट् में तास् प्रत्यय के तकार का 'झषस्तथोः' से धकार और धातु के धकार को जश्त्व होकर **व्यद्धा** लृट् में स्य परे धातु के धकार को चर्त्वेन तकार होकर **व्यत्स्यति** आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् में 'अ व्यध् स त्' इस स्थिति में ईट् और वदव्रजेति सूत्र से वृद्धि तथा चर्त्वेन धकार को तकार होकर अव्यात्सीत्, ताम् परे द्विवचन में झल् परे मिलने से 'झलोझलि' से सकार लोप, तकार को उक्त सूत्र से धकार, धातु के धकार को जश्त्वेन दकार होकर **अव्याद्धाम् अव्यात्सुः, अव्यात्सीः, अव्याद्धम्, अव्याद्ध, अव्यात्सम्, अव्यात्स्व, अव्यात्स्म** । लृङ् —**अव्यत्स्यत्** आदि रूप होंगे ।

पुष् पुष्टौ—पुष्धातु बढ़ने अर्थ में है ।

सार्वधातुक लकारों में श्यन् होकर **पुष्यति, अपुष्यत्, पुष्यतु, पुष्येत् पुष्यात्, लुट्—पोष्टा,** लृट में पुष्+स्य ति इस स्थिति में 'षढोः कः सि' सूत्र से ष् को क, और क, से परे स्य के स, को ष, क्+ष्=क्ष होकर **पोक्ष्यति** आदि रूप बनेंगे । लुङ्-लकार में 'पुषादि-द्युतादि—सूत्र से च्लि को अङ् होकर **अपुषत्** आदि रूप होंगे ।

शुष् शोषणे—शुष् धातु का अर्थ सूखना है ।

इसके सभी रूप पुष्धातु के समान ही बनेंगे, यह धातु भी पुषादि गण में है अतः लुङ् में च्लि को अङ् होकर **अशुषत्** आदि रूप होंगे ।

णश् अदर्शने नश् धातु का अर्थ नाश होना है ।

यह धातु भी अनिट् एवं पुषादिगण पठित है, इसलिये लट् लोट् लङ् विधि-लिङ् लकारों में इसके रूप श्यन् प्रत्यय करने पर सामान्य कार्य विधि से—**नश्यति, नश्यतु, अनश्यत्—नश्येत्**--आशीलिङ्—**नश्यात्**, लुङ्—अनशत् आदि बनेंगे ।

लिट्लकार में णल् परे द्वित्व अभ्यास कार्य वृद्धि—**ननाश**—अतुस् आदि कित् प्रत्ययों के आगे रहते 'अतएक हल्मध्ये' सूत्र से एत्वाभ्यास लोप होकर **नेशतुः नेशुः ।** थल् परे इट् पक्ष में 'थलि च सेट्' से एत्वाभ्यास लोप होकर **नेशिथ,** इड भावपक्ष में 'ननश् थ' इस स्थिति में—

सुषुविमहे । सोता । सविता ।

दूङ् परितापे ॥१४॥ दूयते । दीङ् क्षये ॥१५॥ दीयते ।

(२६४) दीङो युडचि क्ङिति । ६।४।६३॥

दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट् ।

(वा०) वुग्युटौ-उवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ । दिदीये ।

(२६५) मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ।६।१।५०॥

एषामात्त्वं स्याल्ल्यपि, चाद् अशित्येजि्नमित्ते । दाता । दास्यते ।

(वा०) स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः । अदास्त ।

रधाम्य इति—सूत्रोक्त रध आदि धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से हो ।

प्रस्तुत सूत्र से इट् होने पर **नेशिथ** रूप बनेगा ।

मस्जीति—झलादि प्रत्यय परे मस्ज् और नश् धातु को नुम् का आगम हो ।

इडभाव पक्ष में उक्त स्थिति में, झलादि प्रत्यय 'थ' परे रहते, प्रस्तुत सूत्र से नुम् (न्) का आगम, नश्चेति—नकार का अनुस्वार, व्रश्चेति सूत्र से शकार को षत्व, ष्टुत्वेन थकार को ठकार होकर **ननंष्ठ** रूप होगा। **नेशथुः, नेश, ननाश, ननश,** रधाम्यश्चेति वैकल्पिक इट् **नेशिव** अभाव पक्ष में **नेश्व, नेशिम नेश्म** रूप होंगे ।

लुट् लृट् में वलादि आर्धधातुक मिलने से इट् पक्ष में नशिता, इडभाव पक्ष में उक्त सूत्र से नुम् अनुस्वार, व्रश्चेति षत्व ष्टुत्व—नंष्टा, नशिष्यति इडभाव पक्ष में नश नस्य ति' इस स्थिति में नुम्, व्रश्चेति श् को 'ष, षढोः कः सि' से ष् को क्, प्रत्यय सकार को षत्व, क्+ष्=क्ष्, नंक्ष्यति । आदि रूप होंगे ।

षूङ् प्राणिप्रसवे—सू धातु का अर्थ पैदा होना अर्थात् प्राणियों का जन्म लेना है। ङित् होने से यह धातु आत्मनेपदी है। इस धातु का पाठ "स्वरतिसूति सूयति-धूञूदितोवा" सूत्र में है अतः लिट् लकार में थल् परे तो क्रादिनियमात् इट् होगा इसी प्रकार व म परे भी, किन्तु अन्यत्र स्वरतीति सूत्र से विकल्पतः इट् होगा। धातु के आत्मनेपदी होने से इसके रूपों की सिद्धि भी सामान्य आत्मनेपदी धातुओं के अनुसार ही होगी ।

लट् में श्यन्—सूयते सूयेते सूयन्ते आदि रूप होंगे । लिट् में द्वित्व और उवङ् होकर **सुषुवे, सुषुवाते, सुषुविरे** क्रादि नियमादिट् **सुषुविषे, सुषुवाथे, सुषुविध्वे, सुषुवे, सुषुविवहे, सुषुविमहे ।**

लुट् में स्वरीति सूत्र से इट् पक्ष में गुणावादेश—**सविता** इडभाव पक्ष में **सोता** । लृट् में भी **सविष्यते सोष्यते** । लोट्-सूयताम्, लङ्-असूयत, विधिलिङ्—सूयेत, आशीर्लिङ्—इट् पक्ष में सविषीष्ठ, इडभाव पक्ष में सोषीष्ट । लुङ्—में इट्-पक्ष में असविष्ट, इडभाव पक्ष में असोष्ट । लृङ्—असविष्यत असोष्यत ।

डीङ् विहायसागतौ ॥१६॥ डीयते । डयिता । डिड्ये ।

पीङ् पाने ॥१७॥ पीयते । पेता । अपेष्ट ।

माङ् माने ॥१८॥ मायते । ममे ।

जनीप्रादुर्भावे ॥१९॥

(२६६) ज्ञाजनोर्जा ।७।२।७९॥

अनयोजादिशः स्यात् शिति । जायते । जज्ञे । जनिता । जनिष्यते ।

दूङ् परितापे—दूङ् धातु दुःखी होने अर्थ में, आत्मनेपदी है । दूयते । दुदुवे, दुदुविषे, दुदुविध्वे, दुदुविवहे; दुदुविमहे । यह धातु सेट् है अतः लुट् में इट् उकार को ओगुण, अवादेश-दविता, दविष्यते, दूयताम्, अदूयत, दूयेत, दविषीष्ट, अदविष्ट, लृङ् अदविष्यत ।

दीङ् क्षये दी धातु का अर्थ नाश होना है, यह अनिट् है । लट् में दीयते, दीयेते, दीयन्ते आदि रूप होंगे ।

दीङ इति—दीङ् धातु से परे अजादि कित् और ङित् आर्ध धातुक प्रत्ययों को युट् का आगम हो ।

(वा०) वुग्युटाविति—उवङ् और यण् के विषय में बुक् और युट् आगम सिद्ध कहने चाहिये ।

लिट् लकार में त को एश् आदेश करने पर और धातु को द्वित्व करने पर अजादि प्रत्यय परे होने से प्रस्तुत सूत्र से युट् (य्) का आगम होकर दिदीय् 'ए' इस स्थिति में 'असिद्धवदत्राभात्' नियम से युट् आगम् के असिद्ध होने से यहाँ उक्त स्थिति में ''एरनेकाच—सूत्र से यण् प्राप्त होता है । प्रस्तुत वार्तिक यण के विषय में युट् के आगम को सिद्ध ही मानता है, अतः युट् के आगम के असिद्ध न होने से 'एरनेकाचः—सूत्र से यण् की प्राप्ति ही नहीं रहती तब **दिदीये** रूप बनता है । इसके शेष रूप थल् ध्वम् वहि महि परे इट् होकर अन्यत्र सामान्य विधि से बनते हैं— **दिदीये, दिदीयाते, दिदीयिरे, दिदीयिषे दिदीयाथे दिदीयिध्वे दिदीये दिदीयिवहे दिदीयिमहे ।**

मीनातीति—मीञ् क्र्यादि मि स्वादि तथा दीङ् दिवादि इन धातुओं को आकार अन्तादेश हो ल्यप् तथा गुण वृद्धि निमित्तक शिद् भिन्न प्रत्यय परे रहते ।

तास् और स्य प्रत्यय शिद्‌भिन्न प्रत्यय भी है तथा गुण वृद्धि के निमित्त भी हैं, अतः लुट् और लृट् लकारों में प्रस्तुत सूत्र से दी को आकारान्ता देश होकर 'दा' हो जायेगा, तब इन लकारों में इसके रूप दातासे **दास्यते** आदि बनेंगे ।

सार्वधातुक लकारों में **दीयताम् अदीयत, दीयेत** आ० लि० में **दासीष्ट** आदि रूप होंगे ।

वा० स्थाघ्वोरिति—स्था और घुसंज्ञक धातुओं को लुङ् में 'स्थाघ्वोरिच्च' सूत्र से प्राप्त इकार आदेश, दीङ् धातु के विषय में प्रतिषिद्ध है अर्थात् दीङ् धातु के लुङ् में इकार आदेश नहीं होता ।

(२६७) दीपजन बुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ।३।१।६१।।

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यात् एकवचने त शब्दे परे ।

(२६८) चिणो लुक् ६।४।१०४।।

चिणः परस्य तशब्दस्य लुक्स्यात् ।

(२६९) जनिवध्योश्च ७।३।३५।।

अनयोरुपधाया वृद्धि र्न स्यात् चिणि ञ्णिति कृति च । अजनि, अजनिष्ट ।

दीपी दीप्तौ ।।२०।। दीप्यते । दिदीपे । अदीपि । अदीपिष्ट ।

दीङ् धातु दा रूप धातु है, अतः यह घुसंज्ञक है 'दाधाघ्वदाप्' अतएव स्थाघ्वोरिच्च सूत्र से यहाँ इकारादेश प्राप्त था, उसका यह वार्तिक प्रतिषेध करता है ।

दीङ् धातु से लुङ् लकार में 'मीनाति—सूत्र से आकारान्त देश और सिच् होने पर प्रस्तुत वार्तिक से इकार का प्रतिषेध होकर **अदास्त अदासाताम् अदासत** आदि रूप बनेंगे । लृङ में अदास्यत ।

डीङ् विहायसागतौ—डी धातु उड़ने अर्थ में है, ऊदृदन्तैरित्यादिकारिका में पठित होने से यह सेट् धातु है, उड़ने अर्थ में इसका प्रयोग उत् उपसर्ग पूर्वक होता है । इसके सभी रूप सामान्य विधि से ही बनेंगे—**डीयते । डिड्ये । डयितासे । डयिष्यते । डीयताम् । अडीयत । डीयेत । डयिषीष्ट । अडयिष्ट । अडयिष्यत ।**

माङ् माने—मा धातु नापने अर्थ में है ।

इस धातु के रूप भी आकारान्त आत्मनेपदी धातुओं के अनुसार सामान्य विधि से ही बनेंगे—मायते । ममे । माता । मास्यते । मायताम् । अमायत । मायेत । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत ।

जनी प्रादुर्भावे जन धातु का अर्थ उत्पन्न होना है। यह धातु सेट् और आत्मनेपदी है ।

ज्ञाजनोर्जा—शित् प्रत्यय परे रहते ज्ञा और जन् धातु को जा आदेश हो ।

श्यन् प्रत्यय परे प्रस्तुत सूत्र से जन् धातु को जा आदेश होने से लट् लोट् लङ् और विधिलिङ् में सर्वत्र जा आदेश होगा अतः लट् में **जायते, जायेते, जायन्ते** । आदि, लोट् में **जायताम्** । लङ् में **अजायत** । विधिलिङ् में **जायेत, जायेताम्, जायेरन्** आदि रूप बनेंगे ।

लिट् में धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य 'ज जन् ए' इस स्थिति में "गम हन जन—इत्यादि सूत्र से उपधा अकार का लोप और नकार को श्चुत्वेन ञकार ज्+ञ्=ज्ञ्, होकर **जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिरे । जज्ञिषे, जज्ञाथे, जज्ञिध्वे । जज्ञे, जज्ञिवहे, जज्ञिमहे** रूप बनते हैं ।

सेट् होने से लुट् में जनिता, लृट् में जनिष्यते आदि रूप होंगे । आ० लि० में जनिषीष्ट आदि ।

लुङ् में 'अ जन् त' इस स्थिति में—

पद गतौ ॥२१॥ पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्सीष्ट ।

(२७०) चिण् ते पदः ।३।१।६०॥

पदेश्च्लेश्चिण् स्यात् तशब्दे परे । अपादि, अपत्साताम्, अपत्सत ।

विद सत्तायाम् ॥२२॥ विद्यते । वेत्ता । अवित्त ।

बुध अवगमने ॥२३॥ बुध्यते । बोद्धा । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । अबोधि अबुद्ध अभुत्साताम् ।

युध संप्रहारे ॥२४॥ युध्यते । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध ।

दीप जनेति—दीप (चमकना) जन, पूरी (भरना) ताय्, प्याय् (फूलना) इन धातुओं से परे च्लि को चिण् आदेश हो त शब्द परे रहते ।

उक्त स्थिति में त शब्द परे च्लि को चिण् आदेश ।

चिणो लुक् इति—चिण् से परे त शब्द का लोप हो ।

जनिवध्योरिति—चिण् तथा ञित् णित् कित् प्रत्यय परे जन और वध धातुओं की उपधा को वृद्धि न हो ।

चिण् णित् प्रत्यय है अतः यहाँ 'अत उपाधायाः' से प्राप्त वृद्धि का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हो जाता है ।

उक्त स्थिति में त शब्द परे 'दीपजन'—सूत्र से च्लि को चिण् करने पर, 'चिणो लुक्' सूत्र से त शब्द का लोप हो जाता है और प्राप्त उपधा वृद्धि का 'जनिवध्योश्च' से निषेध होकर **अजनि** यह रूप बनता है, चिण् के अभाव पक्ष में च्लि को सिच् और इडागम होकर अजनिष्ट, अजनिषाताम्, अजनिषत आदि रूप बनते हैं । लृङ् में अजनिष्यत आदि रूप होंगे ।

दीपी दीप्तौ—दीप् धातु का अर्थ चमकना है ।

सार्वधातुक लकारों में **दीप्यते, अदीप्यत, दीप्यताम्, दीप्येत** आदि, लिट् में दिदीपे । लुङ् में "दीपजन" सूत्र से च्लि को चिण, "चिणो लुक्" से त शब्द का लोप होकर अदीपि, चिण् के अभाव में सिच् इट्—**अदीपिष्ट** आदि रूप बनेंगे ।

पद् गतौ—पद-धातु जाने अर्थ में है ।

लट्—**पद्यते** । एत्वाभ्यास लोप—**पेदे । पत्ता ।** चर्त्व—**पत्स्यते । पद्यताम । अपद्यत । पद्येत । पत्सीष्ट ।**

चिणिति—पद् धातु से च्लि को चिण् हो, त शब्द परे रहते ।

लुङ् लकार 'अ पद च्लि त' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से च्लि को चिण् आदेश, 'चिणो लुक्' से त का लोप, उपधा वृद्धि—**अपादि, अपत्साताम्, अपत्सत । अपत्थाः, अपत्साथाम्, अपद्ध्वम् । अपत्सि, अपत्स्वहि, अपत्स्महि ।** थास् व ध्वम् परे झल् परे मिलने से झलो झलि' से सकार लोप हो जाता है ।

सृज् विसर्गे ॥२५॥ सृज्यते । ससृजे । ससृजिषे ।

(२७१) सृजिदृशो र्झल्यमकिति ।६।१।५८॥

अनयोः अम् आगमः स्यात् झलादौ अकिति ।

स्रष्टा । स्रक्ष्यति । सृक्षीष्ट । असृष्ट, असृक्षाताम् ।

मृष तितिक्षायाम् ॥२६॥ मृष्यति, मृष्यते । ममर्ष, ममर्षिथ, ममृषिषे । मर्षितासि, मर्षितासे । मर्षिष्यति, मर्षिष्यते ।

विद् सत्तायाम्—विद् धातु का अर्थ होना है ।

विद्यते । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यते । विद्यताम् । अविद्यत । विद्येत । वित्सीष्ट (यहाँ 'लिङ्सिचौ'—सूत्र मे सीयुट् के कित् होने से गुण नहीं होता । लुङ् में 'अविद् स त' सकार लोप—**अवित्त, अवित्साताम्, अवित्सत अवित्थाः, अविद्ध्वम्** आदि रूप होंगे ।)

बुध अवगमने—बुध् धातु का अर्थ जानना है ।

बुध्यते । बुबुधे । झषस्तथोरिति तकार को धकार, जश्त्वेन धातु के धकार को दकार **बोद्धा, बोद्धारौ, बोद्धारः ।**

लृट् में स्य करने पर एकाचो बशोभष्—सूत्र से बकार को भकार, चर्त्वेन धातु के धकार को तकार, गुण, **भोत्स्यते । बुध्यताम् । अबुध्यत । बुध्येत ।** भष्भाव चर्त्व—भुत्सीष्ट ।

लुङ् लकार में त परे 'दीपजन बुध'—सूत्र से विकल्पतः च्लि को चिण्, चिणो लुक्—'त' का लोप, गुण—अबोधि, चिणभाव पक्ष में सकार का लोप, तकार को धकार जश्त्व—अबुद्ध, भष्भाव जश्त्व—**अभुत्साताम्, अभुत्सत । अबुद्धाः, अभुत्साथाम्, अबुद्ध्वम् । अभुत्सि, अभुत्स्वहि, अभुत्स्महि । अभोत्स्यत** आदि ।

युध संप्रहारे—युध् धातु का अर्थ युद्ध करना है ।

युध्यते, युध्येते, युध्यन्ते आदि रूप लट् में बनेंगे ।

लिट् में द्वित्वादि सामान्य कार्य—**युयुधे, युयुधाते, युयुधिरे ।** वलादि आर्धधातुक में क्रादिनियमात् नित्यमिट—**युयुधिषे । युयुधिध्वे । युयुधे, युयुधिवहे, युयुधिमहे ।** अनिट् होने से इडभाव, तकार को धकार, जश्त्व—**योद्धा, योद्धासे ।** लृट् में **योत्स्यते, योत्स्येते** आदि रूप होंगे ।

लोट्—**युध्याम्,** लङ्—**अयुध्यत ।** वि० लि०—**युध्येत,** आ० लि०—**युत्सीष्ट ।** लुङ् में झलो झलि सिच् लोप, तकार को धकार, धातु के धकार को जश्त्वेन दकार **अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत । अयुद्धाः, अयुत्साथाम्, अयुद्ध्वम् । अयुत्सि, अयुत्स्वहि, अयुत्स्महि । अयोत्स्यत** आदि रूप होंगे ।

सृज विसर्गे—सृज् धातु त्यागने अर्थ में है ।

लट् लकार में श्यन् होकर सृज्यते, सृज्येते आदि रूप होंगे । लिट् लकार में वलादि आर्धधातुक परे क्रादि नियम से थास् ध्वम् वहि महि परे नित्य इट् होकर—

ससृजे, ससृजाते, ससृजिरे । ससृजिषे, ससृजाथे, ससृजिध्वे । ससृजे, ससृजिवहे, ससृजिमहे रूप बनेंगे ।

सृजीति—झलादि कित् भिन्न प्रत्यय परे सृज् और दृश् धातुओं को अम् का आगम हो ।

लुट् लकार में 'सृज् तास त' इस स्थिति में त का डा और टि लोप करने पर प्रकृत सूत्र से सृज् धातु को अम् (अ) का आगम होकर 'सृ अ ज् त् आ' इस स्थिति में 'ऋ+अ' को यण्, व्रश्चेति सूत्र से जकार को षकार तथा ष्टुत्वेन तकार को टकार करने पर **स्रष्टा** रूप बनता है, यहाँ अनिट् होने से इट् नहीं होता है। शेष रूप भी इसी प्रकार **स्रष्टारौ, स्रष्टारः । स्रष्टासे** आदि बनेंगे ।

लृट् लकार में कित् भिन्न झलादि प्रत्यय 'स्य' के आगे रहते, प्रकृत सूत्र से अम् का आगम, यण्, जकार को षकार, 'षढोः कः सि' से षकार को ककार, प्रत्यय सकार को षत्व, क्+ष्=क्ष् होकर स्रक्ष्यते आदि रूप होंगे ।

लोट् में सृज्यताम् । लङ् में—असृज्यत । विधिलिङ् में—सृज्येत । आशीर्लिङ् में लिङसिचौ—सूत्र से सीयुट् के कित् होने से अम् का आगम न होगा । जकार को व्रश्चेति सूत्र से षत्व और उसको 'क्' करने पर सीयुट् और सुट् के सकार को षत्व, क्+ष्=क्ष् तथा ष्टुत्व होकर **सृक्षीष्ट, सृक्षीयास्ताम्, सृक्षीरन्** आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् में च्लि को सिच् करने पर त प्रत्यय परे 'झलो झलि' सूत्र से सकार लोप, जकार को षत्व और ष्टुत्व होकर असृष्ट, आताम् आदि परे सिच् के सकार का लोप न होगा, जकार को षत्व, 'षढोः कः सि' ष् को क्, सिच् के स् को षत्व, क्+ष्=क्ष् होकर **असृक्षाताम्, असृक्षत ।** थास् परे झल् मिलने से सकार को लोप षत्व और ष्टुत्व होकर **असृष्ठाः, असृक्षाथाम्**, आदि रूप बनेंगे ।

लृङ् में स्य प्रत्यय के कित् भिन्न झलादि होने से, अम् का आगम्, यण्, जकार को षकार, ष् को क्, प्रत्यय सकार को षत्व क्+ष्=क्ष् होकर अस्रक्ष्यत आदि रूप होंगे ।

मृष तितिक्षायाम्—मृष् धातु का अर्थ सहन करना है, यह स्वरितेत् होने से उभयपदी है । और सेट् भी है । लट् में—मृष्यति, मृष्यते । लिट में—द्वित्वादि कार्य एवं लघूपध गुण होकर **ममर्ष, ममृषतुः, ममृषुः ।** आत्मने पद में— **ममृषे, ममृषाते, ममृषिरे ।** क्रादि नियम से लिट् लकार में नित्य इट् होता है, **ममृषिषे, ममृषिध्वे, ममृषिवहे, ममृषिमहे ।**

लुट् में इट् और गुण होकर **मर्षितासि. मर्षितासे** आदि, लृट् में इट् और गुण—**मर्षिष्यति, मर्षिष्यते** आदि रूप होंगे ।

लोट् में **मृष्यतु, मृष्यताम्,** लङ्—**अमृष्यत्, अमृष्यत ।** वि० लि०—**मृष्येत्, मृष्येत ।** आ० लि०—**मृष्यात्, मृषिषीष्ट ।** लुङ् में सिच् इट् गुण—**अमर्षिष्ट,** परस्मैपद में—सिच् इट् ईट् सलोप—**अमर्षीत् ।** लृङ्—**अमर्षिष्यत्, अमर्षिष्यत ।**

णह वन्धने ।।२७।। नह्यति, नह्यते । ननाह, नेहिथ, ननद्ध । नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत् । अनद्ध ।

इति दिवादयः

णह् वन्धने—नह् धातु बाँधने अर्थ में है, उभयपदी अनिट् है । लट् में **नह्यति, नह्यते** । लिट् में द्वित्वादि कार्य उपधा वृद्धि—**ननाह**, कित् लिट् में 'अत एक हल्मध्ये—सूत्र से एत्वाभ्यास लोप—**नेहतुः, नेहुः** । यह धातु अकारवान् तथा तास् परे नित्य अनिट् है अतः थल परे विकल्पतः इट् होगा । इट् पक्ष में 'थलि च सेटि' से एत्वाभ्यास लोप होकर—**नेहिथ,** इडभाव पक्ष में 'ननह् थ' इस स्थिति में 'नहो धः' सूत्र से धातु के हकार को धकार, 'झषस्तथोः' सूत्र से थकार को धकार, जश्त्वेन पूर्व धकार को दकार होने पर **ननद्ध, नेहथुः, नेह, ननाह, ननह, नेहिव, नेहिम** । आत्मने पद में सर्वत्र कित् लिट् मिलने से एत्वाभ्यास लोप होकर **नेहे, नेहाते, नेहिरे** । **नेहिषे, नेहाथे, नेहिध्वे** । **नेहे, नेहिवहे, नेहिमहे** । लुट् में—'नहो धः' से हकार को धकार, तकार को धकार जश्त्व—**नद्धा, नद्धारौ, नद्धारः, नद्धासि, नद्धासे** आदि रूप होंगे ।

लृट् में—'नहो धः' से हकार को धकार चर्त्व होकर **नत्स्यति । नत्स्यते ।** लोट्—**नह्यतु, नह्यताम् । अनह्यत्, अनह्यत । नह्येत्, नह्येत । नह्यात्, नत्सीष्ट ।** लुङ् परस्मैपद—सिच् ईट्—'अ नह् स ई त्' इस स्थिति में, नहो धः, चर्त्व, हलन्त लक्षणा वृद्धि—**अनात्सीत्** । ताम्, तम्, त परे 'झलो झलि'—सिच् लोप, हकार को धकार, तकार को धकार, जश्त्व—**अनाद्धाम्, अनात्सुः । अनात्सीः, अनाद्धम्, अनाद्ध । अनात्सम्, अनात्स्व, अनात्स्म** । आत्मने पद में—त परे सिच् लोप, हकार को धकार, तकार को धकार, जश्त्व—**अनद्ध, अनत्साताम्, अनत्सत** । (यहाँ झल् पर न होने से सिच् लोप न होगा । **अनद्धाः, अनत्साथाम्, अनद्ध्वम्, अनत्सि, अनत्स्वहि, अनत्स्महि** । लृङ्—**अनत्स्यत्, अनत्स्यत** ।)

इति दिवादिगणः

अथ स्वादिगणः

षुञ् अभिषवे ॥१॥

(२७२) स्वादिभ्यः श्नुः ।३।१।७३॥

शपोऽपवादः । सुनोति, सुनुतः, 'हुश्नुवोः' इति यण्—सुन्वन्ति । सुन्वः सुनुवः । सुनुते, सुन्वाते, सुन्वते । सुन्वहे सुनुवहे । सुषाव, सुषुवे । सोता । सुनु । सुनवानि, सुनवै । सुनुयात् । सूयात् ।

(२७३) स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ।७।२।७२॥

एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु । असावीत्, असोष्ट ।

षुञ् अभिषवे—सु धातु, सुरा निकालना स्नान करना निचोड़ना आदि अर्थों में है, ञित् होने से उभयपदी है ।

स्वादिभ्य इति— स्वादिगण पठित धातुओं से श्नु प्रत्यय हो । यह शप् का अपवाद है, श्नु प्रत्यय में 'नु' शेष रहता है, अतः शित् होने से यद्यपि यह सार्वधातुक है, तथापि अपित् होने से ङित्वत् भी है, इसलिये इस प्रत्यय के परे गुण आदि नहीं होते ।

लट् में सु धातु से तिप्, श्नु (नु) प्रत्यय, तिप् के पित् सार्वधातुक होने से प्रत्यय के उकार को गुण, धातु के उकार को श्नु के अपित् होने से ङित्वत् होने के कारण गुण नहीं होगा, अतः **सुनोति,** तस् परे अपित् होने से कहीं भी गुण न् होगा—**सुनुतः**, झि को अन्त करने पर, 'सु नु अन्ति' इस दशा में 'हुश्नुवोः' सूत्र से उकार को यण् होकर **सुन्वन्ति, सुनोषि, सुनुथः, सुनुथ, सुनोमि,** वस् मस् परे 'लोपश्चास्यान्यतरस्यांम्वोः' सूत्र से श्नु के उकार का लोप होकर **सुन्वः** लोपाभाव पक्ष में **सुनुवः,** इसी प्रकार **सुन्मः सुनुमः** रूप बनेंगे ।

आत्मनेपद में सभी प्रत्ययों के अपित् ङित्वत् होने से गुण न होगा— **सुनुते,** 'हुश्नुवोः' यण्—**सुन्वाते,** झ परे 'आत्मनेपदेष्वनतः' से झ को अत् आदेश, यण् **सुन्वते,**

चिञ् चयने ।।२।। चिनोति, चिनुते ।

(२७४) विभाषा चेः ।७।३।६१।।

अभ्यासात् परस्य कुत्वं वा स्यात् सनि लिटि च । चिकाय, चिचाय, चिक्ये, चिच्ये । अचैषीत्, अचेष्ट ।

सुनुषे, सुन्वाथे, सुनुध्वे, सुन्वे—वहि महि परे 'लोपश्चेति'– सूत्र से पाक्षिक उकार लोप– **सुन्वहे, सुनुवहे, सुन्महे, सुनुमहे ।**

लिट् में धातु को द्वित्वादि कार्य, षत्व वृद्धि आवादेश होकर सुषाव, सुषुवतुः सुषुवुः । थल् परे विकल्पतः अन्यत्र क्रादिनियम से नित्य इट्—**सुषुविथ, सुषोथ, सुषुवथुः, सुषुव । सुषाव, सुषुव, सुषुविव, सुषुविम ।** अजादि प्रत्यय परे उवङ् हो जायेगा ।

आत्मने पद में, द्वित्वादि उवङ्—**सुषुवे सुषुवाते, सुषुविरे, सुषुविषे, सुषुवाथे सुषुविध्वे, सुषुवे सुषुविवहे—महे ।**

लुट् में अनिट् **सोतासि सोतासे,** लृट्—**सोष्यति सोष्यते ।**

लोट्—**सुनोतु सुनुतात् सुनुताम् सुन्वन्तु** (यण्) 'उतश्च प्रत्ययादसंयोग पूर्वात्' से हि का लोप—**सुनु, सुनुतम्, सुनुत ।** आट् आगम के पित् होने से गुण, **सुनवानि, सुनवाव, सुनवाम ।**

आत्मने पद में—**सुनुताम् सुन्वाताम्,** उत्तम पुरुष—आट् के पित् होने से गुण अवादेश, आ + इ = ऐ वृद्धि—**सुनवै, सुनवावहै सुनवामहै ।**

लङ् में सामान्य विधि से—**असुनोत् असुनुताम् असुन्वन्** (यण्) **असुनोः असुनुतम् असुनत ।** गुण—**असुनवम्,** आदि ।

आत्मने पद में—**असुनुत असुन्वाताम् असुन्वत** आदि रूप होंगे, वि० लि० में **सुनुयात्, सुन्वीत सुन्वीयाताम् सुन्वीरन्** आदि, आ० लिङ् में—अकृत्सार्वधातुकयोः—दीर्घ **सूयात् सोषीष्ट** रूप होंगे ।

स्तुसुधूञ्जिति—स्तु सु और धूञ् धातुओं से परे सिच् को इट् आगम हो परस्मैपद में ।

लुङ् लकार में 'अ सु सिच् त्' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से इट् का आगम, ईट्, और सिच् के सकार का लोप, 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' सूत्र से उकार को औ वृद्धि, आवादेश **असावीत् असाविष्टाम् असाविषुः असावीः असाविष्टम् असाविष्ट, असाविषम् असाविष्व असाविष्म ।**

आत्मने पद में सिच्, आर्धधातुक गुण षत्व ष्टुत्व—**असोष्ट असोषाताम् असोषत असोष्ठाः असोषाथाम्, असोढ्वम् असोषि असोष्वहि असोष्महि ।**

लृङ् में **असोष्यत् असोष्यत ।**

चिञ् चयने—चि धातु चयन करने अर्थ में है, उभयपदी अनिट् है । लट् में श्नु प्रत्यय गुण होकर चिनोति, चिनुते आदि रूप होंगे ।

स्तृञ् आच्छदने ।३।। स्तृणोति स्तृणुते ।

(२७५) शर्पूर्वाः खयः ।७।४।६१।।

अभ्यासात् श पूर्वाः खयः शिष्यन्ते, अन्ये हलो लुप्यन्ते । तस्तार । तस्तरतुः । 'गुणोऽर्ति—इति गुणः—स्तर्यात् ।

(२७६) ऋतश्च संयोगादेः ।७।२।४३।।

ऋदन्तात् संयोगादेः परयो लिङ्सिचोरिड् वा स्यात् तङि । स्तरिषीष्ट स्तृषीष्ट । अस्तरिष्ट—अस्तृत ।

विभाषेति—अभ्यास से परे चि के चकार को कुत्व विकल्प से हो, सन् और लिट् लकार परे रहते ।

लिट् लकार में द्वित्व करने पर 'चि चि अ' इस स्थिति में दूसरे चकार को प्रकृत सूत्र से कुत्वेन ककार, अजन्त लक्षणा वृद्धि होकर **चिकाय,** कुत्वाभाव पक्ष में चिचाय रूप होगा ।

इस लकार के दोनों पदों के सभी रूपों में यह कुत्व विकल्प होगा अतः सर्वत्र सभी वचनों में दो-दो रूप बनेंगे । चिक्यतुः चिच्यतुः, चिक्युः चिच्युः । धातु के अनिट् अजन्त होने से थल् परे विकल्पतः और क्रादिनियम से व म परे नित्य इट् होने से— चिकयिथ चिकेथ, चिचयिथ चिचेथ । चिक्यिव चिच्यिव, चिच्यिम चिक्यिम आदि रूप होंगे ।

आत्मने पद में अजादि प्रत्ययों के परे यण् और विकल्पतः कुत्व होकर चिक्ये चिच्ये आदि रूप होंगे ।

अनिट् होने से, केवल गुण होकर चेतासि चेतासे, लृट् में चेष्यति चेष्यते । लोट्—चिनोतु चिनुताम् । लङ्—अचिनोत् अचिनुत । वि० लि०—चिनुयात् चिन्वीत । आ० लिङ्—चीयात् चेषीष्ट । लुङ् में अट् सिच् आदि होकर त् परे ईट् इगन्तलक्षणा वृद्धि, षत्व—अचैषीत् । आत्मने पद में अट् सिच् गुण—अचेष्ट आदि, लृङ्—अचेष्यत् अचेष्यत आदि रूप होंगे ।

स्तृञ् आच्छादने—स्तृ धातु ढकने अर्थ में है ।

लट् में स्तृणोति, स्तृणुते आदि रूप बनेंगे । 'ऋवर्णान्नस्य' तिवातिक से णत्व ।

शर्पूर्वा इति—अभ्यास के शर्पूर्व (शर् प्रत्याहार जिसके पूर्व में हो) ऐसे खय् प्रत्याहारान्तर्गत वर्ण शेष रहते हैं, अन्य हल् वर्णों का लोप होता है ।

लिट् लकार में धातु को द्वित्व, अभ्यास संज्ञा, 'उरत्' से पूर्व ऋकार को अ, रपर, 'स्तर स्तृ अ' इस स्थिति में 'हलादिः शेषः' सूत्र से आदि हल् वर्ण सकार को छोड़कर अन्य हल- 'त र्' का लोप प्राप्त था, उसे बाध कर प्रकृत सूत्र से शर्पूर्व खय् वर्ण 'त' शेष रहेगा और स् र् का लोप हो जायेगा, तब 'त स्तृ अ' इस स्थिति में "ऋतश्च संयोगादे र्गुणः" सूत्र से ऋकार को गुण—'त स्तर् अ' इस स्थिति में उपधा वृद्धि होकर **तस्तार,** अतुस् परे भी गुण होकर **तस्तरतुः, तस्तरुः,** ऋदन्त होने से थल्

धूञ् कम्पने ।४।। धूनोति धूनुते। दुधाव; स्वरति—इति वेट्—दुधविथ दुधोथ।

(२७७) श्र्युकः किति ।७।२।११।।

श्रिञः एकाचः उगन्ताच्च गित् कितोरिण् न। पर मपि स्वरत्यादि विकल्पं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यात्, अनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमाद् नित्य मिट्। दुधुविव। दुधुवे। अधावीत् अधविष्ट—अधोष्ट। अधविष्यत् अधोष्यत् अधविष्यताम् अधोष्यताम्। अधविष्यत-अधोष्यत।

इति स्वादयः

में इट् नहीं होगा, व म परे क्रादिनियमात् इट् होगा—तस्तर्थ, तस्तरथुः तस्तर, तस्तार, तस्तर, तस्तरिव तस्तरिम।

आत्मने पद में भी "ऋतश्च संयोगादेः" सूत्र से गुण—तस्तरे, तस्तराते तस्तरिरे, तस्तरिषे तस्तराथे तस्तरिध्वे, तस्तरे, तस्तरिवहे तस्तरिमहे।

लुट् में अनिट् होने से इट् न होगा, गुण होकर स्तर्तासि, स्तर्तासे। ऋद्धनोः स्ये—इट् गुण—स्तरिष्यति स्तरिष्यते।

लोट्—स्तृणोतु स्तृणुताम्। लङ्—अस्तृणोत् अस्तृणुत, वि० लिङ् स्तृणुयात् स्तृण्वीत। आ० लिङ् में संयोगादि धातु होने से 'गुणोऽर्ति संयोगाद्योः' सूत्र से गुण होकर स्तर्यात् परस्मैपद में रूप होगा।

ऋत इति—ऋदन्त संयोगादि धातु से परे लिङ् और सिच् को इट् विकल्प से हो, आत्मने पद में।

आत्मने पद में 'स्तृ सी स् त' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से इट्, आर्धधातुक गुण षत्व ष्टुत्व होकर स्तरिषीष्ट, इडभाव पक्ष में, 'उश्च' से लिङ् के कित् होने से गुण न होगा तब स्तृषीष्ट इस प्रकार दो रूप होंगे।

इस इट् का आगम विधिलिङ् में इसलिये नहीं होता क्योंकि वहाँ सीयुट् के सकार का लोप हो जाता है।

लुङ् में 'अ स्तृ सिच् (स्) ई त्' इस स्थिति में ऋकार को इगन्त लक्षणा वृद्धि से आर् होकर अस्तार्षीत् अस्तार्ष्टाम्, अस्तार्षुः। अस्तार्षीः अस्तार्ष्टम् अस्तार्ष्ट अस्तार्षम् अस्तार्ष्व अस्तार्ष्म।

आत्मने पद में 'ऋतः संयोगादेः'—से इट् विकल्प, इट् पक्ष में गुण षत्व ष्टुत्व—अस्तरिष्ट, इडभाव पक्ष में 'उश्च' सूत्र से सिच् के कित् होने से गुण भी न होगा, अस्तृत यहाँ 'ह्रस्वादङ्गात्' सूत्र से सिच् के सकार को लोप भी हो जाता है, इस प्रकार आत्मने पद में दो-दो रूप बनेंगे। लृङ् में—ऋद्धनोः स्ये—से इट् गुण—अस्तरिष्यत् अस्तरिष्यत।

धूञ् कम्पने—धू धातु काँपने अर्थ में है।

लट् में धूनोति, धूनुते आदि रूप बनते हैं।

लिट् में द्वित्व अभ्यास कार्य 'दुधू अ' इस स्थिति में अजन्त लक्षणा वृद्धि, आव् आदेश—**दुधाव दुधुवतुः दुधुवुः** थल् परे 'स्वरति सूति—इत्यादि सूत्र से वैकल्पिक इट् होकर, गुण होने पर **दुधविथ**, इडभाव पक्ष में गुण **दुधोथ दुधुवथुः दुधुव, दुधाव दुधव**। व म प्रत्यय परे—

श्र्युक इति—श्रि और एकाच् उगन्त धातु से परे गित् कित् वलादि आर्धधातुक को इट् न हो।

परमपीति—यद्यपि विकल्पतः इट् विधान करने वाला, स्वरति सूति—सूत्र प्रकृत सूत्र की अपेक्षा पर है, तथापि प्रकृत सूत्र से उसका बाध होता है, क्योंकि इट् निषेध करने वाले सूत्र पहले कहे गये हैं, यदि उनका अग्रिम सूत्रों से बाध होता जायेगा तब तो सभी निषेध सूत्र व्यर्थ हो जायेंगे अतः निषेध प्रकरण के प्रथम प्रारम्भ करने के कारण, स्वरति—आदि वैकल्पिक इट् विधायक सूत्रों के पर होने पर भी इससे उनका बाध हो जायेगा। इस प्रकार प्रकृत सूत्र से स्वरति सूति—सूत्र को बाध कर इससे इट् निषेध प्राप्त होने पर, इसे भी बाध कर क्रादिनियम से व म परे नित्य इट् होगा—इस प्रकार व म परे **दुधुविव दुधुविम** रूप बनेंगे।

आत्मने पद में सामान्य विधि से **दुधुवे दुधुवाते दुधुविरे**, **दुधुविषे** आदि रूप होंगे।

लुट् में स्वरति सूति—सूत्र से विकल्पतः इट् होने से, **धवितासि** इडभाव में **धोतासि**, इसी प्रकार **धवितासे धोतासे**, लृट् में भी इट् विकल्प से **धविष्यति धोष्यति धविष्यते धोष्यते** आदि रूप बनेंगे।

लोट्—**धूनोतु धूनुताम्**। लङ्—**अधुनोत् अधूनुत**। वि० लि०—**धूनुयात् धून्वीत**। आ० लि०—**धूयात्**, इट् का विकल्प होने से **धविषीष्ट धोषीष्ट**। आदि रूप बनेंगे।

लुङ् लकार में च्लि को सिच् करने पर 'अ धू स् त्' इस स्थिति में 'स्वरति सूति—सूत्र से विकल्पतः इट् प्राप्त होता है, उसे बाध कर 'स्तु सु धूञ्भ्यः परस्मैपदेषु' इस विशेष सूत्र से नित्य इट् होता है, अतः 'अ धू इ स् ई त्' इस स्थिति में इगन्त लक्षणा वृद्धि से ऊकार को 'औ' आवादेश, 'इट् ईट्' से सकार लोप, दीर्घ होकर **अधावीत् अधाविष्टाम् अधाविषुः अधावीः अधाविष्टम् अधाविष्ट अधाविषम् अधाविष्व अधाविष्म** रूप बनेंगे।

आत्मने पद में स्वरति सूति—सूत्र से इट् पक्ष में गुण अवादेश षत्व ष्टुत्व होकर **अधविष्ट अधविषाताम्** अधविषत आदि रूप बनेंगे, किन्तु इट् के अभाव पक्ष में सिच् गुण षत्व ष्टुत्व होकर **अधोष्ट अधोषाताम्** इत्यादि रूप होंगे।

लृङ् लकार में स्वरतीति सूत्र से इट् पक्ष में गुण होकर अधविष्यत् इडभाव में अधोष्यत्। आत्मने पद में भी अधविष्यत अधोष्यत रूप होंगे।

इति स्वादिगणः

अथ तुदादिगण:

तुद व्यथने ॥१॥

(२७८) तुदादिभ्यः शः ।३।१।७७।।

शपोऽपवादः । तुदति, तुदते, तुतोद, तुतोदिथ, तुतुदे, तोत्ता, अतौत्सीत्, अतुत्त ।

णुद प्रेरणे ॥२॥ नुदति, नुदते । नुनोद, नोत्ता ।

तुद व्यथने—पीड़ा पहुँचाने अर्थ में 'तुद' धातु है ।

तुद से लेकर लिप् धातु तक दश धातुयें स्वरितेत् होने से उभयपदी हैं ।

तुदादिभ्य इति—कर्त्रर्थक सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते, तुदादिगण पठित धातुओं से 'श' प्रत्यय हो ।

शप इति—श प्रत्यय अपवाद होने से शप् प्रत्यय का बाधक है । यद्यपि दोनों में शकार की इत्संज्ञा लोप होने पर 'अ' ही शेष रहता है, तथापि दोनों में अन्तर यह है कि शप् प्रत्यय तो 'पित्' होता है, क्योंकि इसमें पकार की इत् संज्ञा होती है, अतः शप् परे तो गुण हो जाता है किन्तु 'श' प्रत्यय परे पित् भिन्न सार्वधातुक होने से 'सार्वधातुक मपित्' से यह ङिद्वत हो जाता है अतः क्ङितिचेति गुण का निषेध हो जाता है, अतः श प्रत्यय परे कहीं भी गुण नहीं होता, श प्रत्यय ङित्वत् हो जाता है अतः इसके परे ङित् निमित्तक संप्रसारण आदि कार्य अवश्य होते हैं । इसके अतिरिक्त शप् प्रत्यय के पित् होने से अनुदात्त और 'श' प्रत्यय में आद्युदात्त होता है ।

तुद धातु से लट् लकार में प्रकृत सूत्र से श प्रत्यय, शकार की इत् संज्ञा लोप होकर 'तुद अ ति' इस स्थिति में 'श' प्रत्यय के ङिद्वत् होने से लघूपध गुण का निषेध होकर **तुदति** आदि रूप बनते हैं । आत्मने पद में इसी प्रकार **तुदते** आदि रूप होते हैं ।

लिट् लकार में तिप्, णल्, द्वित्व, अभ्यास कार्य, गुण होकर **तुतोद**. **तुतुदतुः तुतुदुः**, थल् परे क्रादिनियम से नित्य इट् **तुतोदिथ** आदि रूप बनते हैं । आत्मने पद में 'असंयोगाल्लिट् कित्' सूत्र से कित् होने से कहीं भी गुण नहीं होगा, अतः **तुतुदे** आदि रूप बनते हैं ।

भ्रस्ज पाके ।।३।। 'ग्रहिज्या' इति संप्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन शः, शस्य जश्त्वेन जः—भृज्जति, भृज्जते ।

(२७९) भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम् ।६।४।४७।।

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने 'रम्' आगमो वा स्याद् आर्धधातुके । स्थान षष्ठी निर्देशाद् रोपधयो निवृत्तिः । बभर्ज बभर्जतुः, बर्भजिथ—बभर्ष्ठ । बभृज्ज बभ्रज्जतुः बभ्रज्जिथ । 'स्कोः' इति सलोपः 'व्रश्च' इति षः बभ्रष्ठ । बभर्जे—बभ्रज्जे । भर्ष्टा—भ्रष्टा । भर्क्ष्यति— भ्रक्ष्यति ।

यह धातु अनुदात्तोपदेश धातुओं में पठित होने से अनिट् है, अतः इसमें लुट् लृट् आदि में इट् नहीं होता, लुट् में लघूपध गुण और चर्त्वेन दकार को तकार होकर **तोत्ता** आदि, लृट् में **तोत्स्यति तोत्स्यते** आदि रूप बनेंगे ।

लोट् में **तुदतु, तुदताम्,** लङ् में **अतुदत्, अतुदत,** वि० लिङ् में **तुदेत्, तुदेत,** आ० लि० **तुद्यात्, तुत्सीष्ट ।**

लुङ् लकार में अट् सिच्—'अतुद स त्' इस स्थिति में हलन्त लक्षणा वृद्धि, ईट्, चर्त्व होकर **अतौत्सीत्,** सिच् लोप—**अतौत्ताम् अतौत्सुः । अतौत्सीः अतौत्तम् अतौत्त । अतौत्सम्, अतौत्स्व, अतौत्स्म ।** झलादि प्रत्यय परे सर्वत्र झलो झलि से सकार का लोप हो जाता है । आत्मने पद में भी झलादि प्रत्यय परे सकार का लोप होता है अन्यत्र लोप नहीं होता, अतः **अतुत्त अतुत्साताम् अतुत्सत । अतुत्थाः अतुत्साथाम् अतुद्ध्वम् । अतुत्सि अतुत्स्वहि, अतुत्स्महि**—रूप बनते हैं ।

लृङ् लकार में **अतोत्स्यत्** और **अतोत्स्यत** आदि रूप होंगे ।

णुद प्रेरणे—नुद धातु का अर्थ प्रेरित करना है, यह भी अनुदात्तोपदेश धातुओं में परिगणित होने से अनिट् है । इसके सभी रूप तुद धातु के समान ही बनते हैं लिट् में थल् परे क्रादिनियम से नित्य इट् होता है, 'श' प्रत्यय परे ङिद्वत् होने से लघूपध गुण नहीं होता, अन्यत्र लघूपध गुण होता है, यथास्थान चर्त्वेन दकार को तकार भी हो जाता है । यह धातु णोपदेश है अतः उपसर्गस्थ रकार से परे नकार को णत्व हो जाता है, **प्रणुदति** आदि ।

लट्—**नुदति नुदते** । लिट्—**नुनोद, नुनोदिथ, नुनुदे,** लुट्—**नोत्तासि नोत्तासे** । लृट्—**नोत्स्यति, नोत्स्यते,** लोट्—**नुदतु, नुदताम्,** लङ्—**अनुदत् अनुदत,** वि० लिङ्—**नुदेत् नुदेत,** आ० लि०—**नुद्यात् नुत्सीष्ट,** लुङ्—**अनौत्सीत्, अनुत्त ।** लृङ्—**अनोत्स्यत्, अनोत्स्यत** आदि ।

भ्रस्ज पाके—भ्रस्ज धातु का अर्थ भूनना है, यह अनिट् धातु है । लट् में भ्रस्ज धातु से 'श' प्रत्यय, प्रत्यय के ङिद्वत् होने से 'भ्रस्ज्-अ ति' और 'भ्रस्ज् अ त' इस स्थिति में उभयत्र ग्रहिज्येति सूत्र से रेफ को ऋकार संप्रसारण 'संप्रसारणाच्च' से अकार का पूर्व रूप, 'स्तोः श्चुना श्चुः' से सकार को शकार, और 'झलां जश् झशि' सूत्र से शकार को स्थान साम्य से जकार करने पर **भृज्जति, भृज्जतः,**

(वा) क्ङिति रमागमं बाधित्वा संप्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन। भृज्यात् भृज्यास्ताम्, भृज्यासुः। भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट। अभार्क्षीत्—अभ्राक्षीत्। अभर्ष्ट—अभ्रष्ट।

भृज्जन्ति, भृज्जसि, भृज्जथः भृज्जथ। (२) भृज्जामि, भृज्जावः, भृज्जामः। आत्मने पद में भृज्जते, भृज्जेते (३) भृज्जन्ते। भृज्जसे, भृज्जेथे, भृज्जध्वे। भृज्जे, भृज्जावहे, भृज्जामहे, रूप बनेंगे।

भ्रस्ज इति—आर्धधातुक परे रहते भ्रस्ज् धातु के रेफ और उपधा के स्थान में विकल्पतः रम् का आगम हो। रम् के आगम में अकार और मकार इत्संज्ञक हैं केवल 'र्' शेष रहता है। रमागम के मित् होने से वह अन्तिम स्वर से परे होता है।

स्थान षष्ठीति—प्रस्तुत सूत्र में "रोपधयोः" अर्थात् रेफ और उपधा के स्थान में रम् का आगम हो, ऐसा कहकर 'रोपधयोः' में स्थान षष्ठी का निर्देश किया गया है अतः रम् का आगम होने पर धातु का र् और उपधा स् की निवृत्ति हो जायेगी अर्थात् भ्रस्ज के स्थान पर 'भर्ज्' बन जायेगा लिट् लुट् लृट् आदि आर्धधातुक लकारों में ही यह सूत्र प्रवृत्त होता है और वह भी विकल्प से, रमागम के अभाव में 'भ्रस्ज' ऐसा ही रहता है।

लिट् लकार में तिप् णल् आदेश, 'भ्रस्ज् अ' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से रमागम करने पर 'भर्ज् अ' इस स्थिति में द्वित्व अभ्यास कार्य, 'अभ्यासे चर्च' से 'भ' को 'ब' करने पर **बभर्ज** रूप बनेगा। अतुस् परे **बभर्जतुः बभर्जुः**। थल परे विकल्पतः इट्, इट् पक्ष में **बभर्जिथ,** इडभाव पक्ष में 'बभर्ज् थ' इस स्थिति में 'व्रश्चभ्रस्ज' इत्यादि सूत्र से जकार को षकार, और ष्टुत्वेन थकार को ठकार करने पर **बभर्ष्ठ, बभर्जथुः, बभर्ज** आदि रूप बनेंगे।

रमागम के अभाव पक्ष में भ्रस्ज धातु को ही द्वित्व अभ्यास कार्य, अभ्यासे चर्च आदि होकर 'बभ्रस्ज् अ' इस स्थिति में सकार को 'स्तोः' सूत्र से शकार, शकार को 'झलां जश् झशि' से जकार होकर **बभ्रज्ज बभ्रज्जतुः** बभ्रज्जुः। थल् परे इट् पक्ष में **बभ्रज्जिथ**, इडभाव पक्ष में 'बभ्रस्ज् थ' इस स्थिति में संयोगादि होने से 'स्कोः' सूत्र से सकार का लोप, व्रश्चेति सूत्र से जकार को षकार, ष्टुत्वेन थकार को ठकार होकर **बभ्रष्ठ** रूप होगा **बभ्रज्जथुः बभ्रज्ज** आदि रूप बनेंगे। आत्मने पद में रमागम पक्ष में र् और स् के स्थान पर रम् (र्) का आगम करने पर बभर्जे बभर्जाते बभर्जिरे आदि रूप बनेंगे, रम के अभाव पक्ष में स् को श और श को ज कर के बभ्रज्जे बभ्रज्जाते बभ्रज्जिरे आदि रूप होंगे।

लिट् लकार में कहीं भी कित्ङित् परे न मिलने से 'ग्रहिज्या' सूत्र से संप्रसारण नहीं होता, संयोगपूर्व होने से यहाँ 'असंयोगाल्लिट् कित्' की प्रवृत्ति नहीं होती। लुट् लकार में 'भ्रस्ज् ता' इस स्थिति में रमागम, व्रश्चेति सूत्र से जकार को षत्व तकार को ष्टुत्वेन टकार होकर **भर्ष्टा**, रमागमाभावपक्ष में 'स्कोः' सूत्र से

कृष विलेखने ॥४॥ कृषति कृषते चकर्ष—चकृषे ।

(२८०) अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ।६।१।५९॥

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधः, तस्य 'अम्' वा स्यात् झलादौ अकिति । क्रष्टा कर्ष्टा । कृक्षीष्ट ।

(वा०) स्पृश् मृश् कृष् तृप् दृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः ।

अक्राक्षीत् अकार्क्षीत् अकृक्षत् । अकृष्ट अकृक्षाताम्, अकृक्षत ।

क्स पक्षे—अकृक्षत, अकृक्षाताम् अकृक्षन्त ।

मिल सङ्गमे ॥५॥ मिलति मिलते । मिमेल । मेलिता । अमेलीत् ।

सकार लोप, जकार को षत्व ष्टुत्व होकर भ्रष्टा आदि रूप बनेंगे । आत्मने पद में भी इसी प्रकार भर्ष्टा और भ्रष्टा आदि रूप होंगे ।

लृट् लकार में 'भ्रस्ज् स्य ति' इस स्थिति में रमागम पक्ष में 'भर्ज् स्य ति' होने पर व्रश्चेति सूत्र से जकार को षत्व, 'षढोः कः सि' सूत्र से षकार को ककार, ककार से परे प्रत्यय सकार को षत्व, क्+ष्='क्ष्' होकर **भर्क्ष्यति**, रमागमाभाव पक्ष में 'स्कोः' सूत्र से सकार का लोप, और पूर्ववत् जकार को षत्व, कत्व, पुनः षत्व, क्+ष्=क्षत्व होकर **भ्रक्ष्यति** आदि रूप होंगे, आत्मने पद में भी इसी प्रकार **भर्क्ष्यते भ्रक्ष्यते** आदि रूप बनेंने ।

लोट् में ग्रहिज्येति संप्रसारण, 'स्तोः' सूत्र से सकार को शकार, 'झलां जश् झशि' से शकार को जकार होकर **भृज्जतु भृज्जताम्** । लङ् में **अभृज्जत् अभृज्जत**, वि० लि० में **भृज्जेत् भृज्जेत** ।

वार्तिक क्ङितीति—कित् और ङित् आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते रमागम को बाध कर पूर्वविप्रति षेध से संप्रसारण हो ।

आ० लिङ् में 'भस्ज् यास् त्' इस स्थिति में किदाशिषि सूत्र से यासुट् के कित् होने से संप्रसारण और रम् का आगम दोनों प्राप्त होते हैं, प्रकृत वार्तिक से रमागम को बाध कर संप्रसारण पहले हो जाता है तब सकार को शकार और उसको जकार होकर **भृज्ज्यात्, भृज्ज्यास्ताम्, भृज्ज्यासुः** आदि रूप बनते हैं ।

आत्मने पद में 'भ्रस्ज् सीयुट सुट् त' करने पर रमागम—भर्ज, जकार को व्रश्चेति षकार, 'षढोः कः सि' से षकार को ककार, ककार से परे सीयुट् के सकार को षत्व क्+ष्=क्षत्व होकर **भर्क्षीष्ट**, रमागमाभाव पक्ष में सकार का 'स्कोः' से लोप, षत्व कत्व षत्व क्षत्व होकर **भ्रक्षीष्ट** आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् लकार परस्मैपद में अट् सिच् आदि करके 'अभ्रस्ज् स् त्' इस स्थिति में रमागम होकर 'अभर्ज् स् त्' इस दशा में हलन्त लक्षणा वृद्धि, ईट्, 'अभार्ज् स् ई त्' इस स्थिति में जकार को षत्व, कत्व, षत्व क्षत्व होकर **अभार्क्षीत्, अभार्ष्टाम्, अभार्क्षुः । अभार्क्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट । अभार्क्षम् अभार्क्ष्व अभार्क्ष्म** । रमागमा

भाव पक्ष में—**अभ्राक्षीत् अभ्राष्टाम् अभ्राक्षुः। अभ्राक्षीः अभ्राष्टम् अभ्राष्ट। अभ्राक्षम्, अभ्राक्ष्व अभ्राक्ष्म।**

आत्मने पद में रमागम होने पर 'अभर्ज् स त' इस स्थिति में 'झलो झलि' से सिच् लोप, जकार को षत्व ष्टुत्व होकर **अभर्ष्ट अभर्क्षाताम् अभर्क्षत। अभर्ष्ठाः अभर्क्षाथाम् अभर्ड्ढ्वम्। अभर्क्षि अभर्क्ष्वहि अभर्क्ष्महि।** रमागमाभाव पक्ष में 'अभ्रस्ज् स् त्' इस स्थिति में धातु के सकार का स्कोः सूत्र से लोप, सिच् के सकार का 'झलो झलि' से लोप, जकार को षत्व ष्टुत्व होकर **अभ्रष्ट अभ्रक्षाताम् अभ्रक्षत। अभ्रष्ठाः अभ्रक्षाथाम् अभ्रड्ढ्वम्। अभ्रक्षि, अभ्रक्ष्वहि अभ्रक्ष्महि।**

लृङ में रमागम पक्ष में **अभर्क्ष्यत्**, रमागमाभाव पक्ष में स लोप, जकार को सत्व कत्व षत्व क्षत्व होकर **अभ्रक्ष्यत्** आत्मने पद में अभर्क्ष्यत—अभ्रक्ष्यत।

कृष विलेखने—कृष धातु का अर्थ हल चलाना खींचना आदि है, यह भी अनिट् धातु है।

लट् में 'श' के ङिद्वत् होने से गुणाभाव—**कृषति कृषते।** लिट् में तिप् णल्, कृष् को द्वित्व उरत् हलादिः शेषः, कुहो श्चुः, गुण होकर **चकर्ष चकृषतुः चकृषुः।** क्रादिनियम से वलादि आर्धधातुक में नित्य इट्—**चकर्षिथ, चकृषथुः, चकृष। चकर्ष, चकृषिव, चकृषिम।** आत्मने पद में—**चकृषे चकृषाते, चकृषिरे। चकृषिषे, चकृषाथे, चकृषिढ्वे। चकृषे, चकृषिवहे, चकृषिमहे।**

अनुदात्तस्येति—उपदेश में अनुदात्त जो ऋदुपध धातु (वह धातु जिसकी उपधा में ह्रस्व ऋकार हो) उसको विकल्पतः अम् का आगम हो झलादि किद् भिन्न आर्धधातुक परे रहते।

लुट् लकार में 'कृष् ता' इस स्थिति झलादि किद् भिन्न प्रत्यय तास् परे प्रकृत सूत्र से अन्तिम स्वर ऋ के आगे अम् (अ) का आगम ऋकार को यण्, ष्टुत्वेन तकार को टकार होकर **क्रष्टा**, अम् से अभाव पक्ष में आर्धधातुक गुण होकर **कर्ष्टा** आदि रूप होंगे।

लृट् में अमागम पक्ष में 'षढोः कः सि' से ष् को क्, षत्व, क्षत्व, होकर **क्रक्ष्यति**, अम् के अभाव पक्ष में गुण होकर **कर्क्ष्यति।** आत्मने पद में **क्रक्ष्यते कर्क्ष्यते** आदि। लोट्—में **कृषतु कृषताम्।** लङ् में **अकृषत् अकृषत।** वि० लि० में **कृषेत् कृषेत।** आशीर्लिङ में **कृष्यात्** आत्मने पद में सीयुट् सुट् आदि करने पर 'कृष् सी स् त' धातु के षकार को कत्व, सीयुट् के सकार को षत्व और क् ष् को क्षत्व होकर **कृक्षीष्ट।** इस लकार में अम् का आगम नहीं होता क्योंकि 'लिङ सिचावात्मने पदेषु' सूत्र से लिङ् कित् हो जाता है।

(वा०) **स्पृश इति**—स्पृश् मृश् कृष् तृप् और दृप् धातुओं से परे च्लि को सिच् विकल्प से हो।

मुच्लृ मोचने ॥३॥

(२८१) शे मुचादीनाम् ।७।१।५९॥

मुच् लिप् विद् लुप् सिच् कृत् खिद् पिशां नुम् स्यात् शे परे ।

मुञ्चति मुञ्चते । मोक्ता । मुच्यात्, मुक्षीष्ट । अमुचत् अमुक्त अमुक्षाताम् ।

वस्तुत: इस धातु के शलन्त एवं अनिट् होने से यहाँ च्लि को क्स आदेश प्राप्त था उसे बाध कर वार्तिक से सिच् का विकल्पत: विधान किया गया है । सिच् होने पर अम् का आगम भी विकल्पत: होगा, अत: 'अ कृष् स ई त्' इस स्थिति में हलन्त लक्षणा वृद्धि षकार को क, सिच् के सकार को षत्व, क्षत्व और अम् का आगम होकर **अक्राक्षीत्**, जब अम् का आगम न होगा तब ऋकार को आर् वृद्धि होकर **अकार्क्षीत्**, जब च्लि को सिच् न होकर क्स् होगा तब उसके कित् होने से अम् का विकल्प न होगा, तब **अकृक्षत्** आदि तीन प्रकार के रूप होंगे ।

आत्मने पद में त परे सिच् पक्ष में झलो झलि से सिच् के सकार का लोप होने पर ष्टुत्व होकर **अकृष्ट** द्विवचन में **अकृषस्** आताम् इस स्थिति में 'षढो: क: सि' से ष् को क् षत्व और दोनों को क्षत्व होकर **अकृक्षाताम्**, झ परे झ को अत होकर **अकृक्षत, अकृष्ठा: अकृक्षाथाम् अकृड्ढ्वम् । अकृक्षि, अकृक्ष्वहि, अकृक्ष्महि ।** इन रूपों में 'लिङ् सिचाविति से सिच् के कित् होने से अमागम न होगा । जब च्लि को क्स होगा तब षकार को ककार और सकार को षत्व, क्षत्व होकर **अकृक्षत** रूप होगा, क्स् के कित् होने से यहाँ भी अम् न होगा, **अकृक्षाताम् अकृक्षन्त** आदि रूप बनेंगे । आताम् आदि अजादि प्रत्यय परे 'क्स स्याचि' से क्स् के अकार का लोप होता है, तब ष् को क् और षत्व क्षत्व होकर ये रूप बनते हैं । अकृक्षन्त में झ को अत नहीं हो पाता क्योंकि यहाँ क्स के अ के परे झ है अत: उसका अन्तादेश ही होता है । और कसस्याचि' से अकार लोप, कत्व षत्व होकर रूप बनता है । शेष रूप—**अकृक्षथा: अकृक्षाथाम्, अकृड्ढ्वम् । अकृक्षि, अकृक्षावहि अकृक्षामहि,** होंगे ।

लृङ् लकार में अम् विकल्प से **अक्रक्ष्यत् अकर्क्ष्यत् । अक्रक्ष्यत अकर्क्ष्यत** आदि रूप बनेंगे ।

मिल संगमे—मिल् धातु का अर्थ मिलना है और सेट् है ।

इसके रूप मिलति मिलते । मिमेल, मेलिता अमेलीत् आदि बनते हैं ।

मुच्लृ मोचने—मुच् धातु का अर्थ छोड़ना है और यह अनिट् है ।

शे इति—मुच् लिप् विद् लुप् कृत् खिद् और पिश् धातुओं को श प्रत्यय परे नुम् हो ।

लट् में नुम् (न्) होकर नकार को अनुस्वार पर सवर्ण होकर मुञ्चति आत्मने पद में भी इसी प्रकार मुञ्चते ।

लुप्लृ छेदने ॥७॥ लुम्पति लुम्पते । लोप्ता । अलुपत् ।

अलुप्त । विद्लृ लाभे ॥८॥ विन्दति विन्दते । विवेद विविदे, व्याघ्रभूति मते सेट्—वेदिता, भाष्यमते अनिट्—परिवेत्ता ।

षिच् क्षरणे ॥९॥ सिञ्चति सिञ्चते ।

(२८२) **लिपि सिचि ह्वश्च ।३।१।५३॥**

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् । असिचत् ।

(२८३) **आत्मनपदेष्वन्यतरस्याम् ।३।१।५४॥**

लिपि सिचि ह्वः परस्य च्लेरङ् वातङि । असिचत असिक्त ।

लिट् में—**मुमोच मुमुचतुः मुमुचुः । मुमोचिथ मुमुचथुः, मुमुच । मुमोच मुमुच मुमुचिव मुमुचिम् ।** आत्मने पद में—**मुमुचे मुमुचाते मुमुचिरे । मुमुचिषे, मुमुचाथे मुमुचिध्वे । मुमुचे मुमुचिवहे मुमुचिमहे ।** लुट्—**मोक्तासि मोक्तासे ।** लृट्—चकार को कुत्व षत्व क्षत्व होकर—**मोक्ष्यति मोक्ष्यते ।** लोट—'शे मुचादीनाम्' नुम्—**मुञ्चतु, मुञ्चताम् ।** लङ्—**अमुञ्चत् अमुञ्चत ।** वि० लिङ्—**मुञ्चेत् मुञ्चेत ।** आशीर्लिङ्—**मुच्यात्,** आत्मने पद में "लिङ्सिचौ—इति कित्त्वात् न गुण :—कुत्व षत्व क्षत्व होकर **मुक्षीष्ट ।** लुङ् में धातु के लृदित् होने से 'पुषादिद्युतादिलृदितः—इति च्लेरङ् ङित्त्वान्न गुणः—**अमुचत्,** आत्मने पद में झलो झलि से लोप कुत्व—**अमुक्त,** अजादि प्रत्यय परे सिच् लोप न होने से कुत्व षत्व क्षत्व होकर **अमुक्षाताम्, अमुक्षत । अमुक्थाः अमुक्षाथाम् अमुग्ध्वम् । अमुक्षि अमुक्ष्वहि अमुक्ष्महि ।** लृङ् में कुत्व, षत्व, क्षत्व होकर अमोक्ष्यत् अमोक्ष्यत ।

लुप्लृ छेदने—लुप् धातु का अर्थ लोप करना है यह अनिट है, और मुचादि के अन्तर्गत होने से इसमें सर्वत्र 'श' प्रत्यय परे नुम् होता है, लृदित् होने से लुङ् में परस्मैपद में च्लि को अङ् होता है। इस प्रकार इसके सभी रूप मुच् धातु के समान ही बनते हैं । **लुम्पति लुम्पते ।** लोप्ता अलुपत् अलुप्त ।

विद्लृ लाभे—विद् धातु का अर्थ प्राप्त करना है। इसके भी सभी रूप मुच् धातु के समान ही दोनों पदों में बनते हैं, लृदित् होने से च्लि को अङ् भी होता है सार्वधातुक लकारों में नुम् होता है । भाष्यकार के मत में यह धातु अनिट् है, अतः लुट् में **वेत्ता** रूप होगा जैसा कि 'परिवेत्ता' इस उदाहरण में देखा जाता है ज्येष्ठ के पूर्व ही जो कनिष्ठ भ्राता विवाह कर लेता है, उसे **परिवेत्ता** (विद्+तृच्) कहा जाता है। किन्तु व्याघ्रभूति आचार्य के मत से यह धातु सेट् है, अतः वेदिता रूप बनेगा। इसी प्रकार इट् के स्थल में अन्यत्र भी विकल्प होगा। लट् में **विन्दति विन्दते,** लिट् में विवेद विविदे । विन्दतु विन्दताम् अविन्दत् अविन्दत विन्देत् विन्देत विद्यात् आदि रूप बनेंगे ।

लिप् उपदेहे ॥१०॥ उपदेहो वृद्धिः। लिम्पति लिम्पते। लेप्ता अलिपत् अलिपत अलिप्त। इत्युभयपदिनः।

कृती छेदने ॥११॥ कृन्तति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति। कर्त्स्यति। अकर्तीत्।

खिद् परिघाते ॥१२॥ खिन्दति। चिखेद। खेत्ता।

पिश् अवयवे ॥१३॥ पिंशति। पेशिता।

ओव्रश्चू छेदने ॥१४॥ वृश्चति। वव्रश्च। वव्रश्चिथ वव्रष्ठ। व्रश्चिता। व्रष्टा। व्रश्चिष्यति व्रक्ष्यति। वृश्च्यात्। अव्रश्चीत् अव्राक्षीत्।

षिच् क्षरणे—सिच् धातु का अर्थ सींचना है। षोपदेश होने से इक् से परे सर्वत्र सकार को मूर्धन्यादेश हो जाता है। लट् में पूर्ववत् सिञ्चति सिञ्चते। लिट् में—**सिषेच सिषिचतुः सिषिचुः। सिषेचिथ, सिषिचथुः सिषिच। सिषेच सिषिचिव सिषिचिम। सिषिचे सिषिचाते सिषिचिरे। सिषिचिषे, सिषिचाथे सिषिचिध्वे। सिषिचे सिषिचिवहे सिषिचिमहे।** लुट्—**सेक्तासि सेक्तासे।** लृट्—**सेक्ष्यति ते,** लोट्—**सिञ्चतु सिञ्चताम्। असिञ्चत् असिञ्चेत। सिञ्चेत् सिञ्चेत। सिच्यात् सिक्षीष्ट।**

लिपीति—लिप् सिच् और ह्वेञ् धातुओं से परे च्लि को अङ् हो।

लुङ् लकार में च्लि को अङ् होकर **असिचत् असिचताम् असिचन्। असिचः असिचतम् असिचत। असिचम् असिचाव असिचाम।** रूप बनेंगे।

आत्मनेपदेष्विति—लिप् सिच् और ह्वेञ् धातुओं से परे च्लि को अङ् विकल्प से हो आत्मने पद में।

आत्मने पद में प्रकृत सूत्र च्लि को अङ् होने पर **असिचत, असिचेताम् असिचन्त। असिचथाः असिचेथाम् असिचध्वम्। असिचि असिचावहि असिचामहि,** रूप बनेंगे। जब प्रकृत सूत्र से च्लि को अङ् न होगा, तब उसे सिच् हो जायेगा और झलो-झलि से सकार लोप कुत्व होकर **असिक्त** रूप होगा। शेष रूपों के अजादि प्रत्ययों में कुत्व षत्व क्षत्व होकर **असिक्षाताम् असिक्षत। असिक्थाः असिक्षाथाम् असिग्ध्वम् असिक्षि असिक्ष्वहि असिक्ष्महि** रूप बनेंगे लृङ् में—असेक्ष्यत् असेक्ष्यत रूप होंगे।

लिप् उपदेहे—लिप् धातु का अर्थ लीपना है। यह भी उभय पदी अनिट् धातु है।

इस धातु से सभी रूप मुच् धातु के समान ही बनते हैं, लिम्पति लिम्पते। लिलेप लिलिपे। लेप्ता। लेप्स्यति ते, आदि, लुङ् के परस्मैपद में नित्य अङ् और आत्मने पद में विकल्पतः अङ् होने से, मुच् के समान ही अलिपत्, अलिपत अलिप्त रूप होंगे।

इतने ही धातु इस गण के उभय पदी हैं।

व्यच् व्याजीकरणे ।।१५।। विचति । विव्याच विविचतुः । व्यचिता ।

व्यचिष्यति । विच्यात् । अव्याचीत् अव्यचीत् । व्यचेः कुटादित्वमनसि इति तु नेह प्रवर्तते । अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात् ।

कृती छेदने—कृत धातु काटने अर्थ में है, यह सेट् परस्मैपदी धातु है, मुचादि में परिगणित होने से इसके सार्वधातुक लकारों में नुम् भी होता है ।

लट्—**कृन्तति**, लिट्—**चकर्त**, लुट्—**कर्तिता**, लृट् लकार में "सेऽसिचि कृतचृतछृदतृदनृतः" सूत्र से विकल्पतः इट् होने से **कर्तिष्यति कर्त्स्यति । कृन्ततु । अकृन्तत् । कृन्तेत्, कृत्यात् । अकर्तीत्** आदि रूप बनते हैं ।

खिद परिघाते—खिद् धातु का अर्थ है खिन्न करना । यह भी अनिट् परस्मैपदी तथा मुचादिगण में पठित है । इसके रूप **खिन्दति । चिखेद । खेत्ता** आदि बनते हैं ।

पिश अवयवे—पिश धातु पीसने अर्थ में है और सेट् है । इसमें भो 'श' प्रत्यय परे नुम् होता है ।

पिंशति । पिपेश । पेशिता । पेशिष्यति । पिंशतु । अपिंशत् । पिंशेत् । पिश्यात् । अपेशीत् । अपेशिष्यत् ।

ओव्रश्चू छेदने—व्रश्च धातु का अर्थ काटना है, यह धातु परस्मैपदी है, ऊदित् होने से इसमें विकल्पतः इट् होता है ।

लट् में 'व्रश्च् श (अ) ति' इस स्थिति में अपित् सार्वधातुक होने से ङित्वद् होने के कारण 'ग्रहिज्येति' संप्रसारण, अकार का पूर्वरूप होकर वृश्चति वृश्चतः वृश्चन्ति आदि रूप होंगे । लिट् में तिप् णल् (अ) होकर व्रश्च् व्रश्च् द्वित्व अभ्यास के व्रश्च् के 'र' को 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' से 'ऋ' संप्रसारण, अकार का पूर्वरूप, ऋकार को उरत् से 'अ' रपर हलादि शेषः से लोप होकर वव्रश्च रूप होगा । अतुस् परे पूर्ववत् वव्रश्च् + अतुस् = वव्रश्चतुः, वव्रश्चुः । यहाँ 'असंयोगाल्लिट् कित्' से लिट् को कित् न होगा क्योंकि यहाँ संयोग ही है । कित् न होने से ग्रहिज्या से संप्रसारण न होगा । थल् परे ऊदित् होने से विकल्पतः इट् होगा, इट् पक्ष में **वव्रश्चिथ,** इडभाव पक्ष में 'वव्रश्च् थ' इस स्थिति में सकार का संयोगादि लोप, चकार को व्रश्चेति से षकार ष्टुत्वेन थकार को ठकार होकर **वव्रष्ठ** रूप होगा, **वव्रश्चथुः वव्रश्च, वव्रश्च, वव्रश्चिव, वव्रश्चिम ।** व म परे ऊदित् होने से स्वरतीत्यादि सूत्र से प्राप्त वैकल्पिक इट् को बाध कर क्रादिनियम से नित्य इट् होगा ।

लुट् में ऊदित् होने से विकल्पतः इट्, इट् पक्ष में **व्रश्चिता** इडभाव पक्ष में सकार का संयोगादि लोप, चकार को षत्व ष्टुत्व होकर **व्रष्टा**, रूप होगा ।

लृट् में भी इसी प्रकार इट् पक्ष में **व्रश्चिष्यति,** इडभाव पक्ष में 'व्रश्च् स्य ति' इस स्थिति में सकार का संयोगादि लोप, व्रश्चेति चकार को षकार, षकार को ककार षत्व, क् + ष् = क्षत्व होकर **व्रक्ष्यति** रूप होगा ।

उछि उञ्छे ॥१३॥ उञ्छति । 'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम् इति यादवः ।

लोट् में श प्रत्यय परे 'ग्रहिज्या' से संप्रसारण **वृश्चतु । अवृश्चत् । वृश्चेत् ।** किदाशिषि से यासुट् के कित् होने से यहाँ भी संप्रसारण होकर **वृश्च्यात्** आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् में इट् पक्ष में 'अव्रश्च् इ स् ई त्' इस स्थिति में **अव्रश्चीत्** रूप बनेगा, शेष रूप—**अव्रश्चिष्टाम् अव्रश्चिषुः । अव्रश्चीः अव्रश्चिष्टम् अव्रश्चिष्ट । अव्रश्चिषम्, अव्रश्चिष्व अव्रश्चिष्म,** होंगे ।

इडभाव पक्ष में 'अ व्रश्च स् ई त् । इस स्थिति में हलन्त लक्षणा वृद्धि, चकार को षत्व, षकार को ककार, सकार को षत्व क्+ष्=क्ष् होकर **अव्राक्षीत्** रूप बनेगा । शेष रूप **अव्राष्टाम् अव्राक्षुः । अव्राक्षीः, अव्राष्टम् अव्राष्ट । अव्राक्षम् अव्राक्ष्व अव्राक्ष्म ।** ताम् तम् और त परे तो धातु के सकार का संयोगादि लोप, सिच् के सकार का झलो झलि से लोप, चकार को व्रश्चेति षकार और ष्टुत्वेन तकार को टकार होगा । अन्यत्र जहाँ सिच् का लोप नहीं होता, वहाँ सर्वत्र चकार को षकार, षकार को ककार, सिच् के सकार को षत्व और क्षत्व होकर रूप बनते हैं । लृङ् में इट् विकल्प से अव्रश्चिष्यत् और अव्रक्ष्यत् रूप बनते हैं ।

व्यच् व्याजीकरणे—व्यच् धातु का अर्थ ठगना है, यह भी सेट् धातु है ।

सार्वधातुक लकारों में 'श' प्रत्यय के अपित् सार्वधातुक होने से ङित् होने के कारण सर्वत्र 'ग्रहिज्या सूत्र से संप्रसारण विधि से यकार की इ, अकार का पूर्वरूप हो जाता है, आशीर्लिङ् में किदाशिषि से यासुट् के कित् होने से ग्रहिज्या—से संप्रसारण होता है ।

लट् में 'व्यच् अ ति' इस स्थिति में संप्रसारण होकर विचति आदि रूप बनेंगे ।

लिट् में द्वित्व होकर 'व्य व्यच् अ' इस स्थिति में "लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' से अभ्यास यकार को संप्रसारण, अकार का पररूप उपधावृद्धि होकर **विव्याच** रूप होगा । अतुस् आदि कित् लिट् परे द्वित्व से पूर्व संप्रसारण होकर विच् विच् द्वित्व होगा । **विविचतुः विविचुः ।** विव्यचिथ, विविचथुः विविच । विव्याच विव्यच, विविचिव विविचिम ।

लुट् में सेट् होने से इट् होकर व्यचिता, लृट् में व्यचिष्यति । लोट्—विचतु, लङ्—अविचत्, वि० लि०—विचेत्, आ० लि०—विच्यात् आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् में 'अ व्यच् इ स् ई त्' इस स्थिति में 'इट ईट्' से सिच् लोप, हलन्त लक्षणा वृद्धि के 'नेटि' सूत्र से निषेध हो जाने पर 'अतो हलादे र्लघोः' सूत्र से विकल्पतः वृद्धि होकर अव्याचीत् अव्यचीत् आदि दो-दो रूप बनेंगे ।

व्यचेरिति—व्यच् धातु को अस् भिन्न प्रत्यय परे रहते कुटादि गण में समझना चाहिए । यह वार्तिक अस् भिन्न सिच् आदि के स्थल में प्रवृत्त नहीं होगा । क्योंकि

ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु ॥१७॥ ऋच्छति । ऋच्छत्यॄताम् इति गुणः, द्विहलग्रहणस्यानेक हलुपलक्षणत्वान्नुट्-आनर्च्छ, आनर्च्छतुः । ऋच्छिता ।

उज्झ उत्सर्गे ॥१८॥ उज्झति ।

लुभ विमोहने ॥१९॥ लुभति ।

(२८४) तीषसहलुभरुषरिषः ।७।२।४८॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात् ।

लोभिता लोब्धा । लोभिष्यति ।

वार्तिक में 'अनसि' में नञ् पर्युदासार्थक है । इस पर्युदास के स्थल में तद्भिन्न तत्सदृश अर्थ लिया जाता है । अतः अनसि का अर्थ होगा—अस् भिन्न अस् सदृश अर्थात् कृत् प्रत्यय परे ही व्यच् धातु को कुटादि माना जायेगा, सिच् प्रत्यय कृत् नहीं है अतः यहाँ उसे कुटादि नहीं माना जायेगा । फलतः गाङ् कुटादिभ्यः—सूत्र से सिच् तास् स्य आदि ङित् न होंगे, अन्यथा सिच् के ङित् होने से वृद्धि न होती, लुट् और लृट् में ङित् होने से संप्रसारण होने लगता ।

उछि उञ्छे -इस धातु का अर्थ उञ्छ वृत्ति से अर्थात् शिला बीन कर निर्वाह करना है । खेतों से अन्न के कण-कण चुनने को उञ्छ कहा जाता है, और कनियों का संग्रह शिल कहा जाता है । यह धातु इदित् अर्थात् उछि के इकार की इत् संज्ञा होने से यह धातु इदित् कहा जायेगा, फलतः इदितो नुम्—से नुम् (न्) का आगम और अनुस्वार पर सवर्ण होकर उञ्छ बन जाता है, प्रयोग में उञ्छ् ही आता है ।

लट् में उञ्छति आदि रूप होंगे । उञ्छ् धातु में नुम् होने पर ञ्छ्, इस संयोग से पूर्व 'उ' को गुरु माना जायेगा, क्योंकि संयोग से पूर्व वर्ण गुरु होता है, अतः यह गुरुमान् एवं इजादि बन जायेगा फलतः लिट् लकार में 'इजादेश्च गुरुमतो—सूत्र से आम् होकर लिट् लोप और पुनः लिट् सहित कृ भू अस् का अनु—प्रयोग होगा अतः लिट् में **उञ्छाञ्चकार** आदि रूप होंगे लुट्—**उञ्छिता,** लृट्—**उञ्छिष्यति,** लोट्—**उञ्छतु,** आट्, वृद्धि होकर लङ् में **औञ्छत्,** वि० लि०—**उञ्छेत्,** आ० लिङ्—**उञ्छ्यात्,** लुङ्—**औञ्छीत्,** लृङ्—**औञ्छिष्यत्** ।

ऋच्छ—यह धातु जाना इन्द्रिय नाश, निश्चेट बन जाना आदि अर्थों में है, यह सेट् धातु है ।

लट् में **ऋच्छति** आदि रूप बनेंगे ।

लिट् में "ऋच्छ+णल् (अ)" इस स्थिति में 'ऋच्छत्यॄताम्' सूत्र से ऋकार को अर् गुण होकर 'अर्च्छ अ' इस स्थिति में द्वित्व और अभ्यास कार्य होने पर 'अ अर्च्छ' इस स्थिति में 'तस्मान्नुड् द्विहलः' सूत्र से नुट् (न्) का आगम होकर आनर्च्छ आनर्च्छतुः आनर्च्छुः आदि रूप बनेंगे ।

तृप तृम्फ तृप्तौ ॥२०।२१॥ तृपति । ततर्प । तर्पिता । अतर्पीत् । तृम्फति ।

(वा०) शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः ।

आदि शब्दः प्रकारे । तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः ।

ततृम्फ, तृम्फ्यात् ।

मृड पृड सुखने ॥२२।२३॥ मृडति । पृडति ।

शुन गतौ ॥२४॥ शुनति ।

इषु इच्छायाम् ॥२५॥ इच्छति । एषिता । एष्टा । एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् ।

'तस्मान्नुड्द्विहलः' सूत्र में 'द्विहल' का तात्पर्य है कि धातु में एक हल् न हो, दो या तीन हल् वर्ण हों, द्विहलः का यह अर्थ नहीं कि उसमें केवल दो ही हल हों। अधिक न हों, अर्थात् द्विहल ग्रहण अनेक हल् का उपलक्षण है। इसलिये ऋच्छधातु में गुण करने पर 'अर्च्छ' बन जाने पर भी यहाँ तस्मान्नुडिति सूत्र से नुट् हो जायेगा यद्यपि इसमें र् च् छ् ये तीन हल् हैं।

लुट् में इट् होकर ऋच्छिता, लृट् ऋच्छिष्यति, लोट्—ऋच्छतु, लङ्—आर्च्छत्, वि० लि० ऋच्छेत्, आ० लिङ्—ऋच्छ्यात्, लुङ्—आर्च्छीत् आर्च्छिष्टाम् आर्च्छिषुः इत्यादि रूप होंगे।

उज्झ उत्सर्गे—उज्झ धातु का अर्थ छोड़ना है, सेट् धातु है। लट् में उज्झति। लिट् में इजादि गुरु मान् होने से 'इजादेश्च' सूत्र से आम् कृ का अनुपयोग होकर उज्झाञ्चकार आदि रूप होंगे, लुट्—उज्झिता, लृट्—उज्झिष्यति, लोट्—उज्झतु, लङ् औज्झत्, वि० लिङ्—उज्झेत्, आ० लि०—उज्झ्यात्,। लुङ्-औज्झीत् लृङ्—औज्झिष्यत्।

लुभ विमोहने—लुभ धातु मोहित होना अर्थ में है, यह भी सेट् है।

तीषेति—इष्, सह, लुभ् रुष् रिष् धातुओं से परे तकारादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से हों।

लट् में लुभति, लुट् लकार में तकारादि आर्धधातुक परे प्रकृत सूत्र से इट् होने पर गुण होकर लोभिता रूप बनेगा। इडभाव-पक्ष में 'लुभ्+ता' इस स्थिति में "झषस्तथोर्धोऽधः" सूत्र से तकार को धकार पूर्व भकार को जश्त्वेन बकार होकर लोब्धा रूप बनेगा।

लृट् लकार में 'लुभ् स्य ति' 'इस स्थिति' इट् गुण होकर लोभिष्यति रूप होगा। लोट्—लुभतु, लङ्—अलुभत्, वि० लि०—लुभेत्, आ० लि०—लुभ्यात्, लुङ्—अलोभीत्, अलोभिष्यत्।

तृप् तृम्फ तृप्तौ—तृप् और तृम्फ धातु तृप्त होने अर्थ में सेट् हैं। लट्—तृपति, लिट्—ततर्प, लुट्—तर्पिता, लुङ् में अतर्पीत् रूप होगे। तृम्फ धातु का लट् में

कुट कौटिल्ये ॥२६॥ "गाङ्कुटादीति ङित्त्वम्—चुकुटिथ। चुकोट चुकुट। कुटिता।

पुट् संश्लेषणे ॥२७॥ पुटति। पुटिता।

स्फुट् विकसने ॥२८॥ स्फुटति। स्फुटिता।

स्फुट् स्फुल् संचलने ॥२९।३०॥ स्फुटति। स्फुलति।

(२८५) स्फुरति स्फुलत्यो र्निर्निविभ्यः ।८।३।७६॥

षत्वं वा स्यात्। निष्फुरति निस्फुलति।

तृम्फति रूप बनेगा। यहाँ तृम्फ् धातु से 'श' प्रत्यय करने पर 'तृम्फ् अ ति' इस स्थिति में अपित् सार्वधातुक 'श' विकरण के ङिद्वत् होने से "अनिदितां हल उपधायाः—सूत्र से नकार का लोप होकर, पुनः 'शे तृम्फादीनाम्' वार्तिक से नुम् होगा, नकार को नश्चेति—सूत्र से अनुस्वार और पर सवर्ण मकार होकर तृम्फति रूप होगा।

शे तृम्फादीनाम्—तृम्फ आदि धातुओं को नुम् का आगम होता है।

इस वार्तिक में आदि शब्द का अर्थ "सदृश या प्रकार" है अतः इसका अर्थ है—तृम्फ सदृश जो इस प्रकरण के धातु अर्थात् जिनके साथ नकार जुड़ा हुआ है ऐसे जो धातु उन सबमें प्रकृत वार्तिक से नुम् होता है, पहले तो अनुनासिक वर्ण का 'अनिदिताम्—सूत्र से लोप हो जाता है तदनु इस वार्तिक से नुम् होकर पुनः वैसा ही बन जाता है।

लिट् में ततृम्फ, लुट् में तृम्फिता, लृट् में तृम्फिष्यति, लोट्—तृम्फतु, अतृम्फत्, तृम्फेत्, आ० लिङ् में भी यासुट् के कित् होने से अनिदिताम्—सूत्र से अनुनासिक लोप और पुनः वार्तिक से नुम् होकर तृम्फ्यात् रूप होगा।

तृम्फादि धातुओं में प्रायः नकार को अनुस्वार पर सवर्ण होकर उत्तर वर्ण के अनुसार उसी वर्ग का पञ्चमाक्षर अनुनासिक वर्ण हो गया है, अतः 'अनिदिताम्—सूत्र की दृष्टि में यह अनुस्वार पर सवर्ण विधि असिद्ध है, उसकी दृष्टि में सर्वत्र नकार है, अतः वह उसका लोप कर देता है और पुनः नुम् के नकार को अनुस्वार पर सवर्ण होकर वैसा ही रूप बन जाता है।

मृड पृड सुखने—ये दोनों धातु सुख देने अर्थ में हैं, सेट् है। अतः इनके रूप=मृडति पृडति। ममर्ड पपर्ड। मर्डिता पर्डिता। अमर्डीत् अपर्डीत् आदि बनते हैं।

शुन गतौ—शुन धातु जाने अर्थ में है और सेट् है।

शुनति। शुशोन। शोनिता। शोनिष्यति। शुनतु। अशुनत्। शुनेत्। शुन्यात्। अशोनीत्। अशुनोष्यत् आदि रूप होंगे।

इषु इच्छायाम्—इष् धातु इच्छा करने अर्थ में है।

लडादि सार्वधातुक लकारों में "इषुगमियमां छः" सूत्र से षकार को छकार होगा और छकार परे तुक् का आगम तथा तकार को चकार होकर सर्वत्र 'च्छ' बन

णू स्तवने ॥३१॥ परिणूतगुणोदयः । नुवति । नुविता ।

टुमस्जो शुद्धौ ॥३८॥ मज्जति । ममज्ज । मस्जिनशोरिति नुम् ।

(वा०) मस्जेरन्त्यात् पूर्वोनुम वाच्यः । संयोगादि लोपः ।

ममङ्क्थ ममज्जिथ । मङ्क्ता । मङ्क्ष्यति । अमाङ्क्षीत्, अमाङ्क्ताम् अमाङ्क्षुः ।

जायेगा, अतः लट्—इच्छति, लोट्—इच्छतु, आट्, वृद्धि होकर लङ् में ऐच्छत्, विधिलिङ् में इच्छेत् आदि रूप बनेंगे।

लिट् में इयेष ईषतुः ईषुः आदि रूप बनेंगे।

लुट् में 'तीस सहलुभ् इत्यादि सूत्र से विकल्पतः इट् होने से गुण होकर एषिता, इडभाव में ष्टुत्व होकर एष्टा आदि रूप होंगे। आ० लि० में इष्यात् और लुङ् में आट्, वृद्धि, इट् सिच् ईट् त् इस स्थिति में सिच् लोप होकर ऐषीत् ऐषिष्टाम् ऐषिषुः। ऐषीः, ऐषिष्टम् ऐषिष्ट। ऐसिषम् ऐसिष्व ऐसिषिष्म रूप बनेंगे।

कुट् कौटिल्ये—कुट धातु कुटिलता करने अर्थ में है।

लट्—कुटति, कुटतः, कुटन्ति। लिट्—चुकोट—चुकुटिथ। चुकोट चुकुट। थल् परे इडागम होने पर 'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्' सूत्र से थल् को ङित् होने से क्ङिति चेति निषेध से गुण न होगा। लुट् में धातु के सेट् होने से कुटिता रूप बनेगा यहाँ भी पूर्ववत् तस् प्रत्यय के ङित् होने से गुण न होगा। शेष रूप—लृट्—कुटिष्यति, लोट्—कुटतु, लङ्—अकुटत्, वि० लि०—कुटेत्, आ० लि० कुट्यात्, लुङ अकुटीत्, लृङ्—अकुटिष्यत्।

पुट् संश्लेषणे—पुटति। पुटिता आदि कुट् धातु के समान रूप बनेंगे। संश्लेषण का अर्थ है—जोड़ना।

स्फुट् विकसने—स्फुट धातु खिलने अर्थ में है। इसके भी रूप कुटादिगण में होने के कारण कुट् धातु वत् बनते हैं।

स्फुर् स्फुल् संचलने—इन दोनों का अर्थ हिलना या चेष्टा करना है।

स्फुरतीति—निर् नि और वि उपसर्गों से परे इन दोनों धातुओं (स्फुर् स्फुल्) के सकार को षत्व विकल्पतः होता है।

लट् में नि+स्फुरति, और 'नि+स्फुलति' में प्रकृत सूत्र से षत्व होने पर निष्फुरति निष्फुलति। षत्वा भावपक्ष में निस्फुरति निस्फुलति रूप बनते हैं।

शेष लकारों में इनके रूप—पुस्फोट पुस्फोल, स्फुरिता स्फुलिता। स्फुरतु स्फुलतु। अस्फुरत् अस्फुलत्। स्फुरेत् स्फुलेत्। स्फुर्यात् स्फुल्यात्, अस्फुरीत् अस्फुलीत्।

णू स्तवने—नू धातु दीर्घ ऊकारान्त और सेट् है, इसका अर्थ स्तुति करना है। "परिणूत गुणोदयः" यह काव्योदाहरण इसलिये दिखलाया गया है जिससे कि णू धातु का दीर्घ ऊकारान्त होना प्रमाणित हो सके। क्त प्रत्ययान्त 'परिणूत' उदाहरण देने का

रुजो भङ्गे ।।३३।। **रुजति । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षत् ।**

भुजो कौटिल्ये ।।३४।। **रुजिवत् ।**

विश प्रवेशने ।।३५।। **विशति ।**

तात्पर्य यह है कि तिङन्त में इस धातु के समस्त रूपों में कहीं भी दीर्घ ऊकारान्त रूप नहीं मिलता, क्योंकि सार्वधातुक लकारों में तो सर्वत्र श प्रत्यय होता है और 'सार्वधातुक मपित्' के अनुसार वह ङिद्वत् हो जाता है अतः गुण न होकर सर्वत्र उवङ होने से ह्रस्व नु ही मिलता है, आर्धधातुक लकारों में इट् होने पर धातु के कुटादि होने पर ङिद्वत् भाव हो जाने से उवङ् होकर 'नु' ही मिलता है, लुङ् लकार में हलन्त लक्षणा वृद्धि हो जाती है अतः कहीं भी दीर्घ ऊकार नहीं मिलता, उवङ तो ह्रस्व उकार को भी होता है अतः तिङन्त रूपों में दीर्घ ऊकारान्त रूप न मिलने से, क्त प्रत्ययान्त रूप को प्रमाण के रूप में प्रयुक्त किया है, क्त प्रत्यय परे उवङ् नहीं होता है अतः यहाँ दीर्घ ऊकार का स्पष्ट श्रवण होता है । अतः दीर्घ ऊकार का पाठ निष्प्रयोजन नहीं है । यदि यहाँ यह आशंका की जाय, कि दीर्घ ऊकारान्त होने से यह धातु सेट् है अतः क्त प्रत्यय करने पर भी इट् हो जायेगा और फलतः वहाँ उवङ् हो जायेगा, तो दीर्घ ऊकार वहाँ भी न मिलेगा फिर दीर्घ ऊकारान्त पाठ का क्या प्रयोजन होगा, तो इसका समाधान यह है कि वहाँ 'श्र्युकः किति' सूत्र से इट् का निषेध होता है अतः उवङ् नहीं हो सकता, वहाँ दीर्घ ऊकारान्त रूप मिलता ही है, अतएव कृदन्त रूप को उदाहरण के रूप में लिखा गया है ।

लट् में 'नू अ ति' इस स्थिति में 'अचिश्नु' सूत्र से उवङ् होकर **नुवति**, लङ् में अनुवत्, वि० लिङ् में नुवेत् रूप होंगे लिट् में 'नू न अ' इस स्थिति में अभ्यास ऊकार को ह्रस्व, दूसरे ऊकार को 'अचोञ्णिति' से वृद्धि आवादेश, नुनाव लुट् में 'नू इ ता' यहाँ कुटादि होने से ङित्त्वात् गुण निषेध होने पर उवङ् होकर **नुविता** लृट्—**नुविष्यति** आ० लि० नूयात्, लुङ्—हलन्त लक्षणावृद्धि—अनावीत् अनाविष्टाम् अनाविषुः । लृङ् में **अनुविष्यत्** ।

टुमस्जो शुद्धौ—मस्ज धातु शुद्ध करने या स्नान करने अर्थ में है, यह अनिट् धातु है, इसमें टु अनुबन्ध का फल अथुच् प्रत्यय करना है 'ट्वितोऽथुच्' मज्जथुः । ओदित् होने से इस धातु से क्त और क्तवतु प्रत्यय के तकार को 'ओदितश्च' से नकार हो जाता है अतः मग्नः मग्नवान् रूप बनते हैं ।

मस्ज् धातु से लट् में 'मस्ज् अ ति' इस स्थिति स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से सकार को शकार तथा झलां जश झशि' सूत्र से उसका जकार होकर मज्जति आदि रूप बनते हैं ।

लिट् में धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य श्चुत्व जश्त्व होकर **ममज्ज ममज्जतुः ममज्जुः** । थल् परे धातु के तास् परे नित्य अनिट् और अकारवान् होने से विकल्पतः इट् होगा, इट पक्ष में तो **ममज्जिथ**—रूप बनेगा । इडभाव पक्ष में द्वित्व अभ्यास कार्य

करके 'म मस्ज् थ' इस स्थिति में 'मस्जिनशोर्झलि' सूत्र से नुम् का आगम्। नुम् के मित् होने से 'मिदचोऽन्त्यात्परः' सूत्र नियम के अनुसार यह नुमागम अन्तिम स्वर के बाद अर्थात् मस्ज् के मकार के बाद प्राप्त होता है, यदि ऐसा हो जाता तब "म म न् स् ज् थ" ऐसी स्थिति में 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' सूत्र से संयोगादि न मिलने से सकार का लोप नहीं हो सकता था, अतः—

(वा०) **मस्जेरिति**—मस्ज् धातु के अन्तिम वर्ण से पूर्व नुम् का आगम करना चाहिये।

प्रस्तुत वार्तिक से जकार के पूर्व नुम् का आगम होगा, फलतः 'म म स् न् ज् थ' ऐसी स्थिति होगी और संयोगादि होने से सकार का लोप हो जायेगा, जकार को कुत्वेन गकार, और गकार को चर्त्वेन ककार, नकार को अनुस्वार और अनुस्वार का 'क' परे पर सवर्ण ङकार होकर **'ममङ्कथ'** रूप बनेगा। ममज्जथुः ममज्ज आदि। लुट् में अनिट् होने से इडभाव, नुम, सकार लोप, पूर्ववत् कुत्व, चर्त्व, अनुस्वार पर सवर्ण होकर **मङ्क्ता** आदि रूप होंगे। लृट् में 'मस्ज्-स्यति' इस स्थिति में पूर्वोक्त प्रकार से नुम्, सलोप, कुत्व चर्त्व, अनुस्वार, पर सवर्ण, ककार से परे 'स्य' के सकार को षत्व, क्+ष्=क्ष् होकर **मङ्क्ष्यति** आदि रूप होंगे। लोट् लङ् वि० लिङ् में क्रमशः मज्जतु, अमज्जत्, मज्जेत् आदि रूप बनेंगे।

लुङ् में अट् तिप् च्लि सिच् ईट नुम् सलोप होकर 'अ म न् ज् स ई त्' इस स्थिति में धातु को वृद्धि, नकार को अनुस्वार, जकार को कुत्व, चर्त्व, क से परे सिच् सकार को षत्व, पर सवर्ण, क्+ष्=क्ष् होकर **अमाङ्क्षीत्** रूप बनेगा। द्विवचन में ताम् परे झलो झलि से सकार का लोप होकर शेष कार्य सब पूर्ववत् होंगे अर्थात् नुम् संयोगादि लोप, कुत्व चर्त्व अनुस्वार पर सवर्ण आदि होकर **अमाङ्क्ताम्,** बहुवचन में सिजभ्यस्ते ति झि को जुस् (उस्) होने पर सिच् लोप न होगा, अतः शेष सभी कार्य—नुम्, संयोगादि लोप, वृद्धि, कुत्व, चर्त्व, अनुस्वार पर सवर्ण, षत्व क्षत्व होकर **अमाङ्क्षुः** रूप बनेगा। इसी प्रकार शेष रूप अमाङ्क्षीः अमाङ्क्तम् अमाङ्क्त। अमाङ्क्षम् अमाङ्क्ष्व अमाङ्क्ष्म होंगे।

रुजोभङ्गे—रुज् धातु तोड़ने अर्थ में है, यह भी अनिट् और ओदित् धातु है, इसके भी ओदित् होने का फल निष्ठा परे तकार का नकार होना है जिससे रुग्णः रुग्णवान् रूप बनते हैं। वस्तुतः रोग से पीड़ा पहुँचाने अर्थ में इसका प्रयोग होता है। इसी धातु से घञ् प्रत्यय करने पर रोगः शब्द बनता है, विपादिका (बिवाई) **रुजति** (पीड़ित करती है) अनिट् होने से लुट् में इट् न होगा, लघूपध गुण, कुत्व तथा चर्त्व होकर **रोक्ता** रूप बनेगा। लृट् में गुण, कुत्व, चर्त्व ककार से पर प्रत्यय सकार को षत्व क्षत्व होकर **रोक्ष्यति रूप बनेगा।**

लोट् आदि लकारों में **रुजतु, अरुजत्, रुजेत्, रुज्यात्** रूप होंगे लुङ् में 'अ रुज् सिच् (स्) ईट् त्' इस स्थिति में, हलन्त लक्षणा वृद्धि, कुत्व चर्त्व षत्व क्षत्व

मृश आमर्शने ॥३६॥ आमर्शनं स्पर्शः । अनुदात्तस्य चर्दुप धस्यान्यतरस्याम्—अम्राक्षीत् अमार्क्षीत्, अमृक्षत् ।

षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु ॥३७॥ सीदतीत्यादि ।

शद्लृ शातने ॥३८॥

होकर, अरौक्षीत्, झलो झलि-सलोप-अरौक्ताम्, अरौक्षुः । अरौक्षीः, अरौक्तम्, अरौक्त । अरौक्षम्, अरौक्ष्व, अरौक्ष्म, रूप होंगे ।

भुजो कौटिल्ये—भुज् धातु कुटिल गति होने अर्थ में है । यह भी अनिट् और ओदित् है, ओदित् होने का फल निष्ठा प्रत्यय में भुग्नः आदि में देखा जाता है । इसके सभी रूप रुज् धातु के समान बनते हैं—**भुजति**, भोक्ता, भोक्ष्यति, अभौक्षीत् इत्यादि ।

विश प्रवेशने—विश धातु प्रवेश करने अर्थ में हैं ।

लट्—विशति । लिट्—विवेश, लुट्—वेष्टा, लृट्—वेक्ष्यति, लोट्—विशतु, लङ्—**अविशत्**, वि० लिङ्—**विशेत्**, आ० लिङ्—**विश्यात्**, लुङ्—**अविक्षत्** । लृङ्—**अवेक्ष्यत्** ।

मृश आमर्शने—आमर्शने स्पर्शः अर्थात् मृश् धातु स्पर्श करने अर्थ में है । यह भी अनिट् धातु है ।

लट्—**मृशति** । लिट्—**ममर्श** । लुट्—**मर्ष्टा**, लृट्—**मर्क्ष्यति** (षढोः कः सि, कत्व षत्व क्षत्व) लोट्—**मृशतु**, **अमृशत्**, **मृशेत्**, **मृश्यात्**, लुङ् में **अम्राक्षीत्**—यहाँ 'स्पृश् मृश कृष् तृप् दृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः' इस वार्तिक से 'शल इगुपधादनिटः क्सः' सूत्र से प्राप्त क्स को बाध कर च्लि को सिच् विकल्प से होगा, जब सिच् होगा तब 'अ मृश् स ई त्' इस स्थिति में 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यरस्याम्' सूत्र से विकल्पतः अम् का आगम होगा, अम् पक्ष में 'अ मृ अम् (अ) श् स ई त्' इस स्थिति में ऋकार को यण् (र्) और अकार को हलन्त लक्षणा वृद्धि करके 'अम्राश् स ई त्' इस स्थिति में श् को ष (व्रश्चेति) 'षढोः कः सि' ष् को क्, क् से परे स् को षत्व, क्+ष्=क्ष् होकर **अम्राक्षीत्** । द्विवचन में ईट् नहीं होता, पूर्ववत् सब कार्य करके ष्टुत्वेन ताम् के तकार को टकार होकर **अम्राष्टाम्**, क्षत्व होकर **अम्राक्षुः** । पूर्ववत्—**अम्राक्षीः**, **अम्राष्टम्**, **अम्राष्ट** । **अम्राक्षम्**, **अम्राक्ष्व**, **अम्राक्ष्म**, रूप बनेंगे ।

अमागम के वैकल्पिक होने से जब अम् का आगम न होगा, तब मृश् के ऋकार को आर् वृद्धि, शेष कार्य पूर्ववत् होकर **अमार्क्षीत्**, **आमार्ष्टाम्**, **अमार्क्षुः** । **अमार्क्षीः**, **अमार्ष्टम्**, **अमार्ष्ट** । **अमार्क्षम्**, **अमार्क्ष्व**, **अमार्क्ष्म** रूप होंगे ।

जब च्लि को वैकल्पिक होने से सिच् न होगा, तब क्स् हो जायेगा, क्स् के कित् होने से वृद्धि न होगी, और सिच् न होने से ईट् भी न होगा, शेष कार्य पूर्ववत् ही होंगे, तब **अमृक्षत्**, **अमृक्षताम्** **अमृक्षन्** । **अमृक्षः** **अमृक्षतम्**, **अमृक्षत** । **अमृक्षम्**, **अमृक्षाव**, **अमृक्षाम्** रूप बनेंगे । इस प्रकार परस्मैपद में ही तीन प्रकार के रूप होंगे । लृङ् में **अमर्क्ष्यत्** आदि रूप बनेंगे ।

(२८६) शदेश्शितः ।१।३।६०।।

शिद्भाविनोऽस्माल्लङानौ स्तः । शीयते । शीयताम् । अशीयत । शीयेत । शशाद । शत्ता । शत्स्यति । अशदत् । अशत्स्यत् ।

कॄ विक्षेपे ।।३६।।

(२८७) **ॠत इद्धातोः ।७।१।१००।।**

ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात् । किरति । चकार । चकरतुः चकरुः । करीता करिता । कीर्यात् ।

षद्लृ विसरणगत्यवसादनेषु—सद् धातु करना, जाना, दुखी होना अर्थों में है, और अनिट् भी है, लृदित् होने से इसमें च्लि को "पुषादिद्युतादि"—सूत्र से अङ् होता है।

सभी सार्वधातुक लकारों—लट् लोट् लङ् विधि लिङ् में "पाघ्राध्मा—सूत्र से सद् धातु को सीद आदेश हो जाता है।

लट्—**सीदति**, लोट्—**सीदतु**, लङ्—**असीदत**, विधिलिङ्—**सीदेत्**। लिट् में **ससाद**, एत्वाभ्यास लोप—**सेदतुः, सेदुः**। लुट् में चर्त्व होकर **सत्ता**, लृट्—में **सत्स्यति**, आशीर्लिङ्—**सद्यात्**, लुङ्—च्लि को अङ् होकर **असदत्**, **असत्स्यत्**। **शद्लृ शातने**—शद धातु नाश होने अर्थ में है, अनिट् और लृदित् है, अतः च्लि को अङ् होता है।

शदेश्शितः इति—शद् धातु जब शिद्भावी हो अर्थात् जब उससे शित् प्रत्यय आने वाला हो, तब उससे तङ् और आन अर्थात् 'तङानावात्मने पदम्' के अनुसार आत्मने पद के प्रत्यय हों। 'तुदादिभ्यः शः' से सार्वधातुक लकारों—लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में श प्रत्यय होता है, शकार की इत् संज्ञा होने से यह शित् हो जाता है, अतः इस सूत्र से इन चार सार्वधातुक लकारों में त आताम् झ आदि आत्मनेपद प्रत्यय होंगे, शेष लकारों में परस्मैपद के ही प्रत्यय होंगे। उक्त चार सार्वधातुक लकारों में ही शद् धातु को "पाघ्राध्मा—सूत्र में शीय आदेश भी होगा, अतः लट्—में **शीयते**, लोट् में—**शीयताम्**, लङ् में **अशीयत**, वि० लि० में **शीयेत** आदि रूप बनेंगे।

लिट्—में **शशाद शेदतुः शेदुः**। लुट् में **शत्ता**, लृट् में **शत्स्यति**, आ० लिङ् में **शद्यात्**, लुङ् में **अशदत्**, लृङ्—में **अशत्स्यत्**।

कॄ विक्षेपे—कॄ धातु फैलाने या बिखेरने अर्थ में है, और यह सेट् धातु है।

ॠत इति—दीर्घ ॠकारान्त धातु के अंग को इत् आदेश हो। 'कॄ अ ति' इस स्थिति में ॠ को इ और उरण रपरः से रपर अर्थात् इर् होगा अतः लट् में किरति आदि रूप होंगे। लिट् में कॄ णल् (अ) इस स्थिति में "ॠच्छत्यॄताम्" सूत्र से ॠकार को अर् गुण होकर कर् कर् द्वित्व अभ्यासकार्य, कुहोश्चुः क को च, उपधा वृद्धि होकर **चकार**, अतुस् उस् परे **चकरतुः**, चकरुः, इसी प्रकार अन्य रूप बनेंगे।

(२८८) किरतौ लवने ।६।१।१४०॥

उपात् किरतेः सुट् छेदने । उपस्किरति ।

(वा०) अडभ्यास व्यवायेऽपि सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम् । उपास्किरत् । उपचस्कार ।

(२८९) हिंसायां प्रतेश्च ।६।१।१४१॥

उपात् प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम् ।

उपस्किरति । प्रतिस्किरति ।

लुट् लकार में इट्, ॠकार को गुण—अर् होकर 'कर् इ ता' इस स्थिति में 'वॄतोवा' सूत्र से इट् को विकल्पतः दीर्घ होकर **करीता करिता** रूप बनेंगे। शेष रूप—**किरतु,, अकिरत् किरेत्** । आ० लिङ् में यासुट् के कित् होने से 'ॠतइद्धातोः' सूत्र से ॠकार को इर्, 'हलिच' सूत्र से दीर्घ होकर **कीर्यात्** आदि रूप बनेंगे।

लुङ् में 'अ कॄ इ स ई त्' इस स्थिति में गुण वृद्धि होकर अकारीत् अकारिष्टाम् अकारिषुः । अकारीः, अकारिष्टम् अकारिष्ट अकारिषम् अकारिष्व अकारिष्म, रूप होंगे। लृङ् में अकरिष्यत् ।

किरताविति—उप उपसर्ग से परे कॄ धातु को सुट् का आगम हो, काटने अर्थ में।

उपस्किरति—यहाँ प्रकृत सूत्र से सुट् का आगम हुआ है।

(वा०) अदभ्यासेति—अट् और अभ्यास के व्यवधान होने पर भी सुट् का आगम ककार से पूर्व ही हो।

लङ् लकार में उप+अकिरत् इस दशा में अट् का व्यवधान होने पर क से पूर्व ही प्रकृत वार्तिक के अनुसार 'किरतौ लवने' सूत्र से सुट् का आगम होकर **उपास्किरत्** रूप बनता है। लिट् लकार में 'उप+चकार' यहाँ अभ्यास चकार का व्यवधान होने पर भी प्रकृत वार्तिक के अनुसार क से पूर्व सुट् का आगम होकर **उपचस्कार** रूप बनेगा।

हिंसायामिति—उप और प्रति उपसर्ग से परे कॄ धातु को सुट् का आगम हो, हिंसा अर्थ में—

उपस्किरति प्रतिस्किरति इन दोनों उदाहरणों में हिंसा अर्थ में प्रकृत सूत्र से सुट् का आगम हुआ है।

गॄ निगरणे—गॄ धातु निगलने अर्थ में है और सेट् है।

अचीति—अजादि प्रत्यय परे रहते गॄ धातु के रेफ को लकार विकल्प से हो।

लट् में 'गॄ अ ति' इस स्थिति में 'ॠत इद्धातोः' से इर् होकर **गिरति,** 'अचि विभाषा' से रेफ को पक्ष में लकार होने पर **गिलति** आदि रूप होंगे।

लिट् में 'ॠच्छत्यॄताम्' से गुण होकर गर् गर् द्वित्व वृद्धि होकर **जगार,** पाक्षिक लत्व होकर **जगाल,** थल परे **जगरिथ जगलिथ** आदि रूप बनेंगे।

गॄ निगरणे ॥४०॥

(२९०) अचि विभाषा ।८।२।२१॥

गिरते रेफस्य लोऽजादौ प्रत्यये । गिरति । गिलति । जगार जगाल । जगरिथ जगलिथ । गरीता गरिता गलीता गलिता ।

प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् ॥४१॥ ग्रहिज्या इति संप्रसारणम्—पृच्छति । पप्रच्छ, पप्रच्छतुः, पप्रच्छुः । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । अप्राक्षीत् ।

मृङ् प्राणत्यागे ॥४२॥

(२९१) म्रियते र्लुङ् लिङोश्च ।१।३।६१॥

लुङ् लिङोः शितश्च प्रकृति भूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र । रिङ्, इयङ्— म्रियते । ममार । मर्ता । मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत ।

पृङ व्यायामे ॥४३॥ प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः । 'व्यापप्रे, व्यापप्राते, व्यापरिष्यते । व्यापृत, व्यापृषाताम् ।

लुट् इट् होने पर **गरिता** 'वॄतोवा' से वैकल्पिक दीर्घ होकर **गरीता,** लकार के विकल्प से **गलिता** और **गलीता,** लृट् में **गरिष्यति गरीष्यति गलिष्यति गलीष्यति** । लोट्—**गिरतु,** लङ्—**अगिरत** वि० लि०—**गिरेत्,** आ० लिङ् में रर् और हलि च से दीर्घ होकर **गीर्यात,** लुङ् में **अगारीत् । अगालीत्, अगारिष्टाम् अगालिष्टाम्,** आदि रूप बनेंगे, लृङ् में **अगारिष्यत्** अगालिष्यत् ।

प्रच्छ-ज्ञीप्सायाम्—प्रच्छ-धातु पूँछने अर्थ में है, और अनिट् है । सार्वधातुक लकारों में सर्वत्र 'ग्रहिज्या' सूत्र से रेफ को ऋकार सम्प्रसारण और ऊकार का पूर्व रूप होकर **पृच्छति, पृच्छतु, अपृच्छत्, पृच्छेत्** आदि रूप होंगे ।

लिट् में **पप्रच्छ पप्रच्छतुः पप्रच्छुः** आदि रूप होंगे । लुट् में व्रश्चेति सूत्र से 'च्छ' को षकार और ष्टुत्व होकर **प्रष्टा** आदि, लृट् में षकार होकर 'षढोः कः सि' से षकार को ककार, प्रत्यय सकार को षत्व, क्+ष्=क्ष होकर **प्रक्ष्यति** । आ० लिङ् यासुट् के कित् होने से संप्रसारण होकर **पृच्छ्यात्** लुङ् में 'अ प्रच्छ् स ई त्' इस स्थिति में च्छ को व्रश्चेति षकार 'षढोः कः सि' ककार, षत्व क्षत्व होकर **अप्राक्षीत्**, अप्राष्टाम्, अप्राक्षुः । अप्राक्षीः, अप्राष्टाम्, अप्राष्ट । अप्राक्षम, अप्राक्ष्व, अप्राक्ष्म । इन सभी रूपों में झलोझलि से सिच् के सकार का लोप हो जायेगा, च्छ को ष् हो जायेगा । लृङ्—अप्रक्ष्यत् ।

मृङ प्राणत्यागे—मृङ् धातु मरने अर्थ में है, और यह अनिट् है ।

म्रियतेरिति— लुङ् और लिङ् तथा **शित्** के प्रकृतिभूत अर्थात् सार्वधातुक लकारों के विषय में अर्थात् लङ् वि० लिङ्, आ० लिङ, लट् लोट् लुङ् में मृ धातु से तङ् अर्थात् आत्मनेपद के प्रत्यय हों, अन्यत्र नहीं, अर्थात् शेष लिट्, लुट्, लृट् और लृङ् लकारों में परस्मैपद हो । लट् लकार में प्रकृत सूत्र से आत्मनेपद होने पर 'मृ

जुषी प्रीतिसेवनयोः ।।४४।। जुषते, जुजुषे ।

ओविजी भयचलनयोः ।।४५।। प्रत्येणायमुत्पूर्वः । उद्विजते ।

(२९२) विज इट् ।१।२।२।।

विजः परस्य इडादिप्रत्ययो ङिद्वत् । उद्विजिता ।

इति तुदादयः

अ त' इस स्थिति में ''रिङ् शयग् लिङ्क्षु'' सूत्र से धातु के ऋकार को 'रि' आदेश, इकार का इयङ् आदेश, होने पर **म्रियते म्रियेते म्रियन्ते** आदि रूप होंगे, इसी प्रकार लोट् में **म्रियताम्**, लङ् से **अम्रियत** । विधिलिङ् **म्रियेत**, आ० लिङ् में सीयुट् सुट्, 'उश्च' सूत्र से सीयुट् के कित् होने से ऋकार को गुण निषेध होकर **मृषीष्ट** रूप बनेगा लिट् में मृ मृ द्वित्व अभ्यास कार्य और 'अचोञ्णिति' से दूसरे ऋकार को आर् वृद्धि होकर **ममार** आदि रूप होंगे, लुट् में गुण होकर **मर्ता**, लृट् में 'ऋद्धनोः स्ये' इट् होकर **मरिष्यति**, लुङ् में **'ह्रस्वादङ्गात्'** सूत्र से सिच् का लोप होकर **अमृत अमृषाताम् अमृषत । अमृथाः, अमृषाथाम् अमृड्ढ्वम्, अमृषि, अमृष्वहि अमृष्महि** रूप होंगे लृङ् में अमरिष्यत् आदि रूप बनेंगे ।

पृङ् व्यायामे—पृ धातु चेष्टा करने अर्थ में है, और अनिट् है । इस धातु का प्रायः प्रयोग वि और आङ् (आ) पूर्वक होता है, यह आत्मनेपदी धातु है । इस धातु में भी सार्वधातुक लकारों में 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' सूत्र से ऋकार को 'रि' और अचिश्नु—से इकार को इयङ् होकर व्याप्रियते, लोट् **व्याप्रियताम् व्याप्रियत व्याप्रियेत** आदि रूप होंगे । आ० लिङ् **व्यापृषीष्ट**, लिट् में पृ पृ द्वित्व वृद्धि **व्यापप्रे** व्यापप्राते आदि, लुट् में व्यापर्ता, लृट् में **'ऋद्धनोः स्ये'** से इट् व्यापरिष्यते, लुङ् में 'ह्रस्वादङ्गात्' सिच् लोप—व्यापृत व्यापृषाताम् व्यापृषत आदि रूप होंगे, लृङ् में व्यापरिष्यत आदि ।

जुषी प्रीतिसेवनयोः—यह धातु प्रीति और सेवा करने अर्थ में है, ईदित् होने से निष्ठा परे इट् निषेध होकर जुष्टः जुष्टवान् आदि प्रयोग होते हैं । धातु आत्मनेपदी है । लट्—जुषते, लिट्—जुजुषे, लुट्—जोषिता, लृट्—जोषिष्यते । लोट्—जुषताम्, लङ्—अजुषत, वि० लिङ्—जुषेत, आ० लिङ्—जोषिषीष्ट, लुङ्—अजोषिष्ट, लृङ्—अजोषिष्यत ।

ओविजी भयचलनयोः यह धातु भय और कांपने अर्थ में है । आत्मनेपद सेट् है, ओदित् होने से निष्ठा परे तकार का नकार और ईदित् होने से इट् का निषेध होकर इसका उद्विग्नः उद्विग्नवान् रूप होता है । इसका भी प्रयोग प्रायः उत् उपसर्ग पूर्वक होता है ।

विज इति—विज् धातु से परे इडादि प्रत्यय ङित् वत् हो । ङिद्वत् होने का फल गुण निषेध है । लुट् में इट् होने पर प्रकृत सूत्र से ङिद्वत् होने से गुण न होकर उद्विजिता उद्विजिष्यते रूप होंगे, लोट् में **उद्विजताम् । उदविजत । उद्विजेत । उद्विजिषीष्ट** । लुङ् **उदविजिष्ट । उदविजिष्यत** आदि रूप बनेंगे ।

इति तुदादयः

अथ रुधादयः

रुधिर् आवरणे ॥१॥

(२६३) रुधादिभ्यः श्नम् ।३।१।७८॥

शपोऽपवादः । रुणद्धि । श्नसोरल्लोपः—रुन्धः, रुन्धन्ति । रुणत्सि, रुन्धः, रुन्ध । रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः । रुन्धे, रुन्धाते, रुन्धते । रुरोध, रुरुधे । रोद्धा । रोत्स्यते । रुणद्धु रुन्धात्, रुन्धाम्, रुन्धन्तु । रुन्धि, रुणधानि, रुणधाव, रुणधाम । रुन्धाम्, रुन्धाताम्, रुन्धताम् । रुन्त्स्व रुणधै, रुणधावहै, रुणधामहै । अरुणत् अरुणद्, अरुन्धाम्, अरुन्धन् । अरुणत् अरुणः । अरुन्ध, अरुन्धताम्, अरुन्धत । अरुन्धाः । रुन्ध्यात् । रुन्धीत । रुध्यात्, रुत्सीष्ट । अरुधत्, अरौत्सीत् । अरुद्ध, अरुत्साताम्, अरुत्सत । अरोत्स्यत् अरोत्स्यत ।

रुधिर् आवरणे—रुधिर् (रुध्) धातु रोकने या घेरने अर्थ में है, यह अनिट् और इर् इत् संज्ञक है। इरित् होने का फल "इरितो वा" सूत्र से लुङ् लकार में च्लि को विकल्पतः अङ् होना है। रुधिर् धातु से लेकर उतृदिर् धातु तक सभी धातु इरित् और उभयपदी हैं।

रुधादिभ्य इति—रुध् आदि धातुओं से परे 'श्नम्' प्रत्यय होता है। श्नम् में शकार मकार की इत् संज्ञा होकर केवल 'न' शेष रहता है, यह श्नम् निरवकाश होने से शप् का अपवाद है। लट् लकार प्रथम पुरुषैक वचन में 'रुध् ति' इस स्थिति में मित् होने के कारण श्नम् (न) का आगम 'मिदचोऽन्त्यात्परः' नियम के अनुसार 'रु' के आगे होगा, तब 'रु न ध् ति' इस स्थिति में "झषस्तथोर्धोऽधः" सूत्र से तकार को धकार, और नकार को णकार तथा धकार को जश्त्वेन दकार होकर 'रुणद्धि' रूप बनेगा। द्विवचन में इसी प्रकार 'रु न ध् तस्' इस स्थिति में अपित् सार्वधातुक तस् के ङिद्वत् होने से, तस् परे "श्नसोरल्लोपः' सूत्र से नकार के अकार का लोप होगा, 'रु न् ध् त स्' इस स्थिति में अनुस्वार की दृष्टि में णत्व के असिद्ध होने से नश्चापदान्तस्येति सूत्र से नकार का अनुस्वार और धकार के परे अनुस्वार का नकार पर सवर्ण

भिदिर् विदारणे ।।२।। छिदिर् द्वैधीकरणे ।।३।। युजिर् योगे ।।१।।

होगा, पुनः नकार का णत्व इसलिए नहीं होता, क्योंकि णत्व की दृष्टि में पर सवर्ण असिद्ध होता है। तस् के तकार को 'झषस्तथोः—सूत्र से धकार, पूर्व धकार का 'झरो-झरि सवर्णे, सूत्र से विकल्पतः लोप होकर **रुन्धः** रूप होगा, लोपाभाव पक्ष में **रुन्द्धः** रूप बनेगा। बहुवचन में झि को अन्तादेश 'रु न ध् अन्ति' इस स्थिति में नकार के अकार का श्नसोरल्लोपः से लोप, अनुस्वार पर सवर्ण होकर **रुन्धन्ति**। म० पु० एकवचन में श्नम् करने पर नकार को णत्व, धकार को चर्त्वेन तकार होकर **रुणत्सि** द्वि०वचन में थस् के थकार को 'झषस्तथोः—सूत्र से धकार, प्रथम धकार का 'झरोझरि' से लोप, नकार के अकार का लोप होकर **रुन्धः**, थ परे भी इसी प्रकार **रुन्ध** रूप होगा, उ० पु० एकवचन में **रुणध्मि**, द्विवचन और बहुवचन में क्रमशः **रुन्ध्वः रुन्ध्मः** रूप होंगे।

आत्मनेपद में सभी प्रत्ययों के अपित् सार्वधातुक होने से ङित्वत् हो जाने से सर्वत्र अकार का लोप हो जायेगा।

झषस्तथोः—से तकार को धकार होने पर पूर्व धकार का लोप होगा, इस प्रकार **रुन्धे रुन्धाते रुन्धते**, चर्त्व—**रुन्त्से रुन्धाथे रुन्ध्वे**। **रुन्धे रुन्ध्वहे, रुन्ध्महे**, रूप बनेंगे।

लिट् में **रुरोध रुरुधतुः रुरुधुः**। **रुरोधिथ रुरुधथुः रुरुध**। **रुरोध रुरुधिव रुरुधिम**। आत्मनेपद में—**रुरुधे रुरुधाते रुरुधिरे, रुरुधिषे, रुरुधाथे, रुरुधिध्वे**। **रुरुधे रुरुधिवहे रुरुधिमहे**।

लुट् में 'रुध+ता' इस स्थिति में तकार का धकार, और धातु के धकार को जश्त्वेन दकार, लघूपध गुण होकर **रोद्धासि रोद्धासे**। लृट् लकार में गुण चर्त्व होकर **रोत्स्यति, रोत्स्यते**। लोट् में श्नम् (न) करने पर णत्व, जश्त्वेन धातु के धकार को दकार, प्रत्यय तकार को धकार होकर **रुणद्धु**, तातङ् पक्ष में 'त' को 'ध' करने पर पूर्वधकार का लोप, नकार के अकार का लोप होकर **रुन्धात्**, ताम् परे 'त' को ध, पूर्वधकार लोप, **रुन्धाम्** रुन्धन्तु। म० पु० एकवचन में रुन्ध् + सि, सि को हि, और 'हुझल्भ्यो हेर्धि' हि को धि, पूर्वधकार लोप होकर **रुन्धि, रुन्धात्, रुन्धम्, रुन्ध**। **रुणधानि** "आडुत्तमस्य पिच्च से आट्, आट् के पित् होने से यहाँ नकार के अकार का लोप नहीं होता। इसी प्रकार **रुणधाव रुणधाम** रूप होंगे। आत्मनेपद में 'रु न ध् ताम्' इस स्थिति में 'त' को ध, पूर्व धकार का लोप, अकार लोप होकर **रुन्धाम् रुन्धाताम् रुन्धताम्** चर्त्व—**रुन्त्स्व, रुन्धायाम्**, इट् परे **रुणधै, रुणधावहै, रुणधामहै**।

लङ् लकार में तिप् सिप् के त् स् को हल्ङ्यादि लोप। धकार को जश्त्वेन दकार, चर्त्वेन विकल्पतः तकार होकर **अरुणत् अरुणद् अरुन्धाम् अरुन्धन्, अरुणत्** चर्त्व के वैकल्पिक होने से दकार पक्ष में 'दश्च' सूत्र से दकार का रुत्व विसर्ग होकर **अरुणः अरुन्धम् अरुन्ध**। **अरुणधम् अरुन्ध्व अरुन्ध्म**। आत्मने पद में **अरुन्ध अरुन्धाताम् अरुन्धत, अरुन्धाः अरुन्धायाम् अरुन्ध्वम्**। **अरुन्धि अरुन्ध्वहि अरुन्ध्महि**।

रिचिर् विरेचने ।।५।। रिणक्ति रिङ्क्ते । रिरेच । रेक्ता । रेक्ष्यति । अरिणक् । अरिचत् अरैक्षीत् अरिक्त । विचिर् पृथग्भावे ।।६।। विनक्ति विङ्क्ते । क्षुदिर सम्पेषणे ।।७।। क्षुणत्ति, क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुदत् अक्षौत्सीत् अक्षुत्त । उच्छृदिर् दीप्ति देवनयो: ।।८।। छृणत्ति छृन्ते । चच्छर्द । सेऽसिचीति वेट्—चच्छृदिषे, चच्छृत्से । छर्दिता । छर्दिष्यति छर्त्स्यति । अच्छृदत् अच्छर्दीत् अच्छर्दिष्ट । उतृदिर् हिंसानादरयो ।।९।। तृणत्ति, तृन्ते ।

विधि लिङ् **रुन्ध्यात् रुन्ध्याताम् रुन्ध्या: रुन्ध्यातम् रुन्ध्यात रुन्ध्याम् रुन्ध्याव रुन्ध्याम** । आत्मने पद में—**रुन्धीत रुन्धीयाताम् रुन्धीरन्** । **रुन्धीथा: रुन्धीयाथाम्, रुन्धीध्वम्** । **रुन्धीय रुन्धीवहि रुन्धीमहि** ।

आ० लिङ् में **रुध्यात् रुध्यास्ताम् रुध्यासु:** आदि, आत्मने पद में लिङ् सिचा—सूत्र से कित् होने से गुणाभाव—**रुत्सीष्ट रुत्सीयास्ताम् रुत्सीरन्** आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् परस्मैपद में 'इरितो वा' सूत्र से च्लि को अङ् होकर, **अरुधत् अरुधताम् अरुधन्** । **अरुध: अरुधतम् अरुन्धम् अरुन्धत अरुधाव अरुधाम** रूप होंगे ।

अङ् के अभाव पक्ष में सिच् होकर, वृद्धि और चर्त्व होकर **अरौत्सीत् अरौद्धाम् अरौत्सु:** । **अरौत्सी: अरौद्धम् अरौद्ध** । **अरौत्सम् अरौत्स्व अरौत्स्म,** रूप बनेंगे ।

आत्मने पद में 'झलो झलि' से सिच् लोप होकर **अरुद्ध अरुत्साताम् अरुत्सत** । **अरुद्धा: अरुत्साथाम् अरुद्ध्वम्** । **अरुत्सि अरुत्स्वहि अरुत्स्महि,** रूप बनेंगे ।

लृङ् में **अरोत्स्यत् अरोत्स्यत** आदि रूप बनेंगे ।

भिदिर् विदारणे—भिद् धातु तोड़ना फाड़ना अर्थ में है, यह अनिट और इरित् धातु हैं, इसके प्राय: सभी रूपों की सिद्धि रुध् के समान ही होती है ।

लट्—**भिनत्ति भिन्ते** । लिट्—**बिभेद बिभिदे** । **भेत्तासि, भेत्तासे** । **भेत्स्यति भेत्स्यते** । **भिनत्तु भिन्ताम्** । **अभिनत् अभिन्त** । **भिन्देत् भिन्दीत** । **भिद्यात् भित्सीष्ट** । इरितो वा—**अभिदत् अभैत्सीत्, अभित्त** । **अभेत्स्यत् अभेत्स्यत** ।

छिदिर् द्वैधीकरणे—छिद् धातु काटने अर्थ में है, यह भी इरित् और अनिट् है, इसके भी रूप भिद् के समान बनेंगे ।

छिनत्ति छिन्ते । **चिच्छेद, चिच्छिदे** । **छेत्तासि, छेत्तासे** । **छेत्स्यति, छेत्स्यते** । **छिनत्तु छिन्ताम्** । **अच्छिनत् अच्छिन्त** । **छिन्देत, छिन्दीत, छिद्यात् छित्सीष्ट** । **अच्छिदत अच्छैत्सीत्, अच्छित्त** । **अच्छेत्स्यत् अच्छेत्स्यत** ।

युजिर् योगे—युज् धातु मिलने अर्थ में है, अनिट् और इरित् है । **युनक्ति युङ्क्ते** (यहाँ ज् को ग, ग् को को क् होता है, पर सवर्ण करने पर अनुस्वार को क् के योग में ङ् होता है) लिट्—**युयोज, युयुजे** । **योक्तासि योक्तासे** । **योक्ष्यति योक्ष्यते** ।

कृती वेष्टने ॥१०॥ कृणत्ति । तृह हिसि हिंसायाम् ॥११॥१२॥

(२९४) तृणह इम् ।७।३।९२॥

तृहः श्नमि कृते इमागमो हलादौ पिति । तृणेढि तृण्ढः । ततर्ह ।

(२९५) श्नान्न लोपः ।६।४।२३॥

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात् । हिनस्ति । जिहिंस । हिंसिता ।

युनक्तु, युङ्क्ताम् । अयुनक् अयुङ्क्त । युञ्जेत् युञ्जीत । युज्यात्, युक्षीष्ट । अयुजत् अयौक्षीत् अयुक्त । अयोक्ष्यत् अयोक्ष्यत ।

रिचिर् विरेचने—रिच् धातु खाली करने अर्थ में है, यह भी इरित् और अनिट् है ।

लट्—रिणक्ति (कुत्वेन चकार को ककार होगा) रिङ्क्ते (कुत्व, पर सवर्ण ङ्) लिट् रिरेच, रिरिचे । लुट्—रेक्तासि रेक्तासे । लृट् रेक्ष्यति रेक्ष्यते (कुत्व षत्व क्षत्व) रिणक्तु रिङ्क्ताम् । लङ्—अरिणक् (त् का हल्ङ्याबादि लोप, कुत्व) अरिङ्क्ताम्, अरिञ्चन् । अरिणक् (सिप् के सकार का हल्ङ्यादि लोप) अरिङ्क्तम् अरिङ्क्त । अरिणचम् अरिञ्च्व अरिञ्च्म । आत्मने पद में अरिङ्क्त । रिञ्चेत् रिञ्चीत । रिच्यात् । रिक्षीष्ट । लुङ् में अङ् पक्ष में अरिचत्, अङभाव पक्ष में अरैक्षीत् अरिक्त, अरेक्ष्यत् अरेक्ष्यत ।

विचिर पृथग्भावे—विच् धातु पृथक् होने अर्थ में है, अनिट् और इरित् है ।

विनक्ति (कुत्वेन ककार) विङ्क्ते (कुत्व, पर सवर्ण ङ्) विवेच । विविचे । वेक्तासि वेक्तासे, वेक्ष्यति वेक्ष्यते । विनक्तु विङ्क्ताम् । अविनक्, अविङ्क्त । लुङ्—अविचत् अवैचीत् अविक्त अवेक्ष्यत् ।

क्षुदिर सम्पेषणे—क्षुद् धातु मसलने अर्थ में है, अनिट् और इरित् है । इसके भी सभी रूप भिद् की तरह बनते हैं—क्षुणत्ति क्षुन्ते । क्षोत्ता अक्षुदत् अक्षोत्सीत अक्षुत्त ।

उच्छृदिर् दीप्ति देवनयोः—उत् उपसर्गपूर्वक छृद् धातु चमकना और द्यूत क्रीड़ा अर्थ में है ।

छृणत्ति छृन्ते । चच्छर्द, थल् परे 'सेऽसिचीति' सूत्र से इट् षत्व—चच्छर्दिषे इडभाव पक्ष में चर्त्व होकर चच्छृत्से । छर्दिता । इट् पक्ष में छर्दिष्यति, इडभाव में छर्त्स्यति । लुङ् में अङ् पक्ष में अच्छृदत्, सिच् पक्ष में इट् सिच् ईट् सिच् लोप, अच्छर्दीत् । अच्छृत्त ।

उतृदिर् हिंसानादरयोः—उतृद् धातु हिंसा और अनादर अर्थ में है यह धातु सेट् उभय पदी है ।

तृणत्ति, तृन्ते (दकार को चर्त्वेन तकार झरो झरि—से पूर्व तकार का लोप) लिट्—ततर्द ततर्दे । तर्दितासि तर्दितासे । तर्दिष्यति तर्दिष्यते । तृणत्तु । तृन्ताम् । अतृणत् अतृन्त । तृन्देत तृन्दीत । तर्द्यात् तर्दिषीष्ट । अतृदत् अतर्दीत् अतर्दिष्ट । लृङ् अतर्दिष्यत् अतर्दिष्यत ।

(२९६) तिप्यनस्तेः ।८।२।७३।।

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः । ससजुषोरित्यस्यापवादः । अहिनत् अहिनद्, अहिंस्ताम्, अहिंसन् ।

(२९७) सिपि धातो रुर्वा ।८।२।७४।।

पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद् वा । पक्षे 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वम् — अहिनः, अहिनत अहिनद् ।

कृती वेष्टने - कृत धातु घेरने अर्थ में है । ईदित् परस्मैपदी है । इसके रूप कृणत्ति कृन्ते । चकर्त आदि बनते हैं ।

तृह हिसि हिंसायाम्, इन दोनों का प्रयोग हिंसा अर्थ में होता है ये सेट् परस्मैपदी हैं ।

तृणह इति—तृह धातु को हलादि पित् प्रत्यय परे रहते श्नम् करने पर इम् का आगम होता है ।

तृह + तिप् इस स्थिति में हलादि पित् तिप् प्रत्यय परे श्नम् प्रत्यय करने पर 'तृनह् ति' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से नकार के अकार के बाद इम् (इ) का आगम करने पर अ + इ को गुण होकर 'तृनेह् ति' इस स्थिति में 'होढ' से हकार को ढकार, 'झषस्तथोः—से तकार को धकार, ष्टुत्वेन धकार को ढकार, 'ढोढे लोपः' से पूर्व ढकार का लोप नकार को णकार होकर तृणेढि रूप बनेगा । द्विवचन में हलादि पित् प्रत्यय परे न होने के कारण इम् का आगम न होगा, तब 'तृनह् तस्' इस स्थिति में "श्नसोरल्लोपः" सूत्र से श्नम् के अकार का लोप होकर 'तृन्ह् तस्' इस स्थिति में पूर्ववत् हकार को ढकार, तकार को धकार, ष्टुत्व और ढकार का लोप णत्व होकर तृण्ढः रूप होगा । बहुवचन में 'तृनह् अन्ति' इस स्थिति में "श्नसोरल्लोपः" से अकार लोप, नकार का अनुस्वार होकर तृंहन्ति रूप होगा । म० पु० एकवचन में हलादि पित् प्रत्यय परे रहते, उक्त सूत्र से इम् आगम, गुण 'तृनेह् + सि' इस स्थिति में हकार को ढकार 'षढोः कः सि' से ढकार को ककार, क् से परे सकार को षत्व, क् + ष् को क्षत्व होकर तृणेक्षि रूप होगा द्विवचन में पूर्ववत् तृण्ढः, बहुवचन में तृण्ढ (यहाँ थकार को धकार होगा) उ० पु० एकवचन में पित् प्रत्यय परे होने से इम् का आगम होकर पूर्ववत् तृणेह्मि तृन्ह्वः तृन्ह्मः रूप होंगे ।

लिट् में ततर्ह ततर्हतुः ततर्हुः आदि । लुट् में सेट् होने से इट् तर्हिता, तर्हिष्यति । लोट् में इम् गुण ढत्व धत्व ष्टुत्व ढ लोप होकर तृणेढु । लङ् में 'अतृनह् त्' इस स्थिति में इम्, तकार का 'हलङ्यादि लोप, ढत्व, जश्त्वेन ढ को ड् और ड् को ट, णत्व गुण होकर अतृणेट् द्विवचन में श्नसोरल्लोपः अकार लोप, ढत्व धत्व ष्टुत्व ढ लोप णत्व होकर अतृण्ढाम्, अंतृहन्, अतृणेट् (सकार का हलङ्यादि लोप) अतृण्ढम्, अतृण्ढ, अतृणहम्, अंतृह्व, अतंन्ह्म रूप होंगे । वि० लिङ् में यासुट् के ङित् होने से हलादि पित् न मिलने से इम् का आगम न होगा, 'श्नसोरल्लोपः' से अकार लोप

उन्दी क्लेदने ॥१३॥ उनत्ति, उन्तः उन्दन्ति । उन्दाञ्चकार । औनत्, औन्ताम्, औन्दन् । औनः औनत् । औनदम् ।

अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु ॥१४॥ अनक्ति, अङ्क्तः, अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ आनङ्क्थ । अञ्जिता, अङ्क्ता ।

होकर **तृंह्यात्**, आ० लिङ् में **तृह्यात्**, लुङ् में 'अ तृह् इ स ई त्' इस स्थिति में सकार लोप गुण होकर **अतर्हीत् अतर्हिष्टाम् अतर्हिषुः** । लृङ् में **अतर्हिष्यत** ।

श्नान्नेति—श्नम् प्रत्यय से परे नकार का लोप हो ।

हिसि धातु इदित् है अतः इसमें सभी लकारों में "इदितो नुम् धातोः" सूत्र से नुम् का आगम श्नम् के नकार के आगे होगा, और प्रकृत सूत्र से नुम् के नकार का सर्वत्र लोप हो जायेगा लट् लकार में 'हिन न् स् ति' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से न् का लोप होने पर **हिनस्ति**, द्विवचन में श्नसोरल्लोपः से श्नम् के अकार का लोप होकर **हिंस्तः**, इसी प्रकार **हिंसन्ति, हिनस्सि, हिंस्थः, हिंस्थ, हिनस्मि हिंस्वः हिंस्मः** । रूप बनेंगे ।

लिट् में जिहिंस जिहिंसतुः जिहिंसुः यहाँ श्नम् न होने से न् का लोप न होकर अनुस्वार होगा । सेट् होने से लुट् में हिंसिता । लृट् में हिंसिष्यति । लोट् में श्नम् से परे नुम् के नकार का श्नान्नलोपः से लोप होकर **हिनस्तु**, आदि रूप बनेंगे ।

तिप्यनस्तेरिति—तिप् परे रहते पदान्त सकार को दकार हो, अस् के सकार को न हो ।

सिपि धातोरिति—पदान्त में धातु के सकार को रु हो विकल्प से ।

'तिप्यनस्तेः' सूत्र ससजुषो रुः सूत्र से होने वाले रुत्व का अपवाद है ।

लङ् लकार में 'अहिन स् त्' इस स्थिति में 'ससजुषो रुः' से प्राप्त रुत्व को बाध कर 'तिप्यनस्तेः' सूत्र से सकार को दकार हुआ, और उसे चर्त्वेन तकार, तकार के अभाव पक्ष में दकार ही रहेगा, त्कार का हल्ङ्यादि लोप होकर **अहिनत् अहिनद्** ये दो रूप होंगे, ताम् परे नकार के अकार का श्नसोरल्लोपः से लोप, और नकार का अनुस्वार होकर **अहिंस्ताम्**, इसी प्रकार बहुवचन में अकार लोप, अनुस्वार, तकार का संयोगान्त लोप होकर **अहिंसन्**, रूप होगा ।

सिप् परे, सकार का हल्ङ्यादि लोप, और सिपिधातोः—सूत्र से धातु के सकार का रु होकर और र् का विसर्ग होने पर **अहिनः** रु के अभाव पक्ष में "झलां जशोऽन्ते" से सकार को दकार और विकल्पतः चर्त्व होकर **अहिनत् अहिनद्** इस प्रकार तीन रूप होंगे । शेष रूप पूर्ववत् **अहिंस्तम् अहिंस्त । अहिनसम् अहिंस्व, अहिंस्म ।** विधिलिङ् में नुम् के नकार का लोप श्नान्नलोपः से, अकार का लोप श्नसोरल्लोपः से, और अनुस्वार होकर हिंस्यात् । आ० लिङ् में हिंस्यात् । लुङ् अहिंसीत् । लृङ् अहिंष्यत् ।

अङ्ग्धि, अनजानि । आनक् ।।

(२९८) अञ्जेः सिचि ।७।२।७१।।

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात् । आञ्जीत् ।

तञ्चू संकोचने ।।१५।। तनक्ति । तङ्क्ता तञ्चिता ।

ओविजी भय चलनयोः ।।१६।। विनक्ति । विज इडिति ङित्त्वम्—विविजिथ । विजिता । अविनक् । अविजीत् ।

उन्दी क्लेदने—उन्द् धातु गीला करने अर्थ में है, सेट् ईदित् है। लट् में श्नम् करने पर 'उनन्द्ति' इस स्थिति में श्नान्नलोपः से नकार का लोप दकार का चर्त्व होकर **उनत्ति,** तस् परे 'उनन्दतः' इस स्थिति श्नान्नलोपः से नकार लोप, श्नसोर ल्लोपः से अकार लोप, झरोझरि सवर्णे से दकार लोप होकर **उन्तः** इसी प्रकार अन्ति परे **उन्दन्ति । उनत्सि, उन्थः, उन्थ । उनद्मि, उन्द्वः उन्द्मः ।** लिट् में इजादि गुरुमान् होने से आम्, कृ का अनुप्रयोग होकर **उन्दाञ्चकार,** लुट्—उन्दिता । लृट्—उन्दिष्यति लोट्—उनत्तु, लङ् में आट् वृद्धि, श्नम् से पर नकार का लोप, तकार का हल्ङ्यादि लोप, चर्त्वेन दकार का तकार होकर **औनत्** ताम् परे, श्नम् से पर नकार लोप, श्नम् के अकार का लोप, दकार का 'झरोझरि' से विकल्पतः लोप—**औन्ताम्-औन्त्ताम्, औन्दन् ।** सिप् परे सिप् के सकार का हल्ङ्यादि लोप, दकार को 'दश्च' सूत्र से रु, र् को विसर्ग, शेष विधि पूर्ववत् होकर **औनः** रु के अभाव पक्ष में पूर्ववत् **औनत्** रूप होगा, **औन्त्तम् औन्तम्,** औन्त-औन्त्त । **औनदम् औन्द्व औन्द्म ।** वि० लिङ् में उन्द्यात् आ० लिङ् उद्यात् । लुङ् में औन्दीत् । लृङ् में औन्दिष्यत् ।

अञ्जू व्यक्ति म्रक्षणकान्ति गतिषु— अञ्ज् धातु, स्पष्ट होना या प्रकट होना, साफ होना, इच्छा करना और जाना अर्थों में है। यह धातु ऊदित् होने के कारण विकल्पतः सेट् है।

लट् में श्नम् करने पर 'श्नानान्न लोपः' सूत्र से धातु के नकार का लोप होने पर 'अ न ज् ति' इस स्थिति में जकार को कुत्वेन गकार, और गकार को चर्त्वेन ककार होकर **अनक्ति** रूप बनेगा। तस् परे भी श्नान्न लोपः धातु के नकार का लोप, और श्नम् के अकार का भी यहाँ लोप होकर 'अ न् ज् तस्' इस स्थिति में जकार को कुत्वेन गकार, चर्त्वेन ककार, नश्चेति नकार को अनुस्वार, परसवर्णेन अनुस्वार को ङकार होकर **अङ्क्तः,** बहुवचन में भी अन्ति करने पर नकार लोप, अकार लोप, अनुस्वार पर सवर्ण करने पर अञ्जन्ति, सिप् पर 'अन् ज् सि' इस स्थिति में गत्व, कत्व, षत्व, क्+ष+क्षत्व होकर **अनक्षि, अङ्क्थः अङ्क्थ, अनज्मि, अङ्ग्वः अङ्ग्मः** रूप होंगे ।

लिट् में अञ्ज् को द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'अ-अञ्ज् अ' इस स्थिति में तस्मा न्नुड् द्विहलः' सूत्र से नुट् का आगम होकर **आनञ्ज आनञ्जतुः आनञ्जुः ।** थल् पर

शिष्लृ विशेषणे ।।१७।। शिनष्टि, शिंष्टः, शिंषन्ति । शिनक्षि । शिशेष ।

शिशेषिथ । शेष्टा । शेक्ष्यति । शिनष्टु । शिण्ढि । शिनषाणि । अशिनट् । शिष्यात् । शिष्यात् । अशिषत् । एवं विष्लृ संचूर्णने ।।१८।।

ऊदित् होने के कारण स्वरत्नीति—सूत्र से इट् पक्ष में **आनञ्जिथ,** इड्भाव पक्ष में जकार को गत्व कुत्व अनुस्वार पर सवर्ण होकर **आनङ्क्थ** रूप होगा इसी प्रकार **आनञ्जथुः** आदि शेष रूप भी बनेंगे ।

लुट् में स्वरतीति सूत्र से इट् पक्ष में **अञ्जिता** इडभाव पक्ष में **अङ्क्ता,** लृट् में **अञ्जिष्यति,** इडभाव पक्ष में जकार को कत्व, अनुस्वार, पर सवर्ण, षत्व होकर **अङ्क्ष्यति,** लोट् में **अनक्तु, अङ्क्ताम्, अञ्जन्तु ।** सिप् परे 'हुझल्भ्यो हे र्धि', सूत्र से सि के स्थान में हुये हि को धि आदेश, हि के अपित् होने से ङित्वत् होने के कारण, श्नम् के अकार का लोप, अनुस्वार पर सवर्ण होकर **अङ्धि अङ्क्तम् अङ्क्त,** मिप् परे आट् का आगम, वृद्धि, श्नम् के अकार का लोप यहाँ न होगा, क्योंकि आट् पित् होता है, श्नान्नलोपः से धातु के नकार का लोप होकर **अनजानि अनजाव अनजाम** रूप होंगे ।

लङ् में आट् वृद्धि, श्नम्, श्नम् से परे धातु के नकार का लोप, जकार को गत्व कत्व तथा त् का हल्ङ्यादि लोप होकर **आनक् आङ्क्ताम्** आदि रूप होंगे ।

अञ्जेरिति—अञ्ज् धातु को सिच् परे नित्य इट् हो ।

धातु के ऊदित् होने से स्वरतीति सूत्र से विकल्पतः इट् प्राप्त था, प्रस्तुत सूत्र उसे बाध नित्य इट् करता है अतः लुङ् लकार में आट्, वृद्धि, च्लि को सिच्, प्रत्यय के इकार का लोप, ईट्, इट्, सिच् लोप, दीर्घ होकर **आञ्जीत् आञ्जिष्टाम्, आञ्जिषुः । आञ्जीः, आञ्जिष्टम्, आञ्जिष्ट । आञ्जिषम्, आञ्जिष्व, आञ्जिष्म ।** लृङ् में स्वरतीति-वेट्—**आञ्जिष्यत् आङ्क्ष्यत्** रूप बनेंगे ।

तञ्चू संकोचने— तञ्चू धातु संकुचित करने अर्थ में है, ऊदित होने से इसमें भी स्वरतीति-सूत्र से विकल्पतः इट् होता है, इसके भी रूप प्रायः अञ्जू के समान होते हैं—**तनक्ति, तङ्क्तः तञ्चन्ति । ततञ्च, ततञ्चिथ ततङ्क्थ । तञ्चिता तङ्क्ता । तञ्चिष्यति, तङ्क्ष्यति । तनक्तु तङ्ग्धि तनचानि । अतनक् । तञ्च्यात् तच्यात् । अतञ्चीत् अताङ्क्षीत् । अतञ्चिष्यत् अतङ्क्ष्यत् ।**

ओविजी भयचलनयोः—विज् धातु डरने और हिलने अर्थ में है । यह ओदित् और ईदित् भी है ।

लट् में **विनक्ति** (ज् को ग्, क्) **विङ्क्तः विञ्जन्ति, विनक्षि,** लोट्—**विनक्तु, विङ्ग्धि, विनजानि ।** लङ्—अविनक्. वि० लिङ्—विज्यात् । आर्धधातुक लकारों में श्नम् न होगा, इडादि प्रत्यय परे रहते 'विज इट्' सूत्र से ङित्वत् होने से गुण निषेध होकर लुट् में **विजिता,** लृट् में **विजिष्यति ।** आ० लिङ् में **विज्यात्,** लुङ् में **अविजीत् अविजिष्यत्** रूप होंगे ।

भञ्जो आमर्दने ॥१६॥ श्नान्नलोपः—भनक्ति, बभञ्जिथ, बभङ्क्थ, भङ्क्ता, भङ्धि, अभाङ्क्षीत् ।

भुज पालनाभ्यवहारयोः ॥२०॥ भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति । अभुनक् ।

(२६६) भुजोऽनवने ।१।३।६६॥

तङानौ स्तः । ओदनं भुङ्क्ते । अनवने किम्—महीं भुनक्ति ।

शिष्लृ विशेषणे—शिष् धातु विशेषता बताने अर्थ में है, यह लृदित् है अतः लुङ् में पुषादि द्युतादि—सूत्र से च्लि को अङ् होगा।

लट् में शिनष्टि, अकार लोप, नकार का अनुस्वार ष्टुत्व होकर, शिंष्टः शिंषन्ति । सिप् परे 'शिनष् सि' इस स्थिति में 'षढोः कः सि' से षकार को ककार, ककार से परे प्रत्यय सकार को षत्व क्षत्व होकर शिनक्षि । लिट् में **शिशेष शिशिषतुः शिशिषुः विशेशिथ** आदि, लुट् में अनिट् होने से **शेष्टा** आदि। लृट् में षढोः कः सि, ष् को क् षत्व क्षत्व होकर **शेक्ष्यति** आदि। लोट् में **शिनष्टु,** शिंष्टाम् शिंषन्तु । सिप् परे 'शिनष् धि' इस स्थिति में अपित् होने से ङिद्वत् होने के कारण श्नम् के अकार का लोप, षकार को जश्त्वेन डकार, प्रत्यय धकार को ष्टुत्वेन ढकार, डकार का झरोझरीति लोप, नकार का अनुस्वार, ढकार के योग में अनुस्वार का पर सवर्ण णकार होकर **शिण्ढि** रूप बनेगा । **शिंष्टम्, शिंष्ट । शिनषाणि, शिनषाव शिनषाम ।** लङ् में 'अशिनष् त्' इस स्थिति में तकार का हल्ङ्यादि लोप, षकार को जश्त्वेन डकार, चर्त्वेन टकार होकर **अशिनट् अशिंष्टाम् अशिंषन् । अशिनट् ड्, अशिंष्टम्, अशिंष्ट । अशिनषम् अशिंस्व, अशिंष्म ।**

विधि लिङ् में यासुट् के ङित् होने से श्नम् के अकार का लोप, नकार का अनुस्वार होकर **शिंष्यात्,** आ० लिङ् में श्नम् न होने से **शिष्यात्,** लुङ् में च्लि को अङ् होकर **अशिषत्** आदि रूप होंगे।

पिष्लृ संचूर्णने—पिष् धातु पीसने अर्थ में है। लृदित् परस्मैपद होने से च्लि को अङ् होता है। इस धातु के सभी रूप शिष् धातु के समान ही बनते हैं। **पिनष्टि । पिपेष । पेष्टा । पेक्ष्यति । पिनष्टु, पिण्ढि, पिनषाणि । अपिनट् । पिंष्यात् । पिष्यात् । अपिषत्** आदि ।

भञ्जो आमर्दने—भञ्ज् धातु तोड़ने अर्थ में है। यह धातु अनिट् है, ओदित् होने से निष्ठा प्रत्यय परे तकार को नकार होता है। भग्नः आदि रूप होते हैं।

लट् में भञ्ज् धातु से श्नम् होने पर धातु के नकार का "श्नान्नलोपः" सूत्र से लोप, जकार को गकार और चर्त्वेन ककार होकर **भनक्ति।** लिट् **बभञ्ज,** थल् परे अनिट् अकारवान् होने से विकल्पतः इट्—**बभञ्जिथ,** इडभाव पक्ष में जकार को कुत्व, चर्त्व, अनुस्वार, परसवर्ण होकर **बभङ्क्थ,** लुट् में अनिट् होने से इडभाव में कुत्व, चर्त्व अनुस्वार परसवर्ण होकर **भङ्क्ता।** लृट्—षत्व क्षत्व होकर **भङ्क्ष्यति ।** लोट् में **भनक्तु, भङ्क्ताम्, भञ्जन्तु ।** 'भञ्ज् हि' इस स्थिति में हि के

जिइन्धी दीप्तौ ॥२१॥ इन्धे इन्धाते, इन्धते । इन्त्से । इन्ध्वे ।

इन्धाञ्चक्रे । इन्धिता । इन्धाम्, इन्धाताम् इन्धै । ऐन्ध, ऐन्धाताम्, ऐन्धाः । विद विचारणे ॥२२॥ विन्ते । वेत्ता ॥

इति रुधादयः

अपित् होने से ङिद्वत् होने के कारण श्नम् के अकार का लोप, हि को धि, जकार को ग्, नकार को अनुस्वार **भङ्ग्धि, भङ्क्तम् भङ्क्त । भनजानि भनजाव भनजाम ।**

लङ् में 'अभनञ्ज् त्' इस स्थिति में श्नान्नलोपः धातु के नकार का लोप, जकार को गत्व कत्व तकार का हल्ङ्यादि लोप होकर अभनक्, वि० लिङ् में भञ्ज्यात्, आ० लिङ् में भज्यात्, लुङ् में 'अ भञ्ज् सिच् ईट् त्' होकर हलन्त लक्षणा वृद्धि, कुत्व, चर्त्व, अनुस्वार, परसवर्ण, षत्व क्षत्व होकर अभाङ्क्षीत्, सकार का झलोझलि से लोप **अभाङ्क्ताम्**, **अभाङ्क्षुः । अभाङ्क्षीः, अभाङ्क्तम् अभाङ्क्त । अभाङ्क्षम्, अभाङ्क्ष्व,अभाङ्क्ष्म** । लृङ्– अभङ्क्ष्यत् ।

भुज् पालनाभ्यवहारयोः—भुज् धातु पालन और खाने अर्थ में है । यह पालने अर्थ में तो परस्मैपदी है किन्तु खाने अर्थ में आत्मनेपदी है । अनिट भी है । पालने अर्थ में परस्मैपद में इसके रूप, लट् में कुत्व चर्त्व होकर भुनक्ति भुङ्क्तः भुञ्जन्ति । भुनक्षि, भुङ्क्थः, भुङ्क्थ, भुनज्मि, भुञ्ज्वः, भुञ्ज्मः होंगे ।

लिट् लकार में सामान्यतः बुभोज बभुजतुः आदि रूप होंगे लुट् में गुण कुत्व चर्त्व होकर भोक्ता, लृट् में भोक्ष्यति ।

लोट्—भुनक्तु, भुङ्क्ताम्, भुञ्जन्तु, भुङ्ग्धि, भुनजानि ।

लङ् में 'अ भु न ञ्ज् त्' इस स्थिति में श्नान्नलोपः से धातु के नकार का लोप, तकार का हल्ङ्यादि लोप, कुत्व चर्त्व होकर **अभुनक् अभुङ्क्ताम् अभुञ्जन् । अभुनक् ग्, अभुङ्क्तम् अभुङ्क्त । अभुञ्जम् अभुञ्ज्व अभुञ्ज्म ।**

वि० लिङ् में **भुञ्ज्यात्**; आ० लिङ् में **भुज्यात्**, लुङ् में कुत्व चर्त्व क्षत्व **वृद्धि होकर अभौक्षीत्** । लृङ् में **अभोक्ष्यत्** ।

भुज इति—भुज् धातु से, पालन करने अर्थ से भिन्न अर्थ में अर्थात् खाने अर्थ में आत्मनेपद के प्रत्यय होते हैं ।

भोजनार्थक भुज् धातु से लट् में उक्त सूत्र से आत्मने पद का विधान होने से त प्रत्यय, श्नम्, अपित् होने से ङिद्वत् होकर अकार का लोप, अनुस्वार पर सवर्ण होकर, जकार को कुत्व चर्त्व होकर **भुङ्क्ते** आदि रूप बनेंगे **ओदनं भुङ्क्ते**=चावल खाता है, उपभोग या पालन करने अर्थ में परस्मैपद होकर **भुनक्ति** आदि रूप होंगे ।

लिट् में **बुभुजे, लुट् भोक्तासे, लृट्—भोक्ष्यते,** लोट्—**भुङ्क्ताम्, भुञ्जाताम् भुञ्जताम्, भुङ्क्ष्व, भुञ्जाथाम्, भुङ्ग्ध्वम् । भुनजै भुनजावहै भुनजामहै ।**

लङ् में **अभुङ्क्त अभुञ्जाताम्** अभुञ्जत । **अभुङ्क्थाः, अभुञ्जाथाम् अभुङ्ग्ध्वम्, अभुञ्जि, अभुञ्ज्वहि, अभुञ्ज्महि** । वि० लिङ्—**भुञ्जीत** । आ०

लिङ् —**भुक्षीष्ट**। लुङ् में **अभुक्त अभुक्षाताम् अभुक्षत, अभुक्थाः, अभुक्षाथाम् अभुग्ध्वम्। अभुक्षि, अभुक्ष्वहि अभुक्ष्महि**। लृङ् में अभोक्ष्यत आदि।

ञि इन्धी दीप्तौ—इन्ध् धातु चमकने अर्थ में है। यह धातु ञीदित् और ईदित् तथा आत्मनेपदी है।

लट् में आत्मनेपद के प्रत्ययों के अपित् ङिद्वत् होने से श्नान्नलोपः से धातु के नकार का लोप और श्नम् के अकार का भी लोप, अनुस्वार पर सवर्ण होकर पुनः नकार, तकार को झषस्तथोः—सूत्र से धकार, पूर्वधकार का सवर्ण झर परे लोप होकर **इन्धे** रूप होगा, धकार लोप के वैकल्पिक होने से लोपाभाव पक्ष में धकार को जश्त्वेन दकार होकर **इन्द्धे** भी रूप बनेगा। इस लकार के शेष रूप—**इन्धाते, इन्धते**—धकार को चर्त्वेन तकार होकर इन्त्से, इन्धाथे, इन्ध्वे। लिट् में इजादि गुरुमान् होने से आम् कृ का अनुप्रयोग होकर **इन्धाञ्चक्रे**। सेट् होने से इट् होकर लुट् में **इन्धिता**। लोट् में नकार को लोप, अकार का लोप, तकार को धकार, सवर्ण लोप होकर **इन्धाम्, इन्धाताम् इन्धताम्, इनधै** (धातु के नकार का लोप, आट् और वृद्धि होकर' **इन्धावहैं इन्धामहै**। लङ् में आट् वृद्धि श्नम् के अकार का तथा धातु के नकार का लोप, झरो झरि से सवर्ण झर् का लोप होकर **ऐन्ध** रूप होगा। **ऐन्धाताम् ऐन्धत। ऐन्धाः** (यहाँ थकार का धकार पूर्व धकार का लोप, शेष कार्यपूर्ववत् होंगे, प्रत्यय के सकार को रुत्व विसर्ग होगा) वि० लिङ् में सीयुट् होकर **इन्धीत**। आ० लिङ् में इट्—**इन्धिषीष्ट**। लुङ् में पूर्ववत् **ऐन्धिष्ट**। लृङ् में **ऐन्धिष्यत** आदि रूप बनेंगे।

विद् विचारणे—विद् धातु विचार करने अर्थ में है। यह अनिट् आत्मने पदी है।

आत्मने पद के प्रत्ययों के अपित् होने से श्नम् के अकार का लोप होकर **विन्त्ते** रूप होगा, (यहाँ दकार का सवर्ण झर् लोप होगा) **विन्दाते, विन्दते। विन्त्से, विन्दाथे, विन्द्ध्वे। विविदे, वेत्ता, वेत्ष्यते, विन्ताम्,** अविन्त, **विन्दीत, वित्सीष्ट, अविन्त, अवेत्स्यत** आदि रूप बनेंगे।

इति रुधादिगणः

अथ तनादयः

तनु विस्तारे ॥१॥

(३००) तनादिकृञ्भ्य उः ।३।१।७९॥

शपोऽपवादः । तनोति, तनुते । ततान, तेने । तनितासि, तनितासे । तनिष्यति, तनिष्यते । तनोतु, तनुताम् । अतनोत्, अतनुत । तनुयात्, तन्वीत । तन्यात्, तनिषीष्ट । अतानीत् अतनीत् ।

(३०१) तनादिभ्यस्तथासोः ।२।४।७९॥

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः । अतत, अतनिष्ट, अतथाः, अतनिष्ठाः । अतनिष्यत्, अतनिष्यत ।

तनु विस्तारे—तन् धातु फैलाने अर्थ में है। यह धातु सेट् उभय पदी है, इसके उदित् होने का फल निष्ठा प्रत्यय परे इट् का निषेध होना है ततम् आदि।

तनादीति—तन आदि और कृ आदि धातुओं से उ प्रत्यय हो। यह सूत्र शप् प्रत्यय का अपवाद है।

लट् में 'तन् ति' इस स्थिति में 'तनादिकृञ्भ्य उः' से उ प्रत्यय, 'तन् उ ति' इस स्थिति में सार्वधातुक पित् परे रहते उकार का ओ गुण होकर तनोति आत्मनेपद में अपित् सार्वधातुक के ङिद्वत् होने से गुणाभाव—तनुते। **तनोति तनुतः तन्वन्ति। तनोषि तनुथः तनुथ। तनोमि तनुवः तनुमः। तनुते, तन्वाते तन्वते। तनुषे तन्वाथे तनुध्वे। तन्वे तनुवहे तनुमहे।**

लिट् में द्वित्व अभ्यास कार्य उपधा वृद्धि—**ततान,** कित् लिट् परे अत एक हल् मध्ये—सूत्र से एत्वाभ्यास लोप होकर—**तेनतुः तेनुः**। थलि च सेटि—**तेनिथ ततन्थ तेनथुः तेन, ततान तेनिव तेनिम**। आत्मनेपद में अपित् सार्वधातुक के ङिद्वत् होने से एत्वाभ्यास लोप होकर—**तेने तेनाते तेनिरे। तेनिषे तेनाथे तेनिध्वे। तेने तेनिवहे तेनिमहे।**

लुट् लकार में **तनितासि तनितासे,** लृट् में **तनिष्यति तनिष्यते**। लोट्—**तनोतु**

षणु दाने ॥२॥ सनोति सनुते ।

(३०२) ये विभाषा ।६।४।४३॥

जन सन खना मात्वं वा यादौ किति । सायात् सन्यात् ।

असानीत् असनीत् ।

(३०३) जनसन खनां सञ्झलोः ।६।४।४२॥

एषामाकारोऽन्ता देशः स्यात् सनि झलादौ क्ङिति ।

असात, असनिष्ट । असाथाः असनिष्ठाः ।

क्षणु हिंसायाम् ॥३॥ क्षणोति, क्षणुते । ह्ययन्तेति न वृद्धिः—अक्षणीत्, अक्षत, अक्षणिष्ट । अक्षथाः, अक्षणिष्ठाः ।

क्षिणु च ॥४॥ उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा । क्षेणोति क्षिणोति । क्षेणिता । अक्षेणीत् । अक्षित अक्षेणिष्ट ।

तृणु अदने ॥५॥ तर्णोति तृणोति । तर्णुते तृणते ।

तनुताम् तन्वन्तु । उतश्च प्रत्ययादित—हे लोंपः—तनु तनुतम् तनुत । तनवानि तनवाव तनवाम । तनुताम् तन्वाताम् तन्वताम् तनुष्व तन्वाथाम् तनुध्वम् । तनवै तनवावहै तनवामहै ।

लङ् में अतनोत् अतनुताम् अतन्वन् । अतनुत अतन्वाताम् इत्यादि ।

वि० लिङ्—तनुयात् तन्वीत । आ० लिङ् तन्यात् तनिषीष्ट । लुङ् में—अतो हलादेः—विकल्पतः वृद्धि—अतानीत् अतनीत् इत्यादि रूप होंगे ।

तनादिभ्य इति—तनादि धातुओं से सिच् का लोप विकल्पतः हो, त और थास् प्रत्यय परे रहते ।

आत्मने पद में प्रस्तुत सूत्र से सिच् लोप पक्ष में 'अनुदात्तोपदेश—सूत्र से न लोप होकर अतत, सिच् लोप के अभाव पक्ष में इट् होकर अतनिष्ट, इसी प्रकार थास् प्रत्यय पर सिच् लोप और नकार लोप होकर अतथाः, लोपाभाव पक्ष में अतनिष्ठाः रूप होंगे । लृङ् में अतनिष्यत् अतनिष्यत ।

षणु दाने—सन् धातु दान देने अर्थ में है । यह सेट् और उभय पदी है ।

लट् में उ प्रत्यय और गुण होकर सनोति आत्मनेपद में सनुते लिट् में ससान सेनतुः । सेने । सनितासि सनितासे । लृट्—सनिष्यति सनिष्यते । सनोतु, सनुताम् । असनोत् असनुत ।

वि० लिङ्—सनुयात् सन्वीत ।

ये इति—जन सन खन् धातुओं को विकल्पतः आत्व हो यकारादि कित् प्रत्यय परे रहते ।

(अलोऽन्त्य सूत्र के वल से धातु के अन्तिम वर्ण नकार को आत्व होगा)

किदाशिषि सूत्र से आशीर्लिङ् का यासुट् कित् होता है अतः यकारादि कित्

डुकृञ् करणे ।।६।। करोति ।

(३०४) अत उत् सार्वधातुके ।६।४।११०।।

उ प्रत्ययान्त कृञोऽकारस्य उत्स्यात् सार्वधातु के क्ङिति । कुरुतः ।

(३०५) न भकुर्छुराम् ।८।२।७९।।

भस्य कुर्छुरोरुपधाया न दीर्घः । कुर्वन्ति ।

(३०६) नित्यं करोतेः ।६।४।१०८।।

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपोम्वोः परयोः । कुर्वः, कुर्मः । कुरुते । चकार, चक्रे । कर्ता । करिष्यति, करिष्यते । करोतु, कुरुताम् । अकरोत् अकुरुत ।

मिलने से प्रस्तुत सूत्र से नकार को आत्व होकर **सायात्**, आत्वाभाव पक्ष में सन्यात् रूप होंगे ।

लुङ् में अतोहलादेः— विकल्पतः वृद्धिः—**असानीत्, असनीत् ।**

जनसनेति—जन सन् खन् धातुओं को आकारान्ता देश हो सन् झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते ।

लुङ् आत्मनेपद में 'अ सन् स त' इस स्थिति में तनादिभ्य स्तथासोः' सूत्र से सिच् लोप पक्ष में झलादि कित् प्रत्यय 'त' परे रहते प्रस्तुत सूत्र से धातु के नकार को आकार होकर **असात**, सिच् लोप के अभाव पक्ष में इट् होने पर झलादि कित् न मिलने से नकार को आकार न होगा तब **असनिष्ट** होगा । इसी प्रकार थास् प्रत्यय परे भी सिच् लोप में आकार होकर **असाथाः**, लोपाभाव पक्ष में इट् होकर **असनिष्ठाः** रूप होंगे—

इसी प्रकार लुङ् आत्मनेपद में **असात, असनिष्ट । असनिषाताम असनिषत । असाथाः, असनिष्ठाः, असनिषाथाम् असनिढ्वम् । असनिषि असनिष्वहि असनिष्महि ।**

लृङ् में असनिष्यत् असनिष्यत आदि रूप होंगे ।

क्षणु हिंसायाम्—क्षण् धातु हिंसा अर्थ में है, यह धातु भी सेट उदित् और उभयपदी है ।

लट्—**क्षणोति क्षणुते ।** शेष लकारों के रूपों में सामान्य कार्य ही होता है, लुङ् लकार में 'अ क्षण् इ स ई त्' इस स्थिति में हलन्त लक्षणा वृद्धि का तो नेटि सूत्र से निषेध होता है, पुनः अतो हलादेः— सूत्र से प्राप्त वृद्धि का 'ह्मयन्तेति' सूत्र से निषेध होकर परस्मैपद में तो 'अक्षणीत्' एक रूप बनता है । किन्तु आत्मनेपद में 'तनादिभ्यस्तथासोः' सूत्र से विकल्पतः सिच् लोप होता है, लोप पक्ष में 'अनुदात्तोपदेश—सूत्र से अनुनासिक णकार का भी लोप होकर **अक्षत**, सिच् लोपा भाव पक्ष में इट् होकर **अक्षणिष्ट**, थास् परे भी इसी प्रकार **अक्षथाः** और **अक्षणिष्ठाः** रूप बनते हैं ।

क्षिणुच—क्षिणु धातु भी हिंसा अर्थ में सेट् उदित् एवं उभय पदी है, इसके रूपों में उक्त धातु मे कोई वैशिष्ट्य नहीं है, सभी रूप पूर्ववत् बनते हैं, केवल लघूपध गुण की ही विशेषता है ।

लट् लकार् में लघु पधगुण होने पर क्षेणोति और गुणाभाव पक्ष मे क्षिणोति रूप बनते हैं।

वस्तुतः लघूपध गुण नित्य विधि है, इस सूत्र में गुण के विकल्प की कल्पना "संज्ञापूर्व को विधिरनित्यः" इस परिभाषा के बल पर की गई है, क्योंकि "उपधा" संज्ञा है, यह सूत्र उपधा संज्ञक को ही गुण करता है. अतः यह गुण विधि संज्ञा को निमित्त मान कर होने के कारण अनित्य है अत् एव गुण होता भी है और नहीं भी। किन्तु संज्ञा पूर्वक विधि की अनित्यता भाष्य मे मान्य नहीं है, अतः भाष्यमत में गुण होता ही है, इस दृष्टि से ही यहाँ गुण का विकल्प दिखलाया गया है, भाष्यमत ही सर्वमान्य है, अतः गुण को नित्य ही मानना चाहिये, प्रकरण वश यहाँ यह विकल्प दिखलाया गया है।

इस धातु के अन्य रूप—क्षेणिता। अक्षेणीत् अक्षित् अक्षेणिष्ट आदि होंगे।

तृणु अदने—तृण्धातु खाने अर्थ में सेट् उभयपदी उदित् है, इसमें लघूपध गुण के विकल्प को पूर्ववत् मानकर तर्णोति तृणोति। तर्णुते तृणुते आदि रूप बनते हैं।

डुकृञ् करणे—यह धातु करने अर्थ में है, अनिट है, और ञित् होने से उभय पदी है, डु की इत् संज्ञा होने से यह ड्वित् है अतः ड्वित् होने से क्त्र प्रत्यय परे कृत्रिमम् रूप बनता है।

कृ धातु से लट्लकार प्रथम पुरुष एक वचन में तिप् प्रत्यय करने पर "तनादि कृञ्भ्य उः" से उ प्रत्यय, 'कृ उति' इस स्थिति में 'उ' प्रत्यय को निमित्त मानकर ऋकार को अर् गुण, और तिप् प्रत्यय को निमित्त मानकर 'उ' को ओ गुण होकर **करोति** रूप बनेगा।

अत उत्सार्वधातुके—सार्वधातुक कित् ङित् प्रत्यय परे रहते, उ प्रत्ययान्त कृञ् धातु के अकार को उकार हो।

कृ धातु से लट्लकार में तस् प्रत्यय परे 'उ' प्रत्यय, और 'उ' प्रत्यय निमित्तक ऋकार को अर् गुण, 'कर् उ तस्' इस स्थिति में तस् प्रत्यय अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् है अतः तस् को निमित्त मानकर 'उ' को गुण न होगा, किन्तु 'उ' प्रत्यय के अपित् सार्वधातुक ङिद्वत् होने से ङित् प्रत्यय परे प्रस्तुत सूत्र से 'क' के अकार को 'उ' हो जायेगा, सकार को रुत्व विसर्ग होकर **कुरुतः** रूप होगा।

बहुवचन में झि परे 'उ' प्रत्यय, 'उ' प्रत्यय निमित्तक ऋकार को अर् गुण, झि को अन्ति होकर 'कर्' उ अन्ति" इस स्थिति में "अत उत् - सूत्र से 'क' के अकार को उकार होने पर 'कुरु अन्ति' इस स्थिति में 'हलिच' सूत्र से उकार को दीर्घ प्राप्त होता है—

न भकुर्छुराम्—भसंज्ञक कुर् और छुर् की उपधा को दीर्घ न हो। उक्त स्थिति में 'हलिच' सूत्र से कुर् की उपधा उकार को प्राप्त दीर्घ का प्रस्तुत सूत्र से निषेध होने पर उकार को अच् परे यण् होकर **कुर्वन्ति** रूप बनेगा।

(२०७) ये च ।३।४।१०९।।

कृञ उ लोपो यादौ प्रत्यये परे। कुर्वीत। क्रियात्। कृषीष्ट। अकार्षीत्। अकृत। अकरिष्यत् अकरिष्यत।

सिप् परे उ प्रत्यय, गुण, उकार को ओ गुण, षत्व होकर करोषि, थस् परे उ प्रत्यय, गुण, अत उत्-सूत्र से अकार को उकार होकर कुरुथः, थ परे भी इसी प्रकार **कुरुथ**, मिप् परे उ प्रत्यय, गुण, उकार को ओ गुण, **करोमि** रूप होगा।

नित्य मिति—मकार और वकार प्रत्यय परे कृ धातु से परे प्रत्यय उकार का नित्य लोप हो।

"कृ उ वस् तथा कृ उ मस्" इस स्थिति में उ प्रत्यय निमित्तक ऋकार को अर् गुण, अकार को अत उत्—से उकार होकर 'कुरु वस्, कुरु मस्' इस स्थिति में 'नित्यं करोतेः' सूत्र से उ प्रत्यय का लोप, सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'कुर्वः कुर्मः' रूप होंगे।

लट् आत्मने पद के सभी प्रत्ययों के अपित् सार्वधातुक ङिद्वत् होने से सर्वत्र ऋकार को अर् गुण करने पर 'अत उत्-सूत्र से अकार को उकार हो जायेगा शेष सामान्य कार्य होकर **कुरुते कुर्वाते कुर्वते, कुरुषे कुर्वाथे कुरुध्वे**, इट् परे एत्व और यण् होकर **कुर्वे**, वहि महि परे नित्यं करोतेः उकार प्रत्यय का लोप होकर **कुर्वहे कुर्महे**, रूप बनेंगे।

लिट् लकार में **चकार चक्रतुः चक्रुः चकर्थ चक्रथुः चक्र, चकार चकार चकृव चकृम**। आत्मने पद में— **चक्रे चक्राते चक्रिरे, चकृषे चक्राथे** आदि रूप होंगे।

लुट् लकार में अनिट् होने से इट् न होगा, गुण होकर **कर्तासि** कर्तासे। लृट् में 'ऋद्धनोः स्ये' से इट् गुण षत्व होकर **करिष्यति करिष्यते**।

लोट् में उ प्रत्यय, गुण, उकार को ओ गुण—**करोतु, कुरुतात्**-अत उत्-से अकार को उकार- **कुरुताम्**, न भकुर्छुराम्—दीर्घ निषेध— **कुर्वन्तु**, उतश्चेति हि का लोप—**कुरु कुरुतम् कुरुत**, आट् गुण अवादेश, णत्व होकर **करवाणि करवाव करवाम**। आत्मने पद में सर्वत्र अकार को उकार होकर—**कुरुताम् कुर्वाताम् कुर्वताम्, कुरुष्व कुर्वाथाम् कुरुध्वम्, करवै करवावहै करवामहै**।

लङ् में अट् **अकरोत् अकुरुताम् अकुर्वन्। अकरोः अकुरुतम् अकुरुत। अकरवम्**, उ प्रत्यय का लोप- **अकुर्व अकुर्म**। आत्मनेपद में **अकुरुत अकुर्वाताम् अकुर्वत। अकुरुथाः अकुर्वाथाम् अकुरुध्वम् अकुर्वि अकुर्वहि अकुर्महि**।

ये चेति—यकारादि प्रत्यय परे रहते कृञ् धातु से परे उ प्रत्यय का लोप हो।

विधि लिङ् में 'कृ यास् त्' इस स्थिति में यकारादि प्रत्यय परे प्रकृत सूत्र से उ प्रत्यय का लोप होकर **कुर्यात्** रूप होगा, यहाँ यासुट् के ङित् होने से उ प्रत्यय निमित्तक गुण होकर 'अत उत सूत्र से अकार को उकार भी हो जायेगा अतः 'कुरु यात्' इस स्थिति में उप्रत्यय का लोप होगा। इसी प्रकार अन्य सभी रूपों में भी 'ये च' सूत्र

(३०८) सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ।६।१।१३७।।

(३०९) समवाये च ।६।१।१३८।।

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्यात् भूषणे संघाते चार्थे । संस्करोति—अलंकरोतीत्यर्थः संस्कुर्वन्ति—संघीभवन्ती त्यर्थः । सम्पूर्वस्य क्वचिद् भूषणेऽपि सुट्—'संस्कृतं भक्षाः' इति ज्ञापकात् ।

(३१०) उपात् प्रति यत्न वैकृत वाक्याध्याहारेषु च ।३।१।१३९।।

उपात् कृञः सुट्स्यादेष्वर्थेषु । चात् प्रागुक्तयोरर्थयोः । प्रतियत्नो गुणाधानम् । विकृत मेव वैकृतं-विकारः । वाक्याध्यहारः—आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । उपस्कृता ब्राह्मणाः । एधोदकस्योपस्कुरुते । उपस्कृतं भुङ्क्ते । उपस्कृतं ब्रूते ।

से 'उ' का लोप होकर **कुर्याताम् कुर्युः । कुर्याः, कुर्यातम्, कुर्यात कुर्याम् कुर्याव कुर्याम ।** आत्मने पद में सीयुट् होकर उ प्रत्यय, गुण, अकार को उकार होकर 'कुरु+ईत' इस स्थिति में यण् होकर—**कुर्वीत कुर्वीयाताम् कुर्वीरन् कुर्वीथाः कुर्वीयाथाम् कुर्वीध्वम् । कुर्वीय कुर्वीवहि कुर्वीमहि ।**

आशीलिङ् में 'कृ यात्' इस स्थिति में "रिङ् शयग् लिङक्षु" सूत्र से ऋकार को रिङ् होकर **क्रियात् क्रियास्ताम् क्रियासुः** आदि रूप बनेंगे । आत्मनेपद में सीयुट् के कित् होने से गुण न होकर **कृषीष्ट कृषीयास्ताम्**, कृषीरन् आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् लकार में 'अट् सिच् ईट् त्' इस स्थिति में 'सिचिवृद्धिः—सूत्र से ऋकार को आर् वृद्धि होकर **अकार्षीत् अकार्ष्टाम् अकार्षुः । अकार्षीः अकार्ष्टम् अकार्ष्ट । अकार्षम्, अकार्ष्व अकार्ष्म ।** आत्मनेपद में ह्रस्वादङ्गात् सूत्र से सिच् के सकार का लोप होकर **अकृत अकृषाताम् अकृषत । अकृथाः अकृषाथाम्, अकृध्वम् । अकृषि अकृष्वहि अकृष्महि ।**

लृङ् में अर् गुण इट् होकर अकरिष्यत् अकरिष्यत रूप होंगे ।

सम्परिभ्याम् समवाये चेति— सम् और परि उपसर्ग पूर्वक कृ धातु को सुट् (स्) का आगम हो, भूषित करने और समूह अर्थ में । 'सम्+करोति' इस स्थिति में अलंकृत करने अर्थ में प्रस्तुत सूत्र से सुट् (स्) का आगम, मकार का अनुस्वार होकर 'संस्करोति' अर्थात् भूषित करता है । तथा 'सम्+कुर्वन्ति' इस स्थिति में समूह अर्थ में प्रकृत सूत्र से सुट् होकर "संस्कुर्वन्ति" अर्थात् एकत्रित होते हैं, ये रूप होते हैं ।

सम्पूर्वस्येति— सम् पूर्वक कृ धातु को कहीं उस स्थल में भी सुट् का आगम देखा जाता है, जहाँ इसका अर्थ अलंकृत करना नहीं है, इसके लिए 'संस्कृतं भक्षाः' यह पाणिनि सूत्र ही प्रमाण है, यद्यपि यहाँ अलंकृत करना अर्थ नहीं है तथापि यहाँ सुट् का आगम किया गया है अतः अलंकृत करने अर्थ से भिन्न अर्थ में भी सुट् होता है, अतएव अन्नं संस्करोति जैसे प्रयोग भी होते हैं ।

वनु याचने ॥७॥ वनुते । ववने । मनु अवबोधने ॥८॥ मनुते । मेने । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । अमनुत । मन्वीत । मनिषीष्ट । अमनिष्ट । अमत । अमनिष्यत ।

इति तनादयः

उपादिति—उप उपसर्ग से परे भी कृञ् धातु को सुट् का आगम होता है, अलंकृत करने तथा समूह अर्थ में तथा प्रतियत्न, वैकृत एवं वाक्याध्याहार अर्थों में ।

प्रति यत्न—गुणाधान अर्थात् गुण या रंग ग्रहण करना ।

वैकृत—अर्थात् विकार-विकार अर्थ में ।

वाक्याध्याहार—जिसकी आकांक्षा हो उस एक भाग को पूरा करने अर्थ में ।

उपस्कृता कन्या—(अलंकृत की हुई कन्या) यहाँ अलंकरण अर्थ में प्रस्तुत सूत्र से सुट् का आगम हुआ है ।

उपस्कृता ब्राह्मणाः—(एकत्रित हुए ब्राह्मण) यहाँ समूहार्थ में सुट् का आगम हुआ है ।

एधोदकस्योपस्कुरुते—(लकड़ी जल का गुण धारण करती है) यहाँ प्रतियत्न अर्थ में सुडागम है ।

उपस्कृतं भुङ्क्ते—(विकृत पदार्थ को खाता है) यहाँ वैकृत अर्थ में सुडागम है ।

उपस्कृतं ब्रूते—(वाक्य का अध्याहार कर बोलता है) यहाँ वाक्याध्याहार अर्थ में सुडागम है ।

वनु याचने—माँगने अर्थ में है । यह सेट् उदित् एवं आत्मनेपदी है ।

लट् में वनुते । लिट् में द्वित्व अभ्यास कार्य होने पर, 'अत एकहल्मध्ये' सूत्र से एत्वाभ्यास लोप प्राप्त था पर "नशसददवादिगुणानाम्" सूत्र से निषेध होने के कारण एत्वाभ्यास लोप न होगा, अतः **ववने ववनाते** आदि रूप ही बनेंगे। लुट् में **वनिता** लट् **वनिष्यते** आदि, शेष सभी रूप आत्मनेपदी धातुओं के समान ही बनेंगे ।

मनु अवबोधने—मन् धातु जानने अर्थ में है, यह भी पूर्व धातु वत् सेट् उदित एवं आत्मनेपदी है ।

लट्—**मनुते मन्वाते मन्वते । मनुषे मन्वाथे मनुध्वे । मन्वे, मन्वहे, मन्महे ।**

लिट् में एत्वाभ्यास लोप—**मेने, मेनाते, मेनिरे** आदि । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । अमनुत । मन्वीत । मनिषीष्ट । लुङ् लकार में सिच् इट् अमनिष्ट और जब "तनादिभ्यस्तथासोः" सूत्र से सिच् का लोप, और अनुदात्तोपदेश—सूत्र से नकार लोप होगा तब **अमत** रूप होगा, इसी प्रकार **अमथाः अमनिष्ठाः** आदि रूप होंगे ।

इति तनादिगणः

अथ क्रयादयः

डुक्रीञ् द्रव्य विनिमये ॥१॥

(३११) क्रयादिभ्यः श्ना ।३।१।८१॥

शपोऽपवादः । क्रीणाति । ई हल्यघोः—क्रीणीतः । श्नाभ्यस्तयोरातः—क्रीणन्ति । क्रीणासि, क्रीणीथः, क्रीणीथ । क्रीणामि, क्रीणीवः, क्रीणीमः । क्रीणीते, क्रीणाते, क्रीणते । क्रीणीषे, क्रीणाथे, क्रीणीध्वे । क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे । चिक्राय, चिक्रियतुः चिक्रियुः । चिक्रेथ चिक्रयिथ । चिक्रिये । क्रेता । क्रेष्यति, क्रेष्यते । क्रीणातु क्रीणीतात् क्रीणीताम् । अक्रीणात्, अक्रीणीत । क्रीणीयात्, क्रीणीत । क्रीयात्, क्रेषीष्ट । अक्रैषीत्, अक्रेष्ट । अक्रेष्यत् अक्रेष्यत ।

डुक्रीञ् द्रव्य विनिमये—क्री धातु खरीदने अर्थ में है। यह अनिट् और ञित् होने से उभयपदी है, ड्वित् होने का फल कृदन्त प्रत्ययों में है।

क्रयादिभ्य इति—क्री आदि धातुओं से श्ना प्रत्यय हो। श्ना प्रत्यय में शकार की इत् संज्ञा है अतः यह शित् प्रत्यय है, केवल 'ना' शेष रहता है, यह शित् विकरण केवल सार्वधातुक लकारों में होता है। श्ना प्रत्यय शप् प्रत्यय का अपवाद है।

लट् प्र० पु० एकवचन में श्ना (ना) प्रत्यय, णत्व होकर **क्रीणाति,** द्विवचन में ना प्रत्यय के आकार को 'ईहल्यघोः' सूत्र से ईकार होकर **क्रीणीतः**, बहुवचन में 'ना' प्रत्यय के आकार का "श्नाभ्यस्तयोरातः" सूत्र से लोप होकर **क्रीणन्ति** रूप बनेंगे।

मध्यम पु० एकवचन में **क्रीणासि**, थस् थ वस् मस् प्रत्ययों के परे अपित् सार्वधातुक के ङिद्वत् होने से 'ईहल्यघोः' सूत्र से आकार को ईकार होकर—**क्रीणीथः**, **क्रीणीथ** । **क्रीणामि, क्रीणीवः**, क्रीणीमः । आत्मनेपद में त आदि हलादि प्रत्ययों के परे अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् हो जाने से सर्वत्र 'ईहल्यघोः' से आकार को ईकार हो जायेगा, अतः **क्रीणीते,** क्रीणाते, झ को अत होने पर और टि को एत्व होने पर **क्रीणते** इन दोनों स्थलों में अजादि प्रत्यय परे 'श्नाभ्यस्तयोरातः' से आकार का लोप होकर रूप बनेंगे।

प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च ॥२॥ प्रीणाति-प्रीणीते । श्रीञ् पाके ॥३॥ श्रीणाति—श्रीणाते ।

हलादि प्रत्ययों के परे तो आकार को ईकार होगा और अजादि प्रत्ययों के परे आकार का लोप होगा—शेष रूप—**क्रीणीषे क्रीणाथे,** क्रीणीध्वे । इट् परे **क्रीणे, क्रीणीवहे,** क्रीणीमहे ।

लिट् में क्री की द्वित्व, अभ्यास कार्य, ह्रस्वः से ह्रस्व, चर्त्व, 'चिक्री+अ' इस स्थिति में 'अचोञ्णिति' से ईकार को ऐ वृद्धि आयादेश होकर चिक्राय, अतुस् उस् आदि अजादि प्रत्ययों के परे 'असंयोगाल्लिट' कित् से कित् होने से गुणाभाव, 'अचिश्नु'—से ईकार को इयङ् होकर **चिक्रियतुः,** चिक्रियुः । थल् परे इट् पक्ष में गुण अयादेश होकर **चिक्रयिथ,** इडभावपक्ष में गुण—**चिक्रेथ । चिक्रियथुः चिक्रिय** आदि रूप होंगे । आत्मनेपद में इयङ् होकर—**चिक्रिये, चिक्रियाते, चिक्रियिरे** आदि रूप होंगे । लुट् में गुण—**क्रेतासि-क्रेतासे ।** लृट् में गुण—**क्रेष्यति-क्रेष्यते ।** लोट् में—**क्रीणातु,** तातङ् पक्षे क्रीणीतात् (ङित् होने से आकार को ईकार) **क्रीणीताम्,** श्नाभ्यस्तयो रातः—क्रीणन्तु । अपित् होने आकार को ईकार—**क्रीणीहि क्रीणीतात्, क्रीणीतम् क्रीणीत । क्रीणानि, क्रीणाव, क्रीणाम** (आट् के पित् होने से यहाँ ईकार) नहीं हुआ । आत्मनेपद में हलादि प्रत्ययों में ईकार, अन्यत्र आकार लोप—**क्रीणीताम् क्रीणाताम् क्रीणताम्, क्रीणीष्व, क्रीणाथाम् क्रीणीध्वम् । क्रीणै क्रीणावहै क्रीणामहै ।**

लङ् में हलादि प्रत्ययों में ईकार—**अक्रीणात्** (पित्त्वान्न ङिद्वत् अतो नाकारस्येकारः) ईकारे कृते—**अक्रीणीताम्,** आकार लोपः—**अक्रीणन् अक्रीणाः, अक्रीणीतम् अक्रीणीत । अक्रीणाम, अक्रीणीव, अक्रीणीम ।** आत्मनेपद में हलादि प्रत्ययों में ईकार, अजादि प्रत्ययों में आकार लोप—**अक्रीणीत अक्रीणाताम्, अक्रीणत, अक्रीणीथाः अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम् । अक्रीणे, अक्रीणीवहि, अक्रीणीमहि ।**

विधि लिङ्—यासुट् के ङित् होने से सर्वत्र श्ना के आकार को ई 'हल्यघोः' से सर्वत्र ईकार—**क्रीणीयात् क्रीणीयाताम् क्रीणीयुः । क्रीणीयाः क्रीणीयातम् क्रीणीयात । क्रीणीयाम् क्रीणीयाव, क्रीणीयाम ।** आत्मनेपद में सर्वत्र सीयुट् के ईकार के आगे रहने से "श्नाभ्यस्तयोरातः" से आकार का लोप होगा—**क्रीणीत क्रीणीयाताम् क्रीणीरन्, क्रीणीथाः क्रीणीयाथाम् क्रीणीध्वम् । क्रीणीय, क्रीणीवहि, क्रीणीमहि ।**

आशीर्लिङ् में यासुट् के कित् होने से गुणाभाव—**क्रीयात्** आदि रूप होंगे, आत्मनेपद में सीयुट् सुट् गुण—**क्रेषीष्ट** आदि रूप होंगे ।

लुङ् में 'अ क्री स ई त्' इस स्थिति में ईकार को 'सिचि वृद्धिः—सूत्र से ऐ वृद्धिः, षत्व—**अक्रैषीत्, अक्रैष्टाम्, अक्रैषुः । अक्रैषीः, अक्रैष्टम्, अक्रैष्ट । अक्रैषम् अक्रैष्व अक्रैष्म ।** आत्मनेपद में गुण षत्व ष्टुत्व—**अक्रेष्ट** आदि । लृङ् में **अक्रेष्यत् अक्रेष्यत ।**

मीञ् हिंसायाम् ॥४॥

(३१२) हिनुमीना ।८।४।१५॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्यैतयो र्नस्य णः स्यात् ।

प्रमीणाति प्रमीणीते । मीनातीत्या त्वम्—ममौ । मिम्यतुः । ममिथ ममाथ । मिम्ये । माता । मास्यति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् अमासिष्टाम् । अमास्त ।

षिञ् बन्धने ॥५॥ सिनाति सिनीते । सिषाय सिष्ये । सेता ।

स्कुञ् आप्लवने ॥६॥

प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च—प्री धातु प्रसन्न करने और इच्छा करने अर्थ में है। ञित्वात् उभयपदी और अनिट् है। इसके सभी रूप क्री धातु के समान ही बनते हैं—

प्रीणाति प्रीणीते इत्यादि।

श्रीञ् पाके—श्री धातु पकाने अर्थ में है, उभयपदी और अनिट् है, इसके भी सभी रूप श्रीणाति श्रीणीते आदि क्री धातु के समान ही बनते हैं।

मीञ् हिंसायाम्—मी धातु हिंसार्थक है, उभयपदी और अनिट् भी है।

हिनुमीना इति—उपसर्गस्थ निमित्त से परे हि और मी धातु के नकार को णकार हो।

लट् में प्र+मीनाति इस स्थिति में उपसर्गस्थ निमित्त रेफ से परे धातु के नकार को णकार होकर **प्रमीणाति प्रमीणीते** रूप बनेंगे।

लिट् लकार में तिप् को णल् करने पर 'मीनातिमिनोति' सूत्र से धातु के ईकार को आत्व, मा मा द्वित्व अभ्यास कार्य, "आत औ णलः" सूत्र से णल् को औ आदेश, 'ममा+औ' इस स्थिति में वृद्धि होकर **ममौ** रूप होगा।

मीनाति—सूत्र तिप् सिप् मिप् गुण योग्य प्रत्ययों के परे ही आत्व करता है, अतः शेष स्थलों में मी मी द्वित्व, अभ्यास कार्य होकर मिमी यह स्थिति बनती है तब यण् होकर **मिम्यतुः** मिम्युः, थल् परे मीनाति—सूत्र से आत्व होने पर, धातु के तास् परे नित्य अनिट् एवं अजन्त होने से विकल्पतः इट् होगा, इट् होने पर 'म मा इ थ' इस स्थिति में 'आतो लोप इट् च' से आकार का लोप होकर **ममिथ**, इडभाव पक्ष में **ममाथ, मिम्यथुः मिम्य** आदि रूप बनेंगे। आत्मनेपद में आत्व न होगा अतः मिम्ये आदि रूप होंगे।

लुट्—आत्व होकर मातासि मातासे। लृट्—मास्यति मास्यते। मीयात्। मासीष्ट। लुङ् में आत्व होने पर 'यमरमेति' सूत्र से इट्, सक्, सिच् लोप होकर 'अ मा इ स् ई त्' इस स्थिति में सलोप दीर्घ होकर अमासीत् अमासिष्टाम् अमासिषुः। अमासीः अमासिष्टम् अमासिष्ट। अमासिषम् अमासिष्व अमासिष्म। आत्मनेपद में

(३१३) स्तन्भु स्तुन्भु स्कन्भु स्कुन्भु स्कुञ्भ्यः श्नुश्च ।३।१।८२।।

चात् श्ना । स्कुनोति स्कुनाति । स्कुनुते स्कुनीते । चुस्काव, चुस्कुवे । स्कोता । अस्कौषीत् अस्कोष्ट । स्तन्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः ।

(३१४) हलः श्नः शानज्झौ ।३।१।८३।।

हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे । स्तभान ।

(३१५) जॄ स्तन्भु म्रुचु म्लुचु ग्रुचु ग्लुचु ग्लुञ्चु श्विभ्यश्च ।३।१।५८।।

च्लेरङ् वा स्यात् ।

च्लि को सिच् होकर अमास्त अमासाताम् अमासत । अमास्थाः अमासाथाम् अमाध्वम् । अमासि अमास्वहि अमास्महि । अमास्यत् अमास्यत ।

षिञ् बन्धने सि धातु बाँधने अर्थ में है । षोपदेश, अनिट् उभयपदी है । सिनाति, सिनीते । लिट्—सिषाय सिष्ये । गुण—सेता, सेष्यति, ते ।

लुङ् में वृद्धि होकर असैषीत्, असैष्टाम्, असैषुः । असैषीः, असैष्टम्, असैष्ट । असैषम्, असैष्व, असैष्म । आत्मनेपद में सिच् लोप—असित असिषाताम् असिषत । असिथाः असिषाथाम्, असिड्ढ्वम् । असिषि असिष्वहि असिष्महि । असेष्यत्-त ।

स्कुञ् आप्लवने—स्कु धातु कूदने अर्थ में है।

स्तन्भु इति—स्तन्भु आदि सूत्र पठित पाँचों धातुओं से श्नु विकरण और चकारात् श्ना विकरण भी होता है । स्तन्भु आदि चार धातुयें सूत्र पठित ही है, इनका धातु पाठ में परिगणन नहीं है । इन चारों ही का अर्थ रोकना है, ये परस्मैपदी ही हैं । स्कुञ् धातु उभयपदी है, इसमें श्नु और श्ना विकरण विकल्पतः दोनों होते हैं स्कुनोति स्कुनाति स्कुनुते स्कुनीते । लिट् में चुष्काव चुस्कुवे । लुट्—गुण—स्कोता स्कोष्यति, ते । सभी सार्वधातुक लकारों में श्नु और श्ना विकल्पतः होंगे । लुङ् में अस्कौषीत् अस्कोष्ट अस्कोष्यत् अस्कोष्यत ।

हलःश्न इति—हल् से परे श्ना प्रत्यय को शानच् आदेश हो लोट् मध्यम पुरुष एकवचन में 'हि' परे रहते ।

स्तभान—सूत्र पठित स्तन्भु धातु से म० पु० लोट् एकवचन में सिप्, श्ना, सि को हि आदेश, 'स्तन्भ् ना हि' श्ना विकरण के अपित् सार्वधातुकत्वात् ङिद्वत् होने से 'अनिदितां हलुपधायाः—सूत्र से धातु के नकार का लोप, 'हलः श्नः—सूत्र से श्ना को शानच् (आन) आदेश, 'अतो हेः' से हि का लोप होकर **स्तभान** रूप बनेगा ।

जॄ स्तन्भु इति—जॄ स्तन्भु म्रुचु म्लुचु ग्रुचु ग्लुचु ग्लुञ्चु और श्वि धातुओं से परे च्लि को अङ् आदेश विकल्पतः हो ।

स्तन्भेरिति—सूत्र पठित स्तन्भु धातु के सकार को षकार हो ।

व्यष्टभत्—स्तन्भ् धातु से लुङ् प्र० पु० एकवचन में च्लि को जॄ स्तन्भु—सूत्र से अङ् आदेश, अङ् के ङित् होने से 'अनिदिताम्—सूत्र से धातु के नकार का लोप,

(३१६) स्तन्भेः ।८।३।६७।।

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात् । व्यष्टभत्, अस्तम्भीत् ।

युञ् बन्धने ।।७।। युनाति युनीते । योता । क्नूञ् शब्दे ।।८।। क्नूनाति क्नूनीते । क्नविता । दृञ् हिंसायाम् ।।९।। दृणाति, दृणीते ।

द्रूञ् हिंसायाम् ।।१०।। द्रूणाति द्रूणीते । पूञ् पवने ।।११।।

(३१७) प्वादीनां ह्रस्वः ।७।३।८०

पूञ् लूञ् स्तॄञ् कॄञ् वॄञ् धूञ् शॄ पॄ वॄ भॄ मॄ दॄ जॄ झॄ धॄ नॄ कॄ ऋॄ गॄ ज्या री ली व्ली प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः । पुनाति पुनीते । पविता लूञ् छेदने ।।१२।। लुनाति लुनीते । स्तॄञ् आच्छादने ।।१३।।

वि उपसर्ग पूर्वक—'वि+अस्तभ् अ त्' इस स्थिति में "स्तन्भेः" सूत्र से धातु के सकार को षत्व और तकार को ष्टुत्वेन टकार, यण् होकर **व्यष्टभत्** रूप बनेगा । अङ् आदेश वैकल्पिक है, अतः जब च्लि को अङ् न होगा तब सिच् तथा इट् और ईट् होकर सकार को लोप होकर **अस्तम्भीत्** रूप बनेगा ।

युञ् बन्धने—यु धातु बाँधने अर्थ में है, अनिट् उभयपदी है । लट् में **युनाति युनीते** । लुट्—योता । लुङ् में वृद्धि होकर अयौषीत् अयौष्टाम् अयौषुः आदि रूप होंगे । अयोष्यत् । **क्नूञ् शब्दे**—क्नू धातु शब्द करने अर्थ में है, यह धातु सेट् तथा उभयपदी है ।

क्नूनाति क्नूनीते । लिट् में चुक्नाव चुक्नुवे । लुट् में क्नविता । लुङ् अक्नावीत् अक्नविष्ट आदि रूप बनेंगे ।

दृञ् हिंसायाम्—दॄ धातु हिंसा अर्थ में हैं, अनिट् और उभयपदी है ।
लट् लकार में इसके रूप श्ना प्रत्यय होकर **दृणाति दृणीते** ।
लिट् में **ददार, ददरे,** अनिट् होने से इट् न होगा, **दर्तासि दर्तासे** ।

लृट् में इट्, षत्व—**दरिष्यति दरिष्यते** । लोट् लकार में **दृणातु, दृणीताम्** । लङ् में **अदृणात् अदृणीत** । विधि लिङ् लकार में—**दृणीयात् दृणीत** । द्रियात् दृषीष्ट । ऋकार को आर् वृद्धि होकर **अदार्षीत्,** आत्मनेपद में **अदृत लृङ्**—**अदरिष्यत् अदरिष्यत** । **द्रूञ् हिंसायाम्**—द्रू धातु हिंसा अर्थ में है, सेट् एवं उभयपदी है । **द्रूणाति, द्रूणीते । दुद्राव दुद्रवे । द्रवितासि द्रविता से । द्रविष्यति द्रविष्यते । द्रूणातु द्रूणीताम् । अद्रूणात् अद्रूणीत । द्रूणीयात् द्रूणीत** । लुङ् में वृद्धि आवादेश—**अद्रावीत्, अद्रविष्ट । अद्रविष्यत् अद्रविष्यत** ।

पूञ् पवने—पू धातु पवित्र करने अर्थ में है, सेट्, उभयपदी है ।
लट्—पुनाति पुनीते—

प्वादी नामिति—पूञ् पवने, लूञ् छेदने स्तॄञ् आच्छादने, कॄञ् हिंसायाम्, वॄञ् वरणे, धूञ् कम्पने, शॄ हिंसने, पॄ पालने, भॄ भरणे, मॄ मरणे, दॄ हिंसायाम्,

स्तृणाति स्तृणीते। शर्पूर्वाः खयः—तस्तार, तस्तरतुः। तस्तरे। स्तरिता। स्तरीता। स्तृणीयात् स्तृणीत। स्तीर्यात्।

(३१८) लिङ् सिचोरात्मने पदेषु ।७।२।४८।।

वृङ् वृञ्भ्याम् ॠदन्ता च्च परयो लिङ्सिचोरिङ् वा स्यात्तङि।

(३१९) न लिङि ।७।२।३९।।

वॄत इटो लिङि न दीर्घः। स्तरिष्ट। उश्चेत्यनेन किरवम्। स्तीर्षीष्ट। सिचि च परस्मैपदेषु। अस्तारीत्, अस्तारिष्टाम्, अस्तारिषुः। अस्तरीष्ट-अस्तरिष्ट, अस्तीर्ष्ट।

जॄ जीर्णे झॄ धॄ नॄ कॄ ॠ गतौ, गॄ निगरणे, ज्या, री, ली, व्ली, प्ली, इन २४ धातुओं को ह्रस्व होता है शित् प्रत्यय परे।

सभी सार्वधातुक लकारों में श्ना प्रत्यय परे इन धातुओं को ह्रस्व होगा।

पूञ् धातु के भी सार्वधातुक लकारों में ह्रस्व होकर लट् में **पुनाति पुनीते,** लोट्—**पुनातु पुनीताम्। अपुनात् अपुनीत।** वि० लिङ्—**पुनीयात् पुनीत।** लुट् में इट् गुण अवादेश—**पवितासि पवितासे।** लृट्—**पविष्यति पविष्यते।** आ० लिङ्—**पूयात् पूषीष्ट।** लुङ्—**अपावीत् अपविष्ट।** लृङ् **अपविष्यत् अपविष्यत। लूञ् छेदने**—लू धातु काटने अर्थ में है। यह भी सेट् उभयपदी है।

लुनाति लुनीते। लुलाव लुलुवे। लवितासि लवितासे। लविष्यति लविष्यते। लुनातु लुनीताम्। अलुनात् अलुनीत। लुनीयात् लुनीत। लूयात् लोषीष्ट। अलावीत् अलविष्ट। अलविष्यत् अलविष्यत।

स्तॄञ् आच्छादने—स्तॄ धातु ढकने अर्थ में है, यह भी सेट् उभयपदी है। लट् लकार श्ना और ह्रस्व होकर स्तृणाति स्तृणीते।

लिट् में णल् (अ) परे द्वित्व, अभ्यास कार्य, शर्पूर्वाः खयः सूत्र से अभ्यास का खर् तकार शेष रहेगा, सकार का लोप होकर 'त स्तॄ अ' इस स्थिति में 'ॠच्छत्यॄताम्' से ॠकार को गुण अर् होकर 'त स्तर् अ' इस स्थिति में अत उपधायाः से उपधा वृद्धि होकर **तस्तार,** अतुस् परे 'त स्तॄ अतुस्' इस स्थिति में ॠकार को ॠच्छत्यॄताम् से गुण होकर तस्तरतुः, तस्तरुः आदि रूप बनेंगे। आत्मनेपद में तस्तरे आदि। लुट् में—सेट् होने से इट्, गुण होकर 'वॄतो वा। सूत्र से इट् को विकल्पतः दीर्घ होकर **स्तरीता स्तरिता** दो रूप बनेंगे।

लोट् और लङ् में लट् की तरह सामान्य रूप होंगे। विधि लिङ् में स्तृणीयात् स्तृणीत रूप होंगे। आ० लिङ् में श्ना के न होने से ह्रस्वाभाव, यासुट् परे 'ॠत इद्धातोः' सूत्र से ॠ को इर् आदेश, 'हलि च' से दीर्घ होकर स्तीर्यात् रूप होगा।

लिङ्सिचोरिति—वृङ् वृञ् और ॠदन्त धातुओं से परे, आत्मनेपद में लिङ् और सिच् को इट् विकल्पतः हो।

कॄञ् हिंसायाम् ॥१४॥ कृणाति कृणीते। चकार चकरे। वॄञ् वरणे ॥१५॥ वृणाति वृणीते। ववार ववरे। वरीता वरिता। उदोष्ठ्येत्युत्त्वम्—वूर्यात्। वरिषीष्ट वूर्षीष्ट। अवारीत् अवारिष्टाम्। अवरिष्ट अवरीष्ट अवूर्ष्ट। धूञ् कम्पने ॥१६॥ धुनाति धुनीते। धोता धविता। अधावीत् अधविष्ट अधोष्ट।

न लिङीति—वृङ् वृञ् और ॠदन्त धातुओं से पर लिङ में इट् को दीर्घ न हो।

आ० लिङ् आत्मनेपद में 'स्तॄ षीष्ट' इस स्थिति में 'लिङ् सिचोः' सूत्र से इट् पक्ष में ॠकार को गुण होकर प्राप्त दीर्घ का न लिङीति सूत्र से निषेध होकर—स्तरिपीष्ट रूप होगा। इडभाव पक्ष में 'उश्च' सूत्र से सीयुट् के कित् होने से गुण का निषेध 'ॠत इद्धातोः' से ॠकार को इर् आदेश, 'हलि च' सूत्र से दीर्घ, षत्व ष्टुत्व होकर **स्तीर्षीष्ट**, दो रूप होंगे।

लुङ् में 'अट्, सिच्, इ, ईट् होकर, सिच् लोप होने पर 'वॄतो वा' सूत्र से प्राप्त जो इट् को दीर्घ, उसका 'सिचि च परस्मैपदेषु' सूत्र से निषेध और वृद्धि होकर **अस्तारीत् अस्तारिष्टाम् अस्तारिषुः** यहाँ भी 'वॄतो वा' सूत्र से प्राप्त दीर्घ का निषेध पूर्ववत् होगा। **अस्तारीः अस्तारिष्टम् अस्तारिष्ट अस्तारिषम् अस्तारिष्व अस्तारिष्म** रूप बनेंगे।

आत्मनेपद में अट् सिच् करके लिङ्सिचोः—सूत्र से इट् पक्ष में ॠकार को अर् गुण, तथा इट् को 'वॄतो वा' सूत्र से दीर्घ पक्ष में **अस्तारीष्ट**, दीर्घाभाव पक्ष में **अस्तरिष्ट** ये दो रूप होंगे। इडभाव पक्ष में 'उश्च' सूत्र से सिच् के कित् होने से गुण-निषेध, 'ॠत इद्धातोः' से ॠकार को इर्, 'हलि च' से दीर्घ होकर, षत्व और ष्टुत्व होने पर **अस्तीर्ष्ट**, इस प्रकार तीन रूप बनेंगे। **कॄञ् हिंसायाम्**—कॄ धातु हिंसा अर्थ में है यह भी सेट् और उभयपदी है।

शित् प्रत्यय परे सर्वत्र 'प्वादीनां ह्रस्वः' से ह्रस्व होकर कृणाति कृणीते। कृणातु कृणीताम्। अकृणात्। अकृणीत, आदि रूप होंगे। लिट् में चकार चकरे। लुट, लृट, आशीर्लिङ् एवं लुङ् और लृङ् में इसके रूप स्तॄञ् धातु के समान बनेंगे।

वॄञ् वरणे— वॄ धातु स्वीकार करने अर्थ में है, यह भी सेट् और उभयपदी है। इसके भी रूप प्रायः स्तॄञ् धातु के समान ही बनते हैं।

लट्—वृणाति वृणीते। इसी प्रकार सभी सार्वधातुक लकारों में ह्रस्व होकर सामान्य रूप होंगे। लिट् में गुण वृद्धि होकर ववार ववरतुः ववरुः। ववरे आदि रूप होंगे। लुट् में 'वॄतोवा' से विकल्पतः दीर्घ होकर वरीता वरिता। रूप होंगे।

आ० लिङ् में परस्मैपद में यासुट् के कित् होने से 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' सूत्र से ॠकार को उर् आदेश, 'हलि च' से दीर्घ होकर वूर्यात् रूप बनेगा।

ग्रह उपादाने ॥१७॥

गृह्णाति गृह्णीते । जग्राह । जगृहे ।

(३२) ग्रहोऽलिटि दीर्घः ॥७।२।३७॥

एकाचो ग्रहे विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि । ग्रहीता । गृह्णातु । हलः श्नः शानज्झौ—गृहाण । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । ह्म्यन्तेति न वृद्धिः—अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम् ।

कुष निष्कर्षे ॥१८॥ कुष्णाति । कोषिता । अश भोजने ॥१९॥ अश्नाति । आश । अशिता । अशिष्यति । अश्नातु, अशान । मुष स्तेये ॥१०॥ मुष्णाति मोषिता । मुषाण ।

आ० लि० आत्मने पद में सीयुट् सुट् होने पर "लिङसिचोरात्मनेपदेषु" सूत्र से इट् पक्ष में गुण होकर **वरिषीष्ट** रूप बनेगा । इडभावपक्ष में 'उश्च' सूत्र से सीयुट् के कित् होने से 'उदोष्ठ्य पूर्वस्य' सूत्र से ऋृकार को उर् और 'हलि च' से दीर्घ होकर **वूर्षीष्ट** रूप होगा ।

लुङ्लकार में परस्मैपद में अट् इट् सिच् ईट् त् होकर सिच् लोप् और ऋृकार को आर् वृद्धि होकर **'अवारीत्' अवारिष्टाम् अवारिषुः अवारीः अवारिष्टम् अवारिष्ट** आदि रूप बनेंगे ।

आत्मनेपद में अट् सिच् आदि होने पर 'लिङसिचोरात्मनेपदेषु सूत्र से इट् पक्ष में ऋृकार को गुण 'वृतोवा' सूत्र से दीर्घ पक्ष में षत्व ष्टुत्व होकर **अवरीष्ट**, दीर्घाभाव पक्ष में **अवरिष्ट**, इट् के अभाव पक्ष में 'उश्च' सूत्र से सिच् के कित् होने से 'उदोष्ठ्य-पूर्वस्य' सूत्र से ऋृकार को उर् आदेश, 'हलि च' सूत्र से दीर्घ होकर **अवूर्ष्ट** रूप होगा, इस प्रकार आत्मनेपद में तीन रूप होंगे ।

धूञ् कम्पने—धू धातु कांपने अर्थ में है । ऊदित् होने के कारण यह धातु 'स्वरतीति--सूत्र से वेट् है और उभयपदी है । प्वादिगण पठित होने से शित् प्रत्ययपरे इसमें ह्रस्व होता है । लट् में **धुनाति धुनीते** । लोट् **धुनातु धुनीताम्** । लङ् **अधुनात् अधुनीत** । **धुनीयात् धुनीत** आदि रूप बनेंगे । लिट् में **दुधाव दुधुवे** । स्वरतीति—वेट्—**धविता धोता** । **धविष्यते धोष्यते** । आ० लिङ् **धविषीष्ट धोषीष्ट**, लुङ् में परस्मैपद में 'स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु' सूत्र से नित्य इट्, सिच् ईट् त्, सिच् लोप, वृद्धि होकर अधावीत् अधाविष्टाम् अधाविषुः आदि रूप होंगे । आत्मनेपद में स्वरतीति. इट् विकल्पतः अधविष्ट अधोष्ट रूप होंगे ।

ग्रह उपादाने ग्रहधातु ग्रहण करने अर्थ में है, यह स्वरितेत् होने से उभयपदी और सेट् है ।

लट् में श्ना प्रत्यय, अपित् सार्वधातुक के ङिद्वत् होने से "ग्रहिज्या सूत्र से र् को ऋ' सम्प्रसारण होकर गृह्णाति, गृह्णीतः, **गृह्णन्ति । गृह्णासि, गृह्णीथः, गृह्णीथ । गृह्णामि, गृह्णीवः, गृह्णीमः ।**

ज्ञा अवबोधने ॥२१॥ जज्ञौ । वृङ् संभक्तौ ॥२२॥ वृणीते । वव्रृषे । ववृढ्वे । वरीता वरिता । अवरीष्ट अवरिष्ट । अवृत ।

इति क्र्यादयः

आत्मनेपद—गृह्णीते, गृह्णाते, गृह्णते । गृह्णीषे, गृह्णाथे, गृह्णीध्वे । गृह्णे, गृह्णीवहे, गृह्णीमहे ।

लिट् में द्वित्वादि, उपधावृद्धि—जग्राह जगृहतुः (संप्रसारण) जगृहुः । आत्मनेपद में—जगृहे जगृहाते जगृहिरे ।

ग्रह इति—एकाच् ग्रह् धातु से विहित इट् को दीर्घ हो, किन्तु लिट् परे न हो ।

लुट् में सेट् होने से इट् और "ग्रहोऽलिटि दीर्घः" से दीर्घ होकर **ग्रहीतासि, ग्रहीतासे** । लृट् में भी दीर्घ– **ग्रहीष्यति ग्रहीष्यते** । लोट्—संप्रसारण होकर— **गृह्णातु गृह्णीताम् गृह्णन्तु** । सिप् परे सि को हि आदेश, "हलः श्नः शानज्झौ" से श्ना को शानच् आदेश, 'अतोहेः' सूत्र से हि का लोप होकर **गृहाण, गृह्णीतम्, गृह्णीत । गृह्णानि, गृह्णाव, गृह्णाम** । आत्मनेपद में—**गृह्णीताम्, गृह्णाताम्, गृह्णताम् । गृह्णीष्व । गृह्णाथाम्, गृह्णीध्वम् । गृह्णै, गृह्णावहै, गृह्णामहै** । लङ् में **अगृह्णात् । अगृह्णीत्** । वि० लिङ् **गृह्णीयात् गृह्णीत** । आ० लिङ्—**गृह्यात्**, (या सुट् के कित् होने से संप्रसारण) आत्मनेपद में—सीयुट् सुट् इट् को दीर्घ होकर **ग्रहीषीष्ट** । लुङ् परस्मैपद में अट् सिच् इट् 'ग्रहोऽलिटि दीर्घः" से दीर्घ, इतश्च इकार लोप, ईट्, सिच् लोप, हलन्त लक्षणा वृद्धि का नेटि' से निषेध, 'अतो हलादेः' से प्राप्त वृद्धि का ह्मयन्तेति सूत्र से निषेध होकर **अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्, अग्रहीषुः । अग्रहीः अग्रहीष्टम् अग्रहीष्ट । अग्रहीषम्, अग्रहीष्व, अग्रहीष्म** । आत्मनेपद में इट् को दीर्घ होकर—**अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम्, अग्रहीषत । अग्रहीष्ठाः अग्रहीषाथाम्, अग्रहीढ्वम् । अग्रहीषि, अग्रहीष्वहि अग्रहीष्महि** ।

लृङ् में इट् को दीर्घ—**अग्रहीष्यत्** अग्रहीष्यत ।

कुष निकर्षे—कुष् धातु निकालने अर्थ में है, सेट् परस्मैपदी है इसके सभी रूप सामान्य विधि के अनुसार ही बनते हैं—

लट्—कुष्णाति । कोषिता । कुषाण आदि ।

अश भोजने—अश धातु खाने अर्थ में है, यह भी सेट् परस्मैपदी है। इसके भी प्रायः सभी रूप सामान्य विधि से ही बनते हैं ।

लट्—**अश्नाति अश्नीतः अश्नन्ति । अश्नासि, अश्नीथः, अश्नीथ । अश्नामि, अश्नीवः, अश्नीमः** ।

लिट् लकार में अत आदेः—**आश, आशतुः, आशुः आशिथ** आदि । लुट्—**अशिता । लृट्—अशिष्यति** ।

लोट्—**अश्नातु, अश्नीताम्, अश्नन्तु** । श्ना को शानच्, हि का लोप—**अशान, अश्नीतम्, अश्नीत । अश्नानि, अश्नाव, अश्नाम** । लङ्—आट् आटश्च वृद्धि—

आश्नात् आश्नीताम् आश्नन्। आश्नाः, आश्नीतम्, आश्नीत, आश्नम्, आश्नीव आश्नीम।

वि० लि०—**अश्नीयात् अश्नीयाताम् अश्नीयुः, अश्नीयाः, अश्नीयातम्, अश्नीयात्। अश्नीयाम् अश्नीयाव अश्नीयाम्।**

आ० लि०—अश्यात् आदि।

लुङ् लकार—इट् ईट् सिच् लोप आट् आदि होकर **आशीत्, आशिष्टाम्, आशिषुः। आशीः आशिष्टम् आशिष्ट। आशिषम् आशिष्व आशिष्म।** लृङ्—**आशिष्यत्।**

मुष स्तेये—मुष-धातु चुराने ठगने अर्थ में है। यह भी सेट् परस्मैपदी है। इसके भी रूप कुष् की तरह ही बनते हैं। मुष्णाति मुमोष। मोषिता। मोषिष्यति। मुष्णातु, मुषाण। अमुष्णात्। मुष्णीयात्। मुष्यात्। अमोषीत्। अमोष्यत्।

ज्ञा अवबोधने—ज्ञा धातु जानने अर्थ में है। यह अनिट् उभयपदी है। इस धातु के सार्वधातुक लकारों में श्ना होने पर 'ज्ञाजनोर्जा' सूत्र से ज्ञा को सर्वत्र जा आदेश हो जाता है।

लट्—**जानाति जानीतः जानन्ति। जानासि जानीथः, जानीथ। जानाभि जानीवः जानीमः।** आ० पद० में—जानीते जानाते **जानते। जानीषे, जानाथे, जानीध्वे, जाने जानीवहे, जानीमहे।**

लिट् में ज्ञा ज्ञा द्वित्व अभ्यास कार्य, तिप् को णल् 'जज्ञा णल्' इस स्थिति में 'आत औ णलः' सूत्र से णल् को औ, वृद्धि होकर **जज्ञौ जज्ञतुः जज्ञुः** आदि आ० प० में **जज्ञे**, आदि रूप होंगे।

लुट्—**ज्ञातासि ज्ञातासे।** लृट् **ज्ञास्यति ज्ञास्यते।**

लोट्—**जानातु जानीतात् जानीताम् जानन्तु। जानाहि जानीतम्, जानीत। जानानि, जानाव, जानाम।** आ० प० में **जानीताम् जानाताम् जानताम्। जानीष्व जानाथाम् जानीध्वम्। जानै जानावहै जानामहै।**

लङ्—**अजानात् अजानीताम् अजानन्। अजानाः अजानीतम्, अजानीत अजानाम् अजानीव अजानीम।** आत्मनेपद में—**अजानीत् अजानाताम् अजानत। अजानीथाः, अजानाथाम्, अजानीध्वम्। अजानि अजानीवहि अजानीमहि।**

विधि० लिङ् में—**जानीयात् जानीयाताम् जानीयुः, जानीयाः, जानीयातम् जानीयात। जानीयाम् जानीयाव, जानीयाम।** आत्मनेपद में—**जानीत, जानीयाताम्, जानीरन्। जानीथाः, जानीयाथाम्, जानीध्वम्। जानीय, जानीवहि, जानीमहि।**

आशीर्लिङ् परस्मैपद में **ज्ञेयात् ज्ञायात्।** आत्मनेपद में—**ज्ञासीष्ट।** लुङ् परस्मैपद—अट् ज्ञा इट् सक् ईट् त् आदि करके सकार लोप दीर्घ होकर **अज्ञासीत् अज्ञासिष्टाम् अज्ञासिषुः अज्ञासीः अज्ञासिष्टम् अज्ञासिष्ट अज्ञासिषम्, अज्ञासिष्व अज्ञासिष्म।** आत्मनेपद—**अज्ञास्त अज्ञासाताम्, अज्ञासत अज्ञास्थाः अज्ञासाथाम्, अज्ञाध्वम्,**

अज्ञासि, अज्ञास्वहि अज्ञास्महि । लृङ्—**अज्ञास्यत् अज्ञास्यत ।** **वृङ् संभक्तौ**—वृ धातु सेवा करने अर्थ में है । यह सेट् आत्मनेपदी है ।

लट्—**वृणीते, वृणाते, वृणते, वृणीषे, वृणाथे वृणीध्वे, वृणे, वृणीवहे, वृणीमहे ।** लिट् में—**ववृषे ववृढ्वे**—इन रूपों में वलादि आर्धधातुक इट् का 'कृ सृ भृ वृ—सूत्र से निषेध हो गया है ।

इस धातु के अन्य रूपों में कोई विशेष कार्य नहीं होता, वृञ् वरणे धातु के आत्मनेपद के रूपों के समान ही इसके रूप होते हैं ।

लुट् लकार में इट् को विकल्प से दीर्घ होकर वरीता वरिता रूप होंगे । लुङ् में 'लिङ्सिचोः—सूत्र से इट् विकल्प से होगा, इट् पक्ष में 'वॄतो वा' सूत्र से विकल्पतः दीर्घ होकर अवरीष्ट अवरिष्ट ये दो रूप होंगे, इट् के अभाव पक्ष में अवृत रूप होगा—यहाँ ह्रस्वादङ्गात्' सूत्र से सिच् का लोप हो जायेगा । इस प्रकार लुङ् में तीन रूप होंगे ।

इति क्र्यादिगणः

अथ चुरादयः

चुर स्तेये ॥१॥

(३२१) सत्यापपाशरूपवीणा तूलश्लोक सेना लोम त्व चवर्मवर्णचूर्ण चुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५॥

एभ्यो णिच् स्यात् । चूर्णान्तेभ्यः "प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे" इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे । पुगन्तेति गुणः । सनाद्यन्ता इति धातु त्वम्, तिप् शबादि, गुणायादेशौ—चोरयति ।

(३२२) णिचश्च । १।३।७४॥

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात्, कर्तृगामिनि क्रियाफले ।

चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात्; चोरयिषीष्ट ।

चुर स्तेये—चुर धातु चुराने अर्थ में है ।

सत्यापेति—सत्याप; पाश, रूप, बीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोमन्, त्वच्, वर्मन्, वर्ण और चूर्ण शब्दों से तथा चुर आदि धातुओं से णिच् प्रत्यय हो ।

णिच् प्रत्यय में ण् च् इत् संज्ञक है, केवल 'इ' शेष रहता है, णित् होने से यथा प्राप्त गुण वृद्धि होते हैं ।

चूर्णान्तेभ्य इति—'प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे—इत्यादि वार्तिक सभी प्राति-पदिकों से धातु के अर्थ णिच् प्रत्यय का विधान करता है, अतः इसी वार्तिक से जब कि सूत्र पठित सत्याप से लेकर चूर्ण शब्दों तक के सभी शब्दों से णिच् प्रत्यय स्वतः हो सकता था तब इस सूत्र में इन शब्दों के ग्रहण करने का क्या प्रयोजन था अर्थात् उक्त वार्तिक से ही सिद्ध होने पर इनका ग्रहण व्यर्थ ही है, केवल सूत्र में इनका ग्रहण प्रपञ्चार्थ अर्थात् विस्तार के लिये ही है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं है ।

चुरादिभ्य इति—चुर् आदि धातुओं से जो णिच् प्रत्यय का विधान किया गया है, उसका कोई विशेष अर्थ नहीं है, यह केवल स्वार्थिक प्रत्यय है । ण्यन्त प्रक्रिया में जो णिच् प्रत्यय होता है उसका तो वहाँ अर्थ प्रेरणा है पर इस णिच् का कोई अन्य

णि श्रीति—चङ्, णौ चङीति ह्रस्वः । चङीति द्वित्वम्, हलादिः शेषः । दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः—अचूचुरत्, अचूचुरत । कथ वाक्य प्रबन्धे ॥२॥ अल्लोपः ।

अर्थ नहीं है अर्थात् धातु का जो अपना अर्थ है वही अर्थ णिच् प्रत्यय करने पर भी रहता है ।

लट् लकार में चुर धातु से णिच् (इ) प्रत्यय करने पर, आर्धधातुक णिच् परे रहते 'पुगन्त लघू पधस्य च' सूत्र से उकार को ओ गुण होकर 'चोरि' की पुनः 'सनाद्यन्ता धातवः' सूत्र से धातु संज्ञा, फलतः चुर धातु से लट् उसके स्थान में तिप्, शप् प्रत्यय, इकार को ए गुण अय् आदेश होकर **चोरयति, चोरयतः, चोरयन्ति, चोरयसि, चोरयथः चोरयथ, चोरयामि चोरयावः चोरयामः** रूप बनेंगे ।

णिचश्चेति—णिच् प्रत्ययान्त से आत्मने पद हो, यदि क्रिया का फल कर्तृ-गामी हो ।

अर्थात् णिच् प्रत्ययान्त सभी धातुओं से क्रिया फल के कर्तृगामी होने पर आत्मनेपद और परगामी होने पर परस्मैपद होगा, अर्थात् णिजन्त सभी धातुयें उभय-पदी हैं । कर्तृगामी क्रिया फल की विवक्षा में चुर धातु से जब आत्मने पद होगा, तब चोरि की सनाद्यन्ताः से धातु संज्ञा, त शप् गुण अयादेश होकर **चोरयते चोरयेते चोरयन्ते । चोरयसे** चारयेथे आदि रूप बनेंगे ।

णिजन्त धातुयें सभी प्रत्ययान्त धातुयें हैं, अतः इन सभी से "कास् प्रत्यया-दाममन्त्रे लिटि" से आम् प्रत्यय, और पुनः आमन्त इन धातुओं से लिट् सहित कृ भू अस् का अनुप्रयोग होगा ।

प्रकृत में चुर धातु से णिच् गुण-चोरि—धातु संज्ञा, आम्, इकार को गुण अयादेश होकर चोरयाम् बन जाने पर लिट् सहित अस् का अनुप्रयोग होकर चोरया-मास रूप होगा । इसी प्रकार कृ भू के अनुप्रयोग होने पर चोरयाञ्चकार और चोर-याम्बभूव भी रूप होंगे । आत्मनेपद में भी चोरयाञ्चक्रे चोरयाम्बभूवे आदि रूप होंगे ।

चुरादिगण की सभी धातुओं से णिच् होने के कारण ये सभी अनेकाच् बन जाती है अतः सेट् होने से इन सब से इट् होता है, अतः चुर धातु से लुट् में **चोरयिता,** चोरयिष्यति आदि रूप बनेंगे । सार्वधातुक लकारों में—**चोरयतु चोरयताम् । अचोरयत् । अचोरयत । चारयेत् चोरयेत** । अशीलिङ् में—णेरनिटि सूत्र से णिच् का लोप होकर चोर्यात्, आत्मनेपद में सीयुट् सुट इट गुण अयादेश होकर चारयिषीष्ट रूप होगा ।

लुङ् लकार में 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' सूत्र से च्लि को चङ् आदेश, चङ् का 'अ' शेष रहेगा अतः "अ चोर इ अ त्" इस स्थिति में 'णौ

(३२३) अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ।१।१।५७।।

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत् स्यात्, स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः—कथयति । अग्लोपित्वाद् दीर्घसन्वद्भावौ न—अचकथत् ।

गण संख्याने ।।३।। गणयति ।

(३२४) ई च गणः ।७।३।९७।।

गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चङ् परे णौ चावत् ।

अजीगणत् अजगणत् ।

इति चुरादयः

चङ्युपधाया ह्रस्वः' सूत्र से उपधा ओकार को उकार ह्रस्व होकर, 'अ चुर् इ अ त्' इस स्थिति में 'चङि' सूत्र से चुर् चुर् द्वित्व, अभ्यास कार्य हलादिः शेषः—'अ चु चुर् इ अ त्' इस स्थिति में ''सन्वल्लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे'' सूत्र से सन्वद्भाव होकर, फलतः दीर्घो लघोः सूत्र से अभ्यास के उकार की दीर्घ, 'णेरनिटि' सूत्र से णि का लोप होकर **'अचूचुरत्'** रूप बनेगा । आत्मनेपद में भी इसी प्रकार **अचूचुरत,** रूप होगा । लृङ्—अचोरयिष्यत् अचोरयिष्यत ।

कथ वाक्य प्रबन्धे—कथ धातु कहने अर्थ में है ।

अल्लोप—कथ धातु से णिच् प्रत्यय करने पर 'अतो लोपः' सूत्र से अन्तिम 'अ' का लोप होता है ।

अचः परस्मिन्निति—पर को निमित्त मानकर होने वाला अजादेश, स्थानिवद् होता है । स्थानिभूत जो अच्, उससे पूर्व जिसे देखा गया हो उसे यदि कार्य करना हो तो ।

इति स्थानिवत्वादिति—इस सूत्र से स्थानिवद् भाव होने से 'अत उपधायाः' सूत्र से वृद्धि नहीं होती ।

कथ धातु से णिच् प्रत्यय करने पर 'अतो लोपः' सूत्र से अन्तिम अकार का लोप होने पर 'कथ् इ' इस स्थिति में णित् प्रत्यय परे उपधा अकार को 'अत उपधायाः' सूत्र से वृद्धि प्राप्त होती है, तब 'अचः पस्मिन्—सूत्र से उस अकार लोप का स्थानिवद्भाव होने से उपधा में अकार न मिलने से वृद्धि नहीं हो पाती, तब 'कथ् इ' इसी स्थिति में ''सनाद्यन्ता धातवः'' से धातु संज्ञा तिप् शप् गुण अयादेश होकर **कथयति** रूप बनता है—क्रिया फल के कर्तृगामी होने पर कथयते आदि रूप भी होंगे । शेष लकारों में चुर् धातु की तरह कथयामास कथयिता कथयिष्यति कथयतु अकथयत् कथयेत् आदि रूप बनेंगे ।

लुङ् लकार में चुर् धातु के समान च्लि को चङ्, 'चङि' से द्वित्व अभ्यास कार्य होकर 'अ च क थ् अ त्' इस स्थिति में धातु के अग्लोपी होने से (क्योंकि इसमें

अतो लोपः से अकार लोप हुआ है) सन्वल्लघुनि—सूत्र से सन्वद्भाव न होगा और दीर्घ भी न होगा अतः **'अचकथत्'** ही रूप बनेगा।

गण संख्याने—गण धातु गिनने अर्थ में है, यह भी सेट् उभयपदी और अग्लोपी है। यहाँ भी अतो लोपः से अकार लोप, और उसका 'अचः परस्मिन्' सूत्र से स्थानिवद्भाव होने से उपधा वृद्धि न होगी—अतः 'गणि' को ही धातु संज्ञा, तिप् शप् गुण अयादेश होकर **गणयति** रूप होगा। शेष लकारों के रूप 'कथ' के समान ही होंगे।

ई चेति – गण धातु के अभ्यास को ईकार होता है चङ् परक णि परे रहते। सूत्र में चकार ग्रहण से एक पक्ष में अकार भी होता है।

लुङ् में च्लि को चङ् द्वित्व, अभ्यास कार्य होकर 'ई च गणः' से अभ्यास के जकार के अकार को ईकार होने पर **अजीगणत्,** पक्ष में अकार रहने पर **अजगणत्** 'णेरनिटि' से यहाँ णि का लोप हो जाता है।

इति चुरादिगणः

अथ ण्यन्त प्रक्रिया

स्वतन्त्रः कर्त्ता ।१।४।५४।।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ।

तत्प्रयोजको हेतुश्च ।१।४।५५।।

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात् ।

हेतुमति च ।३।१।२६।।

स्वतन्त्र इति—क्रिया में स्वतन्त्रतापूर्वक विवक्षित जो अर्थ उसे कर्त्ता कहते हैं। तात्पर्य यह है कि कर्त्ता सदा विवक्षाधीन होता है, जिसे कर्त्ता कहना चाहें वही कर्त्ता होता है।

तत्प्रयोजक इति—कर्त्ता के प्रयोजक अथवा प्रेरक की हेतु संज्ञा और कर्तृ संज्ञा होती है।

जब किसी कर्त्ता को कार्य विशेष में प्रवृत्त करने वाला दूसरा कोई होता है तब उस दूसरे को कर्त्ता कहा जाता है और हेतु भी। जैसे 'मोहन खाता है' इस वाक्य में मोहन कर्त्ता है। यज्ञदत्त उसे खिलाता है इस वाक्य में यज्ञदत्त, मोहन कर्त्ता का प्रेरक है, अतः यज्ञदत्त की कर्तृ संज्ञा तथा हेतु संज्ञा भी है अर्थात् यज्ञदत्त को प्रेरक या प्रयोजक कर्त्ता एवं मोहन को प्रयोज्य कर्त्ता कहा जायेगा।

हेतुमतीति—प्रयोजक के व्यापार-प्रेषण अर्थात् प्रेरणादि वाच्य होने पर धातु से णिच् प्रत्यय होता है।

शुद्ध धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय से प्रेरणा अंश की वृद्धि हो जाती है। 'मोहन सोहन को खिलाता है' इस वाक्य में शुद्ध धातु का अर्थ 'खाना' है पर णिच् प्रत्यय से प्रेरणा का अर्थ बढ़ जाने से इसका अर्थ खिलाना हो जायगा।

चुरादि गण का णिच् प्रत्यय स्वार्थ में होता है, अतएव वहाँ धातु के आगे

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातो र्णिच् स्यात्। भवन्तं प्रेरयति भावयति।

ओः पुयण्ज्यपरे ।७।४।८०।।

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात्, पवर्ग यण जकारे ष्ववर्णपरेषु परतः। अवीभवत्। ष्ठा गतिनिवृत्तौ।

अर्तिह्री व्लीरी क्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ् णौ ।७।३।३६।।

स्थापयति।

णिच् प्रत्यय आने पर भी धातु के शुद्ध अर्थ में कोई परिवर्तन या परिवर्धन नहीं होता। पर ण्यन्त प्रक्रिया का णिच् प्रत्यय धात्वर्थ में प्रेरणा अर्थ की वृद्धि करता है, अतः यह प्रत्यय स्वार्थिक नहीं है।

णिच् प्रत्ययान्त धातुओं का अर्थ प्रकट करने के लिए 'प्रेरयति' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे—भवन्तं प्रेरयति भावयति। गच्छन्तं प्रेरयति गमयति' पठन्तं प्रेरयति पाठयतीत्यादि।

भवन्तं प्रेरयति इस विग्रह में भू धातु से 'हेतुमति च' सूत्र से णिच् प्रत्यय, णिच् के णित् होने से उसके परे 'अचोञ्णिति' सूत्र से उकार को वृद्धि-औ, और उसे आव् आदेश करके 'भावि' इस स्थिति में 'सनाद्यन्ता धातवः' से पुनः धातु संज्ञा, लट् तिप् शप् इ को ए गुण अयादेश—**भावयति।**

ओरिति—सन् प्रत्यय परे रहते जो अङ्ग उसके अवयव अभ्यास के उकार को इकार हो अवर्ण परक पवर्ग यण जकार परे रहते।

लुङ् प्रथम पु० एक वचन में भू धातु से णिच्, 'सनाद्यन्ता' सूत्र से धातु संज्ञा, लुङ् तिप्, च्लि, 'णिश्रि' सूत्र से च्लि को चङ्। "णिच्यच आदेशों न भवति द्वित्वे कर्तव्ये" अर्थात् द्वित्व करने की स्थिति होने पर णिच् परे कोई भी अजादेश नहीं होता। इस परिभाषा के बल से वृद्धि के पूर्व, भू को द्वित्व अभ्यास कार्य, भ को जश्त्वेन ब, अकार को ह्रस्व, अट् का आगम, 'अ बु भू इ अ त्' इस स्थिति में अभ्यासोत्तर 'भू' को 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि, 'औ' और उसको अवादेश, अ बु भावि अ त्' इस स्थति में 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' सूत्र से 'भा' के आकार को ह्रस्व। सन्वद्भाव होने पर अभ्यास के उकार को 'ओरिति' सूत्र से इकार और उसे 'दीर्घो लघोः' सूत्र से दीर्घ होकर **अबीभवत् रूप** बनता है।

ष्ठा (रुक जाना खड़ा होना) धातु षोपदेश है। धात्वादेः षः सः' से 'ष' को स् होने पर 'स्था' हो जाता है।

यह धातु भ्वादिगण की है। इससे प्रेरणार्थ मे रूप बनाने के लिए यहाँ इसका निर्देश किया गया है।

अर्तीत—ऋ, ह्री, ब्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी, और आकारान्त धातुओं को

तिष्ठतेरित् ।७।४।५।।

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ् परे णौ । **अतिष्ठिपत् ।** घट चेष्टायाम्

मितां ह्रस्वः ।६।४।९२।।

घटादीनां च ज्ञपादीनां च ह्रस्वः । घटयति । ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च-ज्ञपयति **अजिज्ञपत् ।**

इति ण्यन्त प्रक्रिया

पुक् का आगम हो, णिच् परे रहते । स्था धातु आकारान्त है, उससे णिच् होने पर 'अर्त्तीति सूत्र से पुक् का आगम होकर 'स्थापि' बन जाने पर धातु संज्ञा, लट् तिप् शप् गुण, अयादेश—स्थापयति ।

तिष्ठतेरित्:—स्था धातु की उपधा को इकारादेश हो चङ् परक णि परे रहते ।

स्था से लुङ् में पुगादि करके अट् 'अ स्थाप् इ अ (चङ् का शेष) त्' इस स्थिति में 'तिष्ठतेरित्' सूत्र से उपधा आकार को इकार-स्थिप् बनने पर स्थिप् को द्वित्व और 'शर्पूर्वाः खयः' सूत्र से सकार का लोप, थकार शेष, 'अ थि स्थिप् इ अ त्' इस स्थिति में 'अभ्यासे चर्च' से थकार को चर्त्व तकार, णि का लोप होकर **'अतिष्ठिपत्'** रूप बनता है ।

घट (चेष्टा करना) यह धातु मित् है ।

मितां ह्रस्वः इति—घट आदि और ज्ञप् आदि धातुओं को ह्रस्व हो ।

घट धातु से णिच् उपधा वृद्धि—'घाटि' 'मितां ह्रस्वः से पुनः ह्रस्व, 'घटि' धातु संज्ञा, लट् तिप् शप् गुणायादेश होकर घटयति । लुङ् में 'अ ज घट इ अ त्' इस स्थिति में सन्वद्भाव होने से 'सन्यतः' सूत्र से अभ्यास अकार को इकार 'दीर्घो लघोः' से दीर्घ, णि लोप होकर अजीघटत् ।

ज्ञप (जानना ज्ञान कराना) चुरादि है अतः यहाँ प्रेरणार्थक णिच् आने पर 'णेरनिटि' सूत्र से स्वार्थिक णिच् का लोप हो जाता है । उपधा वृद्धि द्वारा हुए आकार का मितां ह्रस्वः से ह्रस्व होकर 'ज्ञपि' की धातु संज्ञा, लट् तिप् शप् गुणादि होकर ज्ञपयति । लुङ् में 'अ ज्ञप् इ अ त्' इस स्थिति में द्वित्वाभ्यास कार्य, सन्वद्भाव 'सन्यतः' इकार, णि लोप, होकर **अजिज्ञपत् ।** यहाँ लघु इकार न होने से दीर्घ नहीं होता ।

इति ण्यन्त प्रक्रिया

अथ सन्नन्त प्रक्रिया

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ।३।१।७।।

इषिकर्मण इषिणैक कर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् ।

पठ व्यक्तायां वाचि ।

सन्यङोः ।६।१।६।।

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यै काचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । सन्यतः— पठितुमिच्छति पिपठिषति ।

धातोरिति—इच्छा के कर्म और इच्छा के एक कर्तृक, अर्थात् जो इच्छा का कर्त्ता हो वही उस धातु की क्रिया का हो—धातु से सन् प्रत्यय हो, इच्छा अर्थ में विकल्प से ।

पठ्—(पढ़ना स्पष्ट उच्चारण करना) धातु भ्वादिगण की सेट् है ।

सन्यङोः—सन्नन्त और यङन्त धातु से प्रथम एकाच् को द्वित्व हो, यदि धातु अजादि हो, तो द्वितीय एकाच् को हो ।

'पठितुम् इच्छति' इस विग्रह में पठ् धातु से इच्छा अर्थ में 'धातोः कर्मण.' सूत्र से सन् प्रत्यय; सन् प्रत्यय के वलादि आर्धधातुक होने से सन् परे इट्, 'सन्यङोः' से प्रथम एकाच् 'पठ्' को द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'प पठ् इ ष' इस स्थिति में 'सन्यतः' सूत्र से अभ्यास के अकार को इकार होकर 'पिपठिष्' इस सन्नन्त रूप की 'सनाद्यन्ता-धातवः' से धातु संज्ञा, तिप् शप् आदि होकर **'पिपठिषति'** रूप बनता है ।

सन्नन्त धातु अनेकाच् होने से सेट् हो जाते हैं । अतः उसके आगे 'तास्' आदि को इट् का आगम होता है ।

लिट् में सन् प्रत्ययान्त धातुओं से 'आम्' होने से कृ भू अस् का भी अनुप्रयोग होता है—पिपठिष् इस सन्नन्त रूप से आम् कृ का अनुप्रयोग होकर **पिपठिषाञ्चकार,**

कर्मणः किम्—गमनेनेच्छति । समान कर्तृकात्किम्—शिष्याः पठन्त्विच्छति गुरुः । वा ग्रहणाद् वाक्यमपि । लुङ्सनोर्घस्लृ ।

सस्यार्धधातुके ।७।४।४९।।

सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके । अत्तुमिच्छति जिघत्सति । एकाच् इति नेट् ।

अज्झनगमां सनि ।६।४।१६।।

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि ।

पिपठिषाम्बभूव, पिपठिषामास रूप बनते है । इसी प्रकार **पिपठिषिता । पिपठिषिष्यति । पिपठिषतु । अपिपठिषत् । पिपठिषेत् । पिपठिष्यात् । अपिपठिषीत् । अपिपठिषिष्यत् ।**

कर्मण इति—इच्छा का कर्म जब धातु हो, तब उससे सन् प्रत्यय होता है, अतः 'गमनेनेच्छति' जाने के द्वारा चाहता है—यहाँ गमन इच्छा का कर्म नहीं अपितु करण है इसलिए इससे सन् प्रत्यय नहीं होगा ।

समानकर्तृकादिति—इच्छा का कर्त्ता और सन् प्रत्यय के प्रकृतिभूत धातु का कर्त्ता, एक होना चाहिए, ऐसा कहने से, 'शिष्याः पठन्तु इति इच्छति गुरुः' इस वाक्य में पठ धातु से सन् प्रत्यय न होगा । यहाँ पठ धातु इच्छा का कर्म तो है, पर इच्छा का कर्त्ता गुरु है और पठन का शिष्य, अतः समान कर्तृक न होने से यहाँ पठ् से सन् प्रत्यय नहीं हुआ ।

वा ग्रहणादिति—सूत्र में 'वा' ग्रहण से अर्थात् सन् प्रत्यय का विकल्प से विधान करने से पक्ष में वाक्य भी होगा अर्थात् 'पढ़ना चाहता' इस अर्थ को प्रकट करने के लिए 'पिपठिषति' भी होगा और 'पठितुमिच्छति' इस वाक्य का भी प्रयोग होगा ।

सस्येति—सकार को तकार हो, सकारादि आर्धधातुक परे रहते । 'अत्तुमिच्छति' इस विग्रह में अदादिगुण की अद् (भक्षणे) धातु से सन् प्रत्यय, 'लुङ्सनोर्घस्लृ' सूत्र से अद् को घस्लृ (घस्) आदेश, 'घस् स' इस स्थिति में सकारादि आर्धधातुक सन् परे प्रकृत सूत्र से सकार को तकार, घस् को द्वित्व, अभ्यास कार्य, 'सन्यतः' से अभ्यास अकार का इकार, जिघत्स' इस सन्नन्त रूप की धातु संज्ञा, लट् तिप् शप् होकर 'जिघत्सति' रूप बनता है ।

अद् धातु के सन्नन्त में लिडादिलकारों में पूर्ववत् "**जिघत्साञ्चकार । जिघत्सिता । जिघत्सिष्यति । जिघत्सतु । अजिघत्सत् । जिघत्सेत् । जिघत्स्यात् । अजिघत्सीत् । अजिघत्सिष्यत्**" रूप होंगे ।

अज्झनेति—अजन्त धातुओं, हन् धातु, और अजादेश गम् धातु, अर्थात् इण् आदि धातु के स्थान में हुए गम् आदेश को दीर्घ हो झलादि सन् परे रहते । (इङमात्र में ही सन् झलादि मिलता है, अन्यत्र वह अजादि हो जाता है ।)

इको झल् ।१।२।९।।

इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात् । ऋत इद्धातोः, कर्तुमिच्छति चिकीर्षति ।

सनिग्रहगुहोश्च ।७।२।१२।।

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात् । बुभूषति ।

इति सन्नन्त प्रक्रिया

इक इति—इगन्त से परे झलादि सन् कित् हो ।

'कर्तुमिच्छति' इस विग्रह में 'कृ' धातु से सन् प्रत्यय, एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' सूत्र से इट् निषेध, 'अज्झनेति सूत्र से 'कृ' को दीर्घ, 'इको झलि' सूत्र से इगन्त ऋ से परे झलादि सन् को कित्, फलतः क्ङिति च' सूत्र से गुण निषेध, ऋत इद्धातोः' सूत्र से 'ऋ' को 'इर्' हलि चेति दीर्घ, 'कीर् स्' इस स्थिति में द्वित्वाभ्यास कार्य, स को षत्व, "चिकीर्ष" इस सन्नन्त रूप से धातु संज्ञा लट् तिप् शप् होकर 'चिकीर्षति' ।

लिडादि में पूर्ववत् **चिकीर्षाञ्चकार । चिकीर्षिता । चिकीर्षिष्यति । चिकीर्षतु । अचिकीर्षत् । चिकीर्षेत । चिकीर्ष्यात् । अचिकीर्षीत् । अचिकीर्षिष्यत् ।**

सनीति—ग्रह गुह और उगन्त धातु से परे सन् को इट् न हो ।

'भवितु मिच्छति' इस विग्रह में भू धातु से सन् प्रत्यय, उगन्त होने से, प्राप्त इट् का 'सनीति' सूत्र से निषेध, 'इकोझलीति' सूत्र से सन् को कित्, फलतः गुण निषेध, द्वित्वाभ्यास कार्य, 'बुभूष्' धातु संज्ञा, लट्, तिप्, शप् होकर **बुभूषति** । शेष लकारों के रूप—**बुभूषाञ्चकार, बुभूषिता । बुभूषिष्यति । बुभूषतु । अबुभूषत् । बुभूषेत् । बुभूष्यात् । अबुभूषीत् । अबुभूषिष्यत्** होंगे ।

इति सन्नन्त प्रक्रिया

अथ यङन्त प्रक्रिया

धातोरेकाचो हलादेः क्रिया समभिहारे यङ् ।३।१।२२।।

पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् ।

गुणोयङ्लुकोः ७।४।८२।।

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ लुकि च परतः ङिदन्तत्वादात्मने पदम् । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति– बोभूयते बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट ।

धातोरिति—क्रिया का बार-बार होना और अधिक होना अर्थ प्रकट करने के लिए एकाच् हलादि धातु से यङ् प्रत्यय हो। फलतः अनेकाच् और अजादि धातु से 'यङ्' नहीं होता।)

सन् प्रत्यय के समान यङ् भी विकल्प से होता है। अतिशयेन, भृशं वा, पुन र्वा भवति' यह वाक्य भी होगा और इस अर्थ का द्योतक **'बोभूयते'** का भी प्रयोग होगा।

यङ् प्रत्यय के कारण, ङित् होने से यङन्त धातु सभी आत्मने पदी हैं।

गुण इति—अभ्यास को गुण हो, यङ् और यङ् लुक् परे रहते।

यङ् के ङित् होने से आत्मने पद का ही प्रयोग होगा। 'पुनः पुन रति शयेन वा भवति' इस विग्रह में भू धातु से 'धातोः' इति सूत्र से 'यङ्', 'सन्यङोः' सूत्र से यङन्त के प्रथम एकाच् 'भू' को द्वित्व, 'गुणो यङ् लुकोः' सूत्र से अभ्यास उकार को 'ओ' गुण, 'बोभूय,' इस यङन्त रूप की धातु संज्ञा, लट्, त' शप्, 'अतो गुणे' सूत्र से यङ् के अकार का शप् के अकार के साथ पररूप, होकर 'बोभूयते' लिडादि में **बोभूयाञ्चक्रे, बोभूयिता, बोभूयिष्यते। बोभूयताम्। अबोभूयत बोभूयेत। बोभूयिषीष्ट। अबोभूयिष्ट अबोभूयिष्यत** आदि रूप बनेंगे।

नित्यं कौटिल्ये गतौ ।३।१।२३।।

गत्यर्थात् कौटिल्ये एव यङ् स्यात् । नतु क्रिया समभिहारे ।

दीर्घोऽकितः ।७।४।८३।।

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङि यङ् लुकि च । कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते ।

यस्य हलः ।६।४।४९।।

यस्येति संघातग्रहणम् । हलः परस्य य शब्दस्य लोपः आर्धधातुके । आदेः परस्य, अतो लोपः—वाव्रजाञ्चक्रे । वाव्रजिता

रीग् दुपधस्य च ।७।४।९०।।

ऋदुपधस्य धातो रभ्यासस्य रीगागमो यङि यङ् लुकि च । वरीवृत्यते । वरीवृताञ्चक्रे । वरीवृतिता ।

नित्यमिति—गत्यर्थक धातुओं से कौटिल्य अर्थ में ही यङ् हो, क्रिया समभिहार अर्थात् पुनः पुनः, अतिशयेन वा इस अर्थ में नहीं ।

दीर्घ इति—अकित् अभ्यास को दीर्घ हो, यङ् और यङ् लुक् परे रहते ।

'नित्यं कौटिल्ये गतौ' सूत्र से गत्यर्थक धातुओं से कौटिल्य अर्थ में ही यङ् होता है, अतः 'कुटिलं व्रजति' इस विग्रह में 'व्रज गतौ' धातु से यङ् 'संन्यङोः' द्वित्व, अभ्यास कार्य 'प्रकृत सूत्र से अभ्यास को दीर्घ, 'व्राव्रज्य' इस यङन्त रूप से धातु संज्ञा, लट्, त, शप, अतो गुणे, होकर **वाव्रज्यते** ।

यस्येति—हल् से परे य का लोप हो, आर्धधातुक परे रहते ।

'य' यह संघात ग्रहण है । अर्थात् अकार सहित यकार का लोप होता है ।

'आदेः परस्य' सूत्र के नियम से जो कार्य पर को विहित होता है, वह उसके आदि को होता है, अतः आदि य् का लोप होता है, तब 'अतो लोपः' से अकार का लोप होता है ।

यङन्त वाव्रज्य धातु से लिट् में आम् का आगम । आम्, इस आर्धधातुक के परे रहते 'यस्य हलः' सूत्र से 'आदेः परस्य' सूत्र के नियम के अनुसार 'य्' का लोप और 'अतो लोपः' से अकार का लोप होकर '**वाव्रजाम्**' से लिट् परक कृ का प्रयोग होने पर **वाव्रजाञ्चक्रे ।वाव्रजिता वाव्रजिष्यते । वाव्रज्यताम् अवाव्रज्यत् । वाव्रज्येत । वाव्रजिषीष्ट । अवाव्रजिष्ट । अवाव्रजिष्यति**" रूप होंगे ।

रीगिति—ऋदुपध धातुओं के अभ्यास को रीक् आगम हो, यङ् और यङ् लुक् परे रहते ।

'पुनः पुनरतिशयेन वा वर्तते' इस विग्रह में 'वृत' धातु से यङ् द्वित्वाभ्यास कार्य, प्रकृत सूत्र से अभ्यास को रीगागम होकर, 'वरीवृत्य' की धातु संज्ञा, लट् त, शप् आदि होकर वरीवृत्यते,' लिट् में पूर्ववत् य् और अकार का लोप होने पर,

क्षुभ्नादिषु च ।८।४।३९।।

णत्वं न । नरीनृत्यते । जरीगृह्यते ।

इति यङन्त प्रक्रिया

आम्, कृ, का प्रयोग, **वरीवृताञ्चक्रे । वरीवृतिता । वरीवृतिष्यते । वरीवृत्यताम् । अवरीवृत्यत । वरीवृत्येत । वरीवृतिषीष्ट । अवरीवर्तिष्ट । अवरीवर्तिष्यत ।**

क्षुभ्नादिषुचेति – क्षुभ्नादिगण पठित शब्दों में णत्व नहीं होता । पुनः पुनरतिशयेन वा नृत्यति' इस विग्रह में 'नृत्' धातु से यङ्, द्वित्वाभ्यास कार्य, अभ्यास को रीगागम, 'नरीनृत्य' की धातु संज्ञा, लट्, त, शवादि होकर 'नरीनृत्यते यहाँ पर द्वितीय नकार को प्राप्त णत्व का 'क्षुभ्नादिषु च' सूत्र से निषेध हो जाता है । शेष रूप पूर्ववत् यकार लोप होकर आर्धधातुक लकारों में बनेंगे—**नरीनृताञ्चक्रे, नरीनृतिता । नरीनृतिष्यते । नरीनृत्यताम् । अनरीनृत्यत । नरीनृत्येति । नरीनृत-षीष्ट । अनरीनर्तिष्ट । अनरीनृतिष्यत ।**

पुनः पुनरतिशयेन वा 'गृह्णाति' इस विग्रह में 'ग्रह्' धातु से यङ्, द्वित्वाभ्यास कार्य, अभ्यास को रीगागम, 'जहीगृंह्य' की धातु संज्ञा, लट्, त, शवादि होकर **'जरीगृह्यते'** शेष रूप—**जरीगृहाञ्चक्रे, जरीगृहिता, जरीगृहिष्यते । जरीगृह्यताम्, अजरीगृह्यात । जरीगृह्येत । जरीगृहिषीष्ट । अजरीगृहिष्ट । अजरीगृहिष्यत ।**

इति यङन्त प्रक्रिया

अथ यङ्लुक् प्रक्रिया

यङोऽचि च ।२।४।७४।।

यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्या च्चकारात्तं विनाऽपि क्वचित्। अनैमित्तकोऽय मन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वमभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लडादयः। शेषात् कर्तरीति परस्मैपदम्। चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्।

यङो वा ।७।३।९४।।

यङोऽचीति—अच् प्रत्यय परे रहते यङ् का लोप हो। सूत्र में चकार ग्रहण से, अच् के बिना भी कहीं यङ् का लोप हो।

अनैमित्तिक इति—अनैमित्तक होने से अर्थात् बिना किसी निमित्त के प्रवृत्त होने के कारण (क्योंकि यङ् का लोप बिना किसी निमित्त के होता है) अन्तरंग होने से यह पहिले होता है अर्थात् सबसे प्रथम यङ् लोप होता है।

तत इति—यङ् का लोप होने पर 'प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणम्' (प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्यय को मानकर कार्य होता है) से धातु को यङन्त मान लिया जाता है। फलतः द्वित्व और अभ्यास कार्य होते हैं। तब धातु संज्ञा होकर लट् आदि लकार आते हैं।

शेषादिति—यङ् लुक् में 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र से परस्मैपद के प्रत्यय आते हैं, अर्थात् यङ् लुक प्रक्रिया के प्रयोग परस्मैपद में ही होते हैं।

चर्करीतमिति—चर्करीति यङ्लुक् को कहते हैं। इसका अदादि गण में पाठ है अतः यङ्लुक् में शप् का लोप हो जाता है।

यङो वेति—यङ्लुङन्त से परे हलादि पित् सार्वधातुक को इट् का आगम हो विकल्प से।

यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात्। भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न। **बोभूतु तेतिक्ते** इति छन्दसि निपातनात्। **बोभवीति, बोभोति, बोभूतः**। अदभ्यस्तात् बोभुवति।

इति यङ्लुगन्ताः

भूसुवोरिति—'भूसुवोस्तिङि' सूत्र से होने वाला गुण निषेध, यङ्लुक् में भाषा में नहीं होता। क्योंकि **'बोभूतु-तेतिक्ते'** इस सूत्र में छन्द में 'भू' को यङ्लुक् में गुण निषेध का निपातन किया गया है। यदि यङ्लुक् में उक्त सूत्र से गुण निषेध हो जाता तो निपातन की आवश्यकता न होती। अतः इस निपातन से प्रमाणित होता है कि भाषा में यङ्लुक् में गुण निषेध नहीं होता।

पुनः पुनरतिशयेन वा भवति' इस विग्रह में 'भू' धातु से यङ् प्रत्यय 'यङोऽचि च' सूत्र से उसका लोप, प्रत्यय लक्षण से यङन्त मानकर 'भू' को द्वित्व अभ्यास कार्य 'गुणो यङ्लुकोः' सूत्र से अभ्यास को गुण, 'बोभू' इस यङन्त की धातु संज्ञा लट्, परस्मैपद होने से लट्, को तिप्, तिप् के हलादि पित् सार्वधातुक होने से 'यङो वा' सूत्र से ईट् का आगम, अभ्यासोत्तर उकार को सार्वधातुक गुण, ईट् पक्ष में अवादेश होकर **बोभवीति**, ईडभाव पक्ष में शप् के अदादि होने से लोप होने के कारण अवादेश नहीं होता, तब बोभोति, ये दो रूप बनते हैं। तस् परे अपित् अतएव ङिद्वत् होने से गुणाभाव 'बोभूतः' झि को 'अदभ्यास्तात्' से अत् (द्वित्व होने से बोभू' धातु अभ्यस्त है, झि के अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् होने के कारण गुणनिषेध होने पर 'अचिश्नु' सूत्र से उवङ् होकर **'बोभुवति'** रूप बनते हैं। लट् के शेष रूप—**बोभवीषि बोभोषि, बोभूथः, बोभूथ। बोभवीमि बोभोमि, बोभूवः, बोभूमः**। लिट् में यङ्लुगन्त बोभू के प्रत्ययान्त होने से आम्, कृ का अनुप्रयोग होकर **बोभवाञ्चकार-बोभवामास**। लुट्-इट् गुणावादेश **बोभविता, बोभविष्यति, बोभवीतु बोभोतु बोभूतात्, बोभूताम्, बोभुवतु बोभूहि, बोभवानि**। लङ् में **अबोभवीत् अबोभोत, अबोभूताम्, अबोभवुः**। वि० लि० **बोभूयात् बोभूयाताम्** बोभूयुः। आ० लि० में **बोभूयात् बोभूयास्ताम् बोभूयासुः**। लुङ् में अट्, च्लि, सिच्, करने पर 'गातिस्थेति' सूत्र से सिच् लोप, तब हलादि पित् सार्वधातुक तिप् परे 'यङो वा' से ईट्, नित्य होने के कारण, सार्वधातुक गुण को बाधकर 'भुवो वुग् लुङलिटोः' से वुक् (व्) का आगम होकर **अबोभूवीत्**, ईडभाव पक्ष में गुण होने पर **अबोभोत्, अबोभूताम् अबोभूवुः** (वुगागम) लृङ् में **अबोभविष्यत्**।

इति यङलुगन्ताः

अथ नामधातवः

सुप आत्मनः क्यच् ।३।१।८।।

इषि कर्मणः एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात् ।

सुपो धातु प्रातिपदिकयोः ।२।४।७१।।

एतयो रवयवस्य सुपो लुक् ।

क्यचि च ।७।४।३३।।

अवर्णस्य ईः । आत्मनः पुत्र मिच्छति-पुत्रीयति ।

सुप इति—इच्छा के कर्म और इच्छा के सम्बन्धी सुवन्त से इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्यय विकल्प से हो ।

सुपो धात्विति—धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लोप हो ।

क्यचीति—अवर्ण को 'ई' होता है, क्यच् परे रहते ।

'आत्मनः पुत्र मिच्छति' (अपना पुत्र चाहता है) इस अर्थ में 'पुत्र अम्' इस सुवन्त से 'सुप आत्मनः' सूत्र से क्यच् प्रत्यय होगा; क्योंकि पुत्र इच्छा का कर्म है और इच्छा करने वाले का उससे सम्बन्ध है—'परस्य पुत्र मिच्छति' इस अर्थ में क्यच् न होगा ।

क्यच् में केवल 'य' शेष रहता है ।

'पुत्र अम् य' इसकी 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातु संज्ञा, तब धातु का अवयव होने से सुप्-अम् का 'सुपोधात्विति' सूत्र से लोप, 'पुत्र य' इस स्थिति में क्यचि च' सूत्र से अकार को ईकार 'पूत्रीय' इसकी धातु संज्ञा, लट्, तिप्, शप्, 'अतोगुणे' पररूप होकर **पुत्रीयति'** ।

'पुत्रीय' धातु के प्रत्ययान्त होने के कारण लिट् में आम् प्रत्यय और लिङन्त कृ आदि का अनुप्रयोग तथा अनेकाच् होने से वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम

नः क्ये ।१।४।१५।।

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नान्यत्, न लोपः— राजीयति ।

नान्तमेवेति किम्, वाच्यति । हलि च—जीर्यति, पूर्यति । धातोरित्येव, नेह, दिव मिच्छति दिव्यति ।

क्यस्य विभाषा ।६।४।५०।।

आदि भी होगा । अतः लिडादि में **"पुत्रीयाञ्चकार, पुत्रीयिता, पुत्रीयिष्यति, पुत्रीयतु, अपुत्रीयत्, पूत्रीयेत्, पुत्रीय्यात् अपुत्रीयीत् अपुत्रीयिष्यत्"** रूप होंगे ।

इसी प्रकार अन्य सुवन्तों से क्यजन्त रूप बनेंगे । इन धातुओं के मूल नाम अर्थात् प्रातिपदिक होते हैं अतएव क्यजाद्यन्त धातुओं को नामधातु कहते हैं ।

नः क्ये इति– क्यच् और क्यङ् प्रत्यय परे रहते, नान्त ही पद होता है अन्य नहीं । फलतः नकार से भिन्न वर्ण यदि अन्त में होगा तो पद संज्ञा नहीं होगी ।

राजान मात्मन इच्छति (राजा को अपना चाहता है) इस अर्थ में राजन् अम् इस सुवन्त से इच्छार्थ में 'सुप आत्मनः' सूत्र से क्यच् प्रत्यय, सनाद्यन्तेति धातु संज्ञा होने पर सुपोधातुविति सुप्-अम् का लोप, 'राजन् य' इस स्थिति में 'नः क्ये' नियम से नान्त राजन् की पद संज्ञा, ''न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से नकार का लोप, 'क्यचि' से अकार को ईकार होकर 'राजीय' की धातु संज्ञा लट् तिप् शवादि होकर **'राजीयति'** ।

नान्तमेवेति—नान्त की ही पद संज्ञा होती है इस नियम का फल है— 'वाच्यति' यहाँ 'आत्मनो वाच मिच्छति' इस विग्रह में वाच् अम् सुवन्त से 'क्यच्' वाच् शब्द नान्त नहीं है अतः उक्त नियम से पद संज्ञा का निषेध होने से 'चोकुः' से कुत्व और 'झलां जशोऽन्ते' से जश्त्व नहीं हुआ, अतः वाच्यति रूप बना ।

'गिर् अम्—पुर् अम् वा आत्मन इच्छति' इस अर्थ में क्यच् प्रत्यय धातु संज्ञा, सुप् लोप, 'हलिचेति' दीर्घ, गीर्य और पूर्य की पुनः धातु संज्ञा लट् त, शवादि होकर **गीर्यति** और **पूर्यति** ।

धातोरित्येवेति—रेफ् अथवा व अन्त वाले शब्दों की ही उपधा को दीर्घ होता है जबकि वे रेफ और वकार धातु के ही हों । गॄ निगरणे और पॄ, पूरणयोः धातु से क्विप् और ॠत इद्धातोः से इर् होकर गिर् और पुर् बनते हैं अतः यहाँ तो धातु के रेफ् होने से दीर्घ होता है पर दिवमात्मनः इच्छति इस विग्रह में दिव अम् सुवन्त से क्यच् होने पर 'हलि च' से दीर्घ नहीं होता क्योंकि यह वकार धातु का नहीं है अपितु सुवन्त का है तब 'दिव्यति' ।

क्यस्येति—हल् से पर क्यच् और क्यङ् का विकल्प से लोप हो, आर्ध धातुक परे रहते ।

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वार्धधातुके । आदेः परस्यः, अतो लोपः, तस्य स्थानिवत्वाल्लघूपधगुणो न । **समिधिता, समिध्यिता ।**

काम्यच्च ।३।१।९।।

उक्त विषये काम्यच् स्यात् । पुत्रमात्मन इच्छति—**पुत्रकाम्यति । पुत्रकाम्यिता ।**

उपमानादाचारे ।३।१।१०।।

उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारार्थे क्यच् । पुत्रमिवाचरति-**पुत्रीयति छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् ।**

(वा) सर्व प्रातिपदिकेभ्यः क्विब्बा वक्तव्यः । अतो गुणे, कृष्ण इवाचरति – **कृष्णति ।** स्व इवाचरति **स्वति । सस्वौ ।**

समिध मात्मानमिच्छति, इस विग्रह में समिध अम् सुबन्त से क्यच्, धातु संज्ञा, सुप् लोप, 'समिध्य' इस क्यजन्त से लुट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में तास् को इट्, 'क्यस्य विभाषा' सूत्र से 'अत आदेः' के निर्देश से यकार का लोप, 'अतो लोपः' से अकार का लोप, होकर **'समिधिता'** यलोपाभाव पक्ष में 'अतो लोपः' सूत्र से अकार का लोप होकर समिध्यिता' यह द्वितीय रूप बनता है । (हलन्त शब्दों से क्यजन्त शब्दों में इसी प्रकार तासादि आर्धधातुक परे यकाराकार का लोप होता है) यहाँ अकार के लोप को स्थानिवद्भाव से मानकर लघूपध न मिलने से पुगन्तेति सूत्र से गुण नहीं होता । 'अतो लोपः' उक्त दोनों उदाहरणों में अकार लोप करता है ।

काम्यच्चेति—इच्छा के कर्म और इच्छा के सम्बन्धी सुबन्त से क्यच् के विषय में काम्यच् प्रत्यय भी हो ।

'पुत्र मात्मनः इच्छति' इस अर्थ में पुत्र अम् सुबन्त से प्रकृत सूत्र से काम्यच्, धातु संज्ञा, सुप् लोप, पुत्रकाम्य से धातु संज्ञा, लट् तिप् शबादि होकर **"पुत्रकाम्यति"** तास् परे इट्, काम्य के अन्त्याकार का 'अतोलोपः' होकर **'पुत्रकाम्यिता'** रूप बनता है ।

उपमानादिति—उपमान, कर्म सुबन्त से आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय हो ।

"छात्रं पुत्र मिवाचरति" इस विग्रह में 'छात्र अम्' इस सुबन्त से प्रकृत सूत्र से क्यच् प्रत्यय, शेष कार्य इच्छार्थक क्यच् के समान होकर **'पुत्रीयति छात्रम्'** इसी प्रकार 'द्विजम् विष्णुमिवा चरति' इस विग्रह में क्यच्, धातु संज्ञा, सुप् लोप, 'विष्णुय' इस स्थिति में 'अकृत्सार्वधातुकयोः' सूत्र से दीर्घ 'विष्णूय' की धातु संज्ञा, लट् तिप् शबादि होकर **'विष्णूयति'** ।

(वा) सर्वेति— सभी प्रातिपदिकों से क्विप् प्रत्यय विकल्प से हो आचार अर्थ में । 'क्विप्' का सर्वापहारि लोप होता है । क्विप् का लोप होने पर प्रातिपदिक का रूप ही धातु बन जाता है ।

अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ।६।४।१५।।

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात्, क्वौ झलादौ च क्ङिति। इदमिवाचरति **इदामति** । राजेव **राजानति** । पन्था इव **पथीनति** ।

कष्टाय क्रमणे ।३।१।१४।।

चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् । कष्टाय क्रमते-कष्टायते, पापं कर्तुमुत्सहते इत्यर्थः ।

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ।३।१।१७।।

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् । शब्दं करोति शब्दायते ।

तत्करोति तदाचष्टे इति णिच् ।

'कृष्ण इवाचरित' इस विग्रह में 'कृष्ण' प्रातिपदिक से क्विप प्रत्यय, क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारि लोप, 'कृष्ण' की धातु संज्ञा, लट् तिप् आदि होने से 'कृष्ण अति' इस स्थिति में 'अतोगुणे' से अकार का पर रूप होकर 'कृष्णति' स्व इवा चरति' इस विग्रह में क्विप्, लोप, धातु संज्ञा, लट् तिप् शप् अकार का पररूप होकर 'स्वति' ।

क्विप् प्रत्ययान्त 'स्व' धातु से लिट् तिप् णल् होकर 'अचोञ्णिति' वृद्धि, 'आत और णलः' णल् को औ, द्वित्वाभ्यास कार्य, 'औ' के साथ वृद्धि होकर **'सस्वौ'** रूप बनता है ।

अनुनासिकस्येति—अनुनासिकान्त की उपधा को दीर्घ हो क्वि और झलादि कित् ङित् परे रहते ।

इदम् इवा चरति इस विग्रह में 'इदम्' प्रातिपदिक से क्विप् प्रत्यय, प्रकृत सूत्र से मकारान्त इदम् की उपधा को दीर्घ, क्विप् का लोप 'इदाम्' की धातु संज्ञा, लडादि 'इदामति' ।

'राजेवाचरति' इस विग्रह में राजन् प्रातिपदिक से क्विप्, प्रकृत सूत्र से दीर्घ, धातु संज्ञा लडादि 'राजानति' । इसी प्रकार 'पन्था इवा चरति' इस विग्रह में पथिन् प्रातिपदिक के क्विप्, दीर्घ, आदि होकर **'पथीनति'** रूप बनता है ।

कष्टायेति—चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से उत्साह अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ।

क्यङ् प्रकृत के ङित् होने से आत्मनेपद प्रत्यय आते हैं ।

प्रत्यय सूत्र में कष्ट का अर्थ पाप है **'कष्टाय क्रमते'** पाप करने को उत्साह करता है। इस अर्थ में प्रकृत सूत्र से क्यङ् प्रत्यय, धातु संज्ञा सुप् लोप्, अकृदिति दीर्घ, 'कष्टाय' की धातु संज्ञा, लट् त आदि—**कष्टायते** ।

शब्देति—शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ इन कर्म कारकों से 'करोति' इस अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो।

(वा) प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च ।

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात् । इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभाव-टिलोपविन्मतुब्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभ संज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः । इत्यल्लोपः ।

घटं करोत्याचष्टे वा-घटयति ।

इति नामधातवः

'शब्दम् करोति' इस विग्रह में 'शब्द अम्' इस करोति के कर्म से प्रकृत सूत्र से क्यङ् प्रत्यय, धातु संज्ञा, सुप् लोप, अकृदिति दीर्घ, 'शब्दाय' की धातु संज्ञा, लडादि **'शब्दायते'** ।

इसी प्रकार **वैरायते, कलहायते, अभ्रायते, कण्वायते, मेघायते** आदि ।

(वा) तत्करोति, तदाचष्टे—"उसे करता है और उसे कहता है" इन विग्रहों में प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय होता है। अर्थात् यह वार्तिक, करने और कहने अर्थ में इनके कर्म से णिच् प्रत्यय करता है।

(वा) प्रातिपदिकादिति—प्रातिपदिक से धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय बहुल भाव से होता है और यह णिच् इष्ठन् प्रत्यय के समान होता है अर्थात् इष्ठन् प्रत्यय परे जो प्रातिपदिक को पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, विन् और मतुप् का लोप, यणादि लोप, प्रस्थ आदि आदिदेश, और भसंज्ञा आदि जो कार्य होते हैं, वही कार्य णिच् प्रत्यय परे रहते भी होते हैं ।

'घटं करोति' इस विग्रह में घट अम् इस कर्म से 'करोति' अर्थ में प्रकृत वार्तिक से णिच् प्रत्यय, इष्ठवत् होने से णिच् परे भसंज्ञा यस्येति चेति अकार लोप, 'घटि' की धातु संज्ञा; लट् तिप्, शप् गुणायादेश, होकर 'घटयति'।

इति नामधातवः ।

अथ कण्ड्वादयः

कण्ड्वादिभ्यो यक् ।३।१।२७।।

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे । कण्डूञ् गात्र विघर्षणे ।।१।। **कण्डूयति, कण्डूयते** । इत्यादि ।

इति कण्ड्वादयः

कण्ड्वादिभ्य इति—कण्डूञ् आदि[1] धातुओं से नित्य यक् प्रत्यय हो स्वार्थ में ।

कण्डूञ् (कण्डू) धातु का अर्थ है खुजलाना । यह धातु अनेकाच्, सेट्, एवं ञित् होने से उभयपदी है ।

कण्डू धातु से यक् प्रत्यय होने पर पुनः सनाद्यन्ता धातवः से धातु संज्ञा होकर लट् तिप् और त तथा शप् आदि होते हैं इस प्रकार **कण्डूयति** और **कण्डूयते**-ये दो रूप होते हैं ।

लिट् में आम् और कृ का अनुप्रयोग होकर **कण्डूयाञ्चकार** और **कण्डूयाञ्चक्रे । कण्डूयितासि, कण्डूयितासे । कण्डूयिष्यति, कण्डूयिष्यते । कण्डूयतु, कण्डूयताम्, अकण्डूयत्, अकण्डूयत । कण्डूयेत्, कण्डूय्यात्, कण्डूयिषीष्ट । अकण्डूयीत्, अकर्ण्यिष्ट । अकण्डूयिष्यत्-त** ।

---

१. प्रकृत सूत्र में कण्डूञ् आदि धातुओं से यक् प्रत्यय का विधान किया गया है । सूत्रवृत्ति में "धातुभ्यः" से तात्पर्य यह है कि यक् प्रत्यय प्रातिपदिकों से न हो । क्योंकि कण्डू आदि धातु भी हैं और प्रातिपदिक भी । वस्तुतः यह फलितार्थ कथन ही है क्योंकि यक् प्रत्यय के कित् होने से गुण निषेधादिफल धातुओं में ही संघटित होता है अतः इनका धातुत्व स्वतः सिद्ध होता है । साथ ही कण्डू के दीर्घ ऊकारान्त होने से इनका प्रातिपदिकत्व भी सिद्ध होता है, यदि ये धातु ही होते तो ह्रस्व रहने पर भी अकृदिति सूत्र से दीर्घ तो हो ही जाता अतः दीर्घ पाठ से इनका प्रातिपदिकत्व भी सिद्ध होता है ।

इति कण्ड्वादयः

अथ आत्मनेपद प्रक्रिया

कर्तरि कर्मव्यतिहारे ।१।३।१४।।

क्रिया विनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मने पदम् । व्यति लुनीते । अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः ।

न गति हिसार्थेभ्यः ।१।३।१५।।

व्यति गच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति ।

नेर्विशः ।१।३।१७।।

निवशते ।

कर्तरीति – क्रिया का विनिमय (अदला-बदली) बताने में कर्त्ता में आत्मने पद होता है ।

वि और अति उपसर्ग के योग में क्रिया का विनिमय सूचित होता है, अतः क्रिया के साथ इनका प्रयोग किया गया है । लुञ् छेदने धातु से उक्त उपसर्ग पूर्वक प्रकृत सूत्र से विनिमय अर्थ में '**व्यतिलुनीते**' में आत्मने पद होता है । इसका अर्थ है कि दूसरे के काटने योग्य लवन को स्वयं कर रहा है अतः यह क्रिया विनिमय है ।

न गतीति —गति और हिंसार्थक धातुओं से क्रिया विनियम अर्थ में आत्मने पद न हो ।

वि और अति पूर्वक गम धातु तथा हिंसार्थक हन् धातु से क्रिया विनिमय अर्थ में भी प्रकृत सूत्र से निषेध होने के कारण आत्मने पद न होने से "**व्यतिगच्छन्ति** और **व्यतिघ्नन्ति**" में परस्मैद ही होता है ।

नेर्विश इति—नि उपसर्ग पूर्वक विश् धातु से आत्मने पद हो । विश् (तुदादि) धातु परस्मैपदी है, प्रकृत सूत्र द्वारा नि उपसर्ग पूर्वक विश् से आत्मने पद का विधान होने से 'निविशते' होता है ।

परिव्यवेभ्यः क्रियः ।१।३।१८।।

परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते ।

विपराभ्यां जेः ।१।३।१९।।

विजयते । पराजयते ।

समवप्रविभ्यः स्थः ।१।३।२१।।

संतिष्ठते । अवतिष्ठते । वितिष्ठते । प्रतिष्ठते ।

अपह्नवे ज्ञः ।१।३।४४।।

शतमप जानीते—अपलपती त्यर्थः ।

अकर्मकाच्च ।१।३।४५।।

सर्पिषो जानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्तते, इत्यर्थः ।

उदश्चरः सकर्मकात् ।१।३।५३।।

धर्म मुच्चरते—उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः ।

परीति—परि, वि और अव उपसर्ग पूर्वक क्री धातु से आत्मने पद हो। 'डुक्रीञ् द्रव्य विनिमये' धातु उभयपदी है, कर्तृगामी क्रियाफल में तो आत्मने पद स्वतः सिद्ध है, पर प्रकृत सूत्र से उक्त उपसर्ग पूर्वक परगामीक्रिया फल में भी आत्मने पद का विधान होने से '**परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते**' में आत्मने पद हुआ ।

विपरेति—वि और पर उपसर्ग पूर्वक 'जि' धातु से आत्मने पद हो। 'जि' जीतना धातु परस्मैपदी है पर प्रकृत सूत्र से उक्त उपसर्गों के योग में आत्मने पद का विधान करने से **विजयते** और **पराजयते** प्रयोग होते हैं ।

समवेति—सम्, अव, प्र, वि, उपसर्ग पूर्वक स्था धातु से आत्मने पद हो ।

स्था धातु परस्मैपदी है, पर उक्त उपसर्गों के योग में प्रकृत सूत्र से आत्मने पद का विधान करने से **संतिष्ठते, वितिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते**' प्रयोग होते हैं ।

अपह्नवे-इति—छिपाने अर्थ में ज्ञा धातु से आत्मने पद हो। ज्ञा धातु उभय-पदी है अतः प्रकृत सूत्र से परगामी क्रियाफल में भी अपह्नव अर्थ में आत्मने पद का विधान करने से 'शतम् अपजानीते' यहाँ आत्मने पद होता है। इसका अर्थ है—सौ को छिपाता है ।

अकर्मकाच्चेति—अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मने पद हो ।

'सर्पिषो जानीते' घी के उपाय से प्रवृत्त होता है। यहाँ 'ज्ञा' धातु प्रवृत्ति अर्थ में अकर्मक है, अतः प्रकृत सूत्र से 'सर्पिषो जानीते' में आत्मने पद होता है ।

उदश्चर इति—उद् उपसर्ग पूर्वक सकर्मक चर् धातु से परस्मैपद हो। चर् धातु

समस्तृतीया युक्तात् ।१।३।५४।।

रथेन संचरते ।

दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ।१।३।५५।।

संपूर्वाद् दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे। दास्या। संयच्छते कामी ।

परस्मैपदी है, पर प्रकृत सूत्र से उद् उपसर्ग पूर्वक चर् से आत्मने पद का विधान करने से **'धर्मम् उच्चरते'** यह आत्मने पद का प्रयोग होगा। **उच्चरते** का अर्थ है—उल्लंघन कर* चलता है ।

सम इति—सम् पूर्वक तृतीयान्त से युक्त चर् धातु से आत्मने पद हो। प्रकृत सूत्र से 'रथेन' इस तृतीयान्त से युक्त चर् धातु से आत्मने-पद होने से **'रथेन संचरते'** यह प्रयोग होता है ।

दाणश्चेति—चतुर्थी के अर्थ में प्रयुक्त तृतीयान्त से युक्त सम् पूर्वक दाण् धातु से आत्मने पद हो ।

---

* इस प्रक्रिया में यद्यपि कुछ विशेष उपसर्गों के योग में कुछ परस्मैपदी और उभय पदी धातुओं से केवल आत्मने पद का विधान किया गया है; फिर भी इन उपसर्गों के योग में केवल आत्मनेपद का ही विधान नहीं है अपितु अर्थ भी परिवर्तित हो जाता है, अतः इन सूत्रों द्वारा न केवल आत्मने पद ही होता है, अपितु उपसर्गों के योग में धात्वर्थ भी परिवर्तित हो जाता है, कुछ सूत्र तो स्पष्टतया अर्थ विशेष का निर्देश भी करते हैं। उदाहरणार्थ—वि और अति पूर्वक लूञ् धातु का न केवल 'काटना' अपितु बदले में काटना अर्थ होता है। 'क्रीणीते' का अर्थ है 'खरीदना' पर परिक्रीणीते का अर्थ है 'वेतन पर नौकर रखना तथा विक्रीणीते का अर्थ बेचना है। जि धातु का अर्थ जीतना है, पर विजयते का अर्थ विजय प्राप्त करना है और पराजयते का अर्थ हराना और हारना है। शत्रून् पराजयते, अध्ययनात् पराजयते, पढने से स्वयं हारता' है। इसी प्रकार 'स्था' का अर्थ ठहरना है, पर संतिष्ठते—अच्छी तरह ठहरता है। प्रतिष्ठते-चल पड़ता है। वितिष्ठते—विशेष रूप से रहता है और अवतिष्ठते—रहता है। ज्ञा धातु का अर्थ जानना है और वह सकर्मक धातु है पर अपजानीते का अर्थ है—छिपाता है। इसी प्रकार सर्पिषो जानीते में यह अकर्मक हो जाता है और इसका अर्थ होता है, प्रवृत्त होना। चर् धातु का अर्थ गति और भक्षण है, पर धर्मं मुच्चरते का अर्थ है धर्म का उल्लंघन कर सकता है। तृतीयान्त से युक्त होने पर ही इससे आत्मने पद होता है अन्यथा सम् पूर्वक भी परस्मैपद ही होता है संचरति। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

पूर्ववत्सनः ।१।३।६२।।

सनः पूर्वो यो धातु स्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मने पदं स्यात् । एदिधिषते ।

हलन्ताच्च ।१।२।१०।।

इक्समीपाद् हलः परो झलादिः सन् कित् ।निविविक्षते ।

गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्य प्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ।१।३।३२।।

गन्धनं सूचनम् । उत्कुरुते-सूचयतीत्यर्थः । अवक्षेपणं भर्त्सनम् । श्येनो वर्तिका मुत्कुरुते । भर्त्सयतीत्यर्थः । हरिमुप कुरुते । सेवत इत्यर्थः । परदारान् प्रकुरुते-तेषु

दाण् धातु परस्मैपदी है पर प्रकृत सूत्र से उक्त दशा में इससे आत्मने पद का विधान करने से **'दास्या संयच्छते कामी'** यह प्रयोग होता है ।

वस्तुतः जहाँ "अशिष्ट व्यवहारे दाणः संप्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया" वार्तिक से चतुर्थी के अर्थ में तृतीया होती है वहीं इस सूत्र से आत्मने पद होता है । लट् में दाण् धातु के स्थान में 'पाघ्रा' सूत्र से यच्छ् आदेश हुआ है ।

पूर्ववदिति—सन् से पूर्व जो धातु उसके समान सन्नन्त से भी आत्मने पद हो ।

एध् धातु आत्मने पदी है अतः एधितुमिच्छति इस विग्रह में इससे सन् करने पर और इट् होने से 'एधिष्' में द्वितीयैकाच् को द्वित्व अभ्यास कार्य, एदिधिष् इस सन्नन्त की धातु संज्ञा होने पर इससे भी प्रकृत सूत्र से आत्मने पद ही होगा अतः **एदिधिषते** रूप बनेगा ।

हलन्ताच्चेति—इक् के समीप वर्तमान हल से परे झलादि सन् कित् हो ।

'निवेष्टुमिच्छति' इस अर्थ में नि पूर्वक विश् धातु से सन् प्रत्यय, इक् समीप वर्तमान हल् शकार से परे सन् प्रकृत सूत्र से कित् होगा, फलतः लघूपध गुण का निषेध, शकार को व्रश्चेति से षत्व, षढोः कः सि से ककार, सन् के सकार को षत्व, क्षत्व, द्वित्वाभ्यास कार्य होकर 'निविविक्ष', की धातु संज्ञा, पूर्ववत्सनः' सूत्र से आत्मने पद, क्योंकि 'नेर्विशः' सूत्र से नि पूर्वक विश् धातु, सन् से पूर्व भी आत्मनेपदी है ।

गन्धनेति—गन्धन (सूचन या शिकायत करना) (अवक्षेपण) फट करना या भर्त्सना करना) सेवन, साहसिक्य (सहसा प्रवृत्त होना) प्रति यत्न (गुणों का आधान करना) प्रकथन और उपयोग अर्थ में कृ धातु से आत्मने पद हो ।

कृञ् धातु (करना) उभय पदी है पर प्रकृत सूत्र से इन अर्थों में इससे परगामी क्रियाफल में भी आत्मने पद होता है ।

उत्कुरुते—सूचयतीत्यर्थः यहाँ सूचन अर्थ में उत् पूर्वक कृ धातु से प्रकृत सूत्र से आत्मने पद हुआ ।

श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते भर्त्सयतीत्यर्थः यहाँ भर्त्सन अर्थ में कृ धातु से आत्मने पद हुआ है ।

सहसा प्रवर्तते। एधोदकस्योपस्कुरुते—गुण माधत्ते। कथाः प्रकुरुते- कथयतीत्यर्थः। शतं प्रकुरुते— धर्मार्थं विनियुङ्क्ते। एषु किम्—कटं करोति। भुजोऽनवने— ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्—महीं भुनक्ति।

इत्यात्मने पद प्रक्रिया

हरिमुपकुरुते—सेवते इत्यर्थः यहाँ सेवन अर्थ में उत्पूर्वक कृ धातु से आत्मने पद होगा।

परदारान् प्रकुरुते—तेषु सहसा प्रवर्तते। यहाँ सहसा प्रवृत्ति अर्थ में प्रपूर्वक कृ धातु से आत्मने पद हुआ।

एधोदकस्योपस्कुरुते—'गुणमाधत्ते' यहाँ गुणाधान अर्थ में उपपूर्वक कृ धातु से आत्मने पद हुआ।

कथाः प्रकुरुते—कथयतीत्यर्थः' यहाँ कथन अर्थ में प्रपूर्वक कृ धातु से आत्मने पद होगा।

शतं प्रकुरुते—धर्मार्थं विनियुङ्क्ते' यहाँ विनियोग अर्थ में प्रकृत सूत्र से आत्मने पद होगा।

एषु किमिति—उक्त गन्धनादि अर्थों में ही कृ धातु से आत्मने पद का विधान है अतः इनसे भिन्न अर्थों में आत्मने पद न होगा अतएव "कटं करोति" यहाँ नहीं हुआ।

भुज इति—पूर्वोक्त 'भुजोऽनवने' सूत्र से पालनार्थ से भिन्न अर्थात् खाना अर्थ में भुज् धातु से आत्मने पद होता है अतः ओदनं भुक्त्ङे यहाँ तो आत्मने पद होगा पर महीं भुनक्ति यहाँ परस्मैपद ही रहेगा।

इति आत्मनेपद प्रक्रिया

अथ परस्मैपद प्रक्रिया

अनुपराभ्यां कृञः ।१।३।७९।।

कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् । अनुकरोति, पराकरोति ।

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ।१।३।८०।।

क्षिप् प्रेरणे । स्वरितेत् । अभिक्षिपति ।

प्राद्वहः ।१।३।८१।।

प्रवहति ।

परेर्मृषः ।१।३।८२।। परिमृषति ।

व्याङ्परिभ्यो रमः ।१।३।८३।।

रमु क्रीडायां—विरमति ।

अनुपराभ्यामिति—अनु और परा उपसर्गपूर्वक कृ धातु से कर्तृगामी क्रिया-फल में भी और गन्धनादि अर्थों में भी परस्मैपद हो । अनुकरोति, पराकरोति, यहाँ प्रकृत सूत्र से परस्मैपद हुआ ।

अभीति—अभि, प्रति और अति पूर्वक क्षिप् धातु से परस्मैपद हो ।

क्षिप् (फेंकना) धातु उभयपदी है पर इन उपसर्गों के साथ इससे परस्मैपद ही होगा । अभिक्षिपति, प्रतिक्षिपति, अतिक्षिपति ।

प्राद्वह इति—प्रपूर्वक वह धातु से परस्मैपद हो ।

वह (उभयपदी) धातु से कर्तृगामी क्रियाफल में भी प्रकृत सूत्र से परस्मैपद होने से 'प्रवहति' प्रयोग होगा ।

परेरिति—परिपूर्वक मृष् धातु से परस्मैपद हो । परिमृषति ।

व्याङिति—वि, आङ् परिपूर्वक रम् (क्रीडनार्थक) धातु से परस्मैपद हो ।

उपाच्च ।१।३।८४।।

यज्ञदत्त मुपरमति, उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् ।

इति पद व्यवस्था

रम धातु आत्मनेपदी है, इन उपसर्गों के योग में इससे परस्मैपद होगा, साथ ही उपसर्गवशात् अर्थ परिवर्तन भी होगा।

विरमति (रुकता है) आरमति (चारों ओर खेलता है) परिरमति (सर्वत्र सुख प्राप्त करता है)।

उपाच्चेति—उप पूर्वक रम धातु से परस्मैपद हो।

यज्ञदत्तम् उपरमति। यहाँ प्रकृत सूत्र से परस्मैपद हुआ है। उपरमति का अर्थ नाश करना है। यहाँ रम् धातु अन्तर्भावित ण्यर्थवाची है अर्थात् णि का प्रेरणा अर्थ इसके भीतर छिपा हुआ है। इसीलिए उपरमति का अर्थ उपरमयति किया गया है।

इति परस्मैपद प्रक्रिया

अथ भावकर्म प्रक्रिया

भाव कर्मणोः ।१।३।१३।।

लस्यात्मनेपदम् ।

सार्वधातुके यक् ।३।१।६७।।

धातोर्यक् भावकर्म वाचिनि सार्वधातुके ।

भावः क्रिया, सा च भावार्यकलकारेणानूद्यते । युस्मदस्मद्भ्यां समानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः । तिङ् वाच्य क्रियायाः अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्य प्रतीते र्न द्विवचनादि, किन्वेकवचनमेवोत्सर्गतः । त्वया मया अन्यैश्च भूयते, बभूवे ।

भावकर्मणोरिति—भाव और कर्म में लकारों से आत्मनेपद प्रत्यय हों ।

फलतः भाववाच्य और कर्मवाच्य में सभी धातु सदा आत्मनेपद ही होंगे । परस्मैपदी धातुओं से इन दोनों वाच्यों में तो आत्मनेपद सभी लकारों में होगा ही, पर जो धातु स्वतः आत्मनेपदी हैं उनमें भी आत्मनेपद ही रहेगा, फलतः आत्मनेपदी धातुओं से आर्धधातुक लकारों के रूपों में कर्तृ वाच्य तथा भाव कर्मवाच्य में कोई अन्तर न होगा, अन्तर केवल सार्वधातुक लकारों में ही होगा उदाहरणार्थ आत्मनेपदी लभ धातु से लृट् लकार में कर्तृ वाच्य में लप्स्यते बनता है, भाव और कर्मवाच्य में भी लप्स्यते ही रहेगा । परस्मैपदी धातुओं के आर्धधातुक लकारों में भाव कर्म में आत्मनेप्रद हो जाने से कर्तृ वाच्य से स्पष्ट अन्तर प्रतीत होगा । भू धातु से लिट् कर्तृ वाच्य में बभूव होगा पर भावकर्म में बभूवे होगा ।

सार्वधातुक लकारों में वक्ष्यमाण यक् प्रत्यय होने से सर्वत्र यह अन्तर स्पष्ट रहेगा ।

सार्वधातुके इति—भाव और कर्मवाची सार्वधातुक परे रहते धातु से यक् प्रत्यय हो ।

स्य सिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ।६।४।६२।

भाव इति—भाव का अर्थ है क्रिया। इस क्रिया का भावार्थक लकार से अनुवाद किया जाता है। तात्पर्य यह कि भाववाच्य से लकार भाव में आता है और भाव क्रिया को कहते हैं, यह क्रिया धातु का भी अर्थ है।

इस प्रकार जब धातु से ही क्रिया का अर्थ ज्ञान हो जाता है तब लकार के द्वारा उसी धातु वाच्य क्रिया का अनुवाद मात्र होता है अतः पुनरुक्ति न माननी चाहिए, और न भाव में लकार विधान को व्यर्थ ही।

युष्मदिति—युस्मद् और अस्मद् से समानाधिकरण्य न होने से 'शेषे प्रथमः' सूत्र से भाववाच्य में सदा केवल प्रथम पुरुष ही आता है, क्योंकि मध्यमोत्तम पुरुष तो केवल वहीं आते हैं जहाँ लकार भी उन्हीं के अर्थ में हो तभी युस्मद् का और अस्मद् का लकार के साथ सामानाधिकरण्य भी बनता है। जब भाववाच्य में लकार भाव (क्रिया) में होगा तब उसका सामानाधिकरण्य युस्मद् अस्मद् के साथ कैसे बन सकेगा अतः सामानाधिकरण्य न बनने से भाव वाच्य में केवल प्रथम पुरुष ही होता है अन्य नहीं।

तिङ्वाच्येति—तिङ् वाच्य क्रिया के द्रव्य रूप न होने से द्वित्व आदि की प्रतीति नहीं होती; इसलिए भाववाच्य में द्वि वचन और बहुवचन भी नहीं आते किन्तु एक वचन ही स्वभावतः आता है क्योंकि एक वचन तो संख्या निरपेक्ष होता है। फलतः भाववाच्य में एक धातु से एक लकार में केवल प्रथम पुरुषैक वचन में एक ही रूप बनता है और वह सदा आत्मनेपद में ही रहता है।

'त्वया मया अन्यैश्च भूयते' यहाँ अकर्मक भू धातु से भाव में 'लः कर्मणि' सूत्र से लट् लकार हुआ और "भावकर्मणोः" सूत्र से लट् के स्थान में आत्मनेपद होने से आत्मनेपद का प्रत्यय 'त' हुआ। (पूर्वोक्त प्रक्रिया के अनुसार भाव में औत्सर्गिक प्रथम पुरुष एक वचन ही होता है) और सार्वधातुके यक्, से यक् प्रत्यय, कित् होने से गुण निषेध, त की टि को एकार होकर 'भूयते' रूप बना है। त्वया, मया अन्यैश्च, इनका प्रयोग कर यह बताया गया है कि भाव में कर्त्ता अनुक्त रहता है अतः वह तृतीया विभक्ति में रहेगा, औत्सर्गिक एक वचन होने से कर्त्ता में कोई भी वचन बना रहे पर क्रिया में सदा एक वचन ही होगा। इसी प्रकार लिङ्ग का भी भाववाच्य क्रिया पर प्रभाव नहीं पड़ता। तया तैश्च वा भूयते, यही होगा।

लिट् में प्रकृत सूत्र से आत्मनेपद का विधान करने से परस्मैपदी भी भू धातु से आत्मनेपद का प्रत्यय 'त' और उसको 'एश्' होकर 'बभूवे' रूप बनेगा।

स्यसिजिति—उपदेश में जो अच् तदन्त धातु को और हन्, ग्रह तथा दृश्

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात्, स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः, स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भाव पक्षेऽयमिट्, चिणवद्भावाद् वृद्धिः-- भाविता, भविता। भाविष्यते भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट, भविषीष्ट।

चिण् भावकर्मणोः ।३।१।६६।।

च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि त शब्दे परे। अभावि। अभाविष्यत अभविष्यत। अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः—अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते, अनुभूयन्ते। त्व मनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि, अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम्। णिलोपः—भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे।

धातुओं को चिण् के समान अंग कार्य विकल्प से हो, स्य, सिच्, सीयुट् और ताम् परे रहते, भाव और कर्म जब गम्यमान हों और स्य आदि को इट् का आगम भी हो। तात्पर्य यह कि प्रस्तुत सूत्र से दो मुख्य कार्य होते हैं—चिण्वद्भाव और स्य आदि परे इडागम। चिणवद्भाव होने से वृद्धि होती है। इडागम चिण्वद्भाव पक्ष में ही होता है, तदभाव में नहीं। भू धातु से भाववाच्य लुट लकार में चिण्वद्भाव और तास् को इट् होने पर, वृद्धि, आवादेश होकर 'भाविता', चिण्वद्भाव के अभाव पक्ष में आर्धधातुकस्येति इट् 'भविता'। इसी प्रकार लृट् में 'भविष्यते' और भाविष्यते। लोट् भूयताम्। लङ् अभूयत। वि० लि० भूयेत। आ० लि० भाविषीष्ट और भविषीष्ट। लुङ् में—

चिण् भाव कर्मणोरिति—भावकर्मवाची त शब्द परे रहते च्लि को चिण् हो। प्रकृत सूत्र से च्लि को चिण् 'चिणो लुक्' सूत्र से 'त' का लुक् इट्, वृद्धि, आवादेशादि होकर 'अभावि' लृङ् में अभाविष्यत, अभविष्यत।

अकर्मक इति—अकर्मक भी धातु उपसर्गवशात् भिन्नार्थक हो जाने से सकर्मक हो जाता है। भू धातु यद्यपि अकर्मक है तथापि 'अनु' उपसर्ग पूर्वक अनुभव करने अर्थ में सकर्मक हो जाता है, अतः इससे सकर्मक होने के कारण कर्म में लकार आता है—अनुभूयते आनन्दः चैत्रेण (चैत्र के द्वारा आनन्द का अनुभव किया जाता है) यहाँ कर्म में लट् लकार होकर पूर्ववत् 'अनुभूयते' रूप बना है। कर्म में लकार होने से कर्म के उक्त हो जाने से 'आनन्दः' में प्रथमा और अनुक्त कर्त्ता चैत्रेण में तृतीया हुई है। कर्मवाच्य में लकार का अर्थ कर्म होता है, अतः युस्मद् अस्मद् के साथ इसका सामानाधिकरण्य भी बन जाता है, अतएव कर्मवाच्य में तीनों ही पुरुष होंगे तथा कर्म के द्रव्य होने से उसका अन्वय संख्या 'बचन' के साथ भी होगा, अतः कर्म वाच्य में सभी वचन भी होंगे। त्वया, मया च आनन्दः अनुभूयते' यहाँ युस्मद् अस्मद् के साथ समानाधिकरण का प्रयोग किया गया है। अनुभूयेते और अनुभूयन्ते में वचन का प्रयोग दिखलाया गया है। त्वम् अनुभूयसे, अहम् अनुभूये इन प्रयोगों में कर्म को

चिण्वदिट् भाविता। आभीयत्वेना सिद्धत्वा ण्लिलोपः भावयिता। भावयिषीष्ट। अभावि, अभाविषाताम्। अभावयिषाताम्। बुभूष्यते। बुभूषाञ्चक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते। बोभूय्यते। बोभूयते। अकृत्सार्वधातुकयो रिति दीर्घः। स्तूयते विष्णुः। स्ताविता स्तोता। स्ताविष्यते। स्तोष्यते। अस्तावि, अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम्।

ऋ गतौ। गुणोर्तीति गुणः—अर्यते। स्मृ स्मरणे-स्मर्यते। सस्मरे। उपदेश ग्रहणाच्चिण्वदिट्-आरिता अर्ता। स्मारिता स्मर्ता। अनिदिता मिति न लोपः स्रस्यते—इदितस्तु नन्द्यते। संप्रसारणम्-इज्यते।

मध्यम व उत्तम पुरुष में रखकर क्रिया के साथ उसी पुरुष का प्रयोग किया गया है। लुङ् लकार में अनु+अभावि=अन्वभावि। चिण्वद्भावपक्ष में अन्वभाविषाताम्, अभाव पक्ष में अन्वभविषाताम् आदि रूप होंगे।

णिलोप इति—ण्यन्त भू धातु से कर्मवाच्य बनाने में यक् परे णेरनिटि से णि लोप होकर 'भाव्यते' रूप बनता है—'भावि-य-त' इस स्थिति में णि लोप होता है। लिट् में भावि से आम् और कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग होने पर भावयाञ्चक्रे, भावयाम्बभूवे और भावयामासे रूप बनेंगे।

ण्यन्त भू-धातु से (भावि) लुट् में 'भवि-ता' इस स्थिति में चिण्वदिट् होने पर, इट् के आभीय होने से 'असिद्ध वदित्राभात्' से असिद्ध होने के कारण 'णेरनिटि' से णि का लोप होकर भाविता, अभाव पक्ष में वलादि लक्षण इट् होकर, णिलोपाभाव, गुणावादेश, भावयिता। इसी प्रकार भविष्यते भावयिष्यते। भाव्यताम्, अभाव्यत। भाव्येत। भाविषीष्ट भावयिषीष्ट। अभावि, अभाविषाताम्, अभावयिषताम्। अभाविषत अभावयिषत। लृङ् में अभाविष्यत अभावयिष्यत। सन्नन्त 'बुभूष्' धातु से भाववाच्य लट् में बुभूष्यते, बुभूषाञ्चक्रे, बुभूषिता, बुभूषिष्यते, बुभूष्यताम्, बुभूषिषीष्ट। अबुभूषिष्ट, अबुभूषिष्यत।

यङन्त (बोभूय) धातु से भाववाच्य लट् में बोभूय्यते (यङ् के अकार का अतो लोपः से लोप) बोभूयाञ्चक्रे, बोभूयिता। अबोभूयिष्ट। यङ्लुगन्त–भू-धातु से बोभूयते, बोभयाञ्चक्रे, अबोभूविष्ट। 'स्तु' धातु से कर्म वाच्य लट् में अकृदिति दीर्घ होकर 'स्तूयते' कर्मवाच्य में कर्म के उक्त होने से विष्णुः में प्रथमा 'स्तूयते विष्णुः'।

लिट् तुष्टुवे, लुट् में 'स्यसिच्' सूत्र से चिण्वद्भाव और इट्, वृद्धि, आवादेश स्ताविता, चिण्वदिडभाव पक्ष में स्तोता, स्ताविष्यते और स्तोष्यते, स्तूयताम्, स्ताविषीष्ट, स्तोषीष्ट, अस्तावि अस्ताविषताम् अस्तोषाताम्, अस्ताविष्यत, अस्तोष्यत।

ऋ गतौ (जाना) धातु से कर्मवाच्य लट् में 'गुणोर्ति' सूत्र से गुण, अर्यते, स्मृ (स्मरण करना) धातु से स्मर्यते, लिट् में आरे, सस्मरे। ऋ धातु उपदेश अवस्था में अच् रूप है, व्यपदेशिवद्भाव से तदन्त 'अर्' रूप में गुणोत्तर यह भले ही अजन्त न हो पर उपदेश में वह अजन्त माना गया है। अतः 'स्यसिच' सूत्र से चिण्वदिट् होकर

तनोते र्यकि ।६।४।४४।।

आकारान्ता देशो वा स्यात् । तायते तन्यते ।

तपोऽनुतापे च ।३।१।६५।।

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात् कर्मकर्तयनुतापे च । अन्वतप्त पापेन ।

घुमास्थेतीत्वम्—दीयते, धीयते, ददे ।

आतो युक् चिण् कृतोः ।७।३।३३।।

आदान्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । दायिता दाता । दायिषीष्ट, दासीष्ट । अदायि, अदायिषाताम् ।

'आरिता' अभाव पक्ष में 'अर्ता' इसी प्रकार स्मारिता और स्मर्ता, स्मारिष्यते, स्मरिष्यते, स्मरिषीष्ट स्मृषीष्ट, अस्मारि अस्मारिषाताम्, अस्मृषाताम्, आदि ।

स्रंस् धातु से भाव वाच्य लट् में 'अनिदिताम्' सूत्र से न लोप होकर स्रस्यते, सस्रंसे, स्रंसिता ।

टुनदि (इदित् होने से इसमें नुम् होता है) धातु से कर्मवाच्य लट् में (अनिदितां) सूत्र, से इदित् होने के कारण यहाँ न लोप नहीं होता, नन्द्यते रूप बनता है ।

यज् धातु से कर्मवाच्य लट् में यक् के कित् होने से 'वचिस्वपि' सूत्र से संप्रसारण होकर इज्यते, अयाजि, अयक्षाताम्, (स्रंसादि धातुओं को अजन्त न होने के कारण चिण्वदिट् नहीं होता ।)

तनोतेरिति—तनु धातु को आकार अन्तादेश हो यक् परे विकल्प से ।

तप इति—तप से परे च्लि को चिण् न हो कर्मकर्तृ और अनुताप-पश्चात्ताप अर्थ में ।

तनु धातु से कर्मवाच्य लट् में यक् होने पर 'तनोतेरिति' सूत्र से आकारान्तादेश होकर तायते, अभाव पक्ष में तन्यते, अनु पूर्वक तप धातु से कर्म या भाववाच्य लुङ् में 'चिण्भावकर्मणोः' सूत्र से प्राप्त च्लि के चिण् का प्रकृत सूत्र से निषेध हो जाने पर सिच्, और 'झलो झलि' से उसका लोप होकर "अन्वतप्त पापेन" (पाप से दुःखी हुआ) यह कर्मवाच्य में रूप बनेगा । जब पाप का अर्थ मत्वर्थीय प्रत्यय के द्वारा पापी होगा तब यहाँ भाव से लकार समझना चाहिए । दा और धा धातु से कर्मवाच्य लट् में यक् होने पर 'घुमास्थेति सूत्र से आकार को ईकार होकर 'दीयते, धीयते' रूप बनेंगे । लिट् लकार में केवल आत्मनेपद का रूप 'ददे' होगा ।

आत इति—आकारान्त धातुओं को युक् का आगम हो, चिण्, और णित्, ञित्, कित् परे रहते ।

लुट् में प्रकृत सूत्र से युगागम से पूर्व 'स्यसिच्' सूत्र से चिण्वदिट् हो जायेगा

भज्यते ।

भञ्जेश्च चिणि ।६।४।३३।।

न लोपो वा स्यात् । अभाजि, अभञ्जि । लभ्यते ।

विभाषा चिण्णमुलोः ।७।१।६९।।

लभे र्नुमागमो वा स्यात् । अलम्भि, अलाभि ।

इति भावकर्म प्रक्रिया

तब युगागम होकर दायिता, अभाव पक्ष में दाता, दायिषीष्ट दासीष्ट, अदायि (च्लि को चिण् और युक् त शब्द का लोप) अदायिषापाम्—स्थाध्वोरिच्च—अदिषाताम् ।

भञ्ज् (तोड़ना) धातु से कर्मवाच्य लट् में यक् होने पर 'अनादिताम्' सूत्र से न लोप होकर भज्यते ।

भञ्जेश्चेति—भञ्ज धातु के नकार का लोप हो, विकल्प से चिण् परे, भञ्ज् धातु से लुङ् में 'चिण् भावकर्मणोः' सूत्र से च्लि को चिण् होने पर प्रकृत सूत्र से नकार लोप, उपधा वृद्धि, 'त' शब्द का लोप होकर अभाजि, न लोपाभाव पक्ष में अभञ्जि । (न लोपाभाव में वृद्धि भी न होगी ।)

लभ् धातु से कर्मवाच्य में यक् होकर लट् में लभ्यते ।

विभाषेति– लभ धातु को नुम् का आगम हो विकल्प से चिण् और णमुल् परे रहते ।

लभ धातु से लुङ् लकार में च्लि को चिण्, तकार का "चिणो लुक्" से लोप प्रकृत सूत्र में धातु को नुम् का आगम, अनुस्वार परसवर्ण 'अलम्भि', नुम् के अभाव पक्ष में उपधा वृद्धि होकर 'अलाभि' रूप बनेगा ।

इति भावकर्म प्रक्रिया

अथ कर्मकर्तृ प्रक्रिया

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च लकारः ।

कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ।३।१।८७।।

कर्मस्थया क्रियया तुल्य क्रियः कर्त्ता कर्मवत् स्यात् । कार्यातिदेशोऽयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्वदिटः स्युः । पच्यते फलम् । भिद्यते काष्ठम् । अपाचि । अभेदि । भावे तु भिद्यते काष्ठेन ।

इति कर्मकर्तृ प्रक्रिया

यदेति—जब कर्म को ही कर्त्ता कहना इष्ट हो, अर्थात् जहाँ प्रसिद्ध कर्त्ता के व्यापार की अविवक्षा कर कर्म को ही, अपने व्यापार में स्वतन्त्र होने से, कर्त्ता बना दिया जाय, तब सकर्मक धातुओं के भी अकर्मक हो जाने से लकार कर्त्ता या भाव में ही होंगे अर्थात् कर्म में लकार न होंगे।

भाव में धातुरूप भाववाच्य के समान बनते हैं; जैसे 'पच्यते ओदनेन'। कर्त्ता में लकार आने पर कुछ धातुओं के रूप तो कर्मवाच्य जैसे बनते हैं और कुछ के साधारण कर्तृवाच्य के समान, जैसा कि आगे निर्देश किया गया है।

कर्मवदिति—कर्मस्था क्रिया से तुल्य क्रिया वाला कर्त्ता कर्मवत् हो।

यह अतिदेश कार्यातिदेश है, इस कारण कर्मवाच्य के समान यक्, आत्मनेपद, चिण्वद्भाव, इट् आदि यहाँ भी होंगे।

जहाँ क्रिया द्वारा होने वाला व्यापार कर्म में हो वहाँ क्रिया कर्मस्थ होगी जैसे पाक क्रिया (गल जाना) ओदन रूप कर्म में होती है। 'पच्यते फलम्' यहाँ 'कालः फलं पचति' वाक्य में पहिले 'फल कर्म था, अतिशय बताने के लिये 'काल क्या पका रहा है, फल स्वयं पक रहा है—कालः किं पचति, फलं स्वयमेव पच्यते—ऐसी

विवक्षा में कर्म रूप फल को कर्त्ता बना देने पर भाव में लकार आने पर तो 'पच्यते फलेन' प्रयोग होगा। पर कर्त्ता में लकार आने पर 'कर्मवत्' सूत्र से कर्मवत् होने से यक् और आत्मनेपद होकर 'पच्यते फलम्' यह प्रयोग होगा। इसी प्रकार "देवदत्तः काष्ठं भिनक्ति' देवदत्तः किं भिनति, काष्ठं स्वयमेव भिद्यते" इस विवक्षा में कर्म, काष्ठ को कर्त्ता बनाकर कर्त्ता में लकार, कर्मवत् सूत्र से 'कर्मवद्भाव' यक् आत्मनेपद होकर 'भिद्यते काष्ठम्' होगा। पच् और भिद् धातु से कर्मकर्तृवाच्य में लुङ् में 'कर्मवत्' सूत्र से कर्मवत् होने पर च्लि को चिण् 'त' का लोप, उपधा वृद्धि, और गुण होकर अपाचि और अभेदि रूप बनते हैं। भाव में लकार होने पर 'भिद्यते काष्ठेन' प्रयोग होगा।

इति कर्मकर्तृ प्रक्रिया

अथ लकारार्थ प्रक्रिया

अभिज्ञावचने लृट् ।३।२।११२।।

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातो लृट् । लङोऽपवादः । बस निवासे । स्मरसि कृष्ण ? गोकुले वत्स्यामः । एवं बुध्यसे 'चेतयसे' इत्यादिप्रयोगेऽपि ।

न यदि ।३।२।११३।।

यद्योगे उक्तं न । अभिजानासि कृष्ण ? यद्वने अभुञ्जमहि ।

लट् स्मे ।३।२।११३।।

लिटोऽपवादः । यजति स्म युधिष्ठिरः ।

अभिज्ञेति—स्मरणार्थक धातु उपपद रहते अनद्यतनभूत अर्थ में धातु से लृट् लकार हो । (अनद्यतन भूतार्थवाची लङ् का यह सूत्र अपवाद है ।)

"स्मरसि कृष्ण ? गोकुले वत्स्यामः" कृष्ण ! तुम्हें याद है हम लोग गोकुल में रहते थे । यहाँ स्मरणार्थक—स्मरसि' उपपद रहते 'वस' धातु से प्रकृत सूत्र से अनद्यतन भूत अर्थ में लृट् लकार हुआ है । सामान्यतः लृट् का प्रयोग सामान्य भविष्यत् में होता है पर यहाँ इस सूत्र से लङ् के स्थान में उसका विधान किया गया है । इसी प्रकार अन्य स्मरणार्थक जैसे बुध्यसे, चेतयसे आदि के भी उप पद रहते प्रकृत सूत्र से लङ् के स्थान में लृट् का प्रयोग होगा ।

न यदीति यत् के योग में स्मरणार्थक धातु उपपद रहते धातु के लङ् के स्थान में लृट् न हो ।

"अभिजानासि कृष्ण ? यद् बने अभुञ्जमहि" यहाँ यत् का प्रयोग होने से लृट् न हुआ अपि तु यथाप्राप्त लङ्लकार ही हुआ है ।

लट् स्मे इति—स्म के योग में परोक्ष अनद्यतन भूत में लट् लकार हो । इस प्रकार यह परोक्षानद्यतन भूतार्थ वाची लिट् का अपवाद है ।

वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा ।३।३।१३१॥

वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः। कदागतोऽसि ? अयमागच्छामि, अयमागमं वा। कदा गमिष्यसि ? एष गच्छामि, गमिष्यामि वा।

हेतुहेतुमतो लिङ् ।३।३।१५६॥

वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति। भविष्यत्येवेष्यते। नेह—हन्तीति पलायते। विधिनिमन्त्रणेति लिङ्। विधिः प्रेरणं, भृत्यादे र्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। यजेत। निमन्त्रणं नियोगकरण मावश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। इह भुञ्जीत। आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा, इहासीत। अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः, पुत्र मध्यापयेद् भवान्। संप्रश्नः संप्रधारणम्। किं वेद मधीनीय उत तर्कम्। प्रार्थनं याच्ञा भो भोजनं लभेय। एवं लोट्।

इति लकारार्थ प्रक्रिया

'यजति स्म युधिष्ठिरः—यहाँ स्म के योग में लट् का प्रयोग हुआ है।

वर्तमानेति—वर्तमान में जो प्रत्यय कहे गये हैं वे वर्तमान के समीपवर्ती भूत और भविष्यत् काल में विकल्प से हों।

कदाऽऽगतोऽसि—यहाँ प्रश्न भूतकाल विषयक है—कब आये हो—इसके उत्तर में वर्तमान में समीपता दिखाने के लिए लट् का प्रयोग किया है "अयमागच्छामि" यह आ रहा हूँ अभाव पक्ष में यथा प्राप्त लङ् लकार भी होगा—अयमागमम्।

कदा गमिष्यसि—(कब जाओगे) भविष्यत् काल विषयक इस प्रश्न के उत्तर में सामीप्य दिखाने के लिए लट् का प्रयोग किया गया है—

एष गच्छामि (यह जाता हूँ) अथवा 'एष गमिष्यामि' भी होगा।

हेतुहेतुमतोरिति—हेतु और हेतुमान् क्रियाओं से लिङ् हो विकल्प से।

'कृष्णं नमेच्चेत् सुखं यायात्' यहाँ गमन क्रिया सुख पाना क्रिया का हेतु है। प्रकृत सूत्र से दोनों—हेतु और हेतुमान् क्रियाओं से लिङ् लकार हुआ है। अभाव पक्ष में 'कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति' यहाँ लृट् का भी प्रयोग होगा।

भविष्यतीति—प्रकृत सूत्र द्वारा भविष्यत् काल में ही लिङ् का विधान किया गया है, अतः अन्य काल में लिङ् न होगा। हन्तीति पलायते' (वह मारता है, इस कारण भागता है) यद्यपि यहाँ हेतु हेतुमद्भाव है, तथापि भविष्यत् काल में न होने के कारण यहाँ लिङ् नहीं हुआ।

'विधि निमन्त्रणेति' विधि निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न और प्रार्थना में लिङ् होता है।

वस्तुतः विधि आदि का अर्थ प्रेरणा ही है पर सूक्ष्म अन्तर भी है—

विधि—वह प्रेरणा है जिसे 'आज्ञा देना' कहा जाता है, जैसे भृत्यादि निकृष्ट जनों को आज्ञा दी जाती है "भृत्यादे निकृष्टस्य प्रवर्तनम्"। यथा—ओदनं पच, पचेत् वा। वस्तुतः यह प्रेरणा आज्ञा ही है, इसका उल्लंघन दण्डनीय होता है, वेदादि भी इसी प्रकार 'अहरहः संध्या मुपासीत' इत्यादि वचनों से आज्ञा देते हैं अतएव उन्हें विधि वाक्य कहा जाता है।

निमन्त्रण—वह प्रेरणा है जो अपने समान बन्धु बान्धव दौहित्रादि को दी जाती है। यह विधिवत्, अवश्य करणीय नहीं होती और न इसका उल्लंघन ही दण्डनीय होता है, यथा—निमन्त्रणं नियोगकरणम्, आवश्यके श्रद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। इस प्रेरणा को 'आग्रह' कह सकते हैं।

आमन्त्रण—'आमन्त्रणं कामाचारानुज्ञा' अर्थात् आमन्त्रण की प्रेरणा में काम-चार-स्वेच्छा से काम करना—रहता है, आमन्त्रित व्यक्ति का प्रेरणानुसार काम करना या न करना उसकी इच्छा के अधीन है। यथा—मित्रवर ! मद्विवाह काले प्रीतिभोजे भवान् आगच्छतु आगच्छेत् वा। इसे अनुरोध कह सकते हैं।

अधीष्ट—इस प्रेरणा में सत्कार की भावना रहती है, अपने से पूज्य जनों के लिए इसका प्रयोग होता है, यथा—भवान् मम पुत्र मध्यापयतु अध्यापयेद् वा।

संप्रश्न—इस प्रेरणा में परामर्श का भाव रहता है, यथा किं भो 'वेदमधीयीय उत तर्कम्' 'मैं वेद पढ़ूँ या न्यायशास्त्र'।

प्रार्थना—यह प्रेरणा बड़ों से की जाती है, यथा "पुस्तकं लभै लभेय वा" मुझे पुस्तक मिल जाय।

इन्हीं अर्थों में लोट् लकार का भी प्रयोग होता है, जैसे कि उक्त उदाहरणों में दिखाया गया है।

इति लकारार्थ प्रक्रिया

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

स्त्रियाम् ।४।१।३।।

अधिकारोऽयं 'समर्थानाम्'—इति यावत् ।

अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४।।

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् । स्यात् । अजा । एड़का । अश्वा चटका । मूषिका । वाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । इत्यादि अजादिगणः । सर्वा ।

स्त्रियामिति—यह अधिकार सूत्र है, 'समर्थानां प्रथमाद्वा' इस सूत्र तक इसका अधिकार है, अर्थात् इसके पूर्व के सूत्रों में 'स्त्रियाम्' यह पद उपस्थित होता है । फलतः उन सूत्रों से स्त्रीत्व बोधक प्रत्यय होने हैं ।

अजाद्येति —अज आदि और अकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व-विवक्षा में टाप् प्रत्यय हो ।

टाप् प्रत्यय में टकार और पकार इत्संज्ञक हैं, अतः केवल 'आ' शेष रहना है ।

अजा—उक्त अजादिगण का प्रथम शब्द 'अज' है इससे स्त्रीत्व बोधनार्थ प्रकृत सूत्र से टाप् (आ) प्रत्यय होता है । अजादि प्रत्यय परे होने से पूर्व की 'भ' संज्ञा, फलतः 'यस्येति च' से अकारलोप होकर 'अजा' यह स्त्री प्रत्ययान्त शब्द बनता है । टाप् प्रत्ययान्त सभी शब्दों के आबन्त होने के कारण इनसे 'सु' आदि की उत्पत्ति होती है और 'सु' का लोप होकर अजा आदि शब्द बनते हैं ।

सु आदि की उत्पत्ति के लिए दूसरा पक्ष यह भी है कि जहाँ प्रातिपदिक का सामान्यतः या विशेष रूप से ग्रहण किया जाता है वहाँ लिग विशिष्ट का भी उसी

उगितश्च ।४।१।६।।

उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । भवन्ती । पचन्ती । दीव्यन्ती ।

से ग्रहण हो जाता है । "प्रातिपदिक ग्रहणे लिंग विशिष्टस्यापि ग्रहणम् । इस परिभाषा बल से भी सु आदि की उत्पत्ति हो सकती है ।*

इसी प्रकार अजादिगण पठित शब्दों से स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय करके एडक (भेंड़) से **एडका,** अश्व से **अश्वा** (घोड़ी) चटक से **चटका** (चिड़िया) मूषक से **मूषिका,** (चुहिया) बाल से **बाला,** वत्स से **वत्सा,** होड से होडा, मन्द से मन्दा, और विलात से **विलाता** शब्द बनते हैं अन्तिम पाँच शब्द कुमार अर्थपरक है । अजादिगण पठित शब्दों के अतिरिक्त अकारान्त का उदाहरण है—सर्व से **सर्वा** ।

उगितश्चेति—उगित् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो ।

शतृ प्रत्ययान्त एवं ईयसुन् प्रत्ययान्त शब्द उगिदन्त प्रातिपदिक होते हैं । शतृ प्रत्यय का ऋकार एवं ईयसुन् का 'उ' इत्संज्ञक हैं, अतः ये प्रत्यय जिनके अन्त में होते हैं वे शब्द उगिदन्त कहलाते हैं, ऐसे शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है । ङीप् का ङ् और प् इत्संज्ञक हैं, केवल 'ई' शेष रहता है ।

भवन्ती—(होती हुई) शतृ प्रत्ययान्त उगिदन्त भवत् शब्द से प्रकृत सूत्र से ङीप् (ई) प्रत्यय होने पर 'शपश्यनो नित्यम्' सूत्र से नुम् होकर भवन्ती शब्द बनता है । परन्तु जब 'भा' धातु से डवतु प्रत्यय करके उगिदन्त भवत् (आप) शब्द बनता है तब उगिदन्त होने के कारण स्त्रीत्व विवक्षा में प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर भवती (आप) स्त्रीलिंग शब्द बनता है यहाँ नुम् नहीं होता ।

आबन्त और ङीबन्त शब्दों से प्रथमा एक वचन में जो सु प्रत्यय आता है उसका 'हल् ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्य पृक्तं हल्' सूत्र से लोप हो जाता है ।

शतृ प्रत्ययान्त पचत् और दीव्यत् शब्द से प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय, तदनन्तर नुम् करने पर पचन्ती (पकाती हुई) दीव्यन्ती (खेलती हुई) शब्द बनते हैं । ईयसुन् प्रत्ययान्त श्रेयस्, पटीयस् नेदीयस् शब्दों से प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय करने पर क्रमशः श्रेयसी (कल्याणकारिणी), पटीयसी (अति चतुरा) और नेदीयसी (निकटस्थिता) रूप बनते हैं ।

---

* पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः अर्थात् स्वार्थ द्रव्य, लिंग, संख्या और कारक ये पाँच प्रातिपदिक के अर्थ हैं ऐसा मानने वालों के मत से तो लिंग के प्रातिपादिकार्थ होने से प्रत्यय केवल उसके द्योतक मात्र होंगे और लिंग को प्रातिपदिकार्थ न मानने वालों के मत में प्रत्यय वाचक रहते हैं ।

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ।४।१।१५।।

अनुप सर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात् । कुरुचरी । नदट्-नदी । देवट्-देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । उरुद्वयसी । ऊरुदघ्नी । उरुमात्री । पञ्चतयी ।

टिड्ढेति—अनुपसर्जन (प्रधान भूत-जो गौण न हो) अकारान्त टिडन्त, तथा ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ् कञ्, और क्वरप् प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है।

देवट्, नदट् शब्द तथा कृदन्त के ट् टक् प्रत्ययान्त शब्द टित् हैं। ढ आदि ११ प्रत्यय तद्धित प्रत्यय हैं। इन सभी से ङीप् प्रत्यय होता है।

कुरुचरी—कुरुषु चरति स्त्री कुरुचरी-कुरु देश में चलने वाली स्त्री। कुरु उपपद चर् धातु से 'चरेष्टः' सूत्र से ट प्रत्यय करने पर कुरुचर शब्द बनता है। ट प्रत्यय का 'अ' शेष रहता है, अतः टिदन्त कुरुचर शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में प्रकृत सूत्र से ङीप् (ई) प्रत्यय होकर भ संज्ञा और 'यस्येति च' से अकार लोप होकर प्रथमैक वचन में कुरुचरी शब्द बनता है।

नदी—टित् प्रातिपदिक नदट् से ङीप् प्रत्यय, 'यस्येति च' अकार लोप होकर नदी शब्द बनता है।

देवी—देवट् से पूर्ववत् देवी शब्द सिद्ध होता है।

सौपर्णेयी—(सुपर्णी की कन्या) यहाँ सुपर्णी शब्द से अपत्यार्थ में 'स्त्रीभ्यो ढक्' सूत्र से ढक् प्रत्यय और उसको एय आदेश, 'यस्येति च' से ईकार लोप, आदि वृद्धि होकर सौपर्णेय शब्द बनता है। इस ढ प्रत्ययान्त शब्द से प्रकृत सूत्र से ङीप् और अकारलोप करने पर 'सौपर्णेयी' शब्द बनता है।

ऐन्द्री—'इन्द्रः देवता अस्याः अथवा इन्द्रस्य इयम्' इस अर्थ में इन्द्र शब्द से 'साऽस्य देवता अथवा तस्येदम्' सूत्र से अण् प्रत्यय, अकारलोप, आदिवृद्धि होकर 'ऐन्द्र' यह अण् प्रत्ययान्त शब्द बनता है। इससे ङीप् प्रत्यय, अकारलोप होने पर 'ऐन्द्री' शब्द बनता है।

औत्सी—उत्स-ऋषि विशेष अथवा झरना। उत्स सम्बन्धिनी-इस अर्थ में 'उत्सादिभ्योऽञ्' सूत्र से उत्स शब्द से अञ् प्रत्यय, अकारलोप, आदिवृद्धि होकर निष्पन्न अञ् प्रत्ययान्त औत्स शब्द से प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय, अकारलोप होकर 'औत्सी' बनता है।

उरुद्वयसी आदि—तीन शब्दों में 'उरु प्रमाणमस्याः इस अर्थ में उरु शब्द से 'प्रमाणे द्वयसच् दघ्नच् मात्रचः' सूत्र से क्रमशः द्वयसच् दघ्नच् मात्रच् प्रत्यय होने पर उरुद्वयस, उरुदघ्न और उरुमात्र शब्द निष्पन्न होते हैं। इनसे प्रकृत सूत्र

आक्षिकी । प्रास्थिकी । लावणिकी । याद्दशी । इत्वरी ।

(वा) नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् । स्त्रैणी । पौंस्नी । शाक्तीकी । आढ्यङ्करणी । तरुणी । तलुनी ।

से ङीप् प्रत्यय और अकार लोप होकर उरुद्वयसी, उरुदघ्नी और उरुमात्री शब्द बनते हैं जिनका अर्थ है— उरुप्रमाण जल वाली तलैया या छोटा तालाब ।

पञ्चतयी—पाँच अवयवों वाली-पञ्च अवयवा अस्य, इस अर्थ में पञ्चन् शब्द से 'संख्याया अवयवे तयप्' सूत्र से तयप् प्रत्यय एवं नकार का लोप होकर पञ्चतय प्रातिपदिक बनता है । इससे प्रकृत सूत्र से ङीप् और अकारलोप होकर पञ्चतयी शब्द निष्पन्न होता है ।

आक्षिकी—पाँसों से खेलने वाली-अक्षै र्दीव्यति, इस अर्थ में अक्ष शब्द से 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' सूत्र से ठक् प्रत्यय, ठकार को इक आदेश, अकारलोप, आदिवृद्धि होकर निष्पन्न आक्षिक शब्द से स्त्रीलिङ्ग में प्रकृत सूत्र से ङीप् और अकारलोप होने पर 'आक्षिकी' शब्द बनता है ।

प्रास्थिकी—एक प्रस्थ से खरीदी हुई प्रस्थेन क्रीता, इस अर्थ में प्रस्थ शब्द से 'तेन क्रीतम्' सूत्र से ठञ् प्रत्यय, ठकार को इक आदेश, अकारलोप, वृद्धि होकर निष्पन्न प्रास्थिक शब्द से प्रकृत सूत्र से ङीप्, अकारलोप होकर 'प्रास्थिकी' बनता है ।

लावणिकी—नमक बेचने वाली-लवणं पण्यम् अस्याः, इस अर्थ में लवण शब्द से 'लवणाट् ठञ्, सूत्र से ठञ् प्रत्यय, इक आदेश, अकारलोप, वृद्धि आदि होकर निष्पन्न हुए लावणिक शब्द से ङीप् एवं अकारलोप होकर 'लावणिकी' शब्द बनता है।

यादृशी—(जैसी) यत् शब्द उपपद रहते दृश् धातु से 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च' सूत्र से कञ् प्रत्यय होने पर 'आसर्वनाम्नः' सूत्र से यत् शब्द को अकारान्तादेश, सवर्ण दीर्घ होकर निष्पन्न याद्दश शब्द से ङीप् प्रत्यय और अकारलोप होकर 'याद्दशी' शब्द बनता है ।

इत्वरी—(व्यभिचारिणी) यहाँ इण् गतौ धातु से 'इण् नशि जिसर्तिभ्यः क्वरप्' सूत्र से क्वरप् प्रत्यय, तथा 'ह्रस्वस्य पिति कृति-तुक्' सूत्र से तुगागम होकर निष्पन्न हुए इत्वर शब्द से ङीप् और अन्त्याकारलोप होकर 'इत्वरी' बनता है ।

नञस्नञिति—नञ्, स्नञ् ईकक् ख्युन् प्रत्ययान्त शब्दों से तथा तरुण और तलुन शब्दों से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है ।

स्त्रैणी—स्त्री सम्बन्धिनी । यहाँ स्त्री शब्द से 'स्त्री पुंसाभ्यां नञ् स्नञौ भवनात्' सूत्र से नञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि, प्रत्यय के नकार को णकारादेश होकर निष्पन्न स्त्रैण शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीप् प्रत्यय, अन्त्याकारलोप होकर 'स्त्रैणी'

यञश्च ।४।१।१६।।

यञन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । अकार लोपे कृते—

हलस्तद्धितस्य ।६।४।१५०।।

हलः परस्य तद्धित यकारस्योपधा भूतस्य लोप ईकारे परे । गार्गी ।

एवं पुंस् शब्द से उक्त सूत्र से स्नञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि होकर निष्पन्न पौंस्न शब्द से ङीप् प्रत्यय होकर '**पौंस्नी**' शब्द बनते हैं ।

शाक्तीकी—शक्ति नामक आयुध विशेष जिस स्त्री का हथियार हो । शक्तिः प्रहरणम् अस्याः—इस अर्थ में शक्ति शब्द से 'शक्तियष्टयोरीकक्, सूत्र से ईकक् प्रत्यय आदिवृद्धि, अन्त्यइकारलोप होकर निष्पन्न हुए शाक्तीक शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीप्, होने पर अन्त्याकारलोप होकर 'शाक्तीकी' शब्द बनता है ।

आढ्यङ्करणी—निर्धन को धनवान् बनाने वाली– अनाढ्यः आढ्यः क्रियते अनया इस अर्थ में आढ्य उपपद कृ धातु से 'आढ्य सुभग—' सूत्र से ख्युन् प्रत्यय होकर, यु को अन आदेश, खिदन्ते परे मुमागम, गुण, णत्व आदि होकर निष्पन्न कृदन्त ख्युन् प्रत्ययान्त आढ्यङ्करण शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीप् होने पर अकारलोप होकर 'आढ्यङ्करणी' रूप बनता है ।

तरुणी-तलुनी—(युवती) तरुण और तलुन शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीप् प्रत्यय और अकारलोप[1] होकर तरुणी और तलुनी बनते हैं ।

यञश्चेति—यञ् प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो । ङीप् प्रत्यय होने पर यञ् प्रत्ययान्त शब्द के अन्त्य अकार के 'यस्येति च' सूत्र से लोप हो जाने पर—

हल इति—हल् से परे तद्धित के उपधाभूत यकार का लोप हो ईकार परे रहते ।

गार्गी—(गर्ग गोत्र की स्त्री) गर्गस्य गोत्रापत्यम्-इस अर्थ में गर्ग शब्द से 'गर्गादिभ्यो यञ्' सूत्र से यञ् प्रयत्य होता है । तदनन्तर यकारादि प्रत्यय परे होने पर यस्येति च सूत्र से गकार के अन्त्य अकार का लोप तथा वृद्धि होकर यञन्त गार्ग्य शब्द बनता है, इससे स्त्रीत्व विवक्षा में 'यञश्च' सूत्र से ङीप् प्रत्यय और 'यस्येति च'

---

१. टाप्, ङीप् ङीष्, ङीन् आदि स्त्री प्रत्यय अजादि है, अतः इनके आगे रहने पर पूर्व की भ संज्ञा होकर सर्वत्र अकार और इकार का यस्येति च, से लोप हो जाता है ।

प्राचां ष्फ तद्धितः ।४।१।१७।।

यञन्तात् ष्फो वा स्यात्, स च तद्धितः ।

षिद् गौरादिभ्यश्च ।४।१।४१।।

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीष् स्यात् । गार्ग्यायणी । नर्तकी । गौरी ।

(वा) आमनडुहः स्त्रियां वा । अनड्वाही । अनडुही । आकृतिगणोऽयम् ।

से अकारलोप होने पर 'हलस्तद्धितस्य' सूत्र से यकार का लोप होता है । इस प्रकार गार्गी शब्द बनता है ।

प्राचामिति—यञ् प्रत्ययान्त के ष्फ[1] प्रत्यय हो स्त्रीत्व विवक्षा में, और वह तद्धित संज्ञक हो ।

षिदिति—षित् और गौर आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय हो ।

गार्ग्यायणी—गर्ग की अपत्य स्त्री । गर्गस्या पत्यं स्त्री-इस अर्थ में गर्ग शब्द से यञ् प्रत्यय तथा वृद्धि और अकार लोप होकर यञन्त गार्ग्य शब्द बनता है, इससे 'प्राचामिति' सूत्र ष्फ प्रत्यय तथा फकार को आयन आदेश, यस्येति च से यकारोत्तर अकार का लोप और णत्व होकर निष्पन्न गार्ग्यायण शब्द से षित् होने के कारण, स्त्रीत्व विवक्षा में प्रकृत सूत्र से ङीष्[2] प्रत्यय होता है और 'यस्येति च' से अकार लोप होने पर गार्ग्यायणी रूप बनता है ।

नर्तकी—(नाचने वाली) नृत् धातु से 'शिल्पिनि ष्वुन्' सूत्र से ष्वुन् प्रत्यय होने पर वु का अक आदेश होकर 'नर्तक' शब्द बनता है, इससे षित् होने के कारण प्रकृत सूत्र से ङीष् होने पर अन्त्याकार लोप होकर 'नर्तकी' बनता है ।

गौरी—(गौर वर्ण स्त्री) गौरादि गण के प्रथम शब्द गौर से प्रकृत सूत्र से ङीष्, अकार लोप होकर गौरी निष्पन्न होता है ।

आमनडुह इति—स्त्रीलिङ्ग में अनडुह शब्द को आम् विकल्प से हो ।

अनड्वाही—(गौ) यहाँ गौरादि गण पठित अनडुह शब्द से स्त्रीलिङ्ग में उक्त सूत्र से ङीष् प्रत्यय, प्रकृत वार्तिक से आमागम, उकार को यण् होकर 'अनड्-वाही', आम् के न होने पर ङीष् होकर **अनडुही**, ये दो रूप होते हैं ।

गौरादि आकृति गण है, अतः इसी प्रकार के अन्य शब्दों को इसी के अन्तर्गत समझना चाहिए ।

---

१. ष्फ प्रत्यय के षकार की 'षः प्रत्ययस्य' से इत्संज्ञा हो जाती है और फकार को 'आयनेयी-इत्यादि सूत्र से आयन् आदेश होता है ।

२. ङीप्, ङीष् दोनों में ही (ई) शेष रहता है, पर ङीप् में अनुदात्त और ङीष् में उदात्त स्वर होता है ।

वयसि प्रथमे ।४।१।२०।।

प्रथमवयो वाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । कुमारी ।

द्विगोः ।४।१।२१।।

अदन्तात् द्विगो ङींप् स्यात् । त्रिलोकी । अजादित्वात्-त्रिफला त्र्यनीका-सेना ।

वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तो नः ।४।१।३६।।

वर्ण वाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपादिकात् वा ङीष् तकारस्य नकारादेशश्च । एनी एता । रोहिणी रोहिता ।

वयसीति—प्रथमावस्था वाचक अदन्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो।

कुमारी— (अविवाहिता) यहाँ प्रथमावस्था वाचक[1] कुमार शब्द से ङीष् प्रत्यय होने पर अकार लोप होकर 'कुमारी' बनता है।

द्विगोरिति— अदन्त द्विगु समासान्त शब्द से ङीष् प्रत्यय हो।

त्रिलोकी—तीन लोकों का समूह-त्रयाणां लोकानां समाहारः इस विग्रह में द्विगु समास तथा 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रिया मिष्टः' इस नियम से त्रिलोक इस अकारान्त द्विगु से प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय होने पर अन्त्याकार लोप होकर त्रिलोकी बनता है।

त्रिफला—तीन फलों—आंवला, हरड़ा बहेड़ा, का समुदाय-त्रयाणां फलानां समाहारः इस विग्रह में द्विगु समास होकर निष्पन्न त्रिफल शब्द से अकारान्त होने पर भी प्रकृत सूत्र से ङीष् न होगा, अपितु टाप् प्रत्यय होगा, क्योंकि इस शब्द का अजादिगण में पाठ है।

त्र्यनीका—त्रयाणामनीकानां समाहरः। यहाँ पर भी पूर्ववत् त्र्यनीक शब्द के अजादिगण पठित होने से ङीष् न होकर टाप् प्रत्यय ही होगा।

वर्णादिति—वर्ण वाचक जो अनुदात्तान्त शब्द, तदन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक से विकल्प से ङीष् प्रत्यय और तकार को नकार आदेश भी हो।

एनी-एता—(चितकवरी) यहाँ 'एत' शब्द वर्णवाचक भी है और अनुदात्तान्त

---

१. वस्तुतः प्रथमावस्था से यहाँ तो तात्पर्य केवल कुमारावस्था से ही है, परन्तु कौमार यौवन और वार्धक्य इन अवस्थाओं में से अन्तिम वार्धक्य अवस्था से ही ङीष् नहीं होता, यौवनावस्था वाचक शब्दों से तो ङीष् होता ही है। जैसा कि 'वयस्यचरमे' इस वार्तिक से सिद्ध होता है। इस वार्तिक से यौवनावस्था वाचक वधूट और चिरण्ट शब्दों से ङीष् प्रत्यय होकर वधूटी चिरण्टी शब्द बनते हैं। तात्पर्य यह कि अन्तिम अवस्था वाचक शब्दों से ही ङीष् का निषेध हैं, शेष दो से नहीं।

वोतो गुणवचनात् ।४।१।४४।।

उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात् । मृद्वी । मृदुः ।

बह्वादिभ्यश्च ।४।१।४५।।

एभ्यो वा ङीष् स्यात् । बह्वी । बहुः ।

(ग० सू०) कृदिकारादक्तिनः । रात्रिः, रात्री ।

(ग० सू०) सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके । शकटिः । शकटी ।

भी, क्योंकि 'वर्णानां तणतिनितान्तानाम्' इस फिट् सूट् से तकारान्त वर्णवाचक शब्द का आदि उदात्त होता है और अन्त्य अकार अनुदात्त होता है। यह शब्द तोपध भी है और किसी के प्रति गौण न होने से अनुपसर्जन भी। अतः इस शब्द से ङीष् प्रत्यय और तकार को नकार होकर 'एनी' विकल्प होने से इसके अभाव पक्ष में टाप् होकर 'एता' रूप बनता है।

रोहिणी रोहिता—(रक्त वर्ण वाली) यहाँ भी पूर्ववत् वर्णवाची अनुदात्तान्त रोहित शब्द से ङीप् और तकार को नकार होकर रोहिणी और अभाव पक्ष में टाप् होकर 'रोहिता' रूप बनते हैं।

वोत इति—उकारान्त गुणवाची शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो विकल्प से।

मृद्वी-मृदुः—(कोमल) गुणवाचक और उकारान्त मृदु शब्द से ङीष् प्रत्यय और उकार को यण् होकर मृद्वी, अभाव पक्ष में मृदुः रूप बनते हैं।

बह्वादिभ्यश्चेतिः—बह्वादि गण पठित शब्दों से ङीष प्रत्यय हो। विकल्प से।

बह्वी-बहुः—बहु शब्द से ङीष् प्रत्यय होने पर उकार को यण् होकर बह्वी तथा अभाव पक्ष में बहुः रूप बनते हैं।

कृदिकारादिति—कृत् प्रत्यय का जो इकार, तदन्त प्रातिपदिक से विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो' पर क्तिन् प्रत्ययान्त से न हो।

रात्री-रात्रिः—यहाँ रा धातु से उणादि सूत्र 'राणादिभ्यस्त्रिप्' से त्रिप् प्रत्यय होकर रात्रि शब्द बनता है। यहाँ इकारान्त कृत प्रत्ययान्त रात्रि शब्द ये ङीष् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' सूत्र से इकार लोप होकर रात्री और ङीषभावपक्ष में रात्रिः रूप बनते हैं।

सर्वत इति—कुछ आचार्य ऐसा मानते हैं कि क्तिन् प्रत्यय के अर्थ में विहित जो प्रत्यय, तदन्त से भिन्न, इकारान्त मात्र से ङीष् प्रत्यय विकल्प हो, अर्थात् कृत् अथवा अकृत इकारान्त से ङीष् प्रत्यय होता है विकल्प से। पर यह ङीष् प्रत्यय उन इकारान्त शब्दों से नहीं होगा जो क्तिन् प्रत्यय के अर्थ में विहित प्रत्ययों से युक्त होंगे।

पुंयोगादाख्यायाम् ।४।१।४८।।

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् । गोपस्य स्त्री गोपी ।

(वा) पालकान्तान्न । गोपालिका । अश्वपालिका ।

प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात् इदाप्यसुपः ।७।३।४४।।

प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि, स आप् सुपः परो न चेत् । सर्विका । कारिका । अतः किम्-नौका । प्रत्ययस्थात् किम्-शक्नोतीति शका । असुपः किम्-बहुपरिव्राजका नगरी ।

शकटी-शकटिः—(छोटी गाड़ी) यहाँ शकटि शब्द इकारान्त है अतः प्रकृत वार्तिक से ङीष् होने पर इकार का लोप होकर शकटी, तथा ङीषभाव पक्ष में शकटिः होगा ।

पुंयोगादिति—पुरुष के अर्थ में प्रसिद्ध शब्द, यदि पुरुष के सम्बन्ध से स्त्री के लिए (लक्षण आदि के बल से) प्रयुक्त हो तो ऐसे शब्द से ङीप् प्रत्यय हो । तात्पर्य यह कि जो शब्द पुल्लिग हो पर पति-पत्नी भाव रूप सम्बन्ध से यदि उसका प्रयोग स्त्री के लिए भी किया जाने लगा हो तो उससे ङीप् हो । लोक में प्रायः ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है, पण्डित की स्त्री, भले ही मूर्खा ही क्यों न हो पर पण्डिताइन कहीं जाती है ।

गोपी—(गोपस्य स्त्री) यहाँ गोप शब्द पुल्लिङ्ग है, पर पति-पत्नी भाव रूप सम्बन्ध के द्वारा इसका उसकी स्त्री के लिए भी प्रयोग हुआ है अतः प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय और अन्त्याकार लोप होकर गोपी शब्द बनता है । भले ही गोपी में गोपालनत्व न हो इसी प्रकार शूद्र की स्त्री शूद्री होगी चाहे वह स्वयं शूद्र न हो ।

पालकान्तान्नेति—पालकान्त शब्द से पुंयोग होने पर ङीष् नहीं होता ।

गोपालिका—(गोपालकस्य स्त्री-गोपालन करने वाली की स्त्री) यहाँ पुंयोग होने पर भी, पालकान्त होने के कारण, प्रकृत वार्तिक से ङीष् का निषेध होकर, अकारान्त होने के कारण टाप् प्रत्यय हुआ है ।

अश्वपालिका—(अश्वपालकस्य स्त्री) यहाँ पर भी पूर्ववत् ङीष् न होकर टाप् प्रत्यय हुआ है ।

प्रत्ययस्थादिति—प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश होता है, आप् परे रहते, यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो । पूर्वोक्त गोपालिका और अश्वपालिका में प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार को इकार इसी सूत्र से हुआ है, क्योंकि उसके आगे टाप्-(आप् प्रत्यय) है ।

सर्विका—सर्व शब्द से 'अव्यय सर्वनाम्ना मकच् प्राक्टेः' सूत्र से टि के पूर्व

(वा) सूर्याद् देवतायां चाप्वाच्या। सूर्यस्य स्त्री देवता-सूर्या। देवतायां किम्।

(वा) सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च य लोपः। सूरी कुन्ती। मानुषीयम्।

अकच् प्रत्यय होगा, सर्वक शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय, होता है, अतः आप आगे रहने पर अकार को इकार होकर सर्विका रूप बनता है।

कारिका—यहाँ भी कृ धातु से ण्वुल् प्रत्ययान्त कारक शब्द से टाप् होकर अकार को इस सूत्र से इकार होता है और इस प्रकार कारिका रूप बनता है।

अत इति—प्रकृत सूत्र द्वारा अकार को ही इकार होता है, अत एव **'नौका'** यहाँ पर आप् परे रहते, कारक से पूर्व 'औ' को इकार नहीं हुआ। यहाँ 'नौ' शब्द से स्वार्थिक क प्रत्यय है।

प्रत्ययस्थादिति---प्रत्ययस्थ ही ककार से पूर्व अकार को इकार होता है, अतः **'शका'** में ककार पूर्व अकार को इकार नहीं हुआ क्योंकि यहाँ ककार प्रत्यय का न होकर धातु का है। शक् धातु से 'पचाद्यच्' और टाप् होकर **'शका'** बनता है।

असुप इति— आप् को सुप से परे न होना चाहिए, अत एव **'बहुपरिव्राजका'** में इकार नहीं हुआ, क्योंकि परिपूर्वक व्रज् धातु से ण्वुल् करके परिव्राजक बनता है उसका बहु के साथ बहुव्रीहि समास हुआ है और समास होने पर सुप् का लोप हुआ है। अतः यहाँ अन्तर्वर्तिनी विभक्ति अर्थात् लुप्त सुप् से परे आप् के होने के कारण अकार को इकार नहीं होता।

सूर्यादिति—पुंयोग में और देवता रूप स्त्री के अर्थ में वर्तमान सूर्य शब्द से चाप् प्रत्यय होता है।

'पुंयोदाख्यायाम्' सूत्र का यह अपवाद है। अतः ङीष् का बाधक है। चाप् में भी 'आ' शेष रहता है।

सूर्या—(सूर्यस्य स्त्री देवता) यहाँ पुंयोग से स्त्री के अर्थ में वर्तमान सूर्य शब्द से प्रकृत वार्तिक से चाप् प्रत्यय होने पर अकार लोप होकर सूर्या बनता है।

चाप् प्रत्यय देवता अर्थ में ही होता है अतः यदि स्त्री मनुष्य जाति की होगी तो चाप् न होगा, वहाँ सामान्यतः पुंयोगादाख्यायाम् से ङीष् ही होगा।

सूरी—(सूर्यस्य स्त्री मानुषी-कुन्ती) यहाँ पुंयोग के द्वारा मानवी स्त्री के अर्थ में वर्तमान सूर्य शब्द से ङीष् प्रत्यय होने पर अन्त्याकार का लोप होकर—

सूर्यागस्त्ययोरिति—छ और ङी प्रत्यय परे रहते सूर्य और अगस्त्य शब्दों के यकार को लोप हो।

सूर्य+ई इस स्थिति में प्रकृत वार्तिक से यकार का लोप होकर 'सूरी' शब्द बनता है।

इन्द्र वरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ।४।१।४६।।

एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च । इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी ।

(वा) हिमारण्ययो र्महत्वे । महद्धिमं हिमानी । महदरण्यं अरण्यानी ।

(वा) यवाद् दोषे । दुष्टो यवो यवानी ।

(वा) यवनाल्लिप्याम् । यवनानां लिपिः यवनानी ।

इन्द्रे ति— इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य शब्दों से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो । (आनुक् में आन् शेष रहता है और कित् होने से शब्दों के अन्त में होता है ।)

इन्द्रादि छः शब्दों तथा मातुल और आचार्य शब्दों से तो पुंयोग के कारण सामान्य सूत्र से ही ङीष् सिद्ध है, प्रकृत सूत्र द्वारा केवल आनुक् होता है, शेष शब्दों में दोनों ही कार्य होते हैं ।

इन्द्राणी— इन्द्रस्य स्त्री । इन्द्र शब्द से पुंयोग में प्रकृत सूत्र से ङीष् और आनुक् होकर इन्द्र + आन् + ई इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ एवं णत्व होकर इन्द्राणी बनता है ।

वरुणानी—(वरुणस्य स्त्री) यहाँ भी पूर्ववत् ङीष्, आनुक् होकर वरुणानी रूप बनेगा ।

भवानी—(भवस्य स्त्री) भव, शर्व, रुद्र, मृड ये शिव के नाम हैं, इन सब से पुंयोग में ङीष् और आनुक् होकर भवानी, **शर्वाणी**, **रुद्राणी, मृडानी** रूप पूर्ववत् बनते हैं ।

हिमारण्ययोरिति—हिम और अरण्य शब्दों से ङीष् और आनुक् महत्त्व अर्थात् आधिक्य अर्थ में हों ।

हिमानी—(महद् हिमम् इति हिमानी) यहाँ हिम शब्द से महत्त्व अर्थ में ङीष् और आनुक् होकर हिमानी बनता है । इसी प्रकार—

अरण्यानी—महद् अरण्यम् इति अरण्यानी, यहाँ भी पूर्ववत् ङीष् और आनुक् होकर अरण्यानी बनेगा ।

यवादिति—दोष युक्त अर्थ में यव शब्द से ङीष् और आनुक् का आगम हो ।

यवानी—(दुष्टो यवः यवानी) यहाँ दोष युक्त अर्थ में यव शब्द से ङीष् और आनुक् होकर यवानी बनता है ।

यवनादिति—लिपि अर्थ में वर्तमान यवन शब्द से ङीष् और आनुक् हों ।

(वा) मातुलोपध्याययोरानुग्वा । मातुलानी मातुली । उपाध्यायानी उपाध्यायी ।

(वा) आचार्यादणत्वं च । आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी ।

(वा) अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे । अर्याणी अर्या, क्षत्रियाणी क्षत्रिया ।

क्रीतात् करण पूर्वात् ।४।१।५०।।

यवनानी—यवनानां लिपिः यवनानी । यहाँ लिपि अर्थ में यवन शब्द से ङीष् और आनुक् होकर यवनानी बनेगा ।

मातुलेति[1]—मातुल और उपाध्याय शब्दों से आनुक् विकल्प से हो ।

मातुलानी—(मातुलस्य स्त्री) यहाँ मातुल शब्द से पुंयोग में प्रकृत वार्तिक से ङीष् और विकल्प से आनुक् होकर मातुलानी और आनुक् के अभाव पक्ष में ङीष् होकर **मातुली** रूप बनेगा ।

उपाध्यायानी—(उपाध्यायस्य स्त्री) यहाँ भी पुंयोग में प्रकृत-वार्तिक से उपाध्याय शब्द से ङीष् और आनुक् होकर उपाध्यायानी बनता है, आनुगभाव पक्ष में सामान्य ङीष् होकर उपाध्यायी रूप बनता है ।

आचार्यादिति—आचार्य शब्द से पुंयोग में ङीष् और आनुक् हों तथा नकार के णत्व का निषेध भी हो ।

आचार्यानी—आचार्यस्य स्त्री । यहाँ आचार्य शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीष् और आनुक् होने पर णत्व का निषेध होकर आचार्यानी बनता है ।

अर्येति—अर्य और क्षत्रिय शब्दों से स्वार्थ में ङीष् और आनुक् विकल्प से हों । (स्वार्थ में विधान करने के कारण यहाँ ङीष् पुंयोग में नहीं होगा । अतएव ङीष् और आनुक् के अभाव पक्ष में टाप् प्रत्यय होता है ।

अर्याणी—(वैश्य कुल की स्त्री) यहाँ स्वार्थ में अर्य शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीष् और आनुक होने पर अर्याणी और ङीष् तथा आनुक् के अभाव में टाप् होकर **अर्या** रूप बनते हैं ।

क्षत्रियाणी—(क्षत्रिय कुल की स्त्री) यहाँ भी पूर्ववत् और आनुक् से पक्ष में क्षत्रियाणी तथा तदभाव पक्ष में **क्षत्रिया** रूप बनते हैं । यदि क्षत्रियस्य स्त्री ऐसी विवक्षा हो तब तो पुंयोग में सामान्य ङीष् होकर 'क्षत्रियी' होगा ।

क्रीतादिति—करण कारक पूर्वक क्रीतान्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीष् प्रत्यय हो ।

---

१. ङीष् तो दोनों ही शब्दों में पुंयोग में सामान्य सूत्र से प्राप्त ही है, और मातुल से आनुक् भी प्राप्त है पर उपाध्याय से नहीं । प्रकृत वार्तिक दोनों में विकल्प से विधान करता है अतः यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है ।

क्रीतावदन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात् । वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न-धनक्रीता ।

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद् असंयोगोपधात् ।४।१।५४।।

असंयोगोपध मुपसर्जनं यत् स्वाङ्गं तदन्तावदन्तात् ङीष् वा स्यात् । केशानतिक्रान्ता-अतिकेशी, अति केशा ।

चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । असंयोगोपधात् किम्-सुगुल्फा । उपसर्जनात् किम्-शिखा ।

वस्त्रक्रीती—(वस्त्र से खरीदी हुई) यहाँ 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः समास वचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' इस परिभाषा के बल से सुबुत्पत्ति के पूर्व ही करण कारक उपपद क्रीत शब्द के साथ 'उपपदमतिङ्' सूत्र से समास होकर वस्त्रक्रीत प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय होता है, यह शब्द करणादि और क्रीतान्त अदन्त है । इस प्रकार वस्त्रक्रीती बनता है ।

क्वचिन्नेति—कहीं यह ङीष् प्रत्यय नहीं होता है, यथा :—

धनक्रीता—(धनेन क्रीता—धन से खरीदी हुई) यहाँ पूर्वोक्त परिभाषा की प्रवृत्ति न होने से सुप् होने पर समास होगा, फलतः सुप के पूर्व लिंग बोधक प्रत्यय टाप् होकर धनक्रीता बनेगा ।

स्वाङ्गादिति[1]—उपसर्जन (गौण) स्वाङ्ग वाचक जो शब्द, जिसकी उपधा में संयोग न हो, तदन्द अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय विकल्प से हो ।

अतिकेशी—(केशानतिक्रान्ता—केशों का अतिक्रमण करने वाली) इस विग्रह में 'अत्यादयःक्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' से तत्पुरुष समास होने के कारण केश शब्द उपसर्जन-गौण-है, तथा केश शब्द प्राणी में स्थित एवं साकार होने से स्वाङ्गवाची भी है और इसकी उपधा में संयोग भी नहीं है । अतः असंयोगोपध उपसर्जन केशान्त अदन्त स्वाङ्गवाची अतिकेश शब्द से प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक ङीष् होकर अतिकेशी और अभाव पक्ष में अदन्त होने के कारण टाप् होकर **अतिकेशा** रूप बनते हैं ।

चन्द्रमुखी—(चन्द्र इव मुखं यस्याः चन्द्र के समान मुख वाली) यहाँ बहुब्रीहि समास है, इसमें अन्य पदार्थ के प्रधान होने से मुख उपसर्जन है । प्राणिस्थ और साकार होने से स्वाङ्गवाची भी है तथा असंयोगोपध भी, तदन्त अदन्त चन्द्रमुख प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय होने पर चन्द्रमुखी और तदभाव पक्ष में अदन्त लक्षण टाप् होकर **चन्द्रमुखा** बनता है ।

---

१. स्वाङ्ग से तात्पर्य केवल अपना अंग ही नहीं है, अपितु यहाँ निम्नलिखित विविध स्वाङ्ग का ग्रहण है—

'अद्रवं (जो तरल न हो) मूर्तिमत् (साकार) स्वाङ्गं, प्राणिस्थमविकारजम् ।
अतस्थ तत्र दृष्टं च, तेन चेत्तत्तथायुतम् ।

न क्रोडादि वह् वचः ।४।१।५६।।

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्नङीष् । कल्याण क्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ।

नखमुखात् संज्ञायाम् ।४।१।५८।।

न ङीष् । गौरमुखा । संज्ञायां किम्—ताम्रमुखी कन्या ।

असंयोगोपधात किम्—संयोग उपधा में न हो, ऐसा कहने से **'सुगुल्फा'** में ङीष् न होगा । शोभनौ गुल्फौ यस्याः इस विग्रह में बहुव्रीहि समास होने से यह शब्द उपसर्जन एवं स्वाङ्ग वाचक भी है तदन्त अदन्त सुगुल्फ शब्द से ङीष् होना चाहिए था पर यह संयोगोपध है अतः ङीष् न होकर अदन्तलक्षण टाप् प्रत्यय ही होगा ।

उपसर्जनादिति—उपसर्जन भूत अदन्त प्रातिपदिक से ही ङीष् होता है । ऐसा कहने से **शिखा** से ङीष् न होगा । यद्यपि शिखाशब्द असंयोगोपध स्वाङ्ग वाचक अदन्त है तथापि यह उपसर्जन नहीं है अतः ङीष् न होकर केवल अदन्त लक्षण टाप् प्रत्यय होगा । शीञ् धातु से "शीञ् : खो ह्रस्वश्च" इस उणादि सूत्र से ख प्रत्यय और ह्रस्व करने पर शिखा शब्द बनता है ।

न क्रोडेति—क्रोडादि गण से और बह्वच् स्वाङ्ग बाचक प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न हो ।

कल्याण क्रोडा—(कल्याणी क्रोडा यस्याः—वह घोड़ी जिस पर कल्याण सूचक चिह्न हों) क्रोडा शब्द यहाँ बहुव्रीहि समास का अवयव होने के कारण उपसर्जन है, स्वाङ्ग वाचक और असंयोगोपध अदन्त भी है अतः तदन्त प्रातिपदिक कल्याणक्रोड शब्द से ङीष् प्राप्त था उसका प्रकृत सूत्र से निषेध होने पर अदन्त लक्षण टाप् होकर कल्याणक्रोडा बनता है । क्रोडादि आकृतिगण है ।

सुजघना—(शोभनं जघनं यस्याः सुन्दर जघन स्थल वाली) यहाँ बहुत अचों वाले जघन शब्द के असंयोगोपध उससर्जन स्वांगवाचक एवं अदन्त होने से प्राप्त ङीष् का निषेध होकर टाप् हुआ है ।

नखमुखादिति—संज्ञा में नख, मुख स्वांगवाची शब्दों से ङीष् न हो ।

अर्थात् एक प्रकार का स्वांग तो अद्रव साकार प्राणिस्थ एवं अविकारज होता है, इस प्रकार का स्वांग अतिकेशी एवं चन्द्रमुखी में है । दूसरे प्रकार का स्वांग वह होता है जो 'अतस्थं तत्र दृष्टं च' अर्थात् जो प्राणी में स्थित तो न हों पर वहाँ देखा गया हो, जैसे अन्यत्र कटे पड़े हुए शिर के बाल । तीसरे प्रकार का स्वांग वह होता है जो "तेन चेत् तत् तथा युतम्" अर्थात् जैसा वह प्राणी में होता है वैसा ही अन्यत्र भी रहे जैसे मूर्तियों में वर्तमान अंग भी प्राणी में स्थित अंग के समान होने से स्वांग कहलाते हैं ।

पूर्वपदात् संज्ञाया मगः ।८।४।३।।

पूर्व पदस्थान्निमित्तात् परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायां न तु गकारव्यवधाने । शूर्पणखा ।

जातेरस्त्री बिषयादयोपधात् ।४।१।६३।।

जाति वाचि यन्न च स्त्रियां नियत मयोपधम्, ततः स्त्रियां ङीष् स्यात् । तटी । वृषली । कठी । बह् वची । जातेः किम्-मुण्डा । अस्त्री विषयात् किम्—

गौर मुखा—(गौरं मुखं यस्याः गौर मुख वाली) यह भी किसी की संज्ञा है, अतः स्वांग वाचक होने से प्राप्त ङीष् का पूर्ववत् निषेध होकर अदन्त लक्षण टाप् हुआ है ।

संज्ञायां किमिति—संज्ञा में ही ङीष् का निषेध हो, ऐसा कहने से **'ताम्रमुखी कन्या'** यहाँ ङीष् का निषेध न होकर स्वांगवाची ताम्रमुख शब्द से ङीष् हो जायेगा, क्योंकि ताम्रमुखी यह किसी का नाम नहीं है । 'ताम्रमुखी वाली कन्या कोई भी हो सकती है ।

पूर्व पदादिति—पूर्वपद स्थित निमित्त से परे नकार को णकार हो, पर गकार के व्यवधान में न हो ।

शूर्पणखा—(शूर्पाणीव नखानि यस्याः सूप जैसे नखों वाली) यह एक राक्षसी की संज्ञा है । अतः यहाँ स्वांगवाची नखान्त अदन्त शूर्पनख शब्द से प्राप्त ङीष् का 'नखमुखादिति' सूत्र से निषेध होकर अदन्त लक्षण टाप् प्रत्यय हुआ और पूर्व पद अर्थात् शूर्प स्थित निमित रेफ से पर नकार को प्रकृत सूत्र से णकार होकर शूर्पणखा बना है ।

जातेरिति—जो शब्द जाति वाचक* हो, पर नित्य स्त्रीलिंग न हो, और उसकी उपधा में यकार न हो, इस प्रकार के अदन्त प्रातिपादिक से ङीष् प्रत्यय हो ।

तटी—तट शब्द जाति वाचक है, नित्य स्त्रीलिंग भी नहीं है तथा योपध भी नहीं है अतः इससे प्रकृत सूत्र से ङीष् होकर 'तटी' बना है ।

वृषली—(वृषल जाति की स्त्री) यह वृषल एक जाति है, अतः जाति वाचक होने से ङीष् होकर वृषली बना है ।

कठी—(कठेन प्रोक्त मधीयाना स्त्री—कठ शाला का अध्ययन करने वाली) कठ शब्द के शाखावाचक होने से इस वेद शाखा का अध्ययन करने वाली स्त्री

---

* सूत्र में जाति से तात्पर्य न केवल ब्राह्मणादि जाति से ही है, अपितु वेद शाखाओं के अध्येताओं तथा अपत्य प्रत्ययान्त शब्दों से भी है, इन दोनों को भी जाति वाचक ही माना गया है, सूत्र में क्रमशः इनके उदाहरण हैं ।

बलाका । अयोपधात् किम् – क्षत्रिया ।

(वा) योपध प्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः । हयी । गवयी । मुकयी । हलस्तद्धितस्येति यलोपः— मनुषी ।

(वा) मत्स्यस्य ङ्याम् । यलोपः । मत्सी ।

जातिवाचक शब्दों के अन्तर्गत मानी जायेगी, फलतः जाति लक्षण ङीष् होकर कठी बनेगा ।

बह्वृची—यह भी एक वेद शाखा है अतः बह्वृच शब्द से ङीष् होकर बह्वृची बनेगा । (बह्वृच शाखा मधीयाना स्त्री) बह्वृची ।

जातेः किम्— जाति वाचक से ही ङीष् होता है, ऐसा कहने से **'मुण्डा'** यहाँ जाति लक्षण ङीष् न होकर टाप् होगा, क्योंकि मुण्डा (मुड़ी हुई स्त्री) कोई जाति नहीं है ।

अस्त्री विषयादिति—उन्हीं शब्दों से जाति लक्षण ङीष् होगा जो नित्य स्त्री लिंग न हों, इस कथन से **'बलाका'** यहाँ ङीष् न होगा, क्योंकि बलाका (पक्षि विशेष) नित्य स्त्री लिंग शब्द है । अतः यहाँ टाप् प्रत्यय ही होगा ।

अयोपधात् किमिति—जो शब्द यकारोपध न हों उन्हीं से जाति लक्षण ङीष् हो, ऐसा कहने से **'क्षत्रिया'** यहाँ जाति लक्षण ङीष् न होकर टाप् ही होगा, क्योंकि क्षत्रिया (क्षत्रिय जाति की स्त्री) योपध है ।

योपधेति—यकारोपध शब्दों के निषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य को वर्जित कर देना चाहिए अर्थात् इन शब्दों के योपध होने पर भी इनसे ङीष् हो जाय, पर इन योपधों के अतिरिक्त अन्य योपधों से न हो ।

हयी—घोड़ी, **गवयी** (गवय-गो सदृश पशु विशेष की मादा) **मुकयी** (मुकय नाम पशु विशेष की मादा) ये शब्द यद्यपि योपध है, तथापि प्रकृत वार्तिक के नियमानुसार इनसे ङीष् होता है ।

मनुषी—(मनुष्य जाति की स्त्री) योपध होने पर भी प्रकृत वार्तिक से ङीष् प्रत्यय होने पर 'यस्येति चेति' अकारलोप होकर 'हलस्तद्धितस्य' सूत्र से यकार लोप हुआ है अतः 'मनुषी' रूप बना है ।

मत्सी—(मछली) मत्स्य शब्द के योपध होने पर भी प्रकृत वार्तिक के बल

जाति लक्षण ङीष् विधायक सूत्र में अपत्य प्रत्ययान्त जाति वाचक शब्दों के उदाहरण नहीं दिये हैं, अतः इसके उदाहरण 'औपगवी' आदि समझने चाहिए "उपगोरपत्यं स्त्री" यहाँ अण प्रत्ययान्त औपगव शब्द से टिड्ढेति सूत्र से प्राप्त ङीप् को बाध कर जाति लक्षण ङीष् होता है । ङीप् और ङीष् में स्वर भेद है ।

इतो मनुष्य जातेः ।४।१।६५।।

ङीष् । दाक्षी ।

ऊङ उतः ।४।१।६६।।

उदन्तादयोपधान्मनुष्य जाति वाचिनः स्त्रिया मूङ् स्यात् । कुरुः । अयोपधात् किम्—अध्वर्युः ब्राह्मणी ।

से यहाँ ङीष् प्रत्यय होता है, अन्त्याकार लोप होने पर 'मत्स्यस्य ङ्याम्' (ङी परे रहते मत्स्य शब्द के यकार का लोप हो) वार्तिक से यकार का लोप होकर मत्सी बनता है।

इत इति—मनुष्य जाति बाचक इकारान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। (जाति लक्षण ङीष् केवल अदन्त शब्दों से होता हैं, पर प्रकृत सूत्र से इकारान्त से भी उसका विधान किया गया है।)

दाक्षी—(दक्षस्या पत्यं स्त्री) यहाँ अपत्यार्थ में दक्ष शब्द से 'अत इञ्' सूत्र से इञ् प्रत्यय और वृद्धि होकर निष्पन्न दाक्षि इस इकारान्त प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर 'यस्येति चेति' इकार लोप होने पर दाक्षी बनता है।

ऊङ इति—उकारान्त अयोपध मनुष्य जाति वाची प्रातिपदिक से ऊङ्[1] प्रत्यय हो।

कुरु—(कुरु जातेः स्त्री) संज्ञा होने के कारण यहाँ कुरु शब्द जातिवाचक है और अयोपध भी है अतः इस मनुष्य जाति वाचक कुरु, शब्द से प्रकृत सूत्र से ऊङ् (ऊ) प्रत्यय तथा सवर्ण दीर्घ होकर 'कुरु' बनता है।

अयोपधात् किम्—यकारोपध शब्दों से ऊङ् प्रत्यय नहीं होता, ऐसा कहने से **'अध्वर्युः'** (अध्वर्यु शाखा का अध्ययन करने वाली ब्राह्मणी) में योपध होने के कारण ऊङ् नहीं होगा।

---

[1] ऊङ् प्रत्ययान्त शब्दों से सु आदि की उत्पत्ति लिंग विशिष्ट परिभाषा के ही बल से होती है क्योंकि प्रत्ययान्त होने के कारण इनकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं हो सकती और न ये शब्द ङ्यन्त आवन्त ही होते हैं। इसलिए लिंग विशिष्ट परिभाषा से ही प्रातिपदिक मानकर सु आदि की उत्पत्ति होती है। 'ङ्याप् प्रातिपदिकात्' सूत्र ङ्यन्त आवन्त और प्रातिपदिक से स्वादि का विधान करता है पर ऊङ् प्रत्ययान्त से नहीं, अतः जब कि ऊङ् प्रत्ययान्त शब्दों से सुबुत्पत्ति के लिए लिंग विशिष्ट परिभाषा को मानना ही पड़ता है तब उक्त सूत्र में ङ्याप् ग्रहण भी व्यर्थ ही है, क्योंकि लिंग विशिष्ट परिभाषा से ङ्यन्त आवन्त के भी प्रातिपदिक होने से सुबुत्पत्ति हो जायेगी।

पङ्गोश्च ।४।१।६८।।

पङ्गूः ।

(वा) **श्वशुरस्यो काराकार लोपश्च** । श्वश्रूः ।

ऊरुत्तर पदादौपम्ये ।४।१।६९।।

उपमान वाचि पूर्वपद मूरुत्तर पदं यत्प्रातिपदिकं तस्मा दूङ् स्यात । करभोरुः ।

संहित शफ लक्षण वामादेश्च ।४।१।७०।।

अनौपम्यार्थं सूत्रम् । संहितोरुः शफोरुः लक्षणोरुः । वामोरुः ।

पङ्गोरिति—शंगु शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय हो । पंगु—लंगड़ी) पंगु शब्द जाति वाचक नहीं है अतः यहाँ पूर्व सूत्र से ऊङ् प्राप्त नहीं था, इसलिए प्रकृत सूत्र से यहाँ ऊङ् प्रत्यय हुआ है, सवर्ण दीर्घ होकर 'पंगूः' बनता है ।

श्वशुरस्येति—(श्वशुर की स्त्री—सास) यहाँ श्वशुर शब्द से प्रकृत वार्तिक से ऊङ् प्रत्यय तथा शकार से परे उकार का और रेफ से परे अकार का लोप होकर श्वश्रूः बनता है । यद्यपि यहाँ 'पुंयोगादाख्यायाम्' से पुंयोग लक्षण ङीष् प्राप्त था तथापि प्रकृत वार्तिक उसे बाध कर यहाँ ऊङ् विधान करता है ।

ऊरुत्तरेति—जिस शब्द का पूर्वपद तो उपमान वाची हो और उत्तर पद ऊरु शब्द हो, ऐसे शब्द से स्त्रीलिंग में ऊङ् प्रत्यय हो ।

करभोरुः—करभौ[1] ऊरु यस्याः हथेली के छोर के सदृश ऊरु वाली स्त्री । यहाँ 'करभ' उपमान वाची पूर्वपद है और उत्तरपद ऊरु है, अतः करभोरु शब्द से प्रकृत सूत्र से ऊङ् प्रत्यय और सवर्ण दीर्घ होकर करभोरू शब्द सिद्ध होता है ।

संहितेति—संहित, शफ, लक्षण, वाम पूर्वपद वाले तथा ऊरु अन्त वाले प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ऊङ् प्रत्यय हो ।

अनौपम्यार्थ मिति—यह सूत्र अनौपम्य अर्थात् अनुपमान के लिए है । अर्थात् जबकि पूर्वपद उपमान न हो, पूर्व सूत्र उपमान पूर्वपद वाले शब्दों में ऊङ् विधान करता है । इस सूत्र के संहित आदि पद उपमान नहीं हैं अतः इस सूत्र की आवश्यकता हुई ।

संहितोरू—(संहितौ संश्लिष्टौ ऊरू यस्याः मिले हुए ऊरुओं वाली) इसी प्रकार **'शफोरू'** (शफौ ऊरु यस्याः मिले हुए ऊरुओं वाली) **'लक्षणोरू'** (लक्षणौ

---

[1] "मणिबन्धादा कनिष्ठं करभो करयो र्बहिः" कलाई से लेकर छोटी अँगुली तक हथेली का निचला कोमल भाग 'करभ' कहा जाता है ।

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ।४।१।७३।।

शार्ङ्गरवादेः, अञो योऽकार स्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् । शार्ङ्गरवी । वैदी, ब्राह्मणी ।

(ग० सू०) नृनरयो र्वृद्धिश्च । नारी ।

यूनस्तिः ।४।७।७७।।

उरुः यस्याः अच्छे लक्षणों वाले ऊरुओं वाली) "**वामोरुः**" वामी ऊरु यस्याः शुन्दर ऊरुओं वाली) इन सभी संहितोरु, शफोरू, लक्षणोरु और वामोरु शब्दों में ऊङ् और दीर्घ होकर ये शब्द सिद्ध होते हैं ।

शार्ङ्गरवेति—शार्ङ्गरव आदि शब्दों से अञ् का जो अकार तदन्त जातिवाची शब्दों से ङीन् प्रत्यय हो ।

शार्ङ्गरवी – (शृङ्गरो रपत्यं स्त्री-शृङ्गरु ऋषि की स्त्री सन्तान) यहाँ अपत्यार्थक अण् प्रत्यय होकर शार्ङ्गरव बनता है—यह अपत्य प्रत्ययान्त होने के कारण जातिवाचक भी है अतः शार्ङ्गरव शब्द से ङीन (ई) होकर शार्ङ्गरवी बनता है ।[1]

वैदी—(विदस्यापत्यं स्त्री-विद की स्त्री सन्तान) यहाँ 'गर्गादिविदादिभ्योऽञ् सूत्र से अञ् प्रत्यय और वृद्धि होकर निष्पन्न वैद शब्द से प्रकृत सूत्र से ङीन् प्रत्यय होकर वैदी बनता है ।

ब्राह्मणी – (ब्राह्मण जातीय स्त्री) यहाँ जातिवाचक ब्राह्मण शब्द से जाति लक्षण प्राप्त ङीष् को बांध कर प्रकृत सूत्र से ङीन् प्रत्यय हुआ है, इस प्रकार 'ब्राह्मणी' बना है ।

नृनरयोरिति—नृ और नर शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीन् प्रत्यय हो और वृद्धि भी हो ।

ऋकारान्त होने के कारण नृ शब्द से यद्यपि यहाँ 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप् प्रत्यय प्राप्त था, और नर शब्द से जाति लक्षण ङीष् प्राप्त था तथापि प्रकृत गण सूत्र से यहाँ ङीन् प्रत्यय ही होता है ।

नारी—नृ शब्द से ङीन् और ऋकार को आर् वृद्धि करके नारी रूप बनता है, इसी प्रकार नर शब्द से ङीन करके और अकार को वृद्धि तथा अन्त्याकार लोप करके भी नारी ही रूप बनता है ।

यून इति—युवन् शब्द से स्वीलिङ्क में ति प्रत्यय हो ।

---

१. ङीप्, ङीष्, ङीन् तीनों में 'ई' शेष रहता है, तीनों में स्वर का ही अन्तर है । ङीन् प्रत्ययान्त के नित् होने के कारण आद्युदात्त होता है ।

युवन् शब्दात् स्त्रियां ति प्रत्ययः स्यात् । युवतिः ।

इति स्त्री प्रत्ययाः

युवतिः[१]—(युवावस्था वाली स्त्री) युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में प्रकृत सूत्र से ति प्रत्यय हुआ तब 'स्वादिष्विति' सूत्र से पूर्व की पद संज्ञा होने पर 'न लोपः' सूत्र से नकार का लोप होकर युवतिः शब्द बना है ।

इति स्त्रीप्रत्ययाः

इति

---

१. यहाँ भी लिङ्ग विशिष्ट परिभाषा बल से ही सु आदि की उत्पत्ति होगी । दीर्घ युवती शब्द 'सर्वतोऽक्तिन्नर्थात्' इस वह्वादिगण सूत्र से वैकल्पिक ङीष् के द्वारा अथवा शत्रन्त शब्द से 'उगितश्च' सूत्र से ङीप् प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न होता है ।

संस्कृत-व्याकरणम्